ॐ
कल्याण
सत्कथा-अंक
वर्ष ३०] [सख्या १

दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा रमा ब्रह्माणी जय जय, राधा सीता रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश, जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवा-शिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीताराम॥

सं० २०५० द्वितीय संस्करण ५,०००

मूल्य—पैंसठ रुपये

कोई सज्जन विज्ञापन भेजनेका कष्ट न उठावें।

कल्याणमें बाहरके विज्ञापन नहीं छपते।

समालोचनार्थ पुस्तकें कृपया न भेजें।

कल्याणमें समालोचनाका स्तम्भ नहीं है।

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

हारेहुँ खेल जितावहिं मोही (भ्रातृप्रेम) (पृष्ठ-सख्या १४५)

क्षुद्र गिलहरीपर सर्वेश्वर रामकी कृपा (पृष्ठ-संख्या २४१)

माता-पिताके चरणोंमें-प्रथम पूज्य गणेशजी (पृष्ठ-संख्या २३६)

अजेय राम-सेवक--महावीर हनुमान्‌जी (पृष्ठ-संख्या ३८५)

नित्य अभिन्न--उमा-महेश्वर (पृष्ठ-संख्या ४८१)

सुकुमार वीर--भीष्मके प्रति श्रीकृष्ण चाबुक लेकर दौड़े (पृष्ठ-संख्या ५५२)

आर्यकन्याकी आराध्या--सीताजीका गौरीपूजन (पृष्ठ-संख्या ५७८)
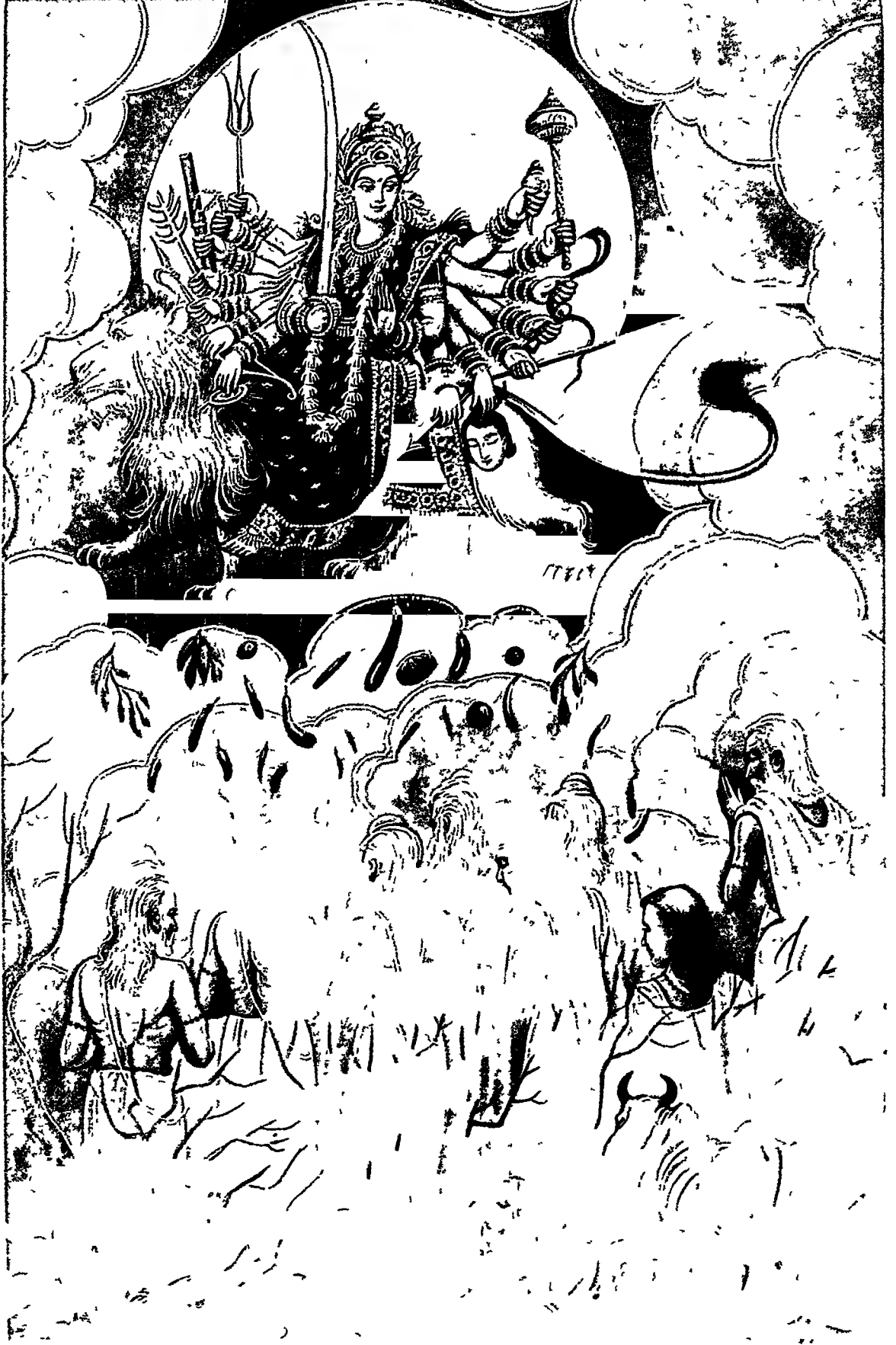
महामाया महाशक्ति शाकम्भरी देवी (पृष्ठ-संख्या ६०८)

|| श्रीहरिः ||

'सत्-कथा-अङ्क'की विषय-सूची

अवतार-कथा

चित्र-सूची

इकरंगे

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
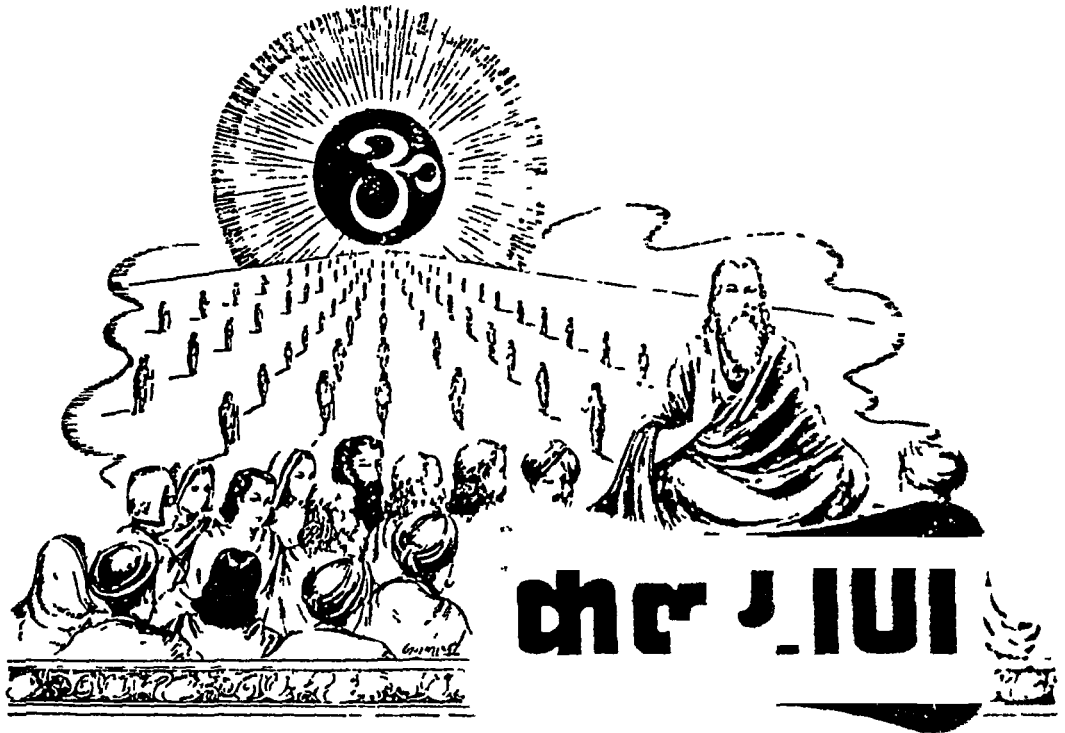
पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु सम्भृतम् ।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ॥

(श्रीमद्भागवत २ । २ । ३७)

वर्ष ३० } गोरखपुर, सौर माघ २०१२, जनवरी १९५६ { संख्या १ पूर्ण संख्या ३५०

सत्कथाओंके मूल स्रोत और संतोंके परम ध्येय

(नवनिकुञ्जमें श्यामा-श्याम)

(१)

रसनिधान पावन बृंदावन रवि-तनया-तट सोहै,
नित नूतन निज सुख-सुषमा सौं सुर-नर-मुनि-मन मोहै ।
सेष सारदा हू पै जाकी सोभा बरनि न जाई,
जहँ पावस बसंत आदिक ऋतु संतत रहैं लुभाई ॥

(२)

जहाँ बेलि-तृन-तरु-समूह है संत मोच्छ-सुख वारैं,
बिकसित कुसुम सरिस नैनन सौं स्यामा स्याम निहारैं ।
या बृंदाबन बीच मंजु इक नवल निकुंज बिराजै,
जाकी स्याममयी सुषमा लखि नंदन कोटिक लाजै ॥

(३)

मध्य मनोहर वा निकुंज के एक कदंब सुहावै,
निज अनुपम अनल्प महिमा सौं पादप कल्प लजावै ।
डाल-डाल अरु सघन पात बिच कुसुमित कुसुम घनेरे,
कै सुरराज जुगल छवि हेरत सहस नैन करि नेरे ॥

(४)

नीचे वा कदंब तरुवर के कोटि मदन छवि हारी
ठाढ़े ललित त्रिभंगी छवि सौं वृंदाविपिन-बिहारी ।
बाईं ओर मदनमोहन के श्रीवृषभानुकिसोरी,
चितवति स्याम बिनत चितवन सौं मानौ चंद चकोरी ॥

(५)

मोर-मुकुट स्वर्नाभ सुघर सिर श्रीहरि के छवि पावै,
सीस चंद्रिका भानुसुता के भानु-बिभा बगरावै ।
पेखि स्याम द्युति पीत प्रिया को पीत बसन तन धारैं,
पिय के रँग सम नील-स्याम पट स्यामा अंग सँवारैं ॥

(६)

कुंडल लोल अमोल स्रवन बिच बक्ष विमल बनमाला,
मुरली मधुर बजाइ बिस्व-कौ मन मोहत नँदलाला ।
घूँघट नैक उठाइ हाथ सौं पिय-छवि निरखति प्यारी,
रूप-सुधा कौ दान पाइ त्यौं हिय हरषत बनवारी ॥

(७)

बिबिध बरन आभरन बिभूपित रसिक-राय गिरिधारी,
झीन बसन. भूषन कंचुक पट सोभित भानु-दुलारी ।
दोउन के दृग द्वै चकोर बनि दोउ मुखचंद निहारैं,
प्रेम बिबस दोऊ दोउन पै तन-मन-सरबस वारैं ॥

(८)

परम प्रेम फलरूप, कोटि-सत रति-मन्मथ छवि छीने,
संत-हृदय-संपति दंपति नव लसत प्रनय-रस-भीने ।
ढारति चँवर जुगल प्रीतम कौं स्नेहमयी कोउ बामा,
अरपन कर सौं करति पान कौ बीरो कोउ अभिरामा ॥

(९)

सेवा-रत सहचरी-वृंद जुत स्याम और स्यामा की,
जाके हिय बिच बसति सदा यह भुवनमोहनी झाँकी ।
सोइ तापस गुनवंत संत सुचि, सोइ ध्यानी, सोइ ज्ञानी,
सोई लाह लह्यौ जीवन कौ भावुक भगत अमानी ॥

—पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री 'राम'

मूर्तिमान् सत्

(श्रीभरतजी)

नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदयँ समाति ।
मागि मागि आयसु करत राज काज बहु भाँति ॥
पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू । जीह नामु जप लोचन नीरू ॥
लखन राम सिय कानन बसहीं । भरतु भवन बसि तप तनु कसहीं ॥
(मुखपृष्ठका बहुरंगा चित्र देखिये)

जिनके जीवनका प्रत्येक कण और प्रत्येक क्षण सर्वथा और सर्वदा 'सत्' से ओतप्रोत है, जो 'सत्' के परम आदर्श और मूर्तिमान् स्वरूप हैं, जिनका श्रीविग्रह 'सत्' स्वरूप श्रीराम-प्रेमसे ही बना हुआ है—

'राम प्रेम मूरति तनु आही ।'

—असत्का जिनके जीवनमें कभी स्वप्नमें भी संस्पर्श नहीं है, जो परम 'सत्स्वरूप' रामके भी स्मरण तथा जपके विषय हैं—

'सुमिरत जिनहि राम मन माहीं ।'
'जगु जप रामु रामु जप जेही ।'

—जिनका दर्शन करके भरद्वाजमुनि प्रयागवासियोंके साथ अपनेको भाग्यवान् मानते हैं और उनके दर्शनको रामदर्शन-का फल बतलाते हैं—

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं । उदासीन तापस बन रहहीं ॥
सब साधन कर सुफल सुहावा । लखन राम सिय दरसनु पावा ॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा । सहित पयाग सुभाग हमारा ॥
भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ । कहि अस पेम मगन मुनि भयऊ ॥

'सुनो भरत ! हम वनवासी तपस्वी हैं, उदासीन हैं—हमारा कहीं राग-द्वेष या अपना-पराया नहीं है, न हमें कुछ चाहिये ही । हम किसी हेतुसे तुमसे बनावटी बात नहीं कहते—हम झूठ नहीं कहते । हमें तुमसे कुछ भी लेना-देना नहीं है । हम सत्य कहते हैं कि हमारे समस्त साधनोंका सुन्दर फल तो यह हुआ कि हमने सीता-लक्ष्मण-सहित रामका दर्शन प्राप्त किया और उस रामदर्शनका महान् फल है तुम्हारा दर्शन । समस्त प्रयागके साथ हमारा यह सौभाग्य है । भरत ! तुम धन्य हो । तुम्हारे यशने जगत्को जीत लिया ।' यह कहकर मुनि भरद्वाज प्रेममग्न हो गये ।

—जिनके महत्त्वका दिग्दर्शन कराते हुए परम सिद्ध ज्ञानी जनक महाराज सजल-नेत्र और पुलकित-शरीर होकर मुदित मनसे एकान्तमें अपनी धर्मपत्नीसे कहते हैं—

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि । भरत कथा भव-बंध-बिमोचनि ॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू । इहाँ जथामति मोर प्रचारू ॥
सो मति मोरि भरत महिमाही । कहै काह छलि छुअति न छाँही ॥

× × ×

भरत अमित महिमा सुनु रानी । जानहिं रामु न सकहिं बखानी ॥

× × ×

बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं । सब कर भल सब के मन माहीं ॥
देबि परंतु भरत रघुबर की । प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी ॥
भरतु अवधि सनेह ममता की । जद्यपि रामु सीम समता की ॥
परमारथ स्वारथ सुख सारे । भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू । मोहि लखि परत भरत मत एहू ॥

'हे सुमुखि ! सुनयनी ! सावधान होकर सुनो । भरतजी-की कथा भवबन्धनसे मुक्त करनेवाली है । धर्म, राजनीति और ब्रह्मविचार—इन तीनों विषयोंमें अपनी बुद्धिके अनुसार मेरी गति है । (अर्थात् इनके सम्बन्धमें मैं कुछ जानता हूँ और अपनी सम्मति दे सकता हूँ ।) पर मेरी वह (धर्म, राजनीति और ब्रह्मज्ञानमें प्रवेश पायी हुई) बुद्धि भरतकी महिमाका वर्णन तो क्या करे, छल करके भी उसकी छायातकको नहीं छू पाती ।

'रानी ! भरतजीकी अपरिमित महिमा है । उसे एक श्रीरामजी ही जानते हैं, पर वे भी उसका वर्णन नहीं कर सकते ।

'लक्ष्मणजी लौट जायँ और भरतजी वनको जायँ, इसमें सभीका भला है और सबके मनमें भी यही है । परन्तु देवि ! भरतजी और श्रीरामचन्द्रजीका प्रेम और एक दूसरेका विश्वास हमारी बुद्धिके तर्कमें नहीं आते । यद्यपि श्रीरामचन्द्रजी समताकी सीमा हैं, तथापि भरतजी प्रेम और ममताकी सीमा हैं । भरतजीने (श्रीरामके अनन्य प्रेमको छोड़कर) समस्त परमार्थ, स्वार्थ और सुखोंकी ओर स्वप्नमें भी नहीं ताका है । श्रीरामके चरणोंका प्रेम ही उनका साधन है और वही सिद्धि है । मुझे तो बस, भरतजीका यही सिद्धान्त जान पड़ता है ।'

—जिनका समस्त जीवन 'सत्कथा' मय है, जिनके जीवनकी सभी दिशाएँ सत् और सत्यसे भरी हैं, जिनके जीवनकी सत् सुधापूर्ण अक्षय पात्रसे अनवरत निरन्तर निकलकर अमृत-

का मङ्गलमय प्रवाह सब ओर बह रहा है और अनन्त-अनन्त देवमूर्तियाँ सब ओरसे सदा जिनकी 'सत्कथा'का शङ्ख फूँक रही हैं (मुखपृष्ठका बहुरंगा चित्र देखिये), उन भरतजीकी परम पावनी 'सत्' स्वरूपा लीलाके सम्बन्धमें कुछ भी कहना दुस्साहस मात्र है; पर इस बहाने उनका परम कल्याणमय पवित्र स्मरण हो जाता है, इसीलिये उनके महान् 'सत्' जीवनके किञ्चित् पुण्यस्मरणका प्रयास किया जाता है—

भगवान् श्रीरामचन्द्र श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजीको साथ लेकर सहर्ष वनमें चले गये। महाराज दशरथका रामवियोगके दुःखसे देहान्त हो गया। भरतजीको ननिहालसे बुलाया गया। वे शत्रुघ्नजीके साथ लौटकर आये। अवधमें आकर जब सारे नगरको विषादग्रस्त देखा, तभी उनके मनमें खटका हो गया था। फिर जब राजमहलमें आकर वहाँ भी शोक-पूर्ण सन्नाटा देखा, तब तो भरतजी सहम गये। माता कैकेयीने उनका आदर किया, नैहरके कुशल-समाचार पूछे; पर भरतका मन तो पिता दशरथ तथा अग्रज श्रीरामको देखनेके लिये व्याकुल था। उन्होंने मातासे कहा—

> अभिषेक्ष्यति रामं तु राजा यज्ञं नु यक्ष्यते।
> इत्यहं कृतसंकल्पो हृष्टो यात्रामयासिषम्॥
> तदिदं ह्यन्यथाभूतं व्यवदीर्णं मनो मम।
> पितरं यो न पश्यामि नित्यं प्रियहिते रतम्॥
> × × ×
> यो मे भ्राता पिता बन्धुर्यस्य दासोऽस्मि सम्मतः।
> तस्य मां शीघ्रमाख्याहि रामस्याक्लिष्टकर्मणः॥
> पिता हि भवति ज्येष्ठो धर्ममार्यस्य जानतः।
> तस्य पादौ ग्रहीष्यामि स हीदानीं गतिर्मम॥
> (वा० रा० अयोध्या० ७२। २७-२८-३२-३३)

'मैं तो यह सोचकर बड़ी प्रसन्नतासे चला था कि महाराज या तो श्रीरामका राज्याभिषेक करेंगे या कोई यज्ञ करेंगे। परंतु यहाँ तो मैंने उलटा ही देखा, जिससे मेरा हृदय विदीर्ण हो गया। आज मैं सदा अपने प्रिय और हितमें रत पिता-जीको नहीं देख रहा हूँ। यह तू मुझे शीघ्र बता कि जो मेरे भाई, पिता, बन्धु—सब कुछ हैं, मैं जिनका प्रिय दास हूँ, वे सरलस्वभाव रामचन्द्र कहाँ हैं? धर्मको जाननेवाले बड़े भाई-को पिताके सदृश समझते हैं। मैं उनके चरणोंमें पड़ूँगा, अब वे ही मेरे अवलम्ब हैं।'

अब कैकेयीने उन्हें सारी बातें आद्योपान्त सुना दीं। वह समझ रही थी कि भरत इसे सुनकर प्रसन्न होंगे। भरतकी जगह दूसरा कोई राज्यलोलुप होता तो वह अवश्य प्रसन्न होता। पर भरतजीको माताके वचन ऐसे लगे मानो वे जलेपर नमक लगा रही हों—

> 'मनहुँ जरे पर लोनु लगावति।'

माताने जब कहा कि 'अब सोच छोड़कर राज्य करो' तब तो भरतजी सहम गये। मानो पके घावपर अंगार छू गया हो। वे लंबी साँस लेते हुए बोले—'पापिनी! तूने सब तरहसे कुलका नाश कर दिया। हाय! यदि तेरी ऐसी ही कुरुचि थी तो तूने जन्मते ही मुझे मार क्यों नहीं डाला। तूने पेड़ काटकर पत्तेको सींचा है और मछलीके जीनेके लिये पानी-को उलीच डाला है। अरी कुमति! जब तेरे हृदयमें ऐसा बुरा विचार आया, तभी तेरे हृदयके टुकड़े-टुकड़े क्यों न हो गये? तेरी जीभ गल नहीं गयी? तेरे मुँहमें कीड़े नहीं पड़ गये?'

भरतजीने कहा—

> लुब्धाया विदितो मन्ये न तेऽहं राघवं यथा।
> तथा ह्यनर्थो राज्यार्थं त्वयानीतो महानयम्॥१३॥
> अहं हि पुरुषव्याघ्रावपश्यन् रामलक्ष्मणौ।
> केन शक्तिप्रभावेण राज्यं रक्षितुमुत्सहे॥१४॥
> न तु कामं करिष्यामि तवाहं पापनिश्चये।
> यया व्यसनमारब्धं जीवितान्तकरं मम॥२५॥
> × × ×
> राज्याद् भ्रंशस्व कैकेयि नृशंसे दुष्टचारिणि।
> परित्यक्तासि धर्मेण मा मृतं रुदती भव॥२॥
> किं नु तेऽदूषयद् रामो राजा वा भृशधार्मिकः।
> ययोर्मृत्युर्विवासश्च त्वत्कृते तुल्यमागतौ॥३॥
> यत् त्वया हीदृशं पापं कृतं घोरेण कर्मणा।
> सर्वलोकप्रियं हित्वा ममाप्यापादितं भयम्॥५॥
> मातृरूपे ममामित्रे नृशंसे राज्यकामुके।
> न तेऽहमभिभाष्योऽस्मि दुर्वृत्ते पतिघातिनि॥७॥
> (वा० रा० ७३। ७४)

'लोभिनि! तुझे ज्ञात नहीं है कि श्रीराघवेन्द्रके प्रति मेरा क्या भाव है। इसी कारण राज्यके लोभसे तूने यह महान् अनर्थ कर डाला। पुरुषसिंह राम-लक्ष्मणको बिना देखे मैं किसके बलपर राज्यकी रक्षा करूँगा? तूने मेरे जीवनका अन्त कर देनेवाला भीषण दुःख उत्पन्न कर दिया। पर पापिनि! मैं तेरा मनोरथ पूर्ण नहीं होने दूँगा। अरी दुष्टा क्रूरे! तू

राज्यसे भ्रष्ट हो जा; तू धर्मसे पतित है । ईश्वर करे मैं मर जाऊँ और तू मेरे लिये रोया करे । रामने तेरा क्या बुरा किया था? और अत्यन्त धार्मिक महाराजने ही तेरा क्या बिगाड़ा था? जो तूने एकको वनवास और दूसरेको एक ही साथ मौतके मुँहमें पहुँचा दिया । तूने इस प्रकारका घोर कर्म किया है कि सर्वलोकप्रिय रामको वन दिया ! इससे मैं भी भयभीत हो गया हूँ । अरी राज्यकी भूखी ! क्रूरे ! तू माताके रूपमें मेरी शत्रु है । तुझको मुझसे बोलना भी नहीं चाहिये । तू बड़ी दुराचारिणी है । तू पति-हत्यारी है !'

मन्थराको घसीटते हुए शत्रुघ्नका क्रोध शान्त करते समय तो भरतजीने यहाँतक कह दिया कि—

> हन्यामहमिमां पापां कैकेयीं दुष्टचारिणीम् ।
> यदि मां धार्मिको रामो नासूयेन्मातृघातकम् ॥
> (वा० रा० २ । ७८ । २२)

'भाई ! मुझे यदि यह डर न होता कि धर्मात्मा श्रीरामभद्र मातृ-हत्यारा मानकर मुझे त्याग देंगे तो मैं इस दुष्ट आचरणवाली कैकेयीको मार ही डालता ।'

अन्तमें भरतजीने कैकेयीका मुख भी नहीं देखना चाहा और कहा 'तू जो है, सो है, अब मुँहपर कालिख पोतकर यहाँसे उठ और मेरी आँखोंकी ओटमें जा बैठ ।' मैं तेरा मुँह नहीं देखना चाहता—

> जो हसि सो हसि मुहं मसि लाई । आँखि ओट उठि बैठहि जाई ॥

माता कैकेयीका भरतको राज्य दिलानेका यह प्रयत्न भरतकी मर्मान्तक वेदनाका कारण हो रहा है । वे इसको महापाप मान रहे हैं । माँको राम-विरोधी समझकर वे उसे अपना शत्रु समझ रहे हैं । उनके मनकी वेदनाका कोई पार नहीं है । इतनेमें ही श्रीकौसल्याजी वहाँ आ जाती हैं और शोकावेशमें उनके मुँहसे कुछ ऐसे शब्द निकल जाते हैं, जिनसे यह प्रतीत होता है कि माता कौसल्या रामके वन-गमनमें भरतको कारण मान रही हैं । भरतजी महाराज राम वियोगसे व्याकुल माता कौसल्याकी दीन दशा देखकर अत्यन्त दुःखकातर तो थे ही । माताके मुखसे निकले वचनोंको सुनकर तो भरतजीका हृदय टूक-टूक हो गया । वे पछाड़ खाकर माताके चरणोंमें मूर्च्छित होकर गिर पड़े । जब चेतना हुई, तब गद्गद कण्ठसे 'हा राम, हा राम !' पुकारते हुए इधर-उधर ताकने लगे । भरतजीने व्याकुल होकर उनके चरणोंमें पड़े-पड़े कहा—

> मातु तात कहँ देहि देखाई । कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥
> कैकइ कत जनमी जग माझा । जौं जनमि त भइ काहे न बाँझा ॥
> कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही । अपजस भाजन प्रियजन द्रोही ॥
> को तिभुवन मोहि सरिस अभागी । गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥
> पितु सुरपुर बन रघुबर केतू । मैं केवल सब अनरथ हेतू ॥
> धिग मोहि भयउँ बेनु बन आगी । दुसह दाह दुख दूषन भागी ॥

भरतकी इस स्थितिको देखकर कौसल्याजी घबरा गयीं और उन्हें गोदमें बिठाकर स्वयं रोने लगीं । भरतजीने कौसल्याको विश्वास दिलानेके लिये ऐसी ऐसी भयानक शपथें खायीं कि जिन्हें सुनकर हृदय करुणा-रसमें बह जाता है । फिर माता बोलीं—

> मम दुःखमिदं पुत्र भूयः समुपजायते ।
> शपथैः शपमानो हि प्राणानुपरुणत्सि मे ॥
> दिष्ट्या न चलितो धर्मादात्मा ते सहलक्ष्मणः ।
> वत्स सत्यप्रतिज्ञो हि सतां लोकानवाप्स्यसि ॥
> इत्युक्त्वा चाङ्कमानीय भरतं भ्रातृवत्सलम् ।
> परिष्वज्य महाबाहुं रुरोद भृशदुःखिता ॥
> (वा० रा० ७५ । ६१ से ६३)

'बेटा ! तुम्हारी इन शपथोंसे मेरे निकलते हुए प्राण तो रुक गये हैं, पर तुम्हारी शपथोंसे—तुम्हें इतना दुःखी देखकर मेरा दुःख और अधिक बढ़ गया है । यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुम्हारा अन्तःकरण धर्मसे विचलित नहीं हुआ । बेटा ! तुम सत्यप्रतिज्ञ हो । तुमको सत्पुरुषोंके लोककी प्राप्ति होगी ।' यों कहकर भ्रातृवत्सल भरतको गोदमें लेकर मैयाने हृदयसे लगा लिया और अत्यन्त दुःखी होकर वे रोने लगीं ।

माता कौसल्याका हृदय विगलित हो गया । भरतके प्रति उनकी स्नेह-ममताका समुद्र उमड़ पड़ा । वे बोलीं—

> राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे । तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु ते प्यारे ॥
> बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी । होइ बारिचर बारि बिरागी ॥
> भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू । तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू ॥
> मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं । सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं ॥
> अस कहि मातु भरतु हियँ लाए । थन पय स्रवहिं नयन जल छाए ॥

कौसल्या माताने भरतको हृदयसे लगा लिया । उनके स्तनोंसे स्नेहामृत—दुग्धकी धारा बहने लगी । नेत्रोंमें बाढ़ आ गयी ।

माताकी आज्ञासे भरतजीके द्वारा दशरथजीकी अन्त्येष्टि— सविधि सम्पन्न हुई । गुरु वसिष्ठने शोक त्यागकर राज्यपद स्वीकार करनेके लिये आदेश दिया । माता कौसल्याने, मन्त्रियोंने, प्रजाने भी उन्हें राज्य ग्रहण करनेकी सम्मति दी । भरतजीके

हृदयकी वेदना तो भरतजी ही जानते थे। वे सुनते रहे और रोते रहे!

अयोध्याका चक्रवर्ती राज्य उनके लिये तनिक भी प्रलोभनका विषय नहीं हो सका। उन्होंने बड़े धैर्य और साहसके साथ सारी प्रतिकूल परिस्थितियोंका सामना किया, बड़ी कड़ी-कड़ी परीक्षाएँ दीं; पर भरतके मनको तनिक-सा भी विचलित करनेमें कोई भी शक्ति सफल नहीं हुई। कोई भी प्रलोभन और भय उन्हें जरा भी डिगा न सका!

कहा जाता है कि कैकेयीके विवाहके समय कैकेयीके पिताके सामने महाराज दशरथ वचन दे चुके थे कि कैकेयीका पुत्र ही राज्यका अधिकारी होगा। मन्थराके उपदेशसे कैकेयीने महाराज दशरथसे वरदान भी प्राप्त कर लिया था—केवल भरतके राज्याभिषेकका ही नहीं, रामके लिये चौदह वर्षके वनवासका, जिससे कि इतनी लम्बी अवधिमें अपने सद्व्यवहार-से भरत प्रजाकी सहानुभूति, स्नेह तथा आत्मीयता प्राप्त कर लें, और चौदह वर्षके बाद रामके लौटनेपर भी प्रजा भरतको ही चाहे। फिर कैकेयीके वरदानमें भी यह बात तो थी ही नहीं कि चौदह वर्षके बाद आकर रामजी भरतसे राज्य ले लेंगे। मन्थराने कैकेयीसे यही कहा था कि तुम 'भरतका राज्य' और 'रामके लिये चौदह वर्षका वनवास' माँग लो।' भरतका राज्य चौदह वर्षके लिये नहीं, रामका वनवास चौदह वर्षके लिये हो और वह इसलिये कि तबतक भरत प्रजाके स्नेह-भाजन हो जायँ और उनका राज्य अडिग हो जाय। मन्थराके शब्द हैं—

तौ च याचस्व भर्तारं भरतस्याभिषेचनम्।
प्रव्राजनं च रामस्य वर्षाणि च चतुर्दश॥
चतुर्दश हि वर्षाणि रामे प्रव्राजिते वनम्।
प्रजाभावगतस्नेहः स्थिरः पुत्रो भविष्यति॥
(वा० रा० २।९।२०-२१)

इस प्रकार भरतकी राज्य-स्वीकृति निर्दोष तथा निर्बाध थी। सभी लोग उसका समर्थन करते थे। परंतु रामप्रेमके मूर्तिमान् स्वरूप भरतने सबका तिरस्कार कर दिया। उन्होंने माता, ननिहाल, प्रजामत, पिताकी आज्ञा, धन-सम्पदा, सुख-सम्पत्ति, राज्यवैभव—सबका त्याग कर दिया। उन्होंने किसी वस्तु, पदार्थ, स्थिति, प्राणी या आत्मीय-स्वजनकी कोई भी परवा नहीं की और अपनेको बिना शर्त रामके चरणोंमें समर्पित कर दिया। धन्य!

सबके द्वारा राज्यके प्रस्ताव तथा अनुरोधको सुनकर भरतजी बड़ी ही विनीत और आर्त वाणीमें बोले—

'गुरु वशिष्ठ महाराजने मुझे सुन्दर उपदेश दिया। प्रजा, मन्त्री आदि सबको भी यही सम्मत है। माता कौसल्याजीने भी उचित समझकर ही आदेश दिया है और अवश्य ही मैं भी उसे सिर चढ़ाकर पूरा करना चाहता हूँ। गुरु, पिता, माता, स्वामी और सुहृद्की बात उसे हितकारी समझकर प्रसन्न मनसे माननी चाहिये। उसके विषयमें उचित-अनुचितका विचार करनेसे धर्मका नाश और पापकी प्राप्ति होती है। आपलोग मेरे भलेके लिये ही मुझे यह सरल सीख दे रहे हैं। परंतु मुझे इससे संतोष नहीं होता। मेरी प्रार्थना यह है कि आप मुझे मेरी योग्यता देखकर ही उपदेश कीजिये। मैं उत्तर दे रहा हूँ, मेरा यह अपराध क्षमा कीजिये। मैं इस समय दुखी हूँ, साधु पुरुष दुखीके दोष-गुणोंकी ओर ध्यान नहीं देते। वे तो उसके दुःखकी ओर देखते हैं।

'पिताजी स्वर्गमें हैं, श्रीसीतारामजी वनमें हैं और मुझे आप राज्य करनेके लिये कह रहे हैं! यह तो बताइये कि इसमें आपने मेरा कल्याण समझा है या अपने किसी बड़े कामके सिद्ध होनेकी आशा की है? मेरा हित तो सीतापति श्रीरामभद्रकी चाकरीमें है, सो उसे माताकी कुटिलताने छीन लिया। मैंने अच्छी तरह सोचकर देख लिया कि दूसरे किसी भी उपायसे मेरा हित नहीं है। शोकका समुदाय यह राज्य श्रीलक्ष्मण, श्रीरामभद्र और श्रीसीताजीके चरणोंको देखे बिना किस गिनतीमें है। जैसे कपड़ोंके बिना गहने बोझ मात्र है, वैराग्यके बिना ब्रह्मविचार व्यर्थ है, रोगी शरीरके लिये भाँति-भाँतिके भोग व्यर्थ हैं, श्रीहरिकी भक्तिके बिना जप और योग व्यर्थ है और जीवके बिना सुन्दर शरीर व्यर्थ है, वैसे ही श्रीरघुनाथजीके बिना मेरा सब कुछ व्यर्थ है। आप लोग मुझे आज्ञा दीजिये—मैं श्रीरामके चरणोंमें जाऊँ। मेरा यही एक निश्चय है। मुझे राजा बनाकर आप जो अपना भला चाहते हैं, सो यह तो आपके स्नेहकी जडतामात्र है।

कैकेई सुअ कुटिल मति राम बिमुख गत लाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोह बस मोहि से अधम कें राज॥
कहउँ साँचु सब सुनि पतिआहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू॥
मोहि राजु हठ देइहहु जबहीं। रसा रसातल जाइहि तबहीं॥
मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनबासू॥

'मैं कैकेयीका बेटा, कुटिल-बुद्धि, रामविमुख और निर्लज्ज हूँ। मुझ-सरीखे अधमके राज्यसे आप मोहके वश होकर ही सुख चाहते हैं।

'मैं सत्य कहता हूँ, आप सब सुनकर विश्वास करें,

धर्मशीलको ही राजा होना चाहिये। आप मुझे हठ करके ज्यों ही राज्य देंगे, त्यों ही यह पृथ्वी पातालमें धँस जायगी। मेरे समान पापोंका घर और कौन होगा, जिसके कारण श्रीसीतारामजीको वनवास हुआ।'

अन्तमें भरतजीने रामके चरणोंमें जानेका दृढ प्रस्ताव किया। भरतकी बात सबको बहुत अच्छी लगी। सबने साथ चलनेकी इच्छा प्रकट की। राजधानीकी रक्षाका समुचित प्रबन्ध करके सब लोगोंको साथ लेकर भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई पैदल ही चल दिये। रास्तेमें रामसखा निषाद-राजने भी भरतकी बड़ी कड़ी परीक्षा ली। पर उनके रामप्रेम-पीयूषसे परिपूर्ण हृदयको देखकर निषाद सदाके लिये उनका चरणानुगत हो गया। वाल्मीकि-रामायणके अनुसार मुनि भरद्वाजने भी पहले संदेह किया था। वहाँ भी भरतको मर्मान्तक पीड़ा हुई और उन्हें कड़ी परीक्षा देनी पड़ी। उनको एक विश्वास था—श्रीरामके स्वभावका। माताकी करतूतका स्मरण होता, तब तो अपनेको अत्यन्त नीच नराधम मानकर दुखी और निराश-से हो जाते; पर श्रीरामका स्वभाव याद आते ही उत्साहसे भर जाते।

मातु मते महुँ मानि मोहि जो कछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं समुझि आपनी ओर॥

फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ॥

इसी बीच एक बात और हो गयी। श्रीरामके अत्यन्त प्रेमी, रामपर अपना एकाधिकार माननेवाले लक्ष्मणजीने दूरसे विशाल सेनाके साथ भरतजीको आते देखा तो राम-प्रेमवश उनका वीर-रस जाग उठा और उन्होंने भरत तथा अपने सगे भाई शत्रुघ्नकी कुटिलता समझकर उनका तिरस्कार करते हुए कहा—'मूढ, विषयी जीव प्रभुता पाकर मोहवश अपने असली रूपको प्रकट कर देते हैं। भरत नीतिनिपुण, साधु और चतुर हैं; प्रभु (रामजी) के चरणोंमें उनका प्रेम भी जग-विख्यात है। वे भरत भी आज रामका प्राप्य राजपद पाकर धर्मकी मर्यादा मिटाकर आ रहे हैं। कुटिलतासे भरे कुबन्धु (खोटे भाई) भरत आज कुसमय देखकर और रामजीको वनमें अकेले जानकर बुरी नीयतसे समाज सजाकर राज्यको निष्कण्टक करनेके लिये यहाँ आये हैं। दोनों भाई इन कुटिलताओंके कारण ही सेना बटोरकर यहाँ पहुँचे हैं। हृदयमें कुटिलता न होती तो इस समय हाथी, घोड़े, रथ किसे सुहाते! पर भरतको ही क्या दोष है। राज्यपद सारे जगत्‌को ही पागल कर देता है। अवश्य ही भरतने एक बात बहुत ही बुरी की कि वे रामको असहाय जानकर उनका निरादर करने चले हैं। पर आज संग्राममें श्रीरामजीका क्रोधपूर्ण मुख देखकर यह भूल भी उनकी समझमें आ जायगी।' इतना कहते-कहते ही लक्ष्मणजी नीतिको भूल गये और रणरसमें मत्त होकर रामदुहाई करते हुए भरत-शत्रुघ्नको मार डालनेकी बात कह बैठे।

आकाशवाणी हुई। लक्ष्मणजीको सचेत किया देवताओंने कि बिना विचारे कुछ भी वे कर न बैठें। इससे लक्ष्मणजी सकुचा गये। लक्ष्मणजी जोशमें थे, उन्होंने अनुचित विचार कर लिया। पर जो कुछ किया, उसमें एकमात्र कारण तो राम-प्रेम ही है। लक्ष्मणके विचार असुन्दर हैं, अतएव उन विचारोंको दूर करना है; पर लक्ष्मणजीके प्रेमका तो आदर ही करना है। अतएव श्रीसीता-रामजीने सकुचे हुए लक्ष्मणजीका आदरसहित सम्मान किया—

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीयँ सादर सनमाने॥

फिर रामजीने कहा—

'प्रिय लक्ष्मण! तुमने बड़ी सुन्दर नीति कही। यह सत्य है भैया! राज्यमद सबसे कठिन मद है। जिन्होंने सत्सङ्ग नहीं किया, वे राजा राज्यमदरूपी मदिराका जरा-सा पान करते ही मतवाले हो जाते हैं। पर लक्ष्मण! सुनो, भरत-सरीखा उत्तम पुरुष न तो ब्रह्माकी सृष्टिमें कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है।

भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।
कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ॥

'अयोध्याके राज्यकी तो बात ही क्या है, ब्रह्मा, विष्णु और शंकरका पद पाकर भी भरतको राज्यमद नहीं हो सकता। क्या कभी काँजीकी बूँदोंसे क्षीरसमुद्र नष्ट हो सकता है।

'अन्धकार चाहे मध्याह्नके सूर्यको निगल जाय, आकाश चाहे बादलोंमें समाकर मिल जाय। गौके खुर जितने जलमें अगस्त्यजी चाहे डूब जायँ और पृथ्वी चाहे अपनी क्षमा (सहनशीलता) को छोड़ दे, मच्छरकी फूँकसे चाहे सुमेरु उड़ जाय, पर भैया! भरतको राज्य मद कभी नहीं हो सकता। भैया लक्ष्मण! मैं तुम्हारी शपथ और पिताजीकी सौगंध खाकर कहता हूँ—भरतके समान पवित्र और उत्तम भाई संसारमें नहीं है।'

भगवान्‌की वाणीसे लक्ष्मणजीका समाधान हो गया। देवता प्रशंसा करने लगे। अस्तु—

जटा-वल्कलधारी भरतजी रामजीके समीप पहुँचे। उनके प्रेमको देखकर सभी चकित हैं। वनके पशु-पक्षी और जड वृक्षादि भी प्रेममें निमग्न हैं। देव-ऋषि-मुनि सभी लोग भरतकी प्रशंसा करने लगे—

प्रेम अमिअ मंदरु बिरहु भरत पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपा सिंधु रघुबीर॥

भरतजीके नेत्रोंसे करुणा तथा पश्चात्तापके गरम-गरम आँसुओंकी धारा बह रही है, गद्‌गद कण्ठ है, देह दुबली हो रही है; वे दीन, हीन, मलिन तथा दुःखसे अत्यन्त पीड़ित हैं। अपनेको महान् अपराधी, पतित मानते हुए, काँपते हुए रामके चरणोंके पास पहुँचते हैं।

दुःखाभितप्तो भरतो राजपुत्रो महाबलः।
उक्त्वार्येति सकृद् दीनं पुनर्नोवाच किंचन॥
(९९। ३८)

जटिलं चीरवसनं प्राञ्जलिं पतितं भुवि।
ददर्श रामो दुर्दर्शं युगान्ते भास्करं यथा॥
(१००। १)

कथंचिदभिविज्ञाय विवर्णवदनं कृशम्।
भ्रातरं भरतं रामः परिजग्राह पाणिना॥
(१००। २)

दुःखसे संतप्त महाबली राजकुमार भरत 'हा आर्य!' इतना ही कह सके, फिर उनके मुँहसे शब्द नहीं निकला और जटा तथा वल्कल वस्त्र धारण किये श्रीभरतजी हाथ जोड़कर मूर्छित हो पृथ्वीपर श्रीरामके चरणोंमें गिर पड़े। रामजीने देखनेके अयोग्य प्रलयकालीन सूर्यके समान भरतजीको देखा। उनका मुख विवर्ण हो रहा था। वे अत्यन्त कृश हो रहे थे। श्रीरामने किसी तरह उन्हें पहचाना और अपने हाथों उठाया।

श्रीमानसके अनुसार 'हा नाथ, रक्षा कीजिये!' कहते हुए भरतजी जब पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिर पड़े, तब लक्ष्मणजीने कहा—'श्रीरघुनाथजी! भरतजी प्रणाम कर रहे हैं।' यह सुनते श्रीरघुनाथजी प्रेममें अधीर होकर उठे, उनका वस्त्र कहीं तरकस कहीं, धनुष कहीं और बाण कहीं गिरा। कृपानिधान श्रीरामजीने उनको जबरदस्ती उठाकर हृदयसे लगा लिया। भरतजी और श्रीरामजीकी इस मिलनकी विलक्षण रीतिको देखकर सब अपनी सुध-बुध भूल गये—

उठे रामु सुनि पेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥
बरबस लिए उठाइ उर लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरा सबहि अपान॥

महाराज दशरथकी मृत्युके समाचारसे सबको दुःख हुआ। रामजीने उचित क्रिया की। इसके बाद भरतजीका जो कुछ लीला-प्रसङ्ग है, वह इतने महत्त्वका है कि जगत्‌में उसकी कहीं तुलना नहीं है। रामचरितमानसके अयोध्याकाण्ड-में उसे पढ़ना चाहिये। श्रीरामजी अपनेको भरतके हाथोंमें समर्पण कर देते हैं और भरत तो सर्वथा समर्पित ही हैं। अन्तमें सेवककी रुचि रखनेवाले स्वामीकी ही रुचि रखना भरतजी पसंद करते हैं। पर रामजी भाँति-भाँतिसे भरतजीके महत्त्वका वर्णन करते अघाते ही नहीं।

भरतने कहा था—"मैं 'अधम' हूँ, 'कुटिलमति' हूँ 'कुटिला कैकेयीका पुत्र हूँ' 'पापनिवास' हूँ। मुझे राज्य दोगे तो धरती पातालमें धँस जायगी—'रसा रसातल जाइहि।'" श्रीरामजी सहज ही श्रीभरतजीसे कहते हैं—

तीनि काल तिभुअन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरें॥
उर आनत तुम्हपर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥
दोसु देहिं जननिहि जड तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥
मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।
लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार॥
कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी॥

'भैया भरत! (तुम अधम नहीं हो;) मेरे मतमें तो भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों कालों और स्वर्ग, भूमि, पाताल—तीनों लोकोंके समस्त श्रेष्ठ पुण्यात्मा पुरुष तुमसे नीचे हैं।

'(तुम कुटिलमति नहीं हो, बल्कि) हृदयमें भी तुमपर कुटिलताका आरोप करनेवालेके लोक तथा परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। (माता कैकेयी भी कुटिला नहीं है;) माता कैकेयीको तो वे ही मूर्ख दोष देते हैं, जिन्होंने गुरु और साधुओंकी सभाका सेवन नहीं किया है।

'भरत! (तुम पापनिवास नहीं हो; तुम तो इतने महान् पुण्य-मय हो कि) तुम्हारे नामका स्मरण करते ही सारे पाप, प्रपञ्च (अज्ञान) और समस्त अमङ्गलोंके समूह मिट जायँगे तथा इस लोकमें सुन्दर यश और परलोकमें सुख प्राप्त होगा।

'भरत! (तुमने कहा था धरती पातालमें धँस जायगी; पर) मैं स्वभावसे ही सत्य कहता हूँ, शिवजी साक्षी हैं, यह पृथ्वी तुम्हारी ही रक्खी रह रही है।'

अन्तमें भरतजी महाराज जो स्वर्ण-पादुका तैयार करवा-

कर अपने साथ ले गये थे, उन्हें भगवान् श्रीरामकी सेवामें उपस्थित करके बोले—

> अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते ।
> एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेमं विधास्यतः ॥
> सोऽधिरुह्य नरव्याघ्रः पादुके व्यवमुच्य च ।
> प्रायच्छत् सुमहातेजा भरताय महात्मने ॥
> (वा० रा० २ । ११२ । २१-२२)

'आर्य ! आप स्वर्णभूषित इन पादुकाओंको पहन लीजिये । ये सबका योगक्षेम वहन करेंगी । तब नरश्रेष्ठ महातेजस्वी भगवान् श्रीरामजीने उन पादुकाओंको एक बार पहन लिया, फिर निकालकर महात्मा भरतको दे दिया ।'

भरतने पादुकाओंको प्रणाम किया और श्रीरामसे कहा— 'मैं चौदह वर्षतक अरण्यवासी तपस्वीके सदृश जटा-वल्कल धारण करके नगरके बाहर रहूँगा और फल-मूलका आहार करता हुआ आपकी प्रतीक्षा करता रहूँगा । इन पादुकाओं-को राजसिंहासनपर पधराकर इन्हींके लिये चौदह वर्षतक सेवककी तरह मैं राजकाज देखता रहूँगा । चौदहवें वर्षका अन्तिम दिन बीतनेके बाद पहले ही दिन आपके दर्शन नहीं होंगे तो मैं प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगा ।'

> न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।
> (वा० रा० २ । ११२ । २५)

भरतने उन श्रेष्ठ पादुकाओंको लेकर अपने सिरपर रक्खा । श्रीरामकी प्रदक्षिणा की और उनको हाथीपर पधराया । अयोध्या पहुँचकर लोगोंसे कहा कि 'इनपर छत्र धारण करो । ये भगवान् श्रीरामके प्रतिनिधि हैं । मेरे बड़े भाई भगवान् रामने प्रेमवश मुझे यह धरोहर दी है । जबतक वे लौटकर नहीं पधारेंगे, तबतक मैं इनकी रक्षा करूँगा । शीघ्र ही श्रीरामजी-के चरणोंमें इन पादुकाओंको पहनाकर मैं उनके पादुकायुक्त चरणोंके दर्शन करूँगा । जिस दिन ये पादुकाएँ और अयोध्याका राज्य श्रीरामको वापस लौटा दूँगा, उसी दिन अपनेको इस पापकलङ्कसे मुक्त समझूँगा ।'

फिर माता कौसल्या और गुरु वशिष्ठजीके चरणोंमें प्रणाम करके प्रभुकी चरणपादुकाओंकी आज्ञा पाकर धर्मधुरीण परम धीर भरतजीने नन्दिग्राममें कुटी बनायी और उसमें वे रहने लगे । उनकी रहनी-करनीका बड़ा सुन्दर चित्र गोस्वामी तुलसीदासजीने खींचा है, उसे उन्हींकी भाषामें पढ़कर देखिये—

> जटाजूट सिर मुनिपट धारी । महि खनि कुस साँथरी सँवारी ॥
> असन बसन बासन ब्रत नेमा । करत कठिन रिषि धरम सप्रेमा ॥
> भूषन बसन भोग-सुख भूरी । मन तन बचन तजे तिन तूरी ॥
> अवध राजु सुर राजु सिहाई । दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई ॥
> तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा । चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
> रमा बिलासु राम अनुरागी । तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥
>
> राम पेम भाजन भरत बड़े न एहिं करतूति ।
> चातक हंस सराहिअत टेक बिबेक बिभूति ॥
>
> देह दिनहुँ दिन दूबरि होई । घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई ॥
> नित नव राम प्रेम पनु पीना । बढ़त धरम दलु मनु न मलीना ॥
> जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे । बिलसत बेतस बनज बिकासे ॥
> सम दम संजम नियम उपासा । नखत भरत हिय बिमल अकासा ॥
> ध्रुव बिस्वासु अवधि राका सी । स्वामि सुरति सुरबीथि बिकासी ॥
> राम पेम बिधु अचल अदोषा । सहित समाज सोह नित चोखा ॥
> भरत रहनि समुझनि करतूती । भगति बिरति गुन बिमल बिभूती ॥
> बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं । सेस गनेस गिरा गमु नाहीं ॥

सिरपर जटाजूट और शरीरमें मुनियोंके (वल्कल) वस्त्र धारणकर, पृथ्वीको खोदकर उसके अंदर कुशाकी आसनी बिछा ली । भोजन, वस्त्र, बरतन, व्रत, नियम—सभी बातोंमें वे ऋषियोंके कठिन धर्मका प्रेमसे आचरण करने लगे । वस्त्र, आभूषण और विशाल भोगसुखोंको मन, तन और वचनसे तृण तोड़कर (प्रतिज्ञा करके) त्याग दिया । जिस अयोध्याके राज्यको देवराज इन्द्र सिहाते थे और दशरथजीकी सम्पत्ति सुनकर कुबेर भी लजा जाते थे, उसी अयोध्यापुरीमें भरतजी अनासक्त होकर इस प्रकार निवास कर रहे हैं, जैसे चम्पाके बगीचेमें भ्रमर । श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमी बड़भागी पुरुष लक्ष्मीके विलास (भोगैश्वर्य) को वमनकी भाँति त्याग देते हैं । (फिर उसकी ओर ताकते ही नहीं) फिर भरतजी तो श्रीरामचन्द्रजीके प्रेमपात्र हैं । वे इस (भोगैश्वर्यत्याग रूप) करनेसे बड़े नहीं हुए । उनके लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है । (स्वाति-नक्षत्र जलके सिवा अन्य जल न पीनेकी) टेकसे चातकको और नीर-क्षीर-विवेककी विभूतिसे हंसकी भी सराहना होती है ।

भरतजीका शरीर दिनोंदिन दुबला होता जाता है । तेज घट रहा है । बल तथा मुखछवि (मुखकी शोभा) वैसी ही बनी हुई है । रामप्रेमका प्रण नित्य नया और पुष्ट होता है । धर्मका दल बढ़ता है और मन उदास नहीं है । जैसे शरद् ऋतुके प्रकाशसे जल घटता है; किंतु बेत शोभा पाते हैं और कमल विकसित होते हैं । शम, दम, संयम, नियम और उपवास आदि

भरतजीके हृदयरूपी निर्मल आकाशके नक्षत्र हैं। (उनके जीवनमें यही सब चमक रहे हैं)। विश्वास ही उस आकाशका ध्रुव तारा है, चौदह वर्षकी अवधि पूर्णिमाके समान है और स्वामी श्रीरामजीकी स्मृति आकाशगङ्गाके समान प्रकाशित है। रामप्रेम ही अचल और कलङ्करहित चन्द्रमा है। वह अपने समाज (संयम-शम-दमादि) सहित नित्य सुन्दर सुशोभित है। भरतजीकी रहनी, समझ, करनी, भक्ति, वैराग्य, निर्मल गुण और ऐश्वर्यका वर्णन करनेमें सभी सुकवि सकुचाते हैं; क्योंकि वहाँ (औरोंकी तो बात ही क्या) स्वयं शेष, गणेश और सरस्वतीजीकी भी पहुँच नहीं है।

वे प्रतिदिन पादुकाओंका पूजन करते हैं। हृदयमें प्रेम समाता नहीं। पादुकाओंसे आज्ञा माँग-माँगकर वे सब प्रकारके राजकाज करते हैं। शरीर पुलकित है, हृदयमें श्रीसीतारामजी हैं। जीभ राम-राम जप रही है। नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक रहे हैं। श्रीरामजी, सीताजी और लक्ष्मणजी तो वनमें बसते हैं; पर भरतजी घरमें ही रहकर तपके द्वारा तनको कस रहे हैं।

चौदह वर्ष लगातार यही क्रम चला। अन्तके दिन प्रभुके द्वारा प्रेरित श्रीहनुमान्‌जीने भी ब्राह्मण-वेषमें आकर महात्मा भरतजीकी यही प्रेममयी झाँकी देखी—

बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात॥

धन्य भरतजी, धन्य आपका त्याग, धन्य आदर्श, धन्य राम-प्रेम। मूर्तिमान् सत्, मूर्तिमान् सदाचरण, मूर्तिमान् सद्व्यवहार और मूर्तिमान् प्रेम।

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनिमन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को॥
दुख दाह दारिद दंभ दूषन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसीसे सठन्हि हठि राम सनमुख करत को॥

भरतके अति पावन चरित्रके श्रवणका अवश्यम्भावी परम फल भी तुलसीदास बताते हैं—

भरत चरित करि नेमु तुलसी जे सादर सुनहिं।
सीय राम पद प्रेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥
जय जय जय भरत भैयाकी जय जय जय!

सत्कथाकी महिमा

(लेखक—श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

'सत्' का अर्थ है परमात्मा। उस परमात्माको जाननेवाले जो महापुरुष हैं, उनको 'सत्पुरुष' कहते हैं और उस परमात्माकी प्राप्तिका जो उपाय है, उसे 'सत्-मार्ग' कहा जाता है। 'सत्' शब्दका कहाँ-कहाँ प्रयोग होता है—इसका निरूपण करते हुए स्वयं भगवान्‌ने कहा है—

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥
(गीता १७। २३)

'ॐ, तत्, सत्—ऐसे यह तीन प्रकारका सच्चिदानन्दघन ब्रह्मका नाम कहा गया है, उसीसे सृष्टिके आदिकालमें ब्राह्मण और वेद तथा यज्ञादि रचे गये।'

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥
(गीता १७। २६)

'सत्—इस प्रकार यह परमात्माका नाम सत्य भावमें और श्रेष्ठ भावमें प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्थ! उत्तम कर्ममें भी 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है।'

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥
(गीता १७। २७)

'तथा यज्ञ, तप और दानमें जो स्थिति (निष्ठा) है, वह भी 'सत्' इस प्रकार कही जाती है और उस परमात्माके लिये किया हुआ कर्म निश्चयपूर्वक सत्—ऐसे कहा जाता है।'

इससे यह निष्कर्ष निकला कि 'सत्' शब्द एक तो परमात्माका वाचक है। दूसरे, भाव (सत्ता) का; तीसरे, श्रेष्ठ यानी साधु भावका अर्थात् हृदयके क्षमा, दया आदि उत्तम गुणोंका; चौथे, उत्तम आचरणोंका; पाँचवे, उत्तम कर्मोंमें जो स्थिति (निष्ठा) है उसका एव छठे, भगवदर्थ (निष्काम) कर्मका वाचक है। उपर्युक्त छहोंमेंसे किसीकी भी कथा—वर्णन जिसमें हो, वह 'सत्कथा' है।

सबसे बढ़कर एकमात्र भगवान् हैं। इसलिये हमलोगोंको भगवान्‌की प्राप्ति जिस प्रकार शीघ्रातिशीघ्र हो, वही चेष्टा करनी चाहिये। भगवान्‌की प्राप्तिका सर्वोत्तम उपाय है—भगवान्‌के वचनोंका पालन करना। गीता भगवान्‌के साक्षात् वचन हैं। अतः गीताके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये।

श्रीभगवान् और उनके वचनोंकी महिमा अपार है। उनका पार शेष, महेश, गणेश और दिनेश आदि भी नहीं पा सके। यदि उनका पार पा जाय तब तो उन्हें अपार कैसे कहा जा सकता है। श्रीरसखानजीने क्या ही सुन्दर कहा है—

सेष महेस गनेस दिनेस, सुरेसहु जाहिं निरंतर गावैं।
जाहिं अनादि अनंत अखंड, अछेद अभेद सुबेद बतावैं॥
नारद-से सुक-व्यास रटैं, पचि हारे तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं॥

ऐसा होते हुए भी शास्त्रोंमें भगवान्‌की महिमाका कथन ऋषि-महात्माओंने किया ही है। गीतामें भी दसवें अध्यायके १२वें श्लोकमें अर्जुन कहते हैं—

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्॥

'आप परम ब्रह्म, परम धाम और परम पवित्र हैं; क्योंकि आपको सब ऋषिगण सनातन, दिव्य पुरुष एवं देवोंके भी आदिदेव, अजन्मा और सर्वव्यापी कहते हैं।'

आगे ग्यारहवें अध्यायमें ३६वेंसे ४६वें श्लोक तक अर्जुनने भगवान्‌की महिमा कुछ और विस्तारसे गायी है। इसी तरह अन्य ऋषियोंने भी शास्त्रोंमें स्थान-स्थानपर भगवान्‌की अपार महिमाका वर्णन किया है।

इसके अतिरिक्त, भगवान्‌की प्राप्तिके साधनोंकी महिमाका भी जगह-जगह वर्णन किया गया है। स्वयं भगवान्‌ने ही गीतामें कहा है—

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥
(गीता ९।१)

'तुझ दोषदृष्टिरहित भक्तके लिये इस परम गोपनीय विज्ञानसहित ज्ञानको पुनः भलीभाँति कहूँगा, जिसको जानकर तू दुःखरूप संसारसे मुक्त हो जायगा।'

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥
(गीता ९।२)

'यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओंका राजा, सब गोपनीयोंका राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त, साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है।'

इतना होनेपर भी जो लोगोंकी भगवत्प्राप्तिके साधनमें तत्परता नहीं होती, इसका कारण भगवान् और भगवान्‌के वचनोंमें श्रद्धाका अभाव ही है। इस बातको स्वयं भगवान् भी कहते हैं—

अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परंतप।
अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि॥
(गीता ९।३)

'हे परंतप! इस उपर्युक्त धर्ममें श्रद्धारहित पुरुष मुझको न प्राप्त होकर मृत्युरूप संसार-चक्रमें भ्रमण करते रहते हैं।'

श्रद्धाका तात्पर्य है—भगवान्, महात्मा, शास्त्र और परलोकमें आदरपूर्वक प्रत्यक्षकी भाँति विश्वास। वह विश्वास होता है—अन्तःकरणकी शुद्धिसे। अन्तःकरणकी शुद्धि होती है साधनसे और साधन होता है विश्वाससे। इस प्रकार ये सभी परस्पर एक-दूसरेके सहायक हैं। इसलिये ईश्वर और महात्मा पुरुषोंके वचनोंपर परम श्रद्धा और विश्वास करके हमलोगोंको तत्परताके साथ साधनमें लग जाना चाहिये।

इसके लिये हमें सर्वप्रथम यह निश्चय करना होगा कि हमारा यह कार्य इस मनुष्य शरीरमें ही हो सकता है। जो मनुष्य-शरीर प्राणियोंके लिये बहुत ही दुर्लभ है, वह हमें वर्तमानमें अनायास ही प्राप्त है। ऐसे अवसरको हमें अपने हाथसे नहीं जाने देना चाहिये। मृत्युका कोई भरोसा नहीं, न मालूम कब आकर प्राप्त हो जाय। अतः हमें पहलेसे ही सावधान हो जाना चाहिये। क्योंकि वर्तमानमें जो हमारी अन्तःकरणकी पवित्रता, श्रद्धा, निष्ठा, स्थिति है, वही उस समय काम आ सकती है। इसलिये हमें अपनी स्थिति ऊँचे-से-ऊँचे स्तरकी शीघ्रातिशीघ्र बना लेनी चाहिये। भक्ति, ज्ञान, योग आदि जितने भी परमात्माकी प्राप्तिके साधन बताये गये हैं, उनसे अन्तःकरणकी शुद्धि होती है और अन्तःकरणके अनुसार ही श्रद्धा होती है। भगवान् कहते हैं—

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥
(गीता १७।३)

'हे भारत! सभी मनुष्योंकी श्रद्धा उनके अन्तःकरणके अनुरूप होती है। यह पुरुष श्रद्धामय है, इसलिये जो पुरुष जैसी श्रद्धावाला है, वह स्वयं भी वही है।'

श्रद्धासे ही परमात्मविषयक ज्ञान उत्पन्न होता है, उसीसे असली परम शान्ति मिलती है। श्रद्धा होनेपर साधनमें तत्परताका होना अनिवार्य है। हमारी जितनी श्रद्धा होगी,

हमारा साधन भी उतना ही तेज होता चला जायगा । इसलिये हमारा ईश्वर और महापुरुषोंमें श्रद्धा-विश्वास हो, ऐसा प्रयत्न करना परम आवश्यक है ।

ईश्वर और महापुरुषोंका एक तो लौकिक प्रभाव होता है और दूसरा अलौकिक । जैसे भगवान् श्रीकृष्णजीने अनेकों राक्षसोंको मार डाला और गोवर्धन पर्वतको धारण कर लिया; इसी प्रकार जैसे श्रीरामचन्द्रजीने अनेकों राक्षसोंको मार डाला और समुद्रपर पुल बाँध दिया । यह उनका लौकिक प्रभाव है । श्रीकृष्णजीने ग्वाल-बाल और बछड़ोंके रूपमें परिणत होकर उनकी माताओं और गायोंका उद्धार कर दिया एवं श्रीरामचन्द्रजीने वनवाससे लौटकर अयोध्यामें प्रवेश करते समय एक साथ अनेक रूप धारण करके सबसे मिलकर उनका उद्धार किया—यह उनका अलौकिक प्रभाव है ।

इसी प्रकार महात्माओंमें भी ये दोनों होते हैं । जैसे मूक चाण्डाल आदिका मकान आकाशमें ही झूला करता था और वे गुप्त घटनाको भी जान लेते थे—यह उनका लौकिक प्रभाव है । उनके परलोक सिधारनेके समय उनके माता-पिता और उनके घरमें रहनेवाले जीव-जन्तु भी दिव्य रूप धारण करके उनके साथ परम धामको चले गये—यह उनका अलौकिक प्रभाव है । इसी तरह श्रीवसिष्ठजीका विश्वामित्र-जीको युद्धमें परास्त कर देना लौकिक प्रभाव है और उनको ब्रह्मर्षि बना देना अलौकिक प्रभाव है । श्रीभरद्वाजजीमें जो सिद्धियाँ थीं वह उनका लौकिक प्रभाव था और उनमें जो कल्याण करनेकी शक्ति थी, वह उनका अलौकिक प्रभाव था ।

भाव यह कि आत्माका उद्धार करनेवाला महात्माओंका जो प्रभाव है, वह तो अलौकिक है और जो संसारमें सिद्धि, चमत्कार आदिका प्रकट होना है, वह लौकिक प्रभाव है ।

इन लौकिक और अलौकिक दोनों ही प्रकारके प्रभावोंका प्राकट्य कहीं तो श्रद्धा और प्रेमसे होता है और कहीं बिना श्रद्धाके उनकी कृपासे ही हो जाता है । जैसे कौरवोंकी सभामें और उत्तङ्क ऋषिको भगवान्‌ने अपना विराट् स्वरूप दिखलाया । उसमें श्रद्धाकी प्रधानता नहीं थी, भगवान्‌ने स्वयं कृपा करके अपनी इच्छासे दिखाया । किंतु ध्रुव, प्रह्लाद और अर्जुन आदि भक्तोंको भगवान्‌ने जो अपना स्वरूप दिखाया, उसमें उनके प्रेम और श्रद्धाकी प्रधानता थी ।

इसी प्रकार संत-महात्माओंके प्रभावका प्राकट्य भी कहीं तो श्रद्धापूर्वक होता है और कहीं बिना श्रद्धाके स्वाभाविक हो जाता है । जैसे शास्त्रोंमें ध्रुव और प्रह्लाद आदिके माता-पिताके कल्याणकी बात आती है । इसमें श्रद्धाका सम्बन्ध नहीं है, यह उन महात्माओंके प्रभावका स्वाभाविक परिणाम है ।

इसके अतिरिक्त, श्रीनारदपुराणमें एक कथा आती है । राजा बाहुके मर जानेपर उनकी पत्नीने उसी वनमें महात्मा और्व मुनिके देखते-देखते ही अपने पतिके शवका दाह-संस्कार किया । वहाँ कहा है कि और्व मुनिके उपस्थित रहनेसे राजा बाहु तेजसे प्रकाशित होते हुए चितासे निकले और श्रेष्ठ विमानपर बैठकर तथा और्व मुनिको प्रणाम करके परम धामको चले गये । वहाँ महापुरुषोंकी महिमाका वर्णन करते हुए मुनीश्वर श्रीसनकजीने कहा है—

> महापातकयुक्ता वा युक्ता वा चोपपातकैः ।
> परं पदं प्रयान्त्येव महद्भिरवलोकिताः ॥
> कलेवरं वा तद्भस्म तद्धूमं वापि सत्तम ।
> यदि पश्यति पुण्यात्मा स प्रयाति परां गतिम् ॥
>
> (नारद० पूर्व० प्रथम० ७ । ७४-७५)

'सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ नारद ! जिनपर अन्तकालमें महापुरुषों-की दृष्टि पड़ जाती है, वे महापातक या उपपातकसे युक्त होनेपर भी अवश्य परम पदको प्राप्त हो जाते हैं । महात्मा पुरुष यदि अन्तकालमें किसीके मृत शरीरको या शरीरके भस्मको अथवा उसके धुएँको भी देख लें तो वह परम पदको प्राप्त हो जाता है ।'

यह है महापुरुषोंका स्वाभाविक अलौकिक प्रभाव !

शास्त्रोंमें उच्चकोटिके अधिकारी महापुरुषोंके दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप आदिसे जो अध्यात्मविषयक विशेष लाभ मिलनेकी बातें आती हैं, वे सब बातें अधिकांशमें श्रद्धापर ही निर्भर करती हैं । अतएव हमें श्रद्धाकी वृद्धिके लिये श्रद्धालु साधकोंका और महात्मा पुरुषोंका सङ्ग करना चाहिये । उनका सङ्ग करके यदि हम उनकी कही बातें मानकर चलें तो हमें परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र-से-शीघ्र हो सकती है । गीतामें जहाँ भगवान्‌ने अपनी प्राप्तिके लिये ध्यानयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग आदि अनेक प्रकारके साधन बतलाये हैं, वहाँ उनमे एक साधन यह भी बतलाया है कि महापुरुषोंके वचनोंके अनुसार अपना जीवन बनाना ।

श्रीभगवान् कहते हैं—

> ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
> अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे ॥

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥
(गीता १३ । २४-२५)

'उस परमात्माको कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे ध्यानके द्वारा हृदयमें देखते हैं, अन्य कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा और दूसरे कितने ही कर्मयोगके द्वारा देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं । परंतु दूसरे कई एक जो उपर्युक्त साधनोंको नहीं जानते, वे दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले महापुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको निःसंदेह तर जाते हैं ।'

श्रीतुलसीदासजीने भी सत्पुरुषोंके सङ्गकी बड़ी भारी महिमा गायी है—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥
बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग ॥
एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध ।
तुलसी संगति साधु की कटै कोटि अपराध ॥

और भी कहते हैं—

मति कीरति गति भूति भलाई । जब जेहिं जतन जहाँ जेहि पाई ॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ । लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥
बिनु सतसंग बिबेक न होई । राम कृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसंगत मुद मंगल मूला । सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥
सठ सुधरहिं सतसंगति पाई । पारस परस कुधातु सुहाई ॥

यहाँ 'सत्सङ्ग'का तात्पर्य है—महापुरुषोंका सङ्ग करके उनके कथनानुसार अपने जीवनको बनाना । जैसे गीतामें बताया कि—'श्रुत्वान्येभ्य उपासते'—'दूसरोंसे अर्थात् महापुरुषोंसे सुनकर तदनुसार उपासना करते हैं, वे भी तर जाते हैं ।' भगवान् श्रीरामने भी कहा है—

सो सेवक प्रियतम मम सोई । मम अनुसासन मानइ जोई ॥

अर्जुन भगवान् श्रीकृष्णका अत्यन्त प्रिय भक्त था । भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे पूछा कि 'मैंने जो तुम्हें गीताका उपदेश दिया, उसे तुमने ध्यानपूर्वक सुना कि नहीं और तुम्हारा मोह नाश हुआ कि नहीं ।' इसका भी अभिप्राय यही था कि मेरी बातको सुनकर तुमने उसको धारण किया या नहीं । इसके उत्तरमें अर्जुनने यही कहा—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥
(गीता १८ । ७३)

'अच्युत ! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मैंने स्मृति प्राप्त कर ली है, अब मैं संशयरहित होकर स्थित हूँ; अतः आपकी आज्ञाका पालन करूँगा ।'

इसमें अर्जुनने खास बात यही कही है कि आपकी कृपासे मेरा मोह नाश हो गया और मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा ।

इससे सिद्ध हुआ कि ईश्वर, महापुरुष और शास्त्रोंके वचनोंका पालन करना ही परमात्माकी प्राप्तिका सर्वोत्तम उपाय है ।

हमलोग गीतादि शास्त्रोंको पढ़ते हैं, सुनते हैं, मनन करते हैं और कथन भी करते हैं; किंतु धारण किये बिना उनसे होनेवाला विशेष लाभ नहीं हो पाता । इसी प्रकार हम वर्षोंसे सत्सङ्ग करते हैं; पर महापुरुषोंकी बातोंको काममें नहीं लाते; इसी कारण विशेष लाभ नहीं होता । इसलिये हमें शास्त्रों और महापुरुषोंकी बातोंको सुनकर और उनमें प्रत्यक्षकी भाँति अतिशय विश्वास करके काममें लानेके लिये तत्पर होना चाहिये ।

वास्तवमें भगवान् तो सबको सदा प्राप्त ही हैं; क्योंकि उनके और हमारे बीचमें देश-कालका व्यवधान नहीं है; अतः देश-काल बाधक नहीं हैं । भगवान् सभी देश और सभी कालमें सदा ही मौजूद हैं; किंतु हमें इस बातपर श्रद्धा नहीं है, हम इसे मानते नहीं; इसीसे हम वञ्चित हो रहे हैं । इसलिये हमें भगवान्पर दृढ़ विश्वास करना चाहिये । भगवान्ने स्वयं बतलाया है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥
(गीता ४ । ३९)

'जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्ब—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है ।'

हमें भगवान्के उपर्युक्त वचनोंपर विशेष ध्यान देना चाहिये; क्योंकि प्रधानतया एक अश्रद्धाके कारण ही हम संसारके इन नाशवान् क्षणभङ्गुर भोग और पदार्थोंमें राग करके फँस रहे हैं और इस प्रकार अपने [illegible]

नष्ट कर रहे हैं। विषयभोगोंकी क्षणभङ्गुरताके विषयमें भगवान् कहते हैं—

> नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
> उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥
> (गीता २। १६)

'असत् वस्तुकी तो सत्ता नहीं है और सत्का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनोंका ही तत्त्व तत्त्वदर्शी पुरुषोंद्वारा देखा गया है अर्थात् यही तत्त्वदर्शी पुरुषोंका निर्णय है।'

भाव यह कि जो सत् वस्तु है, उसका तो कभी अभाव होता नहीं और मिथ्या वस्तु कभी कायम नहीं रहती। हम देखते हैं कि संसारके भोग और पदार्थ तथा हमारा यह शरीर भी हमारे देखते-देखते क्षण-क्षणमें विनाश हो रहा है। फिर भी हम उनको सत् मानकर और उनपर विश्वास करके उनको ही पकड़े हुए हैं। यह हमारी बड़ी भारी भूल है। हमें अपनी इस भूलको शीघ्र दूर करना चाहिये और क्षणभङ्गुर नाशवान् जड पदार्थोंके साथ हमारा जो सम्बन्ध है और उनमें जो हमारी आसक्ति है, उसको असत् समझकर उसका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। इन क्षणभङ्गुर नाशवान् जड वस्तुओंके साथ माने हुए सम्बन्ध और आसक्तिका त्याग हो जानेपर सत् वस्तुकी प्राप्ति तो स्वतः है ही।

हमें इस बातकी खोज करनी चाहिये कि परमात्माकी प्राप्तिमें विलम्ब क्यों हो रहा है। सोचनेपर पता लगता है कि यह विलम्ब हमारी असावधानीके कारण ही हो रहा है। वास्तवमें परमात्माकी प्राप्ति तो क्षणमात्रमें हो सकती है। जैसे बिजली फिट हो जाने और शक्ति-केन्द्रसे उसका सम्पर्क हो जानेपर स्विच दबानेके साथ ही प्रकाश हो जाता है, इसी प्रकार परमात्मापर दृढ़ विश्वास कर लेनेपर परमात्माकी प्राप्ति क्षणमात्रमें हो सकती है। बिजलीके तारमें तो करेंट दिया जाता है पर परमात्मा तो सब जगह पहलेसे ही व्यापक है। आवश्यकता है इस बातपर दृढ़ विश्वास होनेकी।

हम लोगोंको विचार करना चाहिये कि जब भगवान् हैं, मिलते हैं, बहुतोंको मिले हैं और हमें भी मिल सकते हैं तथा वे सब जगह सदा ही विद्यमान हैं तो फिर हम उनसे वञ्चित क्यों रह रहे हैं। विचार करनेपर इसका कारण हमलोगोंकी असावधानी ही सिद्ध होता है। इस असावधानीको हम स्वयं ही दूर कर सकते हैं। इसके लिये दूसरेकी आशा करना भूल है। यदि परमात्माकी प्राप्तिके साधनमें थोड़ी भी कमी रह जायगी तो हमें फिर जन्म लेना पड़ेगा और वर्तमानकी भाँति ही महान् क्लेश भोगना पड़ेगा।

अतएव महान् पुरुषों और शास्त्रोंके वचनोंमें विश्वास करके हमें उनसे विशेष लाभ उठाना चाहिये। हमे उचित है कि परमात्माके दिये हुए तन, मन, धन, ऐश्वर्य, इन्द्रिय, बुद्धि, बल, विवेकका हम सदुपयोग करें। कभी दुरुपयोग न करें। इनको सर्वथा परमात्माकी प्राप्तिके काममें लगाना ही इनका सदुपयोग करना है और परमात्माकी प्राप्तिके साधनके अतिरिक्त अन्य किसी काममें लगाना ही इनका दुरुपयोग करना है। हमें काम, भय, लोभ, मोहके वश होकर या किसीके प्रभावमें आकर एक क्षण भी अपना अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहिये। इन क्षणभङ्गुर नाशवान् पदार्थोंमें अपने तन, मन और बुद्धिको लगाना ही समयको व्यर्थ नष्ट करना है और यही असावधानी है। ईश्वरकी कृपासे मनुष्य-शरीर, उत्तम देश, उत्तम काल और उत्तम धर्मको पाकर भी हम परमात्माकी प्राप्तिसे एक क्षणके लिये भी वञ्चित क्यों रहें? स्त्री, पुत्र, धन, मकान आदिकी तो बात ही क्या, शरीरके साथ भी हमारा सम्बन्ध वास्तविक नहीं है, केवल माना हुआ है। क्योंकि किसी भी संसारी वस्तुके साथ जो संयोग है, वह वियोगको लेकर ही है। जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु निश्चित है, इसी प्रकार जिसका संयोग है, उसका वियोग भी निश्चय ही है। फिर हम इन नाशवान् अनित्य पदार्थोंके फंदेमें फँसकर अपने अमूल्य समयका एक क्षण भी क्यों नष्ट करें?

परमात्मा नित्य है। उसका संयोग भी नित्य है। विश्वास न होनेके कारण ही हम उसे भूले हुए हैं। अतएव जो नित्य सत्य है, जिसका कभी अभाव नहीं है, उसीकी शरण लेनी चाहिये। 'भगवान् ध्रुव सत्य हैं'—ऐसा विश्वास करके उनके नाम-रूपको हर समय याद रखना, भगवान्के सिवा अन्य कोई भी हमारा नहीं है—ऐसा समझना, अपने मन, बुद्धि, इन्द्रिय, शरीर सबको भगवान्की वस्तु मानकर भगवान्के समर्पण करना अर्थात् भगवान्के काममें लगा देना तथा अनिच्छा और परेच्छासे जो कुछ भी हो रहा है, उस सबको भगवान्की लीला समझकर अत्यन्त प्रसन्न रहना भगवान्की शरण लेना है।'

जीवनका वास्तविक वरदान

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

पता नहीं क्यों, कथाएँ सभीको बड़ी प्यारी लगती हैं। जो बहुत बड़े महानुभाव हैं, जिन्हें अपनी विद्या, बुद्धि, वैभव, शक्ति, प्रभुताका बड़ा गर्व है और जो कुछ भी सुनना, जानना या पढना नहीं चाहते, वे भी कथाएँ सुनने, पढनेके लिये उत्सुक देखे जाते हैं। चतुर लोग कहानियोंके द्वारा ही बड़े-बड़े गर्वीले राजा-महाराजाओंको उन्मार्गसे हटाकर झट सन्मार्गारूढ करते रहे हैं। इन कथाओंद्वारा मित्रसम्मत किंवा कान्तासम्मत उपदेश प्राप्त होता है, जो सुननेमें बड़ा मधुर तथा आचरणमें सुगम जान पड़ता है। इसलिये इनकी ओर सभीका आकर्षण होता है। अकबर आदिके विषयमें प्रसिद्धि है कि वे रातको सोनेके समय मनोरञ्जनके लिये खिड़कीके बाहरसे कुछ विशिष्ट लोगोंकी कथाएँ सुनते थे। भगवत्कथाओंकी तो बात ही निराली है। बड़े-बड़े साधु-संत; सिद्ध योगीन्द्र-मुनीन्द्र भी उन्हें सुननेको सदा तत्पर रहते हैं और उनके लिये समाधिसुखको भी उत्सर्ग करनेको तत्पर रहते हैं।

'सुनि गुन-गान समाधि बिसारी। सादर सुनहि परम अधिकारी॥'
'जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरि गुन सुनत अघात न तेऊ॥'

और तो और, पूर्णतम पुरुषोत्तम अखिल-ब्रह्माण्डनायक, परात्पर ब्रह्म भी नरावतार धारणकर, भूमण्डलपर अवतीर्ण होकर बड़ी रुचिसे कथा सुनकर अपनी लालसा पूरी करता है—

'कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनी जग जाम सिरानी॥'

—विश्वामित्रजी पुरानी कथाएँ सुनाते हैं[1]। भगवान् राघवेन्द्रको यह रात इतनी अच्छी लगी कि आधी रात हो गयी और पता न चला। राघवेन्द्रको कथाएँ इतनी अच्छी लगती हैं कि जहाँ कहीं भी भोजन आदिसे अवकाश मिला कि वे कथाएँ सुनना चाहते हैं। विश्वामित्रजी भी इतने भावग्राहक हैं कि वे राघवेन्द्रको प्रार्थना करनेका अवसर नहीं देते। उनकी रुख देखकर ही ऋषियों, मुनियों एवं प्राचीन राजाओंकी कथाएँ कहने लग जाते हैं—

'करि भोजन मुनिबर बिग्यानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥'

कहाँतक कहा जाय, सुनी जानी हुई कथाएँ भी सुननेमें भली ही लगती हैं। संतजन तो उनमें कुछ-न-कुछ नयी विशेषता फिर भी प्रकट कर देते हैं। इसलिये सर्वज्ञ ब्रह्म भी उन्हें सर्वथा जानता हुआ भी बार-बार सुननेमें आनन्दका अनुभव करता है—

'बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥'
'तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्ह बिप्रन्ह पर दाया॥
भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना॥'

इन कथाओंकी स्वाभाविक मोहकता एवं निसर्ग सुन्दरताका ही यह परिणाम है कि यह निर्दोष शुद्ध, बुद्ध जीव संयोगवशात् दूषित कथाओंके भी सामने आ जानेपर उनसे अनिच्छा नहीं प्रकट कर पाता। यहाँतक कि कल्पित, असत्य, असत् कथाओंके भी सुनने, पढने, सोचनेमें रस लेने लगता है। यदि ऐसी बात न होती तो आज विविध भाषाओंमें लिखे गये चरित्रनाशक उपन्यासोंका इतना बड़ा विशाल भण्डार क्यों कर तैयार हो जाता। इतना ही नहीं, गन्दे अश्लील साहित्य, कहानियोंकी असंख्य पुस्तकें एवं केवल अनर्गल, तामसी कहानियों एवं धारावाहिक उपन्यासोंके रूपमें चलनेवाली पत्रिकाओंका विस्तार संसारमें कैसे होता! कितने पुस्तकालयोंमें तो केवल ऐसे ही साहित्य हैं; क्योंकि उनके सदस्य तथा जनता उन्हें ही चाहती है। पर यह मनुष्य-मस्तिष्ककी दुर्बलताका अनुचित लाभ उठाना है। कथाओंके सहारे कठिन-से-कठिन सिद्धान्त मस्तिष्कमें, [illegible] सुगमता-पूर्वक उतार दिये जाते हैं। गणितके सिद्धान्तोंको सुगमता-पूर्वक समझानेके लिये भी कथाओंकी कल्पना की जाती है। वेदान्तके दुर्गम सिद्धान्त; दुरूह दर्शनोंके दुर्गम तत्त्व आख्यायिकाओंद्वारा सहज ही बुद्धिगम्य हो जाते हैं। बालक जो कहानियाँ सुनता है, उसे तो वह अपने जीवनमें ही उतार लेता है और उसके वे संस्कार [illegible] तिरोहित नहीं होते।

यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्।
कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते॥'

दूसरे लोगोंपर भी इन कथानकोंका [illegible]

---

१. इतिहासपुराणानि शृण्वन्त मङ्गलानि च।
हसन्त हास्यकथया कदाचित् प्रियया गृहे।'
(श्रीमद्भा० १० । ६९ । २८-२९)

नहीं पड़ता। कथाओंको पढते-सुनते उनमें रुचि पैदा होती है। धीरे-धीरे वह रुचि उनमें गुणबुद्धि रखने लगती है। फिर तो वह मार्ग 'सिद्धान्त'-सा बनकर मस्तिष्कमे आ जाता है। इस तरह वैसा ही नाट्य करना—बन जाना अभीष्ट हो जाता है, और यह ठीक ही है कि मनुष्य जैसा बनना चाहता है और जी-जानसे जैसा होनेका प्रयत्न करता है, वैसा ही बन जाता है।

यादृशैः संनिविशते यादृशांश्चोपसेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग् भवति पूरुषः॥
(महा० उद्योग० विदुरप्रजागर० ३६। १३)

फिर बालक हो या युवा, जो भी असत् कथाओंको चावसे पढ़े-सुनेगा, वह तदनुकूल स्वभावतया धर्म, सदाचारको तिलाञ्जलि दे स्वच्छन्द तामस, अकाण्ड ताण्डव नग्न नृत्य करनेमें ही गौरव अनुभव करेगा। फिर ऐसी दशामें वह मनुष्य-जीवनके परम एवं चरम लाभ—जिसके लिये देवता भी तरसते हैं, 'भगवत्प्राप्ति'से तो वञ्चित रह ही जायगा। बल्कि यह दुराचारसार प्राणी अपने सभी 'पुण्योंका नाश कर आश्रयहीन तमोमय नरकोंमें चिरकालके लिये चला जायगा[1]।

ठीक इसके विपरीत उतने ही श्रम तथा लगनसे भगवच्चरित्र अथवा सत-चरित्रका श्रवण करनेवाले सौभाग्यशाली सज्जन भगवान्को किंवा भगवद्धामको प्राप्त करते हैं। भगवद्-यश श्रवण करने, पढ़ने आदिसे तो सीधे भगवत्सम्बन्ध होता है, सत-कथा सुननेसे भी संतों-जैसा आचरण करनेकी इच्छा होती है, इस तरह प्राणी संत बनकर भगवान्को प्राप्त कर लेता है।[2] साथ ही सत्कथामें 'भगवत्सम्बन्ध' ही तो मुख्य कथा-वस्तु होती है। साथ ही संतजन प्रभुको अपनेसे भी अधिक प्रिय होते हैं। या यों कहिये कि 'भगवत्सारसर्वस्व मात्र' होनेसे संत और भगवन्तमें कोई अन्तर ही नहीं होता[3]। इसलिये सत्कथाओंका भी वैसा ही महत्त्व है। श्रीवल्लभाचार्यजी तो भागवतके 'श्रुतस्य पुंसा सुचिरश्रमस्य' (३।१३।४) इस श्लोककी 'सुबोधिनी' टीकामें लिखते हैं कि जैसे भगवच्चरित्र सुनना आवश्यक है, उसी प्रकार भगवदीयोंका—भगवद्भक्तोंका भी चरित्र सुनना आवश्यक है; क्योंकि उन-उन संतोंने किस प्रकार भगवच्चरणारविन्दको हृदयमें स्थिर किया था, यह संतचरित्र सुननेसे सुगमतापूर्वक ज्ञात हो जाता है। साथ ही सौशील्य, कारुण्य, वात्सल्यादि भगवदीय दिव्य गुण ही भक्तोंमें भी होते हैं, इसलिये भगवद्गुण और भक्तगुण सुननेमें कोई अन्तर या विरोध नहीं है—

'भगवदीयानामपि चरित्रं श्रोतव्यं निराश्रयं चरित्रं स्वाश्रयत्वं न सम्पादयति ततो न स्थिरं भवेत्।···अतो भगवच्चरित्रस्यापि भगवदीयचरित्रश्रवणफलम्।·····येन येन गुणेन भगवच्चरणारविन्दं तेषां हृदये तिष्ठति स गुणः—श्रवणस्य फलम्। भगवदीया एव गुणा भक्तेषु स्थितास्तथा भवन्तीति न विरोधः।'

थोड़े शब्दोंके हेर-फेरसे श्रीधर स्वामीने भी यही कहा है।[4]

---

१. यन्न व्रजन्त्यघभिदो रचनानुवादा-
च्छृण्वन्ति येऽन्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः।
यास्तु श्रुता हतभगैर्नृभिरात्तसारा-
स्तांस्तान् क्षिपन्त्यशरणेषु तमःसु हन्त॥
(श्रीमद्भा० ३।१५।२३)

२. (क) यच्च व्रजन्त्यनिमिषामृषभानुवृत्त्या
दूरेयमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः।
भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुराग-
वैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः॥
(श्रीमद्भा० ३।१५।२५)

(ख) पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया।
(श्रीमद्भा० १।२।१२)

(ग) 'नारायणोऽन्ते गतिरङ्ग शृण्वताम्।' (श्रीमद्भा० ३।१९।३८)

(घ) इसीलिये गोपियाँ भगवत्कथा वितरण करनेवालेको सबसे बडा दानी करार देती हैं—

'तव कथामृतं तप्तजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥'
(१०।३१।९)

प्रभो! तुम्हारी लीलाकथा अमृतस्वरूप है। संसारके तापसे तप्त प्राणीके लिये तो वह सजीवनबूटी ही है। बड़े-बड़े ज्ञानी महात्माओंने उसे गाया है और गाते हैं। वह सारे पापतापको मिटा देती है। केवल सुनने मात्रसे महामङ्गलका दान करती है। वह बड़ी रम्य, मधुर तथा विस्तृत है। जो उसे गाते हैं वास्तवमें भूलोकमें वे ही सबसे बड़े दाता हैं।

३. संत भगवंत अंतर निरंतर नहिं किमपि कहत मतिमद दास तुलसी। (विनयपत्रिका)

४. येषु हृदयेषु मुकुन्दपादारविन्दमुपास्यते तेषां भागवतानां

स्वयं भागवतकार भी कहते हैं कि 'परमतत्त्ववेत्ता निर्भ्रान्त विद्वानोंकी दृष्टिमें शास्त्रोंके प्रगाढ़ अध्ययनका यही फल है कि जिनके हृदयमें मुकुन्दके पादारविन्द हैं, उन भक्तोंके गुणोंका श्रवण किया जाय।'[1]

अस्तु! साराश यह है कि मनुष्यका कल्याण बड़ी सुगमतापूर्वक हो सकता है; क्योंकि कथाएँ सबको अच्छी लगती ही हैं और ससारमें भगवच्चरित्र अथवा भागवतचरित्रका कोई अभाव है नहीं। बस, करना केवल इतना ही है कि इस रुचिको उनमें योग दे दिया जाय। यदि समीपके स्थानमें वैसी पुस्तकें न हों तो संतोंसे, भक्तोंसे, घरके बड़े-बूढ़े लोगोंसे कथाएँ सुनी जायँ। प्रयत्न करनेपर दोनों ही प्राप्त हो सकते हैं, फिर कोई एक वस्तु तो मिल ही जायगी।

बस, बुद्धिमानीसे इतना ही काम लेना है कि चरित्रनिर्माण तथा भगवान्‌की ओर जीवनकी गति कर देनेमें सहायक भगवान् तथा संतोंकी चरित्रकथा तथा इसी प्रकारकी अन्यान्य लोककथाएँ सुनी-पढ़ी जायँ और इनसे अतिरिक्त दूसरी कथाओं, अनर्गल असत्कथाओंसे बचा जाय।[2] उनका सुनना, पढना केवल आयुके क्षणोंकी उपेक्षा ही नहीं, बड़ा असद्व्यय है; क्योंकि उससे तमःप्रधान आसुरी योनियाँ एवं आश्रयहीन घोर नरकोंकी उपलब्धि होती है। यह ठीक है कि नास्तिकों, दुराचारियोंके जीवनमें भी कोई साधु, सत्प्रेरणाप्रद घटना मिल सकती है। यहाँतक कि कुछ नास्तिकोंका जीवन ही सदाचारमय दीख सकेगा। यद्यपि क्षीरनीरविवेकीके लिये उनका विवेचन सम्भव हो सकता है तथापि हम सर्वसाधारणको तो ऐसी घटनाओंसे भी बचना चाहिये; क्योंकि सगत. उनकी सारी जीवनी सुनकर, सम्भव है, उसे भी जीवनमें उतारकर हम पथभ्रष्ट हो जायँ।

वास्तवमें भक्त या संतके चोलेमें ठग या ईश्वरशास्त्रविरोधी संत-महात्मा दोनों ही त्याज्य हैं। ईश्वर-शास्त्रानुगामी भक्त संतोंके चरित्र तो आद्योपान्त अमृतोपम होंगे ही, तथापि उनकी कई जीवनघटनाएँ तो ऐसी आश्चर्यकारिणी सत्प्रेरणाप्रद होती हैं कि जिनके एक ही बार पढ़-सुन लेनेसे जीवनमें महान् परिवर्तन हो जाता है और यदि वे ठीकसे जीवनमें उतर गया, तब तो वास्तवमें जीवनके लिये एक महत्त्वपूर्ण चमत्कारिक वरदान सिद्ध होती हैं। सचमुच ऐसे संतों, भक्तों, उनके भगवान् तथा उनकी भक्तिमयी सत्क्रिया-कथाको बार-बार शत शत प्रणाम है।

सत्कथाओंकी लोकोत्तर महत्ता एवं उपयोगिता

(लेखक—प० श्रीरामनिवासजी शर्मा)

सत्कथाओंने आजतक संसारका जितना उपकार किया है, सम्भवतः उतना किसीने भी नहीं किया होगा एवं इस समय भी ससारमें जो कुछ मानवता है, वह भी इनका ही पुण्य-प्रसाद है।

सत्कथाएँ वास्तविक आचरणकी दिव्य ज्योति हैं और सन्मार्गकी साधना, यदि वे न होतीं तो पता ही नहीं चलता कि सदाचार किस वस्तुका नाम है।

सत्कथाएँ सदाचारका मूर्त रूप हैं। इनसे साधारण हीन व्यक्ति भी सरलतासे सदाचारी हो सकता है और पतनोन्मुख उत्थानोन्मुख।

सत्कथाएँ मनोवैज्ञानिक-आकर्षण हैं, ऐतिहासिक [illegible] हैं, चरित्रकी मधुरिमा है और चक्षु-प्रदाता मन्त्र है। यही कारण है कि अज्ञ, विज्ञ, पापी और सदाचारी सभी इनकी ओर आकृष्ट होते देखे जाते हैं।

महापुरुषोंके चरित्र-पाठसे भी यही समझमें आता है कि उनके चरित्र-निर्माणका महत्त्व कारण सत्कथाएँ ही रही हैं; क्योंकि अपने चरित्र-निर्माणके विषयमें वे सभी इनका उल्लेख करते देखे जाते हैं।

चरित्र-निर्माणमें किसी प्रसिद्ध अथवा महान् व्यक्तिकी

गुणाना श्रवणमिति यत्। भगवद्गुणवद् भागवतगुणा अपि श्रोतव्या एव।' (उपर्युक्त श्लोकपर भागवतभावदीपिका)

[1] श्रुतस्य पुंसा सुचिरश्रमस्य नन्वञ्जसा सूरिभिरीडितोऽर्थः।
यत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्दपादारविन्दं हृदयेषु येषाम्॥
(श्रीमद्भा० ३। १३। ४)

[2] तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम्॥
अथवास्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम्।
किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः॥
(श्रीमद्भा० १। १६। ५-६)

सत्कथाओंकी अनिवार्य आवश्यकता नहीं अपितु आवश्यकता है उदाहरणीय और अनुकरणीय वास्तविक जीवन-प्रसंगोंकी।

सत्कथाओंकी एक अन्यतम विशेषता यह भी है कि वे चाहे किसी भी व्यक्तिकी हों और वह व्यक्ति किसी भी देश-कालमें उत्पन्न हुआ हो, परंतु उसकी वे कथाएँ अनन्त कालतक मनुष्य-जातिको लाभ पहुँचाती रहती हैं।

सत्कथाओंकी एक अत्यधिक उल्लेखनीय महनीयता यह भी है कि वे अपने चरित्र-नायककी अपेक्षा अधिक उपकारिणी होती हैं। कौन नहीं जानता राम-कृष्ण, संत-महात्मा और सज्जनोंने उतना उपकार नहीं किया, जितना उनकी जीवन-कथाओंसे हुआ।

अब कदाचित् यह प्रश्न हो कि सत्कथाओंकी तथा-कथित लोकोत्तर विशेषताके सर्वतोभद्र प्रबलतम कारण क्या हैं तो इसका सदुत्तर इस प्रकार है—

१. मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे मानव-मनके ज्ञान, सौन्दर्य और शील—ये तीन प्रधानतम रसात्मक तत्त्व हैं। इनमें शील उसका अविभाज्य, आत्म-सम्पृक्त चरित्र-प्रधान तत्त्व है। यही कारण है कि सत्कथाओंसे मानव-हृदय समधिक प्रभावित होता है।

२. मनुष्य, मनुष्यको अपना-सा होनेसे पसंद करता है। महावीर अर्जुनने विराट् रूपसे घबराकर भगवान् श्रीकृष्ण-से कहा था—'प्रभो! मुझे तो आप अपना वही मनुष्यरूप दिखाइये।' मानवता-प्रधान होनेसे सत्कथाओंकी ओर स्वभावतः मनुष्य आकर्षित होता है।

३. मानव प्रगतिशील प्राणी है। वह अनवधानतापूर्वक (unconsciously) भी ऊँचा उठना चाहता है। यही हेतु है कि जीवन-स्तरको ऊँचा उठानेवाली सत्कथाओंकी ओर मानव अगत्या आकृष्ट होता है।

४. मानव-हृदय निसर्गतः सौन्दर्य-उपासक है और सद्वृत्त सात्त्विक-सौन्दर्यकी चरम-सीमा है। अतः सद्वृत्त-प्राण सत्-कथाओंकी ओर खिंचना मनुष्यका अपना अव्यक्त गुण है।

५. सत्कथाएँ स्वतः एक साहित्यिक आकर्षण है। उनसे मनुष्य अनाकृष्ट कैसे रह सकता है?

६. मनुष्य सामाजिक जन्तु है, ऐसी दशामे व्यष्टि-समष्टि-परक सत्कथाओंसे उसका प्रभावित होना वैज्ञानिक तथ्य है।

७. यह सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र सत्य है कि मनुष्य अपने व्यक्तित्व-का निर्माता स्वयं है, अतएव व्यक्तित्व-निर्मात्री सत्कथा और मानव-मनका प्राकृतिक अन्योन्याश्रयत्व सम्बन्ध है। अतः चरित्र-प्रधान सत्कथाओंसे उसका प्रभावित न होना अप्राकृतिक बात है।

८. प्रत्येक सद्वस्तु और सद्-व्यक्तित्वमें कुछ-न-कुछ आकर्षण अवश्य होता है। सत्कथाएँ भी सद्वस्तु हैं और उनका भी सद्-व्यक्तित्व है। अतः उनकी ओर मनुष्यका आकर्षित होना एक स्वाभाविक बात है।

९. मनुष्यको गुरु-सम्मत और मित्र-सम्मत उपदेश-की अपेक्षा कान्ता-सम्मत उपदेश स्वभावतः अधिक प्रिय लगता है, इसीका यह प्रताप है कि कथाओं—विशेषतः सत्कथाओंका मानव-मनपर समधिक कारगर प्रभाव होता है।

१०. मानव-प्राणी निसर्गतः जिज्ञासाप्रधान है। ऐसी स्थितिमें सत्य-तथ्य-पूर्ण सत्कथाएँ तो उसका मानसिक प्रिय खाद्य होनेसे उसकी रुचिकी वस्तु होती ही है।

इस तरह हम देखते हैं मनुष्यको वास्तविक मनुष्य बनानेकी दृष्टिसे चरित्र-निर्माणकी दिशामें सत्कथाएँ जगत्-कल्याणकारिणी हैं एवं आजके आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक पाप-दोष और दुःख-शोक-सतप्त संसारको दिव्य सुखमय स्वर्ग-राज्यमें परिणत करनेकी शक्ति रखती हैं। अतः आशा है, हम ऐसी अप्रतिम गुण रखनेवाली सत्कथाओंके पाठसे अपना और जगत्का कल्याण करनेमें ईश्वर-कृपासे समर्थ होंगे।*

सत्कथाका महत्त्व

'सत्' उसे कहते हैं जो सदा है, जिसका कभी अभाव नहीं होता, जो नित्य सत्य चिदानन्दस्वरूप है, जो भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालोंमें एवं जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय—चारों अवस्थाओंमें सम एवं एकरूप है; जो सबका आश्रय, ज्ञाता, प्रकाशक और आधार है; श्रुतियाँ 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' आदि कहकर जिसका संकेत करती हैं और जो एकमात्र चैतन्यघन होनेपर भी

* सत्कथाएँ मनुष्य-जातिका सर्वोत्तम विद्यालय है। मनुष्यको जो पाठ यहाँसे मिल सकता है वह अन्यत्र सर्वथा दुर्लभ है।—'कश्चित्।'

अनेक रूपोंमें दिखायी पड़ता है। भगवान्ने गीतामें कहा है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
(२।१६)

जो 'असत्' है, उसका कभी अस्तित्व नहीं है और जो 'सत्' है उसका कभी अभाव नहीं है। अर्थात् वह सदा सर्वत्र है। सब कुछ उसीमें है, वही सबमें समाया है। यह 'सत्' ही परमात्मा—परात्पर ब्रह्म है। यथार्थमें इस 'सत्' की उपलब्धि ही मानव-जीवनका प्रधान ही नहीं, एकमात्र लक्ष्य है। इसीके लिये भगवान् दया करके जीवको मनुष्य-योनिमें भेजते हैं—

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

जो मनुष्य नरदेहका यह वास्तविक लाभ न उठाकर पशु या पिशाचवत् भोगोंके उपार्जन और उनके भोगमें ही लगा रहता है, उसका मानव-जन्म व्यर्थ जाता है। केवल व्यर्थ ही नहीं जाता, भोगकामनासे मनुष्यका विवेक ढक जाता है और वह भोगोंकी प्राप्तिके लिये अनेकों पाप कर्मोंमें प्रवृत्त होकर मानव-जीवनको असुर-जीवनमें परिणत कर डालता है, जिसका बहुत बुरा परिणाम होता है। भगवान्ने कहा है—

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥
(गीता १६।२०)

'कौन्तेय! वे मूढलोग मुझको (भगवान्को) तो प्राप्त होते ही नहीं, जन्म-जन्ममें आसुरी योनिमें जाते हैं और फिर उससे भी अति नीच गति (घोर नरकों) को प्राप्त होते हैं।'

इसलिये मनुष्यका यही एकमात्र कर्तव्य या परम धर्म होता है कि वह लोक परलोकके कल्याण तथा मानव-जीवनके परम साध्य परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही सब कार्य करके अपने जीवनको सफल करे। विषयभोगोंको इस जीवनका लक्ष्य समझकर उन्हींको प्राप्त करनेमें जीवन लगाना तो अमृत देकर बदलेमें जहर लेना है। भगवान् श्रीरामचन्द्रने कहा है—

एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥
नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥

वे आगे चलकर कहते हैं कि इस प्रकारकी दुर्लभ सुविधा पाकर भी जो भवसागरसे नहीं तरता, वह आत्म-हत्यारेकी गतिको प्राप्त होता है—

नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥
जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

यही बात श्रीमद्भागवतके इस श्लोकमें कही गयी है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा॥
(११।२०।१७)

श्रुति कहती है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥
(केनोपनिषद् २।५)

'यदि इस मनुष्य-शरीरमें परमात्मतत्त्वको जान लिया जायगा तो सत्य है—(सत्यकी उपलब्धिसे मानव-जीवनकी सार्थकता है) और यदि इस जन्ममें उसको नहीं जाना तो महान् हानि है। धीर पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें परमात्माका चिन्तन कर—परमात्माको समझकर इस देहका त्याग करके अमृतको प्राप्त होते हैं। अर्थात् इस देहसे प्राणोंके निकल जानेपर वे अमृतस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाते हैं।'

इस 'सत्'-स्वरूप चिदानन्दघन परमात्माकी प्राप्तिके जितने साधन हैं या परमात्माको प्राप्त महापुरुषोंमें अथवा परमात्मप्राप्तिके साधनमें लगे हुए सच्चे साधकोंमें जिन जिन गुणों और क्रियाओंका प्रकाश और विकास देखा जाता है, वे सब भी 'सत्' ही हैं। इसीसे भगवान्ने गीतामें कहा है—

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥
(१७।२६-२७)

''सत्' इस (परमात्माके नाम) का सद्भावमें और साधुभावमें प्रयोग किया जाता है तथा अर्जुन! उत्तम कर्ममें भी 'सत्' शब्दका प्रयोग किया जाता है और यज्ञ, तप तथा दानमें जो स्थिति है, वह भी 'सत्' है—ऐसे कहा जाता है। एवं उस परमात्माके लिये किया हुआ (प्रत्येक) कर्म ही सत् है—ऐसा कहा जाता है।'

इससे यह सिद्ध होता है कि परमात्मा या भगवान् ही 'सत्' है तथा उस सत्के साधन तथा साधकके [illegible]

स्वभावतः ही सत्पुरुषमें दीखनेवाले गुण भी 'सत्' हैं—अर्थात् सद्गुण, सद्भाव, सद्विचार, सदाचार, सद्व्यवहार, सत्यभाषण, सत्-आहार और सद्विहार—जो कुछ भी भगवान्के प्राप्त्यर्थ, प्रीत्यर्थ या सहज दैवीगुणरूपमें विकसित भाव-विचार-गुण-कर्म आदि हैं, सभी 'सत्' हैं और ये जिसके जीवनमें प्रत्यक्ष प्रकट हैं, वे ही 'सत्पुरुष' हैं। ऐसे सत्पुरुषोंका या उनके सदाचारों तथा सद्विचारोंका सङ्ग ही 'सत्सङ्ग' है। इस प्रकारके 'सत्सङ्ग'में ही वास्तविक 'सत्-कथा'—हरिकथा प्राप्त होती है, उससे मोहका नाश (भोगपदार्थोंमें—इहलोक तथा परलोकके प्राणिपदार्थोंमें सुख-बोधरूप मोहका नाश) होकर भगवच्चरणोंमें दृढ़ प्रेमकी प्राप्ति होती है—

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥

हरिकथा ही 'सत्कथा' है। जिसमें श्रीहरिके पवित्र लीलाचरित्रोंका गान हो, अथवा जो भगवान् श्रीहरिकी ओर ले जानेवाले सफल साधन बताती हो, वह 'सत्कथा' है।

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—

संसारसिन्धुमतिदुस्तरमुत्तितीर्षो-
नान्यः प्लवो भगवतः पुरुषोत्तमस्य।
लीलाकथारसनिषेवणमन्तरेण
पुंसो भवेद् विविधदुःखदवार्दितस्य॥

(श्रीमद्भा० १२।४।४०)

'जो लोग अत्यन्त दुस्तर संसार-सागरसे पार होना चाहते हैं अथवा जो भाँति-भाँतिके दुःखदावानलसे दग्ध हो रहे हैं, उनके लिये पुरुषोत्तम भगवान्की लीला-कथा-रसका सेवन करनेके सिवा और कोई साधन नहीं है, कोई नौका नहीं है। केवल लीला-कथा-रसायनका सेवन करके ही वे अपना मनोरथ सिद्ध कर सकते हैं।'

हरिकथाको छोड़कर और सभी कथाएँ असत् हैं तथा त्याज्य हैं। श्रीमद्भागवतके अन्तमें श्रीसूतजी महाराजने कहा है—

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद्भगवानधोक्षजः।
तदेव सत्यं तदुहैव मङ्गलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम्॥
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते॥

(श्रीमद्भा० १२।१२।४८-४९)

'जिस वाणीके द्वारा घटघटवासी भगवान्के नाम-गुण-लीलाका कथन नहीं होता, वह भावयुक्त होनेपर भी व्यर्थ—सारहीन है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर है और वस्तुतः वह 'असत्-कथा' है। जो वचन भगवान्के गुणोंसे पूर्ण रहते हैं, वे ही परम पवित्र हैं, वे ही मङ्गलमय हैं और वे ही परम सत्य हैं। जिस वचनके द्वारा भगवान्के परम पवित्र यशका गान होता है, वही परम रमणीय, परम रुचिर और प्रतिक्षण नया-नया लगता है, वही अनन्त कालतक मनके लिये परम महोत्सवरूप है। वह मनुष्यके शोकरूपी गहरे समुद्रको सुखा देनेवाला है।'

जहाँ 'सत्कथा' होती है वहाँ उसके प्रभावसे प्राणिमात्रमें परस्पर प्रेम हो जाता है। वहाँ लोग वैर छोड़कर सुखी हो जाते हैं। प्रचेतागण भगवान्की स्तुति करते हुए कहते हैं—

यत्रेड्यन्ते कथा मृष्टास्तृष्णायाः प्रशमो यतः।
निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन॥
यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान्न्यासिनां गतिः।
संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः पुनः॥

(श्रीमद्भा० ४।३०।३५-३६)

'जहाँ (भगवद्भक्तोंमें) सदा भगवान्की दिव्य कथा होती रहती है, जिनके श्रवणमात्रसे भोगतृष्णा सर्वथा शान्त हो जाती है। प्राणिमात्र सब परस्पर निर्वैर हो जाते हैं और उनमें कोई उद्वेग नहीं रहता। सत्कथाओंके द्वारा अनासक्त भावसे महान् त्यागियोंके एकमात्र आश्रय साक्षात् भगवान् श्रीनारायणका बार-बार गुण-गान होता रहता है।'

जिन लोगोंको सत्कथा-सुधाका स्वाद मिल जाता है, वे तो फिर उसे पीते ही रहना चाहते हैं, कभी तृप्त होते ही नहीं। विदेह राजा निमिने योगीश्वरोंसे प्रार्थना की है—

नानुतृप्ये जुषन् युष्मद्वचो हरिकथामृतम्।
संसारतापनिस्तप्तो मर्त्यस्तत्तापभेषजम्॥

(श्रीमद्भा० ११।३।२)

'मैं मृत्युका शिकार और संसारके तापोंसे सन्तप्त हूँ।

आप लोग मुझे जिस हरि-कथा-अमृतका पान करा रहे हैं, वह इन तापोंको नष्ट करनेकी एकमात्र ओषधि है, इसलिये आपकी वाणीका सेवन करते-करते मैं तृप्त नहीं होता।

सत्कथा-सुधाके परम पिपासु भक्तराज ध्रुव सत्सङ्गकी चाह करते हुए भगवान्से बोले—

> **भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो**
> **भूयादनन्त महताममलाशयानाम्।**
> **येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं**
> **नेष्ये भवद्गुणकथामृतपानमत्तः॥**
> (श्रीमद्भा० ४।९।११)

'अनन्त परमात्मन्! जिनकी आपमें अविच्छिन्न भक्ति है, उन निर्मलहृदय महापुरुष भक्तोंका मुझे सङ्ग दीजिये। उनके सङ्गसे आपके गुणों और लीलाओंकी कथा-सुधाको पी-पीकर मैं उन्मत्त हो जाऊँगा और सहज ही अनेक दुःखोंसे पूर्ण इस भयङ्कर भव-सागरसे उस पार पहुँच जाऊँगा।'

परम सौभाग्यमयी श्रीगोपाङ्गनाएँ जो भगवत्कथा-सुधा-रसकी रसिका ही ठहरीं। उनके समान इस रससुधाका अनुभव किसने किया है।—प्रेममतवारी वे गोपियाँ बड़े ही करुण-मधुर स्वरमें गाती हैं—

> **तव कथामृतं तप्तजीवनं**
> **कविभिरीडितं कल्मषापहम्।**
> **श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं**
> **भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥**
> (श्रीमद्भा० १०।३१।९)

'श्यामसुन्दर! तुम्हारी कथा-सुधा (तुम्हारे विरहसे) संतप्त पुरुषोंके लिये जीवनरूप है, ज्ञानी महात्माओंके द्वारा उसका गान किया गया है। वह सारे पाप-तापोंको मिटानेवाली है, श्रवण-मात्रसे मङ्गल करनेवाली है, परम मधुर और परम सुन्दर तथा विस्तृत है। जो तुम्हारी लीला-कथाका गान करते हैं, वे ही वास्तवमें पृथ्वीमें सबसे बड़े दाता हैं।'

महात्मा मुनि मैत्रेयजी तो कथा-सुधा पान न करनेवालोंको मनुष्य ही नहीं मानते! वे विदुरजीसे कहते हैं—

> **को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्**
> **पुराकथानां भगवत्कथासुधाम्।**
> **आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहा-**
> **महो विरज्येत विना नरेतरम्॥**
> (श्रीमद्भा० ३।१३।५०)

'अरे, संसारमें पशुओंको छोड़कर अपने पुरुषार्थका सार—असली मानव-पुरुषार्थका रहस्य जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष होगा जो आवागमनरूपी भयसे छुड़ा देनेवाली भगवान्की प्राचीन कथाओंमेंसे किसी भी कथा-सुधाका अपने कर्णपुटोंसे एक बार पान करके फिर उसकी ओरसे मन हटा लेगा?'

श्रीगोस्वामीजी महाराज सत्कथा (रामकथा) के महत्त्वका वर्णन करते हुए कहते हैं—

> महामोह महिषेसु बिसाला। राम कथा कालिका कराला॥
> राम कथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥
> जिन्ह हरि कथा सुनी नहिं काना। श्रवन रंध्र अहिभवन समाना॥
> राम कथा सुंदर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥

सत्कथासे ही मनुष्यको अपनी भूलोंका पता लगता है और भवाटवीसे निकलकर सच्चे सुखकी प्राप्तिका सन्मार्ग, उसका पाथेय, प्रकाश और सहायक शुभ सङ्ग प्राप्त होता है। सत्कथाओंमें भी जो प्रभाव उपदेशका पड़ता है, उससे बहुत ही अधिक घटनाप्रसंगोंका पड़ता है। विषय-वासना, भोग-कामना, कामोपभोगपरायणता, भोगार्थ दुष्कर्ममें प्रवृत्ति, अन्यायसे अर्थोपार्जनकी वृत्ति आदि सभी दोषों-को मिटाकर जो आत्महित, लोकहितके साथ-साथ भगवत्-प्रीतिसम्पादनमें सहायक और प्रेरक हो, जिससे दैवी सम्पत्तिके गुणोंका विकास तथा संवर्धन होता हो, ऐसी घटनाओंका श्रवण, कथन, मनन ही 'सत्कथाका' सेवन है।

इसके विपरीत जिन कथाओंसे आसुरीसम्पदके दुर्गुण, दुर्विचार, दुराचार आदिका विकास तथा संवर्धन होता हो—जिनसे हिंसा, असत्य, स्तेय, दम्भ, दर्प, अभिमान, मद, द्वेष, वैर, क्रोध, काम, लोभ, छल, कपट, प्रमाद, असहिष्णुता, मन इन्द्रियोंकी गुलामी, व्यभिचार, तृष्णा, ईश्वर तथा धर्ममें अविश्वास, दोषदर्शनमें रुचि, निन्दा चुगलीमें प्रीति, मिथ्या प्रशंसाकी इच्छा, शरीरके आरामकी भावना आदि दोष उत्पन्न होते हैं, उभरते हों, बढ़ते हों, फैलते हों—वह असत्कथा है। उनसे सदा दूर रहना चाहिये।

असत् मानव-चरित्रोंका तथा असत् घटनाओंका [illegible]

भी कभी श्रवण, पठन, कथन, स्मरण नहीं करना चाहिये। जैसे सत्पुरुषोंके सत्-चरित्र और सत्-घटना आदिसे चरित्रनिर्माणमें प्रेरणा, सहायता तथा आदर्शकी प्राप्ति होती है, ठीक इसके विपरीत असत् चरित्र तथा घटनाओंसे चरित्रनाश होता है। इसीलिये असत् साहित्यका प्रकाश और प्रचार-प्रसार संसारके लिये हानिकर माना गया है। इसीलिये शास्त्र तथा सत्पुरुष बार-बार सावधान करते हुए सब प्रकारके दुःसङ्गका त्याग करनेके लिये प्रेरणा देते हैं। स्खलन अथवा पतन बहुत शीघ्र होता है, पैर जरा-सा फिसला कि आदमी गिरा। परंतु फिसलाहटसे बचनेमें बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है और चढ़नेके लिये तो परिश्रम या प्रयास भी करना पड़ता है। 'असत्-कथा' मानव-जीवनका पतन करनेके लिये बहुत बड़ी फिसलाहट है। इसलिये 'असत्-कथा' से सदा बचकर 'सत्कथा' का ही सेवन करना चाहिये।

सत्कथाके सेवनसे मनुष्यको अपने कर्तव्यका ज्ञान होता है। अपने प्रति तथा दूसरोंके प्रति कैसे बरतना चाहिये—यह बात ठीक समझमें आती है। संसारमें किस प्रकार रहना चाहिये, घरमें रहते हुए भी बन्धन न हो, कोई भी काम या चेष्टा ऐसी न हो, जिससे किसी भी प्राणीका अहित होता हो। सदा स्वाभाविक ही सबका हित—परहित होता रहे, इसकी सच्ची जानकारी उन पुरुषोंकी जीवन-घटनाओंसे ही प्राप्त होती है, जो ऐसे हैं और जिनके जीवनमें ये चीजें प्रत्यक्ष देखी जाती हैं।

हमारे यहाँ चार पुरुषार्थ माने गये हैं—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। संसारमें जीवन-निर्वाह तथा स्वयं कष्ट न पाकर सबको आराम पहुँचाने, अपने आश्रितोंका स्नेह तथा भक्तिपूर्वक पालन-पोषण करनेके लिये अर्थ और कामकी भी आवश्यकता है। इसीलिये धर्मके स्वरूपकी व्याख्या करते हुए हमारे सर्वदर्शी तथा आत्मस्वरूपमें स्थित महर्षिने कहा—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

'जिससे लौकिक अभ्युदय—सर्वाङ्गीण उन्नति और निःश्रेयस—परमकल्याणकी सिद्धि हो वह धर्म है।' परंतु मानव-जीवनका प्रधान लक्ष्य है—मोक्ष या भगवत्प्राप्ति। इसलिये अर्थ और काम ऐसे न हों जो मनुष्यको कामोपभोगपरायण बनाकर उसे आसुरी जीवनमें पहुँचा दें। वे अर्थ और काम धर्मनियन्त्रित होने चाहिये। धर्मानुसार ही अर्थ-कामका अर्जन, प्रयोग और उपयोग होना चाहिये। यह बात सीखनेको मिलती है—'सत्कथा' से ही।

हमारे ऋषि घोषणा करते हैं—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

'धर्मके सार-सर्वस्वको सुनो और सुनकर उसे धारण करो—वह धर्मसर्वस्व यही है कि जो-जो कार्य या व्यवहार तुम्हारे मनसे प्रतिकूल हैं, दूसरोंके साथ उन्हें न करो।' इसका यथार्थ रूप कैसा होना चाहिये। इस बातका पता 'सत्कथा'से ही लगता है।

दूसरोंका न कभी बुरा करो, न चाहो ही। तुम्हारे चाहने-करनेसे किसीका बुरा नहीं होगा। वह तो तभी होगा, जब किसीके वैसे अपने कर्म कारणरूपमें पहलेसे बने हुए विद्यमान होंगे और जो फलदानोन्मुख हो चुके होंगे। पर किसीका बुरा चाहते ही तुम्हारा तो बुरा निश्चितरूपसे हो ही गया।

जिससे अपना तथा दूसरोंका परिणाममें अहित होता हो, वही पाप है और जिससे परिणाममें अपना तथा दूसरोंका हित होता हो, वही पुण्य है।

दूसरोंका अहित चाहने तथा करनेवालोंका परिणाममें कभी हित नहीं होता और दूसरोंका हित चाहने तथा करनेवालोंका परिणाममें कभी अहित नहीं होता।

हमारा अहित या नुकसान हमारे कर्मसे होता है, दूसरा कोई भी हमारा अहित नहीं कर सकता। यदि कोई वैसी चेष्टा करता है तो वह अपने लिये ही बुराईका बीज बोता है और जो अपने अहितका कार्य आप करता है, वह पागल है और पागल दयाका पात्र होता है, द्वेषका नहीं।

किसी भी स्थिति, अवस्था, प्राणी, पदार्थ, वस्तु आदिसे जो सुखकी आशा रखता है, वह कभी सुखी नहीं हो सकता। वह सदा निराश ही रहेगा, फलतः दुखी रहेगा।

सुख-दुःख किसी वस्तु या स्थितिमें नहीं हैं, न कोई सुख-दुःख देता ही है। मनकी अनुकूलतामें सुख है और प्रतिकूलतामें दुःख है। यदि मनुष्य ज्ञानकी दृष्टिसे अपनेको निर्लिप्त केवल द्रष्टा मान ले तो सर्वत्र अनुकूलता-प्रतिकूलताका नाश होकर समता हो जाती है तथा फिर सुख-दुःख मिटकर आनन्दकी प्राप्ति हो सकती है। अथवा

भक्तिकी दृष्टिसे सब कुछको भगवान्‌का मङ्गलविधान मान ले तो सर्वत्र प्रत्येक सांसारिक परिणाममें अनुकूल दृष्टि हो जाती है—प्रतिकूलता रहती ही नहीं, तब फिर वह नित्य आनन्दको प्राप्त कर सकता है।

अपनेको राहमें पड़े तिनकेसे भी नीचा समझे, वृक्षकी भाँति बुरा करनेवालेका भी अपना सर्वस्व देकर हित करे, स्वयं मानका त्याग करके सबको मान दे और सदा-सर्वदा श्रीभगवान्‌का कीर्तन करे।

पतन या पापका कारण प्रारब्ध नहीं है। विवेकका अनादर करके कामनाके वश होनेपर मनुष्य पापाचरण करता है और तभी उसका पतन होता है।

अपनी स्थितिसे अधिक खर्च करनेवाले मनुष्यको धनकी चाह सदा बनी ही रहती है और धन कमानेके लिये वह सदा अशान्त रहता हुआ, विविध प्रकारके दुराचरण करने लगता है। जिसकी आवश्यकता जितनी कम है, वह उतना ही अधिक सुखी है।

सारे क्लेशोंका कारण ममता और अहंता है। ज्ञानकी दृष्टिसे नाम तथा रूपसे अहंता निकालकर एकमात्र निर्विशेष ब्रह्ममें अहंता करे, फिर जगत्‌के प्राणिपदार्थोंसे ममता आप ही निकल जायगी। अथवा भक्तिकी दृष्टिसे अपना सारा 'अहं' भगवान्‌के दासत्वमें लगा दे अर्थात् अपनेको केवल भगवान्‌का दास मान ले और अपनी सारी ममता सब जगहसे हटाकर भगवान्‌के चरणोंमें ही जोड़ दे। 'मैं भगवान्‌का दास' और भगवान्‌के चरणकमल ही मेरे।' 'मैं और कुछ नहीं तथा मेरा और कुछ भी नहीं।'

साधु, भक्त, महात्मा सजकर जो दुनियाको धोखा देना चाहता है, वह अपने-आपको ही धोखा देता है और मानव-जीवनको पापमय बनाता है।

शरीरसे भगवत्स्वरूप संसारकी सेवा करे, मनसे भगवान्‌का चिन्तन करे, यह परम साधन है।

माता-पिताकी सेवा और अपने वर्णाश्रम-धर्मका पालन कष्ट सहकर भी आनन्दपूर्वक सौभाग्य मानकर करे।

दूसरेके अधिकारकी यथासाध्य पूर्ति कर दे और अपना कोई अधिकार माने नहीं, दूसरोंकी इच्छाको उनकी आशासे अधिक पूरी करे, दूसरोंसे स्वयं इच्छापूर्तिकी कोई आशा रक्खे ही नहीं।

संसारके सारे सम्बन्ध भगवान्‌के सम्बन्धसे करे। घर भगवान्‌का, घरके प्राणी भगवत्स्वरूप, घरका काम भगवान्‌की सेवा। जबतक भगवान् इन वस्तुओंको रक्खें—तबतक इन्हें अपनी न मानकर भगवान्‌के नाते सेवा करे और इनकी आदरपूर्वक सेवा करे। भगवान् अपनी वस्तुओंको अन्यत्र भिजवा दें या सेवा करनेवालेको ही दूसरी जगह भेजकर दूसरी सेवा सौंप दें तो मूक प्रसन्नतासे स्वीकार करे। सेवा करनी है—ममता नहीं। प्रेम करके देना है—किसीसे कुछ लेना नहीं है।

बड़ोंकी सेवा न करना, अपवित्र रहना, अकड़े रहना, ब्रह्मचर्यका नाश करना, किसीको चोट पहुँचाना—ये शरीरसे होनेवाले पाँच पाप हैं। ऐसी वाणी बोलना जिससे सुननेवालेको उद्वेग हो, जो असत्य हो, जो कटु हो और जो अहित करनेवाली हो तथा भगवानके नाम-गुणोंका गान न करना—ये वाणीसे होनेवाले पाँच पाप हैं। तथा मनका विषाद, निर्दयता, व्यर्थ चिन्तन, उच्छृङ्खलता, अशुद्ध भाव—ये पाँच मनसे बननेवाले पाप हैं। इनको छोड़कर शरीरसे देव-द्विज-गुरु-प्राज्ञका पूजन, शौच, सीधापन, ब्रह्मचर्यका पालन और अहिंसाका सेवन करे। वाणीसे अनुद्वेगकर, सत्य, मधुर और हितकर वचन बोले तथा स्वाध्याय करता रहे एवं मनसे प्रसन्नता, सौम्यता, मौन (भगवान्‌के नाम-रूप-गुणोंका मनन), मनका निग्रह, भावोंकी शुद्धि—इनका सेवन करे।

किसी भी लोभ या भयसे सत्य एवं धर्मका त्याग न करे, बल्कि सत्य तथा धर्मकी रक्षाके लिये अपने जीवनको न्योछावर कर दे।

दूसरेके दुःखको कभी अपना सुख न बनावे। अपना सारा सुख देकर दूसरेके दुःखोंका हरण करे और उसे सुखी बनावे तथा इसीमें परम सुखका अनुभव करे।

जितनेसे अपना पेट भरे उतनेपर ही अपना हक है। इससे अधिकको अपना माननेवाला चोर है और दण्डनीय है। अतएव सबका हक यथायोग्य सबको देकर केवल अपने हकसे ही अपना जीवन चलावे।

दूसरे सबको उनका स्वत्व देकर बचे हुएको [illegible] खाना ही यज्ञावशिष्ट भोजन है और इसीसे पाप [illegible] हैं। [illegible] केवल अपने लिये ही कमाता [illegible] है, वह तो पाप [illegible] है।

अपने पास संग्रह करे ही नहीं। [illegible] धन-सम्पत्ति अपने पास हो तो अपनेको उसका [illegible] न माने, ट्रस्टी माने और उस वस्तुको दूसरोंकी [illegible]

तथा यथायोग्य नियमानुसार उसका भगवत्सेवार्थ जनसेवामें खुले हाथों उपयोग करता रहे और उसमें अपना कुछ भी श्रेय न समझे।

किसीको कुछ देकर न उसपर अहसान करे, न उससे कृतज्ञता या बदला चाहे, न गिनावे—उसीकी वस्तु उसे दी गयी है, यही समझकर इसे भूल जाय।

अपने द्वारा किसीका कभी कुछ हित हुआ हो, उसे भूल जाय। दूसरेके द्वारा कभी अपना अहित हुआ हो उसे भूल जाय। दूसरेके द्वारा अपना कुछ हित हुआ हो उसे याद रक्खे और अपने द्वारा कभी किसीका कुछ अहित हुआ उसे याद रक्खे।

जैसे थोड़ा-सा भी कोढ़ सर्वाङ्गसुन्दर शरीरको बिगाड़ देता है, वैसे ही तनिक-सा भी लोभ यशस्वी पुरुषोंके शुद्ध यश और गुणी पुरुषोंके प्रशंसनीय गुणोंको नष्ट कर देता है।

चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, गर्व, अहंकार, भेदबुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा, लम्पटता, जूआ और शराब—ये पंद्रह अनर्थ मनुष्योंमें अर्थ—धनसे उत्पन्न होते हैं। इस अर्थनामधारी अनर्थमें ममता-आसक्ति न करके बुद्धिमान् पुरुषको इसकी इच्छा नहीं करनी चाहिये और मिल जाय तो उसे भगवान्की सेवामें लगा देना चाहिये।

संकल्पत्यागके द्वारा कामको जीते, कामके त्यागसे क्रोध-को जीते, धनसे होनेवाले अनर्थोंको दृष्टिमें रखकर लोभका त्याग करे तथा तत्त्वविचारके द्वारा भयको जीते।

महान् पापी भी यदि भगवान्को एकमात्र शरणदाता मानकर उनको अनन्यचित्तसे पुकारता है तो वह साधु ही माना जाता है।

भगवान्की कृपामें जितना बल है, उतना पापीके पापमें नहीं है। भगवान्की सभी शक्तियोंमें कृपाशक्ति सबसे बड़ी है।

किसीके नामके बहाने, परिहासमें, गीतके आलाप आदिके लिये अथवा अवहेलनासे भी लिया हुआ भगवान्का नाम सब पापोंको नाश करता है। अनजानमें अथवा जानकर उच्चारण किया हुआ जो श्रीहरिका नाम है, वह मनुष्यकी पापराशिको उसी प्रकार जला देता है, जैसे आग इन्धनको।

संसार बड़ा स्वार्थी है, यह दूसरेके संकटको नहीं जानता, जानता होता तो किसीसे कोई याचना नहीं करता। और जो देनेमें समर्थ है, वह माँगनेपर कभी इनकार नहीं करता।

धन, उत्तम कुल, रूप, तपस्या, वेदाध्ययन, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पुरुषार्थ, बुद्धि और योग—इन बारह गुणोंसे युक्त ब्राह्मण भी यदि भगवान् पद्मनाभके चरणकमलसे विमुख हो तो उससे वह चाण्डाल ही श्रेष्ठ है, जिसने मन, वचन, कर्म, धन, प्राण, सब कुछ भगवान्के चरणोंमें समर्पण कर दिये हैं; क्योंकि वह चाण्डाल तो अपने कुलको पवित्र करता है, किंतु बड़प्पनका अधिक अभिमान रखनेवाला वह ब्राह्मण अपनेको भी पवित्र नहीं कर सकता।

धन और भोगोंसे संतोष न होना ही जीवके संसारबन्धनमें पड़नेका कारण है। जो कुछ प्राप्त हो जाय उसीमें संतोष कर लेनेवालेको मुक्ति मिलती है।

भोगोंकी प्राप्तिसे भोगकामना कभी शान्त नहीं होती, अपितु घी-ईंधनसे प्रज्वलित होनेवाली अग्निकी भाँति अधिकाधिक बढ़ती है।

जो संतुष्ट है, निष्काम है तथा आत्मामें ही रमण करता है, उसे जो सुख मिलता है, वैसा सुख कामलालसा और धनकी इच्छासे इधर-उधर दौड़नेवालोंको कभी नहीं मिल सकता।

मनुष्यदेह भगवत्प्राप्तिके लिये मिला है, भोगप्राप्तिके लिये नहीं। मानवकी मानवता तभी सिद्ध होती है, जब वह भगवान्-की प्राप्तिके साधनोंमें लगकर अपने जीवनको सर्वथा भगवान्के अनुकूल बना लेता है या बनाना चाहता है।

सबमें सर्वदा भगवान्के दर्शन करके सबकी सेवा करने-वाला महापुरुष है। केवल मानवमें ही नहीं—पशु, पक्षी, कीट पतंग, जड-चेतन सभीमें भगवान् भरे हैं। भगवान् ही उनके रूपमें प्रकट हैं। यह अनुभव करके सबका हित, सबकी सेवा, सबको प्रणाम करे।

उपर्युक्त सभी चीजोंको समझना और जीवनमें उतारना मानव-जीवनकी पूर्णताके लिये अत्यावश्यक हैं। पर ये चीजें केवल सुननेसे नहीं मिलतीं। जिनके जीवनमें ये सब चीजें मूर्तिमान् हुई हों, जिन्होंने इनका प्रत्यक्ष पोषण और सेवन किया हो, उनकी उन जीवन-घटनाओंसे इनकी प्राप्त करने-की तीव्र प्रेरणा मिलती है, करनेकी युक्ति प्राप्त होती है। और प्राप्त करके कैसे उनका सेवन किया जाता है इसके लिये एक अनुभवपूर्ण आदर्श मिलता है। यही 'सत्कथा' की विशेषता तथा उपादेयता है।

प्रत्येक कल्याणकामी बालक-वृद्ध, नर-नारी, गृहस्थ-विरक्त, मानवमात्रको 'सत्कथा' का श्रवण, मनन, अध्ययन करके उसके अनुसार जीवन बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। यही विनीत प्रार्थना है।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

देवताओंका अभिमान और परमेश्वर

(लेखक—पण्डित श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

एक बार देवासुर-संग्राम हुआ। उसमें भगवान्‌की कृपासे देवताओंको विजय मिली। परमेश्वर तथा शास्त्रकी मर्यादा भङ्ग करनेवाले असुर हार गये। यद्यपि देवताओं-की इस महान् विजयमें एकमात्र प्रभुकी कृपा एवं इच्छा ही कारण थी, तथापि देवता इसे समझ न पाये। उन्होंने सोचा, यह विजय हमारी है और यह सौभाग्य-सुयश केवल हमारे ही पराक्रमका परिणाम है। भगवान्‌को देवताओंके इस अभिप्रायको समझते देर न लगी। वे उनके सम्पूर्ण दुर्गुणोंकी खान इस अहंकारको दूर करनेके लिये एक अद्भुत यक्षके रूपमें उनके सामने प्रकट हुए।

देवता उनके इस अद्भुत रूपको कुछ समझ न सके और बड़े विस्मयमें पड़ गये। उन्होंने सर्वज्ञकल्प अग्निको उनका पता लगानेके लिये भेजा। अग्निके वहाँ पहुँचनेपर यक्षरूप भगवान्‌ने उनसे प्रश्न किया कि 'आप कौन हैं?' अग्निने कहा—'तुम मुझे नहीं जानते? मैं इस विश्वमें 'अग्नि' नामसे प्रसिद्ध जातवेदा हूँ।' यक्षरूप भगवान्‌ने पूछा—'ऐसे प्रसिद्ध तथा गुण-सम्पन्न आपमें क्या शक्ति है?' इसपर अग्नि बोले कि 'मैं इस चराचर जगत्‌को जलाकर भस्म कर सकता हूँ।' इसपर (यक्षरूपमें) भगवान्‌ने उनके सामने एक तृण रख दिया और कहा, 'कृपाकर इसे जलाइये।' अग्निने बड़ी चेष्टा की, क्रोधसे स्वयं पैरसे चोटीतक प्रज्वलित हो उठे, पर वे उस तिनकेको न जला सके। अन्तमें वे निराश तथा लज्जित होकर लौट आये और देवताओंसे बोले कि 'मुझे इस यक्षका कुछ भी पता न लगा।' तदनन्तर सबकी सम्मतिसे वायु उस यक्षके पास गये और भगवान्‌ने उनसे भी वैसे ही पूछा कि 'आप कौन हैं तथा आपमें क्या शक्ति है?' उन्होंने कहा कि 'इस सारे विश्वमें वायु नामसे प्रसिद्ध मैं मातरिश्वा हूँ और मैं पृथ्वीके सारे पदार्थोंको उड़ा सकता हूँ।' इसपर भगवान्‌ने उसी तिनकेकी ओर इनका ध्यान आकृष्ट कराया और उसे उड़ानेको कहा। वायुदेवताने अपनी सारी शक्ति भिड़ा दी, पर वे उसे टस-से-मस न कर सके और अन्तमें लज्जित होकर देवताओंके पास लौट आये। जब देवताओंने उनसे पूछा कि 'क्या कुछ पता लगा कि यह यक्ष कौन था?' तब उन्होंने भी सीधा उत्तर दे दिया कि 'मैं तो बिल्कुल न जान सका कि वह यक्ष कौन है।'

अब अन्तमें देवताओंने इन्द्रसे कहा कि 'मघवन्! आप ही पता लगायें कि यह यक्ष कौन है?' 'बहुत अच्छा' कहकर इन्द्र उसके पास चले तो सही, पर वह यक्ष उनके वहाँ पहुँचनेके पूर्व ही अन्तर्धान हो गया। अन्तमें इन्द्रकी दृढ भक्ति एवं जिज्ञासा देखकर साक्षात् उमा—मूर्तिमती ब्रह्मविद्या, भगवती पार्वती वहाँ आकाशमें प्रकट हुईं। इन्द्रने उनसे पूछा कि 'माँ! यह यक्ष कौन था?' भगवती उमाने कहा कि 'वे यक्ष प्रसिद्ध परब्रह्म परमेश्वर थे। इनकी ही कृपा एवं लीलाशक्तिसे असुर पराजित हुए हैं, आपलोग तो केवल निमित्तमात्र रहे। आपलोग जो इसे अपनी विजय तथा शक्ति मान रहे हैं, यह आपका व्यामोह तथा मिथ्या अहंकार-मात्र है। इसी मोहमयी विनाशिका भ्रान्तिको दूर करनेके लिये परमेश्वरने आपके सामने यक्षरूपमें प्रकट होकर कुतूहल प्रदर्शन कर आपलोगोंके गर्वको भङ्ग किया है। अब आपलोग अच्छी तरह समझ लें कि इस विश्वमें जो बड़े-बड़े पराक्रमियोंका पराक्रम, बलवानों-का बल, विद्वानोंकी विद्या, तपस्वियोंका तप, तेजस्वियों-का तेज एवं ओजस्वियोंका ओज है, वह सब उन्हीं परम लीलामय प्रभुकी लीलामयी [illegible]

लवलेशांश मात्र है और इस विश्वके सम्पूर्ण हलचलोंके केन्द्र एकमात्र वे ही सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमेश्वर हैं। प्राणीका अपनी शक्तिका अहङ्कार मिथ्या भ्रममात्र है।'

उमाके वचनोंसे इन्द्रकी आँखें खुल गयीं। उन्हें अपनी भूलपर बड़ी लज्जा आयी। लौटकर उन्होंने सभी देवताओंको सम्पूर्ण रहस्य बतलाकर सुखी किया। (केनोपनिषद्)

यमके द्वारपर

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे, साहित्यरत्न)

'न देने योग्य गौके दानसे दाताका उल्टे अमङ्गल होता है' इस विचारसे सात्त्विक बुद्धि-सम्पन्न ऋषिकुमार नचिकेता अधीर हो उठे। उनके पिता वाजश्रवस—वाजश्रवाके पुत्र उद्दालकने विश्वजित् नामक महान् यज्ञके अनुष्ठानमें अपनी सारी सम्पत्ति दान कर दी, किंतु ऋषि-ऋत्विज् और सदस्योंकी दक्षिणामें अच्छी-बुरी सभी गौएँ दी जा रही थीं। पिताके मङ्गलकी रक्षाके लिये अपने अनिष्टकी आशङ्का होते हुए भी उन्होंने विनयपूर्वक कहा—'पिताजी! मैं भी आपका धन हूँ, मुझे किसे दे रहे हैं—'तत कस्मै मां दास्यसीति।''

उद्दालकने कोई उत्तर नहीं दिया। नचिकेताने पुनः वही प्रश्न किया, पर उद्दालक टाल गये।

'पिताजी! मुझे किसे दे रहे हैं?' तीसरी बार पूछनेपर उद्दालकको क्रोध आ गया। चिढ़कर उन्होंने कहा—'तुम्हें देता हूँ मृत्युको—मृत्यवे त्वां ददामीति।'

नचिकेता विचलित नहीं हुए। परिणामके लिये वे पहलेसे ही प्रस्तुत थे। उन्होंने हाथ जोड़कर पितासे कहा—'पिताजी! शरीर नश्वर है, पर सदाचरण सर्वोपरि है। आप अपने वचनकी रक्षाके लिये यम-सदन जानेकी मुझे आज्ञा दें।'

ऋषि सहम गये, पर पुत्रकी सत्यपरायणता देखकर उसे यमपुरी जानेकी आज्ञा उन्होंने दे दी। नचिकेताने पिताके चरणोंमें सभक्ति प्रणाम किया और वे यमराजकी पुरीके लिये प्रस्थित हो गये।

यमराज काँप उठे। अतिथि ब्राह्मणका सत्कार न करनेके कुपरिणामसे वे पूर्णतया परिचित थे और ये तो अग्नितुल्य तेजस्वी ऋषिकुमार थे, जो उनकी अनुपस्थितिमें उनके द्वारपर बिना अन्न-जल ग्रहण किये तीन रात बिता चुके थे। यम जलपूरित स्वर्ण-कलश अपने ही हाथोंमें लिये दौड़े। उन्होंने नचिकेताको सम्मानपूर्वक पाद्यार्घ्य देकर अत्यन्त विनयसे कहा—'आदरणीय ब्राह्मणकुमार! पूज्य अतिथि होकर भी आपने मेरे द्वारपर तीन रात्रियाँ उपवासमें बिता दीं, यह मेरा अपराध है। आप प्रत्येक रात्रिके लिये एक-एक वर मुझसे माँग लें।'

'मृत्यो! मेरे पिता मेरे प्रति शान्त-सकल्प, प्रसन्नचित्त और क्रोधरहित हो जायँ और जब मैं आपके यहाँसे लौटकर घर जाऊँ, तब वे मुझे पहचानकर प्रेमपूर्वक बातचीत करें।' पितृभक्त बालकने प्रथम वर माँगा।

'तथास्तु' यमराजने कहा।

'मृत्यो! स्वर्गके साधनभूत अग्निको आप भलीभाँति जानते हैं। उसे ही जानकर लोग स्वर्गमें अमृतत्व—देवत्वको प्राप्त होते हैं, मैं उसे जानना चाहता हूँ। यही मेरी द्वितीय वर-याचना है।'

'यह अग्नि अनन्त स्वर्ग-लोककी प्राप्तिका साधन है'—यमराज नचिकेताको अल्पायु, तीक्ष्णबुद्धि तथा वास्तविक जिज्ञासुके रूपमें पाकर प्रसन्न थे। उन्होंने कहा—'यही विराट्रूपसे जगत्की प्रतिष्ठाका मूल कारण है। इसे आप विद्वानोंकी बुद्धिरूप गुहामें स्थित समझिये।'

उस अग्निके लिये जैसी और जितनी ईंटें चाहिये, वे जिस प्रकार रक्खी जानी चाहिये तथा यज्ञस्थली-निर्माणके लिये आवश्यक सामग्रियाँ और अग्निचयन करनेकी विधि बतलाते हुए अत्यन्त संतुष्ट होकर यमने द्वितीय वरके रूपमें कहा—'मैंने जिस अग्निकी बात आपसे कही, वह आपके ही नामसे प्रसिद्ध होगी और आप इस विचित्र रत्नोंवाली मालाको भी ग्रहण कीजिये।'

'तृतीयं वरं नचिकेता वृणीष्व।'

'हे नचिकेता, अब तीसरा वर माँगिये।' अग्निको स्वर्गका साधन अच्छी प्रकार बतलाकर यमने कहा।

'आप मृत्युके देवता हैं' श्रद्धा-समन्वित नचिकेताने कहा—'आत्माका प्रत्यक्ष या अनुमानसे निर्णय नहीं हो पाता। अतः मैं आपसे वही आत्म-तत्त्व जानना चाहता हूँ। कृपापूर्वक बतला दीजिये।'

यम झिझके। आत्म-विद्या साधारण विद्या नहीं। उन्होंने नचिकेताको उस ज्ञानकी दुरूहता बतलायी, पर उनको वे अपने निश्चयसे नहीं डिगा सके। यमने भुवन-मोहन अस्त्रका उपयोग किया—सुर-दुर्लभ सुन्दरियाँ और दीर्घकालस्थायिनी भोग-सामग्रियोंका प्रलोभन दिया, पर ऋषिकुमार अपने तत्त्व-सम्बन्धी गूढ़ वरसे विचलित नहीं हो सके।

'आप बड़े भाग्यवान् हैं।' यमने नचिकेताके वैराग्यकी प्रशंसा की और वित्तमयी संसारगतिकी निन्दा करते हुए बतलाया कि विवेक-वैराग्य-सम्पन्न पुरुष ही ब्रह्मज्ञान-प्राप्तिके अधिकारी हैं। श्रेय-प्रेय और विद्या-अविद्याके विपरीत स्वरूपका यमने पूरा वर्णन करते हुए कहा—'आप श्रेय चाहते हैं तथा विद्याके अधिकारी हैं।'

'हे भगवन्! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो सब प्रकारके व्यावहारिक विषयोंसे अतीत जिस परब्रह्मको आप देखते हैं, मुझे अवश्य बतलानेकी कृपा कीजिये।'

'आत्मा चेतन है। वह न जन्मता है, न मरता है। न यह किसीसे उत्पन्न हुआ है और न कोई दूसरा ही इससे उत्पन्न हुआ है।' नचिकेताकी जिज्ञासा देखकर यम अत्यन्त प्रसन्न हो गये थे। उन्होंने आत्माके स्वरूपको विस्तारपूर्वक समझाया—'वह अजन्मा है, नित्य है, शाश्वत है, सनातन है, शरीरके नाश होनेपर भी बना रहता है। वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और महान्‌से भी महान् है। वह समस्त अनित्य शरीरोंमें रहते हुए भी शरीररहित है, समस्त अस्थिर पदार्थोंमें व्याप्त होते हुए भी सदा स्थिर है। वह कण-कणमें व्याप्त है। सारा सृष्टिक्रम उसीके आदेशपर चलता है। अग्नि उसीके भयसे जलता है, सूर्य उसीके भयसे तपता है तथा इन्द्र, वायु और पाँचवाँ मृत्यु उसीके भयसे दौड़ते हैं। जो पुरुष कालके गालमें जानेसे पूर्व उसे जान लेते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। शोकादि क्लेशोंको पारकर परमानन्दको प्राप्त कर लेते हैं।'

यमने कहा, 'वह न तो वेदके प्रवचनसे प्राप्त होता है, न विशाल बुद्धिसे मिलता है और न केवल जन्मभर शास्त्रोंके श्रवणसे ही मिलता है।

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।

वह उन्हींको प्राप्त होता है, जिनकी वासनाएँ शान्त हो चुकी हैं, कामनाएँ मिट गयी हैं और जिनके पवित्र अन्तःकरणको मलिनताकी छाया भी स्पर्श नहीं कर पाती तथा जो उसे पानेके लिये अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं।'

× × ×

आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लेनेके बाद उद्दालक-पुत्र कुमार नचिकेता लौटे तो उन्होंने देखा कि [illegible] समुदाय भी उनके स्वागतार्थ खड़ा है।

आपद्धर्म

एक समय कुरुदेशमें ओलोंकी बड़ी भारी वर्षा हुई। इससे सारे उगते हुए पौधे नष्ट हो गये और भयानक अकाल पड़ गया। दुष्कालसे पीड़ित प्रजा अन्नके अभावसे देश छोड़कर भागने लगी। वहीं एक उषस्ति नामके ब्राह्मण भी रहते थे। उनकी स्त्रीका नाम आटिकी था। वह अभी बालिका ही थी। उसे लेकर उषस्ति भी देश छोड़कर इधर-उधर भटकने लगे। भटकते-भटकते वे दोनों एक महाव्रतोंके ग्राममें पहुँचे। भूखके मारे बेचारे उषस्ति उस समय मरणासन्न दशाको प्राप्त हो रहे थे। उन्होंने देखा कि एक महावत उबाले हुए उड़द खा रहा है। वे उसके पास गये और उससे कुछ उड़द देनेको कहा। महावतने कहा—'मैं इस बर्तनमें रक्खे हुए जो उड़द खा रहा हूँ, इनके अतिरिक्त मेरे पास और उड़द हैं ही नहीं, तब मैं कहाँसे दूँ?' उषस्तिने कहा—'मुझे इनमेंसे ही कुछ दे दो।' इसपर महावतने थोड़े-से उड़द उषस्तिको दे दिये और सामने जल रखकर कहा कि 'लो, उड़द खाकर जल पी लो।' उषस्ति बोले—'नहीं, मैं यह जल नहीं पी सकता; क्योंकि इसके पीनेसे मुझे उच्छिष्ट-पानका दोष लगेगा।'

महावतको इसपर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने पूछा कि 'ये उड़द भी तो हमारे जूँठे हैं; फिर जलमें ही क्या रक्खा है जो इसमें जूँठनका दोष आ पड़ा?'

उषस्तिने कहा—'भाई! मैं यदि यह उड़द न खाता तो मेरे प्राण निकल जाते। प्राणोंकी रक्षाके लिये आपद्धर्मकी व्यवस्थानुसार ही मै उड़द खा रहा हूँ। पर जल तो अन्यत्र भी मिल जायगा। यदि उड़दकी तरह ही मैं तुम्हारा जूँठा जल भी पी लूँ, तब तो वह स्वेच्छाचार हो जायगा। इसलिये भैया! मैं तुम्हारा जल नहीं पीऊँगा।' यों कहकर उषस्तिने कुछ उड़द स्वयं खा लिये और शेष अपनी पत्नीको दे दिये। ब्राह्मणीको पहले ही कुछ खानेको मिल गया था; इसलिये उन उड़दोंको उसने खाया नहीं, अपने पास रख लिया।

दूसरे दिन प्रातःकाल उषस्तिने नित्यकृत्यके बाद अपनी स्त्रीसे कहा—'क्या करूँ, मुझे जरा-सा भी अन्न कहींसे खानेको मिल जाय तो मैं अपना निर्वाह होने लायक कुछ धन प्राप्त कर लूँ; क्योंकि यहाँसे समीप ही एक राजा यज्ञ कर रहा है, वह ऋत्विक्‌के कार्यमें मेरा भी वरण कर लेगा।'

इसपर उनकी स्त्री आटिकीने कहा—'मेरे पास कलके बचे हुए उड़द हैं; लीजिये, उन्हें खाकर आप यज्ञमें चले जाइये।' भूखसे सर्वथा अशक्त उषस्तिने उन्हें खा लिया और वे राजाके यज्ञमें चले गये। वहाँ जाकर वे उद्गाताओंके पास बैठ गये और उनकी भूल देखकर बोले—'प्रस्तोतागण! आप जानते हैं—जिन देवताकी आप स्तुति कर रहे हैं, वे कौन हैं? याद रखिये आप यदि अधिष्ठाताको जाने बिना स्तुति करेंगे तो आपका मस्तक गिर पड़ेगा।' और इसी प्रकार उन्होंने उद्गाताओं एवं प्रतिहर्ताओंसे भी कहा। यह सुनते ही सभी ऋत्विज् अपने-अपने कर्म छोड़कर बैठ गये।

राजाने अपने ऋत्विजोंकी यह दशा देखकर उषस्तिसे पूछा—'भगवन्! आप कौन हैं? मैं आपका परिचय जानना चाहता हूँ।' उषस्तिने कहा—'राजन्! मैं चक्रका पुत्र उषस्ति हूँ।' राजाने कहा, 'ओहो, भगवन्, उषस्ति आप ही हैं? मैंने आपके बहुत-से गुण सुने हैं। इसीलिये मैंने ऋत्विज्‌के कामके लिये आपकी बहुत खोज करवायी थी; पर आप न मिले और मुझे दूसरे ऋत्विजोंको वरण करना पड़ा। यह मेरा बड़ा सौभाग्य है, जो आप किसी प्रकार स्वयं पधार गये। अब ऋत्विज्सम्बन्धी समस्त कर्म आप ही करनेकी कृपा करें।'

उषस्तिने कहा—'बहुत अच्छा! परंतु इन ऋत्विजों-को हटाना नहीं, मेरे आज्ञानुसार ये अपना-अपना कार्य करें और दक्षिणा भी जो इन्हें दी जाय, उतनी ही मुझे देना (न तो मैं इन लोगोंको निकालना चाहता हूँ और न दक्षिणामें अधिक धन लेकर इनका

अपमान ही करना चाहता हूँ । मेरी देख-रेखमें ये सब काम करते रहेंगे।) ।' तदनन्तर सभी ऋत्विज् उषस्तिके पास जाकर, तत्त्वोंको जानकर यज्ञकार्यमें लग गये और विधिपूर्वक वह यज्ञ सम्पन्न हुआ ।

—जा० श० (छान्दोग्य० अ० १, ख० १०-११)

गो-सेवासे ब्रह्मज्ञान

एक सदाचारिणी ब्राह्मणी थी, उसका नाम था जबाला । उसका एक पुत्र था सत्यकाम । वह जब विद्याध्ययन करने योग्य हुआ, तब एक दिन अपनी मातासे कहने लगा—'माँ ! मैं गुरुकुलमें निवास करना चाहता हूँ; गुरुजी जब मुझसे नाम, गोत्र पूछेंगे तो मैं अपना कौन गोत्र बतलाऊँगा ?' इसपर उसने कहा कि 'पुत्र ! मुझे तेरे पितासे गोत्र पूछनेका अवसर नहीं प्राप्त हुआ; क्योंकि उन दिनों मैं सदा अतिथियोंकी सेवामें ही लगी रहती थी । अतएव जब आचार्य तुमसे गोत्रादि पूछें, तब तुम इतना ही कह देना कि मैं जबालाका पुत्र सत्यकाम हूँ ।' माताकी आज्ञा लेकर सत्यकाम हारिद्रुमत गौतमऋषिके यहाँ गया और बोला—'मैं श्रीमान्‌के यहाँ ब्रह्मचर्यपूर्वक सेवा करने आया हूँ ।' आचार्यने पूछा, 'वत्स ! तुम्हारा गोत्र क्या है ?'

सत्यकामने कहा, 'भगवन् ! मेरा गोत्र क्या है, इसे मैं नहीं जानता । मैं सत्यकाम जाबाल हूँ, बस, इतना ही इस सम्बन्धमें जानता हूँ ।' इसपर गौतमने कहा—'वत्स ! ब्राह्मणको छोड़कर दूसरा कोई भी इस प्रकार सरल भावसे सच्ची बात नहीं कह सकता । जा, थोड़ी समिधा ले आ । मै तेरा उपनयन-संस्कार करूँगा ।'

सत्यकामका उपनयन करके चार सौ दुर्बल गायोंको उसके सामने लाकर गौतमने कहा—'तू इन्हें वनमें चराने ले जा । जबतक इनकी संख्या एक हजार न हो जाय, इन्हें वापस न लाना ।' उसने कहा—'भगवन् ! इनकी संख्या एक हजार हुए बिना मैं न लौटूँगा ।'

सत्यकाम गायोंको लेकर वनमें गया । वहाँ वह कुटिया बनाकर रहने लगा और तन-मनसे गौओंकी सेवा करने लगा । धीरे-धीरे गायोंकी संख्या पूरी एक हजार हो गयी । तब एक दिन एक वृषभ (साँड़) ने सत्यकामके पास आकर कहा—'वत्स, हमारी संख्या एक हजार हो गयी है, अब तू हमें आचार्यकुलमें पहुँचा दे । साथ ही ब्रह्मतत्त्वके सम्बन्धमें तुझे एक चरणका मैं उपदेश देता हूँ । वह ब्रह्म 'प्रकाशस्वरूप' है, इसका दूसरा चरण तुझे अग्नि बतलायेंगे ।'

सत्यकाम गौओंको हाँककर आगे चला । सन्ध्या होनेपर उसने गायोंको रोक दिया और उन्हें जल पिलाकर वहीं रात्रि-निवासकी व्यवस्था की । तत्पश्चात् काष्ठ लाकर उसने अग्नि जलायी । अग्निने कहा, 'सत्यकाम ! मैं तुझे ब्रह्मका द्वितीय पाद बतलाता हूँ, वह 'अनन्त' लक्षणात्मक है, अगला उपदेश तुझे हंस करेगा ।'

दूसरे दिन सायंकाल सत्यकाम पुनः किसी सुन्दर जलाशयके किनारे ठहर गया और उसने गौओंके रात्रि-निवासकी व्यवस्था की । इतनेमें ही एक हंस ऊपरसे उड़ता हुआ आया और सत्यकामके पास बैठकर बोला—'सत्यकाम !' सत्यकामने कहा—'भगवन् ! क्या आज्ञा है ?' हंसने कहा—'मैं तुझे ब्रह्मके तृतीय पादका उपदेश कर रहा हूँ, वह 'ज्योतिष्मान्' है, चतुर्थ पादका उपदेश तुझे मुद्र (जलकुक्कुट) करेगा ।'

दूसरे दिन सायंकाल सत्यकामने एक वटवृक्षके नीचे गौओंके रात्रिनिवासकी व्यवस्था की । अग्नि जलाकर वह बैठ ही रहा था कि एक जलमुर्गेने आकर पुकारा और कहा—'वत्स ! मैं तुझे ब्रह्मके चतुर्थ पादका उपदेश करता हूँ, वह 'आयतनस्वरूप' है ।'

इस प्रकार उन-उन देवताओंसे सच्चिदानन्दघन-[illegible] परमात्माका बोध प्राप्तकर एक साथ [illegible] सत्यकाम आचार्य गौतमके यहाँ पहुँचा । [illegible] उसकी चिन्तारहित, तेजपूर्ण दिव्य [illegible] कहा—'वत्स ! तू ब्रह्मज्ञानीके सदृश [illegible] है ।' सत्यकामने कहा, 'भगवन् ! मुझे मनुष्येतरोंसे [illegible]

मिली है। मैंने सुना है कि आपके सदृश आचार्यके द्वारा प्राप्त हुई विद्या ही श्रेष्ठ होती है, अतएव मुझे आप ही पूर्णरूपसे उपदेश कीजिये।' आचार्य बड़े प्रसन्न हुए और बोले—'वत्स! तूने जो प्राप्त किया है, वही ब्रह्म-तत्त्व है।' और उस सम्पूर्ण तत्त्वका पुनः ठीक उसी प्रकार उपदेश किया। —जा० श० (छान्दोग्य० ४ । ४–६)

अग्नियोंद्वारा उपदेश

कमलका पुत्र उपकोसल सत्यकाम जाबालके यहाँ ब्रह्मचर्य ग्रहण करके अध्ययन करता था। बारह वर्षोंतक उसने आचार्य एवं अग्नियोंकी उपासना की। आचार्यने अन्य सभी ब्रह्मचारियोंका समावर्तन-संस्कार कर दिया और उन्हें घर जानेकी आज्ञा दे दी। केवल उपकोसल-को ऐसा नहीं किया।

उपकोसलके मनमे दुःख हुआ। गुरुपत्नीको उसपर दया आ गयी। उसने अपने पतिसे कहा—'इस ब्रह्मचारीने बड़ी तपस्या की है, ब्रह्मचर्यके नियमोंका पालन करते हुए विद्याध्ययन किया है। साथ ही आपकी तथा अग्नियों-की विधिपूर्वक परिचर्या की है। अतएव कृपया इसको उपदेश कर इसका भी समावर्तन कर दीजिये। अन्यथा अग्नि आपको उलाहना देंगे।' पर सत्यकामने बात अनसुनी कर दी और बिना कुछ कहे ही वे कहीं अन्यत्र यात्रामे चले गये।

उपकोसलको इससे बडा क्लेश हुआ। उसने अनशन आरम्भ किया। आचार्यपत्नीने कहा—'ब्रह्मचारी! तुम भोजन क्यों नहीं करते?' उसने कहा—'माँ, मुझे बड़ा मानसिक क्लेश है, इसलिये भोजन नहीं करूँगा।'

अग्नियोंने सोचा—'इस तपस्वी ब्रह्मचारीने मन लगाकर हमारी बहुत सेवा की है। अतएव उपदेश करके इसके मानसिक क्लेशको मिटा दिया जाय।' ऐसा विचार करके उन्होंने उपकोसलको ब्रह्मविद्याका यथोचित उपदेश दे दिया। तदनन्तर कुछ दिनों बाद उसके आचार्य सत्य-काम यात्रासे लौटे। इधर उपकोसलका मुखमण्डल ब्रह्म-तेजसे देदीप्यमान हो रहा था। आचार्यने पूछा—'सौम्य! तेरा मुख ब्रह्मवेत्ता-जैसा दीख रहा है; बता, तुझे किसने ब्रह्मका उपदेश किया?' उपकोसलने बड़े संकोचसे सारा समाचार सुनाया। इसपर आचार्यने कहा—'यह सब उपदेश तो अलौकिक नहीं हैं। अब मुझसे उस अलौकिक ब्रह्मतत्त्वका उपदेश सुन, जिसे भली प्रकार जान लेने-पर—साक्षात् कर लेनेपर पाप-ताप प्राणीको उसी प्रकार स्पर्श नहीं कर पाते, जैसे कमलके पत्तेको जल।'

इतना कहकर आचार्यने उपकोसलको ब्रह्मतत्त्वका रहस्यमय उपदेश किया और समावर्तन-संस्कार करके उसे घर जानेकी आज्ञा दे दी। —जा० श०

(छान्दोग्य० ४ । १०—१५)

गाड़ीवालेका ज्ञान

एक बड़ा दानी राजा था, उसका नाम था जानश्रुति। उसने इस आशयसे कि लोग सब जगह मेरा ही अन्न खायेंगे, सर्वत्र धर्मशालाएँ बनवा दी थीं और अन्न-सत्रादि खोल रक्खे थे। एक दिन रात्रिमें कुछ हंस उड़कर राजाके महलकी छतपर जा बैठे। उनमेंसे पिछले हंसने अगलेसे कहा—'अरे ओ भल्लाक्ष! ओ भल्लाक्ष! देख, जानश्रुतिका तेज द्युलोकके समान फैला हुआ है। कहीं उसका स्पर्श न कर लेना, अन्यथा वह तुझे भस्म कर डालेगा।'

इसपर दूसरे (अग्रगामी) हंसने कहा—'बेचारा यह राजा तो अत्यन्त तुच्छ है; मालूम होता है तुम गाड़ीवाले रैक्कको नहीं जानते। इसीलिये इसका तेज उसकी अपेक्षा अत्यल्प होनेपर भी तुम इसकी वैसी प्रशंसा कर रहे हो।' इसपर पिछले हंसने पूछा—'भाई! गाड़ी-वाला रैक्क कैसा है?' अगले हंसने कहा—'भाई! उस रैक्ककी महिमाका क्या बखान किया जाय! जुआरीका जब पासा पड़ता है, तब जैसे वह तीनोंको जीत लेता है, इसी प्रकार जो कुछ प्रजा शुभ कार्य करती है, वह सब रैक्कको प्राप्त हो जाता है। वास्तवमें जो तत्त्व रैक्क जानता है, उसे जो भी जान लेता है, वह वैसा ही फल प्राप्त करता है।'

जानश्रुति इन सारी बातोंको ध्यानसे सुन रहा था।

प्रातःकाल उठते ही उसने अपने सेवकोंको बुलाकर कहा—'तुम गाड़ीवाले रैक्वके पास जाकर कहो कि राजा जानश्रुति उनसे मिलना चाहता है।' राजाके आज्ञानुसार सर्वत्र खोज हुई, पर रैक्वका कहीं पता न चला। राजाने विचार किया कि इन सबने रैक्वको ग्रामों तथा नगरोंमें ही ढूँढ़ा है और उनसे पुनः कहा कि 'अरे जाओ, उन्हें ब्रह्मवेत्ताओंके रहने योग्य स्थानों (अरण्य, नदीतट आदि एकान्त स्थानों) में ढूँढ़ो।'

अन्तमें वे एक निर्जन प्रदेशमें गाड़ीके नीचे बैठे हुए शरीर खुजलाते हुए मिल ही गये। राजपुरुषोंने पूछा—'प्रभो! क्या गाड़ीवाले रैक आप ही हैं?' मुनिने कहा—'हाँ, मैं ही हूँ।'

पता लगनेपर राजा जानश्रुति छः सौ गौएँ, एक हार और एक खच्चरियोंसे जुता हुआ रथ लेकर उनके पास गया और बोला—'भगवन्! मैं यह सब आपके लिये लाया हूँ। कृपया आप इन्हें स्वीकार कीजिये तथा जिस देवताकी उपासना करते हैं, उसका मुझे उपदेश कीजिये।' राजाकी बात सुनकर मुनिने कहा—'अरे शूद्र! ये गायें, हार और रथ तू अपने ही पास रख।' यह सुनकर राजा घर लौट आया और पुनः दूसरी बार एक सहस्र गायें, एक हार, एक रथ और अपनी पुत्रीको लेकर मुनिके पास गया और हाथ जोड़कर कहने लगा—'भगवन्! आप इन्हें स्वीकार करें और अपने उपास्यदेवताका मुझे उपदेश दें।'

मुनिने कहा—'हे शूद्र! तू फिर ये सब चीजें मेरे लिये लाया? (क्या इनसे ब्रह्मज्ञान खरीदा जा सकता है?) राजा चुप होकर बैठ गया। तदनन्तर राजाको धनादिके अभिमानसे शून्य जानकर उन्होंने ब्रह्मविद्याका उपदेश किया। जहाँ रैक मुनि रहते थे, उस पुण्य प्रदेशका नाम रैक्वपर्ण हो गया। —जा० श० (छान्दोग्य० ४।१-२)

एक अक्षरसे तीन उपदेश

एक बार देवता, मनुष्य और असुर—ये तीनों ही ब्रह्माजीके पास ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याध्ययन करने गये। कुछ काल बीत जानेपर उन्होंने उनसे उपदेश (समावर्तन) ग्रहण करनेकी इच्छा प्रकट की। सबसे प्रथम देवताओंने कहा—'प्रभो! हमें उपदेश कीजिये।' प्रजापतिने एक ही अक्षर कह दिया 'द'। देवताओंने कहा 'हम समझ गये। हमारे स्वर्गादि लोकोंमे भोगोंकी ही भरमार है। उन्हींमें लिप्त होकर हम अन्तमें स्वर्गसे गिर जाते हैं, अतएव आप हमें 'द' से 'दमन' अर्थात् इन्द्रिय-संयमका उपदेश कर रहे हैं।' तब प्रजापति ब्रह्माने कहा, 'ठीक है, तुम समझ गये।'

फिर मनुष्योंने प्रजापतिसे कहा—'आप हमें उपदेश कीजिये।' प्रजापतिने उनसे भी 'द' इस एक अक्षरको ही कहा और पूछा कि 'क्या तुम समझ गये?' मनुष्योंने कहा—'जी, समझ गये, आपने हमे दान करनेका उपदेश दिया है; क्योंकि हमलोग जन्मभर संग्रह करनेकी ही लिप्सामें लगे रहते है, अतएव हमारा दानमे ही कल्याण है।' तब प्रजापतिने कहा 'ठीक है, मेरे कथनका यही अभिप्राय था।'

अब असुरोंने उनके पास जाकर उपदेशकी प्रार्थना की। प्रजापतिने इन्हे भी 'द' अक्षरका ही उपदेश किया। असुरोंने सोचा, 'हमलोग स्वभावसे ही हिंसक हैं, क्रोध और हिंसा हमारा नित्यका सहज व्यापार है। अतएव निःसदेह हमारे कल्याणका मार्ग एकमात्र 'दया' ही है। प्रजापतिने हमें उसीका उपदेश किया है, क्योंकि दयासे ही हम इन दुष्कर्मोंको छोड़कर पाप-तापसे मुक्त हो सकते हैं।' यों विचारकर वे जब चलनेको तैयार हुए, तब प्रजापतिने उनसे पूछा 'क्या तुम समझ गये?' असुरोंने कहा—'प्रभो! आपने हमें प्राणिमात्रपर दया करनेका उपदेश दिया है।' प्रजापतिने कहा, 'ठीक है, तुम समझ गये।'

प्रजापतिके अनुशासनकी प्रतिध्वनि आज भी मेघ-गर्जनामें हमे 'द, द, द' के रूपमें अनुदिन होती सुनायी पड़ती है। अर्थात् भोगप्रधान देवताओ! इन्द्रियोंका दमन करो। संग्रहप्रधान मनुष्यो! भोगसामग्रीका दान करो। और क्रोधप्रधान असुरो! जीवमात्रपर दया करो। इससे हमें दम, दान और दया—इन तीनोंको सीखना तथा अपनाना चाहिये। —जा० श० (बृहदारण्यक उ० [illegible])

कुमारी केशिनीका त्याग और प्रह्लादका न्याय

(लेखक—पं० श्रीरामनिवासजी शर्मा)

पञ्चाल-प्रदेशकी सर्वगुणसम्पन्ना विवेकशीला लोक-विश्रुत सुन्दरी एक स्वयंवरा कन्या थी। वह श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न सत्पुरुषसे ही विवाह करना चाहती थी। वह इस बातको अच्छी तरह समझती थी कि विवाह-योग्य वरके सम्मान्य गुणोंमें सत्कुलका महनीय स्थान है। यही कारण था कि उसने वैवाहिक जीवनके सब सुखोंपर सत्कुलको ही विशेषता दी और तपस्वी ऋषि-कुमार सुधन्वासे विवाह करनेका निश्चय किया।

केशिनीके पास विवाहार्थी अनेक राजकुमारोंके भी प्रस्ताव आये; परंतु उसने सबको ठुकरा दिया। एक दिन सम्राट् प्रह्लादके युवराज विरोचनने भी अपनी विवाहेच्छा उसके सम्मुख प्रकट की।

यद्यपि युवराज विरोचनके साथ विवाह करनेके सांसारिक लाभ केशिनीकी दृष्टिसे ओझल नहीं थे, तथापि उसने विरोचनको इन शब्दोंमें उत्तर दिया—

'राजकुमार! मैंने महर्षि अङ्गिराके पुत्र सुधन्वासे विवाह करनेका निश्चय किया है, परंतु यह निश्चय उनके कुल-श्रेष्ठ होनेके कारण ही किया गया है। अब आप ही बताइये कि कुलमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं या दैत्य; यदि ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं तो मैं सुधन्वासे विवाह क्यों न करूँ?'

इसपर विरोचनने दैत्य-कुलके श्रेष्ठत्वका प्रतिपादन किया। उत्तरमें केशिनीने कहा—'ठीक है, यदि आपका ऐसा मत है तो कल प्रातःकाल स्वयंवरसे पहले हमारे घरपर आ जाइये; वहाँ सुधन्वा भी होंगे, आप इस विषयमें उनसे विचार-विनिमय कर सकते हैं।'

प्रातःकाल दोनों कुमार केशिनीके घरपर पहुँचे, परतु वहाँ एक अरुचिकर घटना हो गयी। वह यह कि विरोचन पहले पहुँचे और सुधन्वा पीछे। इसलिये विरोचनने उससे कहा, 'सुधन्वा! तुम यहाँ मेरे पास सिंहासनपर बैठो।' किंतु सुधन्वाने उसके पास बैठनेसे इन्कार करते हुए यह कहा कि 'समान-गुणशील व्यक्ति ही एक साथ बैठ सकते है।' पिता-पुत्र, दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो वृद्ध और दो शूद्र एक आसनपर साथ बैठ सकते हैं। इस दृष्टिसे मैं तुम्हारे पास नहीं बैठ सकता; क्योंकि तुम मेरे समान नहीं हो। सम्भवतः तुम्हें यह बात मालूम नहीं कि जब मैं तुम्हारे पिताकी सभामें जाता था, तब वे मुझे उच्चासनपर बैठाकर स्वयं मुझसे नीचे बैठते थे और मेरी सेवा-शुश्रूषा भी करते थे।

इसपर दोनोंमें विवाद छिड़ गया; परंतु वे एकमत नहीं हो सके। ऐसी परिस्थितिमें उन्होंने किसी न्यायाधीश-से ही निर्णय लेना उचित समझा। परंतु विरोचनके यह कहनेपर कि वे देवता और ब्राह्मणको न्यायाधीश नहीं बना सकते, सुधन्वाने विरोचनके पिता सम्राट् प्रह्लादजी-को ही न्यायाधीश चुना; किंतु इसमें शर्त यह रही कि विजित व्यक्ति विजेताके चरणोंमें अपने प्राण समर्पित कर दे।

इसपर दोनों न्याय-पिपासु कुमार महाराज श्रीप्रह्लाद-जीके पास गये और उनसे सब कुछ कह दिया। प्राण-पणकी बात भी कह दी और न्यायके लिये दोनोंने उनसे प्रार्थना की।

प्रह्लादजी एक बार तो पुत्र-स्नेहसे सकुचाये; किंतु उन्होंने धर्माधर्म और सत्यासत्यके विषयमे सुधन्वासे विचार-विनिमय किया। सुधन्वाने बतलाया—

यां रात्रिमधिविन्ना स्त्री यां चैवाक्षपराजितः।
यां च भारभितप्ताङ्गो दुर्विवक्ता स्म तां वसेत्॥
नगरे प्रतिरुद्धः सन् बहिर्द्वारे बुभुक्षितः।
अमित्रान् भूयसः पश्येद् यः साक्ष्यमनृतं वदेत्॥
पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते॥
हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन्।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मास्म भूम्यनृतं वदेः॥

(महा० उद्योग० ३५। ३१–३४)

सौतवाली स्त्री, जूएमें हारे हुए जुआरी और भार ढोनेसे व्यथित शरीरवाले मनुष्यकी रात्रिमें जो स्थिति होती हैं, वही उल्टा न्याय देनेवाले वक्ताकी होती है।

कुमारी केशिनीका न्याय-प्रह्लादका न्याय
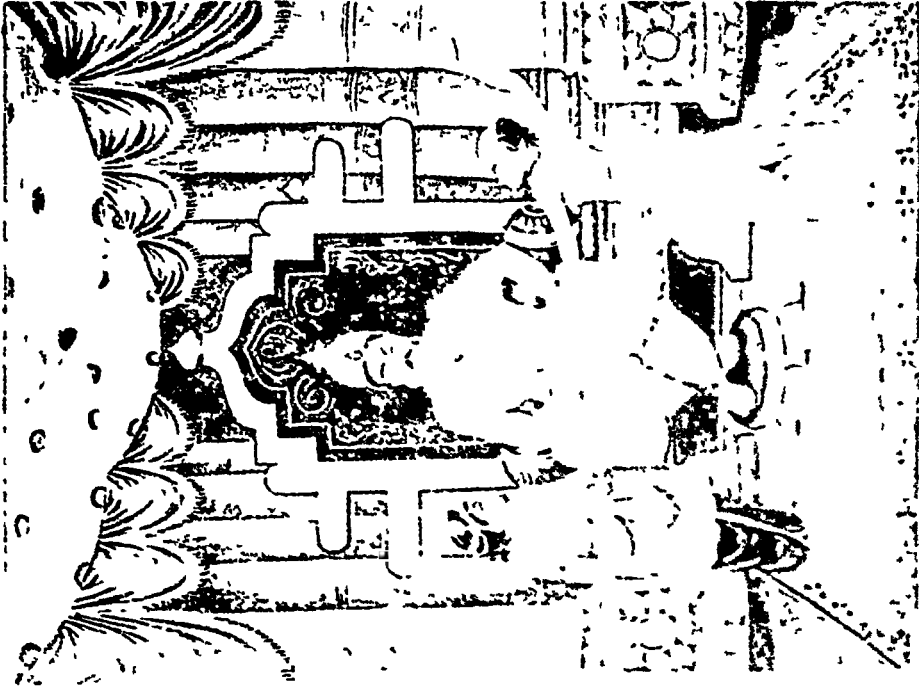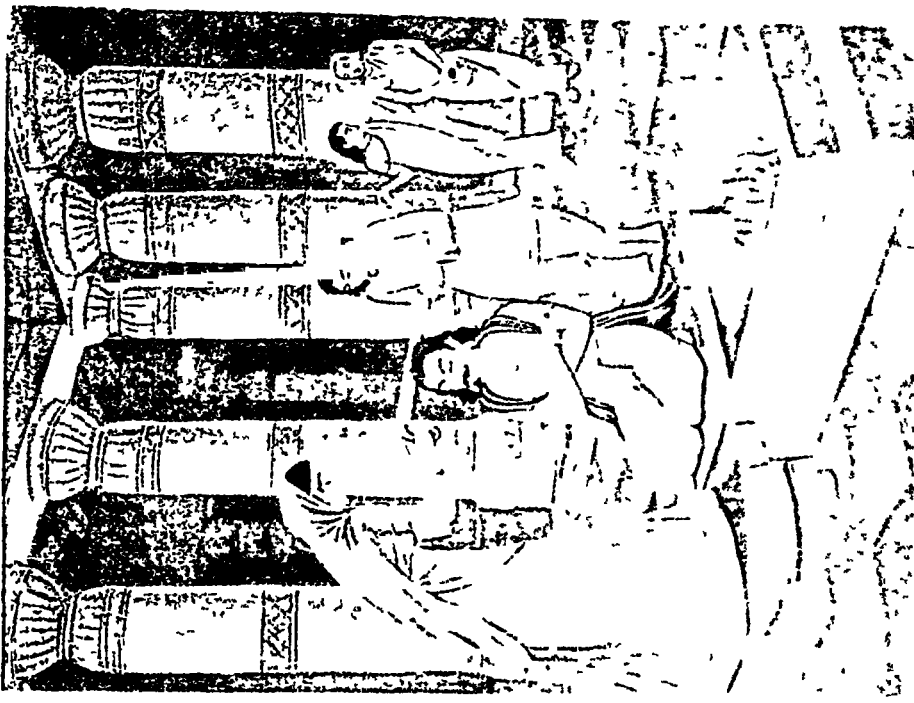
धीरताकी पराकाष्ठा—मयूरध्वजका बलिदान

जो झूठा निर्णय देता है, वह राजाके नगरमें कैद होकर बाहरी दरवाजेपर भूखका कष्ट सहता हुआ बहुत-से शत्रुओंको देखता है । साधारण पशुके लिये झूठ बोलनेसे पाँच पीढ़ियाँ, गौके लिये झूठ बोलनेवालेकी दस पीढ़ियाँ, घोड़ेके लिये झूठ बोलनेसे सौ पीढ़ियाँ और मनुष्यके लिये झूठ बोलनेसे एक हजार पीढ़ियाँ नरकमें गिरती हैं । सोनेके लिये झूठ बोलनेवाला भूत, भविष्यकी सभी पीढ़ियोंको नरकमें गिराता है । पृथ्वी (स्त्री) के लिये झूठ बोलनेवाला तो अपना सर्वनाश ही कर लेता है । अतएव आप भूमि (स्त्री) के लिये झूठा निर्णय कभी मत दीजियेगा ।

प्रह्लादने अन्तमें पुत्र-स्नेहकी तुलनामें सत्य और कुल-गौरवको विशेषता देते हुए विरोचनको सम्बोधित करके कहा—

मत्तः श्रेयानङ्गिरा वै सुधन्वा त्वद्विरोचन ।
मातास्य श्रेयसी मातुस्तस्मात्त्वं तेन वै जितः ॥
(महा० उद्योग० ३१ । ३४)

'विरोचन ! अङ्गिरा मुझसे श्रेष्ठ हैं, सुधन्वाकी माता तेरी मातासे श्रेष्ठ है और तुझसे सुधन्वा श्रेष्ठ है । अतः सुधन्वाने तुझे जीत लिया, अब सुधन्वा तेरे प्राणोंका स्वामी है ।'

इस प्रकार प्रसन्न होकर सुधन्वाने [illegible] कहा—

यद्धर्ममवृणीथास्त्वं न कामादनृतं वदीः ।
पुनर्ददामि ते पुत्रं तस्मात् प्रह्लाद दुर्लभम् ॥
एष प्रह्लाद पुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः ।
पादप्रक्षालनं कुर्यात् कुमार्याः संनिधौ मम ॥
(महा० उद्योग० [illegible])

'प्रह्लादजी ! आपने पुत्र-स्नेहके वशीभूत होकर भी असत्य-भाषण नहीं किया, अपितु विशुद्ध न्याय प्रदान किया; इसलिये मैं यह दुर्लभ पुत्र आपको सौंपता हूँ; किंतु यह कुमारी केशिनीके सम्मुख हमारे पैर धोवे । यही इस घटनाका साधारण-सा प्रायश्चित्त है ।'

यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि कुमारी केशिनीने अश्वस्तनिक सुधन्वाको जीवन-सङ्गी और धर्म-साथी बना कर न केवल अपने भौतिक सुख-विलासकी तुलनामें सत्कुलोत्पन्न व्यक्तित्वको विशेषता दी, अपितु उसने अपने जीवनके द्वारा हिंदू-संस्कृतिका एक विश्वस्पृहणीय उदाहरण भी संसारके सामने प्रस्तुत किया ।[1]

धीरताकी पराकाष्ठा

(मयूरध्वजका बलिदान)

जिन दिनों महाराज युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञका उपक्रम चल रहा था, उन्हीं दिनों रत्नपुराधीश्वर महाराज मयूरध्वजका भी अश्वमेधीय अश्व छूटा था, इधर पाण्डवीय अश्वकी रक्षामें श्रीकृष्ण-अर्जुन थे, उधर ताम्रध्वज । मणिपुरमें दोनोंकी मुठभेड़ हो गयी । युद्धमें भगवदिच्छासे ही अर्जुनको पराजित करके ताम्रध्वज दोनों अश्वोंको अपने पिताके पास ले गया । पर इससे महाराज मयूरध्वजके मनमें हर्षके स्थानपर घोर विषाद ही हुआ । कारण, वे श्रीकृष्णके अद्वितीय भक्त थे ।

इधर जब अर्जुनकी मूर्च्छा टूटी, तब वे घोड़ेके लिये बेतरह व्यग्र हो उठे । भक्त-परवश प्रभुने ब्राह्मणका वेष बनाया और अर्जुनको अपना चेला । वे राजाके पास पहुँचे । राजा मयूरध्वज इन लोगोंके तेजसे [illegible] हो गये । वे इन्हें प्रणाम करनेवाले ही थे कि इन [illegible] स्वस्ति कहकर उन्हें पहले ही आशीर्वाद दे दिया । राजाने इनके इस कर्मकी बड़ी भर्त्सना की । फिर इनसे पधारनेका कारण पूछा । श्रीकृष्णने [illegible] पुत्रको सिंहने पकड़ लिया है । मैंने उससे [illegible] प्रार्थना की जिससे वह मेरे एकमात्र पुत्रको किसी प्रकार छोड़ दे । यहाँतक कि मैं स्वयं अपनेको उसके बदलेमें देनेको तैयार हो गया, पर उसने एक न मानी । बहुत अनुनय-विनय करनेपर उसने [illegible] किया है कि राजा मयूरध्वज पूर्ण प्रसन्नतासे [illegible] अपने दक्षिणाङ्गको अपनी स्त्री-पुत्रोंद्वारा [illegible]

१. दैत्य-कुल-भूषण प्रह्लादजी और युवराज विरोचनके व्यवहारसे भी [illegible] होता है। परंतु हम देखते हैं कि आजकलके पर प्रत्यय-नेय [illegible]

दे सकें तो मैं तुम्हारे पुत्रको छोड़ सकता हूँ।'

राजाने ब्राह्मणरूप श्रीकृष्णका प्रस्ताव मान लिया। उनकी रानीने अर्द्धाङ्गिनी होनेके नाते अपना शरीर देना चाहा, पर ब्राह्मणने दक्षिणाङ्गकी आवश्यकता बतलायी। पुत्रने अपनेको पिताकी प्रतिमूर्ति बतलाकर अपना अङ्ग देना चाहा, पर ब्राह्मणने वह भी अस्वीकार कर दिया।

अन्तमें दो खंभोंके बीच 'गोविन्द, माधव, मुकुन्द' आदि नाम लेते महाराज बैठ गये। आरा लेकर रानी तथा ताम्रध्वज चीरने लगे। जब महाराज मयूरध्वजका सिर चीरा जाने लगा, तब उनकी बायीं आँखसे आँसूकी बूँदें निकल गयीं। इसपर ब्राह्मणने कहा—'दुःखसे दी हुई वस्तु मैं नहीं लेता।' मयूरध्वजने कहा—'आँसू निकलनेका यह भाव नहीं है कि शरीर काटनेसे मुझे दुःख हो रहा है। बायें अङ्गको इस बातका क्लेश है—हम एक ही साथ जन्मे और बढ़े, पर हमारा दुर्भाग्य जो हम दक्षिणाङ्गके साथ ब्राह्मणके काम न आ सके। इसीसे बायीं आँखमें आँसू आ गये।'

अब प्रभुने अपने आपको प्रकट कर दिया। शङ्ख-चक्र-गदा धारण किये, पीताम्बर पहने, सघन नीलवर्ण, दिव्य ज्योत्स्नामय श्रीश्यामसुन्दरने ज्यों ही अपने अमृत-मय कर-कमलसे राजाके शरीरको स्पर्श किया, वह पहलेकी अपेक्षा भी अधिक सुन्दर, युवा तथा पुष्ट हो गया। वे सब प्रभुके चरणोंपर गिरकर स्तुति करने लगे। प्रभुने उन्हें वर माँगनेको कहा। राजाने प्रभुके चरणोंमें निश्चल प्रेमकी तथा भविष्यमें 'ऐसी कठोर परीक्षा किसीकी न ली जाय'—यह प्रार्थना की। अन्तमें तीन दिनोंतक उनका आतिथ्य ग्रहणकर घोड़ा लेकर श्रीकृष्ण तथा अर्जुन वहाँसे आगे बढ़े।

(जैमिनीय अश्वमेध, अध्याय ४४ से ४७)

मेरे राज्यमें न चोर हैं न कृपण हैं, न शराबी हैं न व्यभिचारी हैं

एक बार उपमन्युके पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष-पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लवि-पौत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्षका पुत्र जन और अश्वतराश्व-पुत्र बुडिल—ये महागृहस्थ और श्रोत्रिय एकत्र होकर आपसमें आत्मा और ब्रह्मके सम्बन्धमें विचार-विमर्श करने लगे। पर जब वे किसी ठीक निर्णयपर न पहुँचे, तब अरुणके पुत्र उद्दालकके पास जाकर इस रहस्यको समझनेका निश्चय किया।

उद्दालकने जब उन्हें दूरसे ही आते देखा तभी उनका अभिप्राय समझ लिया और विचारा कि 'इसका ठीक-ठीक निर्णय तो मैं कर नहीं सकता, अतएव इन्हें केकयके पुत्र राजा अश्वपतिके पास भेजना चाहिये।' उसने उनके आनेपर कहा कि 'भगवन्! इस वैश्वानर आत्माको अश्वपति ही अच्छी प्रकार जानते हैं; चलिये, हमलोग उन्हींके पास चलें।' सब तैयार हो गये और अश्वपतिके यहाँ पधारे।

राजाने सभी ऋषियोंके सत्कारका अलग-अलग प्रबन्ध किया। दूसरे दिन प्रातःकाल उसने उनके सामने बहुत बड़ी अर्थराशि सेवामें रक्खी, परंतु उन्होंने उसका स्पर्शतक नहीं किया। राजाने सोचा, 'मालूम होता है ये मुझे अधर्मी अथवा दुराचारी समझ रहे हैं; इसीलिये इस धनको दूषित समझकर नहीं ग्रहण करते। अतएव उसने कहा—'न तो मेरे राज्यमें कोई चोर है, न कोई कृपण, न मद्यपायी (शराबी)। हमारे यहाँ सभी ब्राह्मण अग्निहोत्री तथा विद्वान् हैं। कोई व्यभिचारी पुरुष भी मेरे देशमें नहीं हैं; और जब पुरुष ही व्यभिचारी नहीं हैं, तब स्त्री तो व्यभिचारिणी होगी ही कहाँसे?' अतएव मेरे धनमें कोई दोष नहीं है।' ऋषियोंने इसका कोई उत्तर नहीं दिया।

राजाने सोचा, 'थोड़ा धन देखकर ये स्वीकार नहीं

करते होंगे'; अतएव उसने पुनः कहा—'भगवन्! मैं एक यज्ञका आरम्भ कर रहा हूँ, उसमें प्रत्येक ऋत्विक्को जितना धन दूँगा, उतना ही आपमेंसे प्रत्येकको दूँगा।'

राजाकी बात सुनकर ऋषियोंने कहा—'राजन्! मनुष्य जिस प्रयोजनसे जहाँ जाता है, उसका वही प्रयोजन पूरा करना चाहिये। हमलोग आपके पास धनके लिये नहीं, अपितु वैश्वानर-आत्माके सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त करनेके लिये आये हैं।' राजाने कहा—'इसका उत्तर मैं प्रातःकाल दूँगा।'

दूसरे दिन पूर्वाह्णमें वे हाथमें समिधा लेकर राजाके पास गये और राजाने उन्हें बतलाया कि यह समस्त विश्व भगवत्स्वरूप है तथा आत्मा एवं परब्रह्ममें [illegible] कोई भेद नहीं है।　　—छा० उ० (छान्दोग्य०)

वह तुम ही हो

अरुणके पुत्र उद्दालकका एक लड़का श्वेतकेतु था। उससे एक दिन पिताने कहा, 'श्वेतकेतो! तू गुरुकुलमें जाकर ब्रह्मचर्यका पालन कर; क्योंकि हमारे कुलमें कोई भी पुरुष स्वाध्यायरहित ब्रह्मबन्धु नहीं हुआ।'

तदनन्तर श्वेतकेतु गुरुकुलमे गया और वहाँ उपनयन कराकर बारह वर्षतक विद्याध्ययन करता रहा। जब वह अध्ययन समाप्त करके घर लौटा, तब उसे अपनी विद्याका बड़ा अहंकार हो गया। पिताने उसकी यह दशा देखकर उससे पूछा—'सौम्य! तुम्हें जो अपने पाण्डित्यका इतना अभिमान हो रहा है, सो क्या तुम्हें उस एक वस्तुका ज्ञान है, जिसके जान लेनेपर सारी वस्तुओंका ज्ञान हो जाता है, जिस एकके सुन लेनेसे सारी सुनने-योग्य वस्तुओंका श्रवण तथा जिसे विचार लेनेपर सभी विचारणीय वस्तुओंका विचार हो जाता है?'

श्वेतकेतुने कहा—'मै तो ऐसी किसी भी वस्तुका ज्ञान नहीं रखता। ऐसा ज्ञान हो भी कैसे सकता है?' पिताने कहा—'जिस प्रकार एक मृत्तिकाके जान लेनेपर घट, शरावादि सम्पूर्ण मिट्टीके पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है। अथवा जिस प्रकार एक सुवर्णको जान लेनेपर सम्पूर्ण कड़े, मुकुट, कुण्डल एवं पात्रादि सभी सुवर्णके पदार्थ जान लिये जाते है। अथवा एक लोहेके नखछेदनीसे सम्पूर्ण लोहेके पदार्थोंका ज्ञान हो जाता है कि तत्त्व तो केवल लोहा है। टाँकी, कुदाल, नखछेदनी, तलवार आदि तो वाणीके विकार है।'

इसपर श्वेतकेतुने कहा—'पिताजी! पूज्य गुरुदेव ने मुझे इस प्रकारकी कोई शिक्षा नहीं दी। अब आप ही मुझे उस तत्त्वका उपदेश करें, सचमुच मेरा ज्ञान अत्यन्त अल्प तथा नगण्य है।' इसपर पिताने कहा—'आरम्भमें यह एकमात्र अद्वितीय सत् था। उसने विचार किया कि मै बहुत हो जाऊँ। उसने तेज (अग्नि) उत्पन्न किया। तेजसे जल, जलसे अन्न और पुनः सब अन्य पदार्थ उत्पन्न किये। जहाँ भी जो लाल रंगकी वस्तु है वह अग्निका अंश है, शुक्ल वस्तु जलका अंश है तथा कृष्ण वस्तु अन्नका अंश है। अतएव इस विश्वमे अग्नि, जल और अन्न ही तत्त्व हैं। इन तीनोंके ज्ञानसे विश्वकी सारी वस्तुओंका ज्ञान हो जाता है। अथवा इन सभीके भी मूल 'सत्तत्त्व' के ज्ञान लेनेपर पुनः कुछ भी ज्ञेय अवशिष्ट नहीं रह जाता।'

श्वेतकेतुके आग्रहपर आरुणिने पुनः [illegible] दही, मधु, नदी एवं वृक्षादिके उदाहरणोंसे [illegible] बतलाया कि सत्से उत्पन्न होनेके कारण [illegible] सत् आत्मा ही है और वह आत्मा तुम ही हो। इस प्रकार श्वेतकेतुने [illegible] परमात्माके जान लेने, चिन्तन करने, [illegible] करनेसे सबकी जानकारी, [illegible]

—[illegible] (छान्दोग्य०)

सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मनिष्ठ

एक बार महाराज जनकने एक बहुत बड़ा यज्ञ किया। उसमें उन्होंने एक बार एक सहस्र सोनेसे मढ़े हुए सींगोंवाली बढ़िया दुधारी गौओंकी ओर संकेत करके कहा—'पूज्य ब्राह्मणो ! आपमें जो ब्रह्मनिष्ठ हों, वे इन गौओंको ले जायँ।' इसपर जब किसीका साहस न हुआ, तब याज्ञवल्क्यने अपने ब्रह्मचारीसे कहा—'सोमश्रवा ! तू इन्हें ले जा।' अब तो सब ब्राह्मण बिगड़ पड़े। उन्होंने कहा कि 'क्या हम सबमें तुम्हीं उत्कृष्ट ब्रह्मनिष्ठ हो।' याज्ञवल्क्यने कहा कि 'ब्रह्मनिष्ठको तो हम नमस्कार करते है; हमें तो गायें चाहिये, इसलिये हमने इन्हें ले लिया है।'

अब विवाद छिड़ गया। ब्रह्मनिष्ठाभिमानी अश्वल, ऋतभ, आर्तभाग, भुज्यु, उषस्त, कहोल, उद्दालक तथा गार्गी आदिने कई प्रश्न किये। पर याज्ञवल्क्यने सभीका सतोषजनक उत्तर दे दिया। अन्तमे वाचक्नवी गार्गीने कहा—'पूजनीय ब्राह्मणगण ! अब मैं इनसे दो प्रश्न करती हूँ। यदि ये मेरे उन प्रश्नोंका उत्तर दे देंगे तो समझ लीजिये कि इन्हें कोई भी न जीत सकेगा।' ब्राह्मणोंने कहा—'गार्गी, पूछ !'

गार्गीने याज्ञवल्क्यसे प्रश्न किया—'हे याज्ञवल्क्य ! जो ब्रह्माण्डमे ऊपर हैं, जो ब्रह्माण्डमे नीचे है, जो इस स्वर्ग और पृथ्वीके बीचमे स्थित हैं तथा जो भूत, वर्तमान और भविष्यरूप हैं, वह सूत्रात्मा विश्व किसमे ओतप्रोत हैं ?'

याज्ञवल्क्यने कहा—'गार्गि ! यह जगद्रूप व्याकृत सूत्र अन्तर्यामीरूप आकाशमें ओतप्रोत है।'

गार्गीने कहा—'इस उत्तरके लिये तुम्हें प्रणाम ! अब इस दूसरे प्रश्नका उत्तर दो कि जगद्रूप सूत्रात्मा जिस आकाशमें ओतप्रोत है, वह आकाश किसमें ओतप्रोत है ?'

याज्ञवल्क्यने कहा—'वह अव्याकृत आकाश अविनाशी अक्षर ब्रह्ममें ही ओतप्रोत है। यह अक्षर ब्रह्म देश-काल-वस्तु आदिके परिच्छेदसे रहित सर्वव्यापी अपरिच्छिन्न है। इसीकी आज्ञामें सूर्य और चन्द्रमा नियमित रूपसे बर्तते हैं। जो इसे जाने बिना ही मर जाता है, वह दयाका पात्र है; और जो इसे जानकर मरणको प्राप्त होता है, वह ब्रह्मविद् हो जाता है।'

महर्षिके इस व्याख्यानको सुनकर गार्गी सन्तुष्ट हो गयी और उसने ब्राह्मणोंसे कहा—'याज्ञवल्क्य नमस्कारके योग्य है। ब्रह्मसम्बन्धी विवादमें इन्हें कोई भी नहीं हरा सकता।' याज्ञवल्क्यके ज्ञान तथा तेजको देखकर सारी सभा चकित रह गयी। —जा० श० (बृहदारण्यक०)

सर्वोत्तम धन

महर्षि याज्ञवल्क्यकी दो स्त्रियाँ थीं। एकका नाम था मैत्रेयी और दूसरीका कात्यायनी। जब महर्षि संन्यास ग्रहण करने लगे, तब दोनों स्त्रियोंको बुलाकर उन्होंने कहा—'मेरे पीछे तुमलोगोंमें झगड़ा न हो, इसलिये मैं सम्पत्तिका बँटवारा कर देना चाहता हूँ।' मैत्रेयीने कहा—'स्वामिन् ! जिस धनको लेकर मैं अमर नहीं हो सकती, उसे लेकर क्या करूँगी ? मुझे तो आप अमरत्वका साधन बतलानेकी दया करें।'

याज्ञवल्क्यने कहा—'मैत्रेयी ! तुमने बड़ी सुन्दर बात पूछी। वस्तुतः इस विश्वमें परम धन आत्मा ही है। उसीकी प्रियताके कारण अन्य धन, जन आदि प्रिय प्रतीत होते है। इसलिये यह आत्मा ही सुनने, मनन करने और जानने योग्य है। इस आत्मासे कुछ भी भिन्न नहीं है। ये देवता, ये प्राणिवर्ग तथा यह सारा विश्व—जो कुछ भी है, सभी आत्मा है। ये ऋगादि वेद, इतिहास, पुराण, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, मन्त्रविवरण और सारी विद्याएँ इस परमात्माके ही निःश्वास हैं।

'यह परमात्म-तत्त्व अनन्त, अपार और विज्ञानघन

है। यह इन भूतोंसे प्रकट होकर उन्हींके साथ अदृश्य हो जाता है। देहेन्द्रिय-भावसे मुक्त हो जानेपर इसकी कोई संज्ञा नहीं रह जाती। जहाँ अज्ञानावस्था होती है, वहीं द्वैतका बोध होता है तथा अन्यको सूँघने, देखने, सुनने, अभिवादन करने और जाननेका भ्रम होता है; किंतु जहाँ इसके लिये सब कुछ आत्मा ही हो गया है, वहाँ कौन किसे देखे, सुने, जाने या अभिवादन करे? वहाँ कैसा शोक, कैसा मोह, कैसी मृत्यु, जहाँ सब कुछ एकमात्र विज्ञानानन्दघन परमात्मा ही सर्वत्र हो गया है।'

ऐसा उपदेश करके महर्षिने संन्यासका आश्रम लिया तथा उन्हींके उपदेशके आधारपर चलकर मैत्रेयीने आत्म-कल्याणको प्राप्त कर लिया। —[illegible] (बृहदा० [illegible])

ब्रह्म क्या है ?

गर्ग-गोत्रमें उत्पन्न बलाकाके पुत्र बालाकि नामके एक प्रसिद्ध ब्राह्मण थे। उन्होंने सम्पूर्ण वेदोंका अध्ययन तो किया ही था, वे वेदोंके अच्छे वक्ता भी थे। उन दिनों संसारमें सब ओर उनकी बड़ी ख्याति थी। वे उशीनर देशके निवासी थे; परंतु सदा विचरण करनेके कारण कभी मत्स्य देशमे, कभी कुरु-पाञ्चालमें और कभी काशी तथा मिथिला प्रान्तमें रहते थे। इस प्रकार वे सुप्रसिद्ध गार्ग्य (बालाकि) एक दिन काशीके विद्वान् राजा अजातशत्रुके पास गये और अभिमानपूर्वक बोले—'राजन्! आज मैं तुम्हे ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करूँगा।' इसपर प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा—'आपकी इस बातपर हमने आपको एक सहस्र गौएँ दीं। आज आपने हमारा गौरव राजा जनकके समान कर दिया। अतः इन्हे स्वीकार करके हमे ब्रह्म-तत्त्वका शीघ्र उपदेश करें।'

इसपर गार्ग्य बालाकिने कहा कि 'राजन्! यह जो सूर्यमण्डलमें अन्तर्यामी पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्म-बुद्धिसे उपासना करता हूँ।' यह सुनकर प्रसिद्ध राजा अजातशत्रुने कहा—'नहीं, नहीं, इसके विषयमे आप संवाद न करें। निश्चय ही यह सबसे महान् शुक्लाम्बर-धारी तथा सर्वोच्चस्थितिमें स्थित सबका मस्तक है। मैं इसकी इसी प्रकार उपासना करता हूँ। इसी प्रकार उपासना करनेवाला कोई दूसरा मनुष्य भी सबसे ऊँची स्थितिमें स्थित हो जाता है।'

तब गार्ग्य बालाकि पुनः बोले—'यह जो चन्द्र-मण्डलमे अन्तर्यामी पुरुष है, मैं इसकी ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ।' यह सुनकर अजातशत्रुने कहा—'नहीं, नहीं, इस विषयमें आप संवाद न करें। यह सोम राजा है और अन्नका आत्मा है। इसकी इस प्रकार उपासना करनेवाला व्यक्ति मुझ जैसा ही अन्न-राशिसे सम्पन्न हो जाता है।'

अब वे गार्ग्य बोले—'यह जो विद्युन्मण्डलमें अन्तर्यामी पुरुष है, इसीकी मैं ब्रह्मरूपसे उपासना करता हूँ।' अजातशत्रुने इसपर यही कहा कि 'नहीं, नहीं, इस विषयमें आप संवाद न करें; यह तेजका आत्मा है। जो इसकी इस प्रकार उपासना करता है, वह तेजस्वी हो जाता है।'

इसी प्रकार गार्ग्य क्रमशः मेघ, आकाश, वायु, अग्नि, जल, दर्पण, प्रतिध्वनि, पदध्वनि, छायामय पुरुष, शरीरान्तर्वर्ती पुरुष, प्राण तथा दक्षिणनेत्रान्तर्गत पुरुषको ब्रह्म बतलाने गये और अजातशत्रुने इन सबको ब्रह्मका अङ्ग तथा ब्रह्मको इनका अङ्गी सिद्ध किया। अन्तमें हारकर बालाकिने चुप्पी साध ली और [illegible] अजातशत्रुको अपना गुरु स्वीकार किया और उनके सामने समिधा लेकर वे शिष्यभावसे उपस्थित हुए।

इसपर राजा अजातशत्रुने कहा—'यदि क्षत्रिय ब्राह्मणको शिष्य बनावे तो यह विपरीत ही है, [illegible]

इसलिये चलिये, एकान्तमें हम आपको ब्रह्मका ज्ञान करायेंगे।' यों कहकर वे बालाकिको एक सोये हुए व्यक्तिके पास ले गये और उसे 'ओ ब्रह्मन्! ओ पाण्डरवासा! ओ सोम राजा!' इत्यादि सम्बोधनोंसे पुकारने लगे। पर वह पुरुष चुपचाप सोया ही रहा। तब उसे दोनों हाथोंसे दबाकर जगाया। अब वह जगा। तदनन्तर राजाने बालाकिसे पूछा—'बालाके! यह जो विज्ञानमय पुरुष है, जब सोया हुआ था तब कहाँ था? और अब यह कहाँसे आ गया?' किंतु गार्ग्य यह कुछ न जान सके।

अजातशत्रुने कहा—'हिता नामसे प्रसिद्ध बहुत-सी नाड़ियाँ हैं। ये हृदयकमलसे सम्बद्ध हैं और वहींसे निकलकर सम्पूर्ण शरीरमें फैली हुई हैं। यह पुरुष सोते समय उन्हीं नाड़ियोंमें स्थित रहता है। जैसे क्षुरधानमें छूरा रक्खा रहता है, उसी प्रकार शरीरान्तर्गत हृदयकमलमें इस परम पुरुष परमात्माकी उपलब्धि होती है। वाक्, चक्षु, श्रोत्र आदि इन्द्रियाँ अनुगत सेवककी भाँति उसका अनुसरण करती हैं। इसके सो जानेपर ये सारी इन्द्रियाँ प्राणमें तथा प्राण इस आत्मामें लीन—एकीभावको प्राप्त हो जाता है।

'यही आत्मतत्त्व है। जबतक इन्द्रको इस आत्मतत्त्वका ज्ञान नहीं था, तबतक वे असुरोंसे हारते रहे। किंतु जब वे इस रहस्यको जान गये, तब असुरोंको पराजितकर सम्पूर्ण देवताओंमें श्रेष्ठ हो गये, स्वर्गका राज्य तथा त्रिभुवनका आधिपत्य पा गये। इसी प्रकार जो विद्वान् इस आत्मतत्त्वको जान लेता है, उसके सारे पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं तथा उसे स्वाराज्य, प्रभुत्व तथा श्रेष्ठत्वकी प्राप्ति होती है। —जा० श०

(बृहदारण्यक०)

(कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद्)

पश्चात्तापका परिणाम

(लेखक—श्रीरामलालजी)

अप्युन्नतपदारूढपूज्यान् नैवापमानयेत्।
इक्ष्वाकूणां ननाशाग्नेस्तेजो वृशावमानतः॥

(नीतिमञ्जरी ७८)

इक्ष्वाकु-वंशके महीप त्रिवृष्णके पुत्र त्र्यरुणकी अपने पुरोहितके पुत्र वृशजानसे बहुत पटती थी। दोनों एक दूसरेके बिना नहीं रह सकते थे। महाराज त्र्यरुणकी वीरता और वृशजानके पाण्डित्यसे राजकीय समृद्धि नित्य बढ़ रही थी। महाराजने दिग्विजय-यात्रा की; उन्होंने वृशजानसे सारथि-पद स्वीकार करनेका आग्रह किया। वृशजान रथ हाँकनेमें बड़े निपुण थे; उन्होंने अपने मित्रकी प्रसन्नताके लिये सारथि होना स्वीकार कर लिया।

× × × ×

राजधानीमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ पड़ी। दिग्विजय-यात्रा समाप्तकर त्र्यरुण लौटनेवाले थे। रथ बड़ी तेजीसे आगे बढ़ रहा था, राजधानी थोड़ी ही दूर रह गयी थी कि सहसा रथ राजपथपर रुक ही गया।

'अनर्थ हो गया, महाराज! हमारी दिग्विजय-यात्रा कलङ्कित हो गयी, रथके पहियेके नीचे एक ब्राह्मण-कुमार दबकर स्वर्ग चला गया।' वृशजानने गम्भीर साँस ली।

'इस कलङ्ककी जड़ आप हैं, पुरोहित। आपने रथका वेग बढ़ाकर घोर पाप कर डाला।' महाराज थर-थर काँपने लगे।

'दिग्विजयका श्रेय आपने लिया तो यह ब्रह्महत्या भी आपके ही सिरपर मढ़ी जायगी।' पुरोहित वृशजानके शब्दोंसे महाराज तिलमिला उठे। दोनोंमें अनबन हो गयी। त्र्यरुणने उनके कथनकी अवज्ञा की।

वृशजानने अथर्वाङ्गिरस मन्त्रके उच्चारणसे ब्राह्मण-कुमारको जीवन-दान दिया। उसके जीवित हो जानेपर, महाराजने उन्हें रोकनेकी बड़ी चेष्टा की; पर वृशजान अपमानित होनेसे राज्य छोड़कर दूसरी जगह चले गये।

× × × ×

पुरोहित वृशजानके चले जानेपर महाराज त्र्यरुण पश्चात्तापकी आगमें जलने लगे। मैंने मदोन्मत्त होकर अपने अभिन्न मित्रका अपमान कर डाला—यह सोच-सोचकर वे बहुत व्यथित हुए। राजप्रासाद, राजधानी और सम्पूर्ण राज्यमें अग्नि देवताकी अकृपा हो गयी। यज्ञ आदि सत्कर्म समाप्त हो गये। महाराजने प्रजा-समेत पुरोहितके चरणोंमें जाकर क्षमा माँगी, अपना अपराध स्वीकार किया। वृशजान राजधानीमें वापस आ गये। चारों ओर 'स्वाहा-स्वाहा' का ही राज्य स्थापित हो गया। अग्नि देवताका तेज प्रज्वलित हो उठा।

'मेरी समझमें आ गया मित्र! राज्यमें अग्नि-तेज घटनेका कारण।' वृशजानने यज्ञ-कुण्डमें घीकी आहुति देते हुए त्र्यरुणकी उत्सुकता बढ़ायी। महाराज आश्चर्य-चकित थे।

'यह है।' वृशजानने त्र्यरुणकी रानी—पिशाचीको कपिश—गद्देके आसनपर बैठनेका आदेश दिया; वेद-मन्त्रसे अग्निका आवाहन करते ही पिशाची [illegible] हो गयी।

'यह ब्रह्महत्या थी महाराज! रानीके वेशमें राजप्रासादमें प्रवेशकर इसने राज्यश्रीका अपहरण कर लिया था।' वृशजानने रहस्यका उद्घाटन किया। यज्ञ-कुण्डकी होम-ज्वालासे चारों ओर प्रकाश छा गया।

त्र्यरुणने वृशजानका आलिङ्गन किया। प्रजाने दोनों-की जय मनायी। चारों ओर आनन्द बरसने लगा।

(बृहद्देवता अ० ५। १४-२३)

उसने सच कहा

कनिष्ठाः पुत्रवत् पाल्या भ्रात्रा ज्येष्ठेन निर्मलाः।
प्रगाथो निर्मलो भ्रातुः प्रागात् कण्वस्य पुत्रताम्॥

(नीतिमञ्जरी १११)

महर्षि घोरके पुत्र कण्व और प्रगाथको गुरुकुलसे लौटे कुछ ही दिन हुए थे। दोनों ऋषिकुमारोंका एक-दूसरेके प्रति हार्दिक प्रेम था। प्रगाथ अपने बड़े भाई कण्वको पिताके समान समझते थे, उनकी पत्नी प्रगाथसे स्नेह करती थी। उनकी उपस्थितिसे आश्रमका वातावरण बड़ा निर्मल और पवित्र हो गया था। यज्ञकी धूमशिखा आकाशको चूम-चूमकर निरन्तर महती सात्त्विकताकी विजयिनी पताका-सी लहराती रहती थी।

एक दिन आश्रममे विशेष शान्तिका साम्राज्य था। कण्व समिधा लेनेके लिये वनके अन्तरालमे गये हुए थे। उनकी साध्वी पत्नी यज्ञवेदीके ठीक सामने बैठी हुई थी। उससे थोड़ी दूरपर ऋषिकुमार प्रगाथ साम-गान कर रहे थे। अत्यन्त शीतल और मधुर समीरणके संचारसे ऋषिकुमारके नयन अलसाने लगे और वे ऋषिपत्नीके अङ्कमें सिर रखकर विश्राम करते-करते सो गये। ऋषिपत्नी किसी चिन्तनमें तन्मय थी।

× × ×

'यह कौन है, इस नीचने तुम्हारे अङ्कमें विश्राम करनेका साहस किस प्रकार किया?' [illegible] कण्वके नेत्र लाल हो गये, उनका [illegible] ऋषिपत्नी सहम गयी।

'देव!' वह कुछ और कहने [illegible] कण्वने प्रगाथकी पीठपर पद-प्रहार किया। [illegible] आँख खुल गयी। वह खड़ा हो गया। [illegible] ऋषिको प्रणाम किया।

'आजसे तुम्हारे लिये इस [illegible] है, प्रगाथ!' कण्व ऋषिके [illegible] ज्वालामें प्रज्वलित थे। [illegible]

'भैया ! आप तो मेरे पिताके समान हैं और ये तो साक्षात् मेरी माता हैं ।' प्रगाथने ऋषिपत्नीके चरणोंमे श्रद्धा प्रकटकर कण्वका शङ्का-समाधान किया ।

कण्व धीरे-धीरे स्वस्थ हो रहे थे, पर उनके सिरपर संशयका भूत अब भी नाच रहा था ।

'ऋषिकुमार प्रगाथने सच कहा है, देव ! मैंने तो आश्रममें पैर रखते ही उनका सदा पुत्रके समान पालन किया है । बड़े भाईकी पत्नी देवरको सदा पुत्र मानती है, इसको तो आप जानते ही हैं; पवित्र भारत देशका यही आदर्श है ।' ऋषिपत्नीने कण्वका क्रोध शान्त किया ।

'भाई प्रगाथ ! दोष मेरे नेत्रोंका ही है, मैंने महान् पाप कर डाला; तुम्हारे ऊपर व्यर्थ शङ्का कर बैठा ।' ऋषि कण्वका शील समुत्थित हो उठा, उन्होंने प्रगाथका आलिङ्गन करके स्नेह-दान दिया । प्रगाथने उनकी चरण-धूलि मस्तकपर चढ़ायी ।

'भाई नहीं, ऋषिकुमार प्रगाथ हमारा पुत्र है । ऋषिकुमारने हमारे सम्पूर्ण वात्सल्यका अधिकार पा लिया है ।' ऋषिपत्नीकी ममताने कण्वका हृदय-स्पर्श किया ।

'ठीक है, प्रगाथ हमारा पुत्र है । आजसे हम दोनों इसके माता-पिता हैं ।' कण्वने प्रगाथका मस्तक सूँघा ।

आश्रमकी पवित्रतामें नवीन प्राण भर उठा—जिसमें सत्य वचनकी गरिमा, निर्मल मनकी प्रसन्नता और हृदयकी सरलताका सरस सम्मिश्रण था ।—रा० श्री०

(बृहद्देवता अ० ६ । ३५-३९)

सत्य-पालन

प्राचीन समयकी बात है । कुरुवंशके देवापि और शन्तनुमें एक-दूसरेके प्रति स्वार्थ-त्यागकी जो अनुपम भावना थी, वह भारतीय इतिहासकी एक विशेष समृद्धि है ।

देवापि बड़े और शन्तनु छोटे थे । पिताके स्वर्ग-गमनके बाद राज्याभिषेकका प्रश्न उठनेपर देवापि चिन्तित हो उठे । वे चर्मरोगी थे, उनके शरीरमें छोटे-छोटे श्वेत दाग थे । उनकी बड़ी इच्छा थी कि राज्य शन्तनुको मिले, इसीमें वे प्रजाका कल्याण समझते थे ।

× × ×

'महाराज ! आपके निश्चयने हमारे कार्यक्रमपर वज्रपात कर दिया है । बड़े भाईके रहते छोटेका राज्याभिषेक हो, यह बात समीचीन नहीं है ।' प्रधान मन्त्रीके स्वरमें स्वर मिलाकर प्रजाने करबद्ध निवेदन किया ।

'आपलोग ठीक कहते हैं; पर आपको विश्वास होना चाहिये कि मैं आपके कल्याणकी बातमें कुछ भी कमी न रक्खूँगा । राजाका कार्य ही है कि वह सदा प्रजाका हितचिन्तन करता रहे ।' देवापिने छिपे तरीकेसे शन्तनुका पक्ष लिया ।

'महाराज की जय ।' प्रजा नतमस्तक हो गयी । शन्तनुके राज्याभिषेकके बाद ही देवापिने तप करनेके लिये वनकी ओर प्रस्थान किया । शन्तनु राज्यका काम सँभालने लगे ।

× × ×

'प्रजा भूखों मर रही है । चारों ओर अकालका नंगा नाच हो रहा है । महाराज देवापिके वनगमनके बाद बारह सालसे इन्द्रने तो मौन ही धारण कर लिया है । जल-वृष्टि न होनेसे प्राणिमात्र उद्विग्न हो उठे हैं ।' महाराज शन्तनुने प्रधान मन्त्रीका ध्यान अपनी ओर खींचा ।

'पर यह तो भाग्यका फेर है, महाराज ! अनावृष्टिका दोष आपपर नहीं है और न इसके लिये प्रजा ही उत्तरदायी है ।.........' प्रधान मन्त्री कुछ और कहना चाहते थे कि महाराजने बीचमें ही रोक दिया ।

'हम प्रजासहित महाराज देवापिको मनाने जायँगे। राजा होनेके वास्तविक अधिकारी तो वे ही हैं।' महाराज शन्तनुकी चिन्ता दूर हो गयी। प्रधान मन्त्रीने सहमति प्रकट की।

× × ×

वास्तवमें जङ्गलमें मङ्गल हो रहा था। वन-प्रान्त नागरिकोंकी उपस्थितिसे प्राणवान् था।

'भैया! अपराध क्षमा हो। हमारे दोषोंकी ओर ध्यान न दीजिये। सत्यका व्यतिक्रम करके मेरे राज्याभिषेक स्वीकार करनेपर और आपके वनमें आनेपर सारा-का-सारा राज्य भयकर अनावृष्टिका शिकार हो चला है। आप हमारी रक्षा कीजिये।' शन्तनुने कुटीसे वाहर निकलनेपर देवापिके चरण पकड़ लिये।

'भाई! मैं तो चर्मरोगी हूँ, मेरी त्वचा दूषित है। मुझमें रोगके कारण राजकार्यकी शक्ति नहीं थी, इसलिये प्रजाके कल्याणकी दृष्टिसे मैंने उनका राज्य लिया था—यह सत्य बात है। पर इस समय अनावृष्टिके निवारणके लिये तथा बृहस्पतिकी प्रसन्नताके लिये मैं आपके वृष्टिकाम-यज्ञका पुरोहित बनूँगा।' देवापिने महाराज शन्तनुको गले लगा लिया। प्रजा उनकी जय बोलने लगी।

× × ×

तपस्वी देवापि राजधानीमें लौट आये। उनके आगमनसे चारों ओर आनन्द छा गया। दोनों भाइयोंके सत्यपालनसे अनावृष्टि समाप्त हो गयी। यज्ञकी काली-काली धूम-रेखाओंने गगनको आच्छादित कर लिया। बृहस्पति प्रसन्न हो उठे। पर्जन्यकी कृपा-वृष्टिने नदी, तालाब, वृक्ष और खेतोंके प्राण लौट आये। देवापिने अपने सत्यव्रतसे प्रजाकी कल्याण-साधना की। —रा० श्री०

(बृहद्देवता अ० ७। १५५-५७; अ० ८। १६)

उपासनाका फल

सोमं सुत्वात्र संसारं सारं कुर्वीत तत्त्ववित्।
यथाऽऽसीत् सुत्वचाऽपाला दत्त्वेन्द्राय मुखच्युतम्॥

(नीतिमञ्जरी १३०)

महर्षि अत्रिका आश्रम उनकी तपस्याका पवित्र प्रतीक था। चारों ओर अनुपम शान्ति और दिव्य आनन्दकी वृष्टि निरन्तर होती रहती थी। यज्ञकी धूमशिखाओं और वेद-मन्त्रोंके उच्चारणसे आश्रमके कण-कणमें रमणीयताका निवास था। महर्षि आनन्दमग्न रहकर भी सदा उदास दीख पड़ते थे। उनकी उदासीका एकमात्र कारण थी अपाला। वह उनकी स्नेहसिक्ता कन्या थी। चर्मरोगसे उसका शरीर बिगड़ गया था। श्वेत कुष्ठके दागोंसे उसकी अङ्ग-कान्ति म्लान दीखती थी। पतिने इसी रोगके कारण उसे अपने आश्रमसे निकाल दिया था, वह बहुत समयसे अपने पिताके ही आश्रममें रहकर समय काट रही थी। दिन-प्रति-दिन उसका यौवन गलता जा रहा था; महर्षि अत्रिके अनन्य स्नेहसे उसके प्राणकी दीप-शिखा प्रकाशित थी। चर्मरोगकी निवृत्तिके लिये अपालाने इन्द्रकी शरण ली। वह बड़ी निष्ठासे उनकी उपासनामें लग गयी। वह जानती थी कि इन्द्र सोमरससे प्रसन्न होते हैं। उसकी हार्दिक इच्छा थी कि इन्द्र प्रत्यक्ष दर्शन देकर सोम स्वीकार करें।

× × ×

'कितनी निर्मल चाँदनी है। चन्द्रमा ऐसा लगता है मानो उसने अभी-अभी अमृतसागरमें स्नान किया है या कामधेनुके दूधसे अप्सराओंने उसका अभिषेक किया है।' सरोवरमें स्नानकर अपालाने जलसे भरा कलश कंधेपर रख लिया, वह प्रसन्न थी—चन्द्रमाने अभी पहले पहरमें ही प्रवेश किया था—वह आश्रमकी ओर चली जा रही थी।

'निस्संदेह आज इन्द्र मुझपर बहुत प्रसन्न हैं,

मुझे अपना सर्वस्व मिल गया ।' उसने रास्तेमें सोमलता देखी और परीक्षाके लिये दाँतोंसे लगाते ही सोमाभिषव सम्पन्न हो गया, उसके दाँतसे सोमरस-कण पृथ्वीपर गिर पड़े । सोमलता-प्राप्तिसे उसे महान् आनन्द हुआ । उसकी तपस्या सोमलताके रूपमें मूर्तिमती हो उठी । अपालाने रास्तेमें ही एक दिव्य पुरुषका दर्शन किया ।

'मैं सोमपानके लिये घर-घर घूमता रहता हूँ । आज इस समय तुम्हारी सोमाभिषव-क्रियासे मैं अपने आप चला आया ।' दिव्य स्वर्णरथसे उतरकर इन्द्रने अपना परिचय दिया । देवराजने सोमपान किया । उन्होंने तृप्तिके स्वरमें वरदान माँगनेकी प्रेरणा दी ।

'आपकी प्रसन्नता ही मेरी इच्छा-पूर्ति है । उपास्यका दर्शन हो जाय, इससे बढ़कर दूसरा सौभाग्य ही क्या है ?' ब्रह्मवादिनी ऋषिकन्याने इन्द्रकी स्तुति की ।

'सच्ची भक्ति कभी निष्फल नहीं होती है, देवि !' इन्द्रने अपालाको पकड़कर अपने रथ-छिद्रसे उसे तीन बार निकाला । उनकी कृपासे चर्मरोग दूर हो गया, वह सूर्यकी प्रभा-सी प्रदीप्त हो उठी । ऋषि अत्रिने कन्याको आशीर्वाद दिया । अपाला अपने पतिके घर गयी । उपासनाके फलस्वरूप उसका दाम्पत्य-जीवन सरस हो उठा । —रा० श्री०

(बृहद्देवता अ० ६ । ९९-१०६)

योग्यताकी परख

यज्ञकी धूम-शिखाओंसे गगन आच्छादित हो गया; उसकी निर्मल और स्वच्छ नीलिमामें विशेष दीप्ति अभिव्यक्त हो उठी । महाराज रथवीति दार्भ्यकी राजधानी यज्ञकर्ता ऋषियोंकी उपस्थितिसे परम पवित्र हो गयी । वे अपनी राजमहिषी और मनोरमा कन्याके साथ यज्ञवेदीके ही समीप आसनस्थ थे ।

'कितनी सुशील और लावण्यमयी कन्या है !' अत्रिके पुत्र ऋषि अर्चनानाने यज्ञ-कुण्डमें वैदिक मन्त्रोंसे आहुति डालते हुए मनमें विचार किया । उनकी श्वेत दाढ़ीकी दुग्ध-धवलिमामें नवीन आभा लहराने लगी । उन्होंने वेद-वेदाङ्गमें पारङ्गत अपने पुत्र श्यावाश्वकी ओर दृष्टिपात किया; ऋषिकुमारमें यौवनका निखार था, नयनोंमें सात्त्विकता थी, हृदयमें श्रद्धा और भक्ति थी ।

'मैं अपनी पुत्रवधूके रूपमें आपकी कन्याकी याचना करता हूँ, महाराज !' अर्चनानाके गम्भीर भाषणसे ऋषि-मण्डली चकित थी । जनता विस्मय-मग्न हो गयी ।

'यह तो आपकी बहुत बड़ी कृपा है; मेरी कन्याके लिये इससे बढ़कर सौभाग्यकी दूसरी बात क्या होगी कि वह महर्षि अत्रिके आश्रममें निवास करेगी !' महाराज रथवीतिने अर्चनानाके प्रति श्रद्धा व्यक्त की । राजकन्याने नीची दृष्टिसे ऋषिकुमार श्यावाश्वको देखा, मानो वह संकेत कर रही थी कि मेरा मस्तक आपके चरणपर नत होनेके लिये समुत्सुक है ।

'पर हमारा कुल राजर्षियोंका है, हम अपनी कन्या मन्त्रदर्शी ऋषिको ही सौंप सकते हैं, महर्षे ।' राजमहिषीने प्रस्ताव अस्वीकार किया ।

× × ×

'पिताजी ! मैं अपनी कुल-योग्यता सिद्ध करनेके लिये ऋषि-पद प्राप्त करूँगा; मेरे लिये राज-कन्या उतने महत्त्वकी वस्तु नहीं है, जितने महत्त्वका विषय ऋषिपद है । यह प्रधान है, वह गौण है ।' श्यावाश्वने अर्चनानाकी चरण-धूलि ली । उसका प्रण था कि बिना ऋषि-पद प्राप्त किये आश्रममें न जाऊँगा । अर्चनाना चले गये । श्यावाश्व ब्रह्मचर्यपूर्वक भिक्षा माँगकर पर्यटन करने लगे ।

रास्तेमें महाराज विदेदश्वके पुत्र तरन्त और राजमहिषी शशीयसी तथा तरन्तके छोटे भाई पुरुमीढने ऋषिकुमारका अपनी राजधानीमें स्वागत-सत्कार किया,

बहुत-सी गायें दीं, अपार धन प्रदान कर श्यावाश्वकी पूजा की।

'पर अभी तो मैंने मन्त्रका दर्शन ही नहीं किया।' श्यावाश्व आश्रममें न जा सका। वह वनमें विचरण कर रहा था कि उसकी सत्यनिष्ठासे प्रसन्न होकर रुद्रपुत्र मरुद्गणोंने उसको दर्शन दिया। उनकी कृपासे उसने मन्त्रदर्शी ऋषिपद प्राप्त किया। मरुद्गणोंने रुक्ममाला दी।

× × ×

'यह तो हमारे लिये परम सौभाग्यकी बात है कि मेरी कन्या आपके पौत्रकी जीवन-सङ्गिनी हो रही है।' रथसे उतरनेपर आश्रममें अत्रि ऋषिकी राजा रथवीतिने और राजमहिषीने पूजा की, मधुपर्क समर्पित किया।

श्यावाश्व और उसकी वधूने महर्षि अत्रिकी वन्दना की। अर्चनानाका आशीर्वाद प्राप्त किया। श्यावाश्वने वेदपिता* और राजकन्याने वेदमाताका पद पाया। महाराज रथवीतिने हिमालय-प्रदेशमें गोमती-तटपर तपस्या करनेके लिये प्रस्थान किया। —रा० श्री०

(बृहद्देवता अ० ५। ५०-८१)

सम-वितरण

विभज्य भुञ्जते सन्तो भक्ष्यं प्राप्य सहाग्निना।
चतुरश्चमसान् कृत्वा तं सोममृभवः पपुः॥

(नीतिमञ्जरी १०)

सुधन्वाके पुत्र ऋभु, विभु और वाज त्वष्टाके विशेष कृपापात्र थे। त्वष्टाने उन्हें अपनी समस्त विद्याओंसे सम्पन्न कर दिया। उनके सत्कर्मकी चर्चा देवोंमें प्रायः होती रहती थी। उन्होंने बृहस्पतिको अमृत तथा अश्विनीकुमारोंको दिव्य रथ और इन्द्रको वाहनसे संतुष्ट कर उनकी प्रसन्नता प्राप्त की थी। वेदमन्त्रोंसे वे देवोंका समय-समयपर आवाहन करते रहते थे। देवोंको सोमका भाग देकर वे अपने सत्कर्मसे देवत्वकी ओर बढ़ रहे थे।

× × ×

ऋभुओंने त्वष्टानिर्मित सोमपानका आयोजन किया। सामवेदके सरस मन्त्रोच्चारणसे उन्होंने सोमाभिषव प्रारम्भकर उसे चमस†में रक्खा ही था कि सहसा उन्हींके आकार-प्रकार, रूप-रंग और वयस्के एक प्राणी दीख पड़े। ऋभुओंको बड़ा आश्चर्य हुआ।

'चमसके चार भाग करने चाहिये।' ज्येष्ठ पुत्र ऋभुने आदेश दिया। उनकी आज्ञाका तत्क्षण पालन हुआ विभ्वा और वाजके द्वारा।

'अतिथिका सत्कार करना हमारा परम धर्म है, आप कोई भी हों, हमलोगोंने आपको सम भागका अधिकारी माना है।' ऋभुओंने सोमपानके लिये अज्ञात पुरुषसे प्रार्थना की।

'देवगण आपसे प्रसन्न हैं, ऋभुओ! मुझे इन्द्रने आपकी परीक्षाके लिये भेजा था। आपलोग संत हैं। आपने अतिथि-धर्मका पालन करके अपना गोत्र पवित्र कर लिया।' अग्नि प्रकट हो गये। उन्होंने सोमका चौथा भाग ग्रहण किया। इन्द्रने भी सोमका भाग प्राप्त किया। प्रजापतिने उन्हें अमरता प्रदान की। वे अपने शुभकर्मसे देवता हो गये। —रा० श्री०

(बृहद्देवता अ० ३। ८३-९०)

---

* मन्त्रदर्शी ऋषि वेदपिता कहा जाता है और उसकी पत्नी वेदमाता, वेदाम्बा कहलाती है।

† सोमरस धारण करनेवाले काष्ठपात्र-विशेषका नाम चमस है।

महान् कौन है ?

एक बार देवर्षिके मनमें यह जाननेकी इच्छा हुई कि जगत्में सबसे महान् कौन है। उन्होंने सोचा कि चलूँ भगवान्के पास ही। वहीं इसका ठीक-ठीक पता लग सकेगा। वे सीधे वैकुण्ठमें गये और वहाँ जाकर प्रभुसे अपना मनोभाव व्यक्त किया।

प्रभुने कहा—नारद! सबसे बड़ी तो यह पृथ्वी ही दीखती है; पर वह समुद्रसे घिरी हुई है, अतएव वह भी बड़ी नहीं है। रही बात समुद्रकी, सो उसे अगस्त्य मुनि पी गये थे, अतः वह भी बड़ा कैसे हो सकता है। इससे तो अगस्त्यजी सबसे बड़े हो गये। पर देखा जाता है कि अनन्ताकाशके एक सीमित सूचिका-सदृश भागमें वे केवल एक खद्योतवत्—जुगनूकी तरह चमक रहे हैं; इससे वे भी बड़े कैसे हो सकते हैं? अब रहा आकाशविषयक प्रश्न। प्रसिद्ध है कि भगवान् विष्णुने वामनावतारमें इस आकाशको एक ही पगमें नाप लिया था, अतएव वह भी उनके सामने अत्यन्त नगण्य है। इस दृष्टिसे भगवान् विष्णु ही सर्वोपरि महान् सिद्ध होते हैं। तथापि नारद! वे भी सर्वाधिक महान् हैं नहीं, क्योंकि तुम्हारे हृदयमें वे भी अङ्गुष्ठमात्र स्थलमें ही सर्वदा अवरुद्ध देखे जाते हैं। इसलिये भैया! तुमसे बड़ा कौन है! वास्तवमें तुम ही सबसे महान् सिद्ध हुए—

पृथ्वी तावदतीव विस्तृतिमती तद्वेष्टनं वारिधिः
पीतोऽसौ कलशोद्भवेन मुनिना स व्योम्नि खद्योतवत्।
तद्व्याप्तं दनुजाधिपस्य जयिना पादेन चैकेन खं
तं त्वं चेतसि धारयस्यविरतं त्वत्तोऽस्ति नान्यो महान्॥

—जा० श०

भक्तका स्वभाव

प्रह्लादने गुरुओंकी बात मानकर हरिनामको न छोड़ा, तब उन्होंने गुस्सेमें भरकर अग्निशिखाके समान प्रज्वलित शरीरवाली कृत्याको उत्पन्न किया। उस अत्यन्त भयंकर राक्षसीने अपने पैरोंकी चोटसे पृथ्वीको कँपाते हुए वहाँ प्रकट होकर बड़े क्रोधसे प्रह्लादजीकी छातीमें त्रिशूलसे प्रहार किया; किंतु उस बालकके हृदयमें लगते ही वह झलझलाता हुआ त्रिशूल टुकड़े-टुकड़े होकर जमीनपर गिर पड़ा। जिस हृदयमें भगवान् श्रीहरि निरन्तर प्रकटरूपसे विराजते हैं, उसमें लगनेसे वज्रके भी टूक-टूक हो जाते हैं, फिर त्रिशूलकी तो बात ही क्या है?

पापी पुरोहितोंने निष्पाप भक्तपर कृत्याका प्रयोग किया था, बुरा करनेवालेका ही बुरा होता है, इसलिये कृत्याने उन पुरोहितोंको ही मार डाला। उन्हें मारकर वह स्वयं भी नष्ट हो गयी। अपने गुरुओंको कृत्याके द्वारा जलाये जाते देखकर महामति प्रह्लाद 'हे कृष्ण! रक्षा करो! हे अनन्त! इन्हें बचाओ!' यों कहते हुए उनकी ओर दौड़े।

प्रह्लादजीने कहा—'सर्वव्यापी, विश्वरूप, विश्वस्रष्टा जनार्दन! इन ब्राह्मणोंकी इस मन्त्राग्निरूप भयानक विपत्तिसे रक्षा करो। यदि मैं इस सत्यको मानता हूँ कि सर्वव्यापी जगद्गुरु भगवान् सभी प्राणियोंमें व्याप्त हैं तो इसके प्रभावसे ये पुरोहित जीवित हो जायँ। यदि मैं सर्वव्यापी और अक्षय भगवान्को अपनेसे वैर रखनेवालोंमें भी देखता हूँ तो ये पुरोहितगण जीवित हो जायँ। जो लोग मुझे मारनेके लिये आये, जिन्होंने मुझे जहर दिया, आगमें जलाया, बड़े-बड़े हाथियोंसे कुचलवाया और साँपोंसे डँसवाया, उन सबके प्रति यदि मेरे मनमें एक-सा मित्रभाव सदा रहा है और मेरी कभी पाप-बुद्धि नहीं हुई है तो इस सत्यके प्रभावसे ये पुरोहित जीवित हो जायँ।'

यों कहकर प्रह्लादने उनका स्पर्श किया और स्पर्श होते ही वे मरे हुए पुरोहित जीवित होकर उठ बैठे और प्रह्लादका मुक्तकण्ठसे गुणगान करने लगे!

—सु० सिं०

निष्कामकी कामना—इकीस पीढ़ियाँ तर गयीं

हिरण्यकशिपु जब स्वयं प्रह्लादको मारनेके लिये उद्यत हुआ और क्रोधावेशमें उसने सामनेके खंभेपर घूसा मारा तब उसी खंभेको फाड़कर नृसिंहभगवान् प्रकट हो गये और उन्होंने हिरण्यकशिपुको पकड़कर नखोंसे उसका पेट फाड़ डाला। दैत्यराजके अनुचर प्राण लेकर भाग खड़े हुए। हिरण्यकशिपुकी आँतोंकी माला गलेमें डाले, बार-बार जीभ लपलपाकर विकट गर्जना करते अङ्गार-नेत्र नृसिंहभगवान् बैठ गये दैत्यराजके सिंहासनपर। उनका प्रचण्ड क्रोध शान्त नहीं हुआ था।

शंकरजी तथा ब्रह्माजीके साथ सब देवता वहाँ पधारे। सबने अलग-अलग स्तुति की। लेकिन कोई परिणाम नहीं हुआ। ब्रह्माजी डरे कि यदि प्रभुका क्रोध शान्त न हुआ तो पता नहीं क्या अनर्थ होगा। उन्होंने भगवती लक्ष्मीको भेजा; किंतु श्रीलक्ष्मीजी भी वह विकराल रूप देखते ही लौट पड़ीं। उन्होंने भी कह दिया—'इतना भयंकर रूप अपने आराध्यका मैंने कभी नहीं देखा। मैं उनके समीप नहीं जा सकती।'

अन्तमें ब्रह्माजीने प्रह्लादसे कहा—'बेटा! तुम्हीं समीप जाकर भगवान्‌को शान्त करो।'

प्रह्लादको भय क्या होता है, यह तो ज्ञात ही नहीं था। वे सहजभावसे प्रभुके सम्मुख गये और दण्डवत् प्रणिपात करते भूमिपर लोट गये। भगवान् नृसिंहने स्वयं उन्हें उठाकर गोदमें बैठा लिया और वात्सल्यके मारे जिह्वासे उनका मस्तक चाटने लगे। उन त्रिभुवन-नाथने कहा—'बेटा! मुझे क्षमा कर। मेरे आनेमें बहुत देर हुई, इससे तुझे अत्यधिक कष्ट भोगना पड़ा।'

प्रह्लादने गोदसे उतरकर हाथ जोड़कर प्रेमपूर्ण गद्गद-स्वरमें प्रार्थना की। भगवान्ने कहा—'प्रह्लाद! मैं प्रसन्न हूँ। तेरी जो इच्छा हो, वह वरदान माँग ले।'

प्रह्लाद बोले—'प्रभो! [illegible]! जो सेवक कुछ पानेकी आशासे स्वामीकी सेवा करता है, वह तो सेवक ही नहीं है। आप मेरे [illegible] स्वामी हैं और मैं आपका चरणाश्रित सेवक हूँ। यदि आप मुझे कुछ देना ही चाहते हैं तो यही वरदान दें कि मेरे मनमें कभी कोई कामना हो ही नहीं।'

भगवान् सर्वज्ञ हैं। उन्होंने 'एवमस्तु' कहकर भी कहा—'प्रह्लाद! कुछ तो माँग ले!'

प्रह्लादने सोचा—'प्रभु जब मुझसे बार-बार माँगनेको कहते हैं तो अवश्य मेरे मनमें कोई-न-कोई कामना है।' अन्तमें उन्होंने प्रार्थना की—'नाथ! मेरे पिताने आपकी बहुत निन्दा की है और आपके सेवक—मुझको कष्ट दिया है। मैं चाहता हूँ कि वे इस पापसे छूटकर पवित्र हो जायँ।'

भगवान् नृसिंह हँस पड़े—'प्रह्लाद! तुम्हारे-जैसा भक्त जिसका पुत्र हुआ वह तो स्वयं पवित्र हो गया। जिस कुलमें तुम-जैसे मेरे भक्त उत्पन्न हुए, उस कुलकी तो इक्कीस पीढ़ियाँ तर गयीं।'

अपनेको कष्ट देनेवालेकी भी दुर्गति न हो, यह एक कामना थी प्रह्लादके मनमें। धन्य है यह कामना। सच्चे भगवद्भक्तमें अपने लिये कोई कामना भला कैसे रह सकती है। (श्रीमद्भागवत ७। ९-१०)

शरीरमें अनासक्त भगवद्भक्तको कहीं भय नहीं

महात्मा जडभरत तो अपनेको सर्वथा जडकी ही भाँति रखते थे। कोई भी कुछ काम बतलाता तो कर देते। वह बदलेमें कुछ भोजन दे देता तो उसे खा लेते। नहीं देता तो भी प्रसन्न बने रहते। भोजनमें कौन क्या देता है, यह जैसे उन्हें पता ही नहीं लगता। कोई अच्छा भोजन दे, रूखी रोटी दे, [illegible] दे या और कुछ दे—अरे वे तो भूसी, [illegible] भी अमृतकी भाँति खा लिया करते थे। [illegible]

गरमी, वर्षा हो या सूखा—वे सदा नंगे शरीर अलमस्त घूमते रहते। भूमिपर, खेतमें, मेड़पर, जहाँ निद्रा आयी सो गये। ऐसे व्यक्तिसे स्वच्छता, सुसंगत व्यवहारकी आशा कोई कैसे करे। मैला-कुचैला जनेऊ कमरमें लपेट रक्खा था, इसीसे पहचाने जाते थे कि द्विजाति हैं। माता-पिताकी मृत्युके बाद सौतेले भाइयोंसे पालन-पोषण प्राप्त हो, इसकी अपेक्षा नहीं थी और अपना भी कहीं कुछ स्वत्व हो सकता है, यह उस दिव्य मनमें आ ही नहीं सकता था। लोगोंको इतना सस्ता मजदूर भला, कहाँ मिलता। भरतको तो किसीकी भी आज्ञाको अस्वीकार करना आता ही न था।

भाइयोंने देखा कि जडभरत औरोंका काम करके उनका दिया भोजन करते हैं तो कुख्याति होती है; अतः उन्होंने जडभरतको अपने ही खेतपर रखवालीके लिये बैठा दिया। भरत खेतकी रखवालीको बैठ तो गये; किंतु अपना खेत, पराया खेत वे क्या जानें और रखवालीमें खेतपर बैठे रहनेके अतिरिक्त भी कुछ करना है, इसका उन्हें क्या पता। हाँ, वे खेतपर बैठे अवश्य रहते थे। अँधेरी रातमें भी वे खेतकी मेंड़पर जमे बैठे ही रहते थे।

उसी समय कोई शूद्र सरदार देवी भद्रकालीको पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे मनुष्य-बलि देना चाहता था। उसने बलिके लिये मनुष्य प्राप्त कर लिया था; किंतु ठीक बलिदानकी रात्रिमें वह मनुष्य किसी प्रकार भाग गया। उस सरदारके सेवक उस मनुष्यको ढूँढ़ने निकले रात्रिमें। उन्हें वह मनुष्य तो मिला नहीं, खेतकी रखवाली करते जडभरत मिल गये। चिन्ता-शोकसे सर्वथा रहित होनेके कारण जडभरतका शरीर खूब मोटा-तगड़ा था। शूद्र सरदारके सेवकोंने देखा कि यह बलिके लिये अच्छा पशु है; बस, वे प्रसन्न हो गये। रस्सियोंसे जडभरतको बाँधकर देवीके मन्दिरमें उन्हें ले गये।

'हम तुम्हारी पूजा करेंगे!' शूद्र सरदार भी प्रसन्न हुआ। जडभरत-जैसा मोटा व्यक्ति बलिदानके लिये मिलनेसे विशेष सुविधा यह थी कि यह ऐसा व्यक्ति था जो किसी प्रकारका भी विरोध नहीं कर रहा था।

'अच्छा, पूजा करो!' जडभरतको तो सब बातें पहलेसे स्वीकार थीं।

'तुम भरपेट भोजन कर लो!' सरदारने नाना प्रकारके व्यञ्जन सामने रक्खे।

'अच्छा, भोजन करेंगे।' भरतने डटकर भोजन किया।

'हम तुम्हारा बलिदान करेंगे।' भली प्रकार पूजन करके सरदारने भरतको देवीके सम्मुख खड़ा किया और हाथमें अभिमन्त्रित तलवार ली।

'अच्छा, बलिदान करो।' भरतके लिये तो मानो यह भी भोजन या पूजन-जैसी ही कोई क्रिया थी।

शूद्र सरदारने तलवार उठायी; किंतु भगवद्भक्त आत्मज्ञानीका बलिदान ले सकें, इतनी शक्ति देवी भद्र-कालीमें भी नहीं है। उनकी मूर्तिके सम्मुख, उनके निमित्त ऐसे शरीरातीत परम भागवतका मस्तक कटे—कदाचित् इससे पहले उनका स्वयंका अस्तित्व संदिग्ध हो जायगा। यह कल्पना नहीं है, स्वयं देवी भद्रकालीको यही प्रतीत हुआ। उनका शरीर भस्म हुआ जा रहा था। क्रोधके मारे अट्टहास करती वे आधे पलमें प्रकट हो गयीं और शूद्र सरदारके हाथकी तलवार छीनकर सरदार और उसके सेवकोंका मस्तक उन्होंने एक झटकेमें उड़ा दिया। अपने गणोंके साथ आवेशमें वे उनका रक्त पीने लगीं, उनके मस्तकोंको उछालने और नृत्य करने लगीं।

जडभरत—वे परम तत्त्वज्ञ असङ्ग महापुरुष, उनके लिये जैसे अपनी मृत्युका कुछ अर्थ ही न था, वैसे ही भद्रकालीकी क्रीड़ा भी एक कौतुकमात्र थी। वे चुपचाप वहाँसे चले गये। —सु० सिं० (श्रीमद्भागवत ५। ९)

समस्त लौकिक-पारलौकिक सुखोंकी प्राप्तिका साधन भगवद्-भक्ति

बात आजकी नहीं, सृष्टिके प्रारम्भके सत्ययुगकी है। मनुके दो पुत्र थे—प्रियव्रत और उत्तानपाद। इनमें उत्तानपाद नरेश हुए। उनकी दो रानियाँ थीं; किंतु अपनी बड़ी रानी सुनीतिपर नरेशका प्रेम कम ही था। वे छोटी रानी सुरुचिके वश हो रहे थे। एक दिन बड़ी रानीका पुत्र ध्रुव खेलता आया और पिताकी गोदमें बैठ गया। छोटी रानी वहीं थीं, उनसे यह सहा नहीं गया। उन्होंने पाँच वर्षके बालक ध्रुवको हाथ पकड़कर नरेशकी गोदसे नीचे उतार दिया और झिड़ककर बोलीं—'यह आसन मेरे पुत्र उत्तमका है। तुझे यहाँ बैठना हो तो भगवान्‌का भजन करके मेरे गर्भसे जन्म ले।'

बड़ी कड़ी बात थी। नन्हे बालकको कहा जा रहा था कि 'पिताकी गोद या सिंहासनपर बैठनेके लिये मरना होगा और फिर विमाताके गर्भसे उत्पन्न होना होगा। पिताने भी बालकके अपमानको रोका नहीं। ध्रुव अन्ततः सम्राट्‌का कुमार था, अपमानसे क्षुब्ध रोता हुआ चल पड़ा वहाँसे। नन्हा बालक कहाँ जाय? माता ही एकमात्र उसका आश्रय-स्थान ठहरी।

पति-प्रेम-वञ्चिता रानी सुनीतिने हृदयपर पत्थर रखकर सब सुना। पुत्रको छातीसे लगाकर रोती हुई वे बोलीं—'बेटा! मुझ अभागिनीके गर्भसे जन्म लेकर सचमुच तुम भाग्यहीन हो गये हो; लेकिन तुम्हारी विमाताने तुम्हारे अपमानके लिये जो बात कही है, सच्ची बात वही है। सचमुच यदि तुम उनके पुत्र उत्तमकी भाँति महाराजके सिंहासनपर बैठना चाहते हो तो पद्मपलाश-लोचन श्रीहरिके चरणोंकी आराधना करो। तुम्हारे पितामह मनुने उन नारायणकी आराधनासे ही श्रेष्ठ पद पाया। भगवान् ब्रह्मा श्रीहरिकी कृपासे ही ब्रह्मत्वको भूषित करते हैं। समस्त लौकिक-पारलौकिक सुखोंकी प्राप्तिका साधन भगवद्-भक्ति ही है।

बालक ध्रुवको जैसे मार्ग मिल गया। उन्हें पता नहीं था कि भगवान् कौन हैं, उनकी भक्ति कैसे होती है, किंतु वे माताको प्रणाम करके घरसे निकल पड़े अकेले वनके मार्गमें। ध्रुवको कुछ पता हो या न हो, ध्रुव जिसे पाने निकले थे, उसे तो सब पता रहता है। कोई सचमुच उसे पाने चले और उसे मार्ग न मिले, यह सम्भव नहीं है। भगवान् नारायणके मनके ही अंश हैं देवर्षि नारदजी, ध्रुवके वनमें पहुँचने-न-पहुँचने वीणा बजाते वे उनके सम्मुख मार्गमें आ खड़े हुए।

बालक ध्रुवने देवर्षिको प्रणाम किया। देवर्षिने उनके मस्तकपर हाथ रक्खा, पुचकारा और सब बातें पूछकर समझाया—'अभी तो तुम बच्चे हो। बालकोंका क्या अपमान और क्या सम्मान। घर लौट चलो, मैं तुम्हारे पिताको समझा देता हूँ। यह तपस्या और उपासनाका मार्ग बड़ा कठोर है। समय आयेगा, बड़े होओगे तुम और तब यह सब भी कर लोगे।'

ध्रुव बच्चे थे, किंतु कच्चे नहीं थे। उनका निश्चय तो सम्राट्-कुमारका निश्चय था। बड़ी नम्रतासे उन्होंने निवेदन किया—'मुझे तो ऐसा पद चाहिये जो मेरे पिता, पितामह या और किसीको भी नहीं मिला है। ऐसा पद भी मुझे प्राप्त करना है [illegible]। आपने कृपा करके दर्शन दिया है तो अब इस उद्देश्यकी सिद्धिका साधन भी बता दीजिये।'

देवर्षि प्रसन्न हो गये इस दृढ़तासे। उन्होंने कहा—'तुम्हारी माताने तुम्हें ठीक मार्ग बताया है। जिसको कोई पुरुषार्थ अभीष्ट हो—उसकी प्राप्तिका साधन नारायणभगवान्‌की आराधना ही [illegible] कृपा करके द्वादशाक्षर मन्त्रका उपदेश किया, [illegible] जाकर भगवान्‌की पूजा करनेका आदेश दिया।

मायाकी गति [illegible]।
[illegible]।

कहाँ तो महाराज उत्तानपाद ध्रुवको गोदमेंसे हटाये जानेपर चुप बैठे रहे और कहाँ अब वे ही ध्रुवके वनमें जानेके समाचारसे अत्यन्त व्याकुल हो उठे। उन्हें भूख-प्यास और निद्रा भी भूल गयी। ध्रुव लौटें तो उन्हें सर्वस्व दे दें, यही सोचने लगे। देवर्षि नारद ध्रुवको मथुरा भेजकर महाराजके पास आये और उन्हें आश्वासन दिया।

ध्रुव मधुवनमें पहुँचे। यमुना-स्नान करके वे देवर्षिके उपदेशके अनुसार मन्त्र-जप तथा भगवद्ध्यानमें जुट गये। एक महीने उन्होंने तीन दिनके अन्तरसे एक बार बेर और कैथ खानेका नियम बनाया। दूसरे महीने वे प्रति छठे दिन सूखे तृण तथा वृक्षसे अपने-आप गिरे पत्ते खाकर रहे। तीसरे महीने नौ दिनके अन्तरसे एक बार केवल जल पी लेते थे और चौथे महीने तो बारह दिन बीतनेपर एक बार श्वास लेना मात्र उनका व्रत बन गया। चौथा महीना बीता और ध्रुवने श्वास लेना भी बंद कर दिया। एक पैरसे निश्चल, निस्पन्द खड़ा अखण्ड ध्यानमग्न था वह क्षत्रियकुमार।

बादल गरजे, बिजली टूटी, ओले पडे, सिंह और अजगर दहाड़ते-फुंकारते आये—व्यर्थ था मायाका यह सब प्रपञ्च। ध्रुव तो ऐसे दृढ़ शैल थे कि उसपर मस्तक पटककर मायिक प्रपञ्च स्वयं नष्ट हो जाते थे। अन्तमें माता सुनीतिका रूप बनाकर माया पुकारती आयी—'बेटा ध्रुव! लौट चल! लौट चल, बेटा!' पर ध्रुवके बंद पलक न हिले, न हिले।

देवता छटपटा रहे थे। वे प्रत्येक देहमें हैं, ध्रुवके दृढ़ प्राणनिरोधके कारण उनका दम घुटा जा रहा था और ध्रुव उनकी पहुँचसे परे पहुँच चुके थे। उनका कोई उद्योग ध्रुवके ध्यानको कम्पिततक करनेमें समर्थ नहीं था। अन्तमें सब देवता 'त्राहि त्राहि' करते भगवान् नारायणकी शरण पहुँचे। भगवान्ने उन्हें आश्वासन दिया और स्वयं गरुडपर बैठकर ध्रुवको कृतार्थ करने मधुवन पधारे।

त्रिलोकीके नाथ सम्मुख खडे हैं, किंतु ध्यानमग्न ध्रुवको इसका पता तक नहीं। भगवान्ने ध्रुवके हृदयसे अपनी मूर्ति अदृश्य कर दी। व्याकुल होकर ध्रुवने नेत्र खोले और चकित देखते रह गये। हाथ जोड लिये किंतु कहे क्या; बहुत इच्छा है स्तुति करनेकी, पर स्तुति करनी आती नहीं। सर्वज्ञ प्रभु हँस पडे, अपने निखिलवेदमय शंखका बालकके कपोलसे स्पर्श कर दिया। सरस्वती जाग्रत् हो गयीं, वाणी खुल पडी, ध्रुव स्तुति करने लगे।

स्तवनके पश्चात् प्रभुने कहा—'बेटा ध्रुव! जिस पदको तुम्हारे पिता या पितामहतकने नहीं पाया है, जिसे और भी कोई नहीं पा सका है, वह ध्रुवलोक तुम्हारा है। अभी तो तुम घर जाओ। पिताके बाद पैतृक सिंहासनको भूषित करना। धराका राज्य भोगकर यहाँका समय समाप्त होनेपर तुम सशरीर उस मेरे दिव्य लोकमें निवास करोगे। सप्तर्षि तथा समस्त तारक-मण्डल उस लोककी प्रदक्षिणा किया करेंगे।'

भगवत्कृपा पाकर ध्रुव लौटे। उनके लौटनेका समाचार देनेवालेको महाराज उत्तानपादने अपने कण्ठका रत्नहार उपहारमें दे दिया। माता सुनीतिके हर्षकी बात तो क्या कोई कहेगा, प्रसन्नताके मारे पूरा आशीर्वाद तो नहीं दे सकीं ध्रुवको निरस्कृत करनेवाली रानी सुरुचि। ध्रुवके प्रणाम करनेपर गद्गद स्वरसे उन्होंने कहा—'चिरञ्जीवी हो पुत्र!' महाराजने समारोहके साथ ध्रुवको नगरमें लाकर युवराजपद उसी समय दे दिया। —सु० सिं० (श्रीमद्भागवत ४। ८९)

आर्त जगत्के आश्रय

(भगवान् नारायण)

संसारमें जब पापका प्राबल्य हो जाता है—अनेक बार हो जाता है; किंतु अनेक बार ऐसा होता है कि पाप पुण्यके ही बलसे अजेय हो जाता है। असुर तपस्या करते हैं, उनकी तपःशक्ति उन्हें अजेय बना देती है। पाप विनाशी है, दुःखरूप है। शाश्वत, अजेय, सुखस्वरूप तो है धर्म। किंतु धर्म या पुण्य करके जब कोई अजेय अदम्य सुखी होकर पापरत हो जाय—देवता भी विवश हो जाते हैं। किसीकी तपःशक्ति, किसीका फल-दानोन्मुख पुण्य वे नष्ट नहीं कर सकते और अपने तप एवं पुण्यके द्वारा प्राप्त शक्ति तथा ऐश्वर्यसे मदान्ध प्राणी उच्छृङ्खल होकर विश्वमें त्रास, पीड़ा एवं उत्पीडनकी सृष्टि करता है।

जगत्की नियन्तृका शक्तियाँ—देवता भी जब असमर्थ हो जाते हैं, विश्वके परम संचालककी शरण ही एकमात्र उपाय रहता है। जबतक देवशक्ति नियन्त्रण करनेमें समर्थ है, उत्पीडन अपनी सीमाका अतिक्रमण करते ही स्वयं ध्वस्त हो जाता है। अहंकारी मनुष्य समझ नहीं पाता कि उसका विनाश उसके पीछे ही मुख फाड़े खड़ा है। पर ऐसा भी अवसर आता है जब देवशक्ति भी असमर्थ हो जाती है। उसकी शक्ति-सीमासे असुर बाहर हो जाते हैं। महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, ज्वालामुखी—कोई सिर नहीं उठा सकता। सब नियन्त्रित कर लिये जाते हैं। आसुरशक्तिके यथेच्छाचारसे जगत् आर्त हो उठता है।

एक बारकी नहीं, युग-युगकी कथा है यह। देवता, मुनिगण मिलकर उस परमतत्त्वकी शरण लेते हैं, उस सर्वसमर्थका स्तवन करते हैं और उन्हें आश्वासन प्राप्त होता है। वे रमाकान्त, गरुडवाहन भगवान् नारायण आविर्भूत होते हैं अभयदान करने।

सृष्टिकी—विश्वकी ही नहीं, जीवनकी भी यही कथा है। जब पाप प्रबल होता है, आसुर वृत्तियाँ अदम्य हो जाती हैं, यदि हम पराजय न स्वीकार कर लें, यदि हम उन आर्तोंके आश्रयको पुकारें—पुकार भर लें, वे रमाकान्त, गरुडवाहन भगवान् नारायण आश्वासन देते ही हैं। उनकी परमपावन स्मृति ही आलोक प्रदान करती है और आसुर-वृत्तियोंको ध्वस्त कर देती है।

ऐसो को उदार जग माहीं

मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरघुनाथजीको पता लगा कि उनके परम भक्त विभीषणको कहीं ब्राह्मणोंने बाँध लिया है। श्रीराघवेन्द्रने चारों ओर दूत भेजे, पता लगाया और अन्तमें स्वयं वहाँ पहुँचे, जहाँ ब्राह्मणोंने विभीषणको दृढ़ शृङ्खलाओंसे बाँधकर एक भूगर्भगृहमें बंदी बना रक्खा था।

मर्यादापुरुषोत्तमको कुछ पूछना नहीं पड़ा। ब्राह्मणोंने प्रभुका स्वागत किया, उनका आतिथ्य किया और कहा—'महाराज! इस वनमें हमारे आश्रमके पास एक राक्षस रथमें बैठकर आया था। हममेंसे एक अत्यन्त वृद्ध मौनव्रती वनमें कुश लेने गये थे। राक्षसने उनसे कुछ पूछा, किंतु मौनव्रती होनेसे वे उत्तर नहीं दे सके। दुष्ट राक्षसने उनके ऊपर पाद-प्रहार किया। वे वृद्ध तो थे ही, गिर पड़े और मर गये। हमलोगोंको समाचार मिला। हमने उस दुष्ट राक्षसको पकड़ लिया, किंतु हमारे द्वारा बहुत पीटे जानेपर भी वह मरता नहीं है। आप यहाँ आ गये हैं, यह सौभाग्यकी बात है। उस दुष्ट हत्यारेको आप दण्ड दीजिये।

ब्राह्मण विभीषणको उसी दशामें ले आये। विभीषणका मस्तक लज्जासे झुका था; किंतु श्रीराम तो और भी संकुचित हो गये। उन्होंने ब्राह्मणोंसे कहा—'किसीका सेवक कोई अपराध करे तो वह अपराध स्वामीका ही माना जाता है। आपलोग इनको छोड़ दें। मैंने इन्हें कल्पपर्यन्त जीवित रहनेका वरदान तथा लङ्काका राज्य दिया है। ये मेरे अपने हैं, अतः इनका अपराध तो मेरा ही अपराध है। आपलोग जो दण्ड देना चाहें, मैं उसे स्वीकार करूँगा।'

विभीषणजीने जान-बूझकर ब्रह्महत्या नहीं की थी। वे वृद्ध ब्राह्मण हैं और मौनव्रती हैं, यह विभीषणको पता नहीं था। उनको मार डालनेकी तो विभीषणकी इच्छा थी ही नहीं। अतः अनजानमें हुई हत्याका प्रायश्चित्त ही ऋषियोंने बताया और वह प्रायश्चित्त विभीषणने नहीं, श्रीराघवेन्द्रने स्वयं किया।— सु० सिं०

श्रीराधाजीके हृदयमें चरण-कमल

एक बार भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने सम्पूर्ण परिवार-परिकर आदिके साथ सिद्धाश्रम तीर्थमें स्नान करने गये। दैवयोगसे श्रीराधिकाजी भी वहाँ अपनी सखियोंके साथ स्नान करने आयी थीं। बड़े उल्लासके साथ उभय-पक्षके लोगोंका सम्मिलन हुआ। भगवान्‌की पटरानियोंने स्वयं प्रभुके मुखसे श्रीराधिकाजीकी बड़ी महिमा सुन रक्खी थी। अतएव समय निकालकर वे एकान्तमें श्रीराधिकाजीसे मिलीं। श्रीराधाजीने उनका बड़ा सत्कार किया। बातचीतके प्रसङ्गमें उन्होंने कहा—'बहिनो! चन्द्रमा एक होता है; परंतु चकोर अनेक होते हैं। सूर्य एक होता है, किंतु नेत्र अनेक होते हैं—

चन्द्रो यथैको बहवश्चकोराः
सूर्यो यथैको बहवो दृशः स्युः।
श्रीकृष्णचन्द्रो भगवांस्तथैव
भक्ता भगिन्यो बहवो वयं च॥

उनके वार्तालापका श्रीकृष्णपत्नियोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे आग्रह करके राधिकाजीको अपने स्थानपर ले आयीं। वहाँ सभीने उनका बड़ा स्वागत किया, भोजनादि भी कराया और अन्तमें श्रीरुक्मिणीजीने स्वयं दूध पिलाया। तत्पश्चात् अनेक प्रकारके शिष्ट-संलाप होनेके बाद श्रीराधाजी अपने स्थानपर लौट आयीं। शयनके समय श्रीरुक्मिणीजी नित्य-नियमानुसार प्रभुके चरण दाबने

बैठीं। चरणतलोंके दर्शन करते ही वे आश्चर्यमें डूब गयीं। उन्होंने देखा भगवान्‌के चरणतलपर तमाम फफोले पड़ रहे हैं। विस्मित होकर उन्होंने सभी सहेलियोंको बुलाया। सभी आश्चर्यसे दंग रह गयीं। भगवान्‌से पूछनेका किसीको साहस नहीं था। अन्तमें प्रभुने नेत्र खोलकर सबके वहाँ एकत्रित होनेका कारण पूछा। उत्तरमें उन लोगोंने चरणोंके फफोले दिखलाये। पहले तो भगवान्‌ने टालना चाहा। पर अत्यन्त आग्रह करनेपर उन्होंने कहा—

श्रीराधिकाया हृदयारविन्दे
पादारविन्दं हि विराजते मे।
अद्योष्णदुग्धप्रतिपानतोऽग्र्या-
वुच्छालकास्ते मम प्रोच्छलन्ति।'

अर्थात् श्रीराधाके हृदयमें मेरे चरणकमल निरन्तर विराजमान रहते हैं। तुमने उन्हें बहुत गरम दूध दे दिया। श्रीराधा उसे तुम्हारा दिया हुआ समझकर पी गयीं। दूध उनके हृदयमें गया और इससे मेरे चरण-कमलमें फफोले पड़ना स्वाभाविक था।

प्रभुके वचनसे महिषियोंको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। तबसे वे अपने प्रेमको श्रीराधाजीके प्रभु-प्रेमके सामने अत्यन्त तुच्छ मानने लगीं। —[illegible]

पेट-दर्दकी विचित्र औषध

प्रायः भगवान् श्रीकृष्णकी पटरानियाँ व्रजगोपिकाओंके नामसे नाक-भौं सिकोड़ने लगतीं। इनके अहंकारको भङ्ग करनेके लिये प्रभुने एक बार एक लीला रची। नित्य निरामय भगवान् बीमारीका नाटक कर पड़ गये। नारदजी आये। वे भगवान्‌के मनोभावको समझ गये। उन्होंने बतलाया कि इस रोगकी औषध तो है, पर उसका अनुपान प्रेमी भक्तकी चरण-रज ही हो सकती है। रुक्मिणी, सत्यभामा, सभीसे पूछा गया। पर पदरज कौन दे प्रभुको। भगवान्‌ने कहा—'एक बार व्रज जाकर देखिये तो।'

'नारदजी श्यामसुन्दरके पाससे आये हैं' यह सुनते ही श्रीराधाजीके साथ सारी व्रजाङ्गनाएँ बासी मुँह ही दौड़ पड़ीं। कुशल पूछनेपर नारदजीने श्रीकृष्णकी बीमारीकी बात सुनायी। गोपियोंके तो प्राण ही सूख गये। उन्होंने तुरंत पूछा—'क्या वहाँ कोई वैद्य नहीं है?'

'वैद्य भी हैं, दवा भी है, पर अनुपान नहीं मिलता।'

'ऐसा क्या अनुपान है?'

'अनुपान बहुत दुर्लभ है; उसे कौन दे? है तो वह सभीके पास, पर कोई उसे देना नहीं चाहता। सम्पूर्ण जगत्‌मे चक्कर लगा आया, पर व्यर्थ।'

'सभीके पास है! क्या हमलोगोंके पास भी है?'

'है क्यों नहीं, पर तुम भी दे न सकोगी।'

'प्रियतम श्रीकृष्णको न दे सकें, ऐसी हमारे पास कोई वस्तु ही नहीं रह सकती।'

'अच्छा, तो क्या श्रीकृष्णको अपने चरणोंकी धूलि दे सकोगी? यही है वह अनुपान, जिसके साथ दवा देनेसे उनकी बीमारी दूर होगी।'

'यह कौन-सी बड़ी कठिन बात है, मुनि महाराज! लो, हम पैर दबाये देती हैं; जितनी चाहिये, चरण-धूलि अभी ले जाओ।'

'अरी यह क्या करती हो?' नारदजी बोले। 'क्या तुम यह नहीं जानती कि श्रीकृष्ण भगवान् हैं? भला, उन्हें खानेको अपने पैरोंकी धूल! क्या तुम्हें नरकका भय नहीं है?'

'नारदजी! हमारे सुख-सम्पत्ति, भोग, मोक्ष—सब कुछ हमारे प्रियतम श्रीकृष्ण ही हैं। अनन्त नरकोंमें [illegible] भी हम श्रीकृष्णको स्वस्थ कर सकें—उनको [illegible] भी सुख पहुँचा सकें तो हम ऐसे नरकोंको [illegible] भजन करें। हमारे [illegible]

(नरक+ असुर) तो उन्होंने कभीके मार रक्खे हैं।'

नारदजी विह्वल हो गये। उन्होंने श्रीराधारानी तथा उनकी कायव्यूहरूपा गोपियोंकी परम पावन चरणरजकी पोटली बाँधी, अपनेको भी उससे अभिषिक्त किया। लेकर नाचते हुए द्वारका पधारे। भगवान्‌ने दवा ली। पटरानियाँ यह सब सुनकर लज्जासे गड़-सी गयीं। उनका प्रेमका अहंकार समाप्त हो गया। वे समझ गयीं कि हम उन गोपियोंके सामने सर्वथा नगण्य हैं। उन्होंने उन्हें मन-ही-मन निर्मल तथा श्रद्धापूत मनसे नमस्कार किया। —जा० श०

(उज्ज्वल भारत)

आर्त पुकार दयामय अवश्य सुनते हैं

युधिष्ठिर जुएमें अपना सर्वस्व हार गये थे। छल-पूर्वक शकुनिने उनका समस्त वैभव जीत लिया था। अपने भाइयोंको, अपनेको और रानी द्रौपदीको भी बारी-बारीसे युधिष्ठिरने दावपर रक्खा। जुआरीकी दुराशा उसे बुरी तरह ठगती रहती है—'कदाचित् अबकी बार सफलता मिले!' किंतु युधिष्ठिर प्रत्येक दाव हारते गये। जब वे द्रौपदीको भी हार गये, तब दुर्योधनने अपने छोटे भाई दु:शासनके द्वारा द्रौपदीको उस भरी सभामें पकड़ मँगवाया। दुरात्मा दु:शासन पाञ्चालीके केश पकड़कर घसीटता हुआ उन्हें सभामें ले आया। द्रौपदी रजस्वला थी और एक ही वस्त्र पहने थी। विपत्ति यहीं समाप्त नहीं हुई। दुर्योधनने अपनी जाँघ खोलकर दिखलाते हुए कहा—'दु:शासन! इस कौरवोंकी दासीको नंगी करके यहाँ बैठा दो।'

भरी थी राजसभा। वहाँ धृतराष्ट्र थे, पितामह भीष्म थे, द्रोणाचार्य थे। सैकड़ों सभासद् थे। वयोवृद्ध विद्वान् थे, शूरवीर थे और सम्मानित पुरुष भी थे। ऐसे लोगोंके मध्य पाण्डवोंकी वह महारानी, जिसके केश राजसूयके अवभृथ स्नानके समय सिञ्चित हुए थे, जो कुछ सप्ताहपूर्व ही चक्रवर्ती सम्राट्‌के साथ सम्राज्ञीके रूपमें भूमण्डलके समस्त नरेशोंद्वारा वन्दित हुई थी, रजस्वला होनेकी स्थितिमें केश पकड़कर घसीट लायी गयी और अब उसे नग्न करनेका आदेश दिया जा रहा था।

होनेको वहाँ विदुर भी थे; किंतु उनकी बात कौन सुनता। द्रौपदीने अनेक बार पूछा—'युधिष्ठिर जब अपने-आपको हार चुके थे, तब उन्होंने मुझे दावपर लगाया था; अतः धर्मतः मैं हारी गयी या नहीं?' किंतु भीष्म-जैसे धर्मज्ञोंने भी कोई निश्चित उत्तर नहीं दिया। जिसकी भुजाओंमें दस हजार हाथीका बल विख्यात था, उस दुरात्मा दु:शासनने द्रौपदीकी साड़ी पकड़ ली।

'मेरे त्रिभुवनविख्यात शूरवीर पति!' द्रौपदी व्याकुल होकर इधर-उधर देख रही थी कि कोई उसकी रक्षा करेगा; किंतु पाण्डवोंने लज्जा तथा शोकके कारण मुख दूसरी ओर कर लिया था।

'आचार्य द्रोण, पितामह भीष्म, धर्मात्मा कर्ण....' द्रौपदीने देखा कि उसका कोई सहायक नहीं। कर्ण तो उल्टे दु:शासनको प्रोत्साहित कर रहा है और भीष्म, द्रोण आदि बड़े-बड़े धर्मात्माओंके मुख दुर्योधनद्वारा अपमानित होनेकी आशङ्कासे बद हैं और उनके मस्तक नीचे झुके हैं।

एकवस्त्रा अबला नारी—उसकी एकमात्र साड़ीको दु:शासन अपनी बलभरी मोटी भुजाओंके बलसे झटके देकर खींच रहा है। कितने क्षण द्रौपदी साड़ीको पकड़े रह सकेगी? कोई नहीं—कोई नहीं, उसकी सहायता करनेवाला! उसके नेत्रोंसे झड़ी लग गयी, दोनों हाथ साड़ी छोड़कर ऊपर उठ गये। उसे भूल गयी राजसभा, भूल गयी साड़ी, भूल गया शरीर। वह कातर स्वरमें पुकार उठी—'श्रीकृष्ण! द्वारकानाथ! देवदेव! गोपीजनप्रिय!

जगन्नाथ ! इन दुष्ट कौरवोंके सागरमें मैं डूब रही हूँ, कृपामय ! मेरा उद्धार करो ।'

द्रौपदी पुकारने लगी—पुकारती रही उस आर्ति-नाशन असहायके सहायक करुणार्णवको । उसे पता नहीं था कि क्या हुआ या हो रहा है । सभामें कोलाहल होने लगा । लोग आश्चर्यचकित रह गये । दुःशासन पूरी शक्तिसे वेगपूर्वक द्रौपदीकी साड़ी खींच रहा था । वह हाँफने लगा था, पसीनेसे लथपथ हो गया था, थक गयी थीं दस सहस्र हाथियोंका बल रखनेवाली उसकी भुजाएँ । द्रौपदीकी साड़ीसे रंग-बिरंगे वस्त्रोंका अम्बार निकलता जा रहा था । वह दस हाथकी साड़ी पाञ्चालीके शरीरसे तनिक भी हट नहीं रही थी । वह तो अनन्त हो चुकी थी । दयामय द्वारकानाथ रजस्वला नारीके उस अपवित्र वस्त्रमें ही प्रविष्ट हो गये थे । आज उन्होंने वस्त्रावतार धारण कर लिया था और तब उन अनन्तका ओर-छोर कोई पा कैसे सकता था ।

'विदुर ! यह कोलाहल कैसा है ?' अंधे राजा धृतराष्ट्रने घबराकर पूछा ।

महात्मा विदुरने बताया—'दुःशासन द्रौपदीकी साड़ी खींचते-खींचते थक चुका है । वस्त्रोंका ढेर लग गया है । आश्चर्यचकित सभासदोंका यह कोलाहल है । साथ ही आपकी यज्ञशालामें शृगाल घुस आये हैं और रो रहे हैं । दूसरे भी बहुत-से अपशकुन हो रहे हैं । द्रौपदी सर्वेश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको पुकारनेमें तत्पर हो रही है । उन सर्वसमर्थने अभी तो उसकी साड़ी बढ़ा दी है; किंतु यदि शीघ्र आप पाञ्चालीको प्रसन्न नहीं करते तो श्रीकृष्णका महाचक्र कब प्रकट होकर एक क्षणमें आपके पुत्रोंको नष्ट कर देगा—यह कोई कह नहीं सकता । आपके सभासद् तो भय-व्याकुल होकर कोलाहल करते हुए दुर्योधनकी जो निन्दा कर रहे हैं, उसे आप सुन ही रहे हैं ।'

धृतराष्ट्रको भय लगा । उन्होंने दुर्योधनको फटकारा । दुःशासनने द्रौपदीकी साड़ी छोड़ दी और चुपचाप अपने आसनपर बैठ गया । वह समझे या न समझे, पाण्डव तथा भीष्म-जैसे भगवद्भक्तोंको यह समझना नहीं था कि द्रौपदीकी लज्जा-रक्षा कैसे हुई । —सु० सिं०

(महाभारत, सभा० ६७–७१)

धन्य कौन

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण हस्तिनापुरके दुर्योधनके यज्ञसे निवृत्त होकर द्वारका लौटे थे । यदुकुलकी लक्ष्मी उस समय ऐन्द्री लक्ष्मीको भी मात कर रही थी । सागरके मध्यस्थित श्रीद्वारकापुरीकी छटा अमरावतीकी शोभाको भी तिरस्कृत कर रही थी । इन्द्र इससे मन-ही-मन लज्जित तथा अपनी राज्यलक्ष्मीसे द्वेष-सा करने लग गये थे । हृषीकेश नन्दनन्दनकी अद्भुत राज्यश्रीकी बात सुनकर उसे देखनेको उसी समय बहुत-से राजा द्वारका पधारे । इनमें कौरव-पाण्डवोंके साथ पाण्ड्य, चोल, कलिङ्ग, बाह्लीक, द्रविड, खश आदि अनेक देशोंके राजा-महाराजा भी सम्मिलित थे ।

एक बार इन सभी राजा-महाराजाओंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण सुधर्मा सभामें स्वर्णसिंहासनपर विराजमान थे । अन्य राजा-महाराजागण भी चित्र-विचित्र आसनोंपर यथास्थान चारों ओरसे उन्हें घेरे बैठे थे । उस समय उनकी शोभा बड़ी विलक्षण थी । ऐसा लगता था मानो देवताओं तथा असुरोंके बीच साक्षात् प्रजापति ब्रह्मा विराज रहे हों ।

इसी समय मेघनादके समान तीव्र गम्भीर नाद हुआ और बड़े जोरोंकी हवा चली । ऐसा जान पड़ा कि अब भारी वर्षा होगी और दुर्दिन-सा दीखने लग गया । पर लोगोंको बड़ा आश्चर्य हुआ जब कि इस तुमुल दुर्दिनका भेदन करते हुए सहसा देवर्षि नारद निकल पड़े । वे ठीक अग्निशिखाके समान

नरेन्द्रोंके बीच सीधे उतर पड़े। नारदजीके पृथ्वीपर उतरते ही वह दुर्दिन (वायु-मेघादिका आडम्बर) समाप्त हो गया। समुद्र-सदृश नृपमण्डलीके बीच उतरकर देवर्षिने सिंहासनासीन श्रीकृष्णकी ओर मुख करके कहा—'पुरुषोत्तम! देवताओंके बीच आप ही परम आश्चर्य तथा धन्य हैं।' इसे सुनकर प्रभुने कहा—'हाँ, मैं दक्षिणाओंके साथ आश्चर्य और धन्य हूँ।' इसपर देवर्षिने कहा—'प्रभो! मेरी बातका उत्तर मिल गया, अब मैं जाता हूँ।' श्रीनारदको चलते देख राजाओंको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे कुछ भी समझ न सके कि बात क्या है। उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णसे पूछा—'प्रभो! हमलोग इस दिव्य तत्त्वको कुछ जान न पाये; यदि गोप्य न हो तो इसका रहस्य हमें समझानेकी कृपा करें।' इसपर भगवान्ने कहा—'आपलोग धैर्य रक्खें, इसे स्वयं नारदजी ही सुना रहे हैं।' यों कहकर उन्होंने देवर्षिको इसे राजाओंके सामने स्पष्ट करनेके लिये कहा।

नारदजी कहने लगे—"राजाओ! सुनो—जिस प्रकार मैं इन श्रीकृष्णके माहात्म्यको जान सका हूँ, वह तुम्हें बतलाता हूँ। एक बार मै सूर्योदयके समय एकान्तमें गङ्गा-किनारे घूम रहा था। इतनेमें ही वहाँ एक पर्वताकार कछुआ आया। मै उसे देखकर चकित रह गया। मैंने उसे हाथसे स्पर्श करते हुए कहा—'कूर्म! तुम्हारा शरीर परम आश्चर्यमय है। वस्तुतः तुम धन्य हो। क्योंकि तुम निःशङ्क और निश्चिन्त होकर इस गङ्गामे सर्वत्र विचरते हो, फिर तुमसे अधिक धन्य कौन होगा?' मेरी बात पूरी भी न हो पायी थी कि बिना ही कुछ सोचे वह कछुआ बोल उठा–'मुने! भला मुझमें आश्चर्य क्या है तथा प्रभो! मैं धन्य भी कैसे हो सकता हूँ? धन्य तो हैं ये देवनदी गङ्गा, जो मुझ-जैसे हजारों कछुए तथा मकर, नक्र, झषादि संकुल जीवोंकी आश्रयभूता शरणदायिनी हैं। मेरे-जैसे असंख्य जीव इनमें भरे हैं—विचरते रहते हैं, भला इनसे अधिक आश्चर्य तथा धन्य और कौन है?'

"नारदजीने कहा, 'राजाओ! कछुएकी बात सुनकर मुझे बड़ा कुतूहल हुआ और मैं गङ्गादेवीके सामने जाकर बोला—'सरित्-श्रेष्ठे गङ्गे! तुम धन्य हो। क्योंकि तुम तपस्वियोंके आश्रमोंकी रक्षा करती हो, समुद्रमें मिलती हो, विशालकाय श्वापदोंसे सुशोभित हो और सभी आश्चर्योंसे विभूषित हो।' इसपर गङ्गा तुरंत बोल उठीं—'नहीं, नहीं, देवगन्धर्वप्रिय देवर्षे! कलहप्रिय नारद! मैं क्या आश्चर्यविभूषित या धन्य हूँ। इस लोकमें सर्वाश्चर्यकर परमधन्य तो समुद्र ही है, जिसमें मुझ-जैसी सैकड़ों बड़ी-बड़ी नदियाँ मिलती हैं।' इसपर मैंने जब समुद्रके पास जाकर उसकी ऐसी प्रशंसा की तो वह जलतलको फाड़ता हुआ ऊपर उठा और बोला—'मुने! मैं कोई धन्य नहीं हूँ; धन्य तो है यह वसुन्धरा, जिसने मुझ-जैसे कई समुद्रोंको धारण कर रक्खा है और वस्तुतः सभी आश्चर्योंकी निवासभूमि भी यह भूमि ही है।'

"समुद्रके वचनोंको सुनकर मैंने पृथ्वीसे कहा, 'देहधारियोंकी योनि पृथ्वी! तुम धन्य हो। शोभने! तुम समस्त आश्चर्योंकी निवासभूमि भी हो।' इसपर वसुन्धरा चमक उठी और बड़ी तेजीसे बोल गयी—'अरे! ओ संग्रामकलहप्रिय नारद! मैं धन्य-वन्य कुछ नहीं हूँ, धन्य तो हैं ये पर्वत जो मुझे भी धारण करनेके कारण 'भूधर' कहे जाते हैं और सभी प्रकारके आश्चर्योंके निवासस्थल भी ये ही हैं।' मैं पृथ्वीके वचनोंसे पर्वतोंके पास उपस्थित हुआ और कहा कि 'वास्तवमें आपलोग बड़े आश्चर्यमय दीख पड़ते हैं। सभी श्रेष्ठ रत्न तथा सुवर्ण आदि धातुओंके शाश्वत आकर भी आप ही हैं, अतएव आपलोग धन्य हैं।' पर पर्वतोंने भी कहा—'ब्रह्मर्षे! हमलोग धन्य नहीं हैं। धन्य हैं प्रजापति ब्रह्मा और

वे सर्वाश्चर्यमय जगत्‌के निर्माता होनेके कारण आश्चर्यभूत भी हैं।'

"अब मैं ब्रह्माजीके पास पहुँचा और उनकी स्तुति करने लगा—'भगवन्! एकमात्र आप ही धन्य हैं, आप ही आश्चर्यमय हैं। सभी देव, दानव आपकी ही उपासना करते हैं। आपसे ही सृष्टि उत्पन्न होती है, अतएव आपके तुल्य अन्य कौन हो सकता है?' इसपर ब्रह्माजी बोले—'नारद! इन धन्य, आश्चर्य आदि शब्दोंसे तुम मेरी क्यों स्तुति कर रहे हो? धन्य और आश्चर्य तो ये वेद हैं, जिनसे यज्ञोंका अनुष्ठान तथा विश्वका संरक्षण होता है।' अब मैं वेदोंके पास जाकर उनकी प्रशंसा करने लगा तो उन्होंने यज्ञोंको धन्य कहा। तब मैं यज्ञोंकी स्तुति करने लगा। इसपर यज्ञोंने मुझे बतलाया कि—'हम धन्य नहीं, विष्णु धन्य हैं, वे ही यज्ञोंकी अन्तिम गति हैं। सभी यज्ञोंके द्वारा वे ही आराध्य हैं।'

"तदनन्तर मैं विष्णुकी गतिकी खोजमें यहाँ आया और आप राजाओंके मध्य श्रीकृष्णके रूपमें इन्हें देखा। जब मैंने इन्हें धन्य कहा, तब इन्होंने अपनेको दक्षिणाओंके साथ धन्य बतलाया। दक्षिणाओंके साथ भगवान् विष्णु ही समस्त यज्ञोंकी गति हैं। यहीं मेरा प्रश्न समाहित हुआ और इतनेमें ही मेरा कुतूहल भी निवृत्त हो गया। अतएव मैं अब जा रहा हूँ।"

यों कहकर देवर्षि नारद चले गये। इस रहस्य तथा संवादको सुनकर राजालोग भी बड़े विस्मित हुए और सबने एकमात्र प्रभुको ही धन्यवाद, आश्चर्य एवं सर्वोत्तम प्रशंसाका पात्र माना। —जा० श०

(हरिवंश, विष्णुपर्व, अध्याय ११०, धन्योपाख्यानमें)

दुर्योधनके मेवा त्यागे

द्वारकाधीश श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवोंके सन्धि-दूत बनकर आ रहे थे। धृतराष्ट्रके विशेष आदेशसे हस्तिनापुर सजाया गया था। दुःशासनका भवन, जो राजभवनसे भी सुन्दर था, वासुदेवके लिये खाली कर दिया गया था। धृतराष्ट्रने आदेश दिया था—'अश्व, गज, रथ, गायें, रत्न, आभरण और दूसरी जो भी वस्तुएँ हमारे यहाँ सर्वोत्तम हों, बहुमूल्य हों, वे दुःशासनके भवनमें एकत्र कर दी जायँ। वे सब श्रीवासुदेवको भेंट कर दी जायँ।'

दुर्योधनके मनमें प्रेम नहीं था, पर वह ऊपरसे बड़े ही उत्साहपूर्वक पिताकी आज्ञाका पालन कर रहा था। उसने राज्यके सब कारीगर जुटा रक्खे थे भवन, मार्ग तथा नगरमें तोरण-द्वार सजानेके लिये। श्रीकृष्णचन्द्रके भोजनके लिये इतने पदार्थ बनवाये गये थे जिनकी गणना करना भी कठिन था। ऐसी साज-सज्जा की गयी थी कि वह हस्तिनापुरके इतिहासके लिये नवीन थी।

वासुदेवका रथ आया। नगरसे बाहर जाकर दुर्योधनने भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर आदि वृद्ध सम्मान्य पुरुषों तथा भाइयोंके साथ उनका स्वागत किया। उनके साथ सब नगरमें आये।

'आप पधारें!' बड़ी नम्रतासे दुर्योधनने मार्ग दिखलाया। परंतु वासुदेव बोले—'राजन्! आपके इस स्वागतके लिये धन्यवाद! किंतु दूतका कर्तव्य है कि जबतक उसका कार्य न हो जाय, वह दूसरे पक्षके यहाँ भोजनादि न करे।'

दुर्योधनको बुरा लगा, किंतु [illegible] करके वह बोला—'आप दूत हैं, [illegible] हैं। आप हमारे सम्मान्य सम्बन्धी हैं। हम तो कुछ सेवा कर सकते हैं, हमने उसका प्रबन्ध किया है। आप हमारा स्वागत क्यों अस्वीकार कर रहे हैं?'

अब श्रीकृष्णचन्द्रने स्पष्ट कहा कि—'राजन्! [illegible]

भूखसे मर रहा हो, वह चाहे जहाँ भोजन कर लेता है; किंतु जो ऐसा नहीं है, वह तो दूसरे घर तभी भोजन करता है, जब उसके प्रति वहाँ प्रेम हो। भूखसे मैं मर नहीं रहा हूँ और प्रेम आपमें है नहीं।'

द्वारकानायकका रथ मुड़ गया विदुरके भवनकी ओर। उनके लिये जो दुःशासनका भवन सजाया गया था, उसकी ओर तो उन्होंने ताकातक नहीं।

—सु० सिं० (महाभारत, उद्योग० ९१)

भगवान् या उनका बल ?

महाभारतका युद्ध निश्चित हो गया था। दोनों पक्ष अपने-अपने मित्रों, सम्बन्धियों, सहायकोंको एकत्र करनेमें लग गये थे। श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवोंके पक्षमें रहेंगे, यह निश्चित था; किंतु सभी कौरव वीर इसी सत्यसे भयभीत थे। श्रीकृष्ण यदि चक्र उठा ले, उनके सामने दो क्षण भी खड़ा होनेवाला उन्हें दीखता नहीं था और उनकी नारायणी सेना—विश्वकी वह सर्वश्रेष्ठ सेना क्या उपेक्षा कर देने योग्य है ? 'कुछ भी हो, जितनी सहायता श्रीकृष्णसे पायी जा सके, पानेका प्रयत्न करना चाहिये।' यह सम्मति थी शकुनि-जैसे सम्मति देनेवालोंकी। इच्छा न होनेपर भी स्वयं दुर्योधन द्वारकाधीशको रण-निमन्त्रण देने द्वारका पहुँचे।

दुर्योधनकी पुत्रीका विवाह हुआ था श्रीकृष्ण-तनय साम्बसे। दुर्योधनके लिये द्वारकेशके भवनमें जानेमें कोई बाधा नहीं थी। वे भवनमें भीतर पहुँचे। भगवान् वासुदेव भोजन करके मध्याह्न-विश्राम करने शय्यापर लेटे थे। कक्षमे दूसरा कोई था नहीं। लीलामयने निद्राका नाट्य करके नेत्र बंद कर रक्खे थे। दुर्योधनने इधर-उधर देखा। शय्याके सिरहानेके पास बैठनेके लिये एक उत्तम आसन पड़ा था। वे उसीपर चुपचाप बैठकर श्रीकृष्णचन्द्रके जागनेकी प्रतीक्षा करने लगे।

अर्जुन भी उपप्लव्य नगरसे चले थे रण-निमन्त्रण देने। वे भी पहुँचे द्वारकेशके उसी कक्षमें। श्यामसुन्दरको शयन करते देखकर वे उनके चरणोंके पास खड़े हो गये और उन भुवनसुन्दरकी यह शयन-झाँकी देखने लगे आत्मविस्मृत होकर।

सहसा श्रीकृष्णचन्द्रने नेत्र खोले। सम्मुख अर्जुन-को देखकर पूछने लगे—'धनञ्जय ! कब आये तुम ? कैसे आये ?'

दुर्योधन डरे कि कहीं अर्जुनको ये कोई वचन न दे दें। बैठे-बैठे ही वे बोले—'वासुदेव ! पहिले मैं आया हूँ आपके यहाँ। अर्जुन तो अभी आया है।'

'आप !' बायीं ओरसे सिरको पीछे घुमाकर जनार्दनने देखा दुर्योधनको और अभिवादन करके पूछा—'कैसे पधारे आप ?'

दुर्योधनने कहा—'आप जानते ही हैं कि पाण्डवों-से हमारा युद्ध निश्चित है। आप मेरे सम्बन्धी हैं। मैं युद्धमें आपकी सहायता माँगने आया हूँ।'

'अर्जुन ! तुम ?' अब अर्जुनसे पूछा गया तो वे बोले—'आया तो मैं भी इसी उद्देश्यसे हूँ।'

बड़े गम्भीर स्वरमे द्वारकानाथ बोले—'आप दोनों हमारे सम्बन्धी हैं। इस घरेलू युद्धमें किसी पक्षसे युद्ध करना मुझे प्रिय नहीं है। मैं इस युद्धमें शस्त्र नहीं ग्रहण करूँगा। एक ओर मैं शस्त्रहीन रहूँगा और एक ओर मेरी सेना शस्त्र-सज्ज रहेगी। परंतु राजन् ! अर्जुनको मैंने पहिले देखा है और वे आपसे छोटे भी हैं; अतः पहिले अर्जुनको अवसर मिलना चाहिये कि वे दोनोंमेंसे जो चाहें, अपने लिये चुन लें।'

अर्जुनको तो जैसे वरदान मिला । वे डर रहे थे कि कहीं पहिला अवसर दुर्योधनको मिला और उसने वासुदेवको ले लिया तो अनर्थ ही हो जायगा । उन्होंने बड़ी आतुरतासे कहा—'आप हमारी ओर रहें ।'

दुर्योधनका मुख सूख गया था द्वारकेशके निर्णयसे । वे सोचने लगे थे, जब ये शस्त्र उठायेंगे ही नहीं, तब युद्धमें इन्हें लेकर कोई करेगा क्या । उल्टे कोई-न-कोई उपद्रव खड़ा किये रहेंगे ये । कहीं ऐसा न हो कि अर्जुन सेना ले ले और ये हमारे सिर पड़ें । अर्जुनकी बात सुनते ही दुर्योधन आसनसे उत्साहके मारे उठ खड़े हुए—'हाँ, हाँ, ठीक है ! स्वीकार है हमें ! आप पाण्डवपक्षमें रहें और नारायणी सेनाको आज्ञा दें हमारे पक्षमें प्रस्थान करनेकी ।' भगवान्‌ने पहले ही वामदृष्टिसे देख लिया था उनकी ओर, इससे भगवान्‌को न पाकर वे प्रसन्न हो गये ।

दुर्योधनके सामने ही सेनाको आदेश भेज दिया गया । जब वे प्रसन्न होकर चले गये, तब हँसकर मधुसूदन अर्जुनसे बोले—'पार्थ ! यह क्या बचपन किया तुमने ! सेना क्यों नहीं ली तुमने ! मैंने तो तुमको पहिले अवसर दिया था । मैं शस्त्र उठाऊँगा नहीं, यह कह चुका हूँ । मुझे लेकर तुमने क्या लाभ सोचा । तुम चाहो तो यादव शूरोंकी एक अक्षौहिणी सेना अब भी मेरे बदले ले सकते हो ।'

अर्जुनके नेत्र भर आये । वे कहने लगे—'माधव ! आप मेरी परीक्षा क्यों लेते हैं ! मैंने किसी लाभको सोचकर आपको नहीं चुना है । पाण्डवोंकी जय हो या न हो; किंतु हम आपको छोड़कर नहीं रह सकते । आप तो हमारे प्राण हैं । आपसे रहित [illegible] हमें नहीं चाहिये । हम तो आपके हैं, आपके समीप रहना चाहते हैं ।'

'क्या कराना चाहते हो तुम मुझसे ?' हँसकर पूछा वासुदेवने और हँसकर ही अर्जुनने उत्तर दिया—'सारथि बनाऊँगा आपको । मेरे रथकी रश्मि हाथमें लीजिये और मुझे निश्चिन्त कर दीजिये ।'

जो अपने जीवन-रथकी डोर भगवान्‌के हाथमें सौंप देता है, उसकी लौकिक तथा पारमार्थिक विजय निश्चित है ।—सु० सिं०

श्रीकृष्णका निजस्वरूप-दर्शन

महाभारतका युद्ध समाप्त हो चुका । महाराज युधिष्ठिर एकराट्के रूपमें अभिषिक्त कर दिये गये । अब भगवान् श्रीकृष्ण सुभद्राको लेकर द्वारका लौट रहे थे । यात्रा करते हुए भगवान् मारवाड़ देशमें वहाँ जा पहुँचे, जहाँ अमित तेजस्वी उत्तङ्क मुनि रहते थे । भगवान्‌ने उनका दर्शन किया और पूजा भी की ।

तत्पश्चात् मुनिने भी उनका स्वागत-सत्कार किया । फिर कुशल-प्रश्न होने लगे । अन्तमें जब श्रीकृष्णने कौरवोंके संहारकी बात सुनायी, तब मुनि क्रोधमें भर गये और बोले—'मधुसूदन ! कौरव तुम्हारे सम्बन्धी और प्रेमी थे । शक्ति रहते हुए भी तुमने उनकी रक्षा नहीं की । अतः आज मैं तुम्हें शाप दूँगा । ओह ! कुरुवंशके सभी श्रेष्ठ वीर नष्ट हो गये और तुमने सामर्थ्य रहते भी उनकी उपेक्षा की !'

श्रीकृष्ण बोले—'भृगुनन्दन ! पहले मेरी बात तो सुन लीजिये । आपने जो बाल्यावस्थासे ब्रह्मचर्य-[illegible] कर कठोर तपस्या की है और गुरुभक्तिसे अपने गुरुको संतुष्ट किया है, मैं वह सब जानता हूँ; [illegible] रख लीजिये कि कोई भी पुरुष [illegible] मेरा तिरस्कार नहीं कर सकता [illegible] दे सकता । मैं आपको [illegible] उसे सुनकर पीछे [illegible]

आपको मालूम होना चाहिये—ये रुद्र, वसु, सम्पूर्ण दैत्य, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, नाग और अप्सराओंका मुझसे ही प्रादुर्भाव हुआ है। असत्, सदसत् तथा उससे परे जो अव्यक्त जगत् हैं, वह भी मुझ सनातन देवाधिदेवसे पृथक् नहीं है। मैं धर्मकी रक्षा तथा स्थापनाके लिये महात्माओंके साथ अनेक बार अनेक योनियोंमें अवतार धारण करता हूँ। मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र तथा सबकी उत्पत्ति और प्रलयका कारण हूँ। जब-जब धर्मका ह्रास और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब मैं विभिन्न योनियोंमें प्रविष्ट होकर धर्ममर्यादाकी स्थापना करता हूँ। जब देवयोनिमें अवतार लेता हूँ, तब मेरे सारे आचार-व्यवहार देवताओंके सदृश होते हैं। गन्धर्व-योनिमें अवतार लेनेपर गन्धर्वोंके समान तथा नाग, यक्ष, राक्षस योनियोंमें अवतार लेनेपर उन-उन योनियोंके सदृश आचार-व्यवहारका पालन करता हूँ। इस समय मैं मनुष्यरूपमें प्रकट हुआ हूँ। अतएव मैंने कौरवोंसे दीनतापूर्वक प्रार्थना की, किंतु मोहग्रस्त होनेके कारण उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। अतः युद्धमें प्राण देकर इस समय वे स्वर्गमें पहुँचे हैं।'

इसपर उत्तङ्कने कहा—'जनार्दन! मैं जानता हूँ, आप जगदीश्वर हैं। अब मैं आपको शाप नहीं दूँगा। आप कृपा कर अपना विश्वरूप मुझे दिखलायें।' तत्पश्चात् भगवान्‌ने उन्हें सनातन विष्णु-स्वरूपका दर्शन कराया और वर माँगनेके लिये प्रेरित किया। उत्तङ्कने उस मरुभूमिमें जल मिलनेका वर माँगा। भगवान्‌ने कहा—'जब भी जलकी आवश्यकता हो, तब-तब मेरा स्मरण कीजिये।' यह कहकर श्रीकृष्ण द्वारकाको चल पड़े।

एक दिन उत्तङ्क मुनिको बड़ी प्यास लगी। वे पानीके लिये चारों ओर घूमने लगे। इतनेमें ही उन्हें श्रीकृष्णकी बात स्मरण हो आयी। उन्होंने श्रीकृष्णको याद किया। तबतक देखते क्या हैं—एक नंग-धड़ंग, कुत्तोंसे घिरा भीषण आकारका चाण्डाल चला आ रहा है। उस चाण्डालके मूत्रेन्द्रियसे अजस्र जलकी धारा गिरती दिखायी देती थी। वह मुनिके निकट आकर बोला—'महर्षे! आपको प्याससे व्याकुल देखकर मुझे बड़ी दया लगती है। आप जल्दी आकर मेरे पास जल पी लीजिये।'

यह सुनकर कुपित होकर उत्तङ्क उस चाण्डालको डाँटने लगे तथा वर देनेवाले श्रीकृष्णको भी भला-बुरा बकने लगे। उनके इनकार करनेपर कुत्तोंके साथ चाण्डाल वहीं गायब हो गया। यह देखकर महात्मा उत्तङ्क समझ गये कि श्रीकृष्णकी ही यह सब माया है। तबतक भगवान् श्रीकृष्ण शङ्ख, चक्र, गदा धारण किये वहाँ प्रकट हो गये। उनको देखते ही उत्तङ्क बोल उठे—'केशव! प्यासे ब्राह्मणको चाण्डालका मूत्र देना आपको उचित नहीं।'

श्रीकृष्णने बड़े मधुर शब्दोंमें कहा—'मनुष्यको प्रत्यक्ष रूपसे अमृत नहीं पिलाया जाता। इससे मैंने चाण्डालवेषधारी इन्द्रको गुप्तरूपसे अमृत पिलाने भेजा था, किंतु आप उन्हें पहचान न सके। पहले तो देवराज आपको अमृत देनेको तैयार नहीं थे। पर मेरे बार-बार अनुरोध करनेपर वे इस शर्तपर आपको अमृत पिलाने तथा अमर बनानेपर तैयार हो गये कि यदि ऋषि चाण्डाल-वेषमें तथाकथित ढंगसे अमृत पी लेंगे, तब तो मैं उन्हें दे दूँगा और यदि वे न लेंगे तो अमृतसे वञ्चित रह जायँगे। पर खेद है आपने अमृत नहीं ग्रहण किया। आपने उनको लौटाकर बड़ा बुरा किया। अस्तु! अब मैं आपको पुनः वर देता हूँ कि जिस समय आप पानी पीनेकी इच्छा करेंगे, उसी समय बादल मरुभूमिमें पानी बरसाकर आपको स्वादिष्ट जल देंगे। उन मेघोंका नाम उत्तङ्क-मेघ होगा।'

भगवान्‌के यों कहनेपर उत्तङ्क तबसे बड़ी प्रसन्नतासे वहीं रहने लगे। अब भी उत्तङ्क-मेघ मारवाड़की मरुभूमिमें पानी बरसाते रहते हैं। —जा० श०

(महाभारत, आश्वमेधिक० अध्याय ५३—५६)

हनुमान्‌जीके अत्यल्प गर्वका मूलसे संहार

भगवान् श्रीरामचन्द्र जब समुद्रपर सेतु बाँध रहे थे, तब विघ्ननिवारणार्थ पहले उन्होंने गणेशजीकी स्थापना कर नवग्रहोंकी नौ प्रतिमाएँ नलके हाथों स्थापित करायीं। तत्पश्चात् उनका विचार सागर-संयोगपर एक अपने नामसे शिवलिङ्ग स्थापित करानेका हुआ। इसके लिये हनुमान्‌जीको बुलाकर कहा—'मुहूर्तके भीतर काशी जाकर भगवान् शङ्करसे लिङ्ग माँगकर लाओ। र देखना, मुहूर्त न टलने पाये।' हनुमान्‌जी क्षणभरमें ाराणसी पहुँच गये। भगवान् शङ्करने कहा—'मैं हलेसे ही दक्षिण जानेके विचारमें था; क्योंकि अगस्त्यजी विन्ध्याचलको नीचा करनेके लिये यहाँसे चले तो गये, र उन्हें मेरे वियोगका बड़ा कष्ट है। वे अभी भी मेरी तीक्षा कर रहे हैं। एक तो श्रीरामके तथा दूसरा अपने ामपर स्थापित करनेके लिये इन दो लिङ्गोंको ले चलो।' सपर हनुमान्‌जीको अपनी महत्ता तथा तीव्रगामिताका ोड़ा-सा गर्वाभास हो आया।

इधर कृपासिन्धु भगवान्‌को अपने भक्तकी इस रोगोत्पत्ति- ी बात मालूम हो गयी। उन्होंने सुग्रीवादिको बुलाया र कहा—'अब मुहूर्त बीतना ही चाहता है, अतएव सैकत (वालुकामय) लिङ्गकी ही स्थापना किये देता ।' यों कहकर मुनियोंकी सम्मतिसे उन्हींके बीच कर विधि-विधानसे उस सैकत लिङ्गकी स्थापना कर । दक्षिणा-दानके लिये प्रभुने कौस्तुभमणिको स्मरण या। स्मरण करते ही वह मणि आकाशमार्गसे सूर्यवत् पहुँची। प्रभुने उसे गलेमें बाँध लिया। उस मणिके वसे वहाँ धन, वस्त्र, गौएँ, अश्व, आभरण और पायसादि य अन्नोंका ढेर लग गया। भगवान्‌से अभिपूजित कर ऋषिगण अपने घर चले। रास्तेमें उन्हें हनुमान्‌जी । उन्होंने मुनियोंसे पूछा, 'महाराज! आपलोगोंकी सने पूजा की है?' उन्होंने कहा—'श्रीराघवेन्द्रने शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा की है, उन्होंने ही हमारी [illegible]-दान-मानादिसे पूजा की है।' अब हनुमान्‌जीको भगवान्‌के मायावश क्रोध आया। वे सोचने लगे—'[illegible]! श्रीरामने व्यर्थका श्रम कराकर [illegible] व्यवहार किया है!' दूसरे ही क्षण वे प्रभुके पास [illegible] गये और कहने लगे—'क्या लङ्का जाकर [illegible] लगा आनेका यही इनाम है? यों काशी भेजकर [illegible] मँगाकर मेरा उपहास किया जा रहा है? यदि [illegible] मनमें यही बात थी तो व्यर्थका मेरे [illegible] क्यों कराया?'

दयाधाम भगवान्‌ने बड़ी शान्तिसे कहा—'[illegible]-नन्दन! तुम बिल्कुल ठीक ही तो कहते हो। [illegible] तुम मेरे द्वारा स्थापित इस वालुकामय लिङ्गको [illegible]। मैं अभी तुम्हारे लाये लिङ्गोंको स्थापित कर दूँ।'

'बहुत ठीक' कहकर अपनी पूँछमें लपेटकर हनुमान्‌जीने उस लिङ्गको बड़े जोरसे खींचा। [illegible]—लिङ्गका उखड़ना या हिलना-डुलना तो [illegible] वह टस-से-मस तक न हुआ, उल्टे हनुमान्‌जीकी पूँछ ही टूट गयी। वीरशिरोमणि हनुमान्‌जी [illegible] होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। [illegible] स्वस्थ होनेपर हनुमान्‌जी [illegible] उन्होंने प्रभुके चरणोंमें नमस्कार [illegible]।

प्रभुको क्या था! [illegible] भक्तका भयङ्कर रोग [illegible]। तत्पश्चात् विधिपूर्वक [illegible] विश्वनाथ-लिङ्गके नामसे [illegible] गये लिङ्गोंकी स्थापना करायी [illegible] पहले हनुमत्प्रतिष्ठित [illegible] द्वारा स्थापित गणेश-[illegible]

पूजा व्यर्थ होगी।' फिर प्रभुने हनुमान्‌जीसे कहा—'तुम भी यहाँ छिन्न-पुच्छ, गुप्त-पाद-रूपसे गतगर्व होकर निवास करो।' इसपर हनुमान्‌जीने अपनी भी एक वैसी ही छिन्न-पुच्छ, गुप्तपाद, गतगर्व-मुद्रामयी प्रतिमा स्थापित कर दी। वह आज भी वहाँ वर्तमान है।—जा० श०

(आनन्दरामायण, सारकाण्ड, सर्ग १०)

दीर्घायुष्य एवं मोक्षके हेतुभूत भगवान् शङ्करकी आराधना

प्राचीन कालमें एक राजा थे, जिनका नाम था इन्द्रद्युम्न। वे बडे दानी, धर्मज्ञ और सामर्थ्यशाली थे। धनार्थियोंको वे सहस्र स्वर्णमुद्राओंसे कम दान नहीं देते थे। उनके राज्यमें सभी एकादशीके दिन उपवास करते थे। गङ्गाकी वालुका, वर्षाकी धारा और आकाशके तारे कदाचित् गिने जा सकते हैं; पर इन्द्रद्युम्नके पुण्योंकी गणना नहीं हो सकती। इन पुण्योंके प्रतापसे वे सशरीर ब्रह्मलोक चले गये। सौ कल्प वीत जानेपर ब्रह्माजीने उनसे कहा—'राजन्! स्वर्गसाधनमें केवल पुण्य ही कारण नहीं है, अपितु त्रैलोक्यविस्तृत निष्कलङ्क यश भी अपेक्षित होता है। इधर चिरकालसे तुम्हारा यश क्षीण हो रहा है, उसे पुनः उज्ज्वल करनेके लिये तुम वसुधातलपर जाओ।' ब्रह्माजीके ये शब्द समाप्त भी न हो पाये थे कि राजा इन्द्रद्युम्नने अपनेको पृथ्वीपर पाया। वे अपने निवासस्थल काम्पिल्य नगरमें गये और वहाँके निवासियोंसे अपने सम्बन्धमें पूछ-ताछ करने लगे। उन्होंने कहा—'हमलोग तो उनके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानते, आप किसी वृद्ध चिरायुसे पूछ सकते हैं। सुनते हैं नैमिषारण्यमें सप्तकल्पान्तजीवी मार्कण्डेयमुनि रहते हैं, कृपया आप उन्हींसे इस प्राचीन बातका पता लगाइये।'

जब राजाने मार्कण्डेयजीसे प्रणाम करके पूछा कि 'मुने! क्या आप इन्द्रद्युम्न राजाको जानते हैं?' तब उन्होंने कहा, 'नहीं, मैं तो नहीं जानता, पर मेरा मित्र नाडीजङ्घवक शायद इसे जानता हो; इसलिये चलो, उससे पूछा जाय।' नाडीजङ्घने अपनी बड़ी विस्तृत कथा सुनायी और साथ ही अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए अपनेसे भी अति दीर्घायु प्राकारकर्म उलूकके पास चलनेकी सम्मति दी। पर इसी प्रकार सभी अपनेको असमर्थ बतलाते हुए चिरायु गृध्रराज और मानसरोवरमें रहनेवाले कच्छप मन्थरके पास पहुँचे। मन्थरने इन्द्रद्युम्नको देखते ही पहचान लिया और कहा कि 'आपलोगोंमें जो यह पाँचवाँ राजा इन्द्रद्युम्न है, इसे देखकर मुझे बड़ा भय लगता है; क्योंकि इसीके यज्ञमें मेरी पीठ पृथ्वीकी उष्णतासे जल गयी थी।' अब राजाकी कीर्ति तो प्रतिष्ठित हो गयी, पर उसने क्षयिष्णु स्वर्गमें जाना ठीक न समझा और मोक्ष-साधनकी जिज्ञासा की। एतदर्थ मन्थरने लोमशजीके पास चलना श्रेयस्कर बतलाया। लोमशजीके पास पहुँचकर यथाविधि प्रणामादि करनेके पश्चात् मन्थरने निवेदन किया कि इन्द्रद्युम्न कुछ प्रश्न करना चाहते है।

महर्षि लोमशकी आज्ञा लेनेके पश्चात् इन्द्रद्युम्नने कहा—'महाराज! मेरा प्रथम प्रश्न तो यह है कि आप कभी कुटिया न बनाकर शीत, आतप तथा वृष्टिसे बचनेके लिये केवल एक मुट्ठी तृण ही क्यों लिये रहते हैं?' मुनिने कहा, 'राजन्! एक दिन मरना अवश्य है; फिर शरीरका निश्चित नाश जानते हुए भी हम घर किसके लिये बनायें? यौवन, धन तथा जीवन—ये सभी चले जानेवाले हैं। ऐसी दशामें 'दान' ही सर्वोत्तम भवन है।'

इन्द्रद्युम्नने पूछा, 'मुने! यह आयु आपको दानके परिणाममें मिली है अथवा तपस्याके प्रभावसे, मैं यह जानना चाहता हूँ।' लोमशजीने कहा, 'राजन्! मैं पूर्वकालमें एक दरिद्र शूद्र था। एक दिन दोपहरके समय जलके भीतर मैंने एक बहुत बड़ा शिवलिङ्ग

देखा। भूखसे मेरे प्राण सूखे जा रहे थे। उस जलाशयमें स्नान करके मैंने कमलके सुन्दर फूलोंसे उस शिवलिङ्गका पूजन किया और पुनः मैं आगे चल दिया। क्षुधातुर होनेके कारण मार्गमें ही मेरी मृत्यु हो गयी। दूसरे जन्ममें मैं ब्राह्मणके घरमें उत्पन्न हुआ। शिव-पूजाके फलस्वरूप मुझे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रहने लगा। मैंने जान-बूझकर मूकता धारण कर ली। पितादि-की मृत्यु हो जानेपर सम्बन्धियोंने मुझे निरा गूँगा जान-कर सर्वथा त्याग दिया। अब मैं रात-दिन भगवान् शङ्करकी आराधना करने लगा। इस प्रकार सौ वर्ष बीत गये। प्रभु चन्द्रशेखरने मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दिया और मुझे इतनी दीर्घ आयु दी।'

यह जानकर इन्द्रद्युम्न, बक, कच्छप, गीध और उलूकने भी लोमशजीसे शिवदीक्षा ली और तब परमें मोक्ष प्राप्त किया। —जा० श०

(स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड, कुमारिकाखण्ड २६।४—१०)

एकमात्र कर्तव्य क्या है?

पुण्डरीक नामके एक बड़े भगवद्भक्त गृहस्थ ब्राह्मण थे। साथ ही वे बड़े धर्मात्मा, सदाचारी, तपस्वी तथा कर्मकाण्डनिपुण थे। वे माता-पिताके सेवक, विषय-भोगोंसे सर्वथा निःस्पृह और बड़े कृपालु थे। एक बार अधिक विरक्तिके कारण वे पवित्र रम्य वन्य तीर्थोंकी यात्राकी अभिलाषासे निकल पड़े। वे केवल कन्द-मूल-शाकादि खाकर गङ्गा, यमुना, गोमती, गण्डक, सरयू, शोण, सरस्वती, प्रयाग, नर्मदा, गया तथा विन्ध्य एवं हिमाचलके पवित्र तीर्थोंमें घूमते हुए शालग्राम क्षेत्र (आजके हरिहर-क्षेत्र) पहुँचे और वहाँ पहुँचकर प्रभुकी आराधनामें तल्लीन हो गये। वे विरक्त तो थे ही, अतएव इस तुच्छ क्षणभंगुर यौवन, रूप, आयुष्य आदिसे सर्वथा उपरत होकर सहज ही भगवद्ध्यानमें लीन हो गये और संसारको सर्वथा भूल गये।

देवर्षि नारदजीको जब यह समाचार ज्ञात हुआ, तब उन्हें देखनेकी इच्छासे वे भी वहाँ पधारे। पुण्डरीकने बिना पहचाने ही उनकी षोडशोपचारसे पूजा की और फिर उनसे परिचय पूछा। जब नारदजीने उन्हें अपना परिचय तथा वहाँ आनेका कारण बतलाया, तब पुण्डरीक हर्षसे गद्गद हो गये। वे बोले—'महामुने! आज मैं धन्य हो गया। मेरा जन्म सफल हो गया तथा मेरे पितर कृतार्थ हो गये। पर देखो! मैं एक संदेहमें पड़ा हूँ, उसे आप ही निवृत्त कर सकेंगे। कुछ लोग सत्यकी प्रशंसा करते हैं तो कुछ सदाचारकी। इसी प्रकार कोई सांख्यकी, कोई योगकी तो कोई ज्ञानकी महिमा गाते हैं। कोई क्षमा, दया, मृदुता आदि गुणोंकी प्रशंसा करता दीख पड़ता है। यों ही कोई दान, कोई वैराग्य, कोई यज्ञ, कोई ध्यान और कोई अन्यान्य कर्मकाण्डके अङ्गोंकी प्रशंसा करता है। ऐसी दशामें मेरा चित्त इस कर्तव्याकर्तव्यके निर्णयमें अत्यन्त विमोहको प्राप्त हो रहा है कि वस्तुतः अनुष्ठेय क्या है।'

इसपर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—'पुण्डरीक! वस्तुतः शास्त्रों तथा कर्म-धर्मके बाहुल्यके कारण ही विश्वका वैचित्र्य और वैलक्षण्य है। देश, काल, रुचि, वर्ग, आश्रम तथा परिस्थितिके भेदसे ऋषियोंने विभिन्न धर्मोंका विधान किया है। साधारण मनुष्यकी दृष्टि अनागत, अतीत, [illegible] अलक्षित वस्तुओंतक नहीं पहुँचती। [illegible] है। इस प्रकारका संदेह, जैसा तुमको हो रहा है, एक बार मुझे भी हुआ था। [illegible] पूछा, तब उन्होंने उत्तर दिया [illegible] मैं उसे तुमको संक्षेपसे सुना देता हूँ। [illegible]

मुझसे कहा था—'नारद ! भगवान् नारायण ही परम तत्त्व हैं । वे ही परम ज्ञान, परम ब्रह्म, परम ज्योति, परम आत्मा अथच परमसे भी परम परात्पर हैं । उनसे परे कुछ भी नहीं है ।

नारायणः परं ब्रह्म तत्त्वं नारायणः परः ।
नारायणः परं ज्योतिरात्मा नारायणः परः ॥
परादपि परश्चासौ तस्मान्नास्ति परं मुने ।

(नृसिंहपुराण ६४ । ६३-६४)

'इस संसारमें जो कुछ भी देखा-सुना जाता है, उसके बाहर-भीतर, सर्वत्र नारायण ही व्याप्त हैं । जो नित्य-निरन्तर, सदा-सर्वदा भगवान्‌का अनन्य भावसे ध्यान करता है, उसे यज्ञ, तप अथवा तीर्थयात्राकी क्या आवश्यकता है । बस, नारायण ही सर्वोत्तम ज्ञान, योग, सांख्य तथा धर्म हैं । जिस प्रकार कई बड़ी-बड़ी सड़कें किसी एक विशाल नगरमें प्रविष्ट होती हैं, अथवा कई बड़ी-बड़ी नदियाँ समुद्रमें प्रवेश कर जाती हैं, उसी प्रकार सभी मार्गोंका पर्यवसान उन परमेश्वरमें होता है । मुनियोंने यथारुचि, यथामति उनके भिन्न-भिन्न नाम-रूपोंकी व्याख्या की है । कुछ शास्त्र तथा ऋषि-गण उन्हें विज्ञानमात्र बतलाते हैं, कुछ परब्रह्म परमात्मा कहते हैं, कोई उन्हें महाबली अनन्त कालके नामसे पुकारता है, कोई सनातन जीव कहता है, कोई क्षेत्रज्ञ कहता है तो कोई षड्विंशक तत्त्वरूप बतलाता है, कोई अङ्गुष्ठमात्र कहता है तो कोई पद्मरजकी उपमा देता है । नारद ! यदि शास्त्र एक ही होता तो ज्ञान भी निःसंशय तथा अनाविद्ध होता । किंतु शास्त्र बहुत-से हैं; अतएव विशुद्ध, संशयरहित ज्ञान तो सर्वथा दुर्घट ही है । फिर भी जिन मेधावी महानुभावोंने दीर्घ अध्यवसाय-पूर्वक सभी शास्त्रोंका पठन, मनन तथा समन्वयात्मक ढंगसे विचार किया है, वे सदा इसी निष्कर्षपर पहुँचे हैं कि सदा सर्वत्र, नित्य-निरन्तर, सर्वात्मना एकमात्र नारायणका ही ध्यान करना सर्वोपरि परमोत्तम कर्तव्य है ।

आलोड्य सर्वशास्त्राणि विचार्य च पुनः पुनः ।
इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥*

(६४ । ७८)

'वेद, रामायण, महाभारत तथा सभी पुराणोंके आदि, मध्य एवं अन्तमें एकमात्र उन्हीं प्रभुका यशोगान है—

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते हरिः सर्वत्र गीयते ॥

'अतएव शीघ्र कल्याणकी इच्छा रखनेवालेको व्यामोहक जगज्जालसे सर्वथा बचकर सर्वदा निरालस्य होकर प्रयत्नपूर्वक अनन्यभावसे उन परमात्मा नारायणका ही ध्यान करना चाहिये ।

'पुण्डरीक ! इस प्रकार ब्रह्माजीने जब मेरा संशय दूर कर दिया, तब मैं सर्वथा नारायणपरायण हो गया । वास्तवमें भगवान् वासुदेवका माहात्म्य अनन्त है । कोई नृशंस, दुरात्मा, पापी ही क्यों न हो, भगवान् नारायण-का आश्रय लेनेसे वह भी मुक्त हो जाता है । यदि हजारों जन्मोंके साधनसे भी 'मैं देवाधिदेव वासुदेवका दास हूँ' ऐसी निश्चित बुद्धि उत्पन्न हो गयी तो उसका काम बन गया और उसे विष्णुसालोक्यकी प्राप्ति हो जाती है—

'जन्मान्तरसहस्रेषु यस्य स्याद् बुद्धिरीदृशी ।
दासोऽहं वासुदेवस्य देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥
प्रयाति विष्णुसालोक्यं पुरुषो नात्र संशयः ।

(९४-९५)

'भगवान् विष्णुकी आराधनासे अम्बरीष, प्रह्लाद, राजर्षि भरत, ध्रुव, मित्रासन तथा अन्य अगणित ब्रह्मर्षि, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी तथा वैष्णव-गण

---

* यह श्लोक नृसिंहपुराण १८ । ३४ तथा ६४ । ७८; लिङ्गपुराण उत्तरार्ध अध्याय ७ श्लोक ११; गरुड़पुराण, पूर्वखण्ड, अध्याय २२२, श्लोक १ (जीवानन्द विद्यासागर संस्करण; वेङ्कटेश्वर प्रेससे प्रकाशित पुस्तकमें यह २६० वॉ अध्याय है ।) तथा पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय ८१ श्लोक २६ आदि स्थानोंपर कई जगह उपलब्ध होता है ।

परम सिद्धिको प्राप्त हुए हैं। अतः तुम भी निःसंशय होकर उनकी ही आराधना करो।'

इतना कहकर देवर्षि अन्तर्धान हो गये और भक्त पुण्डरीक हृत्पुण्डरीकके मध्यमें गोविन्दको प्रतिष्ठितकर भगवद्ध्यानमें परायण हो गये। उनके सारे कल्मष समाप्त हो गये और उन्हें तत्काल ही वैष्णवी सिद्धि प्राप्त हो गयी। उनके सामने सिंह-व्याघ्रादि हिंस्र जन्तुओंकी भी क्रूरता नष्ट हो गयी। पुण्डरीककी दृढ़ भक्ति-निष्ठाको देखकर पुण्डरीकनेत्र श्रीनिवास भगवान् शीघ्र ही द्रवीभूत हुए और उनके सामने प्रकट हो गये। उन्होंने पुण्डरीकसे वर माँगनेका दृढ़ आग्रह किया।

पुण्डरीकने प्रभुसे गद्गद स्वरसे यही माँगा कि 'नाथ! जिससे मेरा कल्याण हो, आप मुझे वही दें। मुझ बुद्धिहीनमें इतनी योग्यता कहाँ जो आत्महितका निर्णय कर सकूँ।'

भगवान् उनके इस उत्तरसे बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने पुण्डरीकको अपना पार्षद बना लिया। —जा० श०

(पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय ८१; नृसिंहपुराण, अध्याय ६४)

भगवान् सरल भाव चाहते हैं

वनमें एक मन्दिर था श्रीशंकरजीका। भीलकुमार कण्णप्प आखेट करने निकला और घूमता-घामता उस मन्दिरतक पहुँच गया। मन्दिरमें भगवान् शिवकी पूरी प्रतिमा थी। उस भावुक सरलहृदय भीलकुमारके मनमें यह भाव आया—'भगवान् इस हिंसक पशुओंसे भरे वनमें अकेले हैं। कहीं कोई पशु रात्रिमें आकर इन्हें कष्ट न दे।' उस समय संध्या हो रही थी। भीलकुमारने धनुषपर बाण चढ़ाया और मन्दिरके द्वारपर पहरा देने बैठ गया। वह पूरी रात वहाँ बैठा रहा।

सवेरा हुआ। कण्णप्पके मनमें अब भगवान्‌की पूजा करनेका विचार हुआ; किंतु वह क्या जाने पूजा करना। वह वनमें गया, पशु मारे और अग्निमें उनका मांस भून लिया। शहदकी मक्खियोंका छत्ता तोड़कर उसने शहद निकाला। एक दोनेमे शहद और मांस उसने लिया, वनकी लताओंसे कुछ पुष्प तोड़े और अपने बालोंमें उलझा लिये। नदीका जल मुखमें भर लिया और मन्दिर पहुँचा। मूर्तिपर कुछ फूल-पत्ते पड़े थे। उन्हें कण्णप्पने पैरसे हटा दिया; क्योंकि उसके एक हाथमें धनुष था और दूसरेमे मांसका दोना। मुखसे ही मूर्तिपर उसने जल गिराया। अब धनुष एक ओर रखकर बालोंमें लगाये फूल निकालकर उसने मूर्तिपर चढ़ाये और मांसका दोना नैवेद्यके रूपमे मूर्तिके सामने रख दिया उसने। स्वय धनुषपर बाण चढ़ाकर चौकीदारी करने मन्दिरके द्वारके बाहर बैठ गया।

कण्णप्पको भूल गया घर, भूल गया परिवार, यहाँतक कि भोजन तथा निद्राकी सुधि भी भूल गयी। वह अपने भगवान्‌की पूजा और उनकी रखवालीमें जैसे संसार और शरीर सब भूल गया।

उस मन्दिरमें प्रातःकाल एक ब्राह्मण दूरके गाँवसे प्रतिदिन आते थे और पूजा करके चले जाते थे। उनके आनेका समय वही था जब कण्णप्प वनमें आखेट करने जाता था। मन्दिरमें मासके टुकड़े पड़े देखकर ब्राह्मणको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने नदीसे जल लाकर पूरा मन्दिर धोया। स्वयं फिरसे स्नान किया और तब पूजा की। लेकिन यह कोई एक दिनकी बात तो थी नहीं। प्रतिदिन जब यही दशा मन्दिरकी मिलने लगी, तब एक दिन ब्राह्मणने निश्चय किया, 'आज छिपकर देखूँगा कि कौन प्रतिदिन मन्दिरको भ्रष्ट कर जाता है।'

ब्राह्मण छिपकर देखता रहा; किंतु जब उसने धनुष लिये भयकर भीलको देखा, तब कुछ बोलनेका साहस उसे नहीं हुआ। इधर कण्णप्पने मन्दिरमें प्रवेश करने

ही देखा कि भगवान्‌की मूर्तिके एक नेत्रसे रक्त बह रहा है। उसने हाथका दोना नीचे रख दिया और दुःखसे रो उठा—'हाय! किस दुष्टने मेरे भगवान्‌के नेत्रमें चोट पहुँचायी।'

पहले तो कण्णप्प धनुषपर बाण चढ़ाकर मन्दिरसे बाहर दौड़ गया। वह मूर्तिको चोट पहुँचानेवालेको मार देना चाहता था; किंतु बहुत शीघ्र धनुष फेंककर उसने घास-पत्ते एकत्र करने प्रारम्भ कर दिये। एक पूरा गट्ठर लिये वह मन्दिरमे लौटा और एक-एक पत्ते एवं जड़को मसल-मसलकर मूर्तिके नेत्रमें लगाने लगा। कण्णप्पका उद्योग सफल नहीं हुआ। मूर्तिके नेत्रोंसे रक्त जाना किसी प्रकार भी रुकता नहीं था। इससे वह भील-कुमार अत्यन्त व्याकुल हो गया। इसी समय उसे स्मरण आया कि उससे कभी किसी भीलने कहा था—'शरीरके घावपर यदि दूसरेके शरीरके उसी अंशका मांस लगा दिया जाय तो शीघ्र भर जाता है।' कण्णप्प प्रसन्न हो गया। उसने एक बाण निकाला अपने तरकससे और उसकी नोक अपने नेत्रमें घुसेड़ ली। अपने हाथों अपना नेत्र निकालकर उसने मूर्तिके नेत्रपर रखकर दबाया। स्वयं उसके नेत्रके गड्ढेसे रक्तकी धारा बह रही थी; किंतु उसे पीड़ाका पता नहीं था। वह प्रसन्न हो रहा था कि मूर्तिके नेत्रसे रक्त निकलना बंद हो गया है।

इसी समय मूर्तिके दूसरे नेत्रसे रक्त निकलने लगा। कण्णप्पको तो अब ओषधि मिल गयी थी। उसने मूर्तिके उस नेत्रपर पैरका अँगूठा रक्खा, जिससे दूसरा नेत्र निकाल लेनेपर जब वह अंधा हो जाय तो इस मूर्तिके नेत्रको ढूँढ़ना न पड़े। बाणकी नोक उसने अपने दूसरे नेत्रमें चुभायी। सहसा मन्दिर दिव्य प्रकाशसे प्रकाशित हो उठा। उसी मूर्तिसे भगवान् शंकर प्रकट हो गये। उन्होंने कण्णप्पको हृदयसे लगा लिया।

'ब्राह्मण! मुझे पूजा-पद्धति प्रसन्न नहीं करती। मुझे तो सरल श्रद्धापूर्ण भाव ही प्रिय है।' भगवान् शिवने छिपे हुए ब्राह्मणको सम्बोधित किया। कण्णप्पके नेत्र स्वस्थ हो चुके थे। वह तो आशुतोषका पार्षद बन गया था और उनके साथ ही उनके दिव्य धाममें चला गया। ब्राह्मणको भी उस भीलकुमारके संसर्गसे भगवान्‌का दर्शन प्राप्त हुआ। —सु० सिं०

भगवान्‌की प्राप्तिका उपाय

'मेरा धन्य भाग्य है, भगवान् विष्णुने मुझे राजा बनाकर मेरे हृदयमे अपनी भक्ति भर दी है!' अनन्त-शयनतीर्थमें शेषशायी विष्णुके श्रीविग्रहको स्वर्ण और मणियोंकी मालाओंसे समलंकृतकर महाराजा चोल मदोन्मत्त हो उठे, मानो वे अन्य भक्तोंसे कहना चाहते थे कि 'भगवान्‌की पूजामें मेरी स्पर्धा करना ठीक नहीं है।' वे भगवान् विष्णुका चिन्तन करने लगे।'

'यह आप क्या कर रहे हैं? देखते नहीं कि भगवान्‌का विग्रह रत्नोंकी मालाओंसे कितना रमणीय हो चला है नयनोंके लिये? बार-बार तुलसीदलसे आप स्वर्ण और मणियोंको ढककर भगवान्‌का रूप असुन्दर कर रहे है!' महाराजाने दीन ब्राह्मण विष्णुदासके हृदय-पर आघात किया धनके मदमें।

'भगवान्‌की पूजाके लिये हृदयके भाव-पुष्पकी आवश्यकता है, महाराज! सोने और हीरेसे उनका महत्त्व नहीं आँका जा सकता। भगवान्‌की प्राप्ति भक्तिसे होती है।' विष्णुदासने चोलराजसे निवेदन किया। भक्त ब्राह्मण विष्णुसूक्तका पाठ करने लगे।

'देखना है, पहले मुझे भगवान्‌का दर्शन होता है या आपकी भक्ति सफल होती है।' राजाने काञ्ची-

निवासी अपनी एक दरिद्र प्रजाको चुनौती दी। वे राजधानीमें लौट आये।

× × × ×

महाराजाने मुद्‌गल ऋषिको आमन्त्रितकर भगवान्‌के दर्शनके लिये विष्णुयज्ञका आयोजन किया। भगवती ताम्रपर्णी नदीके कलरवसे निनादित उनकी राजधानी काञ्चीमें स्वर्णयूपकी आभा ऐसी लगती थी मानो अपने दिव्य वृक्षोंसमेत चैत्ररथ वनकी साकार श्री ही धरतीपर उतर आयी हो। वेदमन्त्रोंके मधुर गानसे यज्ञ आरम्भ हो गया। काञ्ची नगरी शास्त्रज्ञ पण्डितों और मन्त्रदर्शी ऋषियोंसे परिपूर्ण हो उठी। दान-दक्षिणाकी ही चर्चा नगरीमें नित्य होने लगी।

इधर दीन ब्राह्मण भी क्षेत्र-सन्यास ग्रहणकर अनन्तशयनतीर्थमें ही भगवान् विष्णुकी आराधना और उपासना तथा व्रत आदिका अनुष्ठान करने लगे। उनका प्रण था कि जबतक भगवान्‌का दर्शन नहीं मिल जायगा तबतक काञ्ची नहीं जाऊँगा। वे दिनमें भोजन बनाकर भगवान्‌को भोग लगानेपर ही प्रसाद पाते थे।

एक समय सात दिनतक लगातार भोजन चोरी गया। दुबारा भोजन बनानेमें समय न लगाकर वे निराहार रहकर भगवान्‌का भजन करने लगे। सातवें दिन वे छिपकर चोरकी राह देखने लगे। एक दुबला-पतला चाण्डाल भोजन लेकर भागने लगा। वे करुणासे द्रवीभूत होकर उसके पीछे घी लेकर दौड़ पडे। चाण्डाल मूर्छित होकर गिर पड़ा तो विष्णुदास अपने वस्त्रसे उसपर समीरका संचार करने लगे।

'परीक्षा हो गयी, भक्तराज!' चाण्डालके स्थानपर शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म धारणकर साक्षात् विष्णु प्रकट हो गये। अलसीके फूलके समान श्याम शरीरकी शोभा निराली थी—हृदयपर श्रीवत्स-चिह्न था। वक्षपर कौस्तुभमणि थी। मुकुट और पीताम्बरकी झाँकी अनुपम थी। श्रीविष्णुका दर्शन करते ही विष्णुदासके हृदयमें सात्त्विक प्रेमका उदय हो गया। वे अचेत हो गये। वे उस मूर्छित अवस्थामें नारायणको प्रणाम तक न कर सके। भगवान्‌ने ब्राह्मणको अपना रूप दिया। विष्णुदास विमानपर बैठकर वैकुण्ठ गये। देवोंने पुष्पवृष्टि की, अप्सरा तथा गन्धर्वोंने नृत्य-गान किया।

× × × ×

'यज्ञ समाप्त कर दीजिये, महर्षे!' चोलराजने मुद्गलका ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने विष्णुदासको विमानपर जाते देखा। यह सोचकर कि भक्ति ही श्रेष्ठ है, महाराज धधकते यज्ञकुण्डमें कूद पडे। विष्णुभगवान् प्रकट हो गये। उन्हें दर्शन देकर वैकुण्ठ ले गये।

विष्णुदास पुण्यशील और चोलराज सुशील पार्षदके नामसे प्रसिद्ध हैं।—रा० श्री० (पद्मपुराण, उत्तर०)

महापुरुषोंके अपमानसे पतन

वृत्रासुरका वध करनेपर देवराज इन्द्रको ब्रह्महत्या लगी। इस पापके भयसे वे जाकर एक सरोवरमें छिप गये। देवताओंको जब ढूँढनेपर भी देवराजका पता नहीं लगा, तब वे बड़े चिन्तित हुए। स्वर्गका राज्यसिंहासन सूना रहे तो त्रिलोकीमें सुव्यवस्था कैसे रह सकती है। अन्तमें देवताओंने देवगुरु बृहस्पतिकी सलाहसे राजा नहुषको इन्द्रके सिंहासनपर तबतकके लिये बैठाया, जबतक इन्द्रका पता न लग जाय।

इन्द्रत्व पाकर राजा नहुष प्रभुताके मदसे मदान्ध हो गये। उन्होंने इन्द्रपत्नी शचीदेवीको अपनी पत्नी बनाना चाहा। शचीके पास दूतके द्वारा उन्होंने संदेश भेजा—'मैं जब इन्द्र हो चुका हूँ, इन्द्राणीको मुझे स्वीकार करना ही चाहिये।'

पतिव्रता शचीदेवी बड़े संकटमें पड़ीं। अपने पति-

की अनुपस्थितिमें पतिके राज्यमें अव्यवस्था हो, यह भी उन्हें स्वीकार नहीं था और अपना पातिव्रत्य भी उन्हें परम प्रिय था। वे भी देवगुरुकी शरणमें पहुँचीं। बृहस्पतिजीने उन्हें आश्वासन देकर युक्ति बतला दी। देवगुरुके आदेशानुसार शचीने उस दूतके द्वारा नहुषको कहला दिया—'यदि राजेन्द्र नहुष ऐसी पालकीपर बैठकर मेरे पास आवें जिसे सप्तर्षि ढो रहे हों तो मैं उनकी सेवामें उपस्थित हो सकती हूँ।'

काम एवं अधिकारके मदसे मतवाले नहुषने महर्षियोंको पालकी ले चलनेकी आज्ञा दे दी। राग-द्वेष तथा मानापमानसे रहित सप्तर्षिगणोंने नहुषकी पालकी उठा ली। लेकिन वे ऋषिगण इस भयसे कि पैरोंके नीचे कोई चींटी या अन्य क्षुद्र जीव दब न जायँ, भूमिको देख-देखकर धीरे-धीरे पैर रखते चलते थे। उधर कामातुर नहुषको इन्द्राणीके पास शीघ्र पहुँचनेकी आतुरता थी। वे बार-बार ऋषियोंको शीघ्र चलनेको कह रहे थे। लेकिन ऋषि तो अपने इच्छानुसार ही चलते रहे।

'सर्प! सर्प!' (शीघ्र चलो! शीघ्र चलो!) कहकर नहुषने झुँझलाकर पैर पटका। संयोगवश उनका पैर पालकी ढोते महर्षि भृगुको लग गया। महर्षिके नेत्र लाल हो उठे। पालकी उन्होंने पटक दी और हाथमें जल लेकर शाप देते हुए बोले—'दुष्ट! तू अपनेसे बड़ोंके द्वारा पालकी ढुवाता है और मदान्ध होकर पूजनीय लोगोंको पैरसे ठुकराकर 'सर्प, सर्प' कहता है, अतः सर्प होकर यहाँसे गिर!'

महर्षि भृगुके शाप देते ही नहुषका तेज नष्ट हो गया। भयके मारे वे काँपने लगे। शीघ्र ही वे बड़े भारी अजगर होकर स्वर्गसे पृथ्वीपर गिर पड़े।—सु० सिं०

(महाभारत, उद्योग० १०—१६)

गुरुसेवासे विद्या-प्राप्ति

वर्षाके दिन थे, वृष्टि प्रारम्भ हो गयी थी। आयोद-धौम्य ऋषिने अपने शिष्य आरुणिको आदेश दिया—'जाकर धानके खेतकी मेड़ बाँध दो। पानी खेतसे बाहर न जाने पाये।'

आरुणि खेतपर पहुँचे। मेड़ टूट गयी थी और बड़े वेगसे खेतका जल बाहर जा रहा था। बहुत प्रयत्न किया आरुणिने; किंतु वे मेड़ बाँधनेमें सफल न हो सके। जलका वेग इतना था कि वे जो मिट्टी मेड़ बाँधनेको रखते, उसे प्रवाह बहा ले जाता। जब मेड़ बाँधनेका प्रयत्न सफल न हुआ, तब स्वयं आरुणि टूटी मेड़के स्थानपर आड़े होकर लेट गये। उनके शरीरसे पानीका प्रवाह रुक गया।

पानीके भीतर पड़े आरुणिका शरीर अकड़ गया। जोंके और दूसरे जलजन्तु उन्हें काट रहे थे। परंतु वे स्थिर पड़े रहे। हिलनेका नाम भी उन्होंने नहीं लिया। पूरी रात्रि वे वैसे ही स्थिर रहे।

इधर रात्रिमें अँधेरा होनेपर धौम्य ऋषिको चिन्ता हुई। उन्होंने अन्य शिष्योंसे पूछा—'आरुणि कहाँ है?'

शिष्योंने बताया—'आपने उन्हें खेतकी मेड़ बाँधने भेजा, तबसे वे लौटे नहीं।'

पूरी रात्रि ऋषि सो नहीं सके। सबेरा होते ही शिष्योंके साथ खेतके समीप जाकर पुकारने लगे—'बेटा आरुणि! कहाँ हो तुम?'

मूर्छितप्राय आरुणिको गुरुदेवका स्वर सुनायी पड़ा। उन्होंने वहींसे उत्तर दिया—'भगवन्! मैं यहाँ जलका वेग रोके पड़ा हूँ।'

ऋषि शीघ्रतापूर्वक वहाँ पहुँचे। आरुणिको उन्होंने उठनेका आदेश दिया। जैसे ही आरुणि उठे, ऋषिने

उन्हें हृदयसे लगा लिया और बोले—'वत्स ! तुम क्यारीको विदीर्ण करके उठे हो, अतः अबसे तुम्हारा नाम उद्दालक होगा । सब वेद तथा धर्मशास्त्र तुम्हारे अन्तःकरणमें स्वयं प्रकाशित हो जायँगे । लोकमें और परलोकमें भी तुम्हारा मङ्गल होगा ।'

गुरुकृपासे आरुणि समस्त शास्त्रोंके विद्वान् हो गये । वे उद्दालक ऋषिके नामसे प्रसिद्ध हैं । —सु० सिं०

(महाभारत, आदिपर्व ३)

गुरुसेवा और उसका फल

महर्षि आयोदधौम्यके दूसरे शिष्य थे उपमन्यु । गुरुने उन्हें गायें चराने और उनकी रखवाली करनेका काम दे रक्खा था । ब्रह्मचर्याश्रमका नियम है कि ब्रह्मचारी गुरु-सेवा करता हुआ गुरुगृहमें निवास करे । वह पासके नगर-ग्रामोंसे भिक्षा माँगकर ले आये और उसे गुरुके सम्मुख रख दे । गुरुदेव उसमेंसे जो भी उसे दें, उसीको खाकर संतुष्ट रहे । उपमन्यु भी इस नियमका पालन करते थे; किंतु वे जो भिक्षा माँगकर लाते थे, उसे धौम्यऋषि पूरी-की-पूरी रख लेते थे । उपमन्युको उसमेंसे कुछ भी नहीं देते थे । उपमन्यु भी कुछ कहते नहीं थे ।

एक दिन ऋषिने पूछा—'उपमन्यु ! मैं तुम्हारी भिक्षाका सभी अन्न रख लेता हूँ, ऐसी दशामें तुम क्या भोजन करते हो ? तुम्हारा शरीर तो हृष्ट-पुष्ट है ।'

उपमन्युने बताया—'भगवन् ! मैं दुबारा भिक्षा माँग लाता हूँ ।'

ऋषि बोले—'यह तो तुम अच्छा नहीं करते । इससे गृहस्थोंको संकोच होता है । दूसरे भिक्षार्थी लोगोंके जीविकाहरणका पाप होता है ।'

उपमन्युने स्वीकार कर लिया कि वे फिर ऐसा नहीं करेंगे । कुछ दिन बीतनेपर ऋषिने फिर पूछा—'उपमन्यु ! तुम आजकल क्या भोजन करते हो ?'

उपमन्युने बताया—'भगवन् ! मैं इन गायोंका दूध पी लिया करता हूँ ।'

ऋषिने डाँटा—'गायें मेरी हैं, मेरी आज्ञाके बिना इनका दूध पी लेना तो अपराध है ।'

उपमन्युने दूध पीना भी छोड़ दिया । कुछ दिन पश्चात् जब फिर ऋषिने पूछा, तब उन्होंने बताया कि वे अब बछड़ोंके मुखसे गिरा फेन पी लेते हैं । लेकिन गुरुदेवको तो उनकी परीक्षा लेनी थी । उन्होंने कह दिया—'ऐसी भूल आगे कभी मत करना । बछड़े बड़े दयालु होते हैं, तुम्हारे लिये वे अधिक दूध झाग बनाकर गिरा देते होंगे और स्वयं भूखे रहते होंगे ।'

उपमन्युके आहारके सब मार्ग बंद हो गये । गायोंके पीछे दिनभर वन-वन दौड़ना ठहरा उन्हें, अत्यन्त प्रबल क्षुधा लगी । दूसरा कुछ नहीं मिला तो विवश होकर आकके पत्ते खा लिये । उन विषैले पत्तोंकी गरमीसे नेत्रकी ज्योति चली गयी । वे अंधे हो गये । देख न पड़नेके कारण वनमें घूमते समय एक जलहीन कुएँमें गिर पड़े ।

सूर्यास्त हो गया, गायें बिना चरवाहेके लौट आयीं; किंतु उपमन्यु नहीं लौटे । ऋषि चिन्तित हो गये—'मैंने उपमन्युका भोजन सर्वथा बंद कर दिया । वह रुष्ट होकर कहीं चला तो नहीं गया ?' शिष्योंके साथ उसी समय वे वनमें पहुँचे और पुकारने लगे—'बेटा उपमन्यु ! तुम कहाँ हो ?'

उपमन्युका स्वर सुनायी पड़ा—'भगवन् ! मैं यहाँ कुएँमें पड़ा हूँ ।'

ऋषि कुएँके पास गये । पूछनेपर उपमन्युने अपने कुएँमें पड़नेका कारण बता दिया । अब ऋषिने उपमन्यु-को देवताओंके वैद्य अश्विनीकुमारोंकी स्तुति करनेका आदेश दिया । गुरु-आज्ञासे उपमन्यु स्तुति करने लगे । एक पवित्र गुरुभक्त ब्रह्मचारी स्तुति करे और देवता प्रसन्न न हों तो उनका देवत्व टिकेगा कितने दिन ? उपमन्युकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर अश्विनीकुमार कुएँमें ही प्रकट हो गये और बोले—'यह मीठा पुआ लो और इसे खा लो ।'

नम्रतापूर्वक उपमन्युने कहा—'गुरुदेवको अर्पण किये बिना मैं पुआ नहीं खाना चाहता।'

अश्विनीकुमारोंने कहा—'पहले तुम्हारे गुरुने भी हमारी स्तुति की थी और हमारा दिया पुआ अपने गुरुको अर्पित किये बिना खा लिया था। तुम भी ऐसा ही करो।'

उपमन्यु बोले—'गुरुजनोंकी त्रुटि अनुगतोंको नहीं देखनी चाहिये। आपलोग मुझे क्षमा करें, गुरुदेवको अर्पित किये बिना मैं पुआ नहीं खा सकता।'

अश्विनीकुमारोंने कहा—'हम तुम्हारी गुरुभक्तिसे बहुत प्रसन्न हैं। तुम्हारे गुरुके दाँत लोहेके हैं; परंतु तुम्हारे स्वर्णके हो जायँगे। तुम्हारी दृष्टि भी पहलेके समान हो जायगी।'

अश्विनीकुमारोंने उपमन्युको कुएँसे बाहर निकाल दिया। उपमन्युने गुरुके चरणोंमें प्रणाम किया। महर्षि आयोद-धौम्यने सब बातें सुनकर आशीर्वाद दिया—'सब वेद और धर्मशास्त्र तुम्हें स्वतः कण्ठ हो जायँगे। उनका अर्थ तुम्हें भासित हो जायगा। धर्मशास्त्रोंका तत्त्व तुम जान जाओगे।' —सु० सिं० (महाभारत, आदि० ३)

बड़ोंके सम्मानका शुभ फल

कुरुक्षेत्रके मैदानमें कौरव-पाण्डव दोनों दल युद्धके लिये एकत्र हो गये थे। सेनाओंने व्यूह बना लिये थे। वीरोंके धनुष चढ़ चुके थे। युद्ध प्रारम्भ होनेमें क्षणोंकी ही देर जान पड़ती थी। सहसा धर्मराज युधिष्ठिरने अपना कवच उतारकर रथमें रख दिया। अस्त्र-शस्त्र भी रख दिये और रथसे उतरकर वे पैदल ही कौरव-सेनामें भीष्मपितामहकी ओर चल पड़े।

बड़े भाईको इस प्रकार शस्त्रहीन पैदल शत्रु-सेनाकी ओर जाते देखकर अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेव भी अपने रथोंसे उतर पड़े। वे लोग युधिष्ठिरके पास पहुँचे और उनके पीछे-पीछे चलने लगे। श्रीकृष्णचन्द्र भी पाण्डवोंके साथ ही चल रहे थे। भीमसेन, अर्जुन आदि बड़े चिन्तित हो रहे थे। वे पूछने लगे—'महाराज! आप यह क्या कर रहे हैं?'

युधिष्ठिरने किसीको कोई उत्तर नहीं दिया। श्रीकृष्णचन्द्रने भी सबको शान्त रहनेका संकेत करके कहा—'धर्मात्मा युधिष्ठिर सदा धर्मका ही आचरण करते हैं। इस समय भी वे धर्माचरणमें ही स्थित हैं।'

उधर कौरव-दलमें बड़ा कोलाहल मच गया। लोग कह रहे थे—'युधिष्ठिर डरपोक हैं। वे हमारी सेना देखकर डर गये हैं और भीष्मकी शरणमें आ रहे हैं।' कुछ लोग यह संदेह भी करने लगे कि पितामह भीष्मको अपनी ओर फोड़ लेनेकी यह कोई चाल है। सैनिक प्रसन्नतापूर्वक कौरवोंकी प्रशंसा करने लगे।

युधिष्ठिर सीधे भीष्मपितामहके समीप पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले—'पितामह! हमलोग आपके साथ युद्ध करनेको विवश हो गये हैं। इसके लिये आप हमें आज्ञा और आशीर्वाद दें।'

भीष्म बोले—'भरतश्रेष्ठ! यदि तुम इस प्रकार आकर मुझसे युद्धकी अनुमति न माँगते तो मैं तुम्हें अवश्य पराजयका शाप दे देता। अब मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम विजय प्राप्त करो। जाओ, युद्ध करो। तुम मुझसे वरदान माँगो। पार्थ! मनुष्य धनका दास है, धन किसीका दास नहीं। मुझे धनके द्वारा कौरवोंने अपने वशमें कर रक्खा है; इसीसे मैं नपुंसकोंकी भाँति कहता हूँ कि अपने पक्षमें युद्ध करनेके अतिरिक्त तुम मुझसे जो चाहो, वह माँग लो। युद्ध तो मैं कौरवोंके पक्षसे ही करूँगा।'

युधिष्ठिरने केवल पूछा—'आप अजेय हैं, फिर आपको हमलोग संग्राममें किस प्रकार जीत सकते हैं?'

पितामहने उन्हें दूसरे समय आकर यह बात पूछनेको कहा। वहाँसे धर्मराज द्रोणाचार्यके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके उनसे भी युद्धके लिये अनुमति माँगी। आचार्य द्रोणने भी वही बातें कहकर आशीर्वाद दिया;

परंतु जब युधिष्ठिरने उनसे उनकी पराजयका उपाय पूछा, तब आचार्यने स्पष्ट बता दिया—'मेरे हाथमें शस्त्र रहते मुझे कोई मार नहीं सकता। परंतु मेरा स्वभाव है कि किसी विश्वसनीय व्यक्तिके मुखसे युद्धमें कोई अप्रिय समाचार सुननेपर मैं धनुष रखकर ध्यानस्थ हो जाता हूँ। उस समय मुझे मारा जा सकता है।'

युधिष्ठिर द्रोणाचार्यको प्रणाम करके कृपाचार्यके पास पहुँचे। प्रणाम करके युद्धकी अनुमति माँगनेपर कृपाचार्यने भी भीष्मपितामहके समान ही सब बातें कहकर आशीर्वाद दिया; किंतु अपने उन कुलगुरुसे युधिष्ठिर उनकी मृत्युका उपाय पूछ नहीं सके। यह दारुण बात पूछते-पूछते दुःखके मारे वे अचेत हो गये। कृपाचार्यने उनका तात्पर्य समझ लिया था। वे बोले—'राजन्! मैं अवध्य हूँ, किसीके द्वारा भी मैं मारा नहीं जा सकता। परंतु मैं वचन देता हूँ कि नित्य प्रातःकाल भगवान्‌से तुम्हारी विजयके लिये प्रार्थना करूँगा और युद्धमें तुम्हारी विजयका बाधक नहीं बनूँगा।'

इसके पश्चात् युधिष्ठिर मामा शल्यके पास प्रणाम करने पहुँचे। शल्यने भी पितामह भीष्मकी बातें ही दुहराकर आशिष दी; परंतु साथ ही उन्होंने यह वचन भी दिया कि युद्धमें अपने निष्ठुर वचनोंसे वे कर्णको हतोत्साह करते रहेंगे।

गुरुजनोंको प्रणाम करके, उनकी अनुमति और विजयका आशीर्वाद लेकर युधिष्ठिर भाइयोंके साथ अपनी सेनामें लौट आये। उनकी इस विनम्रताने भीष्म, द्रोण आदिके हृदयमें उनके लिये ऐसी सहानुभूति उत्पन्न कर दी, जिसके बिना पाण्डवोंकी विजय अत्यन्त दुष्कर थी।—सु० सिं० (महाभारत, भीष्म० ४३)

लक्ष्मी कहाँ रहती हैं ?

एक बार इन्द्रने बड़ी कठिनतासे राजा बलिको ढूँढ़ निकाला। उस समय वे छिपकर किसी खाली घरमें गदहेके रूपमें कालक्षेप कर रहे थे। इन्द्र और बलिमें कुछ बातें हो रही थीं। बलिने इन्द्रको तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया तथा कालकी महत्ता बतलायी। बात दोनोंमें चल ही रही थी कि एक अत्यन्त दिव्य स्त्री बलिके शरीरसे निकल गयी। इसे देख इन्द्रको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बलिसे पूछा—'दानवराज! तुम्हारे शरीरसे यह प्रभामयी कौन-सी स्त्री बाहर निकल पड़ी? यह देवी है अथवा आसुरी या मानुषी?'

बलिने कहा—'न यह देवी है न मानुषी और न आसुरी। यह क्या है तथा इसे क्या अभिप्रेत है सो तुम इसीसे पूछो।' इसपर इन्द्रने कहा—'देवी! तुम कौन हो तथा असुरराज बलिको छोड़कर मेरी ओर क्यों आ रही हो?'

इसपर वह प्रभामयी शक्ति बोली—'देवेन्द्र! न तो मुझे विरोचन जानते थे और न उनके पुत्र ये बलि ही। पण्डित लोग मुझे दुस्सहा, विधित्सा, भूति, श्री और लक्ष्मीके नामोंसे पुकारते हैं। तुम और दूसरे देवता भी मुझे नहीं जानते।'

इन्द्रने पूछा—'आर्ये! तुम बहुत दिनोंतक बलिके पास रहीं। अब बलिमें कौन-सा दोष और मुझमें गुण देखकर उन्हें छोड़ मेरे पास आ रही हो?'

लक्ष्मीने कहा—'देवेन्द्र! मुझे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर धाता, विधाता कोई भी नहीं हटा सकता। कालके प्रभावसे ही मैं एकको छोड़कर दूसरेके पास जाती हूँ। इसलिये तुम बलिका अनादर मत करो।'

इन्द्रने पूछा, 'सुन्दरी! तुम अब असुरोंके पास क्यों नहीं रहना चाहतीं?' लक्ष्मी बोलीं—'जहाँ सत्य, दान, व्रत, तप, पराक्रम तथा धर्म रहते हैं, मैं वहीं रहती हूँ। असुर इस समय इनसे विमुख हो रहे हैं। पहले ये सत्यवादी, जितेन्द्रिय और ब्राह्मणोंके हितैषी थे। पर अब ये ब्राह्मणोंसे ईर्ष्या करने लगे हैं, जूठे हाथ घी छूते हैं, अभक्ष्य-भोजन करते और धर्मकी मर्यादा तोड़कर मनमाना आचरण करते हैं। पहले ये उपवास और तपमें लगे रहते थे। प्रतिदिन सूर्योदयके पहले जगते

और रातमें कभी दही या सत्तू नहीं खाते थे। रातके आधे भागमें ही ये सोते थे, दिनमें तो ये कभी सोनेका नाम भी नहीं लेते थे। दीन, अनाथ, वृद्ध, दुर्बल, रोगी तथा स्त्रियोंपर दया करते तथा उनके लिये अन्न-वस्त्रकी व्यवस्था करते थे। व्याकुल, विषादग्रस्त, भयभीत, रोगी, दुर्बल, पीड़ित तथा जिसका सर्वस्व लुट गया हो, उसको सदा ढाढ़स बँधाते तथा उसकी सहायता करते थे। पहले ये कार्यके समय परस्पर अनुकूल रहकर गुरुजनों तथा बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें सदा दत्तचित्त रहते थे। ये उत्तम भोजन बनाकर अकेले ही नहीं खाते थे। पहले दूसरोंको देकर पीछे अपने उपभोगमें लाते थे। सब प्राणियोंको अपने ही समान समझकर उनपर दया करते थे। चतुरता, सरलता, उत्साह, निरहंकारता, सौहार्द, क्षमा, सत्य, दान, तप, पवित्रता, दया, कोमल वाणी और मित्रोंसे प्रगाढ़ प्रेम—ये सभी गुण इनमें सदा मौजूद रहते थे। निद्रा, आलस्य, अप्रसन्नता, दोषदृष्टि, अविवेक, असंतोष और कामना—ये दुर्गुण इन्हें स्पर्शतक नहीं कर सके थे।

'पर अब तो इनकी सारी बातें निराली तथा विपरीत ही दीख पड़ती हैं। धर्म तो इनमें अब रह ही नहीं गया है। ये सदा काम-क्रोधके वशीभूत रहते हैं। बड़े-बूढ़ोंकी सभाओंमें ये गुणहीन दैत्य उनमें दोष निकालते हुए उनकी हँसी उड़ाया करते हैं। वृद्धोंके आनेपर ये लोग अपने आसनोंपरसे उठते भी नहीं। स्त्री पतिकी, पुत्र पिताकी आज्ञा नहीं मानता। माता, पिता, वृद्ध, आचार्य, अतिथि और गुरुओंका आदर इनमें उठ गया। संतानोंके उचित लालन-पालनपर ध्यान नहीं दिया जाता। इनके रसोइये भी अब पवित्र नहीं होते। छोटे बालक आशा लगाकर टकटकी बाँधे देखते ही रह जाते हैं और दैत्यलोग खानेकी चीजें अकेले चट कर जाते हैं। ये पशुओंको घरमें बाँध देते हैं, पर चारा और पानी देकर उनका आदर नहीं करते। ये सूर्योदयतक सोये रहते हैं तथा प्रभातको भी रात ही समझते हैं। प्रायः दिन-रात इनके घरमें कलह ही मचा रहता है।

'अब इनके यहाँ वर्णसंकर संतानें होने लगी हैं। वेदवेत्ता ब्राह्मणों और मूर्खोंको ये एक-समान आदर या अनादर देते हैं। ये अपने पूर्वजोंद्वारा ब्राह्मणोंको दी हुई जागीरें नास्तिकताके कारण छीन लेते हैं। शिष्य अब गुरुओंसे सेवा करवाते हैं। पत्नी पतिपर शासन करती है और उसका नाम ले-लेकर पुकारती है। संक्षेपमें ये सब-के-सब कृतघ्न, नास्तिक, पापाचारी और स्वैरी बन गये हैं। अब इनके वदनपर पहलेका-सा तेज नहीं रह गया।

'इसलिये देवराज! अब मैंने भी निश्चय कर लिया कि इनके घरमें नहीं रहूँगी। इसी कारणसे दैत्योंका परित्याग करके तुम्हारी ओर आ रही हूँ। तुम मुझे स्वीकार करो। जहाँ मैं रहूँगी, वहाँ आशा, श्रद्धा, धृति, क्षान्ति, विजिति, संतति, क्षमा और जया—ये आठ देवियाँ भी मेरे साथ निवास करेंगी। मेरे साथ ही ये सभी देवियाँ भी असुरोंको त्यागकर आ गयी हैं। तुम देवताओंका मन अब धर्ममें लग गया है, अतएव अब हम तुम्हारे ही यहाँ निवास करेंगी।'

तदनन्तर इन्द्रने उन लक्ष्मीजीका अभिनन्दन किया। सारे देवता भी उनका दर्शन करनेके लिये वहाँ आ गये। तत्पश्चात् सभी लौटकर स्वर्गमें आये। नारदजीने लक्ष्मीजीके आगमनकी स्वर्गीय सभामें प्रशंसा की। एक साथ ही पुनः सभीने बाजे-गाजेके साथ पुष्प और अमृतकी वर्षा की। तबसे फिर अखिल संसार धर्म तथा सुखमय हो गया।—जा० श०

(महाभारत, शान्तिपर्व, मोक्ष० २२४-२२८, बृहद् विष्णु-स्मृति, अध्याय ९९। महा० अनुशासनपर्व, अध्याय ११)

धर्मो रक्षति रक्षितः

वनवासके समय पाण्डव द्वैतवनमें थे। वनमें घूमते समय एक दिन उन्हें प्यास लगी। धर्मराज युधिष्ठिरने वृक्षपर चढ़कर इधर-उधर देखा। एक स्थानपर हरियाली तथा जल होनेके अन्य चिह्न देखकर उन्होंने नकुलको जल लाने भेजा। नकुल उस स्थानकी ओर चल पड़े। वहाँ उन्हें स्वच्छ जलसे पूर्ण एक सरोवर मिला; किंतु जैसे ही वे सरोवरमें जल पीने उतरे, उन्हें यह वाणी सुनायी पड़ी—'इस सरोवरका पानी पीनेका साहस मत करो! इसके जलपर मैं पहले ही अधिकार कर चुका हूँ। पहले मेरे प्रश्नोंका उत्तर दे लो, तब पानी पीना।'

नकुल बहुत प्यासे थे। उन्होंने उस बातपर, जिसे एक यक्ष कह रहा था, ध्यान नहीं दिया। लेकिन जैसे ही उन्होंने सरोवरका जल मुखसे लगाया, वैसे ही निर्जीव होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

इधर नकुलको गये बहुत देर हो गयी तो युधिष्ठिरने सहदेवको भेजा। सहदेवको भी सरोवरके पास यक्षकी वाणी सुनायी पड़ी। उन्होंने भी उसपर ध्यान न देकर जल पीना चाहा और वे भी प्राणहीन होकर गिर गये। इसी प्रकार धर्मराजने अर्जुनको और भीमसेनको भी भेजा। वे दोनों भी बारी-बारीसे आये और उनकी भी यही दशा हुई।

जब जल लाने गये कोई भाई न लौटे, तब बहुत थके होनेपर भी स्वयं युधिष्ठिर उस सरोवरके पास पहुँच गये। अपने देवोपम भाइयोंको प्राणहीन पृथ्वीपर पड़े देखकर उन्हें अपार दुःख हुआ। देरतक भाइयोंके लिये शोक करके अन्तमें वे भी जल पीनेको उद्यत हुए। उन्हें पहले तो यक्षने बगुलेके रूपमें रोका; किंतु युधिष्ठिरके पूछनेपर कि—'तुम कौन हो?' वह यक्षके रूपमें एक वृक्षपर दिखायी पड़ा।

शान्तचित्त धर्मात्मा युधिष्ठिरने कहा—'यक्ष! मैं दूसरेके अधिकारकी वस्तु नहीं लेना चाहता। तुमने सरोवरके जलपर पहले ही अधिकार कर लिया है, तो वह जल तुम्हारा रहे। तुम जो प्रश्न पूछना चाहते हो, पूछो। मैं अपनी बुद्धिके अनुसार उनका उत्तर देनेका प्रयत्न करूँगा।'

यक्षने अनेकों प्रश्न पूछे। युधिष्ठिरने सभी प्रश्नोंका उचित उत्तर दिया। उनके उत्तरोंसे संतुष्ट होकर यक्षने कहा—'राजन्! तुमने मेरे प्रश्नोंके ठीक उत्तर दिये हैं; इसलिये अपने इन भाइयोंमेंसे जिस एकको चाहो, वह जीवित हो सकता है।'

युधिष्ठिर बोले—'आप मेरे छोटे भाई नकुलको जीवित कर दें।' यक्षने आश्चर्यके स्वरमें कहा—'तुम राज्यहीन होकर वनमें भटक रहे हो, शत्रुओंसे तुम्हें अन्तमें संग्राम करना है, ऐसी दशामें अपने परम पराक्रमी भाई भीमसेन अथवा शस्त्रज्ञचूडामणि अर्जुनको छोड़कर नकुलके लिये क्यों व्यग्र हो?'

धर्मराज युधिष्ठिरने कहा—'यक्ष! राज्यका सुख या वनवासका दुःख तो भाग्यके अनुसार मिलता है; किंतु मनुष्यको धर्मका त्याग नहीं करना चाहिये। जो धर्मकी रक्षा करता है, धर्म स्वयं उसकी रक्षा करता है। इसलिये मैं धर्मको नहीं छोड़ूँगा। कुन्ती और माद्री दोनों मेरी माता हैं। कुन्तीका पुत्र मैं जीवित हूँ। अतः मैं चाहता हूँ कि मेरी दूसरी माता माद्रीका वंश भी नष्ट न हो। उनका भी एक पुत्र जीवित रहे। तुम नकुलको जीवित करके दोनोंको पुत्रवती कर दो।'

यक्षने कहा—'तुम अर्थ और कामके विषयोंमें परम उदार हो, अतः तुम्हारे चारों भाई जीवित हो जायँ। मैं तुम्हारा पिता धर्म हूँ। तुम्हें देखने तथा तुम्हारी धर्मनिष्ठाकी परीक्षा लेने आया था।'

धर्मने अपना स्वरूप प्रकट कर दिया। चारों मृतप्राय पाण्डव तत्काल उठ बैठे।—सु० सिं०

(महाभारत, वन० ३१२-३१४)

भगवान् कहाँ-कहाँ रहते हैं ?

बहुत पहलेकी बात है कोई नरोत्तम नामका ब्राह्मण था। उसके घरमें माँ-बाप थे। तथापि वह उनकी परिचर्या न कर तीर्थयात्राके लिये निकल पड़ा। उसने अनेक तीर्थोंमें पर्यटन तथा अवगाहन किया, जिसके प्रतापसे उसके गीले वस्त्र निरालम्ब आकाशमें उड़ने और सूखने लगे। जब उसने यों ही स्वच्छन्द गतिसे अपने वस्त्रोंको आकाशमें उड़ते चलते देखा, तब उसे अपनी तीर्थचर्याका महान् अहंकार हो गया। वह समझने लगा कि मेरे समान पुण्यकर्मा यशस्वी इस संसारमें दूसरा कोई भी नहीं है। एक बार उसने ऐसा ही कहीं कह भी दिया। तबतक उसके सिरपर एक बगुलेने बीट कर दी। क्रुद्ध होकर नरोत्तमने बगुलेको शाप दे दिया, जिससे वह बगुला वहीं जलकर भस्म हो गया। पर आश्चर्य! तबसे उसके कपड़ेका आकाशमें उड़ना और सूखना बंद हो गया। अब नरोत्तम बड़ा उदास हो गया। तबतक आकाशवाणी हुई—'ब्राह्मण! तुम परम धार्मिक मूक चाण्डालके पास जाओ, वहीं 'धर्म क्या है' इसका तुम्हें पता चल जायगा तथा तुम्हारा कल्याण भी होगा।'

१ माता-पिताकी सेवा करनेवालेके घर

नरोत्तमको इससे बड़ा कुतूहल हुआ। वह तुरत पता लगाता हुआ मूक चाण्डालके घर पहुँचा। वहाँ मूक बड़ी श्रद्धासे अपने माता-पिताकी शुश्रूषामें लगा था। उसके विलक्षण पुण्य-प्रतापसे भगवान् विष्णु निरालम्ब उसके घर अन्तरिक्षमें वर्तमान थे। वहाँ पहुँचते ही नरोत्तमने मूकको आवाज दी और कहा—'अरे! मैं यहाँ आया हूँ, तुम मुझे यहाँ आकर शाश्वत हितकारी धर्मतत्त्वका स्वरूपतः वर्णन सुनाओ।'

मूक बोला—'मैं अपने माता-पिताकी सेवामे लगा हूँ। इनकी विधिपूर्वक परिचर्या करके तुम्हारा कार्य करूँगा। तबतक चुपचाप दरवाजेपर बैठे रहो। मैं तुम्हारा आतिथ्य करना चाहता हूँ।'

अब तो नरोत्तमकी त्योरी चढ़ गयी। वह बड़े जोरोंसे बिगडकर बोला—'अरे! मुझ ब्राह्मणकी सेवासे बढ़कर तुम्हारा क्या काम आ गया है? तुमने मुझे हँसी-खेल समझ रक्खा है क्या?' मूकने कहा—'ब्राह्मण देवता! मैं बगुला नहीं हूँ। तुम्हारा क्रोध बस, बगुलेपर ही चरितार्थ हो सकता है, अन्यत्र कहीं नहीं। यदि तुम्हें मुझसे कुछ पूछना है तो तुम्हें यहाँ ठहरकर प्रतीक्षा करनी ही पड़ेगी। यदि तुम्हारा यहाँ ठहरना कठिन ही हो तो तुम पतिव्रताके यहाँ जाओ। उसके दर्शनसे तुम्हारे अभीष्टकी सिद्धि हो सकेगी।'

२ पतिव्रताके घर

तबतक द्विजरूपधारी विष्णु चाण्डालके घरसे बाहर निकल पड़े और नरोत्तमसे बोले—'चलो, मैं तुम्हें पतिव्रताका घर दिखला दूँ।' अब नरोत्तम उनके साथ हो लिया। उसने उनसे पूछा—'ब्राह्मण! तुम इस चाण्डालके घर स्त्रियोंमें आवृत होकर क्यों रहते हो?' भगवान् बोले—'इसका रहस्य तुम पतिव्रता आदिका दर्शन करनेपर स्वयमेव समझ जाओगे।'

नरोत्तमने पूछा—'महाराज! यह पतिव्रता कौन-सी बला है? पतिव्रताका लक्षण तथा महत्त्व क्या है? क्या आप इस सम्बन्धमें कुछ जानते हैं?' भगवान्ने कहा—'पतिव्रता स्त्री अपने दोनों कुलोंके सभी पुरुषोंका उद्धार कर देती है। प्रलयपर्यन्त वह स्वर्ग-भोग करती है। कालान्तरमें जब वह जन्म लेती है, तब उसका पति सार्वभौम राजा होता है। सैकड़ों जन्मोंतक यह क्रम चलकर अन्तमें उन दोनों पति-पत्नीका मोक्ष होता है। जो स्त्री प्रेममें अपने पुत्रसे सौगुना तथा भयमें राजासे सौगुना पतिसे प्रेम तथा भय करती है, उसे पतिव्रता कहते हैं। जो काम करनेमें दासीके समान, भोजन करानेमें माताके समान, विहारमें वेश्याके समान, विपत्तियोंमें मन्त्रीके समान हो, उसे पतिव्रता कहते हैं। वैसी ही यहाँ एक शुभा नामकी पतिव्रता स्त्री है।

भगवान् कहाँ-कहाँ रहते हैं ?

माता-पिताके सेवक पुत्रके घर　　　　पतिव्रता स्त्रीके घर

सत्यवादी ईमानदार व्यापारीके घर　　　　जितेन्द्रिय मित्रके घर

तुम उससे जाकर धर्मके रहस्योंको समझो ।'*

अब नरोत्तम पतिव्रताके दरवाजेपर पहुँचा । वहाँ पहुँचकर उसने आवाज लगायी । पतिव्रता आवाज सुनकर बाहर आ गयी । नरोत्तम बोला—'मुझे धर्मका रहस्य समझाओ ।' पतिव्रता बोली—'ब्राह्मण देवता ! मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ । इस समय मुझे पतिकी परिचर्या करनी है । अभी तो आप अतिथिके रूपमें मेरे यहाँ विराजें । पतिसेवासे निवृत्त होकर मैं आपका कार्य करूँगी ।' नरोत्तम बोला, 'कल्याणि ! मुझे आतिथ्यकी कोई आवश्यकता नहीं है । न तो मुझे भूख है, न प्यास और न थकावट । तुम मुझे साधारण ब्राह्मण समझकर खेल मत करो । यदि तुम मेरी बात नहीं मानती हो तो मैं तुम्हें शाप दूँगा ।'

पतिव्रताने कहा—'मैं बगुला नहीं हूँ । यदि तुम्हें ऐसी ही जल्दी है तो तुम तुलाधार वैश्यके पास चले जाओ । वह तुम्हारा कार्य कर सकेगा ।'

३ लोभरहित सत्यवादी वैश्यके घर

नरोत्तम उस वैश्यके घर पहुँचा । वहाँ पहुँचकर उसने उस ब्राह्मणको फिर देखा, जिसे चाण्डालके घरमें देखा था । तुलाधार व्यापारके कार्यमें बेतरह फँसा था । उसने कहा—'ब्राह्मण देवता ! एक प्रहर राततक मुझे अवकाश नहीं । आप कृपया अद्रोहकके पास पधारें; वह आपके द्वारा बगुलेकी मृत्यु, वस्त्रोंका उड़ना और फिर न उड़नेके रहस्योंको यथाविधि बतला सकेगा ।' वह ब्राह्मण फिर नरोत्तमके साथ हो गया । नरोत्तमने उससे पूछा—'ब्राह्मण ! आश्चर्य है, यह तुलाधार स्नान, संध्या, देवर्षि, पितृ-तर्पण आदिसे सर्वथा रहित है । इसका शरीर मलका भण्डार हो रहा है । इसके सारे वस्त्र भी बेढंगे हो रहे हैं, तथापि यह मेरी सारी बातोंको जो इसके परोक्षमें घटी हैं, कैसे जान गया ?'

ब्राह्मण-रूपधारी भगवान् बोले—'इसने सत्य और समतासे तीनों लोकोंको जीत लिया है । यह मुनिगणोंके साथ देवता और पितरोंको भी तृप्त कर चुका और इसीके प्रभावसे भूत, भविष्य और वर्तमानकी परोक्ष घटनाओंको भी जान सकता है । सत्यसे बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं, झूठसे बड़ा कोई दूसरा पातक नहीं । इसी प्रकार समताकी भी महत्ता है । शत्रु, मित्र, मध्यस्थ—इन तीनोंमें जिसका समान भाव उत्पन्न हो गया है, उसके सारे पाप क्षीण हो गये और वह विष्णु-सायुज्यको प्राप्त कर लेता है । जिस व्यक्तिमें सत्य, शम, दम, धैर्य, स्थैर्य, अनालस्य, अनाश्चर्य, निर्लोभिता और समता-जैसे गुण हैं, उसमें सारा विश्व ही प्रतिष्ठित है । ऐसा पुरुष करोड़ों कुलोंका उद्धार कर लेता है । उसके शरीरमें साक्षात् भगवान् विराजमान हैं । वह देवलोक-नरलोकके सभी वृत्तान्तोंको जान सकता है ।'*

नरोत्तमने कहा—'अस्तु ! तुलाधारकी सर्वज्ञताका कारण मुझे ज्ञात हो गया; पर अद्रोहक कौन तथा किस प्रभाववाला है, क्या यह आप जानते हैं ?'

४ जितेन्द्रिय मित्रके घर

विप्ररूपी भगवान् बोले—''कुछ समय पूर्वकी बात है । एक राजकुमारकी स्त्री बड़ी सुन्दरी तथा युवती थी । एक दिन उस राजकुमारको अपने पिताकी आज्ञासे कहीं बाहर जानेकी आवश्यकता हुई । अब वह स्त्रीके सम्बन्धमें सोचने लगा कि कहाँ उसे रखा जाय, जहाँ उसकी पूरी सुरक्षा हो सके । अन्तमें वह अद्रोहकके घर गया और अपनी स्त्रीके रक्षार्थ उसने

* पुत्राच्छतगुणं स्नेहाद् राजानं च भयादथ ।
आराधयेत् पतिं शौरिं या पश्येत् सा पतिव्रता ॥
कार्ये दासी रतौ वेश्या भोजने जननीसमा ।
विपत्सु मन्त्रिणी भर्तुः सा च भार्या पतिव्रता ॥
भर्तुराज्ञां न लङ्घेद् या मनोवाक्कायकर्मभिः ।
भुक्ते पतौ सदाश्नाति सा च भार्या पतिव्रता ॥
(पद्मपुराण, सृष्टि० ४७ । ५५-५७)

* सत्यं दमः शमश्चैव धैर्यं स्थैर्यमलोभता ।
अनाश्चर्यमनालस्यं तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
एवं यो वर्तते नित्यं कुलकोटिं समुद्धरेत् ।
तेन वै देवलोकस्य नरलोकस्य सर्वशः ॥
वृत्तं जानाति धर्मज्ञस्तस्य देहे स्थितो हरिः ॥
(पद्मपुराण, सृष्टि० ४७ । ६७-७०)

प्रार्थना की। अद्रोहकने कहा—'न तो मैं तुम्हारा पिता हूँ न भाई-बन्धु। तुम्हारे मित्रोंमेंसे भी मैं नहीं होता, फिर तुम ऐसा प्रस्ताव क्यों कर रहे हो ?'

"राजकुमार बोला—'महात्मन्! इस विश्वमें आप-जैसा धर्मज्ञ और जितेन्द्रिय कोई दूसरा नहीं है, इसे मैं भली प्रकार जानता हूँ। यह अब आपके घरमें ही रहेगी, आप ही जैसे हो इसकी रक्षा कीजियेगा।' यों कहकर वह राजकुमार चला गया। अद्रोहकने बड़े धैर्यसे उसकी रक्षा की। छः मासके बाद राजकुमार पुनः लौटा। उसने लोगोंसे अपनी स्त्री तथा अद्रोहकके प्रबन्धके सम्बन्धमें पूछ-ताछ की। अधिकांश लोगोंने अद्रोहककी निन्दा की। बात अद्रोहकको भी मालूम हुई। उसने लोकनिन्दासे मुक्त होनेके लिये एक बड़ी चिता बनाकर उसमें आग लगा दी; तबतक राजकुमार वहाँ पहुँच गया। अद्रोहकको उसने रोकना चाहा। पर उन्होंने एक न सुनी और अग्निमें प्रवेश कर गये। फिर भी अग्निने उनके अङ्गों तथा वस्त्रोंको नहीं जलाया। देवताओंने साधुवाद दिया और अद्रोहकके मस्तकपर फूलोंकी वर्षा की। जिन लोगोंने अद्रोहककी निन्दा की थी, उनके मुँहपर अनेकों प्रकारकी कोढ़ हो गयी। देवताओंने ही उन्हें अग्निसे बाहर किया। उनका चरित्र सुनकर मुनियोंको भी बड़ा विस्मय हुआ। देवताओंने राजकुमारसे कहा—'तुम अपनी स्त्रीको स्वीकार करो। इन अद्रोहकके समान कोई मनुष्य इस संसारमें नहीं हुआ है।' तदनन्तर वे राजकुमार-दम्पति अपने राजमहलको चले गये। तबसे अद्रोहकको भी दिव्य दृष्टि हो गयी है।"

तत्पश्चात् नरोत्तम अद्रोहकके पास पहुँचे और उनका दर्शन किया। जब अद्रोहकने उनके पधारनेका कारण पूछा, तब उसने धोतियोंके न सूखने, बगुलेके बीट करने और उसके जलनेका रहस्य पूछा। अद्रोहकने उन्हें वैष्णवके पास जानेको कहा। वैष्णवने कहा—'भीतर चलकर भगवान्‌का दर्शन कीजिये।' भीतर जानेपर नरोत्तमने देखा कि वे ही ब्राह्मण जो चाण्डाल, पतिव्रता एवं धर्मव्याधके घरमें थे और जो उसे बराबर राह बतलाते रहे थे, उस मन्दिरमें वर्तमान हैं। वहाँ उन्होंने सब बातोंका समाधान कर दिया और उसे माता-पिताकी सेवाकी आज्ञा दी। तबसे नरोत्तम घर लौट आया और माता-पिताकी दृढ़ भक्तिमें तल्लीन हो गया।

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ४७)

धर्मनिष्ठ सबसे अजेय है

देवता और दैत्योंने मिलकर अमृतके लिये समुद्र-मन्थन किया और अमृत निकला भी; किंतु भगवान् नारायणके कृपापात्र होनेसे केवल देवता ही अमृत-पान कर सके। दैत्य छले गये, उन्हें परिश्रम ही हाथ लगा। परिणाम तो देवासुर-संग्राम होना ही था। उसमें भी अमृत-पानसे अमर बने देवता ही विजयी हुए। दैत्यराज बलि तो युद्धमें मारे ही गये थे; किंतु आचार्य शुक्रने बलि तथा युद्धमें मरे अन्य दैत्योंको भी अपनी संजीविनी विद्यासे जीवित कर लिया। बलि अपने अनुचरोंके साथ अस्ताचल चले गये।

अपनी सेवासे बलिने आचार्य शुक्रको प्रसन्न कर लिया। आचार्यने एक यज्ञ कराया। यज्ञकुण्डसे प्रकट होकर अग्निने बलिको दिव्य रथ, अक्षय त्रोण तथा अन्य शस्त्र दिये। अब फिर बलिने स्वर्गपर चढ़ाई कर दी। इस बार बलिका तेज इतना दुर्धर्ष था कि देवराज इन्द्र उन्हें देखते ही हताश हो गये। देवगुरु बृहस्पतिने भी देवताओंको चुपचाप भागकर पर्वतीय गुफाओंमें छिप जानेका आदेश दिया। अमरावतीपर बिना युद्ध बलिने अधिकार कर लिया।

'स्वर्गके सिंहासनपर वही स्थिर रह सकता है, जिसने सौ अश्वमेध यज्ञ पूर्ण किये हों। कोई भी कर्म तभी फल देता है, जब वह कर्मभूमि पृथ्वीपर किया गया हो। स्वर्गमें किये कर्म कोई फल नहीं देते। तुमने स्वर्गपर अधिकार कर लिया है; किंतु यह अधिकार बना

रहे, इसके लिये सौ अश्वमेध यज्ञ तुम्हें पूरे कर लेने चाहिये ।' आचार्य शुक्रने बलिको समझाया ।

बलिने तो अक्षरशः आचार्यकी आज्ञाके पालनका ही इधर व्रत ले लिया था । पृथ्वीपर नर्मदाके पवित्र तटपर उनका यज्ञ-मण्डप बना और एकके बाद दूसरा अश्वमेध यज्ञ वे करने लगे । निन्यानवे अश्वमेध यज्ञ निर्विघ्न पूरे हो गये । अन्तिम अश्वमेध भी प्रारम्भ हो गया।

उधर देवमाता अदिति अपने गृहहीन पुत्रोंके दुःखसे अत्यन्त दुखी थीं । उन्होंने अपने पतिदेव महर्षि कश्यपसे प्रार्थना की—'ऐसा कोई उपाय बतानेकी कृपा करें, जिससे मेरे पुत्रोंकी विपत्ति दूर हो जाय ।'

महर्षिने पयोव्रत करके भगवान्‌की आराधना करनेका आदेश दिया । अदितिने बड़ी श्रद्धा और तत्परतासे वह व्रत पूरा किया । उनकी आराधनासे संतुष्ट होकर भगवान् नारायणने उन्हें दर्शन दिया । भगवान्‌ने कहा— 'देवि ! जो धर्मकी रक्षा करता है, धर्म सदा उसकी रक्षा करता है । जो धर्मात्मा है और धर्मज्ञ आचार्योंके आदेशपर चलता है, वह मेरे लिये भी अजेय है । उसके साथ बलप्रयोग करके कोई विजयी नहीं हो सकता । लेकिन मेरी उपासना व्यर्थ नहीं जाती । मैं तुम्हारे पुत्र-रूपमें अवतार लूँगा और देवताओंको उनका स्वर्ग युक्तिपूर्वक दिलाऊँगा ।'

वरदान देकर भगवान् अन्तर्हित हो गये । अदितिके गर्भसे उन्होंने वामनरूपमें अवतार धारण किया । महर्षि कश्यपने ऋषियोंके साथ वामनजीका संस्कार कराया । यज्ञोपवीत-संस्कार हो जानेपर वामन बलिकी यज्ञशालाकी ओर चल पड़े । खड़ाऊँ पहिने, कटिमें मेखला बाँधे, छत्ता लगाये, दण्ड और जलभरा कमण्डलु लिये, ब्रह्मचारी वेशमें वामन साक्षात् सूर्यके समान तेजस्वी लगते थे ।

दैत्यराज बलिका अन्तिम अश्वमेध यज्ञ भी पूर्णाहुतिके निकट ही था । यज्ञशालाके द्वारपर मूर्तिमान् मार्तण्डके समान जब वामन पहुँचे, तब उनके सम्मानमें सभी ऋत्विज्, दैत्यराज बलि एवं अन्य सदस्य खड़े हो गये । बलिने बड़े आदरसे उन्हें उच्चासनपर बैठाया । उनके चरण धोकर उनकी पूजा की । अन्तमें नम्रतापूर्वक बलिने हाथ जोड़कर कहा—'आप ब्रह्मचारी ब्राह्मणकुमार हैं । आपके पधारनेसे मैं धन्य हो गया । अब आप जिस उद्देश्यसे आये हैं, वह बतानेकी कृपा करें । जो कुछ आप माँगना चाहें, माँग लें ।'

भगवान् वामनने दैत्यकुलके औदार्यकी प्रशंसा की, दानवीरोंकी चर्चा की और बलिकी दानशीलताकी भी प्रशंसा की । इतना करके उन्होंने कहा—'मुझे अपने पैरोंसे तीन पद भूमि चाहिये ।'

बलि हँस पड़े और बोले—'विप्रकुमार ! आप विद्वान् हैं, किंतु हैं तो बालक ही । अरे, भूमि ही माँगनी है तो इतनी भूमि तो माँग लो, जिससे तुम्हारी आजीविका चल जाय ।'

परंतु जिसे तीनों लोक चाहिये, वह आजीविकामात्रके लिये भूमि क्यों ले । बड़ी गम्भीरतासे वामन बोले—'राजन् ! तृष्णा बहुत बुरी होती है । यदि मैं तीन पद भूमिसे संतुष्ट न होऊँ तो तृष्णा तो राज्य चाहेगी, फिर राज्यकी कामना बढ़कर पूरा भूमण्डलकी माँग करेगी और आप जानते ही हैं कि तृष्णाकी तृप्ति तो आपका त्रिलोकीका राज्य पाकर भी नहीं होगी । तृष्णा जाग्रत् करके आपने कुछ अच्छा नहीं किया । मुझे तो आप मेरे पैरोंसे नापी तीन पद भूमि दे दें—मेरे लिये इतना ही बहुत है ।'

'अच्छी बात ! जैसे आप प्रसन्न रहें ।' बलिने हँसकर सकल्प करनेके लिये पत्नीसे जलपात्र माँगा । परंतु इतनेमें शुक्राचार्य वामनजीको पहचान गये थे । उन्होंने अपने शिष्यको डाँटा—'मूर्ख ! क्या करने जा

रहा है ? ये नन्हे-से ब्राह्मणकुमार नहीं हैं। इस वेषमें तेरे सामने ये साक्षात् मायामय विष्णु खड़े हैं। ये अपने एक पदमें भूलोक और दूसरेमें स्वर्गादि लोक नाप लेंगे। तीसरा पद रखनेको स्थान छोड़ेंगे ही नहीं। सर्वस्व इन्हें देकर तू कहाँ रहेगा ? इन्हें हाथ जोड़ और कह दे कि देवता! कोई और यजमान ढूँढ़ो। मुझपर तो कृपा ही करो।'

'ये साक्षात् विष्णु हैं!' बलि भी चौंके। अपने आचार्यपर अविश्वास करनेका कारण नहीं था। मस्तक झुकाकर दो क्षण उन्होंने सोचा और तब उस महामनस्वीने सिर उठाया—'भगवन्! आप इतने बड़े-बड़े यज्ञोंसे मेरे द्वारा जिन यज्ञमूर्ति विष्णुकी आराधना कराते हैं, वे साक्षात् विष्णु ये हों या और कोई; मैं तो भूमि देनेको कह चुका। प्रह्लादका पौत्र 'हाँ' करके कृपणकी भाँति अस्वीकार कर दे, यह नहीं हो सकता। मेरा कुछ भी हो जाय, द्वारपर आये ब्राह्मणको मैं शक्ति रहते विमुख नहीं करूँगा।'

शुक्राचार्यको क्रोध आ गया। उन्होंने रोषपूर्वक कहा—'तू मेरी बात नहीं मानता, अपनेको बड़ा धर्मात्मा और पण्डित समझता है; इससे तेरा वैभव तत्काल नष्ट हो जायगा।'

बलिने मस्तक झुकाकर गुरुदेवका शाप स्वीकार कर लिया किंतु अपना निश्चय नहीं छोड़ा। जल लेकर उन्होंने वामनको तीन पद भूमि देनेका संकल्प कर दिया। भूमिदान लेते ही वामन भगवान्‌ने विराट्‌रूप धारण कर लिया। एक पदमें पूरी भूमि उन्होंने नाप ली और दूसरा पद उठाया तो उसके अङ्गुष्ठका नख ब्रह्माण्डावरणको भेदकर बाहर चला गया। अब भगवान्‌ने बलिसे कहा—'तू बड़ा दानवीर बनता था। मुझे तूने तीन पद भूमि दी है। दो पदमें ही तेरा त्रिलोकीका राज्य पूरा हो गया। अब तीसरे पदको रखनेका स्थान बता।'

बलिने मस्तक झुकाकर कहा—'सम्पत्तिसे सम्पत्तिका स्वामी बड़ा होता है। आप तीसरा पद मेरे मस्तकपर रखें और अपना दान पूर्णतः ले लें।'

भगवान्‌ने तीसरा पद बलिके मस्तकपर रखकर उन्हें धन्य कर दिया। इन्द्रको स्वर्ग प्राप्त हुआ। स्वयं वामनभगवान् उपेन्द्र बने इन्द्रकी रक्षाके लिये; किंतु बलिको तो उन्होंने अपने आपको ही दे दिया। स्वर्गसे भी अधिक ऐश्वर्यमय सुतललोक प्रभुने बलिको निवासके लिये दिया। अगले मन्वन्तरमें बलि इन्द्र बनेंगे, यह आश्वासन दिया। इससे भी आगे यह वरदान दिया कि वे अखिलेश्वर स्वयं हाथमें गदा लिये सदा सुतलमें बलिके द्वारपर उपस्थित रहेंगे। इस प्रकार छले जाकर भी बलि विजयी ही रहे और दयामय प्रभु उनके द्वारपाल बन गये। —सु० सिं० (श्रीमद्भागवत ८। १५—२३)

धर्मरक्षामें प्राप्त विपत्ति भी मङ्गलकारिणी होती है

पाण्डव वनवासका जीवन व्यतीत कर रहे थे। भगवान् व्यासकी प्रेरणासे अर्जुन अपने भाइयोंकी आज्ञा लेकर तपस्या करने गये। तप करके उन्होंने भगवान् शङ्करको प्रसन्न किया, आशुतोषने उन्हें अपना पाशुपतास्त्र प्रदान किया। इसके अनन्तर देवराज इन्द्र अपने रथमें बैठाकर अर्जुनको स्वर्गलोक ले गये। इन्द्रने तथा अन्य लोकपालोंने भी अपने दिव्यास्त्र अर्जुनको दिये। उन दिव्यास्त्रोंको लेकर अर्जुनने देवताओंके शत्रु निवातकवचनामक असुरगणोंपर आक्रमण कर दिया। देवता भी उन असुरोंपर विजय नहीं पा रहे थे, उन असुरोंके बार-बारके आक्रमणसे देवता संत्रस्त हो रहे थे। अर्जुनने युद्धमें असुरोंको पराजित कर दिया। उनके गाण्डीव धनुषसे छूटे बाणोंकी मारसे व्याकुल होकर असुर भाग खड़े हुए और पाताल चले गये।

असुर-विजयी मध्यम पाण्डव जब अमरावती लौटे, तब देवताओंने बड़े उल्लाससे उनका स्वागत किया। देव-सभा भरपूर सजायी गयी। देवराज इन्द्र अर्जुनको साथ लेकर अपने सिंहासनपर बैठे। गन्धर्वगणोंने वीणा उठायी। स्वर्गकी श्रेष्ठतम अप्सराएँ एक-एक करके नृत्य करने लगीं। देवराज किसी भी प्रकार अर्जुनको सतुष्ट करना चाहते थे। वे ध्यानसे अर्जुनकी ओर देख रहे थे कि उनकी रुचि और आकर्षणका पता लगा सकें।

अर्जुन स्वर्गमें थे। प्रापञ्चिक सौन्दर्य एवं ऐश्वर्यकी पराकाष्ठा स्वर्गभूमि आज विशेषरूपसे सजायी गयी थी। अप्सराएँ अपनी समस्त कला प्रकट करके देवताओं तथा देवराजके परमप्रिय अतिथिको रिझा लेना चाहती थीं। देवप्रतिहारी एक नृत्य समाप्त होनेपर दूसरी अप्सराका नाम लेकर परिचय देता और देवसभा एक नवीन झंकृतिसे झूम उठती। परंतु जिस अर्जुनके स्वागतमें यह सब हो रहा था, वे मस्तक झुकाये, नेत्र नीचे किये शान्त बैठे थे। स्वर्गके इस वैभवमें उन्हें अपने वल्कल पहिने, फल-मूल खाकर भूमिशयन करनेवाले वनवासी भाई स्मरण आ रहे थे। उन्हें तनिक भी आकर्षण नहीं जान पड़ता था अमरावतीमें।

सहसा देवप्रतिहारीने उर्वशीका नाम लिया। अर्जुनका सिर ऊपर उठा। देवसभामें उपस्थित होकर नृत्य करती उर्वशीको उन्होंने कई बार देखा। सहस्रलोचन इन्द्रने यह बात लक्षित कर ली। महोत्सव समाप्त होनेपर देवराजने गन्धर्वराज चित्रसेनको अपने पास बुलाकर कहा—'उर्वशीके पास जाकर मेरी यह आज्ञा सूचित कर दो कि आज रात्रिमें वे अर्जुनकी सेवामें पधारें। अर्जुन हम सबके परम प्रिय हैं। उन्हें आज वे अवश्य प्रसन्न करें।'

उर्वशी स्वय अर्जुनपर अनुरक्त हो चुकी थी। चित्रसेनके द्वारा जब उसे देवराजका आदेश मिला, तब उसने उसे बड़ी प्रसन्नतासे स्वीकार किया। उस दिन उसने अपनेको उतना सजाया जितना वह अधिक-से-अधिक सजा सकती थी। रात्रिमें भरपूर शृङ्गार करके वह अर्जुनके निवासस्थानपर पहुँची।

अर्जुन उर्वशीको देखते ही शय्यासे उठकर खड़े हो गये। दोनों हाथ जोड़कर उन्होंने मस्तक झुकाकर उसे प्रणाम किया और बोले—'माता! आप इस समय कैसे पधारीं? मैं आपकी क्या सेवा करूँ?'

उर्वशी तो अर्जुनके सम्बोधनसे ही भौंचकी रह गयी। उसने स्पष्ट बतलाया कि वह स्वयं उनपर आसक्त है और देवराजका भी उसे आदेश मिला है। उसने प्रार्थना की कि अर्जुन उसे स्वीकार करें। लेकिन अर्जुनने स्थिरभावसे कहा—'आप मुझसे ऐसी अनुचित बात फिर न कहें। आप ही कुरुकुलकी जननी हैं, यह बात मैंने ऋषियोंसे सुन रक्खी थी। आज देवसभामें जब प्रतिहारीने आपका नाम लिया, तब मुझे आपका दर्शन करनेकी इच्छा हुई। मैंने अपने कुलकी माता समझकर अनेक बार आपके सुन्दर चरणोंके दर्शन किये। लगता है कि इसीसे देवराजको मेरे सम्बन्धमें कुछ भ्रम हो गया।'

उर्वशीने समझाया—'पार्थ! यह धरा नहीं है, स्वर्ग है। हम अप्सराएँ न किसीकी माता हैं न बहिन, न पत्नी ही। स्वर्गमें आया हुआ प्रत्येक प्राणी अपने पुण्यके अनुसार हमारा उपभोग कर सकता है। तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लो।'

रात्रिका एकान्त समय था और पर्याप्त शृङ्गार किये स्वर्गकी सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी प्रार्थना कर रही थी; किंतु धर्मज्ञ अर्जुनके चित्तको कामदेव स्पर्श भी नहीं कर सका। उन्होंने उसी प्रकार हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'जिस प्रकार कुन्ती मेरी माता हैं, जिस प्रकार माद्री मेरी माता हैं, जिस प्रकार इन्द्राणी शचीदेवी मेरी माता हैं,

उसी प्रकार आपको भी मैं अपनी माता समझता हूँ । आप मुझे अपना पुत्र मानकर मुझपर अनुग्रह करें ।'

उर्वशीकी ऐसी उपेक्षा तो कभी किसी ऋषिने भी नहीं की थी । उसे इसमें अपने सौन्दर्यका अपमान प्रतीत हुआ । उस कामातुराने क्रोधमें आकर शाप दिया—'तुमने नपुसकके समान मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं की, इसलिये हिंजड़े बनकर स्त्रियोंके बीच नाचते-गाते हुए तुम्हें एक वर्ष रहना पड़ेगा ।'

शाप देकर उर्वशी चली गयी । अर्जुन भी उसे शाप देनेमें समर्थ थे और उन्हें अन्यायपूर्वक शाप दिया गया था; किंतु उन्होंने उर्वशीको जाते समय भी मस्तक झुकाकर प्रणाम ही किया ।

प्रातःकाल देवराजको सब बातें ज्ञात हुईं । अर्जुनके संयमपर प्रसन्न होकर वे बोले—'धनञ्जय ! धर्मका पालन करनेवालेपर कभी विपत्ति नहीं आती । यदि कोई विपत्ति आती भी है तो वह उसका मङ्गल ही करती है । उर्वशीका शाप तुम्हारे लिये एक मानव वर्षतक ही रहेगा और उस शापके कारण वनवासके अन्तिम अज्ञात-वासवाले एक वर्षके समयमें तुम्हें कोई पहचान नहीं सकेगा । तुम्हारे लिये यह शाप उस समय वरदान ही सिद्ध होगा ।' —सु० सिं० (महाभारत, वन० ४२–४६)

धन्य कौन ?

एक बार मुनियोंमें परस्पर इस विषयपर बड़ा विवाद हुआ कि 'किस समय थोड़ा-सा भी पुण्य अत्यधिक फलदायक होता है तथा कौन उसका सुविधापूर्वक अनुष्ठान कर सकता है ?' अन्तमें वे इस सदेहके निवारणके लिये महामुनि व्यासजीके पास गये । उस समय दैववशात् वे गङ्गाजीमें स्नान कर रहे थे । ज्यों ही ऋषिगण वहाँ पहुँचे, व्यासजी डुबकी लगाकर ऊपर उठे और ऋषियोंको सुनाकर जोरसे बोले—'कलियुग ही श्रेष्ठ है, कलियुग ही श्रेष्ठ है ।' यह कहकर वे पुनः जलमग्न हो गये । थोड़ी देर बाद जब वे जलसे पुनः बाहर निकले, तब 'शूद्र ही धन्य है, शूद्र ही धन्य है' यों कहकर फिर डुबकी लगा ली । इस बार जब वे जलसे बाहर आये, तब—'स्त्रियाँ ही धन्य हैं, स्त्रियाँ ही साधु हैं; उनसे अधिक धन्य कौन है ?' यह वाक्य बोल गये और नियमानुसार ध्यानादि नित्यकर्ममें लग गये।

तदनन्तर जब वे ध्यानादिसे निवृत्त हुए, तब वे मुनिजन उनके पास आये । वहाँ जब वे अभिवादनादि-के बाद शान्त होकर बैठ गये, तब सत्यवतीनन्दन व्यासदेवने उनके शुभागमनका कारण पूछा । ऋषियोंने कहा —"हमें आप पहले यह बताइये कि आपने जो 'कलियुग ही श्रेष्ठ है, शूद्र ही धन्य हैं, स्त्रियाँ ही धन्य हैं' यह कहा—इसका आशय क्या है ? यदि कोई आपत्ति न हो तो पहले यही बतलानेका कष्ट करें । तदनन्तर हमलोग अपने आनेका कारण कहेंगे ।"

व्यासदेवजी बोले—'ऋषियो ! जो फल सत्ययुगमें दस वर्ष तप, ब्रह्मचर्य और धर्माचरण करनेसे प्राप्त होता है, वही त्रेतामें एक वर्ष, द्वापरमें एक मास तथा कलियुगमें केवल एक दिनमें प्राप्त होता है* । इसी कारण मैंने कलियुगको श्रेष्ठ कहा है । जो फल सत्ययुगमें योग, त्रेतामें यज्ञ और द्वापरमें पूजा करनेसे प्राप्त होता है, वही फल कलियुगमें केशवका नाम-कीर्तन करने-मात्रसे मिल जाता है । ऋषियो ! कलियुगमें अत्यल्प श्रम, अत्यल्प कालमें अत्यधिक पुण्यकी प्राप्ति हो जाती है, इसीलिये मैंने कलियुगको श्रेष्ठ कहा है ।

* यत् कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेतायां हायनेन तत् ।
द्वापरे तच्च मासेन तदह्ना प्राप्यते कलौ ॥
(विष्णुपु० ६ । २ । १५)

"इसी प्रकार द्विजातियोंको उपनयनपूर्वक ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए वेदाध्ययन करना पड़ता है। तत्तद्धर्मोके अनुष्ठानमें बड़ा श्रम और शक्तिका व्यय होता है। इस प्रकार बड़े क्लेशसे उन्हें पुण्योंकी प्राप्ति होती है; पर शूद्र तो केवल द्विजोंको सेवासे ही प्रसन्नकर अनायास वे पुण्य प्राप्त कर लेता है। और स्त्रियोंको भी ये पुण्य केवल मन, वचन, कर्मसे अपने पतिकी सेवा करनेसे ही उपलब्ध हो जाते हैं, इसीलिये मैंने 'शूद्र ही धन्य हैं, स्त्रियाँ ही साधु हैं; इनसे धन्य और कौन है!' ये शब्द कहे थे। अस्तु, अब कृपया आपलोग यह बतलायें कि आपके आनेका कौन-सा शुभ कारण है?"

ऋषियोंने कहा—'महामुने! हमलोग जिस प्रयोजनसे आये थे, वह कार्य हो गया। हमलोगोंमें यही विवाद छिड़ गया था कि अल्पकालमें कब अधिक पुण्य अर्जित किया जा सकता है तथा उसे कौन सम्पादित कर सकता है। वह आपके इस स्पष्टीकरणसे समाप्त तथा निर्णीत हो चुका।'

व्यासदेवने कहा—'ऋषियो! मैंने ध्यानसे आपके आनेकी बात जान ली थी तथा आपके हृद्गत भावों को भी जान गया था। अतएव मैंने उपर्युक्त बातें कहीं और आपलोगोंको भी साधु-साधु कहा था। वास्तवमें जिन पुरुषोंने गुणरूप जलसे अपने सारे दो[ष] धो डाले हैं, उनके थोड़े-से ही प्रयत्नसे कलियुगमें ध[र्म] सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार शूद्रोंको द्विजसेव[ा] तथा स्त्रियोंको पतिसेवासे अनायास ही महान् धर्म[की] सिद्धि, विशाल पुण्यराशिकी प्राप्ति हो जाती है। इ[सी] प्रकार आपलोगोंकी अभीष्ट वस्तु मैंने विना पूछे ही बत[ला] दी थी।'

तदनन्तर उन्होंने व्यासजीका पूजन करके उनक[ी] बार-बार प्रशंसा की और वे जैसे आये थे, वैसे ही अ[पने-] अपने स्थानको लौट गये। —जा० श०

(विष्णुपुराण, अंश ६, अध्याय २)

सदाचारसे कल्याण

दशार्ण देशमें एक राजा रहता था वज्रबाहु। वज्रबाहुकी पत्नी सुमति अपने नवजात शिशुके साथ किसी असाध्य रोगसे ग्रस्त हो गयी। यह देख दुष्ट-बुद्धि राजाने उसे वनमें त्याग दिया। अनेकों प्रकारके कष्ट भोगती हुई वह आगे बढ़ी। बहुत दूर जानेपर उसे एक नगर मिला। उस नगरका रक्षक पद्माकर नामका एक महाजन था। उसकी दासीने रानीपर दया की और उसे अपने स्वामीके यहाँ आश्रय दिलाया। पद्माकर रानीको माताके समान आदरकी दृष्टिसे देखता था। उसने उन दोनों माँ-बेटेकी चिकित्साके लिये बड़े-बड़े वैद्य नियुक्त किये; तथापि रानीका पुत्र नहीं बच सका, मर ही गया। पुत्रके मरनेपर रानी मूर्च्छित हो गयी और बेहोश होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। इसी समय ऋषभ नामके प्रसिद्ध शिवयोगी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने उसे विलाप करते देख कहा—'बेटी! इतना क्यों रो रही हो? फेनके समान इस शरी[रकी] मृत्यु होनेपर विद्वान् पुरुष शोक नहीं करते। कल्प[-] जीवी देवताओंकी भी आयुमें उलट-फेर होता है। [कोई] कालको इस शरीरकी उत्पत्तिमें कारण बताते हैं, [कोई] कर्मको और कोई गुणोंको। वस्तुतः काल, कर्म [और] गुण—इन तीनोंसे ही शरीरका आधान हुआ है। [यह] अव्यक्तसे उत्पन्न होता है, अव्यक्तमें ही लीन होता [है,] केवल मध्यमें बुलबुलेकी भाँति व्यक्त-सा प्रतीत [होता] है। पूर्वकर्मानुसार ही जीवको शरीरकी प्राप्ति [होती] है। कर्मोंके अनुसार ही उसे सुख-दुःख की [प्राप्ति] होती है। कर्मोंका उल्लङ्घन करना असम्भ[व ...]

कालका भी अतिक्रमण करना किसीके लिये सम्भव नहीं। जगत्के समस्त पदार्थ मायामय तथा अनित्य हैं। इसलिये तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये। जैसे स्वप्नके पदार्थ, इन्द्रजाल, गन्धर्व-नगर, शरद् ऋतुके बादल अत्यन्त क्षणिक होते हैं, उसी प्रकार यह मनुष्यशरीर भी है। अबतक तुम्हारे अरबों जन्म बीत चुके हैं। अब तुम्हीं बताओ, तुम किसकी-किसकी पुत्री, किसकी-किसकी माता और किसकी-किसकी पत्नी हो? मृत्यु सर्वथा अनिवार्य है। कोई भी व्यक्ति अपनी तपस्या, विद्या, बुद्धि, मन्त्र, ओषधि तथा रसायनसे इसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। आज एक जीवकी मृत्यु होती है तो कल दूसरेकी। इस जन्म-मरणके चक्करसे बचनेके लिये उमापति भगवान् महादेव ही एकमात्र शरण हैं। जब मन सब प्रकारकी आसक्तियोंसे अलग होकर भगवान् शंकरके ध्यानमें मग्न हो जाता है, तब फिर इस संसारमें जन्म नहीं होता। भद्रे! यह मन शिवके ध्यानके लिये है। इसे शोक-मोहमें मत डुबाओ।'

शिवयोगीके तत्त्वभरे करुणापूर्ण उपदेशोंको सुनकर रानीने कहा—'भगवन्! जिसका एकमात्र पुत्र मर गया हो, जिसे प्रिय बन्धुओंने त्याग दिया हो और जो महान् रोगसे अत्यन्त पीड़ित हो, ऐसी मुझ अभागिनके लिये मृत्युके अतिरिक्त और कौन गति है? इसलिये मैं इस शिशुके साथ ही प्राण त्याग देना चाहती हूँ। मृत्युके समय जो आपका दर्शन हो गया, मैं इतनेसे ही कृतार्थ हो गयी।'

रानीकी बात सुनकर दयानिधान शिवयोगी शिव-मन्त्रसे अभिमन्त्रित भस्म लेकर बालकके पास गये और उसके मुँहमें डाल दिया। विभूतिके पड़ते ही वह मरा हुआ बालक उठ बैठा। उन्होंने भस्मके प्रभावसे माँ-बेटेके घावोंको भी दूर कर दिया। अब उन दोनोंके शरीर दिव्य हो गये। ऋषभने रानीसे कहा—'बेटी! जबतक इस संसारमें जीवित रहोगी, वृद्धावस्था तुम्हारा स्पर्श नहीं करेगी। तुम दोनों दीर्घकालतक जीवित रहो। तुम्हारा यह पुत्र भद्रायु नामसे विख्यात होगा और अपना राज्य पुनः प्राप्त कर लेगा।'

यों कहकर ऋषभ चले गये। भद्रायु उसी वैश्य-राजके घरमें बढ़ने लगा। वैश्यका भी एक पुत्र 'सुनय' था। दोनों कुमारोंमें बड़ा स्नेह हो गया। जब राजकुमार-का सोलहवाँ वर्ष पूरा हुआ, तब वे ऋषभ योगी पुनः वहाँ आये। तबतक राजकुमार पर्याप्त पढ़-लिख चुका था। माताके साथ वह योगीके चरणोंपर गिर पड़ा। माताने अपने पुत्रके लिये कुछ उचित शिक्षाकी प्रार्थना की। इसपर ऋषभ बोले—"वेद, स्मृति और पुराणोंमे जिसका उपदेश किया गया है, वही 'सनातनधर्म' है। सभीको चाहिये कि अपने-अपने वर्ण तथा आश्रमके शास्त्रोक्त धर्मोंका पालन करें। तुम भी उत्तम आचारका ही पालन करो। देवताओंकी आज्ञाका कभी उल्लङ्घन न करो। गौ-ब्राह्मण-देवता-गुरुके प्रति सदा भक्तिभाव रक्खो। स्नान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृतर्पण, गोपूजा, देवपूजा और अतिथिपूजामें कभी भी आलस्यको समीप न आने दो। क्रोध, द्वेष, भय, शठता, चुगली, कुटिलता आदिका यत्नपूर्वक त्याग करो। अधिक भोजन, अधिक बातचीत, अधिक खेलकूद तथा क्रीडाविलासको सदाके लिये छोड़ दो। अधिक विद्या, अधिक श्रद्धा, अधिक पुण्य, अधिक स्मरण, अधिक उत्साह, अधिक प्रसिद्धि और अधिक धैर्य जैसे भी प्राप्त हो, इसके लिये सदा प्रयत्न करो। अनुराग साधुओंमें करो। धूर्त, क्रोधी, क्रूर, छली, पतित, नास्तिक और कुटिल मनुष्यको दूरसे ही त्याग दो। अपनी प्रशंसा न करो। पापरहित मनुष्योंपर संदेह न करो। माता, पिता और गुरुके कोपसे बचो। आयु, यश, बल, पुण्य, शान्ति जिस उपायसे मिले, उसीका अनुष्ठान करो। देश, काल, शक्ति, कर्त्तव्य, अकर्त्तव्य आदिका भलीभाँति विचार करके यत्नपूर्वक कर्म करो। स्नान, जप, पूजा, हवन, श्राद्धादिमें उतावली न करो। वेदवेत्ता

ब्राह्मण, शान्त सन्यासी, पुण्य वृक्ष, नदी, तीर्थ, सरोवर, धेनु, वृषभ, पतिव्रता स्त्री और अपने घरके देवताओंके पास जाते ही नमस्कार करो।'

यों कहकर शिवयोगीने भद्रायुको शिवकवच, एक शङ्ख और खड्ग दिया। फिर भस्मको अभिमन्त्रितकर उसके शरीरमें लगाया, जिससे भद्रायुमें बारह हजार हाथियोंका बल हो गया। तदनन्तर योगीने कहा—'ये खड्ग और शङ्ख दोनों ही दिव्य हैं, इन्हें देख-सुनकर ही तुम्हारे शत्रु नष्ट हो जायँगे।'

इधर वज्रबाहुको शत्रुओंने परास्त करके बाँध लिया, उसकी रानियोंका अपहरण कर लिया और दशार्ण देशका राज्य नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इसे सुनते ही भद्रायु सिंहकी भाँति गर्जना करने लगा। उसने जाकर शत्रुओं-पर आक्रमण किया और उन्हें नष्टकर अपने पिताको मुक्त कर लिया। निषधराजकी कन्या कीर्तिमालिनीसे उसका विवाह हुआ। वज्रबाहुको अपनी योग्य पत्नीसे मिलकर बड़ी लज्जा हुई। उन्होंने राज्य अपने पुत्रको सौंप दिया। तदनन्तर भद्रायु समस्त पृथ्वीके सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट् हो गये।—जा० श०

(स्कन्दपुराण, ब्राह्मखण्ड, ब्रह्मोत्तरखण्ड, अध्याय १०-११)

हमें मृत्युका भय नहीं है

हैहय क्षत्रियोंके वंशमें एक परपुरञ्जय नामक राज-कुमार हो गये है। एक बार वे वनमें आखेटके लिये गये। वृक्षोंकी आड़से उन्होंने दूरपर एक मृगका कुछ शरीर देखा और बाण छोड़ दिया। पास जानेपर उन्हें पता लगा कि मृगके धोखेमें उन्होंने मृगचर्म ओढ़े एक मुनिको मार डाला है। इस ब्रह्महत्याके कारण उन्हे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। दु:खित होकर वे अपने नगरमें लौट आये और अपने नरेशसे सब बातें उन्होंने सच-सच कह दीं। हैहय-नरेश राजकुमारके साथ वनमें गये और वहाँ एक युवक मुनिको मरा हुआ देखकर बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने यह पता लगानेका प्रयत्न किया कि वे मुनि किसके पुत्र या शिष्य हैं।

ढूँढ़ते हुए हैहय-नरेश वनमें महर्षि अरिष्टनेमाके आश्रमपर पहुँचे। ऋषिको प्रणाम करके वे चुपचाप खड़े हो गये। जब ऋषि उनका सत्कार करने लगे, तब नरेशने कहा—'हमारे द्वारा ब्रह्महत्या हुई है, अत: हम आपसे सत्कार पाने योग्य नहीं हैं।'

ऋषि अरिष्टनेमाने पूछा—'आपलोगोंने किस प्रकार ब्रह्महत्या की? उस मृत ब्राह्मणका शरीर कहाँ है?'

नरेशने ब्रह्महत्याकी घटना सुनायी और मृत ब्राह्मणका शरीर जहाँ छोड़ा था, वहाँ उसे लेने गये, किंतु उन्हें वहाँ शव मिला नहीं। अपनी असावधानीके लिये उन्हें और भी ग्लानि हुई।

उन दोनोंको अत्यन्त दु:खित एवं लज्जित देखकर ऋषिने अपनी कुटियासे बाहर अपने पुत्रको बुलाया और बोले—'तुमने जिसे मार डाला था, वह यही ब्राह्मण है। यह तपस्वी मेरा ही पुत्र है।'

नरेश आश्चर्यमें पड़ गये। उन्होंने पूछा—'भगवन्! यह क्या बात है? ये महात्मा फिर कैसे जीवित हो गये? यह आपके तपका प्रभाव है या इनमें ही कोई अद्भुत शक्ति है?'

ऋषिने बताया—'राजन्! मृत्यु हमारा स्पर्श भी नहीं कर सकती। हम सदा सत्यका पालन करते हैं, मिथ्या-की ओर हमारा मन भूलकर भी नहीं जाता। हम सर्वदा अपने धर्मके अनुसार ही आचरण करते हैं, अत: मृत्युसे हमें कोई भय नहीं है। हम विद्वानों तथा ब्राह्मणोंके गुण ही प्रकट करते हैं, उनके अवगुणपर दृष्टि नहीं डालते, अत: मृत्युसे हमें डर नहीं है। हम

भोजनकी सामग्रीसे यथाशक्ति पूरा अतिथि-सत्कार करते हैं और जिनके भरण-पोषणका भार हमपर है, उन्हें तृप्त करके ही अन्तमें भोजन करते हैं; इसीसे मृत्यु हमपर अपना बल नहीं दिखा सकती। हम शान्त, जितेन्द्रिय और क्षमाशील हैं। हम तीर्थयात्रा और दान करते हैं तथा पवित्र देशमें रहते हैं; इसलिये हमें मृत्युका भय नहीं है। हम सदा तेजस्वी सत्पुरुषोंका ही सङ्ग करते हैं, इसलिये हमें मृत्युका खटका नहीं है।'

इतना बताकर ऋषिने नरेशको आश्वासन देकर विदा किया। —सु० सिं० (महाभारत, वन० १८४)

नास्तिकताका कुठार

एक वैश्य था, जिसका नाम था नन्दभद्र। उसकी धर्मनिष्ठा देखकर लोग उसे साक्षात् 'धर्मावतार' कहा करते थे। वास्तवमें वह था भी वैसा ही। धर्मसम्बन्धी कोई भी विषय ऐसा न था, जिसकी उसे जानकारी न हो। वह सबका सुहृद् एवं हितैषी था। उसका पड़ोसी एक शूद्र था, जिसका नाम था सत्यव्रत। यह ठीक नन्दभद्रके विपरीत बड़ा भारी नास्तिक और दुराचारी था। यह नन्दभद्रका घोर द्वेषी था और सदा उसकी निन्दा किया करता था। वह अवसर ढूँढ़ता रहता था कि कहीं छिद्र मिले तो इसे धर्मसे गिराऊँ।

आखिर एक दिन इसका मौका भी उसे मिल गया। बेचारे नन्दभद्रके एकमात्र युवा पुत्रका देहान्त हो गया और थोड़े ही दिनों बाद उसकी धर्मपत्नी कनका भी चल बसी। नन्दभद्रको इन घटनाओंसे बड़ी चोट पहुँची। विशेषकर पत्नीके न रहनेसे गृहस्थ-धर्मके नाशकी उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। सत्यव्रत तो यही अवसर ढूँढ़ रहा था। वह कपटपूर्वक 'हाय! हाय! बड़े कष्टकी बात हुई।' इत्यादि शब्दोंसे सहानुभूतिका स्वाँग रचता नन्दभद्रके पास आया और कहने लगा—'भाई! जब आपकी भी यह दशा देखता हूँ तो मुझे यह निश्चय हो जाता है कि धर्म केवल धोखेकी टट्टी है। मैं कई वर्षोंसे आपसे एक बात कहना चाहता था, पर अवसर न आया।' नन्दभद्रके बहुत आग्रह करनेपर सत्यव्रत कहने लगा—'भाई! जबसे आपने पत्थरोंकी पूजा शुरू की, मुझे तभीसे आपके दिन बिगड़े दिखायी पड़ने लगे थे। एक लड़का था, वह भी मर गया। बेचारी साध्वी स्त्री भी चल बसी। ऐसा फल तो बुरे कर्मोंका ही होता है। नन्दभद्रजी! ईश्वर, देवता कहीं कुछ नहीं हैं। यह सब झूठ है। यदि वे होते तो किसीको कभी दिखलायी क्यों न देते? यथार्थमें यह सब दम्भी ब्राह्मणोंकी धूर्तता है। लोग पितरोंको दान देते हैं, ब्राह्मणोंको खिलाते हैं, यह सब देखकर मुझे हँसी आती है। क्या मरे हुए लोग कभी खा सकते हैं? इस जगत्का कोई निर्माता ईश्वर नहीं है। सूर्य आदिका भ्रमण, वायुका बहना, पृथ्वी, पर्वत, समुद्रोंका अस्तित्व—यह सब स्वभावसे ही है। धूर्तजन मनुष्यजन्मकी प्रशंसा करते हैं। पर सच्ची बात तो यह है कि मनुष्य-जन्म ही सर्वोपरि कष्ट है, वह तो शत्रुओंको भी न हो। मनुष्यको सैकड़ों शोकके अवसर सर्वदा आते रहते हैं। जो इस मनुष्य-शरीरसे बचे, वही भाग्यवान् है। पशु, पक्षी, कीड़े—ये सब कैसे भाग्यवान् हैं, जो सदैव स्वतन्त्र घूमा करते हैं। अधिक क्या कहूँ? पुण्य-पापकी कथा भी कोरी गप्प ही है। अतः इनकी उपेक्षा कर यथारुचि खाना-पीना और मौज उड़ाना चाहिये।'

नन्दभद्रपर इन बातोंका अब भी कोई प्रभाव न पड़ा। हँसकर उन्होंने कहा, 'भाई सत्यव्रत! आपने जो कहा कि धर्मका आचरण करनेवाले सदा दुखी रहते हैं, यह असत्य है; क्योंकि मैं पापियोंको भी दुःख-जालमें फँसा

देखता ही हूँ। वध-बन्धन, क्लेश, पुत्र-स्त्रीकी मृत्यु— यह पापियोंको भी होता है। इसलिये धर्म ही श्रेष्ठ है; क्योंकि 'यह बड़ा धर्मात्मा है, इसका लोग बड़ा आदर करते हैं,' ऐसी बात पापियोंके भाग्यमें नहीं होती। और मैं पूछता हूँ, पाप यदि बुरा नहीं है तो कोई पापी यदि आपकी स्त्री या धनका अपहरण करनेके लिये आपके घरमें घुस आये तो आप उसका विरोध क्यों करते हैं? आपने जो यह कहा कि 'व्यर्थ पत्थरकी पूजा क्यों करते हो?' सो अंधा सूर्यको कैसे देख सकता है? ब्रह्मा आदि देवता, बड़े-बड़े महात्मा, ऋषि-मुनि तथा ऐश्वर्यशाली सार्वभौम चक्रवर्ती राजा भी भगवान्‌की आराधना करते हैं। उनकी स्थापित देवमूर्तियाँ आज भी प्रत्यक्ष हैं। क्या वे सभी मूर्ख थे और एक आप ही बुद्धिमान् हैं? 'देवता नहीं हैं, वे होते तो क्या किसीको दिखलायी नहीं पड़ते?' आपके इस वाक्यको सुनकर हमें तो बड़ी हँसी आती है। पता नहीं आप कौन-से ऐसे सिद्ध हैं, जो देवतालोग भिखमंगोंकी तरह आपके दरवाजे भीख माँगने आयें। आप जो कहते हैं कि ये संसारकी सारी वस्तुएँ अपने-आप उत्पन्न हो गयी हैं, तो हम पूछते हैं कि भोजन आपकी थालीमें स्वयं बनकर क्यों नहीं अपने-आप उपस्थित हो जाता? 'ईश्वर नहीं है' यह भी बच्चोंकी-सी बात है। क्या बिना शासकके प्रजा रह सकती है? आप जो मनुष्यकी अपेक्षा अन्य सभी प्राणियोंको धन्य बतलाते हैं, यह तो मैंने आपके अतिरिक्त किसी दूसरेके मुखसे कभी सुना ही नहीं। मैं पूछता हूँ यदि ये जड, तामस, सभी अङ्गोंसे विकल अन्य प्राणी धन्य हैं तो सभी इन्द्रियों एवं साधनों तथा बुद्धि आदि वैभवोंसे सम्पन्न मनुष्य कैसे धन्य नहीं है?"

इसी प्रकार सत्यव्रतको कुछ और समझाकर नन्दभद्रजी तप करने वनमें चले गये। —जा० श०

(स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड, कुमारिकाखण्ड, ४० । ४१)

सदाचारका बल

वरुणा नदीके तटपर अरुणास्पद नामके नगरमें एक ब्राह्मण रहता था। वह बड़ा सदाचारी तथा अतिथिवत्सल था। रमणीय वनों एवं उद्यानोंको देखनेकी उसकी बड़ी इच्छा थी। एक दिन उसके घरपर एक ऐसा अतिथि आया, जो मणि-मन्त्रादिविद्याओंका ज्ञाता था और उनके प्रभावसे प्रतिदिन हजारों योजन चला जाता था। ब्राह्मणने उस सिद्ध अतिथिका बड़ा सत्कार किया। बात-चीतके प्रसंगमें सिद्धने अनेकों वन, पर्वत, नगर, राष्ट्र, नद, नदियों एवं तीर्थोंकी चर्चा चलायी। यह सुनकर ब्राह्मणको बड़ा विस्मय हुआ। उसने कहा कि मेरी भी इस पृथ्वीको देखनेकी बड़ी इच्छा है। यह सुनकर उदारचित्त आगन्तुक सिद्धने उसे पैरमें लगानेके लिये एक लेप दिया, जिसे लगाकर ब्राह्मण हिमालय पर्वतको देखने चला। उसने सोचा था कि सिद्धके कथनानुसार मैं आधे दिनमें एक हजार योजन चला जाऊँगा तथा शेष आधे दिनमें पुनः लौट आऊँगा।

अस्तु! वह हिमालयके शिखरपर पहुँच गया और वहाँकी पर्वतीय भूमिपर पैदल ही विचरना शुरू किया। बर्फपर चलनेके कारण उसके पैरोंमें लगा हुआ दिव्य लेप धुल गया। इससे उसकी तीव्रगति कुण्ठित हो गयी। अब वह इधर-उधर घूमकर हिमालयके मनोहर शिखरोंका अवलोकन करने लगा। वह स्थान सिद्ध, गन्धर्व, किन्नरोंका आवास हो रहा था। इनके विहारस्थल होनेसे उसकी रमणीयता बहुत बढ़ गयी थी। वहाँके मनोहर शिखरोंके देखनेसे उसके शरीरमें आनन्दसे रोमाञ्च हो आया।

दूसरे दिन उसका विचार हुआ कि अब घर चलें। पर अब उसे पता चला कि उसके पैरोंकी गति कुण्ठित

हो चुकी है। वह सोचने लगा—'अहो! यहाँ बर्फके पानीसे मेरे पैरका लेप धुल गया। इधर यह पर्वत अत्यन्त दुर्गम है और मै अपने घरसे हजारो योजनकी दूरीपर हूँ। अब तो घर न पहुँचनेके कारण मेरे अग्निहोत्रादि नित्य-कर्मोंका लोप होना चाहता है। यह तो मेरे ऊपर भयानक सकट आ पहुँचा। इस अवस्थामे किसी तपस्वी या सिद्ध महात्माका दर्शन हो जाता तो वे कदाचित् मेरे घर पहुँचनेका कोई उपाय बतला देते।' इसी समय उसके सामने वरूथिनी नामकी अप्सरा आयी। वह उसके रूपसे आकृष्ट हो गयी थी। उसे सामने देखकर ब्राह्मणने पूछा—'देवि! मै ब्राह्मण हूँ और अरुणास्पद नगरसे यहाँ आया हूँ। मेरे पैरमें दिव्य लेप लगा हुआ था, उसके धुल जानेसे मेरी दूरगमनकी शक्ति नष्ट हो गयी है और अब मेरे नित्यकर्मोंका लोप होना चाहता है। कोई ऐसा उपाय बतलाओ, जिससे सूर्यास्तके पूर्व ही अपने घरपर पहुँच जाऊँ।'

वरूथिनी बोली—'महाभाग! यह तो अत्यन्त रमणीय स्थान है। स्वर्ग भी यहाँसे अधिक रमणीय नहीं है। इसलिये हमलोग स्वर्गको भी छोड़कर यहीं रहते हैं। आपने मेरे मनको हर लिया है। मैं आपको देखकर कामके वशीभूत हो गयी हूँ। मैं आपको सुन्दर वस्त्र, हार, आभूषण, भोजन, अङ्गरागादि दूँगी। आप यहीं रहिये। यहाँ रहनेसे कभी बुढापा नहीं आयेगा। यह यौवनको पुष्ट करनेवाली देवभूमि है।' यों कहते-कहते वह बावली-सी हो गयी और 'मुझपर कृपा कीजिये, कृपा कीजिये' कहती हुई उसका आलिङ्गन करने लगी।

तब ब्राह्मणने 'अरी ओ दुष्टे! मेरे शरीरको न छू। जो तेरे ही ऐसा हो, वैसे ही किसी अन्य पुरुषके पास चली जा। मैं कुछ और भावसे प्रार्थना करता हूँ और तू कुछ और ही भावसे मेरे पास आती है? मूर्खे! यह सारा संसार धर्ममें प्रतिष्ठित है। सायं-प्रातः-का अग्निहोत्र, विधिपूर्वक की गयी इज्या ही विश्वको धारण करनेमे समर्थ है और मेरे उस नित्यकर्मका ही यहाँ लोप होना चाहता है। तू तो मुझे कोई ऐसा सरल उपाय बता, जिससे मैं शीघ्र अपने घर पहुँच जाऊँ।' इसपर वरूथिनी बहुत गिड़गिड़ाने लगी। उसने कहा, 'ब्राह्मण! जो आठ आत्मगुण बतलाये गये हैं, उनमे दया ही प्रधान है। आश्चर्य है, तुम धर्म-पालक बनकर भी उसकी अवहेलना कैसे कर रहे हो? कुलनन्दन! मेरी तो तुमपर कुछ ऐसी प्रीति उत्पन्न हो गयी है कि, सच मानो, अब तुमसे अलग होकर जी न सकूँगी। अब तुम कृपाकर मुझपर प्रसन्न हो जाओ।'

ब्राह्मणने कहा—'यदि सचमुच तुम्हारी मुझमे प्रीति हो तो मुझे शीघ्र कोई ऐसा उपाय बतलाओ, जिससे मैं तत्काल घर पहुँच जाऊँ।' पर अप्सराने एक न सुनी और नाना प्रकारके अनुनय-विनय तथा विलापादि-से वह उसे प्रसन्न करनेकी चेष्टा करती गयी। ब्राह्मणने अन्तमे कहा, 'वरूथिनि! मेरे गुरुजनोंने उपदेश दिया है कि परायी स्त्रीकी कदापि अभिलाषा न करे। इसलिये तू चाहे विलख या सूखकर दुबली हो जा; मै तो तेरा स्पर्श नहीं ही कर सकता, न तेरी ओर दृष्टिपात ही करता हूँ।'

यों कहकर उस महाभागने जलका स्पर्श तथा आचमन किया और गार्हपत्य अग्निको मन-ही-मन कहा—'भगवन्! आप ही सब कर्मोंकी सिद्धिके कारण हैं। आपकी ही तृप्तिसे देवता वृष्टि करते और अन्नादिकी वृद्धिमें कारण बनते हैं। अन्नसे सम्पूर्ण जगत् जीवन धारण करता है, और किसीसे नहीं। इस तरह आपसे ही जगत्की रक्षा होती है। यदि यह सत्य है तो मैं सूर्यास्तके पूर्व ही घरपर पहुँच जाऊँ। यदि मैंने कभी भी वैदिक कर्मानुष्ठानमें कालका परित्याग न किया हो तो आज घर पहुँचकर डूबनेसे पहले ही सूर्यको देखूँ। यदि मेरे मनमें पराये धन तथा परायी स्त्रीकी अभिलाषा कभी भी न हुई हो तो मेरा यह मनोरथ सिद्ध हो जाय।'

ब्राह्मणके यों कहते ही उनके शरीरमें गार्हपत्य अग्निने प्रवेश किया। फिर तो वे ज्वालाओंके बीचमें प्रकट हुए मूर्तिमान् अग्निदेवकी भाँति उस प्रदेशको प्रकाशित करने लगे और उस अप्सराके देखते-ही-देखते वे वहाँसे चले तथा एक ही क्षणमें घर पहुँच गये। घर पहुँचकर पुन. उन्होंने यथाशास्त्र सब कर्मोंका अनुष्ठान किया और बड़ी शान्ति एवं धर्म-प्रीतिसे जीवन व्यतीत किया। —जा० श० (मार्कण्डेयपुराण, अध्याय ६१)

गर्भस्थ शिशुपर माताके जीवनका गम्भीर प्रभाव पड़ता है

भक्तश्रेष्ठ प्रह्लादजीको दैत्यराज हिरण्यकशिपु भगवान्के स्मरण-भजनसे विरत करना चाहता था। उसकी धारणा थी कि 'प्रह्लाद अभी बालक है, उसे किसीने बहका दिया है। ठीक ढंगसे शिक्षा मिलनेपर उसके विचार बदल जायँगे।' इस धारणाके कारण दैत्यराजने प्रह्लादको शुक्राचार्यके पुत्र षण्ड तथा अमर्कके आश्रममें पढ़नेके लिये भेज दिया था और उन दोनों आचार्योंको आदेश दे दिया था कि वे सावधानीपूर्वक उसके बालकको दैत्योचित अर्थनीति, दण्डनीति, राजनीति आदिकी शिक्षा दें।

आचार्य जो कुछ पढ़ाते थे, उसे प्रह्लाद पढ़ लेते थे, स्मरण कर लेते थे; किंतु उसमें उनका मन नहीं लगता था। उस शिक्षाके प्रति उनकी महत्त्वबुद्धि नहीं थी। जब दोनों आचार्य आश्रमके काममें लग जाते, तब प्रह्लाद दूसरे सहपाठी दैत्य-बालकोंको अपने पास बुला लेते। एक तो वे राजकुमार थे, दूसरे उन्हें मारनेके दैत्यराजके अनेक प्रयत्न व्यर्थ हो चुके थे; इससे सब दैत्य-बालक उनका बहुत सम्मान करते थे। प्रह्लादके बुलानेपर वे खेलना छोड़कर उनके पास आ जाते और ध्यानसे उनकी बातें सुनते। प्रह्लाद उन्हें संयम, सदाचार, जीवदयाका महत्त्व बतलाते; सांसारिक भोगोंकी निस्सारता समझाकर भगवान्के भजनकी महिमा सुनाते। बालकोंको यह सब सुनकर बड़ा आश्चर्य होता।

दैत्य-बालकोंने पूछा—'प्रह्लादजी! तुम्हारी अवस्था छोटी है। तुम भी हमलोगोंके साथ ही राजभवनमें रहे हो और इन आचार्योंके पास पढ़ने आये हो। तुम्हें ये सब बातें कैसे ज्ञात हुईं?'

प्रह्लादजीने बतलाया—"भाइयो! इसके पीछे भी एक इतिहास है। मेरे चाचा हिरण्याक्षकी मृत्युके पश्चात् मेरे पिताने अपनेको अमरप्राय बनानेके लिये तपस्या करनेका निश्चय किया और वे मन्दराचलपर चले गये। उनकी अनुपस्थितिमें देवताओंने दैत्यपुरीपर आक्रमण कर दिया। दैत्य अपने नायकके अभावमें पराजित हो गये और अपने स्त्री-पुत्रादिको छोड़कर प्राण बचाकर इधर-उधर भाग गये। देवताओंने दैत्योंके सूने घरोंको लूट लिया और उनमें आग लगा दी। लूट-पाटके अन्तमें देवराज इन्द्र मेरी माता कयाधूको बन्दिनी बनाकर अमरावती ले चले। मार्गमें ही देवर्षि नारद मिले। उन्होंने देवराजको डाँटा—'इन्द्र! तुम इस परायी साध्वी नारीको क्यों पकड़े लिये जाते हो? इसे तुरंत छोड़ दो।'

"इन्द्रने कहा—'देवर्षि! इसके पेटमें दैत्यराजका बालक है। हम दैत्योंका वंश नष्ट कर देना चाहते हैं। इसका पुत्र उत्पन्न हो जाय तो उसे मैं मार डालूँगा और तब इसे छोड़ दूँगा।'

"नारदजीने बताया—'भूलते हो, देवराज! इसके गर्भमें भगवान्का महान् भक्त है। तुम्हारी शक्ति नहीं कि तुम उसका कुछ भी बिगाड़ सको।'

"देवराजका भाव तत्काल बदल गया। वे [illegible]

जोड़कर बोले—'देवर्षि क्षमा करें। मुझे पता नहीं था कि इसके गर्भमें कोई भगवद्भक्त है।' इन्द्रने मेरी माताकी परिक्रमा की। गर्भस्थ शिशुके प्रति मस्तक झुकाया और मेरी माताको छोड़कर चले गये।

"नारदजीने मेरी मातासे कहा—'बेटी! मेरे आश्रममें चलो और जबतक तुम्हारे पतिदेव तपस्यासे निवृत्त होकर न लौटें, तबतक वहीं सुखपूर्वक रहो।'

देवर्षि तो आश्रममें दिनमें एक बार आते थे, किंतु मेरी माताको वहाँ कोई कष्ट नहीं था। वह आश्रमके अन्य ऋषियोंकी सेवा करती थी। देवर्षि नारदजी उसे भगवद्भक्तिका उपदेश किया करते थे। देवर्षिका लक्ष्य मुझे उपदेश करना था। माताके गर्भमें ही वे दिव्य उपदेश मैंने सुने। बहुत दिन बीत जानेके कारण और स्त्री होनेसे घरके कामोंमें उलझनेके कारण माताको तो वे उपदेश भूल गये; किंतु देवर्षिकी कृपासे मुझे उनके उपदेश स्मरण हैं।" —सु० सिं० (श्रीमद्भागवत ७। ६-७)

दूषित अन्नका प्रभाव

महाभारतका युद्ध समाप्त हो गया था। धर्मराज युधिष्ठिर एकच्छत्र सम्राट् हो गये थे। श्रीकृष्णचन्द्रकी सम्मतिसे रानी द्रौपदी तथा अपने भाइयोंके साथ वे युद्धभूमिमें शरशय्यापर पड़े प्राणत्यागके लिये सूर्यके उत्तरायण होनेकी प्रतीक्षा करते परम धर्मज्ञ भीष्मपितामहके समीप आये थे। युधिष्ठिरके पूछनेपर भीष्मपितामह उन्हें वर्ण, आश्रम तथा राजा-प्रजा आदिके विभिन्न धर्मोंका उपदेश कर रहे थे। यह धर्मोपदेश चल ही रहा था कि रानी द्रौपदीको हँसी आ गयी।

'बेटी! तू हँसी क्यों?' पितामहने उपदेश बीचमे ही रोककर पूछा।

द्रौपदीजीने संकुचित होकर कहा—'मुझसे भूल हुई। पितामह मुझे क्षमा करें।'

पितामहको इससे संतोष होना नहीं था। वे बोले—'बेटी! कोई भी शीलवती कुलवधू गुरुजनोंके सम्मुख अकारण नहीं हँसती। तू गुणवती है, सुशीला है। तेरी हँसी अकारण हो नहीं सकती। संकोच छोड़कर तू अपने हँसनेका कारण बता।'

हाथ जोड़कर द्रौपदीजी बोलीं—'दादाजी! यह बहुत ही अभद्रताकी बात है; किंतु आप आज्ञा देते हैं तो कहनी पड़ेगी। आपकी आज्ञा मैं टाल नहीं सकती। आप धर्मोपदेश कर रहे थे तो मेरे मनमें यह बात आयी कि 'आज तो आप धर्मकी ऐसी उत्तम व्याख्या कर रहे हैं; किंतु कौरवोंकी सभामें जब दुःशासन मुझे नंगी करने लगा था, तब आपका यह धर्मज्ञान कहाँ चला गया था। मुझे लगा कि यह धर्मका ज्ञान आपने पीछे सीखा है। मनमें यह बात आते ही मुझे हँसी आ गयी, आप मुझे क्षमा करें।'

पितामहने शान्तिपूर्वक समझाया—'बेटी! इसमें क्षमा करनेकी कोई बात नहीं है। मुझे धर्मज्ञान तो उस समय भी था; परंतु दुर्योधनका अन्यायपूर्ण अन्न खानेसे मेरी बुद्धि मलिन हो गयी थी, इसीसे उस द्यूतसभामें धर्मका ठीक निर्णय करनेमें मैं असमर्थ हो गया था। परंतु अब अर्जुनके बाणोंके लगनेसे मेरे शरीरका सारा रक्त निकल गया है। दूषित अन्नसे बने रक्तके शरीरसे बाहर निकल जानेके कारण अब मेरी बुद्धि शुद्ध हो गयी है; इससे इस समय मैं धर्मका तत्त्व ठीक समझता हूँ और उसका विवेचन कर रहा हूँ।'—सु० सिं०

आर्य-कन्याका आदर्श

मद्रदेशके राजा अश्वपतिने अपनी परम सुन्दरी कन्या सावित्रीको स्वतन्त्र कर दिया था कि वह अपने योग्य पति चुन ले तो उसीसे उसका विवाह कर दिया जाय। राजाने अपने बुद्धिमान् मन्त्रीको कन्याके साथ भेज दिया था अनेक देशोंमें घूमकर राजकुमारोंको देखनेके लिये। राजा अश्वपतिने अपनी पुत्रीकी योग्यता, धर्मशीलता तथा विचारशक्तिपर विश्वास करके ही उसे यह स्वतन्त्रता दी थी और जब बहुत-से नगरोंकी यात्रा करके सावित्री लौटी, तब यह सिद्ध हो गया कि पिताने उसपर उचित भरोसा किया था। सावित्रीने न तो रूपको महत्ता दी, न बलको और न धन अथवा राज्यको ही। उसने महत्ता दी थी धर्मको। उसने शाल्वदेशके नेत्रहीन राजा द्युमत्सेनके पुत्र सत्यवान्‌को पति बनानेका निश्चय किया था, यद्यपि उस समय राजा द्युमत्सेन शत्रुओंद्वारा राज्यपर अधिकार कर लिये जानेके कारण स्त्री तथा पुत्रके साथ वनमें तपस्वी जीवन व्यतीत कर रहे थे।

संयोगवश देवर्षि नारदजी उस समय राजा अश्वपतिके यहाँ आये थे जब कि सावित्री अपनी यात्रा समाप्त करके लौटी। देवर्षिने उसका निश्चय जानकर बतलाया—'निश्चय सत्यवान् सद्‌गुणी और धर्मात्मा हैं, वे बुद्धिमान्, शूर, क्षमाशील तथा तेजस्वी हैं; किंतु वे अल्पायु हैं। आजसे ठीक एक वर्ष बाद उनकी मृत्यु हो जायगी।'

यह सुनकर राजा अश्वपतिने पुत्रीसे कहा—'बेटी! तुम और किसीको अपने पतिके रूपमें चुन लो।'

सावित्रीने नम्रतापूर्वक कहा—'पिताजी! एक बार मनसे मैंने जिनका वरण कर लिया, वे ही मेरे पति हैं। चाहे कुछ भी हो, मैं अब और किसीका वरण नहीं कर सकती। कन्याका दान एक बार दिया जाता है और आर्यकन्या एक बार ही पतिका वरण करती है।'

—सु० सिं० (महाभारत, वन० २९३-२९४)

आर्य-नारीका आदर्श

अपनी पुत्रीके दृढ़ निश्चयको देखकर धर्मात्मा नरेशने अधिक आग्रह करना उचित नहीं माना। देवर्षि नारदजीने भी सावित्रीके निश्चयकी प्रशंसा की। राजा अश्वपति कन्यादानकी सब सामग्री लेकर वनमें राजा द्युमत्सेनकी कुटियापर गये और वहाँ उन्होंने विधिपूर्वक अपनी पुत्रीका विवाह सत्यवान्‌के साथ कर दिया। विवाहकार्य समाप्त होनेपर राजा अश्वपति अपनी राजधानी लौट गये।

पिताके चले जानेपर सावित्रीने सब रत्नजटित गहने और बहुमूल्य वस्त्र उतार दिये।

जब सावित्रीने बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण उतारे और साससे नम्रतापूर्वक वल्कल वस्त्र पहननेको माँगे, तब सासने विषण्ण होकर उससे कहा—'बेटी! तुम राजकन्या हो। अपने पिताके दिये हुए वस्त्राभूषणोंको पहनो।'

सावित्रीने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'मैं आपके पुत्रकी सेविका हूँ। आप तथा मेरे पूज्य श्वशुर एवं मेरे स्वामी जैसे रहते हैं, वैसे ही मैं भी रहूँगी। उससे अधिक सुख मेरे लिये सर्वथा त्याज्य है। मैं आपकी अपेक्षा उत्तम वस्त्र एवं आभूषण कैसे पहिन सकती हूँ। मेरे लिये सच्चा आभूषण तो आपलोगोंकी सेवा ही है।'

वह वल्कल-वस्त्र पहिनकर मुनि-पत्नियोंकी भाँति रहने लगी। वह अपने शील, सदाचार, इन्द्रियसंयम, मधुर वाणी तथा सेवापरायणताके कारण सबकी स्नेह-भाजन हो गयी। सास-ससुर तथा पतिकी सेवामें वह बराबर तत्पर रहती थी।—सु० सिं०

मैं स्वेच्छासे परपुरुषका स्पर्श नहीं कर सकती

अशोकवाटिकामें श्रीसीताजीको बहुत दुखी देखकर महावीर हनुमान्‌जीने पर्वताकार शरीर धारण करके उनसे कहा—'माताजी ! आपकी कृपासे मैं पर्वत, वन, महल, चहारदीवारी और नगरद्वारसहित इस सारी लङ्कापुरी-को रावणके समेत उठाकर ले जा सकता हूँ। आप कृपया मेरे साथ शीघ्र चलकर राघवेन्द्र श्रीरामका और लक्ष्मणका शोक दूर कीजिये।'

इसके उत्तरमें सतीशिरोमणि श्रीजनककिशोरीजीने कहा—'महाकपे ! मैं तुम्हारी शक्ति और पराक्रमको जानती हूँ। परंतु मैं तुम्हारे साथ नहीं जा सकती; क्योंकि मैं पतिभक्तिकी दृष्टिसे एकमात्र भगवान् श्रीरामके सिवा अन्य किसी भी पुरुषके शरीरका स्पर्श स्वेच्छापूर्वक नहीं करना चाहती। रावण मुझे हरकर लाया था, उस समय तो मैं निरुपाय थी। उसने बलपूर्वक ऐसा किया। उस समय मैं अनाथ, असमर्थ और विवश थी। अब तो श्री-राघवेन्द्र ही पधारकर रावणको मारकर मुझे शीघ्र ले जायँ।'

कैसे आचरणसे नारी पतिको वशमें कर लेती है ?

वनवासमें पाण्डव जब काम्यक वनमें थे, तब श्री-कृष्णचन्द्र सात्यकि आदिके साथ उनसे मिलने गये थे। उस समय उनके साथ सत्यभामाजी भी थीं। एक दिन श्रीकृष्णचन्द्रकी प्रियतमा उन सत्यभामाजीने एकान्तमें द्रौपदीजीसे पूछा—'पाञ्चाली ! तुम लोकपालोंके समान तेजस्वी और वीर अपने पतियोंको कैसे संतुष्ट रखती हो ? तुम्हारे पति तुमपर कभी क्रोध नहीं करते, वे सदा तुम्हारे वशमें रहते हैं, तुम्हारा मुख देखा करते हैं—इसका क्या कारण है ? तुमने इसके लिये कोई व्रत, तप या जप किया है ? अथवा किसी मन्त्र, दवा, अञ्जन या जड़ीका प्रयोग किया है ? मुझे भी ऐसा कोई उपाय बतलाओ, जिससे मेरे स्वामी श्रीद्वारकेश मेरे वशमें रहें।'

द्रौपदीजीने कहा—'सत्यभामाजी ! तुम मुझसे यह दुष्टा स्त्रियोंकी-सी बात कैसे पूछती हो ? तुम्हारे लिये ऐसा प्रश्न करना उचित नहीं है। देखो, जब पतिको पता लगता है कि स्त्री उसे वशमें करनेके लिये मन्त्र-तन्त्रादिका प्रयोग करवाती है, तब वह उससे उसी प्रकार घबराता है जैसे लोग घरमे रहनेवाले सर्पसे डरते हैं। वह पुरुष सदा चिन्तित रहने लगता है। बहिन ! मन्त्र-तन्त्रसे पुरुष कभी स्त्रीके वशमें नहीं हो सकता। इससे उल्टे बुराई उत्पन्न होती है। वशीकरणके लोभमें पड़कर स्त्रियाँ अपने पतिको अज्ञानवश ऐसी वस्तुएँ खिला देती हैं, जिससे उनकी मृत्यु हो जाती है या वे असाध्य रोगोंके शिकार हो जाते है। भोजन या लेपमें वे ऐसी वस्तुएँ मिला देती हैं, जिनसे उनके पति जलोदर, कोढ, नपुंसकता, पागलपन आदि भयंकर रोगोंसे पीड़ित हो जाते हैं अथवा अंधे या बहिरे हो जाते हैं। धूर्तलोग ऐसी स्त्रियोंको ठगकर उनका धन ले लेते हैं, उन्हें आचरणभ्रष्ट कर देते हैं और उनके द्वारा उनके पतिको विषैली वस्तुएँ दिलवा देते हैं। स्त्रीको पतिका अनिष्ट या अप्रिय कभी नहीं करना चाहिये।'

द्रौपदीजीने आगे बताया—'सत्यभामाजी ! महात्मा पाण्डव मेरे जिन कामोंसे मुझपर प्रसन्न हैं, वे तुम्हें बतलाती हूँ। मैं अहंकार, कामवासना, क्रोध तथा दुष्ट भावोंसे दूर रहकर सदा पाण्डवों तथा उनकी अन्य पत्नियोंकी सेवा करती हूँ। कभी गर्व नहीं करती। मेरे पति जो चाहते हैं, वैसा ही कार्य करती हूँ। उनपर कभी संदेह नहीं करती और न उनसे कभी कठोर वचन ही कहती हूँ। कभी बुरे स्थानपर या बुरी संगतिमें नहीं बैठती। ऐसी दृष्टिसे कभी किसीको नहीं

देखती जिससे निन्दित विचार व्यक्त हों। पाण्डवोंके अतिरिक्त मेरे हृदयमें किसी पुरुषके लिये कभी स्थान नहीं। पाण्डवोंके भोजन किये बिना मैं भोजन नहीं करती और उनके स्नान किये बिना स्नान नहीं करती। उनके सो जानेपर ही सोती हूँ। यहाँतक कि घरके और लोगों तथा सेवकोंके खाने-पीनेसे पहले भी मैं स्नान, भोजन या शयन नहीं करती। मेरे पति बाहरसे लौटकर जब घर आते हैं, तब मैं आगेसे उठकर उनका स्वागत करती हूँ, उन्हें घरमें लाकर बैठनेको आसन देती हूँ तथा हाथ-पैर एवं मुख धोनेके लिये जल देती हूँ। घर और घरकी सभी सामग्री स्वच्छ रखती हूँ। स्वच्छताके साथ भोजन बनाकर ठीक समयपर उन्हें भोजन कराती हूँ। अन्न तथा दूसरी सामग्री यत्नके साथ भंडारमें सुरक्षित रखती हूँ। बुरे आचरणकी निन्दित स्त्रियोंके पास न बैठती हूँ न उनसे मित्रता रखती हूँ। बिना हँसीका अवसर हुए मैं हँसती नहीं। द्वारपर खड़ी नहीं रहती। घरसे सटे उपवनमें देरतक नहीं रुकती। क्रोध उत्पन्न होनेवाले अवसरोंको टाल जाती हूँ। किसी कार्यसे जब पति कहीं विदेश जाते हैं, तब उस समय मैं पुष्प-माला, सुगन्ध आदि त्याग देती हूँ। मेरे पति जो पदार्थ नहीं खाते, जिसका सेवन वे नहीं करते, उन पदार्थोंका मैं भी त्याग कर देती हूँ। पतिके पास मैं सदा पवित्र होकर, सुन्दर स्वच्छ वस्त्र पहनकर और शृङ्गार करके ही जाती हूँ। पतियोंका प्रिय और हित करना ही मेरा व्रत है।

'मेरी पूजनीया सासने अपने कुटुम्बके प्रति जो कर्तव्य मुझे बताये हैं, उनका मैं सदा पालन करती हूँ। भिक्षा देना, देव-पूजा, श्राद्ध, पर्वके दिन उत्तम भोजन बनाना, माननीय पुरुषोंकी पूजा करना तथा और भी जो अपने कर्तव्य मुझे ज्ञात हैं, उनमें कभी प्रमाद नहीं करती। विनयके भाव और पतिव्रताके नियमोंको ही अपनाये रहती हूँ। अपने पतियोंकी रुचिपर सदा दृष्टि रखकर उसके अनुकूल आचरण करती हूँ। पतियोंको कभी हीन दृष्टिसे नहीं देखती, उनसे उत्तम भोजन कभी नहीं करती और न उनसे उत्तम वस्त्राभूषण ही धारण करती। अपनी सासकी कभी निन्दा नहीं करती। उनकी सदा सेवा करती हूँ। सब काम मन लगाकर सावधानीसे करती हूँ और बड़े-बूढ़ों-की सेवामें तत्पर रहती हूँ।

'अपने पतियोंकी पूजनीय माताको मैं अपने हाथसे परोसकर भोजन कराती हूँ। उनकी सब प्रकारसे सेवा करती हूँ। कभी ऐसी बात नहीं करती, जो उन्हें बुरी लगे। पहले महाराज युधिष्ठिरके भवनमें नित्य स्वर्णके पात्रोंमें आठ हजार ब्राह्मण भोजन करते थे। इनके अतिरिक्त अट्ठासी हजार स्नातक गृहस्थ ब्राह्मणोंको महाराजकी ओरसे अन्न-वस्त्र मिलता था। एक-एक ब्राह्मणकी सेवाके लिये तीस-तीस दासियाँ नियुक्त थीं। दस सहस्र ब्रह्मचारी साधुओंको प्रतिदिन स्वर्णपात्रमें भोजन दिया जाता था। इन सब ब्राह्मणोंको भोजन कराकर, अन्न-वस्त्र देकर मैं उनकी पूजा करती थी।

'महाराज युधिष्ठिरके यहाँ एक लाख दासियाँ थीं। वे मूल्यवान् वस्त्राभूषणोंसे सज्जित रहती थीं। वे नाचती-गाती महाराजके आगे चलती थीं तथा अन्य सेवाएँ भी करती थीं। मैं उनके नाम, रूप तथा भोजनादिका सब विवरण जानती थी। किसके लिये क्या काम नियत है, किसने क्या काम किया, यह भी मुझे ज्ञात रहता था। महाराजकी सवारीमें एक लाख अश्व और एक लक्ष गज साथ निकलते थे। मुझे इनकी संख्या ज्ञात थी और मैं ही उनका सब प्रबन्ध करती थी। मैं अन्तःपुरका, सारे सेवकोंका, समस्त [illegible]-का, पशुओं तथा पशुपालोंतकका प्रबन्ध [illegible] करती थी।

'[illegible] सत्यभामा ! [illegible]

विवरण मुझे ज्ञात था और मैं ही उसकी जाँच करती थी। पाण्डवोंने राज्य और कुटुम्बकी देखभालका कार्य मुझे सौंप रक्खा था। वे निश्चिन्त होकर धर्मकर्ममें लगे रहते थे और मैं सब सुख छोड़कर दिन-रात परिश्रम करके यह भार सँभालती थी। मैं भूख-प्यास भूलकर पतियोंकी सेवामें लगी रहती थी। पतियोंकी सेवासे मेरा जी कभी नहीं ऊबता। मैं उनके सो जानेपर सोती हूँ और उनके उठनेसे पहले ही उठ जाती हूँ। पतियोंको वश करनेका मेरा उपाय यही है। ओछी स्त्रियोंके आचरणका हाल मैं नहीं जानती।'

द्रौपदीके इन वचनोंको सुनकर सत्यभामाजीने कहा—'पाञ्चाली! तुम मेरी सखी हो, इसीसे हँसीमें मैंने तुमसे यह बात पूछी थी। इसके लिये तुम दुःख या क्रोध मत करो।' —सु० सिं० (महाभारत, वन० २३३)

कीड़ेसे महर्षि मैत्रेय

भगवान् व्यास सभी जीवोंकी गति तथा भाषाको समझते हैं। एक बार जब वे कहीं जा रहे थे, तब रास्तेमें उन्होंने एक कीड़ेको बड़े वेगसे भागते हुए देखा। उन्होंने कृपा करके कीड़ेकी बोलीमें ही उससे इस प्रकार भागनेका कारण पूछा। कीड़ेने कहा—'विश्ववन्द्य मुनीश्वर! कोई बहुत बड़ी बैलगाड़ी इधर ही आ रही है। कहीं यह आकर मुझे कुचल न डाले, इसलिये तेजीसे भागा जा रहा हूँ।' इसपर व्यासदेवने कहा—'तुम तो तिर्यक् योनिमें पड़े हुए हो, तुम्हारे लिये तो मर जाना ही सौभाग्य है। मनुष्य यदि मृत्युसे डरे तो उचित है, पर तुम कीटको इस शरीरके छूटनेका इतना भय क्यों है?' इसपर कीड़ेने कहा—'महर्षे! मुझे मृत्युसे किसी प्रकारका भय नहीं है। भय इस बातका है कि इस कुत्सित कीटयोनिसे भी अधम दूसरी लाखों योनियाँ हैं, मैं कहीं मरकर उन योनियोंमें न चला जाऊँ। उनके गर्भ आदि धारण करनेके क्लेशसे मुझे डर लगता है, दूसरे किसी कारणसे मैं भयभीत नहीं हूँ।'

व्यासजीने कहा—'कीट! तुम भय न करो। मैं जबतक तुम्हें ब्राह्मणशरीरमें न पहुँचा दूँगा, तबतक सभी योनियोंसे शीघ्र ही छुटकारा दिलाता रहूँगा।' व्यासजीके यों कहनेपर वह कीड़ा पुनः मार्गमें लौट आया और रथके पहियेसे दबकर उसने प्राण त्याग दिये। तत्पश्चात् वह कौए और सियार आदि योनियोंमें जब-जब उत्पन्न हुआ, तब-तब व्यासजीने जाकर उसके पूर्वजन्मका स्मरण करा दिया। इस तरह वह क्रमशः साही, गोहा, मृग, पक्षी, चाण्डाल, शूद्र और वैश्यकी योनियोंमें जन्म लेता हुआ क्षत्रिय-जातिमें उत्पन्न हुआ। उसमें भी भगवान् व्यासने उसे दर्शन दिया। वहाँ वह प्रजापालनरूप धर्मका आचरण करते हुए थोड़े ही दिनोंमें रणभूमिमें शरीर त्यागकर ब्राह्मणयोनिमें उत्पन्न हुआ। जब वह पाँच वर्षका हुआ, तभी व्यासदेवने जाकर उसके कानमें सारस्वत-मन्त्रका उपदेश कर दिया। उसके प्रभावसे बिना ही पढ़े उसे सम्पूर्ण वेद, शास्त्र और धर्मका स्मरण हो आया। पुनः भगवान् व्यासदेवने उसे आज्ञा दी कि वह कार्तिकेयके क्षेत्रमें जाकर नन्दभद्रको आश्वासन दे। (नन्दभद्रकी कथा अन्यत्र आ चुकी है।) नन्दभद्रको यह शङ्का थी कि पापी मनुष्य भी सुखी क्यों देखे जाते हैं। इसी क्लेशसे घबराकर वे बहूदक तीर्थपर तप कर रहे थे। नन्दभद्रकी शङ्काका समाधान करते हुए इस सिद्ध सारस्वत बालकने कहा था—'पापी मनुष्य सुखी क्यों रहते हैं, यह तो बड़ा स्पष्ट है। जिन्होंने पूर्वजन्ममे तामस भावसे दान किया है, उन्होंने इस जन्ममें उसी दानका फल प्राप्त किया है; परंतु तामस भावसे जो धर्म किया जाता है, उसके फलस्वरूप लोगोंका धर्ममें अनुराग नहीं

होता और फलतः वे ही पापी तथा सुखी देखे जाते हैं। ऐसे मनुष्य पुण्य-फलको भोगकर अपने तामसिक भावके कारण नरकमें ही जाते हैं, इसमें संदेह नहीं है। इस विषयमें मार्कण्डेयजीकी कही ये बातें सर्वदा ध्यानमें रक्खी जानी चाहिये—'एक मनुष्य ऐसा है, जिसके लिये इस लोकमें तो सुखका भोग सुलभ है परंतु परलोकमें नहीं। दूसरा ऐसा है, जिसके लिये परलोकमें सुखका भोग सुलभ है किंतु इस लोकमें नहीं। तीसरा ऐसा है जो इस लोक और परलोकमें दोनों ही जगह सुख प्राप्त करता है और चौथा ऐसा है, जिसे न यहीं सुख है और न परलोकमें ही। जिसका पूर्वजन्मका किया हुआ पुण्य शेष है, उसको भोगते हुए परम सुखमें भूला हुआ जो व्यक्ति नूतन पुण्यका उपार्जन नहीं करता, उस मन्दबुद्धि एवं भाग्यहीन मानवको प्राप्त हुआ वह सुख केवल इसी लोकतक रहेगा। जिसका पूर्वजन्मोपार्जित पुण्य तो नहीं है किंतु वह तपस्या करके नूतन पुण्यका उपार्जन कर रहा है, उस बुद्धिमान्‌को परलोकमें अवश्य ही विशाल सुखका भोग उपस्थित होगा—इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं। जिसका पहलेका किया हुआ पुण्य वर्तमानमें सुखद हो रहा है और जो तपद्वारा नूतन पुण्यका उपार्जन कर रहा है, ऐसा बुद्धिमान् तो कोई-कोई ही होता है जिसे इहलोक-परलोक दोनोंमें सुख मिलता है। जिसका पहलेका भी पुण्य नहीं है और जो यहाँ भी पुण्यका उपार्जन नहीं करता, ऐसे मनुष्यको न इस लोकमें सुख मिलता है और न परलोकमें ही। ऐसे नराधमको धिक्कार है।'*

इस प्रकार नन्दभद्रको समाहित कर बालकने अपना वृत्तान्त भी बतलाया। तत्पश्चात् वह सात दिनों तक निराहार रहकर सूर्यमन्त्रका जप करता रहा और वहीं बहूदक तीर्थमें उसने उस शरीरको भी छोड़ दिया। नन्दभद्रने विधिपूर्वक उसके शवका दाह-संस्कार कराया। उसकी अस्थियाँ वहीं सागरमें डाल दी गयीं और दूसरे जन्ममें वही मैत्रेय नामक श्रेष्ठ मुनि हुआ। इनके पिताका नाम कुषारु तथा माताका नाम मित्रा था (भागवत स्कन्ध ३)। इन्होंने व्यासजीके पिता पराशरजीसे 'विष्णुपुराण' तथा 'बृहत्-पाराशर होरा-शास्त्र' नामक विशाल ज्योतिषग्रन्थका अध्ययन किया था। —जा० श०

(स्कन्दपुराण, माहे० कुमा० ४४-४६; महा०, अनुशा० ११७—११९)

नल-दमयन्तीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

आबू पर्वतके समीप पहले आहुक नामका एक भील रहता था। उसकी स्त्रीका नाम आहुआ था। वह बड़ी पतिव्रता तथा धर्मशीला थी। दोनों ही स्त्री-पुरुष बड़े शिवभक्त एवं अतिथि-सेवक थे। एक बार भगवान् शंकरने इनकी परीक्षा लेनेका विचार किया। उन्होंने एक यतिका रूप धारण किया और संध्या-समय आहुकके दरवाजेपर जाकर कहने लगे—'भील! तुम्हारा कल्याण हो, मैं आज रात भर यहीं रहना चाहता हूँ; तुम दयाकर एक रात मुझे रहनेके लिये स्थान दे दो।' इसपर भीलने कहा, 'स्वामिन्!

* अस्मिंश्च संशये प्रोक्तं मार्कण्डेयेन भूपते।

इहैवैकस्य नामुत्र अमुत्रैकस्य नो इह। इह चामुत्र चैकस्य नामुत्रैकस्य नो इह॥
पूर्वोपात्तं भवेत् पुण्यं भुक्तिर्नैवार्जयन्त्यपि। इह भोगः स वै प्रोक्तो दुर्भगस्याल्पमेधसः॥
पूर्वोपात्तं यस्य नास्ति तपोभिश्चार्जयत्यपि। परलोके तस्य भोगो धीमतः स भविष्यति॥
पूर्वोपात्तं यस्य नास्ति पुण्यं चेहापि नार्जयेत्। ततश्चेहामुत्र नापि भो धिक् तं च नराधमम्॥

(स्कं० पु० माहे० कुमारि० ४६। ९६—१००)

मेरे पास स्थान बहुत थोड़ा है, उसमें आप कैसे रह सकते हैं?' इसपर यति चलनेको ही थे कि स्त्रीने कहा—'स्वामिन्! यतिको लौटाइये नहीं, गृहस्थधर्मका विचार कीजिये; इसलिये आप दोनों तो घरके भीतर रहे, मैं अपनी रक्षाके लिये कुछ बड़े शस्त्रोंको लेकर दरवाजेपर बैठी रह जाऊँगी।' भीलने सोचा, बात यह ठीक ही कहती है, तथापि इसको बाहर रखकर मेरा घरमें रहना ठीक नहीं; क्योंकि यह अबला है। अतएव उसने यति तथा अपनी स्त्रीको घरके भीतर रक्खा और स्वयं शस्त्र धारणकर बाहर बैठ रहा। रात बीतनेपर हिंस्र पशुओंने उसपर आक्रमण किया और उसे मार डाला। प्रातः होनेपर जब यति और उसकी स्त्री बाहर आये तो उसे मरा देखा। यति इसपर बहुत दुखी हुए। पर भीलनीने कहा—'महाराज! इसमें शोक तथा चिन्ताकी क्या बात है? ऐसी मृत्यु तो बड़े भाग्यसे ही प्राप्त होती है। अब मैं भी इनके साथ सती हो जा रही हूँ। इसमें तो हम दोनोंका ही परम कल्याण हो गया।' यों कहकर चितापर अपने पतिको रखकर वह भी उसी अग्निमें प्रविष्ट हो गयी।

इसपर भगवान् शङ्कर डमरू-त्रिशूल आदि आयुधोंके साथ प्रकट हो गये। उन्होंने बार-बार उस भीलनीसे वर माँगनेको कहा, पर वह कुछ न बोलकर सर्वथा ध्यानमग्न हो गयी। इसपर भगवान्ने उसे वरदान दिया कि 'अगले जन्ममें तुम्हारा पति निषधदेशमें राजा वीरसेनका पुत्र नल होगा और तुम्हारा जन्म विदर्भदेशके राजा भीमसेनकी पुत्री दमयन्तीके रूपमें होगा। यह यति भी हंस होगा और यही तुम दोनोंका संयोग करायेगा। वहाँ तुमलोग अनन्त राज-सुखोंका सम्भोग करके अन्तमें दुर्लभ मोक्षपदको प्राप्त करोगे।'

यों कहकर वे प्रभु शङ्कर वहीं अचलेश्वर लिङ्गके रूपमें स्थित हो गये और कालान्तरमें ये ही दोनों भील-दम्पति नल-दमयन्तीके रूपमें अवतीर्ण हुए।—जा० श०

(शिवपुराण, शतरुद्रसंहिता, २८वाँ अध्याय)

अनन्यता—मैं किसी भी दूसरे गुरु-माता-पिताको नहीं जानता

माता कैकेयीकी इच्छा और पिता दशरथजीकी मूक आज्ञासे राघवेन्द्र श्रीरामचन्द्र वन जानेको तैयार हुए। उनकी वन जानेकी बात सुनकर लक्ष्मणजीने भी साथ चलनेकी आज्ञा माँगी। भगवान् श्रीरामने कहा—'भैया! जो लोग माता, पिता, गुरु और स्वामीकी सीखको स्वभावसे ही सिर चढ़ाकर उसका पालन करते हैं, उन्होंने ही जन्म लेनेका लाभ पाया है, नहीं तो जगत्में जन्म व्यर्थ है। मैं तुम्हें साथ ले जाऊँगा तो अयोध्या अनाथ हो जायगी। गुरु, माता, पिता, परिवार, प्रजा—सभीको बड़ा दुःख होगा। तुम यहाँ रहकर सबका परितोष करो। नहीं तो बड़ा दोष होगा।' श्रीरामजीकी इन बातोंको सुनकर लक्ष्मणजी व्याकुल हो गये और उन्होंने चरण पकड़कर कहा—'स्वामिन्! आपने मुझे बड़ी अच्छी सीख दी, परंतु मुझे तो अपने लिये वह असम्भव ही लगी। यह मेरी कमजोरी है। शास्त्र और नीतिके तो वे ही नरश्रेष्ठ अधिकारी हैं, जो धैर्यवान् और धर्मधुरन्धर हैं। मैं तो प्रभुके स्नेहसे पाला-पोसा हुआ छोटा बच्चा हूँ। भला, हंस भी कभी मन्दराचल या सुमेरुको उठा सकता है। मैं आपको छोड़कर किसी भी गुरु या माता-पिताको नहीं जानता। यह मैं स्वभावसे ही कहता हूँ। आप विश्वास करें। जगत्में जहाँतक स्नेह, आत्मीयता, प्रेम और विश्वासका सम्बन्ध वेदोंने बताया है, वह सब कुछ मेरे तो, बस, केवल आप ही हैं। आप दीनबन्धु हैं, अन्तस्तलकी जाननेवाले हैं। धर्म-नीतिका उपदेश तो उसे कीजिये, जिसको कीर्ति,

विभूति या सद्गति प्यारी लगती है। जो मन, वचन, कर्मसे चरणोंमें ही रत हो, कृपासिन्धु! क्या वह भी त्यागने योग्य है?'

श्रीरामभद्रका हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने लक्ष्मणजीको हृदयसे लगा लिया और सुमित्रा मैयासे आज्ञा लेकर साथ चलनेकी अनुमति दे दी।

तुम्हारे ही लिये राम वन जा रहे हैं

माता सुमित्रा अपने पुत्र लक्ष्मणका श्रीरामजीकी सेवाके लिये वन जानेका विचार सुनकर अत्यन्त प्रमुदित हो गयीं। उन्होंने जो कुछ कहा, वह सर्वथा आदर तथा अनुकरणके योग्य है। वे बोलीं—'बेटा! सीता तुम्हारी माता है, सब प्रकार स्नेह करनेवाले राम तुम्हारे पिता हैं। जहाँ सूर्य है, वहीं दिन है, इसी प्रकार जहाँ राम रहते हैं, वहीं अयोध्या है। यदि राम-सीता वन जाते हैं तो अयोध्यामें तुम्हारे लिये कोई कार्य नहीं है। ××× तुम महान् भाग्यशाली हो, तुमने मुझको भी धन्य कर दिया; बेटा! मैं तुम्हारी बलिहारी जाती हूँ। जगत्में पुत्रवती तो वही युवती है, जिसका पुत्र भगवान् श्रीराघवेन्द्रका भक्त होता है; जो रामविमुख पुत्रसे हित समझती है, उसका तो बाँझ रहना ही अच्छा था। वह तो व्यर्थ ही ब्यायी (पशु-मादाकी तरह उसने सन्तान पैदा की)। बेटा! तुम यही समझो कि बस, राम तुम्हारे ही कारण वन जाते हैं। श्रीराम-सीताके चरणोंमें सहज प्रेम होना ही समस्त सुकृतोंका महान् फल है। राग, रोष, ईर्ष्या, मद, मोह—इनके वश स्वप्नमें भी मत होना और सारे विकारोंको छोड़कर तन-मन-वचनसे सेवा करना।'

लक्ष्मणजीके शक्ति लगनेका समाचार पाकर माता सुमित्राने कहा था—'रामके काममें जीवनदान करके लक्ष्मण तो धन्य हो गया। अब शत्रुघ्न! तू जाकर अपने जीवनको सफल कर।'

धन्य माता, धन्य सौतेली माता और धन्य भगवदनुरागकी मूर्ति सुमित्रा!

मेरे समान पापोंका घर कौन ? तुम्हारा नाम याद करते ही पाप नष्ट हो जायँगे

श्रीराम-सीता-लक्ष्मण वन पधार गये। श्रीदशरथजीकी मृत्यु हो गयी। भरतजी ननिहालसे अयोध्या आये। सब समाचार सुनकर अत्यन्त मर्माहत हो गये। महामुनि वशिष्ठजी, माता कौसल्या, पुरजन, प्रजाजन—सभीने जब भरतको राजगद्दी स्वीकार करनेके लिये कहा, तब भरतजी दुखी होकर बोले—

'मुझे राजा बनाकर आप अपना भला चाहते हैं' यह बस, स्नेहके मोहसे कह रहे हैं। कैकेयीके पुत्र, कुटिलबुद्धि, रामसे विमुख और निर्लज्ज मुझ अधमके राज्यसे आप मोहवश होकर ही सुख चाहते हैं। मैं सत्य कहता हूँ, आप सुनकर विश्वास करें। राजा वही होना चाहिये, जो धर्मशील हो। आप मुझे हठ करके ज्यों ही राज्य देंगे, त्यों ही यह पृथ्वी पातालमें धँस जायगी। ('रसा रसातल जाइहि तबहीं')। मेरे समान पापोंका घर कौन होगा ('मोहि समान को पाप निवासू')। जिसके कारण श्रीसीताजी तथा श्रीरामजीको वनवास हुआ! महाराजा तो रामके बिछुड़ते ही स्वर्गको चले गये। मैं दुष्ट सारे अनर्थोंका कारण होते हुए भी होश-हवासमें ये सारी बाते सुन रहा हूँ।'

भरतजीने अपनी असमर्थता प्रकट की। वे श्रीरामचरण-दर्शनके लिये सबको साथ लेकर वनमें पहुँचे। वहाँ बहुत बातें हुईं। भरतजीके रोम-रोमसे [illegible] प्रकट हो रही थी। श्रीरामजीने उनसे कहा—

'भैया भरत ! तुम व्यर्थ ही अपने हृदयमें ग्लानि करते हो । मैं तो यह मानता हूँ कि भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों कालोंमें और स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल—तीनों लोकोंमें जितने पुण्यात्मा हैं, वे सब तुमसे नीचे हैं । जो मनसे भी तुमपर कुटिलताका आरोप करता है, उसका यह लोक और परलोक—दोनों बिगड़ जाते हैं । भाई ! तुम्हारेमें पापकी तो कल्पना करना ही पाप है । तुम इतने पुण्यजीवन हो कि तुम्हारा नाम-स्मरण करते ही सब पाप, प्रपञ्च और सारे अमङ्गलोंके समूह नष्ट हो जायँगे तथा इस लोकमें सुन्दर यश और परलोकमें सुख प्राप्त होगा—

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार ।
लोक सुजस परलोक सुखु सुमिरत नाम तुम्हार ॥

'भरत ! मैं स्वभावसे ही सत्य कहता हूँ—शिवजी साक्षी हैं, यह पृथ्वी तुम्हारी ही रक्खी रह रही है ('भरत भूमि रह राउरि राखी') ।'

धन्य भायप, धन्य प्रेम, धन्य गुणदर्शन, धन्य राम, धन्य भरत !

मैं तुम्हारा चिरऋणी—केवल आपके अनुग्रहका बल

हनुमान्‌जीके द्वारा सीताके समाचार सुनकर भगवान् श्रीराम गद्गद होकर कहने लगे—'हनुमान् ! देवता, मनुष्य, मुनि आदि शरीरधारियोंमें कोई भी तुम्हारे समान मेरा उपकारी नहीं है । मैं तुम्हारा बदलेमें उपकार तो क्या करूँ, मेरा मन तुम्हारे सामने झाँकनेमें भी सकुचाता है । बेटा ! मैंने अच्छी तरह विचारकर देख लिया—मैं कभी तुम्हारा ऋण नहीं चुका सकता ।' धन्य कृतज्ञताके आदर्श—राम स्वामी ।

हनुमान्‌ने कहा—'मेरे मालिक ! बंदरकी बड़ी मर्दानगी यही है कि वह एक डालसे दूसरी डालपर कूद जाता है । मैं जो समुद्रको लाँघ गया, लङ्कापुरीको मैंने जला दिया, राक्षसोंका वध करके रावणकी वाटिकाको उजाड़ दिया—इसमे नाथ ! मेरी कुछ भी बड़ाई नहीं है, यह सब हे राघवेन्द्र ! आपका ही प्रताप है । प्रभो ! जिसपर आपकी कृपा है, उसके लिये कुछ भी असम्भव नहीं है । आपके प्रभावसे और तो क्या, क्षुद्र रूई भी बडवानलको जला सकती है । नाथ ! मुझे तो आप कृपापूर्वक अपनी अतिसुखदायिनी अनपायिनी भक्ति दीजिये ।' धन्य निरभिमानितापूर्ण प्रभुपर निर्भरता !

सप्तर्षियोंका त्याग

बहुत पुराने समयकी बात है । एक बार पृथ्वीपर बारह वर्षोंतक वर्षा नहीं हुई । संसारमें घोर अकाल पड़ गया । सभी लोग भूखों मरने लगे । सप्तर्षि भी भूखसे व्याकुल होकर इधर-उधर भटकने लगे । घूमते-घूमते ये लोग वृषादर्भि राजाके राज्यमें गये । उनका आगमन सुनकर राजा वहाँ आया और बोला—'मुनियो ! मैं आपलोगोंको अन्न, ग्राम, घृत-दुग्धादि रस तथा तरह-तरहके रत्न दे रहा हूँ । आपलोग कृपया स्वीकार करें ।'

ऋषियोंने कहा—'राजन् ! राजाका दिया हुआ दान ऊपरसे मधुके समान मीठा जान पड़ता है, किंतु परिणाममें वह विषके समान हो जाता है । इस बातको जानते हुए भी हमलोग आपके प्रलोभनमें क्योंकर पड़ सकते हैं । ब्राह्मणोंका शरीर देवताओंका निवासस्थान है । यदि ब्राह्मण तपस्यासे शुद्ध एवं संतुष्ट रहता है तो वह सम्पूर्ण देवताओंको प्रसन्न रखता है । ब्राह्मण दिन भरमे जितना तप संग्रह करता है, उसको राजाका प्रतिग्रह क्षण भरमें इस प्रकार जला डालता है जैसे सूखे जंगलको प्रचण्ड दावानल । इसलिये आप इस दानके साथ कुशलपूर्वक रहें । जो इसे माँगें अथवा जिन्हें इसकी आवश्यकता हो, उन्हें ही यह दान दे दें ।'

यों कहकर वे दूसरे रास्तेसे आहारकी खोजमें वनमें चले गये । तदनन्तर राजाने अपने मन्त्रियोंको गूलरके फलोंमें सोना भर-भरकर ऋषियोंके मार्गमें रखवा

देनेका आदेश दिया। उनके सेवकोंने ऐसा ही किया। महर्षि अत्रिने जब उनमेंसे एकको उठाया, तब फल बड़ा वजनदार मालूम हुआ। उन्होंने कहा—'हमारी बुद्धि इतनी मन्द नहीं हुई है, हम सो नहीं रहे हैं। हमें मालूम है इनके भीतर सुवर्ण है। यदि आज हम इन्हें ले लेते हैं, तो परलोकमें हमें इसका कटु परिणाम भोगना पड़ेगा।'

यों कहकर दृढ़तापूर्वक नियमोंके पालन करनेवाले वे ऋषिगण चमत्कारपुरकी ओर चले गये। घूमते-घूमते वे मध्यपुष्करमें गये, जहाँ अकस्मात् आये हुए शुन.सख नामक परिव्राजकसे उनकी भेंट हुई। वहाँ उन्हें एक बहुत बड़ा सरोवर दिखायी दिया। उसका जल कमलोंसे ढँका हुआ था। वे सब-के-सब उस सरोवरके किनारे बैठ गये। उसी समय शुन.सखने पूछा—'महर्षियो! आप सब लोग बताइये, भूखकी पीड़ा कैसी होती है?'

ऋषियोंने कहा—'शस्त्रास्त्रोंसे मनुष्यको जो वेदना होती है, वह भी भूखके सामने मात हो जाती है। पेटकी आगसे शरीरकी समस्त नाड़ियाँ सूख जाती हैं, आँखोंके आगे अँधेरा छा जाता है, कुछ सूझता नहीं। भूखकी आग प्रज्वलित होनेपर प्राणी गूँगा, बहरा, जड, पङ्गु, भयकर तथा मर्यादाहीन हो जाता है। इसलिये अन्न ही सर्वोत्तम पदार्थ है।

'अतः अन्नदान करनेवालेको अक्षय तृप्ति और सनातन स्थिति प्राप्त होती है। चन्दन, अगर, धूप और शीतकालमे ईंधनका दान अन्नदानके सोलहवें भागके बराबर भी नहीं हो सकता। दम, दान और यम—ये तीन मुख्य धर्म हैं। इनमे भी दम विशेषतः ब्राह्मणोंका सनातन धर्म है। दम तेजको बढ़ाता है। जितेन्द्रिय पुरुष जहाँ कहीं भी रहता है, उसके लिये वही स्थान तपोवन बन जाता है। विषयासक्त मनुष्यके मनमे भी दोषोंका उद्भावन होता है; पर जो सदा शुभ कर्मोंमें ही प्रवृत्त है, उसके लिये तो घर भी तपोवन ही है। केवल शब्द-शास्त्र (व्याकरण) मे ही लगे रहनेसे मोक्ष नहीं होता; मोक्ष तो एकान्तसेवी, यम-नियमरत, ध्यानपरायण पुरुषको ही प्राप्त होता है। अङ्गोंसहित वेद भी अजितेन्द्रियको पवित्र नहीं कर सकते। जो चेष्टा अपनेको बुरी लगे, उसे दूसरेके लिये भी आचरण न करे—यही धर्मका सार है। जो परायी स्त्रीको माताके समान, पर-धनको मिट्टीके समान तथा संसारके सभी भूतोंको अपने ही समान देखता है, वही ज्ञानी है। सम्पूर्ण प्राणियोंके हितका ध्यान रखनेवाला प्राणी मोक्षको प्राप्त करता है।'

तदनन्तर ऋषियोंके हृदयमें विचार हुआ कि इस सरोवरमेंसे कुछ मृणाल निकाले जायँ। पर उस सरोवरमें प्रवेश करनेके लिये एक ही दरवाजा था और इस दरवाजेपर खड़ी थी राजा वृषादर्भिकी कृत्या, जिसे उसने अपनेको अपमानित समझकर ब्राह्मणोंद्वारा अनुष्ठान कराकर सप्तर्षियोंकी हत्याके लिये भेजा था। सप्तर्षियोंने जब उस विकराल राक्षसीको वहाँ खड़ी देखा, तब उन्होंने उसका नाम तथा वहाँ खड़ी रहनेका प्रयोजन पूछा। यातुधानी बोली—'तपस्वियो! मैं जो कोई भी होऊँ, तुम्हे मेरा परिचय पूछनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम इतना ही जान लो कि मैं इस सरोवरकी रक्षिका हूँ।'

ऋषियोंने कहा—'भद्रे! हमलोग भूखसे व्याकुल हैं। अतः तुम यदि आज्ञा दो तो हमलोग इस तालाबसे कुछ मृणाल उखाड़ लें।' यातुधानी बोली—'एक शर्तपर तुम ऐसा कर सकते हो। एक-एक आदमी आकर अपना नाम बताये और प्रवेश करे।' उसकी बात सुनकर महर्षि अत्रि यह समझ गये कि यह राक्षसी कृत्या है और हम सबको वध करनेकी इच्छासे आयी है। तथापि भूखसे व्याकुल होनेके कारण उन्होंने उत्तर दिया—'कल्याणि! पापसे त्राण करनेवालेको अरात्रि कहते हैं और उनसे बचानेवाला अत्रि कहलाता है। पापरूप मृत्युसे बचानेवाला होनेके कारण ही मैं अत्रि हूँ।' यातुधानी बोली—'तेजस्वी महर्षे! आपने जिस प्रकार अपने नामका तात्पर्य बतलाया है, वह मेरी समझमें आना कठिन है। अच्छा, आप तालाबमें उतरिये।'

इसी प्रकार वशिष्ठने कहा—'मेरा नाम वशिष्ठ है। सबसे श्रेष्ठ होनेके कारण लोग मुझे वरिष्ठ भी कहते है।' यातुधानी बोली—'मैं इस नामको याद नहीं रख सकती। आप जाइये, तालाबमें प्रवेश कीजिये।' कश्यपने कहा—'कश्य नाम है शरीरका; जो उसका पालन करता हो, वह कश्यप है। कु अर्थात् पृथ्वीपर वम—वर्षा करनेवाला सूर्य भी मेरा ही स्वरूप है—अतः मै कुवम भी हूँ। काशके फूलकी भाँति उज्ज्वल होनेसे 'काश्य' भी समझो।'

इसी प्रकार सभी ऋषियोंने अपने नाम बतलाये, किंतु वह किसीको भी ठीकसे न याद कर पायी न व्याख्या ही समझी; अन्तमें शुनःसखकी पारी आयी। उन्होंने अपना नाम बतलाते हुए कहा—'यातुधानी! इन ऋषियोंने जिस प्रकार अपना नाम बतलाया है, उस तरह मैं नहीं बता सकता। मेरा नाम शुनःसखसख (धर्म-स्वरूप मुनियोंका मित्र) समझो।'

इसपर यातुधानीने कहा—'आप कृपया अपना नाम एक बार और बतलायें।' शुनःसखने कहा—'मैंने एक बार अपना नाम बतलाया। तुम उसे याद न कर बार-बार पूछती हो; इसलिये लो, मेरे त्रिदण्डकी मारसे भस्म हो जाओ।' यों कहकर उस संन्यासीके वेषमें छिपे इन्द्रने अपने त्रिदण्डकी आड़मे गुप्त वज्रसे उसका विनाश कर डाला और सप्तर्षियोंकी रक्षा की तथा अन्तमें कहा—'मैं सन्यासी नहीं, इन्द्र हूँ। आपलोगोंकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे ही मैं यहाँ आया था। राजा वृषादर्भिकी भेजी हुई अत्यन्त क्रूर कर्म करनेवाली यातुधानी कृत्या आपलोगोंका वध करनेकी इच्छासे यहाँ आयी हुई थी। अग्निसे इसका आविर्भाव हुआ था। इसीसे मैंने यहाँ उपस्थित होकर इस राक्षसीका वध कर डाला। तपोधनो! लोभका सर्वथा परित्याग करनेके कारण अक्षय लोकोंपर आपका अधिकार हो चुका है। अब आप यहाँसे उठकर वहीं चलिये।'

अन्तमे सप्तर्षिगण इन्द्रके साथ चले गये। —जा० श०

(महाभारत, अनुशासनपर्व, अध्याय ९३; स्कन्दपुराण, नागरखण्ड, अध्याय ३२; पद्मपुराण,सृष्टिखण्ड, अध्याय १९)

तत्त्वज्ञानके श्रवणका अधिकारी

महर्षि याज्ञवल्क्य नियमित रूपसे प्रतिदिन उपनिषदोंका उपदेश करते थे। आश्रमके दूसरे विरक्त शिष्य तथा मुनिगण तो श्रोता थे ही, महाराज जनक भी प्रतिदिन वह उपदेश सुनने आते थे। महर्षि तबतक प्रवचन प्रारम्भ नहीं करते थे, जबतक महाराज जनक न आ जायँ। इससे श्रोताओंके मनमें अनेक प्रकारके संदेह उठते थे। वे संकोचके मारे कुछ कहते तो नहीं थे, किंतु मनमें सोचते रहते थे—'महर्षि शरीरकी तथा संसारकी अनित्यताका प्रतिपादन करते हैं, मानापमानको हेय बतलाते हैं, किंतु विरक्तों, ब्राह्मणों तथा मुनियोंके रहते भी राजाके आये बिना उपदेश प्रारम्भ नहीं करते।'

योगिराज याज्ञवल्क्यजीने अपने श्रोताओंका मनोभाव लक्षित कर लिया। प्रवचन प्रारम्भ होनेके पश्चात् उन्होंने अपनी योगशक्तिसे एक लीला की। आश्रमसे एक ब्रह्मचारी दौड़ा आया और उसने समाचार दिया—'वनमें अग्नि लगी है, आश्रमकी ओर लपटें बढ़ रही हैं।'

समाचार मिलते ही श्रोतागण उठे और अपनी कुटियोंकी ओर दौड़े। अपने कमण्डलु, वल्कल तथा नीवार आदि वे सुरक्षित रखने लगे। सब वस्तुएँ सुरक्षित करके वे फिर प्रवचन-स्थानपर आ बैठे। उसी समय एक राजसेवकने आकर समाचार दिया—'मिथिला-नगरमें अग्नि लगी है।'

महाराज जनकने सेवककी बातपर ध्यान ही नहीं दिया। इतनेमें दूसरा सेवक दौड़ा आया—'अग्नि राजमहलके बाहरतक जा पहुँची है।' दो क्षण नहीं बीते कि तीसरा सेवक समाचार लाया—'अग्नि अन्तःपुरतक पहुँच गयी।' महर्षि याज्ञवल्क्यने राजा जनककी ओर देखा। महाराज जनक बोले—'मिथिलानगर, राजभवन, अन्तःपुर या इस शरीरके ही जल जानेसे मेरा तो कुछ जलता नहीं। आत्मा तो अमर है। अतः आप प्रवचन बंद न करें।' अग्नि सच्ची तो थी नहीं; किंतु तत्त्वज्ञानके श्रवणका सच्चा अधिकारी कौन है, यह श्रोताओंकी समझमें आ गया।—सु० सिं०

परात्पर तत्त्वकी शिशु-लीला

नित्य प्रसन्न राम आज रो रहे हैं। माता कौसल्या उद्विग्न हो गयी हैं। उनका लाल आज किसी प्रकार शान्त नहीं होता है। वे गोदमें लेकर खड़ी हुईं, पुचकारा, थपकी दी, उछाला; किंतु राम रोते रहे। बैठकर स्तनपान करानेका प्रयत्न किया; किंतु आज तो रामललाको पता नहीं क्या हो गया है। वे बार-बार चरण उछालते हैं, कर पटकते हैं और रो रहे हैं। पालनेमें झुलानेपर भी वे चुप नहीं होते। उनके दीर्घ दृगोंसे बड़े-बड़े बिन्दु टपाटप टपक रहे हैं।

श्रीराम रो रहे हैं। सारा राजपरिवार चिन्तित हो उठा है। तीनों माताएँ व्यग्र हैं। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न—तीनों शिशु बार-बार उझकते हैं, बार-बार हाथ बढ़ाते हैं। उनके अग्रज रो क्यों रहे हैं? माताएँ अत्यन्त व्यथित हैं। अत्यन्त चिन्तित हैं—'कहीं ये तीनों भी रोने न लगें।'

'अवश्य किसीने नजर लगा दी है।' किसीने कहा, सम्भवतः किसी दासीने। अविलम्ब रथ गया महर्षि वशिष्ठके आश्रमपर। रघुकुलके तो एकमात्र आश्रय ठहरे वे तपोमूर्ति।

'श्रीराम आज ऐसे रो रहे हैं कि चुप होते ही नहीं।' महर्षिने सुना और उन ज्ञानघनके गम्भीर मुखपर मन्दस्मित आ गया। वे चुपचाप रथमें बैठ गये।

'मेरे पास क्या है। तुम्हारा नाम ही त्रिभुवनका रक्षक है, मेरी सम्पत्ति और साधन भी वही है।' महर्षिने यह बात मनमें ही कही। राजभवनमें उन्हें उत्तम आसन दिया गया था। उनके सम्मुख तीनों रानियाँ बैठी थीं। सुमित्रा और कैकेयीजीने लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नको गोदमें ले रखा था और माता कौसल्याकी गोदमें थे दो इन्दीवर-सुन्दर कुमार। महर्षिने हाथमें कुश लिया, नृसिंह-मन्त्र पढ़कर श्रीरामपर कुछ जल-सीकर डाले कुशाग्रसे।

महर्षिने हाथ बढ़ाकर श्रीरामको गोदमें ले लिया और उनके मस्तकपर हाथ रक्खा। उन नीलसुन्दरके स्पर्शसे महर्षिका शरीर पुलकित हो गया, नेत्र भर आये। उधर रामलला रुदन भूल चुके थे। उन्होंने तो एक बार महर्षिके मुखकी ओर देखा और फिर आनन्दसे किलकारी मारने लगे।

'देव! इस रघुवंशके आप कल्पवृक्ष हैं।' रानियोंने अञ्चल हाथमें लेकर भूमिपर मस्तक रक्खा महर्षिके सम्मुख।

'मुझे कृतार्थ करना था इन कृपानयनों।' महर्षिके नेत्र तो शिशु रामके विकच कमल-सुन्दर स्थिर थे।

महर्षिके बटु शिष्य एक ओर बैठे तथा अन्तःपुरकी वात्सल्यवती परिचारिकाएँ खड़ी यह मधुर दृश्य देख रही थीं।

([illegible])

सब चमार हैं

मिथिला-नरेश महाराज जनककी सभामें शास्त्रोंके मर्मज्ञ सुप्रसिद्ध विद्वानोंका समुदाय एकत्र था। अनेक वेदज्ञ ब्राह्मण थे। बहुत-से दार्शनिक मुनिगण थे। उस राजसभामें ऋषिकुमार अष्टावक्रजीने प्रवेश किया। हाथ, पैर तथा पूरा शरीर टेढ़ा! पैर रखते कहीं हैं तो पड़ता कहीं है और मुखकी आकृति तो और भी कुरूप है। उनकी इस बेढंगी सूरतको देखकर सभाके प्रायः सभी लोग हँस पड़े। अष्टावक्रजी असंतुष्ट नहीं हुए। वे जहाँ थे, वहीं खड़े हो गये और स्वय भी हँसने लगे।

महाराज जनक अपने आसनसे उठे और आगे आये। उन्होंने हाथ जोड़कर पूछा—'भगवन्! आप हँस क्यों रहे हैं?'

अष्टावक्रने पूछा—'ये लोग क्यों हँस रहे हैं?'

'हमलोग तो तुम्हारी यह अटपटी आकृति देखकर हँस रहे हैं।' एक ब्राह्मणने उत्तर दिया।

अष्टावक्रजी बोले—'राजन्! मैं चला था यह सुनकर कि जनकके यहाँ विद्वान् एकत्र हुए हैं; किंतु अब यह देखकर हँस रहा हूँ कि विद्वानोंकी परिषद्के बदले चमारोंकी सभामें आ पहुँचा हूँ। यहाँ तो सब चमार हैं।'

'भगवन्! इन विद्वानोंको आप चमार कहते हैं?' महाराज जनकने शङ्कित स्वरमें पूछा।

अष्टावक्र उसी अल्हड़पनसे बोले—'जो चमड़े और हड्डियोंको देखे-पहिचाने, वह चमार।'

समस्त विद्वानोंके मस्तक झुक गये उन ऋषिकुमारके सम्मुख। —सु० सिं०

यह सच या वह सच?

मिथिला-नरेश महाराज जनक अपने राजभवनमें शयन कर रहे थे। निद्रामें उन्होंने एक अद्भुत स्वप्न देखा—

मिथिलापर किसी शत्रु नरेशने आक्रमण कर दिया है। उसकी अपार सेनाने नगरको घेर लिया है। तुमुल संग्राम छिड़ गया उसके साथ। मिथिलाकी सेना पराजित हो गयी। महाराज जनक बंदी हुए। विजयी शत्रुने आज्ञा दी—'मैं तुम्हारे प्राण नहीं लेता; किंतु अपने सब वस्त्राभरण उतार दो और इस राज्यसे निकल जाओ।' उस नरेशने घोषणा करा दी—'जनकको जो आश्रय या भोजन देगा, उसे प्राण-दण्ड दिया जायगा।'

राजा जनकने वस्त्राभूषण उतार दिये। केवल एक छोटा वस्त्र कटिमें लपेटे वे राजभवनसे निकल पड़े। पैदल ही उन्हें राज्य-सीमासे बाहरतक जाना पड़ा। प्राण-भयसे कोई उनसे बोलतातक नहीं था। चलते-चलते पैरोंमें छाले पड़ गये। वृक्षोंके नीचे बैठ जायँ या भूखे सो रहें, कोई अपने द्वार-पर तो उनके खड़े भी होनेमें डरता था। कई दिनोंतक अन्नका एक दाना भी पेटमें नहीं गया।

जनक अब राजा नहीं थे। बिखरे केश, धूलिसे भरा शरीर, भूखसे अत्यन्त व्याकुल जनक एक भिक्षुक-जैसे थे। राज्यसे बाहर एक नगर मिला। पता लगा कि वहाँ कोई अन्न-क्षेत्र है और उसमें भूखोंको खिचड़ी दी जाती है। बड़ी आशासे जनक वहाँ पहुँचे; किंतु खिचड़ी बँट चुकी थी। अब बाँटनेवाला द्वार बंद करने जा रहा था। भूखसे चक्कर खाकर जनक बैठ गये और उनकी आँखोंसे आँसू बहने लगे। अन्न बाँटनेवाले कर्मचारीको इनकी दशापर दया आ गयी। उसने कहा—'खिचड़ी तो है नहीं; किंतु बर्तनमें उसकी कुछ खुरचन लगी है। तू कहे तो वह तुझे दे दूँ। उसमें जल जानेकी गन्ध तो आ रही है।'

जनकको तो यही वरदान जान पड़ा। उन्होंने दोनों हाथ फैला दिये। कर्मचारीने जली हुई खिचड़ीकी खुरचन उनके हाथपर रख दी! लेकिन इसी समय एक चीलने झपट्टा मार दिया। उसके पंजे लगनेसे जनकका हाथ ऐसा हिला कि सारी खुरचन कीचड़में गिर पड़ी। मारे व्यथाके जनक चिल्ला पड़े।

यहाँतक तो स्वप्न था; किंतु निद्रामें जनक सचमुच चिल्ला पड़े थे। चिल्लानेसे उनकी निद्रा तो टूट ही गयी; रानियाँ, सेवक, सेविकाएँ दौड़ आयीं उनके पास—'महाराज-को क्या हो गया?'

महाराज जनक अब आँख फाड़-फाड़कर देखते हैं चारों ओर। वे अपने सुसज्जित शयन-कक्षमें स्वर्णरत्नोंके पलगपर

दुग्धफेन-सी कोमल शय्यापर लेटे हैं । उन्हें भूख तो है ही नहीं । रानियाँ पास खड़ी हैं । सेवक-सेविकाएँ सेवामें प्रस्तुत हैं । वे अब भी मिथिला-नरेश हैं । यह सब देखकर जनक बोले—'यह सच या वह सच ?'

रानियाँ चिन्तित हो गयीं । मन्त्रियोंकी व्याकुलता बढ़ गयी । महाराज जनक, लगता था कि, पागल हो गये । वे न किसीसे कुछ कहते थे, न किसीके प्रश्नका उत्तर देते थे । उनके सम्मुख जो भी जाता था, उससे एक ही प्रश्न वे करते थे—'यह सच या वह सच ?'

चिकित्सक आये, मन्त्रज्ञ आये और भी जाने कौन-कौन आये; किंतु महाराजकी दशामें कोई परिवर्तन नहीं हुआ । अचानक ही एक दिन ऋषि अष्टावक्रजी मिथिला पधारे । उन्होंने मन्त्रियोंको आश्वासन दिया और वे महाराज जनकके समीप पहुँचे । जनकने उनसे भी वही प्रश्न किया । योगिराज अष्टावक्रजीने ध्यान करके प्रश्नके कारणका पता लगा लिया ।

अष्टावक्रजीने पूछा—'महाराज ! जब आप कटिमें एक वस्त्र-खण्ड लपेटे अन्न-क्षेत्रके द्वारपर भिक्षुकके वेशमें दोनों हाथ फैलाये खड़े थे और आपकी हथेलीपर खिचड़ीकी जली खुरचन रक्खी गयी थी, उस समय यह राजभवन, आपका यह राजवेश, ये रानियाँ, राजमन्त्री, सेवक-सेविकाएँ थीं ?'

महाराज जनक अब बोले—'भगवन् ! ये कोई उस समय नहीं थे । उस समय तो विपत्तिका मारा मैं एकाकी क्षुधित भिक्षुक मात्र था ।'

अष्टावक्रजीने फिर पूछा—'और राजन् ! [illegible] आप इस राजवेशमें राजभवनमें पलंगपर आसीन थे, तब वह अन्नक्षेत्र, उसका वह कर्मचारी, वह आपका [illegible] था, वह जली खिचड़ीकी खुरचन और वह आपकी क्षुधा थी ?'

महाराज जनक—'भगवन् ! बिल्कुल नहीं, वह कुछ भी नहीं था ।'

अष्टावक्र—'राजन् ! जो एक कालमें रहे और दूसरे कालमें न रहे, वह सत्य नहीं होता । आपके जाग्रत्‌में इस समय वह स्वप्नकी अवस्था नहीं है, इसलिये वह सच नहीं, और स्वप्नके समय यह अवस्था नहीं थी, इसलिये यह भी सच नहीं । न यह सच न वह सच ।'

जनक—'भगवन् ! तब सच क्या है ?'

अष्टावक्र—'राजन् ! जब आप भूखे अन्नक्षेत्रके द्वारपर हाथ फैलाये खड़े थे, तब वहाँ आप तो थे न ?'

जनक—'भगवन् ! मैं तो वहाँ था ।'

अष्टावक्र—'और राजन् ! इस राजभवनमें इस समय आप हैं ?'

जनक—'भगवन् ! मैं तो यहाँ हूँ ।'

अष्टावक्र—'राजन् ! जाग्रत्‌में, स्वप्नमें और सुषुप्तिमें साक्षीरूपमें भी आप रहते हैं । अवस्थाएँ बदलती हैं, किंतु उनमें उन अवस्थाओंको देखनेवाले आप नहीं बदलते । आप तो उन सबमें रहते हैं । अतः आप ही सच हैं । केवल आत्मा ही सत्य है ।' —सु० सि०

आपका राज्य कहाँतक है ?

महाराज जनकके राज्यमें एक ब्राह्मण रहता था । उससे एक बार कोई भारी अपराध बन गया । महाराज जनकने उसको अपराधके फलस्वरूप अपने राज्यसे बाहर चले जानेकी आज्ञा दी । इस आज्ञाको सुनकर ब्राह्मणने जनकसे पूछा—'महाराज ! मुझे यह बतला दीजिये कि आपका राज्य कहाँतक है ? क्योंकि तब मुझे आपके राज्यसे निकल जानेका ठीक-ठीक ज्ञान हो सकेगा ।'

महाराज जनक स्वभावतः ही विरक्त तथा ब्रह्मज्ञानमें प्रविष्ट रहते थे । ब्राह्मणके इस प्रश्नको सुनकर वे विचारने लगे तो पहले तो परम्परागत सम्पूर्ण पृथ्वीपर ही उन्हें अपना राज्य तथा अधिकार-सा दीखा । फिर मिथिला नगरीपर वह अधिकार दीखने लगा । आत्मज्ञानके [illegible] पुनः उनका अधिकार घटकर प्रजापर, फिर अपने शरीरमें आ गया, और अन्तमें कहीं भी उन्हें अपने अधिकारका भान नहीं हुआ । अन्तमें उन्होंने ब्राह्मणको अपनी सारी स्थिति समझायी और कहा कि 'किसी वस्तुपर भी मेरा अधिकार नहीं है । अतः आपकी जहाँ रहनेकी इच्छा हो, वहाँ रहिये और जो इच्छा हो, भोजन करिये ।'

इसपर ब्राह्मणको आश्चर्य हुआ और उसने उनसे पूछा—'महाराज ! आप इतने बड़े राज्यको अपने अधिकारमें रखते हुए किस तरह सब वस्तुओंसे निर्मम हो रहे हैं और क्या समझकर सारी पृथ्वीपर अधिकार [illegible] ?'

जनकने कहा—'भगवन् ! संसारके सब पदार्थ नश्वर हैं। शास्त्रानुसार न कोई अधिकारी ही सिद्ध होता है और न कोई अधिकार-योग्य वस्तु ही। अतएव मैं किसी वस्तुको अपनी कैसे समझूँ ? अब जिस बुद्धिसे सारे विश्वपर अपना अधिकार समझता हूँ, उसे सुनिये ! मैं अपने संतोषके लिये कुछ भी न कर देवता, पितर, भूत और अतिथि-सेवाके लिये करता हूँ। अतएव पृथ्वी, अग्नि, जल, वायु, आकाश और अपने मनपर भी मेरा अधिकार है।'

जनकके इन वचनोंके साथ ही ब्राह्मणने अपना चोला बदल दिया। उसका विग्रह दिव्य हो गया और बोला कि 'महाराज ! मैं धर्म हूँ। आपकी परीक्षाके लिये ब्राह्मण वेषसे आपके राज्यमें रहा तथा यहाँ आया हूँ। अब भलीभाँति समझ गया कि आप सत्त्वगुणरूप नेमियुक्त ब्रह्मप्राप्तिरूप चक्रके संचालक हैं।' —जा० श०

(महा० आश्वमेधिक० ३२ वाँ अध्याय)

संसारके सम्बन्ध भ्रममात्र हैं

शूरसेन प्रदेशमें किसी समय चित्रकेतु नामक अत्यन्त प्रतापी राजा थे। उनकी रानियोंकी तो संख्या ही करना कठिन है, किंतु संतान कोई नहीं थी। एक दिन महर्षि अङ्गिरा राजा चित्रकेतुके राजभवनमें पधारे। संतानके लिये अत्यन्त लालायित नरेशको देखकर उन्होंने एक यज्ञ कराया और यज्ञशेष हविष्यान्न राजाकी सबसे बड़ी रानी कृतद्युतिको दे दिया। जाते-जाते महर्षि कहते गये—'महाराज ! आपको एक पुत्र तो होगा; किंतु वह आपके हर्ष तथा शोक दोनोंका कारण बनेगा।'

महारानी कृतद्युति गर्भवती हुई। समयपर उन्हें पुत्र उत्पन्न हुआ। महाराज चित्रकेतुकी प्रसन्नताका पार नहीं था। पूरे राज्यमें महोत्सव मनाया गया। दीर्घकालतक संतानहीन राजाको संतान मिली थी, फलतः उनका वात्सल्य उमड़ पड़ा था। वे पुत्रके स्नेहवश बड़ी रानीके भवनमें ही प्रायः रहते थे। पुत्रवती बड़ी महारानीपर उनका एकान्त अनुराग हो गया था। फल यह हुआ कि महाराजकी दूसरी रानियाँ कुढ़ने लगीं। पतिकी उपेक्षाका उन्हें बड़ा दुःख हुआ और इस दुःखने प्रचण्ड द्वेषका रूप धारण कर लिया। द्वेषमें उनकी बुद्धि अंधी हो गयी। अपनी उपेक्षाका मूल कारण उन्हें वह नवजात बालक ही लगा। अन्तमें सबने सलाह करके उस अबोध शिशुको चुपचाप विष दे दिया। बालक मर गया। महारानी कृतद्युति और महाराज चित्रकेतु तो बालकके शवके पास कटे वृक्षकी भाँति गिरे ही, पूरे राजसदनमें क्रन्दन होने लगा।

रुदन-क्रन्दनसे आकुल उस राजभवनमें दो दिव्य विभूतियाँ पधारीं। महर्षि अङ्गिरा इस बार देवर्षि नारदके साथ आये थे। महर्षिने राजासे कहा—'राजन् ! तुम ब्राह्मणोंके और भगवान्के भक्त हो। तुमपर प्रसन्न होकर मैं तुम्हारे पास पहले आया था कि तुम्हें भगवद्दर्शनका मार्ग दिखा दूँ; किंतु तुम्हारे चित्तमें उस समय प्रबल पुत्रेच्छा देखकर मैंने तुम्हें पुत्र दिया। अब तुमने पुत्र-वियोगके दुःखका अनुभव कर लिया। यह सारा संसार इसी प्रकार दुःखमय है।'

राजा चित्रकेतु अभी शोकमग्न थे। महर्षिकी बातका मर्म वे समझ नहीं सके। वे तो उन महापुरुषोंकी ओर देखते रह गये। देवर्षि नारदने समझ लिया कि इनका मोह ऐसे दूर नहीं होगा। उन्होंने अपनी दिव्यशक्तिसे बालकके जीवको आकर्षित किया। जीवात्माके आ जानेपर उन्होंने कहा—'जीवात्मन् ! देखो, ये तुम्हारे माता-पिता अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। तुम अपने शरीरमें फिर प्रवेश करके इन्हें सुखी करो और राज्यसुख भोगो।'

सबने सुना कि जीवात्मा स्पष्ट कह रहा है—'देवर्षे ! ये मेरे किस जन्मके माता-पिता हैं ? जीवका तो कोई माता-पिता या भाई-बन्धु है नहीं। अनेक बार मैं इनका पिता रहा हूँ, अनेक बार ये मेरे। अनेक बार ये मेरे मित्र या शत्रु रहे हैं। ये सब सम्बन्ध तो शरीरके हैं। जहाँ शरीरसे सम्बन्ध छूटा, वहीं सब सम्बन्ध छूट गया। फिर तो सबको अपने ही कर्मोंके अनुसार फल भोगना है।'

जीवात्मा यह कहकर चला गया। राजा चित्रकेतुका मोह उसकी बातोंको सुनकर नष्ट हो चुका था। पुत्रके शवका अन्तिम संस्कार सम्पन्न करके वे स्वस्थचित्तसे महर्षियोंके समीप आये। देवर्षि नारदने उन्हें भगवान् शेषकी आराधनाका उपदेश किया, जिसके प्रभावसे कुछ कालमें ही उन्हें शेषजीके दर्शन हुए और वे विद्याधर हो गये। —सु० सिं०

(श्रीमद्भागवत ६। १४। १६)

संतानके मोहसे विपत्ति

किसी समय तुङ्गभद्रा नदीके किनारे एक उत्तम नगर था । वहाँ आत्मदेव नामके एक सदाचारी, कर्मनिष्ठ ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नीका नाम था धुन्धुली । वह सुन्दरी थी, सत्कुलोत्पन्न थी, घरका कार्य करनेमें निपुण थी; किंतु बहुत बोलनेवाली, कृपण, कलहप्रिय और दूसरोंके झगड़ोंमें आनन्द लेनेवाली थी । आत्मदेव अपनी पत्नीके साथ संतुष्ट थे; किंतु उन्हें इस बातका बड़ा दुःख था कि उनके कोई संतान नहीं है । उन्होंने दान-पुण्यमें अपनी सम्पत्तिका आधा भाग व्यय भी किया; किंतु कोई संतति नहीं हुई । अन्तमें दुखी होकर उन्होंने देहत्यागका निश्चय कर लिया और एक दिन चुपचाप वनमें चले गये । वनमें प्यास लगनेपर एक सरोवरसे जल पीकर वे बैठे थे कि वहीं एक संन्यासी आ गये । उन्हें जल पीकर स्थिर बैठे देख ब्राह्मण आत्मदेव उनके समीप पहुँचे और उनके चरणोंपर सिर रखकर फूट-फूटकर रोने लगे ।

सन्यासी महात्माके पूछनेपर आत्मदेवने अपने कष्टकी बात बतलायी और पुत्र-प्राप्तिका उपाय पूछा । दैवज्ञ संन्यासीने योगबलसे उनकी भाग्य-रेखा देखकर बताया—'तुम्हारे प्रारब्धमें सात जन्मोंतक पुत्र नहीं है । पुत्रप्राप्तिके मोहको छोड़ दो ! यह मोह अज्ञानसे ही है । देखो ! पुत्रके कारण महाराज सगर और राजा अङ्गको भी अत्यन्त दुःख भोगना पड़ा है । सुख तो मोहको छोड़कर भगवान्का भजन करनेमें ही है ।'

परंतु ब्राह्मण तो संतानकी इच्छासे मोहान्ध हो रहे थे । उन्होंने कहा—'यदि आपने पुत्र-प्राप्तिका उपाय न बताया तो मैं यहीं आपके सामने ही प्राण त्याग दूँगा ।'

अन्तमें विवश होकर महात्माने ब्राह्मणको एक फल देकर कहा—'क्या किया जाय, तुम्हारा दुराग्रह बलवान् है; किंतु पुत्रसे तुम्हें सुख नहीं होगा । क्योंकि प्रारब्धके विपरीत हठ करनेसे कष्ट ही मिलता है । अच्छा, यह फल ले जाकर अपनी पत्नीको खिला दो, इससे उसे पुत्र होगा । तुम्हारी पत्नी एक वर्षतक सत्य बोले, पवित्रतापूर्वक रहे, जीवोंपर दया करे, दीनोंको दान दे और केवल एक समय भोजन करे तो पुत्र धार्मिक उत्पन्न होगा ।'

महात्मा तो फल देकर चले गये और ब्राह्मणने घर आकर फल अपनी पत्नीको दे दिया । परंतु आत्मदेवकी देवीजी भी अद्भुत ही थीं । उन्होंने वह फल खाया नहीं, उल्टे अपनी सखीके सामने रोने लगी—'अरी ! [illegible] फल खा लूँ तो गर्भवती हो जाऊँगी, उससे मेरा पेट बढ़ जायगा, भूख कम हो जायगी, मैं दुर्बल हो जाऊँगी, फिर घरका कार्य कैसे होगा । कदाचित् गाँवमें डाकू आ गये तो गर्भिणी नारी कैसे भाग सकेगी । कहीं गर्भस्थ शिशु टेढ़ा हो गया तो मेरी मृत्यु ही हो जायगी । प्रसवमें भी सुना है महान् कष्ट होता है; मैं सुकुमारी उसे कैसे सहन कर सकूँगी । [illegible] असमर्थ होनेपर मेरी ननद मेरा सर्वस्व चुरा लेगी । [illegible] शौचादि नियमोंका पालन भी मेरे लिये असम्भव ही है । पुत्रके लालन-पालनमें भी स्त्रीको बड़ा दुःख होता है । मेरी समझसे तो वन्ध्या या विधवा स्त्री ही सुखी है ।' इस प्रकार कुतर्क करके ब्राह्मण-पत्नीने फल नहीं खाया ।

कुछ दिनों बाद ब्राह्मण-पत्नीकी छोटी बहिन उसके पास आयी, ब्राह्मणीने सब बातें उसे बताकर कहा—'बहिन ! ऐसी दशामें मैं क्या करूँ ?'

उसकी बहिनने कहा—'चिन्ता मत करो । मैं गर्भवती हूँ, बच्चा होनेपर उसे तुम्हें दे दूँगी । तुम मेरे पतिको धन दे देना, इससे वह तुम्हें बालक दे देंगे । तबतक तुम गर्भवतीके समान घरमें गुप्तरूपसे रहो । लोगोंमें मैं प्रसिद्ध कर दूँगी कि छः महीनेका होकर मेरा पुत्र मर गया । तुम्हारे घर प्रतिदिन आकर मैं तुम्हारे पुत्रका पालन-पोषण करूँगी । यह फल [illegible] परीक्षाके लिये गायको दे दो ।'

ब्राह्मण-पत्नीने फल तो गायको दे दिया और [illegible] दिया—'मैंने फल खा लिया ।' समयपर उसकी बहिनको पुत्र हुआ । गुप्तरूपसे उस बहिनके पतिने [illegible] ब्राह्मण-पत्नीको दे दिया । ब्राह्मणीने पतिसे [illegible] सरलतासे पुत्र हो गया ।' ब्राह्मणने आनन्दमें [illegible] बड़ी धूम-धामसे पुत्रोत्सव मनाया जाने लगा । [illegible] बालकका नाम माताके नामपर धुन्धुकारी रक्खा ।

कुछ दिनोंके बाद गायने भी एक [illegible] दिया । लोगोंको इससे बड़ा [illegible] बहुत ही सुन्दर, तेजस्वी था; किंतु उसके [illegible] थे । ब्राह्मणने उस बालकके [illegible] नाम गोकर्ण रक्खा ।

बड़े होनेपर [illegible]

विद्वान् और धार्मिक हुए; किंतु धुन्धकारी महान् दुष्ट हुआ। वह स्नान तथा दूसरी पवित्रताकी क्रियाओंसे दूर ही रहता था, अखाद्य पदार्थ उसे प्रिय थे, अत्यन्त क्रोधी था, बायें हाथसे भोजन करता था, चोर था, सबसे अकारण द्वेष रखता था, छोटे बच्चोंको उठाकर कुएँमें फेंक देता था, हत्यारा था, हाथमें सदा शस्त्र रखता था, दीनों और अंधोंको सदा पीड़ा देता रहता था, चाण्डालोंके साथ हाथमें रस्सी और साथमें कुत्ते लिये घूमा करता था। वेश्यागामी बनकर उसने सब पैतृक सम्पत्ति नष्ट कर दी और माता-पिताको पीटकर घरके बर्तन भी बेचनेको ले जाने लगा।

अब आत्मदेवको पुत्रके उत्पातका दुःख असह्य हो गया। वे दुखी होकर आत्मघात करनेको उद्यत हो गये। परंतु गोकर्णने उन्हें समझाया कि 'यह संसार ही असार है। यहाँ सुख है नहीं। सुख तो भगवान्‌का भजन करनेमें ही है।'

गोकर्णके उपदेशको स्वीकार करके आत्मदेव वनमें चले गये। वहाँ भगवद्भक्तिमें उन्होंने मन लगाया, इससे अन्तमें उन्हें भगवल्लोककी प्राप्ति हुई। इधर घरमें धुन्धकारीने माताको नित्य पीटना प्रारम्भ किया कि 'धन कहाँ छिपाकर रक्खा है, बता!' इस नित्यकी मारसे व्याकुल होकर ब्राह्मणीने कुएँमें कूदकर आत्मघात कर लिया। स्वभावसे विरक्त गोकर्ण तीर्थयात्रा करने चले गये। अब तो धुन्धकारीको स्वतन्त्रता हो गयी। पाँच वेश्याएँ उसने घरमें ही टिका लीं। चोरी, डकैती, जुआ आदिसे उनका पोषण करने लगा।

एक बार अपने कुकर्मोंसे धुन्धकारीने बहुत-सा धन एकत्र कर लिया। धनराशि देखकर वेश्याओंके मनमें लोभ आया। उन्होंने परस्पर सलाह करके एक रातमें सोते हुए धुन्धकारीको रस्सियोंसे बाँध दिया और उसके मुखपर जलते अङ्गार रखकर उसे मार डाला। फिर उसका शव गड्ढा खोदकर गाड़ दिया और सब धन लेकर वे चली गयीं।

मरकर धुन्धकारी प्रेत हुआ। तीर्थयात्रा करके जब गोकर्ण लौटे और रात्रिमें अपने घरमें सोये, तब नाना वेशोंमें प्रेत बना धुन्धकारी उन्हें डरानेका प्रयत्न करने लगा। गोकर्णकी कृपासे वह बोलनेमें समर्थ हुआ, उसके मुखसे उसकी दुर्गतिका वृत्त जानकर गोकर्णने उसे इस दुर्दशासे मुक्त करनेका वचन दिया और अन्तमें श्रीमद्भागवतका सप्ताह सुनाकर उसे प्रेतत्वसे मुक्त किया।—सु० सिं०

(पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवतमाहात्म्य ४-५)

शुकदेवजीकी समता

पिता वेदव्यासजीकी आज्ञासे श्रीशुकदेवजी आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये विदेहराज जनककी मिथिला नगरीमें पहुँचे। वहाँ खूब सजे-सजाये हाथी, घोड़े, रथ और स्त्री-पुरुषोंको देखा। पर उनके मनमें कोई विकार नहीं हुआ। महलके सामने पहली ड्योढ़ीपर पहुँचे, तब द्वारपालोंने उन्हें वहीं धूपमें रोक दिया। न बैठनेको कहा न कोई बात पूछी। वे तनिक भी खिन्न न होकर धूपमें खड़े हो गये। तीन दिन बीत गये। चौथे दिन एक द्वारपालने उन्हें सम्मानपूर्वक दूसरी ड्योढ़ीपर ठंडी छायामें पहुँचा दिया। वे वहीं आत्मचिन्तन करने लगे। उन्हें न तो धूप और अपमानसे कोई क्लेश हुआ न ठंडी छाया और सम्मानसे कोई सुख ही।

इसके बाद राजमन्त्रीने आकर उनको सम्मानके साथ सुन्दर प्रमदावनमें पहुँचा दिया। वहाँ पचास नवयुवती स्त्रियोंने उन्हें भोजन कराया और उन्हें साथ लेकर हँसती, खेलती, गाती और नाना प्रकारकी चेष्टा करती हुई प्रमदावनकी शोभा दिखाने लगीं। रात होनेपर उन्होंने शुकदेवजीको सुन्दर पलंगपर बहुमूल्य दिव्य बिछौना बिछाकर बैठा दिया। वे पैर धोकर रातके पहले भागमें ध्यान करने लगे। मध्यभागमें सोये और चौथे पहरमें उठकर फिर ध्यान करने लगे। ध्यानके समय भी पचासों युवतियाँ उन्हें घेरकर बैठ गयीं; परंतु वे किसी प्रकार भी शुकदेवजीके मनमें कोई विकार पैदा नहीं कर सकीं।

इतना होनेपर दूसरे दिन महाराज जनकने आकर उनकी पूजा की और ऊँचे आसनपर बैठाकर पाद्य, अर्घ्य और गोदान आदिसे उनका सम्मान किया। फिर स्वयं आज्ञा लेकर धरतीपर बैठ गये और उनसे बातचीत करने लगे।

बातचीतके अन्तमें जनकजीने कहा—'आप सुख-दुःख, लोभ-क्षोभ, नाच-गान, भय-भेद—सबसे मुक्त परम ज्ञानी हैं। आप अपने ज्ञानमें कमी मानते हैं, इतनी ही कमी है। आप परम विज्ञानघन होकर भी अपना प्रभाव नहीं जानते हैं।' जनकजीके बोधसे उन्हें अपने स्वरूपका पता लग गया।

शुकदेवजीका वैराग्य

एक बार व्यासजीके मनमें ब्याहकी अभिलाषा हुई। उन्होंने जाबालि मुनिसे कन्या माँगी। जाबालिने अपनी चेटिका नामकी कन्या उन्हें दे दी। चेटिकाका दूसरा नाम पिङ्गला था। कुछ दिनोंके बाद उसके गर्भमें शुकदेवजी आये। बारह वर्ष बीत गये, पर वे बाहर नहीं निकले। शुकदेवजीकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी। उन्होंने सारे वेद, वेदाङ्ग, पुराण, धर्मशास्त्र और मोक्ष-शास्त्रोंका वहीं श्रवण करके गर्भमें ही अभ्यास कर लिया। वहाँ यदि पाठ करनेमें कोई भूल होती तो शुकदेवजी गर्भमेंसे ही डाँट देते। इधर माताको भी गर्भके बढ़नेसे बड़ी पीड़ा हो रही थी। यह सब देखकर व्यासजी बड़े विस्मित हुए। उन्होंने गर्भस्थ बालकसे पूछा—'तुम कौन हो?'

शुकदेवजीने कहा—'जो चौरासी लाख योनियाँ बतायी गयी हैं, उन सबमें मैं घूम चुका हूँ। ऐसी दशामें मैं क्या बताऊँ कि कौन हूँ?'

व्यासजीने कहा—'तुम बाहर क्यों नहीं आते?'

शुकदेव—'भयंकर संसारमें भटकते-भटकते मुझे बड़ा वैराग्य हो गया है। पर मैं जानता हूँ गर्भसे बाहर आते ही वैष्णवी मायाके स्पर्शसे सारा ज्ञान-वैराग्य हवा हो जायगा। अतएव मेरा विचार इस बार गर्भमें रहकर ही योगाभ्यासमें तत्पर हो मोक्ष-सिद्धि करनेका है।

अन्तमें व्यासदेवजीके वैष्णवी मायाके न स्पर्श करनेका आश्वासन देनेपर वे किसी प्रकार गर्भसे बाहर तो आये, पर तुरंत ही वनके लिये चलने लगे। यह देख व्यासजी बोले—'बेटा! मेरे घरमें ही ठहरो। मैं तुम्हारा जातकर्म आदि संस्कार तो कर दूँ।' इसपर शुकदेवजीने कहा—'अबतक जन्म-जन्मान्तरोंमें मेरे सैकड़ों संस्कार हो चुके हैं। उन बन्धनप्रद संस्कारोंने ही मुझे भवसागरमें भटका रक्खा है। अतएव अब मुझे उनसे कोई प्रयोजन नहीं है।'

व्यासदेव—'द्विजके बालकको पहले विधिपूर्वक ब्रह्मचर्याश्रममें रहकर वेदाध्ययन करना चाहिये। तदनन्तर उसे गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यासाश्रममें प्रवेश करना चाहिये। इसके बाद ही वह मोक्षको प्राप्त होता है। अन्यथा पतन अवश्यम्भावी है।'

शुकदेव—'यदि ब्रह्मचर्यसे मोक्ष होता हो तब तो नपुंसकोंको वह सदा ही प्राप्त रहता होगा; पर देखा नहीं दीखता। यदि गृहस्थाश्रम मोक्षका साधक हो, तब तो सम्पूर्ण जगत् ही मुक्त हो जाय। यदि वानप्रस्थियोंको मोक्ष होने लगे, तब तो सभी मृग पहले मुक्त हो जायँ। यदि आपके विचारसे संन्यास-धर्मका पालन करनेवालोंको मोक्ष अवश्य मिलता हो, तब तो दरिद्रोंको पहले मोक्ष मिलना चाहिये।'

व्यासदेव—'मनुका कहना है कि गृह-गृहस्थोंके लिये लोक-परलोक दोनों ही सुखद होते हैं। गृहस्थका समन्वयात्मक संग्रह सनातन सुखदायक होता है।'

शुकदेव—'सम्भव है दैवयोगसे कभी आग भी शीत उत्पन्न कर सके, चन्द्रमासे ताप निकलने लग जाय; पर परिग्रहसे कोई सुखी हो जाय—यह तो त्रिकालमें भी सम्भव नहीं है।'

व्यासदेव—'बड़े पुण्योंसे मनुष्यका शरीर मिलता है इसे पाकर यदि कोई गृहस्थधर्मका तत्त्व ठीक-ठीक समझ जाय तो उसे क्या नहीं मिल जाता?'

शुकदेव—'जन्म होते ही मनुष्यका गर्भ-जनित ज्ञान ध्यान सब भूल जाता है। ऐसी दशामें गार्हस्थ्यमें मोक्ष तथा उससे लाभकी कल्पना तो केवल आकाशसे पुष्प तोड़नेके समान है।'

व्यासदेव—'मनुष्यका पुत्र हो या गदहेका, जब वह धूलमें लिपटा, चञ्चलगतिसे चलता और तोतली वाणी बोलता है, तब उसका शब्द लोगोंके लिये अपार आनन्दप्रद होता है।'

शुकदेव—'मुने! धूलमें लोटते हुए अपवित्र शिशुसे सुख या संतोषकी प्राप्ति सर्वथा अज्ञानमूलक ही है। उसमें सुख माननेवाले सभी अज्ञानी हैं।'

व्यासदेव—'यमलोकमें एक महाभयंकर नरक है, जिसका नाम है—'पुम्'। पुत्रहीन मनुष्य वहीं जाता है। इसलिये पुत्रकी प्रशंसा की जाती है।'

शुकदेव—'यदि पुत्रसे ही स्वर्गकी प्राप्ति हो, तब तो सूअर, कूकर और टिड्डियोंको वह [illegible]'

व्यासदेव—'पुत्रके दर्शनसे मनुष्य पितृ-ऋणसे मुक्त हो जाता है। पौत्र-दर्शनसे देव-ऋणसे मुक्त हो जाता है और प्रपौत्रके दर्शनसे उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है।'

शुकदेव—'गीध दीर्घजीवी होते हैं, वे सभी अपनी कई पीढ़ियोंको देखते हैं। पौत्र, प्रपौत्र तो सर्वथा नगण्य वस्तु हैं उनकी दृष्टिमें। पर पता नहीं उनमेंसे अबतक कितनोंको मोक्ष मिला।'

यों कहकर विरक्त शुकदेवजी वनमें चले गये।

—जा० श०

(स्कन्दपुराण, नागरखण्ड पूर्वार्ध १५०; देवीभागवत, स्कन्ध १ अ० ४-५)

तपोबल

'माँ, मुझे उतना ही मीठा दूध पिलाओ।' उपमन्यु घर आकर माँकी गोदमें बैठ गया। उसने अभी थोड़ी देर पहले अपने मामाके लड़केको दूध पीते देखा था, उसे भी थोड़ा-सा दूध मिला था।

'बेटा! हमलोग गरीब हैं, पेट भरनेके लिये घरमें अन्नका अभाव है तो दूध किस तरह मिल सकता है।' माताने हटी उपमन्युको समझाया; पर वह किसी तरह मानता ही नहीं था। बालहठ ऐसा होता ही है।

माताने दिन काटनेके लिये कुछ अन्न बटोरकर घरमें रक्खा था। उसने उसे पीसकर तथा पानीमें घोलकर उपमन्युसे कहा कि 'दूध पी लो।'

'नहीं माँ! यह तो नकली दूध है, असली दूध तो मीठा होता है।' उपमन्युने ओठ लगाते ही दूध पीना अस्वीकार कर दिया। वह मचल-मचलकर रोने लगा।

'बेटा! संसारमें हीरा, मोती, माणिक्य सब हैं; पर भाग्यसे ही उनकी प्राप्ति होती है। हमलोग अभागे हैं, इसलिये हमारे लिये असली दूध मिलना कठिन है। भगवान् शिव सर्वसमर्थ हैं, वे भोलानाथ प्रसन्न होनेपर क्षीरसागरतक दे देनेमें संकोच नहीं करते। उनकी शरणमें जानेपर ही मनोकामना पूरी हो सकती है। वे तपसे प्रसन्न होते हैं।' उपमन्युकी माँने सीख दी।

'मैं तप करूँगा, माँ! मैं अपने तपोबलसे सर्वेश्वर महेश्वरका आसन हिला दूँगा। वे कृपामय मुझे क्षीरसागर अवश्य देंगे।' उपमन्यु पलभरके लिये भी घरमें नहीं ठहर सका।

× × × ×

उपमन्युने हिमालयपर घोर तप आरम्भ किया। उसने महादेवकी प्रसन्नताके लिये अन्न-जलतकका त्याग कर दिया। उसकी तपस्यासे समस्त जगत् संतप्त हो उठा। भगवान् विष्णुने देवताओंको साथ लेकर मन्दराचलपर जाकर परम शिवसे कहा कि 'बालक उपमन्युको तपसे निवृत्तकर जगत्को आश्वस्त करना केवल आपके ही वशकी बात है।'

× × × ×

'यह अत्यन्त कठोर तप तुम्हारे लिये नहीं है, बालक!' ऐरावतसे उतरकर इन्द्रने अपना परिचय दिया।

'आपके आगमनसे यह आश्रम पवित्र हो गया!' उपमन्युने इन्द्रका स्वागत किया। शिव-चरणमें दृढ़ भक्ति माँगी।

'शिवकी प्राप्ति कठिन है। मेरा तीनों लोकोंपर अधिकार है; तुम मेरी शरणमें आ जाओ, मैं तुम्हें समस्त भोग प्रदान करूँगा।' इन्द्रने परीक्षा ली।

'इन्द्र इस प्रकार शिव-भक्तिकी निन्दा नहीं कर सकते। ऐसा लगता है कि तुम उनके वेषमें कोई दैत्य हो। मेरी तपस्यामें विघ्न डालना चाहते हो। तुम शिवनिन्दक हो; मैं तुम्हारा प्राण ले लूँगा, तुमने मेरे आराध्यकी निन्दा की है।' उपमन्यु मारनेके लिये दौड़ पड़ा, पर सहसा ठहर गया।

'तुमने अपने तपोबलसे मेरी भक्ति प्राप्त की है, मैं प्रसन्न हूँ, वत्स!' इन्द्ररूपी शिवने अभय दिया। उपमन्यु उनके चरणोंपर नतमस्तक हो गया।

'मैं तुम्हारी परीक्षा ले रहा था।' क्षीरसागर प्रकट कर चन्द्रशेखरने भक्तकी कामना पूरी की। उसे पार्वतीकी गोदमें रखकर कहा कि 'जगज्जननी तुम्हारी अम्बा हैं। मैं पिता हूँ।'

भगवतीने उसे योग-ऐश्वर्य और ब्रह्मविद्या दी। वह निहाल होकर गद्गद कण्ठसे जगत्के माता-पिताका स्तवन करने लगा। शङ्कर गिरिजासमेत अन्तर्धान हो गये। —रा० श्री०

(लिङ्गपुराण अ० १०७)

वरणीय दुःख है, सुख नहीं

सुख के माथे सिल परौ जो नाम हृदय से जाय ।
बलिहारी वा दुख की जो पल-पल नाम रटाय ॥

महाभारतका युद्ध समाप्त हो चुका था । विजयी धर्मराज सिंहासनासीन हो चुके थे । अश्वत्थामाने पाण्डवोंका वंश ही नष्ट करनेके लिये ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया; किंतु जनार्दनने पाण्डवोंकी और उत्तराके गर्भस्थ शिशुकी भी उससे रक्षा कर दी । अब वे श्रीकृष्णचन्द्र द्वारका जाना चाहते थे । इसी समय देवी कुन्ती उनके पास आयीं । वे प्रार्थना करने लगीं । बड़ी अद्भुत प्रार्थना की उन्होंने । अपनी प्रार्थनामें उन्होंने ऐसी चीज माँगी, जो कदाचित् ही कोई माँगनेका साहस करे। उन्होंने माँगा—

विपदः सन्तु नः शश्वत् तत्र तत्र जगद्गुरो ।
भवतो दर्शनं यत् स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥
(श्रीमद्भा० १ । ८ । २५)

'हे जगद्गुरो ! जीवनमें बार-बार हमपर [illegible] ही आती रहें । क्योंकि जिनका दर्शन होनेसे फिर [illegible] नहीं आता, उन आपका दर्शन तो उन ([illegible]) में ही होता है ।'

यह देवी कुन्तीका अपना अनुभव है । [illegible] विपत्तियोंमें ही बीता और विपत्तियोंमें [illegible], उनमें वे मङ्गलमय निरन्तर चित्तमें [illegible] रहते हैं, यह उन्होंने भली प्रकार अनुभव किया । [illegible] राज्य निष्कण्टक हो गया । उन्हें लगा कि [illegible] निधि अब हाथसे चली गयी । इसीसे श्यामसुन्दरसे [illegible] का वरदान माँगा उन्होंने ।

प्रमादी सुखी जीवन धिक्कारने योग्य है । [illegible] विपद्ग्रस्त जीवनका दुःखपूर्ति [illegible] स्मरण आते हैं ।—सु० सिं०   (श्रीमद्भागवत १ । ८)

स्त्रीजित होना अनर्थकारी है

दैत्यमाता दितिके दोनों पुत्र हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु मारे जा चुके थे । देवराज इन्द्रकी प्रेरणासे भगवान् विष्णुने वाराह एवं नृसिंह अवतार धारण करके उन्हें मारा था । यह स्पष्ट था कि उनका वध देवताओंकी रक्षाके लिये हुआ था । इसलिये दैत्यमाताका सारा क्रोध इन्द्रपर था । वह पुत्रशोकके कारण इन्द्रसे अत्यन्त रुष्ट थी और बराबर सोचती रहती थी कि इन्द्रको कैसे मारा जाय । परंतु उसके पास कोई उपाय नहीं था । उसके पतिदेव महर्षि कश्यप सर्वसमर्थ थे; किंतु अपने पुत्र देवताओंपर महर्षिका अधिक स्नेह था । वे भला, इन्द्रका अनिष्ट क्यों करने लगे ।

दितिने निश्चय कर लिया कि चाहे जैसे हो, महर्षि कश्यपको ही प्रसन्न करके इन्द्रके वधकी व्यवस्था उनसे करानी है । अपने अभिप्रायको उसने मनमें अत्यन्त गुप्त रक्खा और वह पतिसेवामें लग गयी । निरन्तर तत्परतासे दिति महर्षिकी सेवा करने लगी । अपनेको, चाहे जितना कष्ट हो, वह प्रसन्न बनाये रखती । रात-रात जागती, सदा महर्षिके समीप खड़ी रहती और उन्हें कब क्या आवश्यक है, यह देखती रहती । विनय एवं सेवाकी वह मूर्ति बन गयी । महर्षि कुछ भी कहें, वह मधुर वाणीसे उत्तर देती । उनकी ओर प्रेमपूर्वक देखती रहती । इस प्रकार एक [illegible] लगी रही पतिसेवामें । अपने परम तेजस्वी [illegible] उसने सेवासे वशमें कर लिया । महर्षि [illegible] प्रसन्न होकर अन्ततः एक दिन बोल उठे—'प्रिये ! मैं तुम्हारी सेवासे प्रसन्न हूँ । तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, [illegible] ।'

दिति इसी अवसरकी प्रतीक्षामें थी । उसने कहा—'[illegible] यदि आप सचमुच प्रसन्न हैं और वरदान [illegible] मैं माँगती हूँ कि आपसे मुझे इन्द्रको [illegible] पुत्र प्राप्त हो ।'

महर्षि कश्यपने [illegible] अनर्थ—अपने ही प्रिय पुत्रको मारने[illegible] उत्पन्न करना पड़ेगा । [illegible] यह अवसर । लेकिन अब तो [illegible] देनेको [illegible] अन्तीश्वर [illegible] उपाय सोचने लगे ।

'यदि तुम मेरे बताये नियमोंका [illegible] और ठीक विधिपूर्वक [illegible] पूर्ण होगी ।' कश्यपजीने [illegible] नियमोंमें तनिक भी त्रुटि हुई तो तुम्हारा [illegible]

मित्र होगा। तुम्हें पुत्र होगा; किंतु वह इन्द्रको मारनेवाला होगा या देवताओंका मित्र होगा, यह तो आज नहीं कहा जा सकता। यह तो तुम्हारे नियम-पालनपर निर्भर है।'

दितिने नियम पूछे। अत्यन्त कड़े थे नियम; किंतु वह सावधानीसे उनके पालनमें लग गयी। उसकी नियमनिष्ठा देखकर इन्द्रको भय लगा। वे उसके आश्रममें वेश बदलकर आये और उसकी सेवा करने लगे। इन्द्र सेवा तो करते थे; किंतु आये थे वे यह अवसर देखने कि कहीं नियमपालनमें दितिसे तनिक त्रुटि हो तो उनका काम बन जाय। इन्द्रको मरना नहीं था, भगवान्ने जो विश्वका विधान बनाया है, उसे कोई बदल नहीं सकता। दितिसे तनिक-सी त्रुटि हुई और फल यह हुआ कि उसके गर्भसे उन्चास मरुतोंका जन्म हुआ, जो देवताओंके मित्र तो क्या देवता ही बन गये।—सु० सिं०

(श्रीमद्भागवत ६। १८)

कामासक्तिसे विनाश

हिरण्यकशिपुके वंशमें दैत्य निकुम्भके पुत्र सुन्द और उपसुन्द अत्यन्त पराक्रमी तथा उद्धत थे। वे अपने समयमें दैत्योंके मुखिया थे। दोनों सगे भाई थे। दोनोंमें इतना अधिक प्रेम था कि 'एक प्राण दो, देह' की कहावत उनके लिये सर्वथा सार्थक थी। दोनोंकी रुचि समान थी, आचरण समान था, अभिप्राय समान थे। वे साथ ही रहते थे, साथ ही खाते-पीते, उठते-बैठते थे। एकके बिना दूसरा कहीं जाता नहीं था। वे परस्पर मधुर वाणी बोलते थे और सदा दूसरे भाईको ही सुख पहुँचाने एवं संतुष्ट करनेका प्रयत्न करते रहते थे।

सुन्द-उपसुन्द दोनों भाइयोंने अमर होनेकी इच्छासे एक साथ घोर तप प्रारम्भ किया। विन्ध्याचल पर्वतपर जाकर वे केवल वायु पीकर रहने लगे। उनके शरीरोंपर मिट्टीका ढेर जम गया। अन्तमे अपने शरीरका मांस काट-काटकर वे हवन करने लगे। जब शरीरमें केवल अस्थि रह गयी, तब दोनों हाथ ऊपर उठाये, पैरके अँगूठेके बल खड़े होकर उन्होंने तपस्या प्रारम्भ की। उनके दीर्घकालतक चलनेवाले उग्र तपसे विन्ध्य पर्वत तप्त हो उठा।

देवताओंने अनेक प्रकारसे विघ्न करना चाहा उन दोनों दैत्योंके तपमें। परंतु सब प्रकारके प्रलोभन, भय एवं छल व्यर्थ हुए। अन्तमें उनके तपसे संतुष्ट होकर ब्रह्माजी वहाँ पधारे। वरदान माँगनेको कहनेपर दोनोंने माँगा—'हम दोनों मायावी, सभी अस्त्रोंके ज्ञाता तथा अमर हो जायँ।' पर ब्रह्माजीने उन्हें अमर बनाना स्वीकार नहीं किया। अन्तमें सोचकर दोनोंने कहा—'यदि आप हमें अमरत्व नहीं दे सकते तो यही वरदान दें कि हम दोनों किसी दूसरेसे न तो पराजित हों और न मारे जायँ। हमारी मृत्यु कभी हो तो परस्पर एक दूसरेके हाथसे ही हो।' ब्रह्माजीने इसपर 'एवमस्तु' कह दिया।

दैत्योंको वरदान देकर ब्रह्माजी अपने लोकमें चले गये और वे दोनों दैत्यपुरीमें आ गये। दोनोंने त्रिलोकीके विजयका निश्चय किया। उद्योग प्रारम्भ करते ही वे विजयी हो गये। उनको जो वरदान मिला था, उसे जानकर भी देवता भला, उनसे युद्ध करनेका साहस कैसे करते। वे तो दैत्योंके आक्रमणका समाचार पाते ही स्वर्ग छोड़कर जहाँ-तहाँ भाग गये। यक्ष, राक्षस, नाग आदि सबको उन दैत्योंने जीत लिया। त्रिलोकविजयी होकर उन्होंने अपने सेवकोंको आज्ञा दे दी—'कोई यज्ञ, पूजन, वेदाध्ययन न करने पाये। जहाँ ये काम हों, उस नगरको भस्म कर दो। ऋषियोंको ढूँढ़-ढूँढ़कर नष्ट करो।'

स्वभावसे क्रूर दैत्य ऐसी आज्ञा पाकर ब्राह्मणोंका वध करते घूमने लगे। ऋषियोंके आश्रम उन्होंने जला दिये। किसी ऋषिने शाप भी दिया तो ब्रह्माजीके वरदानसे वह व्यर्थ चला गया। फल यह हुआ कि पृथ्वीपर जितने तपस्वी, वेदपाठी, जितेन्द्रिय ब्राह्मण थे, धर्मात्मा लोग थे, ऋषि थे, वे सब भयके मारे पर्वतोंकी गुफाओंमें जा छिपे। समाजमें न कहीं यज्ञ-पूजन होता था, न वेदपाठ। परंतु दैत्योंको इतनेसे संतोष नहीं हुआ। वे इच्छानुसार रूप रखनेवाले क्रूर सिंह, व्याघ्र, सर्प आदिका रूप धारण करके गुफाओंमें छिपे ऋषियोंका भी विनाश करने लगे। इस अत्याचारकी शान्तिका दूसरा कोई उपाय न देखकर ऋषिगण ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके पास पहुँचे। उसी समय देवता भी लोकपितामहके समीप अपनी विपत्ति सुनाने पहुँच गये थे।

देवताओं तथा ऋषियोंकी विपत्ति सुनकर लोकस्रष्टा ब्रह्माजीने दो क्षण विचार करके विश्वकर्माको बुलाकर एक अत्यन्त सुन्दरी नारीके निर्माणका आदेश दिया। विश्वकर्माने विश्वकी समस्त सुन्दर वस्तुओंका सारभाग लेकर एक स्त्रीका

निर्माण किया। उस नारीके शरीरका एक तिल रखने जितना भाग भी ऐसा नहीं था जो अत्यन्त आकर्षक न हो; इसलिये ब्रह्माजीने उसका नाम तिलोत्तमा रक्खा। वह इतनी सुन्दर थी कि सभी देवता और लोकपाल उसे देखते ही मोहित हो गये।

तिलोत्तमाने हाथ जोड़कर ब्रह्माजीसे पूछा—'मेरे लिये क्या आज्ञा है?' पितामह ब्रह्माजीने कहा—'तुम सुन्द-उपसुन्दके समीप जाओ और उनमें परस्पर शत्रुता हो जाय, ऐसा प्रयत्न करो।'

तिलोत्तमाने आज्ञा स्वीकार कर ली। पितामहको प्रणाम करके, देवताओंकी प्रदक्षिणा करके उसने प्रस्थान किया। सुन्द-उपसुन्द अपने अनुचरोंके साथ उस समय विन्ध्याचलके उपवनोंमें विहार कर रहे थे। वहाँ भोगकी सभी सामग्री एकत्र थी, दोनों भाई मदिरा पीकर उत्तम आसनोंपर बैठे थे। स्त्रियाँ नृत्य कर रही थीं। गायक नाना प्रकारके बाजे बजाकर गा रहे थे। बहुत-से लोग उन दोनों भाइयोंकी स्तुति कर रहे थे। तिलोत्तमा नदीके किनारे कनेरके फूल चुनती हुई वहाँ पहुँची। उसे देखते ही दोनों भाई उसपर आसक्त हो गये।

कामासक्त सुन्द और उपसुन्द एक साथ उठकर तिलोत्तमाके पास दौड़ गये। सुन्दने उसका दाहिना हाथ पकड़ा और उपसुन्दने बायाँ हाथ। दोनों उससे अनुनय-विनय करने लगे कि वह उनकी पत्नी हो जाय।

तिलोत्तमाने दोनोंकी ओर कटाक्षपूर्वक देखकर मुस्कराकर कहा—'आपलोग पहले परस्पर निर्णय कर लें कि मैं किसको वरण करूँ।'

एक नारीकी आसक्तिके कारण दोनों भाई परस्परका सौहार्द भूल गये। उनमेंसे प्रत्येक स्वयं ही उस नारीको अपनी बनाना चाहता था। एक तो मदिराका नशा था, दूसरे कामदेवने उन्हें अंधा कर दिया था। वे अपने हित-अहितको भी भूल गये। सुन्दने क्रोधपूर्वक उपसुन्दसे कहा—'यह मेरी स्त्री है। तुम्हारे लिये यह माताके समान है। इसका हाथ छोड़ दो।'

उपसुन्दने गर्जना की—'यह मेरी स्त्री है, तुम्हारी नहीं। तुम्हारे लिये यह पुत्रवधूके समान है। झटपट इससे दूर हट जाओ।'

दोनों क्रुद्ध हो उठे। काममोहित होकर उन्होंने भयानक गदाएँ उठा लीं और एक दूसरेपर प्रहार करने लगे। गदाओंके आघातसे उनका शरीर पिसकर स्थान-स्थानसे फट गया। रक्तकी धारा चलने लगी। अन्तमें दोनों ही मांसके लोथड़ोंके समान निर्जीव होकर गिर पड़े।

तिलोत्तमाका कार्य पूरा हो गया। वह स्वर्गकी श्रेष्ठ अप्सरा बन गयी। इन्द्र देवताओंके साथ फिर स्वर्गके अधीश्वर हुए।

—सु० सिं० (महाभारत, आदि० २११—२१५)

कामवश बिना विचारे प्रतिज्ञा करनेसे विपत्ति

बहुत पहले अयोध्यामें एक राजा रहते थे ऋतध्वज। महाराज रुक्माङ्गद इनके ही पुत्र थे। ये बड़े प्रतापी और धर्मात्मा थे। इनकी एक अत्यन्त पतिव्रता पत्नी थी—विन्ध्यावती। उनके गर्भसे जन्म हुआ था धर्माङ्गदका, जो पितृभक्तोंमें सर्वप्रथम तथा अन्य धर्मोंमें अपने पिताके ही तुल्य थे। महाराज रुक्माङ्गदको एकादशी-व्रत प्राणोंसे भी प्यारा था। उन्होंने अपने समस्त राज्यमें घोषणा करा दी थी कि जो एकादशी-व्रत न करेगा, वह दण्डका भागी होगा। इसलिये उनके राज्यमें आठसे लेकर अस्सी वर्षतकके सभी बालक-वृद्ध, पुरुष-स्त्री श्रद्धापूर्वक एकादशी-व्रतका अनुष्ठान करते थे। केवल कुछ रोगी, गर्भिणी स्त्रियाँ आदि इसके अपवाद थे। इस व्रतके प्रतापसे उनके समयमें कोई भी यमपुरी नहीं जाता था। यमपुरी सूनी हो गयी। यमराज इससे बड़े चिन्तित हुए। वे प्रजापति ब्रह्माके पास गये और उन्हें यमपुरीके उजाड़ होनेका तथा अपनी बेकारीका समाचार सुनाया। ब्रह्माजीने उन्हें शान्त रहनेका उपदेश दिया। यमराजके बहुत प्रयत्न करनेपर मायाकी एक मोहिनी नामकी स्त्री शिकारके लिये वनमें गये हुए राजाके पास गयी। उसने राजा रुक्माङ्गदको अपने वशमें कर लिया। राजाने उससे विवाह करना चाहा; तब उसने कहा कि 'मेरी एक शर्त यह है कि मैं जो कुछ भी कहूँ, वही आपको करना पड़ेगा।' महाराज तो मोहसे बेहोश थे ही, फिर न करनेकी तो बात ही क्या थी। उसको लेकर वे राजधानी लौटे। राजकुमार धर्माङ्गदने बड़े उत्साहके साथ दोनोंका स्वागत किया। विन्ध्यावलीने भी अपनी सौतकी सेवा आरम्भ की और बिना किसी ईर्ष्या-द्वेषके अपनेको सेविका-जैसी समझकर वह मोहिनीकी सेवामें लग गयी।

अन्तमें एकादशी भी आ गयी। राजाने ढिंढोरा पिट

जाने लगा—'कल एकादशी है; सावधान, कोई भूलसे अन्न न ग्रहण कर ले। सावधान!' मोहिनीके कानोंमें ये शब्द पहुँचे। उसने महाराजसे पूछा, 'महाराज! यह क्या है?' रुक्माङ्गदने सारी परिस्थिति बतलायी और स्वयं भी व्रत करनेके लिये तत्पर होने लगे।

मोहिनीने कहा—'महाराज, मेरी एक बात माननी होगी।'

रुक्माङ्गदने कहा—'यह तो मेरी प्रतिज्ञा ही की हुई है।'

'तब आप एकादशी-व्रत न करें।' मोहिनी बोल गयी।

महाराज तो अवाक् रह गये। उन्होंने बड़े कष्टसे कहा—'मोहिनी! मैं तुम्हारी सारी बातें तो मान सकता हूँ और मानता ही हूँ; किंतु देवि! मुझसे एकादशी-व्रत छोड़नेके लिये मत कहो। यह मेरे लिये नितान्त असम्भव है।'

मोहिनीने कहा—'यह तो हो ही नहीं सकता। आपने इस ढगकी प्रतिज्ञा की है। अतएव आप की हुई प्रतिज्ञासे कैसे टल सकते हैं।'

रुक्माङ्गदने कहा—'तुम किसी भी शर्तपर मुझे इसे करनेकी आज्ञा दो।'

मोहिनीने कहा—'यदि ऐसी ही बात है तो आप अपने हाथों धर्माङ्गदका सिर काटकर मुझे दे दीजिये।'

इसपर रुक्माङ्गद बड़े दुखी हुए। धर्माङ्गदको जब यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने अपने पिताको समझाया और वे इसके लिये तैयार हो गये। उन्होंने कहा—'मेरे लिये तो इससे बढ़कर कोई सौभाग्यका अवसर ही नहीं आ सकता।' उसकी माता रानी विन्ध्यावतीने भी इसका अनुमोदन कर दिया।

सभी तैयार हो गये। महाराजने ज्यों ही तलवार चलायी, पृथ्वी काँप उठी; साक्षात् भगवान् वहाँ आविर्भूत हो गये और उनका हाथ पकड़ लिया। वे धर्माङ्गद, महाराज तथा विन्ध्यावतीको अपने साथ ही अपने श्रीधामको ले गये।

कामके वश होकर बिना विचारे प्रतिज्ञा करनेका क्या कुफल होता है और पिता तथा पतिके लिये सुपुत्र तथा सती स्त्री क्या कर सकती है एव भगवान्की कृपा इनपर कैसे बरसती है, इसका यह ज्वलन्त उदाहरण है।—जा० श०

(बृहन्नारदीय पुराण, उत्तरभाग १—४०)

परस्त्रीमें आसक्ति मृत्युका कारण होती है

द्रौपदीके साथ पाण्डव वनवासके अन्तिम वर्ष अज्ञातवासके समयमें वेश तथा नाम बदलकर राजा विराटके यहाँ रहते थे। उस समय द्रौपदीने अपना नाम सैरन्ध्री रख लिया था और विराटनरेशकी रानी सुदेष्णाकी दासी बनकर वे किसी प्रकार समय व्यतीत कर रही थीं।

राजा विराटका प्रधान सेनापति कीचक रानी सुदेष्णाका भाई था। एक तो वह राजाका साला था, दूसरे सेना उसके अधिकारमें थी, तीसरे वह स्वयं प्रख्यात बलवान् था और उसके समान ही बलवान् उसके एक सौ पाँच भाई उसका अनुगमन करते थे। इन सब कारणोंसे कीचक निरङ्कुश तथा मदान्ध हो गया था। वह सदा मनमानी करता था। राजा विराटका भी उसे कोई भय या संकोच नहीं था। उल्टे राजा ही उससे दबे रहते थे और उसके अनुचित व्यवहारोंपर भी कुछ कहनेका साहस नहीं करते थे।

दुरात्मा कीचक अपनी बहिन रानी सुदेष्णाके भवनमें एक बार किसी कार्यवश गया। वहाँ अपूर्व लावण्यवती दासी सैरन्ध्रीको देखकर उसपर आसक्त हो गया। कीचकने नाना प्रकारके प्रलोभन सैरन्ध्रीको दिये। सैरन्ध्रीने उसे समझाया—'मैं पतिव्रता हूँ। अपने पतियोंके अतिरिक्त किसी पुरुषकी कभी कामना नहीं करती। तुम अपना पापपूर्ण विचार त्याग दो।' लेकिन कामान्ध कीचकने उसकी बातोंपर ध्यान नहीं दिया। उसने अपनी बहिन सुदेष्णाको भी प्रस्तुत कर लिया कि वे सैरन्ध्रीको उसके भवनमें भेजेंगी। रानी सुदेष्णाने सैरन्ध्रीके अस्वीकार करनेपर भी अधिकार प्रकट करते हुए डाँटकर उसे कीचकके भवनमें जाकर वहाँसे अपने लिये कुछ सामग्री लानेको भेजा। सैरन्ध्री जब कीचकके भवनमें पहुँची, तब वह दुष्ट उसके साथ बलप्रयोग करनेपर उतारू हो गया। उसे धक्का देकर वह भागी और राजसभामें पहुँची। परंतु कीचकने वहाँ पहुँचकर राजा विराटके सामने ही केश पकड़कर उसे भूमिपर पटक दिया और पैरकी एक ठोकर लगा दी। राजा विराट कुछ भी बोलनेका साहस नहीं कर सके।

सैरन्ध्री बनी द्रौपदीने देख लिया कि इस दुरात्मासे विराट उनकी रक्षा नहीं कर सकते। कीचक और भी धृष्ट हो गया। अन्तमें व्याकुल होकर रात्रिमें द्रौपदी भीमसेनके पास गयीं और रोकर उन्होंने भीमसेनसे अपनी व्यथा कही। भीमसेनने उन्हें आश्वासन दिया। दूसरे दिन

सैरन्ध्रीने भीमसेनकी सलाहके अनुसार कीचकसे प्रसन्नतापूर्वक बातें कीं और रात्रिमें उसे नाट्यशालामें आनेको कह दिया।

राजा विराटकी नाट्यशाला अन्तःपुरकी कन्याओंके नृत्य एवं संगीत सीखनेके काम आती थी। वहाँ दिनमें कन्याएँ गान-विद्याका अभ्यास करती थीं, किंतु रात्रिमें वह सूनी रहती थी। कन्याओंके विश्रामके लिये उसमें एक विशाल पलंग पड़ा था। रात्रिका अन्धकार हो जानेपर भीमसेन चुपचाप आकर नाट्यशालाके उस पलंगपर सो रहे। कामान्ध कीचक सज-धजकर वहाँ आया और अँधेरेमें पलंगपर बैठकर, भीमसेनको सैरन्ध्री समझकर उनके ऊपर उसने हाथ रक्खा। उछलकर भीमसेनने उसे नीचे पटक दिया और वे उस दुरात्माकी छातीपर चढ़ बैठे।

कीचक बहुत बलवान् था। भीमसेनसे वह भिड़ गया। दोनोंमें मल्लयुद्ध होने लगा; किंतु भीमने उसे शीघ्र पछाड़ दिया, उसका गला घोंटकर उसे मार डाला और फिर उसका मस्तक तथा हाथ पैर इतने जोरसे दबा दिये कि वे उसके धड़के भीतर घुस गये। कीचकका शरीर [illegible] लोथड़ा बन गया।

प्रातःकाल सैरन्ध्रीने ही लोगोंको दिखाया कि उसका अपमान करनेवाला कीचक किस दुर्दशाको प्राप्त हुआ। परंतु कीचकके एक-सौ पाँच भाइयोंने सैरन्ध्रीको पकड़कर बाँध लिया। वे उसे कीचकके शवके साथ [illegible] देनेके उद्देश्यसे श्मशान ले चले। सैरन्ध्री क्रन्दन करती जा रही थी। उसका विलाप सुनकर भीमसेन नगरका परकोटा कूदकर श्मशान पहुँचे। उन्होंने एक वृक्ष उखाड़कर कंधेपर उठा लिया और उसीसे कीचकके सभी भाइयोंको यमलोक भेज दिया। सैरन्ध्रीके बन्धन उन्होंने काट दिये।

अपनी कामासक्तिके कारण दुरात्मा कीचक मारा गया और पापी भाईका पक्ष लेनेके कारण उसके एक सौ पाँच भाई भी बुरी मौत मारे गये।—सु० सिं०

(महाभारत, विराट० १४—२३)

क्रोध मत करो, कोई किसीको मारता नहीं

महाराज उत्तानपादके विरक्त होकर वनमें तपस्या करनेके लिये चले जानेपर ध्रुव सम्राट् हुए। उनके सौतेले भाई उत्तम वनमें आखेट करने गये थे, भूलसे वे यक्षोंके प्रदेशमें चले गये। वहाँ किसी यक्षने उन्हें मार डाला। पुत्रकी मृत्युका समाचार पाकर उत्तमकी माता सुरुचिने प्राण त्याग दिये। भाईके वधका समाचार पाकर ध्रुवको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने यक्षोंकी अलकापुरीपर चढ़ाई कर दी।

अलकापुरीके बाहर ध्रुवका रथ पहुँचा और उन्होंने शङ्खनाद किया। बलवान् यक्ष इस चुनौतीको कैसे सहन कर लेते। वे सहस्रोंकी संख्यामें एक साथ निकले और ध्रुवपर टूट पड़े। भयंकर संग्राम प्रारम्भ हो गया। ध्रुवके हस्त-लाघव और पटुत्वका वह अद्भुत प्रदर्शन था। सैकड़ों यक्ष उनके बाणोंसे कट रहे थे। एक बार तो यक्षोंका दल भाग ही खड़ा हुआ युद्धभूमिसे। मैदान खाली हो गया। परंतु ध्रुव जानते थे कि यक्ष मायावी हैं, उनकी नगरीमें जाना उचित नहीं है। ध्रुवका अनुमान ठीक निकला। यक्षोंने माया प्रकट की। चारों ओर मानो अग्नि प्रज्वलित हो गयी। प्रलयका समुद्र दिशाओंको डुबाता उमड़ता आता दीखने लगा, शत-शत पर्वत आकाशसे स्वयं गिरने लगे और गिरने लगे उनसे अपार अस्त्र-शस्त्र; नाना प्रकारके हिंसक जीव-जन्तु भी मुख फाड़े दौड़ने लगे। परंतु ध्रुवको इसका कोई [illegible] नहीं था। मृत्यु उनका स्पर्श नहीं कर सकती थी, वे [illegible] थे। उन्होंने नारायणास्त्रका संधान किया। यक्षोंकी माया दिव्यास्त्रके तेजसे ही ध्वस्त हो गयी। उस दिव्यास्त्रसे [illegible] लक्ष बाण प्रकट हो गये और वे यक्षोंको घासके [illegible] काटने लगे।

यक्ष उपदेवता हैं, अमानव होनेसे [illegible] हैं, मायावी हैं; किंतु उन्हें आज ऐसे मानवसे [illegible] था जो नारायणका कृपापात्र था, मृत्युसे परे था। [illegible] उसकी क्रोधाग्निमें पतंगोंके समान भस्म हो रहे थे। परंतु यह संहार उचित नहीं था। प्रजापति मनु [illegible] प्रकट हो गये। उन्होंने पौत्र ध्रुवको सम्बोधित किया—'ध्रुव! [illegible] अस्त्रका उपसंहार करो। तुम्हारे लिये यह [illegible] अनुचित है। तुमने तो भगवान् नारायणकी [illegible] है। वे सर्वेश्वर तो प्राणियोंपर कृपा करनेसे प्रसन्न होते हैं। [illegible] मोहके कारण परस्पर मनुष्य तो पशु करते हैं। [illegible] तो तुमने कितने निरपराध यक्षोंको मारा है। [illegible] शंकरके प्रियजन यक्षराज कुबेरसे [illegible] मत करो। [illegible] लोकेश्वरका क्रोध [illegible] होने [illegible] प्रसन्न करो।'

ध्रुवने पितामहको प्रणाम किया और उनकी आज्ञा स्वीकार करके अस्त्रका उपसंहार कर लिया। ध्रुवका क्रोध शान्त हो गया है, यह जानकर धनाधीश कुबेरजी स्वयं वहाँ प्रकट हो गये और बोले—'ध्रुव! चिन्ता मत करो। न तुमने यक्षोंको मारा है न यक्षोंने तुम्हारे भाईको मारा है। प्राणीकी मृत्यु तो उसके प्रारब्धके अनुसार कालकी प्रेरणासे ही होती है। मृत्युका निमित्त दूसरेको मानकर लोग अज्ञानवश दुखी तथा रोषान्ध होते हैं। तुम सत्पात्र हो, तुमने भगवान्‌को प्रसन्न किया है; अतः मैं भी तुम्हें वरदान देना चाहता हूँ। तुम जो चाहो, माँग लो।'

ध्रुवको माँगना क्या था! क्या अलभ्य था, उन्हें जो कुबेरसे माँगते? लेकिन सच्चा हृदय प्रभुकी भक्तिसे कभी तृप्त नहीं होता। ध्रुवने माँगा—'आप मुझे आशीर्वाद दें कि श्रीहरिके चरणोंमें मेरा अनुराग हो।'

कुबेरजीने 'एवमस्तु' कहकर सम्मानपूर्वक ध्रुवको विदा किया।—सु० सिं० (श्रीमद्भागवत ४। १०-१२)

अभिमानका पाप (ब्रह्माजीका दर्पभङ्ग)

हरिमाया कर अमित प्रभावा। बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा॥

ब्रह्माजीके मोह तथा गर्वभञ्जनकी भागवत, ब्रह्मवैवर्त, शिव, स्कन्द आदि पुराणोंमें बहुत-सी कथाएँ आती हैं। अकेले ब्रह्मवैवर्तपुराणमें एकत्र कृष्णजन्मखण्डके १४८ वें अध्यायमें ही उनके गर्वभञ्जनकी कई कथाएँ हैं। एक तो उनमेंसे अत्यन्त विचित्र है। कथा है कि एक बार स्वर्गकी अप्सरा मोहिनी ब्रह्माजीपर अत्यन्त आसक्त हो गयी। वह एकान्तमें उनके पास गयी और उनके आसनपर ही बैठकर उनसे प्रेमदानकी प्रार्थना करने लगी। ब्रह्माजीको उस समय भगवान् स्मरण आये और भगवत्कृपासे उनका मन निर्विकार रहा और वे मोहिनीको ज्ञानकी बातें समझाने लगे। पर वह इसे न सुन अवाञ्छनीय चेष्टा करने लगी। ब्रह्माजीने भगवान्‌का स्मरण किया और तबतक सप्तर्षिगण सनकादिके साथ वहाँ पहुँच गये। पर दुर्दैववशात् अब ब्रह्माजीको अपनी क्रिया, भक्ति तथा शक्तिका गर्व हो गया। ऋषियोंने जब मोहिनीके एकासनपर बैठनेका कारण पूछा, तब ब्रह्माजीने गर्वपूर्वक हँसकर कहा—'यह नाचते-नाचते थककर पुत्रीके भावसे मेरे पास बैठ गयी है।' ऋषिलोग समझ गये और थोड़ी देर बाद हँसते हुए चले गये। अब मोहिनीका क्रोध जाग्रत् हुआ। उसने शाप दिया—'तुम्हें अपनी निष्कामता-का गर्व है और मुझ शरणागताका तुमने उपहास किया है; इसलिये न तो तुम्हारी संसारमें कहीं पूजा होगी और न तुम्हारा यह गर्व ही रहेगा।' वह तुरंत वहाँसे चलती बनी।

अब ब्रह्माजीको अपनी भूलका पता चला। वे दौड़े हुए भगवान् जनार्दनकी शरणमें वैकुण्ठ पहुँचे। वे अभी अपनी गाथा तथा शापादिकी बात सुना ही रहे थे, तबतक द्वारपालने प्रभुसे निवेदन किया—'प्रभो! बाहर दरवाजेपर अमुक ब्रह्माण्डके स्वामी अष्टमुख ब्रह्मा आये हैं और श्रीचरणोंका दर्शन करना चाहते हैं।' प्रभुकी अनुमति हुई। अष्टमुख ब्रह्माने आकर बड़ी श्रद्धासे अत्यन्त दिव्य स्तुति सुनायी। ब्रह्माजीको इन ब्रह्माके सामने अपनी विद्या, बुद्धि, शक्ति, भक्ति—सब नगण्य दिखी। तदनन्तर ये आठ मुखके ब्रह्माजी चले गये। इनके जाते ही दूसरे ही क्षण द्वारपालने कहा—'प्रभो! अमुक दरवाजेपर अमुक ब्रह्माण्डके अधिनायक षोडशमुख ब्रह्मा उपस्थित हैं तथा श्रीचरणोंका दर्शन करना चाहते हैं।' भगवदाज्ञासे वे भी आये और उन्होंने पूर्वोक्त ब्रह्मासे भी उच्च श्रेणीकी स्तुति सुनायी। इसी प्रकार एक-एक करके षोडशमुखसे लेकर सहस्रमुख ब्रह्मातक पहुँचते गये और उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर शब्दावलियोंमें अपना स्तोत्र सुनाते गये। उनकी योग्यता और निरभिमानता देखकर अपनेको प्रभुके तुल्य ही माननेवाले ब्रह्माजीका गर्व गलकर पानी हो गया। फिर भगवान्‌ने गङ्गास्नान कराकर उनके गर्वजनित पापकी शान्ति करायी। —जा० श०

(ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्णजन्मखण्ड। एक ऐसी ही कथा जैमिनीय अश्वमेध ६०-६१ में भी है।)

मिथ्याभिमान

चक्रवर्ती सम्राट् भरतकी धारणा थी कि वे समस्त भूमण्डलके प्रथम चक्रवर्ती हैं—कम-से-कम वे ऐसे प्रथम चक्रवर्ती हैं, जो वृषभाचलपर पहुँच सके हैं। वे उस पर्वतके शिखरपर अपना नाम अङ्कित करना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि यहाँ उनका यह पहला नाम होगा।

शिखरपर पहुँचकर भरतके पैर ठिठक गये। उन्होंने ऊपरसे नीचेतक पर्वतके शिखरको भलीभाँति देखा। जहाँतक वे जा सकते थे, शिखरकी अन्य दिशाओंमें गये। शिखरपर इतने नाम अङ्कित थे कि कहीं भी एक नाम और लिखा जा सके, इतना स्थान नहीं था। लिखे हुए नामोंमेंसे एक भी ऐसा नाम नहीं था, जो चक्रवर्तीका नाम न हो।

भरत खिन्न हो गये। उनका अभिमान कितना मिथ्या था। उन्होंने विवश होकर वहाँ एक नाम मिटवा दिया और उस स्थानपर अपना नाम अङ्कित कराया; किंतु [illegible] राजपुरोहितने कहा—'राजन्! नामको अमर रखनेका आधार ही आपने नष्ट कर दिया। अब तो आपने नाम मिटाकर नाम लिखनेकी परम्परा प्रारम्भ कर दी। कौन कह सकता है कि वहाँ आपका नाम कौन कब मिटा देगा।'

—सु० सिं०

सिद्धिका गर्व

'समस्त जगत् उनके नृत्यसे मोहित होकर नाच रहा है, देव! यदि आप उन्हें न रोकेंगे तो महान् अनर्थ हो सकता है। आप आदिदेव हैं।' ब्रह्मा एवं अन्य देवताओंने महादेवको वायुद्वारा सुकन्याके गर्भसे उत्पन्न बाल-ब्रह्मचारी महर्षि मङ्कणकके सिद्धिमदोन्मत्त नृत्यकी सूचना दी। भोलानाथ हँस पड़े, मानो उनके लिये यह खेल था।

× × × ×

'आप इतने उन्मत्त होकर नाच क्यों रहे हैं, महर्षे! आप तो वेदज्ञ और शास्त्रोंके महान् ज्ञाता हैं, आप परम पवित्र भगवती सरस्वतीमें स्नान करके यज्ञ आदि कृत्य विधिपूर्वक सम्पन्नकर वेद-गान करते रहते हैं, आप सत्यके महान् उपासक हैं, इस नश्वर जगत्की किस वस्तुने आपका मन इस तरह मुग्ध कर लिया है?' ब्राह्मणने अमित विनम्रतासे महर्षि मङ्कणकको सचेत किया।

'रागमें भग डालना ठीक नहीं है, ब्राह्मणदेवता! आज सिद्धिने मेरी तपस्या सफल कर दी है। देखते नहीं हैं, अँगुलीमें कुशाकी नोक गड़ जानेसे रक्तके स्थानपर शाक-रस निकल रहा है।' महर्षिके नृत्यका वेग बढ़ गया।

'पर इतना ही सत्य नहीं है! यह तो इससे भी आगे है।' ब्राह्मणने अपनी अँगुलीके सिरेसे अँगूठेपर आघात किया और रक्तके स्थानपर सफेद भस्म निकलने लगा।

× × × ×

'मुझे गर्व हो गया था, देवाधिदेव! मैं आपकी महत्ता भूल गया था। ऐसी चमत्कारपूर्ण सिद्धि आप ही दिखा सकते हैं। मैंने सिद्धिके अपार मदमें अनर्थ कर डाला। अब अपने सत्स्वरूपसे मुझे कृतकृत्य कीजिये, मेरे परमनाथ!' महर्षि मङ्कणक स्वस्थ हो गये, उनके सिरसे सिद्धि-[illegible] उतरकर नौ-दो-ग्यारह हो गयी। ब्राह्मण-वेषधारी भगवान् शङ्कर उनकी सत्यनिष्ठा और निष्कपट पश्चात्तापसे बहुत प्रसन्न हुए।

मङ्कणकके रोम-रोममें अद्भुत हर्षोल्लास था। वे परमानन्दमें मग्न थे। सप्तसारस्वत-तीर्थ उनकी उपस्थितिसे दिव्यतर हो उठा।

'सिद्धिका गर्व पतनकी ओर ले जाता है, वत्स! सिद्धिकी परमनिधि—परमेश्वरकी उपासना और भक्ति ही साधनाका परम फल है, यही सत्य है।' शङ्करने मङ्कणकके मस्तकपर वरद हस्त रख दिया। महर्षि अपने उपास्यका दर्शन करके आनन्दसे नाच उठे। —रा० श्री० (महाभारत, शल्य० अ० ३८)
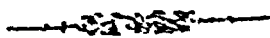
राम-नामकी अलौकिक महिमा

(वेश्याका उद्धार)

किसी शहरमें एक वेश्या थी। उसका नाम था जीवन्ती। उसे कोई संतान न थी। इसलिये उसने एक सुग्गेका बच्चा खरीद लिया और पुत्रवत् उसे पालने लग गयी। वह सुग्गेको 'राम राम राम राम' पढ़ाने लगी। अभ्याससे सुग्गा 'राम-राम' बोलना सीख गया और सुन्दर स्वरोंसे वह प्रायः सर्वदा 'राम-राम' ही कूजता रहता। एक दिन दैवयोगसे दोनोंके ही प्राण छूट गये। इनको लेनेके लिये यमदूत पहुँचे। इधर विष्णुदूत भी आये। विष्णुदूतोंने भगवन्नामका माहात्म्य बतलाकर यमदूतोंसे उन दोनोंको छोड़ देनेका आग्रह किया। यमदूतोंने उनके दीर्घ और विशाल पाप-समुदाय तथा यमराजकी आज्ञा बतलाकर अपनी लाचारी व्यक्त की। अन्तमें युद्धकी नौबत आ पहुँची। युद्धमें यमदूतोंके सेनानायक चण्डको गहरी मार पड़ी। यमदूत उन्हें लेकर हाहाकार करते हुए भाग चले। सारी बात यमराजको विदित हुई। उन्होंने कहा—"दूतो! उन्होंने मरते समय यदि 'राम' इन दो अक्षरोंको उच्चारण किया है तो उन्हें मुझसे कोई भय नहीं रह गया। संसारमें ऐसा कोई पाप नहीं है, जिसका राम-नामके स्मरणसे नाश न हो जाय। राम-नामका जप करनेवाले कभी विषाद या क्लेशको नहीं प्राप्त होते। इसलिये अब ऐसे लोगोंको भूलकर भी यहाँ लानेकी चेष्टा न करना। मेरा उनको प्रणाम है तथा मैं उनके अधीन हूँ।'

इधर विष्णुदूत हर्षमें भरकर जयध्वनिके साथ उस सुग्गे तथा गणिकाको विमानमें बिठलाकर विष्णु-लोकको ले गये।

(पद्मपुराण, क्रियायोगसार, अध्याय १४)

रामनामकी अलौकिक महिमा

विश्वासकी विजय

शबरीकी दृढ निष्ठा

सच्ची निष्ठा

जगदम्बाकी कृपा

विश्वासकी विजय

(श्वेतमुनिपर शंकरकी कृपा)

'मृत्यु क्या कर सकती है ? मैंने मृत्युञ्जय शिवकी शरण ली है ।' श्वेतमुनिने पर्वतकी निर्जन कन्दरामें आत्मविश्वासका प्रकाश फैलाया । चारों ओर सात्त्विक पवित्रताका ही राज्य था, आश्रममें निराली शान्ति थी । मुनिकी तपस्यासे वातावरणकी दिव्यता बढ़ गयी ।

श्वेतमुनिकी आयु समाप्तिके अन्तिम श्वासपर थी । वे अभय होकर रुद्राध्यायका पाठ कर रहे थे, भगवान् त्र्यम्बकके स्तवनसे उनका रोम-रोम प्रतिध्वनित था ।

वे सहसा चौंक पड़े । उन्होंने अपने सामने एक विकराल आकृति देखी; उसका समस्त शरीर काला था और उसने अति भयकर काला वस्त्र धारण कर रक्खा था ।

'ॐ नमः शिवाय ।' इस पवित्र मन्त्रका उच्चारण करते हुए श्वेतमुनिने अत्यन्त करुणभावसे शिवलिङ्गकी ओर देखा । उन्होंने उसका स्पर्श करके बड़े विश्वाससे अपरिचित आकृतिसे कहा—'तुमने हमारे आश्रमको अपवित्र करनेका दुःसाहस किस प्रकार किया ? यह तो भगवान् शिवके अनुग्रहसे अभय है ।' मुनिने पुनः शिवलिङ्गका स्पर्श किया ।

'अब आप धरतीपर नहीं रह सकते, अवधि पूरी हो गयी । आपको यमलोक चलना है ।' भयंकर आकृतिवाले कालने अपना परिचय दिया ।

'अधम, नीच, तुमने शिवकी भक्तिको चुनौती दी है ! जानते नहीं, भगवान् शंकर कालके भी काल—महाकाल हैं ।' श्वेतमुनिने शिवलिङ्गको अङ्कमें भरकर निर्भयताकी साँस ली ।

'शिवलिङ्ग निश्चेतन है, शक्तिशून्य है, पत्थरमें सर्वेश्वर महादेवकी कल्पना करना महान् भूल है, ब्राह्मण !' कालने श्वेतमुनिको पाशमें बाँध लिया ।

'धिक्कार है तुम्हें, परम चिन्मय माहेश्वर लिङ्गकी शक्तिमत्ताकी निन्दा करनेवाले काल ! भगवान् शंकर तो कण-कणमें व्याप्त हैं । विश्वासपूर्वक आवाहन करनेपर वे भक्तकी रक्षा करते हैं ।' श्वेतमुनिने मृत्युकी भर्त्सना की ।

× × ×

'ठहरो, श्वेतमुनिकी बात सच है, हमारा प्राकट्य विश्वासके ही अधीन है ।' उमासहित भगवान् चन्द्रशेखर प्रकट हो गये । उनकी जटामें पतितपावनी गङ्गाका मनोरम रमण था, भुजाओंमें सर्पकङ्कण और वक्षःस्थलमें साँपोंकी माला थी । भगवान्के गौर शरीरपर भस्मका शृङ्गार ऐसा लगता था मानो हिमालयके धवल शिखरपर श्याम घनका आन्दोलन हो । काल उनके प्रकट होते ही निष्प्राण हो गया । उसकी शक्ति निष्क्रिय हो गयी । श्वेतमुनिने भगवान्के चरणोंमें प्रणाम किया, वे गौरीनाथकी स्तुति करने लगे ।

'आपकी लिङ्गोपासना धन्य है, भक्तराज ! विश्वासकी विजय तो होती ही है ।' शिवने मुनिके मस्तकपर वरद हस्त रख दिया ।

नन्दीके आग्रहपर कालको प्राणदान देकर भगवान् मृत्युञ्जय अन्तर्धान हो गये ।—[illegible] (लिङ्गपुराण, [illegible])

शबरीकी दृढ निष्ठा

प्राचीन समयकी बात है । सिंहकेतु नामक एक पञ्चालदेशीय राजकुमार अपने सेवकोंको साथ लेकर एक दिन वनमें शिकार खेलने गया । उसके सेवकोंमेंसे एक शबरको शिकारकी खोजमें इधर-उधर घूमते एक टूटा-फूटा शिवालय दीख पड़ा । उसके चबूतरेपर एक शिवलिङ्ग पड़ा था, जो टूटकर [illegible] हो गया था । शबरने उसे [illegible] उठा लिया । वह राजकुमारके [illegible] पूर्वक उसे [illegible] देखिये, यह कैसा सुन्दर शिवलिङ्ग है ! [illegible]

कृपापूर्वक मुझे पूजाकी विधि बता दें तो मैं नित्य इसकी पूजा किया करूँ।'

निषादके इस प्रकार पूछनेपर राजकुमारने प्रेमपूर्वक पूजाकी विधि बतला दी। षोडशोपचार पूजनके अतिरिक्त उसने चिताभस्म चढ़ानेकी बात भी बतलायी। अब यह शवर प्रतिदिन स्नान कराकर चन्दन, अक्षत, वनके नये-नये पत्र, पुष्प, फल, धूप, दीप, नृत्य, गीत, वाद्यके द्वारा भगवान् महेश्वरका पूजन करने लगा। वह प्रतिदिन चिताभस्म भी अवश्य भेंट करता। तत्पश्चात् वह स्वयं प्रसाद ग्रहण करता। इस प्रकार वह श्रद्धालु शवर पत्नीके साथ भक्तिपूर्वक भगवान् शंकरकी आराधनामें तल्लीन हो गया।

एक दिन वह शवर पूजाके लिये बैठा तो देखता है कि पात्रमें चिताभस्म तनिक भी शेष नहीं है। उसने बड़े प्रयत्नसे इधर-उधर ढूँढ़ा, पर उसे कहीं भी चिताभस्म नहीं मिला। अन्तमें उसने स्थिति पत्नीसे व्यक्त की। साथ ही उसने यह भी कहा कि 'यदि चिताभस्म नहीं मिलता तो पूजाके बिना मैं अब क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता।'

स्त्रीने उसे चिन्तित देखकर कहा—'नाथ! डरिये मत। एक उपाय है। यह घर तो पुराना हो ही गया है। मैं इसमें आग लगाकर उसीमें प्रवेश कर जाती हूँ। इससे आपकी पूजाके निमित्त पर्याप्त चिताभस्म तैयार हो जायगी।' बहुत वाद-विवादके बाद शवर भी उसके प्रस्तावसे सहमत हो गया। शबरीने स्वामीकी आज्ञा पाकर स्नान किया और उस घरमें आग लगाकर अग्निकी तीन बार परिक्रमा की, पतिको नमस्कार किया और सदाशिव भगवान्का हृदयमें ध्यान करती हुई अग्निमे घुस गयी। वह क्षणभरमे जलकर भस्म हो गयी। फिर शवरने उस भस्मसे भगवान् भूतनाथकी पूजा की।

शवरको कोई विषाद तो था नहीं। स्वभाववशात् पूजाके बाद वह प्रसाद देनेके लिये अपनी स्त्रीको पुकारने लगा। स्मरण करते ही वह स्त्री तुरंत आकर खड़ी हो गयी। अब शवरको उसके जलनेकी बात याद आयी। आश्चर्यचकित होकर उसने पूछा कि 'तुम और यह मकान तो सब जल गये थे, फिर यह सब कैसे हुआ?'

शवरीने कहा—'आगमें मैं घुसी तो मुझे लगा कि जैसे मैं जलमें घुसी हूँ। आधे क्षणतक तो प्रगाढ़ निद्रा-सी विदित हुई और अब जगी हूँ। जगनेपर देखती हूँ तो यह घर भी पूर्ववत् खड़ा है। अब प्रसादके लिये यहाँ आयी हूँ।'

निषाद-दम्पति इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि उनके सामने एक दिव्य विमान आ गया। उसपर भगवान्के चार गण थे। उन्होंने ज्यों ही उन्हें स्पर्श किया और विमानपर बैठाया, उनके शरीर दिव्य हो गये। वास्तवमें श्रद्धायुक्त भगवदाराधनाका ऐसा ही माहात्म्य है।—जा० श०

(स्कन्द० ब्राह्म० ब्रह्मोत्तर० अध्याय १७)

आपदि किं करणीयम्, स्मरणीयं चरणयुगलमम्बायाः

(सुदर्शनपर जगदम्बाकी कृपा)

अयोध्यामें भगवान् रामसे १५वीं पीढ़ी बाद ध्रुवसंधि नामके राजा हुए। उनके दो स्त्रियाँ थीं। पट्टमहिषी थी कलिङ्गराज वीरसेनकी पुत्री मनोरमा और छोटी रानी थी उज्जयिनीनरेश युधाजित्की पुत्री लीलावती। मनोरमाके पुत्र हुए सुदर्शन और छोटी रानी लीलावतीके शत्रुजित्। महाराजकी दोनोंपर ही समान दृष्टि थी। दोनों राजपुत्रोंका समान रूपसे लालन-पालन होने लगा।

इधर महाराजको आखेटका व्यसन कुछ अधिक था। एक दिन वे शिकारमें एक सिंहके साथ भिड़ गये, जिसमें सिंहके साथ स्वयं भी स्वर्गगामी हो गये। मन्त्रियोंने उनकी पारलौकिक क्रिया करके सुदर्शनको राजा बनाना चाहा। इधर शत्रुजित्के नाना युधाजित्को इस बातकी खबर लगी तो वे एक बड़ी सेना लेकर इसका विरोध करनेके लिये अयोध्यामें आ डटे। उधर कलिङ्गनरेश वीरसेन भी सुदर्शनके पक्षमें आ गये। दोनोंमें युद्ध छिड़ गया। कलिङ्गाधिपति मारे गये। अब रानी मनोरमा डर गयी। वह सुदर्शनको लेकर एक धाय तथा महामन्त्री विदल्लके साथ भागकर महर्षि भरद्वाजके आश्रममें प्रयाग पहुँच गयी। युधाजित्ने अयोध्याके सिंहासनपर शत्रुजित्को अभिषिक्त किया और सुदर्शनको मारनेके लिये वे भरद्वाजके आश्रमपर पहुँचे। पर मुनिके भयसे वहाँसे उन्हें भागना पड़ा।

एक दिन भरद्वाजके शिष्यगण महामन्त्रीके सम्बन्धमें कुछ बातें कर रहे थे। कुछने कहा कि विदल्ल क्लीव (नपुसक) है। दूसरोंने भी कहा—'यह सर्वथा क्लीब है।' सुदर्शन अभी बालक ही था। उसने बार-बार जो उनके मुँहसे क्लीब-क्लीव सुना तो स्वय भी 'क्ली-क्ली' करने लगा। पूर्व पुण्यके कारण वह कालीबीजके रूपमें अभ्यासमें परिणत हो गया। अब वह सोते, जागते, खाते, पीते, 'क्ली क्ली' रटने लगा। इधर महर्षिने उसके क्षत्रियोचित संस्कारादि भी कर दिये और थोड़े ही दिनोंमें वह भगवती तथा ऋषिकी कृपासे शस्त्र-शास्त्रादि सभी विद्याओंमें अत्यन्त निपुण हो गया। एक दिन वनमें खेलनेके समय उसे देवीकी दयासे अक्षय तूणीर तथा दिव्य धनुष भी पड़ा मिल गया। अब सुदर्शन भगवतीकी कृपासे पूर्ण शक्तिसम्पन्न हो गया।

इधर काशीमें उस समय राजा सुबाहु राज्य करते थे। उनकी कन्या शशिकला बड़ी विदुषी तथा देवी-भक्ता थी। भगवतीने उसे स्वप्नमें आज्ञा दी कि 'तू सुदर्शनको अपने पतिरूपमें वरण कर ले। वह तेरी समस्त कामनाओंको पूर्ण करेगा।' शशिकलाने [illegible] उसी समय सुदर्शनको पतिके रूपमें स्वीकार कर लिया। प्रातःकाल उसने अपना निश्चय माता-पिताको सुनाया। पिताने लड़कीको जोरोंसे डाँटा और एक अनाथ वनवासीके साथ सम्बन्ध जोड़नेमें अपना अपमान समझा। उन्होंने अपनी कन्याके स्वयंवरकी तैयारी आरम्भ की। उन्होंने उस स्वयंवरमें सुदर्शनको आमन्त्रित भी नहीं किया। पर शशिकला भी अपने मार्गपर दृढ़ थी। उसने सुदर्शनको एक ब्राह्मणद्वारा [illegible] भेज दिया। सभी राजाओंके साथ वह भी काशी आ गया।

इधर शत्रुजित्को साथ लेकर उसके नाना [illegible] युधाजित् भी आ धमके थे। [illegible] शशिकलाद्वारा सुदर्शनके मन-ही-मन वरण किये जानेकी बात सर्वत्र फैल गयी थी। इसे भला, युधाजित् कैसे सहन कर सकते थे। उन्होंने सुबाहुको बुलाकर [illegible] किया। सुबाहुने इसमें अपनेको [illegible]। तथापि युधाजित्ने कहा—'मैं सुबाहु[illegible] सुदर्शनको मारकर बलात् कन्याका अपहरण करूँगा।' राजाओंको बालक सुदर्शनपर कुछ दया आ गयी। उन्होंने सुदर्शनको बुलाकर सारी स्थिति समझायी और भाग जानेकी सलाह दी।

सुदर्शनने कहा—'यद्यपि न मेरा कोई सहायक है और न मेरे कोई सेना ही है, तथापि मैं भगवतीके [illegible] आदेशानुसार ही यहाँ स्वयंवर देखने आया हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है, वे मेरी रक्षा करेंगी। मेरी न किसीसे शत्रुता है और न मैं किसीका अमङ्गल ही चाहता हूँ।'

अब प्रातःकाल स्वयंवर-मण्डपमें राजा लोग [illegible] धजकर आ बैठे तो सुबाहुने शशिकलाको मण्डपमें चलनेके लिये कहा। पर उसने राजाओंके सामने [illegible] अस्वीकार कर दिया। सुबाहुने राजाओंसे [illegible]

उनके द्वारा उपस्थित होनेवाले भयकी बात कही। शशिकला बोली—'यदि तुम सर्वथा कायर ही हो तो तुम मुझे सुदर्शनके हवाले करके नगरसे बाहर छोड़ आओ।' कोई दूसरा रास्ता भी नहीं था, इसलिये सुबाहुने राजाओंसे तो कह दिया कि 'आपलोग कल स्वयंवरमें आयेंगे, आज शशिकला नहीं आयेगी।' इधर रातमें ही उसने संक्षिप्त विधिसे गुप्तरीत्या सुदर्शनसे शशिकलाका विवाह कर दिया और सबेरा होते ही उन्हें पहुँचाने लगा।

युधाजित्को भी बात किसी प्रकार मालूम हो गयी। वह रास्तेमें अपनी सेना लेकर सुदर्शनको मार डालनेके विचारसे स्थिर था। सुदर्शन भी भगवतीको स्मरण करता हुआ वहाँ पहुँचा। दोनोंमें युद्ध छिड़नेवाला ही था कि भगवती साक्षात् प्रकट हो गयीं। युधाजित्की सेना भाग चली। युधाजित् अपने नाती शत्रुजित्के साथ खेत रहा। पराम्बा जगज्जननीने सुदर्शनको वर माँगनेके लिये प्रेरित किया। सुदर्शनने केवल देवीके चरणोंमें अविरल, निश्चल अनुरागकी याचना की। साथ ही काशीपुरीकी रक्षाकी भी प्रार्थना की।

सुदर्शनके वरदानस्वरूप ही दुर्गाकुण्डमें स्थित हुई पराम्बा दुर्गा वाराणसीपुरीकी अद्यावधि रक्षा कर रही हैं।

—जा० श० (देवीभागवत, स्कन्ध ३; अध्याय १४ से २५, रघुवंश १८।३४—५३)

सच्ची निष्ठा

(गणेशजीकी कृपा)

पहले समयकी बात है। सिन्धु देशकी पल्लीनगरीमें कल्याण नामका एक धनी सेठ रहता था। उसकी पत्नीका नाम इन्दुमती था। विवाह होनेके बहुत दिनोंके बाद उनके पुत्र हुआ; उसके जन्मोत्सवमें उन लोगोंने अनेक दान-पुण्य किये, राग-रंग और आमोद-प्रमोदमें पर्याप्त धन व्यय किया। उसका नाम रक्खा गया बल्लाल; वह उन दोनोंके नयनोंका तारा था।

× × ×

'कितना मनोरम वन है!' सरोवरमें अपने समवयस्क बालगोपालोंके साथ स्नान करते हुए बल्लालने अपने कथनका समर्थन कराना चाहा। वह उन्हें नित्य अपने साथ लेकर पल्लीसे थोड़ी दूर स्थित वनमें आकर सैर-सपाटा किया करता था। बालकोंने उसकी 'हाँ-में-हाँ' मिलायी।

'चलो, हमलोग भगवान् विघ्नेश्वर श्रीगणेश देवताकी पूजा करें; उनकी कृपासे समस्त संकट मिट जाते हैं।' बल्लालने सरोवरके किनारे एक छोटे-से पत्थरको श्रीगणेशका श्रीविग्रह मानकर बालकोंको पूजा करनेकी प्रेरणा दी। उसने श्रीगणेश-महिमाके सम्बन्धमें अनेक बातें घरपर सुनी थीं।

लता-पत्र एकत्रकर बालकोंने एक मण्डप बना लिया; उसमें तथाकथित श्रीगणेश-विग्रहकी स्थापना करके मानसिक पूजा—फूल, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल, दक्षिणा आदिसे—आरम्भ की। उनमेंसे कई एक पण्डितोंका स्वाँग बनाकर पुराणों और शास्त्रोंकी चर्चा करने लगे। इस प्रकार श्रीगणेशकी उपासनामें उनका मन लग गया। वे दोपहरको भोजन करने घर नहीं आते थे, इसलिये दुबले हो गये। उनके पिताओंने कल्याण सेठसे कहा कि यदि बल्लालका वनमें जाना नहीं रोक दिया जायगा तो हमलोग राजासे शिकायत करके आपको पल्लीनगरीसे बाहर निकलवा देंगे। कल्याणका मन चिन्तित हो उठा।

× × ×

'ये तो नकली गणेश हैं, बच्चो। असली गणेशजी तो हृदयमें रहते हैं।' कल्याणने हाथके डंडेसे बल्लालको सावधान किया।

'पिताजी, आप जो कुछ भी कह रहे हैं, वह आपकी दृष्टिमें नितान्त सच है; पर मेरी निष्ठा तो श्रीगणेशके इसी श्रीविग्रहमें है। मैं पूजा नहीं छोड़ सकता।' बल्लालका इतना कहना था कि सेठने उसे मारना आरम्भ किया; अन्य बालक भाग निकले। सेठने मण्डप तोड़ डाला; बल्लालको एक मोटे-से रस्सेसे पेड़के तनेमें बाँध दिया।

'यदि इस विग्रहमें श्रीगणेशजी होंगे तो तुम्हारा बन्धन खुल जायगा। इस निर्जन वनमें वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे।' कल्याणने घरका रास्ता लिया।

× × ×

'निस्सन्देह श्रीगणेशजी ही मेरे माता-पिता हैं। वे दयामय ही मेरी रक्षा करेंगे। वे विघ्न-विदारक, सिद्धि-दायक, सर्वसमर्थ हैं। मैं उनकी शरणमें अभय हूँ।' बल्लालकी निष्ठा बोल उठी; वह हृदयमें [illegible] समेटकर निर्निमेष दृष्टिसे श्रीगणेशके विग्रहको देखने लगा।

'मेरा तन भले ही बाँधा जाय, पर मेरा मन स्वतन्त्र है; मैं अपना प्राण श्रीगणेशके चरणोंमें अर्पित करूँगा।' बल्लालके इस निश्चयसे पाषाणसे श्रीगणेशजी प्रकट हो गये।

'तुम्हारी निष्ठा धन्य है, वत्स।' श्रीगणेशने उसका आलिङ्गन किया। वह बन्धनमुक्त हो गया। उसने अपने आराध्यकी जी भर स्तुति की। गणेशजीने अभय दान दिया, और अन्तर्धान हो गये। —रा० श्री०

(गणेशपुराण, अ० २२)

लोभका दुष्परिणाम

प्राचीन कालमें सृञ्जय नामके एक नरेश थे। उनके कोई पुत्र नहीं था, केवल एक कन्या थी। पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे उन्होंने वेदज्ञ ब्राह्मणोंकी सेवा प्रारम्भ की। राजाके दान एवं सम्मानसे संतुष्ट होकर ब्राह्मणोंने देवर्षि नारदसे राजाके पुत्र होनेकी प्रार्थना की। उन दिनों देवर्षि राजा सृञ्जयके ही अतिथि थे। ब्राह्मणोंकी प्रार्थनासे द्रवित होकर देवर्षिने राजासे कहा—'तुम कैसा पुत्र चाहते हो?'

अब राजा सृञ्जयके मनमें लोभ आया। उन्होंने प्रार्थना की—'आप मुझे ऐसा पुत्र होनेका वरदान दें जो सुन्दर हो, स्वस्थ हो, गुणवान् हो तथा उसके मल-मूत्र, थूक-कफ आदि स्वर्णमय हों।'

देवर्षिने कुछ सोचकर 'एवमस्तु' कह दिया। उनके वरदानके अनुसार राजाको थोड़े दिनमें पुत्र प्राप्त हुआ। उस पुत्रका नाम राजाने सुवर्णष्ठीवी रक्खा। अब सृञ्जयके धनका क्या ठिकाना था। उनके पुत्रका थूक तथा मल-मूत्र—सभी स्वर्ण होता था। राजाने अपने राजभवनके सब पात्र, आसन आदि स्वर्णके बनवा लिये। इसके अनन्तर उन्होंने पूरा राजभवन ही स्वर्णका बनवाया। उसमें दीवाल, खंभे, छत तथा भूमि आदि सब सोनेकी थीं।

राजाके पुत्र सुवर्णष्ठीवीका समाचार सारे देशमें फैल गया। दूर-दूरसे लोग उसे देखने आने लगे। दस्युओंने भी यह समाचार पाया। उनके अनेक दल परस्पर मिलकर उस राजकुमारको हरण करनेका प्रयत्न करने लगे। अवसर पाकर एक रात दस्यु राजभवनमें घुस आये और राजकुमारको उठा ले गये।

वनमें पहुँचनेपर दस्युओंमें विवाद हो गया। अधिक समयतक राजकुमारको जीवित छिपाये रखना [illegible] था। सबने निश्चय किया कि सुवर्णष्ठीवीको मारकर जो स्वर्ण मिले, उसे परस्पर बाँट लिया जाय। उन निर्दय दस्युओंने राजकुमारके टुकड़े कर डाले; किंतु उनमें [illegible] एक रत्ती भी सोना नहीं मिला।

लोभके वश होकर राजा सृञ्जयने ऐसा पुत्र माँगा कि उसकी रक्षा असम्भव हो गयी। पुत्र [illegible] उन्हें। लोभवश दस्युओंने राजकुमारकी हत्या की। [illegible] पापभागी हुए वे और [illegible]। [illegible] उन्हें भी नहीं हुआ। —सु० सिं० ([illegible])

आदर्श निर्लोभी

परम भक्त तुलाधार शूद्र बड़े ही सत्यवादी, वैराग्यवान् तथा निर्लोभी थे। उनके पास कुछ भी संग्रह नहीं था। तुलाधारजीके कपड़ोंमें एक धोती थी और एक गमछा। दोनों ही बिल्कुल फट गये थे। मैले तो थे ही। वे नाममात्रके वस्त्र रह गये थे, उनसे वस्त्रकी जरूरत पूरी नहीं होती थी। तुलाधार नित्य नदी नहाने जाते थे, इसलिये एक दिन भगवान्‌ने दो बढ़िया वस्त्र नदीके तीरपर ऐसी जगह रख दिये, जहाँ तुलाधारकी नजर उनपर गये बिना न रहे। तुलाधार नित्यके नियमानुसार नहाने गये। उनकी नजर नये वस्त्रोंपर पड़ी। वहाँ उनका कोई भी मालिक नहीं था, परंतु इनके मनमें जरा भी लोभ पैदा नहीं हुआ। उन्होंने दूसरेकी वस्तु समझकर उधरसे सहज ही नजर फिरा ली और स्नान-ध्यान करके चलते बने। दूर छिपकर खड़े हुए प्रभु भक्तका संयम देखकर मुसकरा दिये।

दूसरे दिन भगवान्‌ने गूलरके फल-जैसी सोनेकी डली उसी जगह रख दी। तुलाधार आये। उनकी नजर आज भी सोनेकी डलीपर गयी। क्षणभरके लिये अपनी दीनताका ध्यान आया, परंतु उन्होंने सोचा, यदि मैं इसे ग्रहण कर लूँगा तो मेरा अलोभ-व्रत अभी नष्ट हो जायगा। फिर इससे अहंकार पैदा होगा। लाभसे लोभ, फिर लोभसे लाभ, फिर लाभसे लोभ—इस प्रकार निन्यानवेके चक्करमें मैं पड़ जाऊँगा। लोभी मनुष्यको कभी शान्ति नहीं मिलती। नरकका दरवाजा तो सदा उसके लिये खुला ही रहता है। बड़े-बड़े पापोंकी पैदाइश इस लोभसे ही होती है। घरमें धनकी प्रचुरता होनेसे स्त्री और बालक धनके मदसे मतवाले हो जाते हैं, मतवालेपनसे कामविकार होता है और कामविकारसे बुद्धि मारी जाती है। बुद्धि नष्ट होते ही मोह छा जाता है और उस मोहसे नया-नया अहंकार, क्रोध और लोभ उत्पन्न होता है। इनसे तप नष्ट हो जाता है और मनुष्यकी बुरी गति हो जाती है। अतएव मैं इस सोनेकी डलीको किसी प्रकार भी नहीं लूँगा।' इस प्रकार विचार करके तुलाधार उसे वहीं पड़ी छोड़कर घरकी ओर चल दिये। स्वर्गस्थ देवताओंने साधुवाद दिया और फूल बरसाये।

सत्य-पालनकी दृढ़ता

अयोध्या-नरेश महाराज हरिश्चन्द्रने स्वप्नमें एक ब्राह्मणको अपना राज्य दान कर दिया था। जब वह ब्राह्मण प्रत्यक्ष आकर राज्य माँगने लगा, तब महाराजने उसके लिये सिंहासन खाली कर दिया। परंतु ब्राह्मण कोई साधारण ब्राह्मण नहीं था और न उसे राज्यकी भूख थी। वे तो थे ऋषि विश्वामित्र, जो इन्द्रकी प्रेरणासे हरिश्चन्द्रके सत्यकी परीक्षा लेने आये थे। राज्य लेकर उन्होंने राजासे इस दानकी साङ्गताके लिये एक सहस्र स्वर्णमुद्राएँ दक्षिणाकी और माँगीं। दान किये हुए राज्यका तो सब वैभव, कोष आदि ऋषिका हो ही गया था, राजाको यह अतिरिक्त दक्षिणा देनेके लिये एक महीनेका समय उन्होंने दिया।

जो अबतक नरेश था, वह अपनी महारानी तथा राजकुमारके साथ साधारण वस्त्र पहिने राजभवनसे दरिद्रके समान निकला। उसके पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं थी और न था पाथेय ही। अपने दान किये राज्यका अन्न-जल उसके लिये वर्जित था। वह उदार धर्मात्मा भगवान् विश्वनाथकी पुरी काशीमें पहुँचा। भरे बाजारमें उसने अपनी पत्नीको दासी बनानेके लिये बेचनेकी पुकार प्रारम्भ की। महारानी शैब्या, जो सैकड़ों दासियोंसे सेवित होती थीं, धर्मनिष्ठ पति-द्वारा बेच दी गयीं। एक ब्राह्मणने उन्हें खरीदा। बड़ी कठिनाईसे उस ब्राह्मणने शैब्याको अपने छोटे-से पुत्र रोहिताश्वको साथ रखनेकी अनुमति दी। परंतु महारानीको बेचकर भी हरिश्चन्द्र केवल आधी ही दक्षिणा दे सके विश्वामित्रको। शेष आधीके लिये उन्होंने स्वयं अपनेको चाण्डालके हाथों बेचा।

महारानी शैब्या अब ब्राह्मणकी दासी थीं। पानी भरना, बर्तन मलना, घर लीपना, गोबर उठाना आदि सब कार्य ब्राह्मणके घरका उन्हें करना पड़ता था। उनका पुत्र—अयोध्याका सुकुमार युवराज रोहिताश्व अपनी नन्ही अवस्थामें ही दासी-पुत्रका जीवन व्यतीत कर रहा था। उधर राजा हरिश्चन्द्रको चाण्डालने श्मशान-रक्षक नियुक्त कर दिया था। जिनकी सेवामें सेवकों और सैनिकोंकी भीड़ लगी रहती थी;

वे अब हाथमें लाठी लिये अकेले घोर श्मशानभूमिमें रात्रिको घूमा करते थे। जो कोई वहाँ शव-दाह करने आता था, उससे 'कर' लेना उनका कर्तव्य बन गया था।

विपत्ति यहीं नहीं समाप्त हुई। रोहिताश्वको सर्पने डँस लिया। अब शैब्याके साथ भला, श्मशान जानेवाला कौन मिलता। अपने मृत पुत्रको उठाये वे देवी रोती-चिल्लाती रात्रिमें अकेली ही श्मशान आयीं। उनका रुदन सुनकर हरिश्चन्द्र भी लाठी लिये 'कर' लेने पहुँच गये उनके पास। मेघाच्छन्न आकाश, घोर अन्धकारमयी रजनी; किंतु बिजली चमकी और उसके प्रकाशमें हरिश्चन्द्रने अपनी रानीको पहिचान लिया। पुत्रका शव पड़ा था सामने और पतिव्रता पत्नी क्रन्दन कर रही थी; परतु हरिश्चन्द्रने हृदयको वज्र बना लिया था। हाय रे कर्तव्य! कर्तव्यसे विवश वे बोले—'भद्रे! कुछ 'कर' दिये बिना तुम पुत्रके देहका संस्कार नहीं कर सकतीं। मेरे स्वामीका आदेश है कि मैं किसीको भी 'कर' लिये बिना यहाँ शव-दाहादि न करने दूँ। मेरा धर्म मुझे विवश कर रहा है।'

शैब्या क्या 'कर' दें! क्या धरा था उस धर्ममयी नारीके पास। पुत्रके मृत शरीरको ढकनेके लिये उसके पास तो कफन भी नहीं था। अपने अंचलसे ही वह उसे ढककर ले आयी थी। परंतु पतिके धर्मकी रक्षा तो उसने प्राण देकर भी [illegible] करनी थी। उसने अपनी आधी साड़ी 'कर' में [illegible] देनेका विचार कर लिया। हरिश्चन्द्रने फाड़ [illegible] उसकी साड़ी।

परीक्षा समाप्त हो गयी। श्मशानभूमि दिव्य [illegible] आलोकित हो उठी। भगवान् नारायणने प्रकट होकर हरिश्चन्द्रका हाथ पकड़ लिया था। [illegible] हरिश्चन्द्रकी सत्यनिष्ठासे पूर्ण संतुष्ट हो गये थे। वे कह रहे थे—'राजन्! अब तुम पत्नीके साथ वैकुण्ठ पधारो।'

'राजन्! आपने अपनी सेवामें मुझे संतुष्ट कर दिया। आप अब स्वतन्त्र हैं।' हरिश्चन्द्रने देखा कि उनका स्वामी चाण्डाल और कोई नहीं, वे तो साक्षात् धर्मराज हैं।

उस समय वहाँ महर्षि विश्वामित्र भी आ पहुँचे। वे कह रहे थे—'बेटा रोहित! उठ तो!' रोहिताश्व उनके पुकारते ही निद्रासे जगेकी भाँति उठ बैठा। महर्षिने कहा—'राजन्! रोहित अब मेरा है और उसे मैं अयोध्याके सिंहासनपर बैठाने ले जा रहा हूँ।'—सु० सिं०

तनिक-सा भी असत्य पुण्यको नष्ट कर देता है

महाभारतके युद्धमें द्रोणाचार्य पाण्डव-सेनाका संहार कर रहे थे। वे बार-बार दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करते थे। जो भी पाण्डव-पक्षका वीर उनके सामने पड़ता, उसीको वे मार गिराते थे। सम्पूर्ण सेना विचलित हो रही थी। बड़े-बड़े महारथी भी चिन्तित हो उठे थे।

'आचार्यके हाथमें शस्त्र रहते तो उन्हें कोई पराजित कर नहीं सकता। वे स्वयं शस्त्र रख दें, तभी विजय सम्भव है। युद्धके प्रारम्भमें उन्होंने स्वयं बताया है कि कोई अत्यन्त अप्रिय समाचार विश्वस्त व्यक्तिके द्वारा सुनायी पड़नेपर वे शस्त्र त्यागकर ध्यानस्थ हो जाया करते हैं।' पाण्डवोंकी विपत्तिके नित्यसहायक श्रीकृष्णचन्द्रने सबको यह बात स्मरण करायी।

भीमसेनको एक उपाय सूझ गया। वे द्रोणपुत्र अश्वत्थामासे युद्ध करने लगे। युद्ध करते समय भीम अपने रथसे उतर पड़े और अश्वत्थामाके रथके नीचे गदा लगाकर रथके साथ उसे युद्धभूमिसे बहुत दूर फेंक दिया उन्होंने। कौरव-सेनामें एक अश्वत्थामा नामका हाथी भी था। भीमसेनने एक ही आघातसे उसे भी मार दिया और तब द्रोणाचार्यके सम्मुख जाकर पुकार-पुकारकर कहने लगे—'अश्वत्थामा मारा गया। अश्वत्थामा मारा गया।'

द्रोणाचार्य चौंके, किंतु उन्हें भीमसेनकी बातपर विश्वास नहीं हुआ। युधिष्ठिरसे सच्ची बात पूछनेके लिये उन्होंने अपना रथ बढ़ाया। इधर श्रीकृष्णचन्द्रने युधिष्ठिरसे कहा—'महाराज! आपके पक्षकी विजय हो, इसका दूसरा कोई उपाय नहीं। आचार्यके पूछनेपर 'अश्वत्थामा मारा गया' यह बात आपको कहनी ही चाहिये। मेरे कहनेसे [illegible] करें।'

धर्मराज युधिष्ठिर किसी प्रकार झूठ [illegible] नहीं थे; किंतु श्रीकृष्णचन्द्रका [illegible] थे। द्रोणाचार्यने उनसे [illegible] बात सत्य है? [illegible] उन्होंने [illegible] मारा गया।' [illegible]

उनके मुखसे आगे निकला—'मनुष्य वा हाथी' परंतु जैसे ही युधिष्ठिरने कहा—'अश्वत्थामा मारा गया' वैसे ही श्रीकृष्णचन्द्रने अपना पाञ्चजन्य शङ्ख बजाना प्रारम्भ कर दिया। युधिष्ठिरके अगले शब्द उस शङ्खध्वनिके कारण द्रोणाचार्य सुन ही नहीं सके।

धर्मराज युधिष्ठिरका रथ उनकी सत्यनिष्ठाके प्रभावसे सदा पृथ्वीसे चार अंगुल ऊपर ही रहता था; किंतु इस छल-वाक्यके बोलते ही उनके रथके पहिये भूमिपर लग गये और आगे उनका रथ भी दूसरे रथोंके समान भूमिपर ही चलने लगा। इसी असत्यके पापसे सशरीर स्वर्ग जानेपर भी उन्हें एक बार नरकका दर्शन करना पड़ा।—सु० सिं०

(महाभारत, द्रोण० १९०)

ईमानदार व्यापारी

महातपस्वी ब्राह्मण जाजलिने दीर्घकालतक श्रद्धा एवं नियमपूर्वक वानप्रस्थाश्रमधर्मका पालन किया था। अब वे केवल वायु पीकर निश्चल खड़े हो गये थे और कठोर तपस्या कर रहे थे। उन्हें गतिहीन देखकर पक्षियोंने कोई वृक्ष समझ लिया और उनकी जटाओंमें घोंसले बनाकर वहीं अंडे दे दिये। वे दयालु महर्षि चुपचाप खड़े रहे। पक्षियोंके अंडे बढ़े और फूटे, उनसे बच्चे निकले। वे बच्चे भी बड़े हुए, उड़ने लगे। जब पक्षियोंके बच्चे उड़नेमें पूरे समर्थ हो गये और एक बार उड़कर पूरे एक महीनेतक अपने घोंसलेमें नहीं लौटे, तब जाजलि हिले। वे स्वयं अपनी तपस्यापर आश्चर्य करने लगे और अपनेको सिद्ध समझने लगे। उसी समय आकाशवाणी हुई—'जाजलि! तुम गर्व मत करो। काशीमें रहनेवाले तुलाधार वैश्यके समान तुम धार्मिक नहीं हो।'

आकाशवाणी सुनकर जाजलिको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे उसी समय चल पड़े। काशी पहुँचकर उन्होंने देखा कि तुलाधार एक साधारण दूकानदार हैं और अपनी दूकानपर बैठकर ग्राहकोंको तौल-तौलकर सौदा दे रहे हैं। परंतु जाजलिको उस समय और भी आश्चर्य हुआ जब तुलाधारने बिना कुछ पूछे उन्हें उठकर प्रणाम किया, उनकी तपस्याका वर्णन करके उनके गर्व तथा आकाशवाणीकी बात भी बता दी। जाजलिने पूछा—'तुम तो एक सामान्य बनिये हो, तुम्हें इस प्रकारका ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ?'

तुलाधारने नम्रतापूर्वक कहा—'ब्रह्मन्! मैं अपने वर्णोचित धर्मका सावधानीसे पालन करता हूँ। मैं न मद्य बेचता हूँ, न और कोई निन्दित पदार्थ बेचता हूँ। अपने ग्राहकोंको मैं तौलमें कभी ठगता नहीं। ग्राहक बूढ़ा हो या बच्चा, भाव जानता हो या न जानता हो, मैं उसे उचित भावमें उचित वस्तु ही देता हूँ। किसी पदार्थमें दूसरा कोई दूषित पदार्थ नहीं मिलाता। ग्राहककी कठिनाईका लाभ उठाकर मैं अनुचित लाभ भी उससे नहीं लेता हूँ। ग्राहककी सेवा करना मेरा कर्तव्य है, यह बात मैं सदा स्मरण रखता हूँ। ग्राहकोंके लाभ और उनके हितका व्यवहार ही मैं करता हूँ, यही मेरा धर्म है।'

तुलाधारने आगे बताया—'मैं राग-द्वेष और लोभसे दूर रहता हूँ। यथाशक्ति दान करता हूँ और अतिथियोंकी सेवा करता हूँ। हिंसारहित कर्म ही मुझे प्रिय हैं। कामनाका त्याग करके सब प्राणियोंको समान दृष्टिसे देखता हूँ और सबके हितकी चेष्टा करता हूँ।'

जाजलिके पूछनेपर महात्मा तुलाधारने उनको विस्तारसे धर्मका उपदेश किया। उन्हें समझाया कि हिंसायुक्त यज्ञ परिणाममें अनर्थकारी ही हैं। वैसे भी ऐसे यज्ञोंमें बहुत अधिक भूलोंके होनेकी सम्भावना रहती है और थोड़ी-सी भी भूल विपरीत परिणाम देती है। प्राणियोंको कष्ट देनेवाला मनुष्य कभी सुख तथा परलोकमें मङ्गल नहीं प्राप्त कर सकता। 'अहिंसा ही उत्तम धर्म है।'

जो पक्षी जाजलिकी जटाओंमें उत्पन्न हुए थे, वे बुलानेपर जाजलिके पास आ गये। उन्होंने भी तुलाधारके द्वारा बताये धर्मका ही अनुमोदन किया। तुलाधारके उपदेशसे जाजलिका गर्व नष्ट हो गया।—सु० सिं०

(महाभारत, शान्ति० २६१–२६४)

वह सत्य सत्य नहीं, जो निर्दोषकी हत्यामें कारण हो

सैकड़ों साल बीत गये, किन्हीं दो नदियोंके पवित्र संगमपर एक तपोधन ब्राह्मण रहते थे । उनका नाम कौशिक था । वे अपने जीवनका प्रत्येक क्षण शास्त्रसम्मत धर्माचरणमें बिताते थे, उनकी मनोवृत्ति सात्त्विक थी; वे नियमपूर्वक संगमपर स्नान करके त्रिकाल-संध्या करते थे तथा भूलसे भी किसीका मन नहीं दुखाते थे । उनके निष्कपट व्यवहारकी प्रशंसा दूर-दूरतक फैल गयी थी ।

× × ×

'महाराज ! आप सत्यवादी हैं, ब्राह्मण हैं, स्वप्नमें भी आपने असत्य-भाषण नहीं किया है । कृपापूर्वक बतलाइये कि लोग किधर गये ।' डाकुओंने नदीके तटपर आसीन कौशिक ब्राह्मणका मन चञ्चल कर दिया । वे कुछ व्यक्तियोंका पीछा करते-करते कौशिकके आश्रममें आ पहुँचे थे ।

'यह बात नितान्त सत्य है कि वे निकटकी ही झाड़ियोंमें छिप गये हैं । यदि मैं डाकुओंसे उनका ठीक-ठीक पता नहीं बता देता तो मुझे असत्यभाषणका पाप [illegible] तप है, धर्म है, न्याय है [illegible] कौशिकके नेत्र बंद थे, वे मनमें [illegible] कर रहे थे ।

'सत्यवादी सच बोलनेमें [illegible] देवता ! आपके लिये [illegible] ।' डाकुओंने प्रशंसा की ।

'उधर...।' ब्राह्मणने अँगुलीसे [illegible] मात्रमें उनके सत्यकथनके दुष्परिणामस्वरूप डाकुओंने [illegible] यात्रियोंके प्राण ले लिये । उनमें [illegible] विवेक नहीं था, वे कोरे सत्यवादी थे ।

कौशिकके सत्यने अधर्म और अन्यायको [illegible] और इससे उन्हें नरकमें जाना पड़ा । [illegible]

([illegible])

यज्ञमें पशुबलिका समर्थन असत्यका समर्थन है

सृष्टिके प्रारम्भमें सत्ययुगका समय था । उस समय देवताओंने महर्षियोंसे कहा—'श्रुति कहती है कि यज्ञमें अज-बलि होनी चाहिये । अज बकरेका नाम है, फिर आपलोग उसका बलिदान क्यों नहीं करते ?'

महर्षियोंने कहा—'देवताओंको मनुष्योंकी इस प्रकार परीक्षा नहीं लेनी चाहिये और न उनकी बुद्धिको भ्रममें डालना चाहिये । बीजका नाम ही अज है । बीजके द्वारा अर्थात् अन्नोंसे ही यज्ञ करनेका वेद निर्देश करता है । यज्ञमें पशु-वध सज्जनोंका धर्म नहीं है ।'

परंतु देवताओंने ऋषियोंकी बात स्वीकार नहीं की । दोनों पक्षोंमें इस प्रश्नपर विवाद प्रारम्भ हो गया । उसी समय राजा उपरिचर आकाशमार्गसे सेनाके साथ उधरसे निकले । भगवान् नारायणकी आराधना करके राजा उपरिचरने यह शक्ति प्राप्त की थी कि वे अपने रथ तथा सैनिकों, मन्त्रियों आदिके साथ इच्छानुसार आकाशमार्गसे सभी लोकोंमें जा सकते थे । उन प्रतापी नरेशको देखकर देवताओं तथा ऋषियोंने उन्हें मध्यस्थ बनाना चाहा । उनके समीप जाकर ऋषियोंने पूछा—'यज्ञमें पशु-बलि होनी चाहिये या नहीं ?'

राजा उपरिचरने पहले यह जानना चाहा कि देवताओं और ऋषियोंमेंसे किसका क्या पक्ष है । दोनों [illegible] जानकर राजाने सोचा—'देवताओंको प्रसन्न [illegible] यह अवसर मुझे नहीं छोड़ना चाहिये ।' उन्होंने निर्णय [illegible] दिया कि 'यज्ञमें पशुबलि होनी चाहिये ।'

उपरिचरका निर्णय सुनकर महर्षियोंने [illegible] 'तूने सत्यका निर्णय न करके [illegible] समर्थन किया है, अतः हम [illegible] नहीं जा सकेगा । पृथ्वीके ऊपर [illegible] होगा । तू पृथ्वीमें धँस जायगा ।'

उपरिचर उसी समय [illegible] देवताओंको उनपर दया [illegible] । उन्होंने कहा [illegible] महर्षियोंके वचन मिथ्या करनेकी [illegible] लोग तो श्रुतियोंका तात्पर्य [illegible] यह तो महर्षियोंका ही [illegible] होनेके कारण [illegible] देते हैं कि [illegible] द्वारा दी हुई धारा ([illegible]) [illegible] प्राप्त होगी । [illegible]

([illegible])

आखेट तथा असावधानीका दुष्परिणाम

अनेक बार तनिक-सी असावधानी दारुण दुःखका कारण हो जाती है। बहुत-से कार्य ऐसे हैं, जिनमें नाममात्रकी असावधानी भी अक्षम्य अपराध है। चिकित्सकका कार्य ऐसा ही है और आखेट भी ऐसा ही कार्य है। तनिक-सी भूल किसीके प्राण ले सकती है और फिर केवल पश्चात्ताप हाथ रहता है।

अयोध्या-नरेश महाराज दशरथ एक बार रात्रिके समय आखेटको निकले थे। सरयूके किनारे उन्हें ऐसा शब्द सुनायी पड़ा मानो कोई हाथी पानी पी रहा हो। महाराजने शब्दवेधी लक्ष्यसे बाण छोड़ दिया। यहीं बड़ी भारी भूल हो गयी। आखेटके नियमानुसार बिना लक्ष्यको ठीक-ठीक देखे बाण नहीं छोड़ना चाहिये था। दूसरे, युद्धके अतिरिक्त हाथी अवध्य है, यदि वह पागल न हो रहा हो। इसलिये हाथी समझकर भी बाण चलाना अनुचित ही था। महाराजको तत्काल किसी मनुष्यकण्ठका चीत्कार सुनायी पड़ा। वे दौड़े उसी ओर।

माता-पिताके परम भक्त श्रवणकुमार अपने अंधे माता-पिताकी तीर्थयात्राकी इच्छा पूरी करनेके लिये दोनोंको काँवरमें बैठाकर कंधेपर उठाकर यात्रा कर रहे थे। अयोध्याके पास वनमें पहुँचनेपर उनके माता-पिताको प्यास लगी। दोनोंको वृक्षके नीचे उतारकर वे जल लेने सरयू-किनारे आये। कमण्डलुके पानीमें डुबानेपर जो शब्द हुआ, उसीको महाराज दशरथने दूरसे हाथीके जल पीनेका शब्द समझकर बाण छोड़ दिया था।

महाराज दशरथके पश्चात्तापका पार नहीं था। उनका बाण श्रवणकुमारकी छातीमें लगा था। वे भूमिपर छटपटा रहे थे। महाराज अपने बाणसे एक तपस्वीको घायल देखकर भयके मारे पीले पड़ गये। श्रवणकुमारने महाराजका परिचय पाकर कहा—'मैं ब्राह्मण नहीं हूँ, अतः आपको ब्रह्महत्या नहीं लगेगी। परंतु मेरी छातीसे बाण निकाल लीजिये और मेरे प्यासे माता-पिताको जल पिला दीजिये।'

छातीसे बाण निकालते ही श्रवणकुमारके प्राण भी शरीरसे निकल गये। महाराज दशरथ जल लेकर उनके माता-पिताके पास पहुँचे और बिना बोले ही उन्हें जल देने लगे, तब उन वृद्ध अंधे दम्पतिने पूछा—'बेटा! आज तुम बोलते क्यों नहीं?'

विवश होकर महाराजको अपना परिचय देना पड़ा और सारी घटना बतानी पड़ी। अपने एकमात्र पुत्रकी मृत्यु सुनकर वे दोनों दुःखसे अत्यन्त व्याकुल हो गये। 'बेटा श्रवण! तुम कहाँ हो?' इस प्रकार चिल्लाते हुए सरयू-किनारे जानेको उठ पड़े। हाथ पकड़कर महाराज उन्हें वहाँ ले आये, जहाँ श्रवणकुमारका शरीर पड़ा था। महाराजको ही चिता बनानी पड़ी। दोनों वृद्ध दम्पति पुत्रके शरीरके साथ ही चितामें बैठ गये। महाराज दशरथके बहुत प्रार्थना करनेपर भी उन्होंने जीवित रहना स्वीकार नहीं किया और बहुत क्षमा माँगनेपर भी उन्होंने महाराजको क्षमा नहीं किया। उन्होंने महाराजको शाप दिया—'जैसे हम पुत्रके वियोगमें मर रहे हैं, वैसे ही तुम भी पुत्रके वियोगमें तड़प-तड़पकर मरोगे।'

वृद्ध दम्पतिका यह शाप सत्य होकर रहा। श्रीरामके वन जानेपर चक्रवर्ती महाराजने उनके वियोगमें व्याकुल होकर देहत्याग किया। —सु० सिं०

यज्ञमें या देवताके लिये की गयी पशुबलि भी पुण्योंको नष्ट कर देती है

विदर्भदेशमें सत्य नामका एक दरिद्र ब्राह्मण था। उसका विश्वास था कि देवताके लिये पशु-बलि देनी ही चाहिये। परंतु दरिद्र होनेके कारण न तो वह पशु-पालन कर सकता था और न बलिदानके लिये पशु खरीद ही सकता था। इसलिये कूष्माण्डादि फलोंको ही पशु कल्पित करके, उनका बलिदान देकर हिंसाप्रधान यज्ञ एवं पूजन करता था।

एक तो वह ब्राह्मण स्वयं सदाचारी, तपस्वी, त्यागी और धर्मात्मा था और दूसरे उसकी पत्नी सुशीला पतिव्रता तथा तपस्विनी थी। उस साध्वीको पतिका हिंसाप्रधान पूजन—यज्ञ सर्वथा अरुचिकर था; किंतु पतिकी प्रसन्नताके लिये वह उनका सम्भार अनिच्छापूर्वक करती थी। कोई धर्माचरणकी सच्ची इच्छा रखता हो और उससे अज्ञानवश कोई भूल होती हो तो उस भूलको स्वयं देवता सुधार देते हैं। उस तपस्वी ब्राह्मणसे हिंसापूर्ण संकल्पकी जो भूल हो रही थी, उसे

सुधारनेके लिये धर्म स्वयं मृगका रूप धारण करके उसके पास आकर बोला—'तुम अङ्गहीन यज्ञ कर रहे हो। पशु-बलिका संकल्प करके केवल फलादिमें पशुकी कल्पना करनेसे पूरा फल नहीं होता। इसलिये तुम मेरा बलिदान करो।'

ब्राह्मण हिंसा-प्रधान यज्ञ-पूजन करते थे, पशु-बलिका संकल्प भी करते थे; किंतु उन्होंने कभी पशु-बलि की नहीं थी। उनका कोमलहृदय मृगकी हत्या करनेको प्रस्तुत नहीं हुआ। ब्राह्मणने मृगको हृदयसे लगाकर कहा—'तुम्हारा मङ्गल हो, तुम शीघ्र यहाँसे चले जाओ।'

धर्म, जो मृग बनकर आया था, ब्राह्मणसे बोला—'आप मेरा वध कीजिये। यज्ञमें मारे जानेसे मेरी सद्गति होगी और पशु-बलि करके आप भी स्वर्ग प्राप्त करेंगे। आप इस समय स्वर्गकी अप्सराओं तथा गन्धर्वोंके विचित्र विमानोंको देख सकते हैं।'

ब्राह्मण यह भूल गया कि मृगने छलसे वही तर्क दिया है, जो बलिदानके पक्षपाती दिया करते हैं। [illegible] तथा अप्सराओंको देखकर उसके मनमें स्वर्ग-प्राप्तिकी कामना तीव्र हो गयी। उसने मृगका बलिदान कर देनेका विचार किया।

अब मृगने कहा—'ब्रह्मन्! [illegible] की हिंसा करनेसे किसीका कल्याण सम्भव है?'

ब्राह्मणने सोचकर उत्तर दिया—'[illegible] दूसरा कैसे अपना हित कर सकता है।'

अब मृग अपने वास्तविक रूपमें प्रकट हो गया। साक्षात् धर्मराजको सामने देखकर ब्राह्मण उनके [illegible] गिर पड़ा। धर्मने कहा—'ब्रह्मन्! आपने मनमें मृगको [illegible] देनेकी इच्छा मात्र की, इसीसे आपकी तपस्याका बहुत बड़ा [illegible] नष्ट हो गया है। यज्ञ या पूजनमें पशु-हिंसा उचित नहीं है।'

उसी समयसे ब्राह्मणने यज्ञ-पूजनमें पशु-बलि [illegible] भी त्याग दिया। —सु० सिं० ([illegible])

दूसरोंका अमङ्गल चाहनेमें अपना अमङ्गल पहले होता है

'देवराज इन्द्र तथा देवताओंकी प्रार्थना स्वीकार करके महर्षि दधीचिने देह-त्याग किया। उनकी अस्थियाँ लेकर विश्वकर्माने वज्र बनाया। उसी वज्रसे अजेयप्राय वृत्रासुरको इन्द्रने मारा और स्वर्गपर पुनः अधिकार किया।' ये सब बातें अपनी माता सुवर्चासे बालक पिप्पलादने सुनीं। अपने पिता दधीचिके घातक देवताओंपर उन्हें बड़ा क्रोध आया। 'स्वार्थवश ये देवता मेरे तपस्वी पितासे उनकी हड्डियाँ माँगनेमें भी लज्जित नहीं हुए!' पिप्पलादने सभी देवताओंको नष्ट कर देनेका संकल्प करके तपस्या प्रारम्भ कर दी।

पवित्र नदी गौतमीके किनारे बैठकर तपस्या करते हुए पिप्पलादको दीर्घकाल बीत गया। अन्तमें भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुए। उन्होंने पिप्पलादको दर्शन देकर कहा—'बेटा! वर माँगो।'

पिप्पलाद बोले—'प्रलयङ्कर प्रभु! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो अपना तृतीय नेत्र खोलें और स्वार्थी देवताओंको भस्म कर दें।'

भगवान् आशुतोषने समझाया—'पुत्र! मेरे रुद्र-रूपका तेज तुम सहन नहीं कर सकते थे, इसीलिये मैं तुम्हारे सम्मुख सौम्य रूपमें प्रकट हुआ। मेरे तृतीय नेत्रके तेजका आह्वान मत करो। उससे सम्पूर्ण विश्व भस्म हो जायगा।'

पिप्पलादने कहा—'प्रभो! देवताओं और इनके द्वारा सञ्चालित इस विश्वपर मुझे तनिक भी मोह नहीं। [illegible] देवताओंको भस्म कर दें, भले विश्व भी उनके साथ भस्म हो जाय।'

परमोदार मङ्गलमय आशुतोष हँसे। उन्होंने कहा: 'तुम्हें एक अवसर और मिल रहा है। तुम अपने अन्तःकरणमें मेरे रुद्र-रूपका दर्शन करो।'

पिप्पलादने हृदयमें कपालमाली, [illegible], त्रिलोचन, अहिभूषण भगवान् रुद्रका दर्शन किया। [illegible] प्रचण्ड स्वरूपके हृदयमें प्रादुर्भाव होते ही [illegible] कि उनका रोम-रोम भस्म हुआ जा रहा है। [illegible] थर थर काँपने लगा। [illegible] चेतनाहीन हो जायँगे। आर्तस्वरमें उन्होंने फिर [illegible] शङ्करको पुकारा। [illegible] शशाङ्कशेखर प्रभु [illegible] खड़े थे।

'मैंने देवताओंको भस्म करनेकी प्रार्थना की थी, [illegible] मुझे ही भस्म करना [illegible]' [illegible] स्वरमें बोले।

शङ्करजीने स्नेहपूर्ण [illegible] [illegible]

प्रारम्भ होता है, जहाँ उसका आह्वान किया गया हो। तुम्हारे हाथके देवता इन्द्र हैं, नेत्रके सूर्य, नासिकाके अश्विनीकुमार, मनके चन्द्रमा। इसी प्रकार प्रत्येक इन्द्रिय तथा अङ्गके अधिदेवता हैं। उन अधिदेवताओंको नष्ट करनेसे शरीर कैसे रहेगा। बेटा! इसे समझो कि दूसरोंका अमङ्गल चाहनेपर पहले स्वयं अपना अमङ्गल होता है। तुम्हारे पिता महर्षि दधीचिने दूसरोंके कल्याणके लिये अपनी हड्डियाँतक दे दीं। उनके त्यागने उन्हें अमर कर दिया। वे दिव्यधाममें अनन्त कालतक निवास करेंगे। तुम उनके पुत्र हो। तुम्हें अपने पिताके गौरवके अनुरूप सबके मङ्गलका चिन्तन करना चाहिये।'

पिप्पलादने भगवान् विश्वनाथके चरणोंमें मस्तक झुका दिया।

—सु० सिं०

परोपकार महान् धर्म

दुरात्मा रावणने मारीचको माया-मृग बननेके लिये बाध्य किया। मायासे स्वर्ण-मृग बने मारीचका आखेट करने धनुष लेकर श्रीराम उसके पीछे गये। वह उन्हें दूर वनमें ले गया और अन्तमें जब उनके बाणसे मरा, तब मरते-मरते भी 'हा लक्ष्मण!' पुकारकर उसने छल किया। उस आर्त-स्वरको सुनकर श्रीजानकी व्याकुल हो गयीं। उनके आग्रह-से लक्ष्मणजीको अपने ज्येष्ठ भ्राताका पता लगाने वनमें जाना पड़ा। पञ्चवटीमें श्रीवैदेहीको अकेली देखकर रावण वहाँ आया और उसने बलपूर्वक उन जनककुमारीको रथमें बैठा लिया।

श्रीसीताजीको रथमें बैठाकर राक्षसराज रावण शीघ्रतासे भागा जा रहा था। वे श्रीमैथिली आर्त-क्रन्दन कर रही थीं। उनकी वह आर्त-क्रन्दन-ध्वनि पक्षिराज जटायुने भी सुनी। जटायु वृद्ध थे; उनको पता था कि रावण विश्वविजयी है, अत्यन्त क्रूर है और ब्रह्माजीके वरदानके प्रभावसे अजेयप्राय है। जटायु समझते थे कि वे न रावणको मार सकते हैं न पराजित कर सकते हैं। श्रीजनकनन्दिनीको वे छुड़ा सकेंगे उस क्रूर राक्षससे, इसकी कोई आशा न उन्हें थी न हो सकती थी। उल्टे रावणका विरोध करनेपर मृत्यु निश्चित थी। परंतु सफलता-विफलतामें चित्तको समान रखकर प्राणीको अपने कर्तव्यका दृढ़तासे पालन करना चाहिये। यही जटायुने किया। वे पूरे वेगसे रावणपर टूट पड़े। उसका रथ अपने आघातोंसे तोड़ डाला। अपने पंजों तथा चोंचकी मारसे रावणके शरीरको नोच डाला। पर अन्त-में रावणने तलवार निकालकर उनके पंख काट दिये। जटायु भूमिपर गिर पड़े। रावण श्रीजानकीको लेकर आकाश-मार्गसे चला गया।

मारीचको मारकर श्रीराम लौटे। लक्ष्मण उन्हें मार्गमें ही मिल गये। कुटियामें श्रीजानकीको न देखकर वे व्याकुल हो गये। नाना प्रकारका विलाप करते हुए वैदेहीको ढूँढ़ते आगे बढ़े। मार्गमें उनकी प्रतीक्षा करते जटायु अन्तिम स्थितिमें मृत्युके क्षण गिन रहे थे। मर्यादापुरुषोत्तमको उन्होंने विदेह-नन्दिनीका समाचार दिया। उस दिन श्रीराघवेन्द्रने नरनाट्य त्यागकर कहा—'तात! आप अपने शरीरको रक्खें! मैं आपको अभी स्वस्थ कर दूँगा।'

जटायु इसे कैसे स्वीकार कर लेते। श्रीराम सम्मुख खड़े हों, मृत्युके लिये ऐसा सौभाग्यशाली क्षण क्या बार-बार प्राप्त होता है! वे त्रिभुवनके स्वामी जटायुको गोदमें लेकर अपनी जटाओंसे उनके रक्तमें सने शरीरकी धूलि पोंछ रहे थे, उन्हें अपने अश्रुओंसे स्नान करा रहे थे। वे अनुभव कर रहे थे कि सर्वसमर्थ होनेपर भी वे जटायुको कुछ नहीं दे सकते। नेत्रोंमें अश्रु भरकर उन श्रीराघवेन्द्रने कहा—

'तात कर्म निज तें गति पाई॥
परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥'

'जटायु! तुमने तो अपने कर्मसे ही परमगति प्राप्त कर ली है। तुम पूर्णकाम हो गये हो, तुम्हें मैं दे क्या सकता हूँ!'

शरीर त्यागकर जटायु जब चतुर्भुज दिव्य भगवत्पार्षद देहसे वैकुण्ठ चले गये, तब श्रीरामने अपने हाथों उनके उस गीधदेहका बड़े सम्मानपूर्वक अग्नि-संस्कार किया।—सु० सिं०

(रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड)

अर्जुनकी शरणागतवत्सलता और श्रीकृष्णके साथ युद्ध

(नारदजीकी युद्ध-दर्शनोत्सुकता)

एक बार महर्षि गालव जब प्रातः सूर्यार्घ्य प्रदान कर रहे थे, उनकी अञ्जलिमें आकाशमार्गसे जाते हुए चित्रसेन गन्धर्वकी थूकी हुई पीक गिर पड़ी। मुनिको इससे बड़ा क्रोध हुआ। वे उसे शाप देना ही चाहते थे कि उन्हें अपने तपोनाशका ध्यान आ गया और रुक गये। उन्होंने जाकर भगवान् श्रीकृष्णसे फरियाद की। श्यामसुन्दर तो ब्रह्मण्यदेव ठहरे ही, झट प्रतिज्ञा कर ली—चौबीस घंटेके भीतर चित्रसेनको वध कर देनेकी। ऋषिको पूर्ण संतुष्ट करनेके लिये उन्होंने माता देवकी तथा महर्षिके चरणोंकी शपथ भी ले ली।

गालवजी अभी लौटे ही थे कि देवर्षि नारद वीणा झनकारते पहुँच गये। भगवान्ने उनका स्वागत-आतिथ्य किया। शान्त होनेपर नारदजीने कहा—'प्रभो! आप तो परमानन्दकन्द कहे जाते हैं, आपके दर्शनसे लोग विषादमुक्त हो जाते हैं; पर पता नहीं क्यों आज आपके मुख-कमलपर विषादकी रेखा दीख रही है।' इसपर श्यामसुन्दरने गालवजीके सारे प्रसङ्गको सुनाकर अपनी प्रतिज्ञा सुनायी। अब नारदजी-को कैसा चैन! आनन्द आ गया। झटपट चले और पहुँचे चित्रसेनके पास। चित्रसेन भी उनके चरणोंमें गिरकर अपनी कुण्डली आदि लाकर ग्रहदशा पूछने लगा। नारदजीने कहा—'अरे तुम अब यह सब क्या पूछ रहे हो? तुम्हारा अन्तकाल निकट आ पहुँचा है। अपना कल्याण चाहते हो तो बस, कुछ दान-पुण्य कर लो। चौबीस घंटोंमें श्रीकृष्णने तुम्हें मार डालनेकी प्रतिज्ञा कर ली है।'

अब तो बेचारा गन्धर्व घबराया। वह लगा दौड़ने इधर-उधर। ब्रह्मधाम, शिवपुरी, इन्द्र-यम-वरुण सभीके लोकोंमें दौड़ता फिरा; पर किसीने उसे अपने यहाँ ठहरनेतक न दिया। श्रीकृष्णसे शत्रुता कौन उधार ले। अब बेचारा गन्धर्वराज अपनी रोती-पीटती स्त्रियोंके साथ नारदजीकी ही शरणमें आया। नारदजी दयालु तो ठहरे ही; बोले, 'अच्छा चलो यमुना-तटपर।' वहाँ जाकर एक स्थानको दिखलाकर कहा 'आज आधी रातको यहाँ एक स्त्री आयेगी। उस समय तुम ऊँचे स्वरसे विलाप करते रहना। वह स्त्री तुम्हें बचा लेगी। पर ध्यान रखना—जबतक वह तुम्हारे कष्ट दूर कर देनेकी प्रतिज्ञा न कर ले, तबतक तुम अपने कष्टका कारण भूलकर भी मत बताना।'

नारदजी भी विचित्र ठहरे। एक ओर तो चित्रसेनको [illegible] समझाया, दूसरी ओर पहुँच गये अर्जुनके महलमें [illegible] पास। उससे बोले—'सुभद्रे! आज [illegible] है। आज आधी रातको यमुना-स्नान करने [illegible] रक्षा करनेसे अक्षय पुण्यकी प्राप्ति होगी।'

आधी रातका अवसर हुआ। सुभद्रा [illegible] साथ यमुना-स्नानको पहुँचीं। वहाँ उन्हें [illegible] सुनायी पड़ा। नारदजीने दीनोद्धारका [illegible] रक्खा था। सुभद्राने सोचा, 'चलो, [illegible]।' वे तुरंत उधर गयीं तो चित्रसेन रोता मिला। उन्होंने [illegible] पूछा, पर वह बिना प्रतिज्ञाके बतलाये ही नहीं। [illegible] प्रतिज्ञाबद्ध होनेपर उसने [illegible] की। [illegible] सुनकर सुभद्रा बड़े धर्मसंकट और असमंजसमें पड़ गयीं। एक ओर श्रीकृष्णकी प्रतिज्ञा—यह भी [illegible], दूसरी ओर अपनी प्रतिज्ञा। [illegible] करके वे उसे अपने साथ ले आयीं। पर [illegible] परिस्थिति अर्जुनके सामने रक्खी। (अर्जुनका [illegible] मित्र भी था।) अर्जुनने सुभद्राको [illegible] कि तुम्हारी प्रतिज्ञा पूरी होगी।'

नारदजीने इधर जब यह सब ठीक कर [illegible] तब द्वारका पहुँचे और श्रीकृष्णचन्द्रसे [illegible] 'महाराज! अर्जुनने चित्रसेनको आश्रय दे रक्खा है। [illegible] आप सोच-विचारकर ही युद्धके लिये [illegible]।' [illegible] कहा—'नारदजी! एक बार आप [illegible] समझाकर लौटानेकी चेष्टा तो कर [illegible]' [illegible] दौड़े हुए द्वारकासे इन्द्रप्रस्थ पहुँचे। [illegible] साफ कह दिया—'यद्यपि मैं [illegible] शरण हूँ और मेरे पास केवल [illegible] तो उनके दिये हुए [illegible] होनेकी बातपर ही दृढ़ हूँ। मैं [illegible] प्रतिज्ञाकी रक्षा करूँगा। [illegible] हैं।' दौड़कर देवर्षि [illegible] अर्जुनका वृत्तान्त कह सुनाया। [illegible] हुई। [illegible] उपस्थित हुए। [illegible]

हुई। पर कोई जीत नहीं सका। अन्तमें श्रीकृष्णने सुदर्शन-चक्र छोड़ा। अर्जुनने पाशुपतास्त्र छोड़ दिया। प्रलयके लक्षण देखकर अर्जुनने भगवान् शंकरको स्मरण किया। उन्होंने दोनों शस्त्रोंको मनाया। फिर वे भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णके पास पहुँचे और कहने लगे—'प्रभो! 'राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद, पुरान, लोक सब साखी।'—भक्तोंकी बानके आगे अपनी प्रतिज्ञाको भूल जाना तो आपका सहज स्वभाव है। इसकी तो असंख्य आवृत्तियाँ हुई होंगी। अब तो इस लीलाको यहीं समाप्त कीजिये।'

बाण समाप्त हो गये। प्रभु युद्धसे विरत हो गये। अर्जुनको गले लगाकर उन्होंने युद्धश्रमसे मुक्त किया, चित्रसेनको अभय किया। सब लोग धन्य-धन्य कर उठे।

पर गालवको यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने कहा, 'यह तो अच्छा मजाक रहा।' स्वच्छ हृदयके ऋषि बोल उठे—'लो, मैं अपनी शक्ति प्रकट करता हूँ। मैं कृष्ण, अर्जुन, सुभद्रासमेत चित्रसेनको जला डालता हूँ।' पर बेचारे साधुने ज्यों ही जल हाथमें लिया, सुभद्रा बोल उठीं—'मैं यदि कृष्णकी भक्त होऊँ और अर्जुनके प्रति मेरा पातिव्रत्य पूर्ण हो तो यह जल ऋषिके हाथसे पृथ्वीपर न गिरे।' ऐसा ही हुआ। गालव बड़े लज्जित हुए। उन्होंने प्रभुको नमस्कार किया और वे अपने स्थानको लौट गये। तदनन्तर सभी अपने-अपने स्थानको पधारे।* —जा० श०

जीर्णोद्धारका पुण्य

पहले गौडदेशमें वीरभद्र नामका एक अत्यन्त प्रसिद्ध राजा राज्य करता था। वह बड़ा प्रतापी, विद्वान् तथा धर्मात्मा था। उसकी पत्नीका नाम चम्पकमञ्जरी तथा प्रधान मन्त्रीका नाम वीरभद्र था। ये तथा उसके दूसरे मन्त्री एवं पुरोहित भी धर्मनिष्ठ थे। ये सभी कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, धर्म-अधर्म आदिका निर्णय सदा धर्मशास्त्रोंके आधारपर ही करते थे; क्योंकि वे जानते थे कि प्रायश्चित्त, चिकित्सा, ज्यौतिषका फलादेश अथवा धर्म-निर्णय सदा शास्त्रोंके आधारपर ही करना चाहिये। जो बिना शास्त्रोंके यों ही मनमाना फतवा दे डालता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है†। इसलिये ये लोग राजाको सदा धर्मशास्त्रादिको श्रवण कराते रहते थे। उसके राज्यमें कोई नगण्य व्यक्ति भी अधर्म या अन्यायका आचरण नहीं करता था। उस समय गौडदेशमें स्वर्ग-जैसा सुराज हो रहा था।

एक दिन राजा वीरभद्र अपने मन्त्रियोंके साथ वनमें शिकार खेलने गया। वे वहाँ दौड़ते-दौड़ते थक गये और तबतक दोपहर भी हो गयी थी। वे लोग प्याससे बेचैन हो रहे थे। तबतक उनकी दृष्टि एक छोटी-सी पोखरीपर गयी, जो प्रायः सूखी थी। उसके मन्त्री बुद्धिसागरने उसे देखकर उसमेंसे जल निकालनेकी युक्ति सोची। उसने उसमें एक हाथका गड्ढा खोदा और जल निकाल लिया। उस जलके पीनेसे राजा तथा मन्त्री दोनोंकी ही पूर्ण तृप्ति हो गयी। अब धर्म-अर्थके पण्डित उस मन्त्रीने राजासे कहा—'राजन्! यह पुष्करिणी (तलैया, पोखरी) न जाने इस पर्वतकी अधित्यका (चौरस भूमि) में किसने बनायी थी। अभीतक तो यह वर्षाके जलसे भरी थी, पर अब सूख गयी है। अब यदि आज्ञा दें तो मैं इसका पूर्णतया उद्धार करके चारों ओर बढ़िया बाँध बनाकर इसे सरोवरका ही रूप दे दूँ।'

राजाने मन्त्रीके इस प्रस्तावको बड़ी प्रसन्नताके साथ स्वीकार कर लिया। उसने बड़े समारोहसे बुद्धिसागरको इस कार्यमें नियुक्त किया। शुद्धात्मा मन्त्रीने बड़ी श्रद्धासे दो सौ हाथ लंबा-चौड़ा एक सरोवर तैयार किया और उसके चारों ओर पत्थरके घाट बनवा दिया। इस तरह उसमें अगाध

* बँगलाकी एक पुस्तकमें अर्जुन-कृष्ण-युद्धकी एक और न्यारी कथा आती है। कहते हैं कि महर्षि दुर्वासाके शापके कारण उर्वशीको एक बार घोड़ी हो जाना पड़ा था। दिनभर तो उसकी शक्ल घोड़ीकी रहती, पर रातको वह अपने रूपमें लौट आती। इसी दशामें वह अवन्ती-नरेश दण्डीके पास रह रही थी। नारदजीने श्रीकृष्णको समझाया कि 'आप यदि इस घोड़ीको अवन्तीनरेशसे ले लें तो बड़ा अच्छा रहे। इस घोड़ीमें बड़े माङ्गलिक लक्षण हैं।' भगवान्ने दण्डीके यहाँ खबर भेजी। दण्डीने इसे अस्वीकार कर दिया। भगवान्ने कहा—'तो फिर युद्धके लिये तैयार हो जाओ।' अब दण्डी उस घोड़ीके साथ भागता हुआ सबके शरण गया। पर कौन रखते श्रीकृष्णद्रोहीको। अन्तमें अर्जुन-सुभद्राने उसे शरण दी। युद्ध छिड़ गया। बड़ा घमासान हुआ। शेषमें दुर्वासाने आकर उर्वशीको शापमुक्त कर दिया और सारा झगड़ा वहीं समाप्त हो गया। कल्पभेदसे दोनों ही वर्णन सत्य हो सकते हैं।

† 'प्रायश्चित्तं चिकित्सां च ज्यौतिषं धर्मनिर्णयम्। विना शास्त्रेण यो ब्रूयात् तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥' (नारदपु० १२।७४)

जलराशि संचित हो गयी। तबसे यह वनचरों एवं पक्षियोंका क्रीडास्थल एवं जलपानका आश्रय हो गया।

आयु समाप्त होनेपर बुद्धिसागर जब धर्मराजके यहाँ पधारे, तब धर्मराज चित्रगुप्तसे उनके कृत्योंके सम्बन्धमें पूछताछ की। चित्रगुप्तने उनके सरोवर-निर्माणकी चर्चा की। साथ ही यह भी कहा कि 'ये राजाको सदा ही धर्मकार्यमें प्रेरित करते थे।' चित्रगुप्तके यों कहनेपर धर्मराजने बुद्धिसागरको धर्मविमानपर चढ़ाये जानेकी आज्ञा दे दी। कुछ दिनोंके बाद राजा वीरभद्र भी वहीं (यमलोक) पधारे और धर्मराजको आदरपूर्वक नमस्कार करके एक ओर खड़े हो गये। पुण्यसम्बन्धी प्रश्न किये जानेपर चित्रगुप्तने उनके लिये भी उसी सरोवर-निर्माणके पुण्यकी चर्चा की। तदनन्तर धर्मराजने बड़ी अद्भुत वाणीसे राजाको सम्बोधित करते हुए कहा—'राजन्! पूर्वकालमें सैन्धवगिरिकी अधित्यकामें एक लवा पक्षीने जल ठहरानेके लिये अपनी चोंचसे दो अंगुल भूमि खोदी थी। तत्पश्चात् कालान्तरमें एक शूकरने उसी स्थलपर अपने थुथुनेसे एक हाथ गहरा गड्ढा खोदा। तबसे उसमें हाथ भर जल रहने लगा। तदनन्तर एक भैंसेने खोदकर उसे दो हाथ गहरा कर दिया। [illegible] तबसे तो उसमें दो मासतक जल ठहरने लगा [illegible] वनके छोटे-छोटे जीव प्याससे व्याकुल होनेपर [illegible] जलको पीते थे। तदनन्तर [illegible] तीन [illegible] हाथीने उस गड्ढेको तीन हाथ गहरा कर दिया। [illegible] तीन महीनेतक पर्याप्त जल ठहरने लगा गया। [illegible] सूख जानेपर आप उस स्थानपर आये और [illegible] बुद्धिसागरकी सम्मतिसे सरोवर-निर्माण[illegible] कर दिया। [illegible] तो उसमें बहुत जल संचित हो गया और पत्थरों [illegible] पूर्वक घाट बँध जानेपर यह महान् सरोवर ही बन गया। जलाशय-निर्माणके उपक्रममें अपने-अपने पुण्यसे [illegible] लवा, शूकर, भैंस, हाथी और मन्त्री—पाँच [illegible] धर्मविमान-पर आरूढ हुए हैं, अब छठे आप भी उसपर चढ़ [illegible]।'

धर्मराजके इन विचित्र तथा सुखद [illegible] राजा वीरभद्र भी उस विमानपर जा बैठा। [illegible] जीर्णोद्धारका पुण्य अत्यन्त महान् है, [illegible] पुनः-पुनः उद्धारमें ये छः जीव धर्मविमानपर आरूढ हुए।

—[illegible]

श्वेतका उद्धार

एक बार प्रभु श्रीरामचन्द्र पुष्पक यानसे चलकर तपोवनोंका दर्शन करते हुए महर्षि अगस्त्यके यहाँ गये। महर्षिने उनका बड़ा स्वागत किया। अन्तमें अगस्त्यजी विश्वकर्माका बनाया एक दिव्य आभूषण उन्हें देने लगे। इसपर भगवान् श्रीरामने आपत्ति की और कहा—'ब्रह्मन्! आपसे मैं कुछ लूँ, यह बड़ी निन्दनीय बात होगी। क्षत्रिय भला, जान-बूझकर ब्राह्मणका दिया हुआ दान क्योंकर ले सकता है।' फिर अगस्त्यजीके अत्यन्त आग्रह करनेपर उन्होंने उसे ले लिया और पूछा कि 'वह आभूषण उन्हें कैसे मिला था।'

अगस्त्यजीने कहा—''रघुनन्दन! पहले त्रेतायुगमें एक बहुत विशाल वन था, पर उसमें पशु-पक्षी नहीं रहते थे। उस वनके मध्यभागमें चार कोस लम्बी एक झील थी। वहाँ मैंने एक बड़े आश्चर्यकी बात देखी। सरोवरके पास ही एक आश्रम था, किंतु उसमें न तो कोई तपस्वी था और न कोई जीव-जन्तु। उस आश्रममें मैंने ग्रीष्म ऋतुकी एक रात बितायी। सबेरे उठकर तालबकी ओर चला तो रास्तेमें मुझे एक मुर्दा दीखा, जिसका शरीर [illegible] होता था किसी तरुण पुरुषकी लाश है। मैं [illegible] लाशके सम्बन्धमें कुछ सोच ही रहा था कि [illegible] दिव्य विमान उतरता दिखायी दिया। [illegible] सरोवरके निकट आ पहुँचा। [illegible] दिव्य मनुष्य उतरा और [illegible] मांस खाने लगा। भरपेट उस [illegible] मुर्देका [illegible] वह फिर सरोवरमें उतरा और [illegible] स्वर्गकी ओर जाने लगा। उस [illegible] देख मैंने कहा—'महाभाग! [illegible] बात पूछता हूँ। तुम कौन हो? [illegible] समान जान पड़ते हो, किंतु [illegible] घृणित है। सौम्य! तुम [illegible] कहाँ रहते हो?'

''रघुनन्दन! [illegible] कहा—'विप्रवर! मैं [illegible] श्वेत था। [illegible]

मरणपर्यन्त तपस्याका निश्चय करके मैं यहाँ आ गया। अस्सी हजार वर्षोंतक कठोर तप करके मैं ब्रह्मलोकको गया, किंतु वहाँ पहुँचनेपर मुझे भूख और प्यास अधिक सताने लगी। मेरी इन्द्रियाँ तिलमिला उठीं। मैंने ब्रह्माजीसे पूछा—'भगवन्! यह लोक तो भूख और प्याससे रहित सुना गया है; तथापि भूख-प्यास मेरा पिण्ड यहाँ भी नहीं छोड़ती, यह मेरे किस कर्मका फल है? तथा मेरा आहार क्या होगा?'

'इसपर ब्रह्माजीने बड़ी देरतक सोचकर कहा—'तात! पृथ्वीपर दान किये बिना यहाँ कोई वस्तु खानेको नहीं मिलती। तुमने तो भिखमंगेको कभी भीखतक नहीं दी है। इसलिये यहाँपर भी तुम्हें भूख-प्यासका कष्ट भोगना पड़ रहा है। राजेन्द्र! भाँति-भाँतिके आहारोंसे जिसको तुमने भलीभाँति पुष्ट किया था, वह तुम्हारा उत्तम शरीर पड़ा हुआ है, तुम उसीका मांस खाओ, उसीसे तुम्हारी तृप्ति होगी। वह तुम्हारा शरीर अक्षय बना दिया गया है। उसे प्रतिदिन तुम खाकर ही तृप्त रह सकोगे। इस प्रकार अपने ही शरीरका मांस खाते-खाते जब सौ वर्ष पूरे हो जायँगे, तब तुम्हें महर्षि अगस्त्यके दर्शन होंगे। उनकी कृपासे तुम संकटसे छूट जाओगे। वे इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओं तथा असुरोंका भी उद्धार करनेमें समर्थ हैं, फिर यह कौन-सी बड़ी बात है?'

'विप्रवर! ब्रह्माजीका यह कथन सुनकर मैंने यह घृणित कार्य आरम्भ किया। यह शव न तो कभी नष्ट होता है, साथ ही मेरी तृप्ति भी इसीके खानेसे होती है। न जाने कब उन महाभागके दर्शन होंगे, जब इससे पिण्ड छूटेगा। अब तो ब्रह्मन्! सौ वर्ष भी पूरे हो गये हैं।'

''रघुनन्दन! राजा श्वेतका यह कथन सुनकर तथा उसके घृणित आहारकी ओर देखकर मैंने कहा—'अच्छा! तो तुम्हारे सौभाग्यसे मैं अगस्त्य ही आ गया हूँ। अब निःसंदेह तुम्हारा उद्धार करूँगा।' इतना सुनते ही वह दण्डकी भाँति मेरे पैरोंपर गिर गया और मैंने उसे उठाकर गले लगा लिया। वहीं उसने अपने उद्धारके लिये इस दिव्य आभूषणको दानरूपमें मुझे प्रदान किया। उसकी दुःखद अवस्था और करुण वाणी सुनकर मैंने उसके उद्धारकी दृष्टिसे ही वह दान ले लिया, लोभवश नहीं। मेरे इस आभूषणको लेते ही उसका वह मुर्दा शरीर अदृश्य हो गया। फिर राजा श्वेत बड़ी प्रसन्नताके साथ ब्रह्मलोकको चले गये।''

तदनन्तर और कुछ दिनोंतक सत्सङ्ग करके भगवान् वहाँसे अयोध्याको लौटे।—जा० श०

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अध्याय ३३; वाल्मी० रामा० उत्तरकाण्ड)

विचित्र परीक्षा

एक समय श्रीमद्राघवेन्द्र महाराजराजेन्द्र श्रीरामचन्द्रने एक बड़ा विशाल अश्वमेध यज्ञ किया। उसमें उन्होंने सर्वस्व दान कर दिया। उस समय उन्होंने घोषणा कर रक्खी थी कि 'यदि कोई व्यक्ति अयोध्याका राज्य, पुष्पकविमान, कौस्तुभमणि, कामधेनु गाय या सीताको भी माँगेगा तो मैं उसे दे दूँगा।' बड़े उत्साहके साथ यज्ञकी समाप्ति हुई। ठीक श्रीरामजन्मके ही दिन अवभृथ-स्नान हुआ। भगवान्के सच्चिदानन्दमय श्रीविग्रहका दर्शन करके जनता धन्य हो रही थी। देवता, गन्धर्व दिव्य वाद्य बजाकर पुष्पवृष्टि कर रहे थे। अन्तमें भगवान्ने चिन्तामणि और कामधेनुको अपने गुरुको दान करनेकी तैयारी की।

वसिष्ठजीने सोचा कि 'मेरे पास नन्दिनी तो है ही। यहाँ मैं एक अपूर्व लीला करूँ। आज श्रीराघवके औदार्यका प्रदर्शन कराकर मैं इनकी कीर्ति अक्षय कर दूँ।' यों विचारकर उन्होंने कहा, 'राघव! यह गोदान क्या कर रहे हो, इससे मेरी तृप्ति नहीं होती। यदि तुम्हें देना ही हो तो सर्वालंकारमण्डिता सीताको ही दान करो। अन्य सैकड़ों स्त्रियों या वस्तुओंसे मेरा कोई प्रयोजन या तृप्ति सम्भव नहीं।'

इतना सुनना था कि जनतामें हाहाकार मच गया। कुछ लोग कहने लगे कि 'क्या ये बूढ़े वसिष्ठ पागल हो गये?' कुछ लोग कहने लगे कि 'यह मुनिका केवल विनोद है।' कोई कहने लगा—'मुनि राघवकी धैर्य-परीक्षा कर रहे हैं।' इसी बीच श्रीरामचन्द्रजीने हँसकर सीताजीको बुलाया और उनका हाथ पकड़कर वे कहने लगे—'हाँ, अब आप स्त्रीदानका मन्त्र बोलें, मैं सीताको दान कर रहा हूँ।' वसिष्ठने भी यथाविधि इसका उपक्रम सम्पन्न किया। अब तो सभी जड-चेतनात्मक जगत् चकित हो गया। वसिष्ठजीने सीताको अपने पीछे बैठनेको कहा। सीताजी भी खिन्न हो गयीं। तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीने कहा कि 'अब कामधेनु गाय भी लीजिये।'

वसिष्ठजीने इसपर कहा—'महाबाहो राम ! मैंने केवल तुम्हारे औदार्य-प्रदर्शनके लिये यह कौतूहल रचा था। अब तुम मेरी बात सुनो। सीताका आठगुना सोना तौलकर तुम इसे वापस ले लो और आजसे तुम मेरी आज्ञासे कामधेनु, चिन्तामणि, सीता, कौस्तुभमणि, पुष्पकविमान, अयोध्यापुरी तथा सम्पूर्ण राज्य किसीको देनेका नाम न लेना। यदि मेरी इस आज्ञाका लोप करोगे तो विश्वास रक्खो, मेरी आज्ञा न माननेसे तुम्हें बहुत [illegible] होगा। [illegible] अतिरिक्त तुम जो चाहो, [illegible]।'

तदनन्तर भगवान्ने [illegible] केवल दो वस्त्रोंके साथ सीताको [illegible]। [illegible] पुष्पवृष्टि होने लगी तथा [illegible] दिशाएँ भर गयीं। फिर [illegible] पूरी हुई। —जा० श० ([illegible])

विलक्षण दानवीरता

कर्णका वास्तविक नाम तो वसुषेण था। माताके गर्भसे वसुषेण दिव्य कवच और कुण्डल पहिने उत्पन्न हुए थे। उनका यह कवच, जो उनके शरीरसे चर्मकी भाँति लगा था, अस्त्र-शस्त्रोंसे अभेद्य था और शरीरके साथ ही बढ़ता गया था। उनके कुण्डल अमृतसिक्त थे। उन कुण्डलोंके कानोंमें रहते, उनकी मृत्यु सम्भव नहीं थी।

अर्जुनके प्रतिस्पर्धी थे कर्ण। सभी जानते थे कि युद्धमें अर्जुनकी समता कर्ण ही कर सकते हैं। युद्ध अनिवार्य जान पड़ता था। पाण्डव-पक्षमें सबको कर्णकी चिन्ता थी। धर्मराज युधिष्ठिरको कर्णके भयसे बहुत बेचैनी होती थी। अन्तमें देवराज इन्द्रने युधिष्ठिरके पास संदेश भेजा—'कर्णकी अजेयता समाप्त कर देनेकी युक्ति मैंने कर ली है, आप चिन्ता न करें।'

अचानक कर्णने रात्रिमें स्वप्नमें एक तेजोमय ब्राह्मणको देखा। वे ब्राह्मण कह रहे थे—'वसुषेण! मैं तुमसे एक वचन माँगता हूँ। कोई ब्राह्मण तुमसे कवच-कुण्डल माँगे तो देना मत!'

स्वप्नमें भी कर्ण चौंके—'आप कहते क्या हैं! कोई ब्राह्मण मुझसे कुछ माँगे और मैं अस्वीकार कर दूँ?'

स्वप्नमें ही ब्राह्मणने कहा—'बेटा! मैं तुम्हारा पिता सूर्य हूँ। देवराज इन्द्र तुम्हे ठग लेना चाहते हैं। मेरी बात मान लो।'

कर्णने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'[illegible] मेरे आराध्य हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। [illegible] क्षमा करें। पर इन्द्र आवें या और कोई, [illegible] पास कोई आयेगा, कुछ याचना [illegible] कृपणकी भाँति मैं उसे अस्वीकार नहीं कर सकूँगा।'

सूर्य अदृश्य हो गये। अपने [illegible] उन्हें गर्व था। दूसरे ही दिन [illegible] पधारे। कर्णका आतिथ्य स्वीकार करके [illegible] कुछ याचना करने आया हूँ, पर [illegible]।'

कर्ण बोले—'भगवन्! वसुषेणने कभी [illegible] निराश नहीं किया है। बिना दिये भी [illegible] दिया ही हुआ है ब्राह्मणके लिये।'

'कवच और कुण्डल, जो [illegible]' इन्द्रको यही माँगना था। कर्णने [illegible] की त्वचा अपने हाथों काटकर [illegible] कवच इन्द्रको दे दिये।

'तुम्हारा शरीर कुरूप नहीं होगा।' [illegible] दिया, किंतु देवराज [illegible] कुछ दिये बिना स्वर्ग [illegible]। [illegible] अपनी अमोघ शक्ति उन्होंने दी और [illegible] दे चले गये। —सु० सिं० ([illegible])

शोकके अवसरपर हर्ष क्यों ?

(श्रीकृष्णका अर्जुनके प्रति प्रेम)

भीमका महावीर राक्षसपुत्र घटोत्कच मारा गया। पाण्डवशिविरमें शोक छाया है, सबकी आँखोंसे आँसू बह रहे हैं; केवल श्रीकृष्ण प्रसन्न हैं। वे बार-बार आनन्दमें सिंहनाद करते और हर्षसे [illegible] हैं। [illegible]

भगवान्को [illegible] —

'मधुसूदन ! घटोत्कचकी मृत्युसे अपना सारा परिवार शोक-सागरमें डूबा हुआ है। अपनी सारी सेना विमुख होकर भाग रही है। आप इस अवसरमें इतने प्रसन्न क्यों हैं ? मामूली कारणसे तो आप ऐसा करते नहीं; क्या बात है, कृपया बताइये।'

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'अर्जुन ! मेरे लिये सचमुच आज बड़े ही आनन्दका अवसर है। घटोत्कच तो मरा, पर मेरा प्राणप्रिय अर्जुन बच गया। मुझे इसीकी प्रसन्नता है। कर्णके पास कवच-कुण्डल थे। उनके रहते वह अजेय था, उनको तो इन्द्र माँगकर ले गये। पर इन्द्र कर्णको एक ऐसी शक्ति दे गये, जिसके उनके पास रहते मैं सदा तुम्हारे प्राणोंको संकटमें ही मानता था। कर्ण ब्राह्मणभक्त, सत्यवादी, व्रतधारी, तपस्वी और शत्रुओंपर भी दया करनेवाले हैं। इसीलिये उनको 'वृष' या 'धर्म' कहते हैं। उन्हें यों ही कोई नहीं मार सकता, फिर 'शक्ति' रहते तो मार ही कौन सकता था। कर्ण उस शक्तिसे तुम्हें मारना चाहते थे। आज उस शक्तिसे घटोत्कच मारा गया, अतएव अब कर्णको मरा ही समझो। इसीसे मुझे प्रसन्नता है।

'रही घटोत्कचके मरनेकी बात, सो माना कि घटोत्कच अपने घरका बच्चा था और महावीर भी था; परंतु वह पापात्मा, ब्राह्मणद्वेषी और यज्ञोंका नाश करनेवाला था। ऐसे खलोंको भी मैं स्वयं मारना चाहता हूँ। इससे उसका विनाश तो मैंने ही करवाया है। मैं तो सदा वहीं क्रीडा किया करता हूँ जहाँ वेद, सत्य, दम, पवित्रता, धर्म, कुकृत्यमें लज्जा, श्री, धैर्य और क्षमाका निवास है। इसीलिये मैं पाण्डवोंके साथ हूँ। अर्जुन ! तुम मेरे प्राणप्रिय हो, आज इस प्रकार तुम्हारे बच जानेसे मुझे अत्यन्त हर्ष है।' भगवान्‌के प्रेमपूर्ण वाक्योंको सुनकर अर्जुन गद्‌गद हो गये। अर्जुनका समाधान हो गया।

फिर सात्यकिने पूछा—'भगवन् ! जब कर्णने वह अमोघ शक्ति अर्जुनपर ही छोड़नेका निश्चय किया था, तब उसे छोड़ा क्यों नहीं ? अर्जुन तो नित्य ही समराङ्गणमें उनके सामने पड़ते थे।' इसपर भगवान् श्रीकृष्ण बोले—'सात्यके ! दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और जयद्रथ—ये सभी प्रति-दिन कर्णको यह सलाह दिया करते थे कि तुम इस शक्तिका प्रयोग केवल अर्जुनपर ही करना। अर्जुनके मारे जानेपर सारे पाण्डव और सृञ्जय आप ही मर जायँगे और कर्ण भी यह प्रतिज्ञा कर चुके थे। वे प्रतिदिन ही उस शक्तिके द्वारा मारनेकी बात सोचते थे, पर ज्यों ही वे सामने आते कि मैं उनको मोहित कर देता। यही कारण है कि वे शक्तिका प्रयोग अर्जुनपर नहीं कर सके। इतनेपर भी सात्यके ! वह शक्ति अर्जुनके लिये मृत्युरूप है—इस चिन्ताके मारे मैं सदा उदास रहता था, मुझे रातको नींद नहीं आती थी। अब वह शक्ति घटोत्कचपर पड़कर नष्ट हो गयी। यह देखकर मुझे लगता है कि अर्जुन मृत्युके मुखसे छूट गये। मैं युद्धमें अर्जुनकी रक्षा करना जितनी आवश्यक समझता हूँ, उतनी पिता, माता, तुम-जैसे भाई और अपने प्राणोंकी भी रक्षा आवश्यक नहीं समझता। तीनों लोकोंके राज्यकी अपेक्षा भी कोई दुर्लभ वस्तु मिलती हो तो उसे भी मैं अर्जुनके बिना नहीं चाहता। इसीलिये आज अर्जुन मानो मरकर पुनः वापस आ गये हैं, यह देखकर ही मुझे बड़ा भारी हर्ष हो रहा है।'*

उल्लासके समय खिन्न क्यों ?

(श्रीकृष्णका कर्णके प्रति सद्भाव)

महाभारतके युद्धका सत्रहवाँ दिन समाप्त हो गया था। महारथी कर्ण रणभूमिमें गिर चुके थे। पाण्डव शिबिरमें आनन्दोत्सव हो रहा था। ऐसे उल्लासके समय श्रीकृष्णचन्द्र खिन्न थे। वे बार-बार कर्णकी प्रशंसा कर रहे थे—'आज पृथ्वीपरसे सच्चा दानी उठ गया।'

धर्मराज युधिष्ठिरके लिये किसीके भी धर्माचरणकी प्रशंसा सम्मान्य थी; किंतु अर्जुन अपने प्रतिस्पर्धीकी प्रशंसासे खिन्न हो रहे थे। श्रीकृष्णचन्द्र बोले—'धनञ्जय ! देखता हूँ कि तुम्हें मेरी बात अत्युक्तिपूर्ण जान पड़ती है। एक काम करो, तुम मेरे साथ चलो और दूरसे देखो। महादानी कर्ण अभी

* न पिता न च मे माता न यूयं भ्रातरस्तथा। न च प्राणास्तथा रक्ष्या यथा बीभत्सुराहवे॥
त्रैलोक्यराज्याद् यत्किंचिद् भवेदन्यत् सुदुर्लभम्। नेच्छेयं सात्वताहं तद्विना पार्थं धनञ्जयम्॥
अतः प्रहर्षः सुमहान् युयुधानाद्य मेऽभवत्। मृतं प्रत्यागतमिव दृष्ट्वा पार्थं धनञ्जयम्॥
(महा० द्रोण० १८२। ४३-४५)

मरे नहीं हैं। उनकी दानशीलता अब भी तुम देख सकते हो।'

रात्रि हो चुकी थी। युद्ध-भूमिमें गीदड़ोंका राज्य था। जहाँ-तहाँ कुछ आहत कराह रहे थे। शस्त्रोंके खण्ड, बाणोंके टुकड़े, लाशोंकी ढेरियाँ, रक्तकी कीचड़से पूर्ण युद्धभूमि बड़ी भयकर थी। अर्जुनको श्रीकृष्णचन्द्रने कुछ दूर छोड़ दिया और स्वयं ब्राह्मणका वेश बनाकर पुकारना प्रारम्भ किया—'कर्ण! दानी कर्ण कहाँ हैं!'

'मुझे कौन पुकारता है? कौन हो भाई!' बड़े कष्टसे भूमिपर मूर्छितप्राय पड़े कर्णने मस्तक उठाकर कहा।

ब्राह्मण कर्णके पास आ गये। उन्होंने कहा—'मैं बड़ी आशासे तुम्हारा नाम सुनकर तुम्हारे पास आया हूँ। मुझे थोड़ा-सा स्वर्ण चाहिये—बहुत थोड़ा-सा।'

'आप मेरे घर पधारें! मेरी पत्नी आपको, जितना चाहेंगे, उतना स्वर्ण देगी।' कर्णने ब्राह्मणसे अनुरोध किया। परंतु ब्राह्मण कोई साधारण ब्राह्मण हों तब तो घर जायँ। वे तो बिगड़ उठे—'नहीं देना है तो ना कर दो, इधर-उधर दौड़ाओ मत। मैं कहीं नहीं जाऊँगा। मुझे तो दो सरसों-जितना स्वर्ण चाहिये।'

कर्णने कुछ सोचा और बोले—'मेरे दाँतोंमें स्वर्ण लगा है। आप कृपा करके निकाल लें।'

ब्राह्मणने घृणासे कुछ [illegible] एक ब्राह्मणसे यह कहते कि [illegible]

इधर-उधर देखा [illegible] किसी प्रकार घसीटते हुए [illegible] मारा। दाँत टूट गये। [illegible] इन्हें स्वीकार करें प्रभु!'

'छिः! रक्तसे सनी [illegible] पीछे हट गये। कर्णने [illegible] ब्राह्मणने उसे अपवित्र बताया और [illegible] अस्वीकार कर दिया, तब कर्ण फिर [illegible] पहुँचे। किसी प्रकार [illegible] बाण रखकर वारुणास्त्रसे [illegible] स्वर्णको धोया। अब वे [illegible] उद्यत हुए।

'वर माँगो, वीर!' [illegible] छोड़कर प्रकट हो गये थे। [illegible] थे। कर्णने इतना ही कहा। [illegible] समय मेरे सम्मुख उपस्थित [illegible] गया!' कर्णकी देह [illegible]

धन्य दानी भक्त कर्ण! [illegible]

उत्तम दानकी महत्ता त्यागमें है, न कि संख्यामें

महाराज युधिष्ठिर कौरवोंको युद्धमें पराजित करके समस्त भूमण्डलके एकच्छत्र सम्राट् हो गये थे। उन्होंने लगातार तीन अश्वमेध यज्ञ किये। उन्होंने इतना दान किया कि उनकी दानशीलताकी ख्याति देश-देशान्तरमें फैल गयी। पाण्डवोंके भी मनमें यह भाव आ गया कि उनका दान सर्वश्रेष्ठ एव अतुलनीय है। उसी समय जब कि तीसरा अश्वमेध यज्ञ पूर्ण हुआ था और अवभृथ-स्नान करके लोग यज्ञभूमिसे गये भी नहीं थे, वहाँ एक अद्भुत नेवला आया। उस नेवलेके नेत्र नीले थे और उसके शरीरका एक ओरका आधा भाग स्वर्णका था। यज्ञभूमिमें पहुँचकर नेवला वहाँ लोट-पोट होने लगा। कुछ देर वहाँ इस प्रकार लोट-पोट होनेके बाद बड़े भयंकर शब्दमें गर्जना करके उसने सब पशु-पक्षियोंको भयभीत कर दिया और फिर वह मनुष्यभाषामें बोला—'पाण्डवो! तुम्हारा यह यज्ञ विधिपूर्वक हुआ, किंतु इसका पुण्यफल कुरुक्षेत्रके एक उञ्छवृत्तिधारी [illegible] दानके समान भी नहीं हुआ।'

नेवलेकी इस प्रकार बात [illegible] ब्राह्मणोंने धर्मराज युधिष्ठिरके [illegible] अपार दानकी प्रशंसा करते हुए— [illegible] कहाँसे आये हो! इस यज्ञकी [illegible]

नेवलेने [illegible] करता हूँ न [illegible] ब्राह्मणकी कथा [illegible] कुरुक्षेत्रमें [illegible] उनकी पत्नी, पुत्र और [illegible]

[illegible]

ते था नहीं। और खेतोंमें तो बोया हुआ अन्न उत्पन्न ही नहीं हुआ था। ब्राह्मणको परिवारके साथ प्रतिदिन उपवास करना पड़ता था। कई दिनोंके उपवासके अनन्तर बड़े परिश्रमसे बाजारमें गिरे दानोंको चुनकर उन्होंने एक सेर जौ एकत्र किया और उसका सत्तू बना लिया।

नित्यकर्म करके देवताओं तथा पितरोंका पूजन तर्पण समाप्त हो जानेपर ब्राह्मणने सत्तू चार भाग करके परिवारके सभी सदस्योंको बाँट दिया और भोजन करने बैठे। उसी समय एक भूखे ब्राह्मण वहाँ आ गये। अपने यहाँ अतिथिको आया देखकर उन तपस्वी ब्राह्मणने उनको प्रणाम किया, अपने कुल-गोत्रादिका परिचय देकर उन्हें कुटीमें ले गये और आदरपूर्वक आसनपर बैठाकर उनके चरण धोये। अर्घ्य-पाद्यादिसे अतिथिका पूजन करके ब्राह्मणने अपने भागका सत्तू नम्रतापूर्वक उन्हें भोजनके लिये दे दिया।

अतिथिने वह सत्तू खा लिया, किंतु उससे वे तृप्त नहीं हुए। ब्राह्मण चिन्तामें पड़ा कि अब अतिथिको क्या दिया जाय। उस समय पतिव्रता ब्राह्मणीने अपने भागका सत्तू अतिथिको देनेके लिये अपने पतिको दे दिया। ब्राह्मणको पत्नीका भाग लेना ठीक नहीं लग रहा था और उन्होंने उसे रोका भी; किंतु ब्राह्मणीने पतिके आतिथ्यधर्मकी रक्षाको अपने प्राणोंसे अधिक आदरणीय माना। उसके आग्रहके कारण उसके भागका सत्तू भी ब्राह्मणने अतिथिको दे दिया। लेकिन उस सत्तूको खाकर भी अतिथिका पेट भरा नहीं। क्रमपूर्वक ब्राह्मणके पुत्र और उनकी पुत्रवधूने भी अपने भागका सत्तू आग्रह करके अतिथिको देनेके लिये ब्राह्मणको दे दिया। ब्राह्मणने उन दोनोंके भाग भी अतिथिको अर्पित कर दिये।

उन धर्मात्मा ब्राह्मणका यह त्याग देखकर अतिथि बहुत प्रसन्न हुए। वे ब्राह्मणकी उदारता, दानशीलता तथा आतिथ्यकी प्रशंसा करते हुए बोले—'ब्रह्मन्! आप धन्य हैं। मैं धर्म हूँ, आपकी परीक्षा लेने आया था। आपकी दानशीलतासे मैं और सभी देवता आपपर प्रसन्न हैं। आप अपने परिवारके साथ स्वर्गको शोभित करें।'

नेवलेने कहा—'धर्मके इस प्रकार कहनेपर स्वर्गसे आये विमानपर बैठकर ब्राह्मण अपनी पत्नी, पुत्र और पुत्रवधूके साथ स्वर्ग पधारे। उनके स्वर्ग चले जानेपर मैं बिलसे निकलकर जहाँ ब्राह्मणने सत्तू खाकर हाथ धोये थे, उस कीचड़में लोटने लगा। अतिथिको ब्राह्मणने जो सत्तू दिया था, उसके दो-चार कण अतिथिके भोजन करते समय वायुसे उड़कर वहाँ पड़े थे। उनके शरीरमें लगनेसे मेरा आधा शरीर सोनेका हो गया। उसी समयसे शेष आधा शरीर भी सोनेका बनानेके लिये मैं तपोवनों और यज्ञस्थलोंमें घूमा करता हूँ, किंतु कहीं भी मेरा अभीष्ट पूरा नहीं हुआ। आपके यहाँ यज्ञभूमिमें भी मैं आया, किंतु कोई परिणाम नहीं हुआ।'

'युधिष्ठिरके यज्ञमें असंख्य ब्राह्मणोंने भोजन किया और वनस्थ उस ब्राह्मणने केवल एक ही ब्राह्मणको तृप्त किया। पर उसमें त्याग था। चारोंने भूखे पेट रहकर उसे भोजन दिया था। दानकी महत्ता त्यागमें है, न कि संख्यामें।' वह नेवला इतना कहकर वहाँसे चला गया। —सु० सिं०

(महाभारत, अश्वमेध० ९०)

भगवती सीताकी शक्ति तथा पराक्रम

एक बार भगवान् श्रीराम जब सपरिकर सभामें विराज रहे थे, विभीषण बड़ी विह्वलतापूर्वक अपनी स्त्री तथा चार मन्त्रियोंके साथ दौड़े आये और बार-बार उसाँस लेते हुए कहने लगे—'राजीवनयन राम! मुझे बचाइये, बचाइये। कुम्भकर्णके पुत्र मूलकासुर नामक राक्षसने, जिसे मूल नक्षत्रमें उत्पन्न होनेके कारण कुम्भकर्णने वनमें छुड़वा दिया था, पर मधुमक्खियोंने जिसे पाल लिया था, तरुण होकर तपस्याके द्वारा ब्रह्माजीको प्रसन्न कर उनके बलसे गर्वित होकर बड़ा भारी ऊधम मचा रखा है। उसे आपके द्वारा लङ्का-विजय तथा मुझे राज्य-प्रदानकी बात मालूम हुई तो पातालवासियोंके साथ दौड़ा हुआ लङ्का पहुँचा और मुझपर धावा बोल दिया। जैसे-तैसे मैं उसके साथ छः महीनेतक युद्ध करता रहा। गत रात्रिमें मैं अपने पुत्र, मन्त्रियों तथा स्त्रीके साथ किसी प्रकार सुरंगसे भागकर यहाँ पहुँचा हूँ। उसने कहा है कि 'पहले भेदिया विभीषणको मारकर फिर पितृहन्ता रामको भी मार डालूँगा। सो राघव! वह आपके पास भी आता ही होगा; इसलिये ऐसी स्थितिमें आप जो उचित समझते हों, वह तुरंत कीजिये।'

भक्तवत्सल भगवान् श्रीरामके पास उस समय यद्यपि बहुत-से अन्य आवश्यक कार्य भी थे, तथापि भक्तकी करुण कथा सुनकर उन्होंने अपने पुत्र लव, कुश तथा लक्ष्मण आदि भाइयों एवं सारी वानरी सेनाको तुरंत तैयार किया और पुष्पकयानपर चढ़कर झट लङ्काकी ओर चल पड़े। मूलकासुरको राघवेन्द्रके आनेकी बात मालूम हुई तो वह भी अपनी सेना लेकर लड़नेके लिये लङ्काके बाहर आया। बड़ा भारी तुमुल युद्ध छिड़ गया। सात दिनोंतक घोर युद्ध होता रहा। बड़ी कठिन समस्या उत्पन्न हो गयी। अयोध्यासे सुमन्त्र आदि सभी मन्त्री भी आ पहुँचे। हनुमान्‌जी बराबर संजीविनी लाकर वानरों, भालुओं तथा मानुषी सेनाको जिलाते ही रहे; पर युद्धका परिणाम उलटा ही दीखता रहा। भगवान् चिन्तामें कल्पवृक्षके नीचे बैठे थे। मूल्कासुर अभिचार होमके लिये गुप्तगुहामें गया था। विभीषण भगवान्‌से उसकी गुप्त चेष्टा बतला रहे थे। तबतक ब्रह्माजी वहाँ आये और कहने लगे—'रघुनन्दन! इसे मैंने स्त्रीके हाथ मरनेका वरदान दिया है। इसके साथ ही एक बात और है, उसे भी सुन लीजिये। एक दिन इसने मुनियोंके बीच शोकसे व्याकुल होकर 'चण्डी सीताके कारण मेरा कुल नष्ट हुआ' ऐसा वाक्य कहा। इसपर एक मुनिने क्रुद्ध होकर उसे शाप दे दिया—'दुष्ट! तूने जिसे चण्डी कहा है, वही सीता तुझे जानसे मार डालेगी।' मुनिका इतना कहना था कि वह दुष्टात्मा उन्हें खा गया। अब क्या था, शेष सब मुनि लोग चुपचाप उसके डरके मारे धीरेसे वहाँसे खिसक गये। इसलिये अब उसकी कोई औषध नहीं है। अब तो केवल सीता ही इसके वधमें समर्थ हो सकती हैं। ऐसी दशामें रघुनन्दन! आप उन्हें ही यहाँ बुलाकर इसका तुरत वध करानेकी चेष्टा करें। यही इसके वधका एकमात्र उपाय है।'

इतना कहकर ब्रह्माजी चले गये। भगवान् श्रीरामने भी तुरंत हनुमान्‌जी और विनतानन्दन गरुडको सीताको पुष्पक यानसे सुरक्षित ले आनेके लिये भेजा। इधर पराम्बा भगवती जनकनन्दिनी सीताकी बड़ी विचित्र दशा थी। उन्हें श्रीराघवेन्द्र रामचन्द्रके विरहमें एक क्षणभर भी चैन नहीं थी। वे बार-बार प्रासाद-शिखरपर चढ़कर देखतीं कि कहीं दक्षिणसे पुष्पकपर प्रभु तो नहीं पधार रहे हैं। वहाँसे निराश होकर वे पुनः द्राक्षामण्डपके नीचे शीतलताकी आशामें चली जातीं। कभी वे प्रभुकी विजयके लिये तुलसी, शिवप्रतिमा, पीपल आदिकी प्रदक्षिणा करतीं और कभी ब्राह्मणोंसे मन्युसूक्तका पाठ करातीं। कभी वे दुर्गाकी पूजा करके [illegible] श्रीराम शीघ्र लौटें और कभी ब्राह्मणोंसे [illegible] नींद तो उन्हें कभी आती ही न थी। वे [illegible] देवताओंकी मनौती मनातीं तथा [illegible] विरत रहतीं। इसी प्रकार दुःखसे [illegible] कि गरुड और हनुमान्‌जी उनके पास पहुँचे। [illegible] सुनकर सीता तुरत चल दीं और लङ्कामें पहुँचकर [illegible] कल्पवृक्षके नीचे प्रभुका दर्शन किया। प्रभुने उनसे [illegible] कारण पूछा। पराम्बाने लजाते हुए हँसकर कहा—[illegible] यह केवल आपके अभावमें हुआ है। [illegible] आती है न भूख लगती है। मैं आपकी [illegible] योगिनीकी तरह रात दिन [illegible] बाह्य शरीरमें क्या हुआ है, इसका मुझे [illegible]।'

तत्पश्चात् प्रभुने मूलकासुरके [illegible] फिर तो क्या था, भगवतीको क्रोध आ गया। [illegible] एक दूसरी तामसी शक्ति निकल पड़ी। उसका [illegible] था। वह लङ्काकी ओर चली। [illegible] संकेतसे गुहामें पहुँचकर मूलकासुरको [illegible] वह दौड़ता हुआ इनके पीछे [illegible] पड़ा। तथापि वह रणक्षेत्रमें आ गया। [illegible] उसने कहा—'तू भाग जा। मैं [illegible] दिखाता।' पर छायाने कहा—[illegible] तूने मेरे पक्षपाती ब्राह्मणोंको [illegible] मारकर उसका [illegible] चुकाऊँ।' [illegible] मूलकपर पाँच बाण चलाये। [illegible] किया। अन्तमें चण्डिकाने [illegible] उड़ा दिया। वह लङ्काके [illegible] करते हुए भाग रहे थे। [illegible] प्रवेश कर गयी। तत्पश्चात् [illegible] क्योंकि पिताके वचनके कारण [illegible] सके थे। सीताजीने उन्हें [illegible] दिखाया। कुछ देरतक वे [illegible] घूमीं भी। फिर कुछ दिनोंतक [illegible] हद कुमारिके साथ [illegible]

([illegible])

[illegible]

वीर माताका आदर्श

प्राचीन कालमें विदुला नामकी एक अत्यन्त बुद्धिमती एवं तेजस्विनी क्षत्राणी थी। उसका पुत्र संजय युद्धमें शत्रुसे पराजित हो गया था। पराजयने उसका साहस भङ्ग कर दिया। वह हतोत्साह होकर घरमें पड़ा रहा। अपने पुत्रको निरुद्योग पड़े देखकर विदुला उसे फटकारने लगी—'अरे कायर! तू मेरा पुत्र नहीं है। तू कुलाङ्गार इस वीरोंके द्वारा प्रशंसित कुलमें कहाँ उत्पन्न हुआ। तू नपुंसकोंकी भाँति पड़ा है। तेरी गणना पुरुषोंमें क्यों होती है! यदि तेरी भुजाओंमें बल है तो शस्त्र उठा और शत्रुका मान मर्दन कर। छोटी नदियाँ थोड़े जलसे भर जाती हैं, चूहेकी अञ्जलि थोड़े ही पदार्थमें भर जाती है और कायरलोग थोड़ेमें ही संतुष्ट हो जाते हैं। परन्तु तू क्षत्रिय है! महत्ता प्राप्त करनेके लिये ही क्षत्राणी पुत्र उत्पन्न करती है। उठ! युद्धके लिये प्रस्तुत हो।

'पुत्र! तेरे लिये युद्धमें या तो विजय प्राप्त करना उचित है या तू प्राण त्यागकर सूर्यमण्डलभेदकर योगियोंके लिये भी दुर्लभ परमपद प्राप्त कर ले! क्षत्रिय रोगसे शय्यापर पड़े-पड़े प्राण त्यागनेको उत्पन्न नहीं होता। युद्ध क्षत्रियका धर्म है। धर्मसे विमुख होकर तू क्यों जीवित रहना चाहता है? अरे नपुंसक! यश, दान और भोगका मूल राज्य तो नष्ट हो चुका और कापुरुष बनकर तू धर्मच्युत भी हो गया; फिर तू जीवित क्यों रहना चाहता है? तेरे कारण कुल डूब रहा है, उसका उद्धार कर! उद्योग कर और विक्रम दिखा।

'समाजमें जिसके महत्त्वकी चर्चा नहीं होती या देवता जिसे सत्कारयोग्य नहीं मानते, वह न पुरुष है और न स्त्री; मनुष्योंकी गणना बढ़ानेवाला वह पृथ्वीका व्यर्थ भार है। दान, सत्य, तप, विद्या और ज्ञानमेंसे किसी क्षेत्रमें जिसको यश नहीं मिला, वह तो माताकी विष्ठाके समान है। पुरुष वही है जो शास्त्रोंके अध्ययन, शस्त्रोंके प्रयोग, तप अथवा धनमें श्रेष्ठत्व प्राप्त करे। कापुरुषों तथा मूर्खोंके समान भीख माँगकर जीविका चलाना तेरे योग्य कार्य नहीं। लोगोंके अनादरका पात्र होकर, भोजन-वस्त्रके लिये दूसरोंका मुख ताकनेवाले हीनवीर्य, नीचहृदय पुरुष शत्रुओंको प्रसन्न करते तथा बन्धुवर्गको शूलकी भाँति चुभते हैं।

'हाय! ऐसा लगता है कि हमें राज्यसे निर्वासित होकर कंगाल दशामें मरना पड़ेगा। तू कुलाङ्गार है। अपने कुलके अयोग्य काम करनेवाला है। तुझे गर्भमें रखनेके कारण मैं भी अयशकी भागिनी बनूँगी। कोई भी नारी तेरे समान वीर्यहीन, निरुत्साही पुत्र न उत्पन्न करे। वीर पुरुषके लिये शत्रुओंके मस्तकपर क्षणभर प्रज्वलित होकर बुझ जाना भी उत्तम है। जो आलसी है, वह कभी महत्त्व नहीं पाता। इसलिये अब भी तू पराजयकी ग्लानि त्यागकर उद्योग कर।'

माताके द्वारा इस प्रकार फटकारे जानेपर संजय दुखी होकर बोला—'माता! मैं तुम्हारे सामनेसे कहीं चला जाऊँ या मर ही जाऊँ तो तुम राज्य, धन तथा दूसरे सुख-भोग लेकर क्या करोगी?'

विदुला बोली—'मैं चाहती हूँ कि तेरे शत्रु पराजय, कंगाली और दुःखके भागी बनें और तेरे मित्र आदर तथा सुख प्राप्त करें। तू पराये अन्नसे पलनेवाले दीन पुरुषोंकी वृत्ति मत ग्रहण कर। ब्राह्मण और मित्र तेरे आश्रयमें रहकर तुझसे जीविका प्राप्त करें, ऐसा उद्योग कर। पके फलोंसे लदे वृक्षके समान लोग जीविकाके लिये जिसका आश्रय लेते हैं, उसीका जीवन सार्थक है।

'पुत्र! स्मरण रख कि यदि तू उद्योग छोड़ देगा तो पौरुष-त्यागके पश्चात् शीघ्र ही तुझे नीच लोगोंका मार्ग अपनाना पड़ेगा। जैसे मरणासन्न पुरुषको औषध प्रिय नहीं लगती, वैसे ही तुझे मेरे हितकर वचन प्रिय नहीं लग रहे हैं। तेरे शत्रु इस समय प्रबल हैं; किंतु तुझमें उत्साह हो और तू उद्योग करनेको खड़ा हो जाय तो उनके शत्रु तुझसे आ मिलेंगे। तेरे हितैषी भी तेरे पास एकत्र होने लगेंगे। तेरा नाम संजय है, किंतु जय पानेका कोई उद्योग तुझमें नहीं देख पड़ता। इसलिये तू अपने नामको सार्थक कर!

'पुत्र! हार हो या जीत, राज्य मिले या न मिले, दोनोंको समान समझकर तू दृढ संकल्पपूर्वक युद्ध कर! जय-पराजय तो कालके प्रभावसे सबको प्राप्त होती हैं; किंतु उत्तम पुरुष वही है, जो कभी हतोत्साह नहीं होता। संजय! मैं श्रेष्ठ कुलकी कन्या हूँ, श्रेष्ठ कुलकी पुत्रवधू हूँ और श्रेष्ठ पुरुषकी पत्नी हूँ। यदि मैं तुझे गौरव बढ़ाने योग्य उत्तम कार्य करते नहीं देखूँगी तो मुझे कैसे शान्ति मिलेगी। कायर, कुपुरुषकी माता कहलानेकी अपेक्षा तो मेरा मर

जाना ही उत्तम है। यदि तू जीवित रहना चाहता है तो शत्रुको पराजित करनेका उद्योग कर! अन्यथा सदाके लिये पराश्रित दीन रहनेकी अपेक्षा तो मर जाना उत्तम है।'

माताके इस प्रकार बहुत अधिक ललकारनेपर भी संजय ने कहा—'माता! तू करुणाहीन और पाषाण-जैसे हृदय-वाली है। मैं तेरा एकमात्र पुत्र हूँ। यदि मैं युद्धमें मारा गया तो तू राज्य और धन लेकर क्या सुख पायेगी कि मुझे युद्धभूमिमें भेजना चाहती है?'

विदुलाने कहा—'बेटा! मनुष्यको अर्थ तथा धर्मके लिये उद्योग करना चाहिये। मैं उसी धर्म और अर्थकी सिद्धिके लिये तुझे युद्धमें भेज रही हूँ। यदि तू शत्रुद्वारा मारा गया तो परलोकमें महत्त्व प्राप्त करेगा—मुक्त हो जायगा और विजयी हुआ तो संसारमें सुखपूर्वक राज्य करेगा। इस कर्तव्यसे विमुख होनेपर समाजमें तेरा अपमान होगा। तू अपना और मेरा भी घोर अनिष्ट करेगा। मैं मोहवश तुझे इस अनिष्टसे न रोकूँ तो यह स्नेह नहीं कहा जायगा। [illegible] में तू दरिद्रता तथा अपमान सहे और [illegible] लोगोंकी अधमगति पावे, ऐसे [illegible] मैं तुझे नहीं [illegible] चाहती। सज्जनोंद्वारा निन्दित [illegible]। जो सदाचारी, उद्योगी, विनीत पुत्रपर स्नेह [illegible], उसीका स्नेह सच्चा है। उद्योग, विनय [illegible] रहित पुत्रपर जो स्नेह करता है, उसका पुत्रवान् होना [illegible] है। शत्रुको विजय करने या युद्धमें प्राण देनेके लिये [illegible] उत्पन्न हुआ है। तू अपने जन्मको सार्थक कर!'

माताके उपदेशसे संजयका [illegible] हो गया। उसका उत्साह सजीव हो उठा। उसने माताकी आज्ञा स्वीकार कर ली। भय और उदासीको दूर करके [illegible] संग्राममें लग गया। अन्तमें शत्रुको पराजित करके उसने अपने राज्यपर अधिकार प्राप्त किया। —सु० सिं०

(महाभारत, उद्योग० [illegible])

पतिको रणमें भेजते समयका विनोद

चम्पकपुरीके एकपत्नीव्रती राज्यमें महाराज हंसध्वज राज्य करते थे। पाण्डवोंके अश्वमेध यज्ञका घोड़ा चम्पकपुरीके पास पहुँचा। महावीर अर्जुन अश्वकी रक्षाके लिये पीछे-पीछे आ रहे थे। हंसध्वजने क्षत्रिय धर्मके अनुसार तथा पार्थ-सारथि भगवान् श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे घोड़ेको पकड़ लिया। भयानक युद्धकी तैयारी हुई। सुधन्वा सबसे छोटा पुत्र था। रणमें जाते समय वह अपनी माताका आशीर्वाद लेकर, बहिनकी अनुमति प्राप्तकर अपनी सती पत्नी प्रभावतीके पास गया। वह पहलेसे ही दीपकयुक्त सुवर्ण-थालमें चन्दन-कपूर लिये आरती उतारनेको दरवाजेपर ही खड़ी थी। सतीने बड़े भक्तिभावसे वीर पतिकी पूजा की, तदनन्तर धैर्यके साथ आरती करती हुई नम्रताके साथ पतिके प्रति प्रेमभरे गुह्य वचन कहने लगी—प्राणनाथ! मैं आपके श्रीकृष्णके दर्शनार्थी मुखकमलका दर्शन कर रही हूँ; परन्तु नाथ! मालूम होता है आज आपका एकपत्नीव्रत नष्ट हो जायगा। पर आप जिसपर अनुरक्त होकर उत्साहसे जा रहे हैं, वह स्त्री मेरी बराबरी कभी नहीं कर सकेगी। मैंने आपके सिवा दूसरेकी ओर कभी भूलकर भी नहीं ताका है, परन्तु वह 'मुक्ति' नाम्नी रमणी तो पिता, पुत्र, सभीके प्रति गमन करनेवाली है। आपके मनमें 'मुक्ति' बस रही है, इसीसे श्रीकृष्णके द्वारा उसके मिलनेकी आशासे [illegible] हैं। पुरुषोंका चित्त देव-रमणियोंकी ओर [illegible] है, परन्तु आप यह निश्चय रखिये कि श्रीहरिको देखकर, उनकी अतुलित मुखच्छविके सामने 'मुक्ति' आपको कभी प्रिय नहीं लगेगी। क्योंकि उनके भक्तजन जो उनकी [illegible] अपनेको न्योछावर कर देते हैं, वे मुक्तिकी कभी इच्छा नहीं करते। मुक्ति तो दासीकी तरह [illegible] हुई उनके पीछे-पीछे घूमा करती है, परन्तु वे उसकी ओर ताकते भी नहीं। यहाँतक कि हरि स्वयं भी [illegible] प्रदान करना चाहते हैं, तब भी वे उसे ग्रहण नहीं करते।

'इसके सिवा पुरुषोंकी ओर [illegible] जाया करती। नहीं तो [illegible] के प्रति यदि [illegible] नामक अदृष्ट पुत्र [illegible] विवेक नामक पुत्र नहीं है, [illegible] हैं। मुझे [illegible] मुझे मोहके [illegible] हो रहा है।'

[illegible] ने कहा—

'[illegible]

हूँ, तब तुम्हें मोक्षके प्रति जानेसे कैसे रोक सकता हूँ। तुम भी मेरे उत्तम वस्त्र, स्वर्णरत्नोंके समूह और इस शरीर तथा निलको त्यागकर चली जाओ। मैं तो यह पहलेसे ही जानता था कि तुम 'मोक्ष'के प्रति आसक्त हो। इसीसे तो मैंने प्रत्यक्षमें विवेक पुत्रके उत्पन्न करनेकी चेष्टा नहीं की।

सच्ची क्षमा द्वेषपर विजय पाती है

राजा विश्वामित्र सेनाके साथ आखेटके लिये निकले थे। वनमें घूमते हुए वे महर्षि वशिष्ठके आश्रमके समीप पहुँच गये। महर्षिने उनका आतिथ्य किया। विश्वामित्र यह देखकर आश्चर्यमें पड़ गये कि उनकी पूरी सेनाका सत्कार कुटियामें रहनेवाले उस तपस्वी ऋषिने राजोचित भोजनसे किया। जब उन्हें पता लगा कि नन्दिनी गौके प्रभावसे ही वशिष्ठजी यह सब कर सके हैं तो उन्होंने ऋषिसे वह गौ माँगी। किसी भी प्रकार, किसी भी मूल्यपर ऋषिने गौ देना स्वीकार नहीं किया तो विश्वामित्र बलपूर्वक उसे छीनकर ले जाने लगे। परंतु वशिष्ठके आदेशसे नन्दिनीने अपनी हुंकारसे ही दारुण योद्धा उत्पन्न कर दिये और उन सैनिकोंकी मार खाकर विश्वामित्रके सैनिक भाग खड़े हुए।

राजा विश्वामित्रके सब दिव्यास्त्र वशिष्ठके ब्रह्मदण्डसे टकराकर निस्तेज हो चुके थे। विश्वामित्रने कठोर तप करके और दिव्यास्त्र प्राप्त किये; किंतु वशिष्ठजीके ब्रह्मदण्डने उन्हें भी व्यर्थ कर दिया। अब विश्वामित्र समझ गये कि क्षात्रबल तपस्वी ब्राह्मणका कुछ बिगाड़ नहीं सकता। उन्होंने स्वयं ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेका निश्चय करके तपस्या प्रारम्भ कर दी। सैकड़ों वर्षोंके उग्र तपके पश्चात् ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर दर्शन भी दिया तो कह दिया—'वशिष्ठ आपको ब्रह्मर्षि मान लें तो आप ब्राह्मण हो जायँगे।'

विश्वामित्रजीके लिये वशिष्ठसे प्रार्थना करना तो बहुत अपमानजनक लगता था और संयोगवश जब वशिष्ठजी मिलते थे तो उन्हें राजर्षि ही कहकर पुकारते थे; इससे विश्वामित्रका क्रोध बढ़ता जाता था। वे वशिष्ठके घोर शत्रु हो गये थे। एक राक्षसको प्रेरित करके उन्होंने वशिष्ठके सौ पुत्र मरवा डाले। स्वयं भी वशिष्ठको अपमानित करने, नीचा दिखाने तथा उन्हें हानि पहुँचानेका अवसर ही ढूँढ़ते रहते थे।

'मैं नवीन सृष्टि करके उसका ब्रह्मा बनूँगा!' अपने उद्देश्यमें असफल होकर विश्वामित्रजी अद्भुत हठपर उतर आये। अपने तपोबलसे उन्होंने सचमुच नवीन सृष्टि करनी प्रारम्भ की। नवीन अन्न, नवीन तृण तरु, नवीन पशु—वे बनाते चले जाते थे। अन्तमें ब्रह्माजीने उन्हें आकर रोक दिया। उन्हें आश्वासन दिया कि उनके बनाये पदार्थ और प्राणी ब्राह्मी सृष्टिके प्राणियोंके समान ही संसारमें रहेंगे।

कोई उपाय सफल होते न देखकर विश्वामित्रने वशिष्ठजीको ही मार डालनेका निश्चय किया। सम्मुख जाकर अनेक बार वे पराजित हो चुके थे, अतः अस्त्र-शस्त्रसे सज्जित होकर रात्रिमें छिपकर वशिष्ठजीके आश्रमपर पहुँचे। गुप्तरूपसे वे वशिष्ठका वध उनके अनजानमें करना चाहते थे। चाँदनी रात थी, कुटीसे बाहर वेदीपर महर्षि वशिष्ठ अपनी पत्नीके साथ बैठे थे। अवसरकी प्रतीक्षामें विश्वामित्र पास ही वृक्षोंकी ओटमें छिप रहे।

उसी समय अरुन्धतीजीने कहा—'कैसी निर्मल ज्योत्स्ना छिटकी है।'

वशिष्ठजी बोले—'आजकी चन्द्रिका ऐसी उज्ज्वल है जैसे आजकल विश्वामित्रजीकी तपस्याका तेज दिशाओंको आलोकित करता है।'

विश्वामित्रने इसे सुना और जैसे उन्हें साँप सूँघ गया। उनके हृदयने धिक्कारा उन्हें—'जिसे तू मारने आया है, जिससे रात-दिन द्वेष करता है, वह कौन है—यह देख! वह महापुरुष अपने सौ पुत्रोंके हत्यारेकी प्रशंसा एकान्तमें अपनी पत्नीसे कर रहा है।'

नोच फेंके विश्वामित्रने शरीरपरके शस्त्र। वे दौड़े और वशिष्ठके सम्मुख भूमिपर प्रणिपात करते दण्डवत् गिर पड़े। बद्धमूल द्वेष समाप्त हो चुका था सदाके लिये। वशिष्ठकी सहज क्षमा उसपर विजय पा चुकी थी। द्वेष और शस्त्र त्यागकर आज तपस्वी विश्वामित्र ब्राह्मणत्व प्राप्त कर चुके थे। महर्षि वशिष्ठ वेदीसे उतरकर उन्हें दोनों हाथोंसे उठाते हुए कह रहे थे—'उठिये, ब्रह्मर्षि!'—सु० सिं०

घोर क्लेशमें भी सत्पथपर अडिग रहनेवाला महापुरुष है

जब भगवान् विष्णुने वामनरूपसे बलिसे पृथ्वी तथा स्वर्गका राज्य छीनकर इन्द्रको दे दिया, तब कुछ ही दिनोंमें राज्यलक्ष्मीके स्वाभाविक दुर्गुण गर्वसे इन्द्र पुनः उन्मत्त हो उठे। एक दिन वे ब्रह्माजीके पास पहुँचे और हाथ जोड़कर बोले—'पितामह! अब अपार दानी राजा बलिका कुछ पता नहीं लग रहा है। मैं सर्वत्र खोजता हूँ, पर उनका पता नहीं मिलता। आप कृपाकर मुझे उनका पता बताइये।' ब्रह्माजीने कहा—'तुम्हारा यह कार्य उचित नहीं। तथापि किसीके पूछनेपर झूठा उत्तर नहीं देना चाहिये, अतएव मैं तुम्हें बलिका पता बतला देता हूँ। राजा बलि इस समय ऊँट, बैल, गधा या घोड़ा बनकर किसी खाली घरमें रहते हैं।' इन्द्रने इसपर पूछा—'यदि मैं किसी स्थानपर बलिको पाऊँ तो उन्हें अपने वज्रसे मार डालूँ या नहीं?' ब्रह्माजीने कहा—'राजा बलि—अरे! वे कदापि मारने योग्य नहीं हैं। तुम्हें उनके पास जाकर कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।'

तदनन्तर इन्द्र दिव्य आभूषण धारणकर, ऐरावतपर चढ़कर बलिकी खोजमें निकल पड़े। अन्तमें एक खाली घरमें उन्होंने एक गदहा देखा और कई लक्षणोंसे उन्होंने अनुमान किया कि ये ही राजा बलि हैं। इन्द्रने कहा—'दानवराज! इस समय तुमने बड़ा विचित्र वेष बना रक्खा है। क्या तुम्हें अपनी इस दुर्दशापर कोई दुःख नहीं होता। इस समय तुम्हारे छत्र, चामर और वैजयन्ती माला कहाँ गयी? कहाँ गया वह तुम्हारा अप्रतिहत दानका महाव्रत और कहाँ गया तुम्हारा सूर्य, वरुण, कुबेर, अग्नि और जलका रूप?'

बलिने कहा—'देवेन्द्र! इस समय तुम मेरे छत्र, चामर, सिंहासनादि उपकरणोंको नहीं देख सकोगे। पर फिर कभी मेरे दिन लौटेंगे और तब तुम उन्हें देख सकोगे। तुम जो इस समय अपने ऐश्वर्यके मदमें आकर मेरा उपहास कर रहे हो, यह केवल तुम्हारी तुच्छ बुद्धिका ही परिचायक है। मालूम होता है, तुम अपने पूर्वके दिनोंको सर्वथा ही भूल गये। पर सुरेश! तुम्हें समझ लेना चाहिये, तुम्हारे वे दिन पुनः लौटेंगे। देवराज! इस विश्वमें कोई वस्तु सुनिश्चित और सुस्थिर नहीं है। काल सबको नष्ट कर डालता है। इस कालके अद्भुत रहस्यको जानकर मैं किसीके लिये भी शोक नहीं करता। यह काल धनी, निर्धन, बली, निर्बल, पण्डित, मूर्ख, बलवान्, दुर्बल, [illegible], [illegible], [illegible], वृद्ध, योगी, तपस्वी, धर्मात्मा, शूर और [illegible] मेंसे किसीको भी नहीं छोड़ता और सबको ही [illegible] लेता है—सबका कलेवा कर जाता है। [illegible] मैं क्यों सोचूँ! कालके ही कारण मनुष्योंको [illegible] सुख-दुःखकी प्राप्ति होती है। काल ही सबको देता और पुनः छीन भी लेता है। कालके ही प्रभावसे [illegible] होते हैं। इसलिये वासव! तुम्हारा [illegible] पुरुषार्थका गर्व केवल मोहमात्र है। [illegible] किसी मनुष्यके अधीन नहीं है। मनुष्यकी कभी उन्नति [illegible] है और कभी अवनति। यह कालका नियम है, इसमें [illegible] नहीं करना चाहिये। न तो सदा किसीकी उन्नति [illegible] है और न सदा अवनति या पतन ही। समयसे ही [illegible] मिलता है और समय ही मिटा देता है। इसे तुम [illegible] जानते हो कि एक दिन देवता, पितर, गन्धर्व, मनुष्य, [illegible], राक्षस—सब मेरे अधीन थे। अधिक क्या, 'नमस्तस्यै दिशे [illegible] यस्यां वैरोचनिर्बलिः'—'जिस दिशामें [illegible] हो, [illegible] को भी नमस्कार' यों कहकर, मैं जिस दिशामें [illegible] दिशाको भी लोग नमस्कार करते थे। पर जब [illegible] कालका आक्रमण हुआ, मेरा भी दिन [illegible] मैं इस दशामें पहुँच गया, तब [illegible] पर कालका चक्र न फिरेगा! मैं अकेला [illegible] तेज रखता था, मैं ही पानीका [illegible] था। मैं ही तीनों लोकोंको प्रकाशित [illegible] था। सब लोकोंका पालन, संहार, दान, [illegible] और मोचन मैं ही करता था! मैं तीनों [illegible] किंतु कालके फेरसे इस समय मेरा वह [illegible] विद्वानोंने कालको दुरतिक्रम और परमेश्वर [illegible] वेगसे दौड़नेपर भी कोई मनुष्य कालको [illegible] उसी कालके अधीन हम, तुम—सब कोई हैं। [illegible] बुद्धि सचमुच बालकोंकी-सी है। [illegible] अवसर तुम्हारे-जैसे [illegible] यह लक्ष्मी, [illegible] तुम्हारी [illegible] ऐसे [illegible] थी। अब मुझे छोड़कर तुम्हारे पास गयी है। [illegible]

तुमको भी छोड़कर दूसरेके पास चली जायगी। मैं इस रहस्यको जानकर क्षणभर भी दुःखी नहीं होता। बहुत-से कुलीन धर्मात्मा गुणवान् राजा अपने योग्य मन्त्रियोंके साथ भी घोर क्लेश पाते हुए देखे जाते हैं, साथ ही इसके विपरीत मैं नीच कुलमें उत्पन्न मूर्ख मनुष्योंको बिना किसीकी सहायताके राजा बनते देखता हूँ। अच्छे लक्षणोंवाली परम सुन्दरी तो अभागिनी और दुःखसागरमें डूबती दीख पड़ती है और कुलक्षणा, कुरूपा भाग्यवती देखी जाती है। मैं पूछता हूँ, इन्द्र! इसमें अविकल्पना—काल यदि कारण नहीं है तो और क्या है? कालके द्वारा होनेवाले अनर्थ बुद्धि या बलसे हटाये नहीं जा सकते। विद्या, तपस्या, दान और बन्धु-बान्धव—कोई भी कालग्रस्त मनुष्यकी रक्षा नहीं कर सकता। आज तुम मेरे सामने वज्र उठाये खड़े हो। अभी चाहूँ तो एक घूँसा मारकर वज्रसमेत तुमको गिरा दूँ। चाहूँ तो इसी समय अनेक भयंकर रूप धारण कर लूँ, जिनको देखते ही तुम डरकर भाग खड़े हो जाओ। परंतु करूँ क्या? यह समय सह लेनेका है—पराक्रम दिखलानेका नहीं। इसलिये यथेष्ठ गदहेका ही रूप बनाकर मैं अध्यात्म-निरत हो रहा हूँ। शोक करनेसे दुःख मिटता नहीं, वह तो और बढ़ता है। इसीसे मैं बेखटके हूँ, बहुत निश्चिन्त, इस दुरवस्थामें भी।'

बलिके विशाल धैर्यको देखकर इन्द्रने उनकी बड़ी प्रशंसा की और कहा—निस्संदेह तुम बड़े धैर्यवान् हो जो इस अवस्थामें भी मुझ वज्रधरको देखकर तनिक भी विचलित नहीं होते। निश्चय ही तुम राग-द्वेषसे शून्य और जितेन्द्रिय हो। तुम्हारी शान्तचित्तता, सर्वभूतसुहृदता तथा निर्वैरता देखकर मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम महापुरुष हो। अब मेरा तुमसे कोई द्वेष नहीं रहा। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम मेरी ओरसे बेखटके रहो और निश्चिन्त और नीरोग होकर समयकी प्रतीक्षा करो।'

यों कहकर देवराज इन्द्र ऐरावत हाथीपर चढ़कर चले गये और बलि पुनः अपने स्वरूपचिन्तनमें स्थिर हो गये। —जा० श०

(महाभारत, शान्तिपर्व, मोक्षधर्म, अध्याय २२३–२२७)

सेवा-निष्ठाका चमत्कार

मर्यादापुरुषोत्तम विश्वसम्राट् श्रीरामचन्द्र अयोध्याके सिंहासनपर आसीन थे। सभी भाई चाहते थे कि प्रभुकी सेवाका कुछ अवसर उन्हें मिले; किंतु हनुमान्‌जी प्रभुकी सेवामें इतने तत्पर रहते थे कि कोई सेवा उनसे बचती ही नहीं थी। सब छोटी-बड़ी सेवा वे अकेले ही कर लेते थे। इससे घबराकर भाइयोंने माता जानकीजीकी शरण ली। श्रीजानकीजीकी अनुमतिसे भरतजी, लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नकुमारने मिलकर एक योजना बनायी। प्रभुकी समस्त सेवाओंकी सूची बनायी गयी। कौन-सी सेवा कब कौन करेगा, यह उसमें लिखा गया। जब हनुमानजी प्रातः सरयू-स्नान करने गये, उस अवसरका लाभ उठाकर प्रभुके सम्मुख वह सूची रख दी गयी। प्रभुने देखा कि उनके तीनों भाई हाथ जोड़े खड़े हैं। सूचीमें हनुमान्‌जीका कहीं नाम ही नहीं था। सर्वेश रघुनाथजी मुसकराये। उन्होंने चुपचाप सूचीपर अपनी स्वीकृतिके हस्ताक्षर कर दिये।

श्रीहनुमान्‌जी स्नान करके लौटे और प्रभुकी सेवाके लिये कुछ करने चले तो शत्रुघ्नकुमारने उन्हें रोक दिया—'हनुमान्‌जी! यह सेवा मेरी है। प्रभुने सबके लिये सेवाका विभाग कर दिया है।'

'प्रभुने जो विधान किया है या जिसे स्वीकार किया है, वह मुझे सर्वथा मान्य है।' हनुमान्‌जी खड़े हो गये। उन्होंने इच्छा की वह सूची देखनेकी और सूची देखकर बोले—'इस सूचीसे बची सेवा मैं करूँगा।'

'हाँ, आप सूचीसे बची सेवा कर लिया करें।' लक्ष्मणजीने हँसकर कह दिया। परंतु हनुमान्‌जी तो प्रभुकी स्वीकृतिकी प्रतीक्षामें उनका श्रीमुख देख रहे थे। मर्यादापुरुषोत्तमने स्वीकृति दे दी, तब पवनकुमार बोले—'प्रभु जब जम्हाई लेंगे तो मैं चुटकी बजानेकी सेवा करूँगा।'

यह सेवा किसीके ध्यानमें आयी ही नहीं थी। अब तो प्रभु स्वीकार कर चुके थे। श्रीहनुमान्‌जी प्रभुके सिंहासनके सामने बैठ गये। उन्हें एकटक प्रभुके श्रीमुखकी ओर देखना था; क्योंकि जम्हाई आनेका कोई समय तो है नहीं। दिनभर किसी प्रकार बीत गया। स्नान, भोजन आदिके समय हनुमान्‌जी प्रभुके साथ बने रहे। रात्रि हुई, प्रभु अपने अन्तःपुरमें विश्राम करने पधारे, तब हनुमान्‌जी भी पीछे-पीछे चले। अन्तःपुरके द्वारपर उन्हें सेविकाने रोक दिया—'आप भीतर नहीं जा सकते।'

हनुमान्‌जी वहाँसे सीधे राजभवनके ऊपर एक कँगूरेपर जाकर बैठ गये और लगे चुटकी बजाने। उधर अन्तःपुरमें प्रभुने जम्हाई लेनेको मुख खोला तो खोले ही रहे। श्रीजानकीजीने पूछा—'यह क्या हो गया आपको?' परंतु प्रभु मुख बंद न करें तो बोलें कैसे। घबराकर श्रीजानकीजीने माता कौसल्याको समाचार दिया। माता दौड़ी आयीं। थोड़ी देरमें तो बात पूरे राजभवनमें फैल गयी। सभी माताएँ, सब भाई एकत्र हो गये। सब चकित, सब दुखी; किंतु किसीको कुछ सूझता नहीं। प्रभुका मुख खुला है, वे किसीके प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दे रहे हैं।

अन्तमें महर्षि वशिष्ठजीको सूचना दी गयी। वे तपोधन रात्रिमें राजभवन पधारे। प्रभुने उनके चरणोंमें मस्तक रक्खा; किंतु मुख खुला रहा, कुछ बोले नहीं। सर्वज्ञ महर्षिने इधर-उधर देखकर कहा—'हनुमान् कहाँ हैं? उन्हें बुलाओ तो।'

सेवक दौड़े हनुमान्‌जीको ढूँढ़ने। हनुमान्‌जी [illegible] प्रभुके सम्मुख आये, प्रभुने मुख बंद कर लिया [illegible]। वशिष्ठजीने हनुमान्‌जीसे पूछा—'तुम क्या कर रहे थे?'

हनुमान्‌जी बोले—'मेरा काम है—प्रभुको जम्हाई आवे तो चुटकी बजाना। प्रभुको जम्हाई कब आ जायगी, यह तो कुछ पता है नहीं। सेवामें त्रुटि न हो, इसलिये मैं बराबर चुटकी बजा रहा था।'

अब मर्यादापुरुषोत्तम बोले—'हनुमान् चुटकी बजाते रहें तो रामको जम्हाई आती ही रहनी चाहिये।'

रहस्य प्रकट हो गया। महर्षि विदा हो गये। भरतजीने, अन्य भाइयोंने और श्रीजानकीजीने भी कहा—'हनुमान्! तुम यह चुटकी बजाना छोड़ो। पहले [illegible] वैसे ही सेवा करते रहो।' यह [illegible] और [illegible] लक्ष्मणजी आदिका विनोद था। वे हनुमान्‌जीको [illegible] वञ्चित थोड़े ही करना चाहते थे।—सु० सिं०

सत्कारसे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं

पाण्डवोंका वनवास-काल समाप्त हो गया। दुर्योधनने युद्धके बिना उन्हें पाँच गाँव भी देना स्वीकार नहीं किया। युद्ध अनिवार्य समझकर दोनों पक्षसे अपने-अपने पक्षके नरेशोंके पास दूत भेजे गये युद्धमें सहायता करनेके लिये। मद्रराज शल्यको भी दूतोंके द्वारा युद्धका समाचार मिला। वे अपने महारथी पुत्रोंके साथ एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवोंके पास चले।

शल्यकी बहिन माद्रीका विवाह पाण्डुसे हुआ था। नकुल और सहदेव उनके सगे भानजे थे। पाण्डवोंको पूरा विश्वास था कि शल्य उनके पक्षमें युद्धमें उपस्थित रहेंगे। महारथी शल्यकी विशाल सेना दो-दो कोसपर पड़ाव डालती धीरे-धीरे चल रही थी।

दुर्योधनको शल्यके आनेका समाचार पहले ही मिल गया था। उसने मार्गमें जहाँ-जहाँ सेनाके पड़ावके उपयुक्त स्थान थे, जल तथा पशुओंके लिये तृणकी सुविधा थी, वहाँ-वहाँ निपुण कारीगर भेजकर सभा भवन एवं विश्राम स्थान बनवा दिये। सेवामें चतुर सेवक वहाँ नियुक्त कर दिये। भोजनादिकी सामग्री रखवा दी। ऐसी व्यवस्था कर दी कि शल्यको सब कहीं पूरी सुख-सुविधा प्राप्त हो। वहाँ कुएँ और बावलियाँ बनवा दीं।

मद्रराज शल्यको मार्गमें सभी पड़ावोंपर दुर्योधनके सेवक स्वागतके लिये प्रस्तुत मिले। उन [illegible] बड़ी सावधानीसे मद्रराजका भरपूर सत्कार किया। शल्य यही समझते थे कि यह सब व्यवस्था युधिष्ठिरने की है। इस प्रकार विश्राम करते हुए वे आगे बढ़ रहे थे। [illegible] हस्तिनापुरके पास पहुँचनेपर उन्हें जो विश्राम-स्थान [illegible], वह बहुत ही सुन्दर था। उसमें नाना प्रकारकी [illegible] की सामग्रियाँ भरी थीं। उस स्थानको देखकर [illegible] उपस्थित कर्मचारियोंसे पूछा—'युधिष्ठिरके किन [illegible] मेरे मार्गमें ठहरनेकी व्यवस्था की है? [illegible] उन्हें पुरस्कार देना चाहता हूँ।'

दुर्योधन स्वयं छिपा हुआ वहाँ [illegible] व्यवस्था कर रहा था। [illegible] प्रसन्न देखकर वह [illegible] करके बोला—[illegible]

[illegible] व्यवस्था करनी है?'

दुर्योधन [illegible] हैं [illegible] यह मेरा सौभाग्य है।'

शल्य प्रसन्न हो गये । उन्होंने कहा—'अच्छा, तुम मुझसे कोई वरदान माँग लो।'

दुर्योधनने माँगा—'आप सेनाके साथ युद्धमें मेरा साथ दें और मेरी सेनाका संचालन करें ।'

शल्यको स्वीकार करना पड़ा यह प्रस्ताव । यद्यपि उन्होंने युधिष्ठिरसे भेंट की, नकुल सहदेवपर आघात न करनेकी अपनी प्रतिज्ञा दुर्योधनको बता दी और युद्धमें कर्ण को हतोत्साह करते रहनेका वचन भी युधिष्ठिरको दे दिया; किंतु युद्धमें उन्होंने दुर्योधनका पक्ष लिया । यदि शल्य पाण्डवपक्षमें जाते तो दोनों दलोंकी सैन्य-संख्या बराबर रहती; किंतु उनके कौरवपक्षमें जानेसे कौरवोंके पास दो अक्षौहिणी सेना अधिक हो गयी । —सु० सिं० (महाभारत, उद्योग० ८)

अतिथि-सत्कारका प्रभाव

कुरुक्षेत्रमें मुद्गल नामके एक ऋषि थे। वे धर्मात्मा, जितेन्द्रिय और सत्यनिष्ठ थे। ईर्ष्या और क्रोधका उनमें नाम भी नहीं था। जब किसान खेतसे अन्न काट लेते और गिरा हुआ अन्न भी चुन लेते, तब उन खेतोंमें जो दाने बच रहते उन्हें मुद्गलजी एकत्र कर लेते। कबूतरके समान वे थोड़ा ही अन्न एकत्र करते थे और उसीसे अपने परिवारका भरण-पोषण करते थे। आये हुए अतिथिका उसी अन्नसे वे सत्कार भी करते थे। पूर्णमासी तथा अमावस्याके श्राद्ध तथा इष्टीकृत हवन भी वे सम्पन्न करते थे। महात्मा मुद्गल एक पक्षमें एक द्रोणभर अन्न एकत्र कर लाते थे। उतनेसे ही देवता, पितर और अतिथि आदिकी पूजा सेवा करनेके बाद जो कुछ बचता था, उससे अपना तथा परिवारका काम चलाते थे।

महर्षि मुद्गलके दानकी महिमा सुनकर महामुनि दुर्वासाजीने उनकी परीक्षा करनेका निश्चय किया। वे सिर मुँड़ाये, नंग धड़ंग, पागलों जैसा वेश बनाये कठोर वचन कहते मुद्गलजीके आश्रममें पहुँचकर भोजन माँगने लगे। महर्षि मुद्गलने बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ दुर्वासाजीका स्वागत किया। अर्घ्य, पाद्य आदि देकर उनकी पूजा की और फिर उन्हें भोजन कराया। दुर्वासाजीने मुद्गलके पास जितना अन्न था, वह सब खा लिया तथा बचा हुआ जूठा अन्न अपने शरीरमें पोत लिया। फिर वे वहाँसे चले गये।

महर्षि मुद्गलके पास अन्न रहा नहीं। पूरे एक पक्षमें उन्होंने फिर द्रोणभर अन्न एकत्र किया। देवता तथा पितरोंका भाग देकर वे जैसे ही निवृत्त हुए, महामुनि दुर्वासा पहलेके समान फिर आ धमके और फिर सब अन्न खाकर चल दिये। मुद्गल फिर परिवारसहित भूखे रह गये।

एक-दो बार नहीं, पूरे छः पक्षतक इसी प्रकार दुर्वासाजी आते रहे। प्रत्येक बार उन्होंने मुद्गलका सारा अन्न खा लिया। मुद्गल भी उन्हें भोजन कराकर फिर अन्नके दाने चुननेमें लग जाते थे। उनके मनमें क्रोध, खीझ, घबराहट आदिका स्पर्श भी नहीं हुआ। दुर्वासाके प्रति भी उनका पहलेके ही समान आदर-भाव बना रहा।

महामुनि दुर्वासा अन्तमें प्रसन्न होकर बोले—'महर्षे! संसारमें तुम्हारे समान ईर्ष्या-रहित अतिथिसेवी कोई नहीं है। क्षुधा इतनी बुरी होती है कि वह मनुष्यके धर्म-ज्ञान तथा धैर्यको नष्ट कर देती है; किंतु तुमपर वह अपना प्रभाव नहीं दिखा सकी। इन्द्रियनिग्रह, धैर्य, दान, सत्य, शम, दम तथा दया आदि धर्म तुममें पूर्ण प्रतिष्ठित हैं। विप्रश्रेष्ठ! तुम अपने इसी शरीरसे स्वर्ग जाओ।'

महामुनि दुर्वासाके इतना कहते ही देवदूत स्वर्गसे विमान लेकर वहाँ आये और उन्होंने मुद्गलजीसे उसमें बैठनेकी प्रार्थना की। महर्षि मुद्गलने देवदूतोंसे स्वर्गके गुण तथा दोष पूछे और उनकी बातें सुनकर बोले—'जहाँ परस्पर स्पर्धा है, जहाँ पूर्ण तृप्ति नहीं और जहाँ असुरोंके आक्रमण तथा पुण्य क्षीण होनेसे पतनका भय सदा लगा ही रहता है, उस स्वर्गमें मैं नहीं जाना चाहता।'

देवदूतोंको विमान लेकर लौट जाना पड़ा। महर्षि मुद्गलने कुछ ही दिनोंमें अपने त्यागमय जीवन तथा भगवद्-भजनके प्रभावसे भगवद्धाम प्राप्त किया। —सु० सिं०

(महाभारत, वन० २६०-२६१)

विचित्र

महर्षि दुर्वासा अपने क्रोधके लिये तीनों लोकमें विख्यात हैं। एक बार वे चीर धारण किये, जटा बढ़ाये, बिल्वदण्ड लिये तीनों लोकोंमें घूम-घूमकर सभाओंमें, चौराहोंपर चिल्लाते फिरते थे—'मैं दुर्वासा हूँ, दुर्वासा। मैं निवासके लिये स्थान खोजता हुआ चारों ओर घूम रहा हूँ। जो कोई मुझे अपने घरमें ठहराना चाहता हो, वह अपनी इच्छा व्यक्त करे। पर रत्तीभर अपराध करनेपर भी मुझे क्रोध आ जायगा। इसलिये जो मुझे आश्रय देना चाहे, उसे सर्वदा इस बातका ध्यान रखना होगा और बड़ा सावधान रहना पड़ेगा।'

महर्षि चिल्लाते चिल्लाते देवलोक, नागलोक, मनुष्य-लोक—सर्वत्र घूम आये; पर किसीको भी उनके प्रस्तावरूप विपत्तिको स्वीकार करनेका साहस न हुआ। घूमते-घामते वे द्वारका पहुँचे। भगवान् श्रीकृष्णके कानोंमें उनकी विज्ञप्ति पहुँची। उन्होंने उनको बुलाकर अपने घरमें ठहरा लिया, किंतु उन महात्माका रहनेका ढंग बड़ा निराला था। किसी दिन तो वे हजारों मनुष्योंकी भोजन-सामग्री अकेले खा जाते और किसी दिन बहुत थोड़ा खाते। किसी दिन घरसे बाहर निकल जाते और फिर उस दिन लौटते ही नहीं। कभी तो वे ठहाका मारकर अनायास ही हँसने लगते और कभी अकारण ही जोरोंसे रोने लगते थे। एक दिन वे अपनी कोठरीमें घुस गये और शय्या, बिछौना आदिको आगमें जलाकर भागते हुए श्रीकृष्णके पास आये और बोले—'वासुदेव! मैं इस समय खीर खाना चाहता हूँ, मुझे तुरत खीर खिलाओ।' भगवान् वासुदेव भी सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान थे। उन्होंने उनका अभिप्राय पहलेसे ही ताड़ लिया था। इसलिये उनकी अभीष्ट खाद्य-सामग्रियाँ पहलेसे ही तैयार कर रक्खी थीं। बस, उन्होंने भी तुरत गरमागरम खीर लाकर उनके सामने रख दी। खीर खाकर उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा—'वासुदेव! तुम यह बची हुई जूँठी खीर अपने शरीरभरमें चुपड़ लो। श्रीकृष्णने भी झट वैसा ही कर लिया। मस्तकमें और सब अङ्गोंमें खीर लगा ली। श्रीरुक्मिणीजी वहीं खड़ी-खड़ी मुसकरा रही थीं। दुर्वासाने यह देख लिया। झट वही खीर उनके भी सारे अङ्गोंमें पोत दी और एक रथमें उनको जोतकर उसपर सवार हो गये। फिर तो जिस तरह सारथि घोड़ोंको चाबुक मारता है उसी तरह महर्षि कोड़े फटकारते हुए रथ हाँकने लगे

सम्मान तथा मधुर भाषणसे राक्षस भी वशीभूत

एक बार एक बुद्धिमान् ब्राह्मण एक निर्जन वनमें घूम रहा था। उसी समय एक राक्षसने उसे खानेकी इच्छासे पकड़ लिया। ब्राह्मण बुद्धिमान् तो था ही, विद्वान् भी था; इसलिये वह न घबराया और न दुःखी ही हुआ। उसने उसके प्रति सामका प्रयोग आरम्भ किया। उसने उसकी प्रशंसा बड़े प्रभावशाली शब्दोंमें आरम्भ की—'राक्षस! तुम दुबले क्यों हो? मालूम होता है, तुम गुणवान्, विद्वान् और विनीत होनेपर भी सम्मान नहीं पा रहे हो और मूढ़ तथा अयोग्य व्यक्तियोंको सम्मानित होते हुए देखते हो; इसीलिये तुम दुर्बल तथा क्रुद्ध-से रहते हो। यद्यपि तुम बड़े बुद्धिमान् हो तथापि अज्ञानी लोग तुम्हारी हँसी उड़ाते होंगे—इसीलिये तुम उदास तथा दुर्बल हो।'

इस प्रकार सम्मान किये जानेपर राक्षसने उसे मित्र बना लिया और बड़ा धन देकर विदा किया। —जा० श०

(महा० शान्तिपर्व, आपद्धर्म)

चाटुकारिता अनर्थकारिणी है

बड़ी मीठी लगती है चाटुकारिता और एक बार जब चाटुकारोंकी मिथ्या प्रशंसा सुननेका अभ्यास हो जाता है, तब उसके जालसे निकलना कठिन होता है। चाटुकार लोग अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये बड़े-बड़ोंको मूर्ख बनाये रहते हैं और आश्चर्य यही है कि अच्छे लोग भी उनकी झूठी प्रशंसाको सत्य मानते रहते हैं।

चरणाद्रि (चुनार) उन दिनों करूषदेशके नामसे विख्यात था। वहाँका राजा था पौण्ड्रक। उसके चाटुकार सभासद् कहते थे—'आप तो अवतार हैं। आप ही वासुदेव हैं। भूभार दूर करनेके लिये आप साक्षात् नारायणने अवतार धारण किया है। आपकी सेवा करके हम धन्य हो गये। जो आपका दर्शन कर पाते हैं, वे भी धन्य हैं।'

पौण्ड्रक इन चाटुकारोंकी मिथ्या प्रशंसामें ऐसा भूला कि उसने अपनेको वासुदेव कहना प्रारम्भ किया। वह दो कृत्रिम हाथ लगाकर चतुर्भुज बना रहने लगा और शङ्ख, चक्र, गदा तथा कमल उन हाथोंमें लिये ही रहनेका उसने अभ्यास कर लिया। अपने रथकी पताकापर उसने गरुडका चिह्न बनवाया। बात यहींतक रहती, तब भी कोई हानि नहीं थी; किंतु उसने तो गर्वमें आकर दूत भेजा द्वारका। श्रीकृष्णचन्द्रके पास यह संदेश भेजा उसने—'कृष्ण! मैं ही वासुदेव हूँ। भूभार दूर करनेके लिये मैंने ही अवतार धारण किया है। यह बहुत अनुचित बात है कि तुम भी अपनेको वासुदेव कहते हो और मेरे चिह्न धारण करते हो। तुम्हारी यह धृष्टता सहन करने योग्य नहीं है। तुम वासुदेव कहलाना बंद करो और मेरे चिह्न छोड़कर मेरी शरण आ जाओ। यदि तुम्हें यह स्वीकार न हो तो मुझसे युद्ध करो।'

द्वारकाकी राजसभामें दूतने यह संदेश सुनाया तो यादवगण देरतक हँसते रहे पौण्ड्रककी मूर्खतापर। श्रीकृष्णचन्द्रने दूतसे कहा—'जाकर कह दो पौण्ड्रकसे कि युद्ध-भूमिमें मैं उसपर अपने चिह्न छोड़ूँगा।'

पौण्ड्रकको गर्व था अपनी एक अक्षौहिणी सेनाका। अकेले श्रीकृष्णचन्द्र रथमें बैठकर करूष पहुँचे तो वह पूरी सेना लेकर उनसे युद्ध करने आया। उसके साथ उसके मित्र काशीनरेश भी अपनी एक अक्षौहिणी सेनाके साथ आये थे। पौण्ड्रकने दो कृत्रिम भुजाएँ तो बना ही रक्खी थीं, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मके साथ नकली कौस्तुभ भी धारण किया था उसने। नटके समान बनाया उसका कृत्रिम वेश देखकर श्रीकृष्णचन्द्र हँस पड़े।

पौण्ड्रक और काशिराजकी दो अक्षौहिणी सेना तो शार्ङ्गसे छूटे बाणों, सुदर्शन चक्रकी ज्वाला और कौमोदकी गदाके प्रहारमें दो घंटे भी दिखायी नहीं पड़ी। वह जब समाप्त हो गयी, तब द्वारकाधीशने पौण्ड्रकसे कहा—'तुमने जिन अस्त्रोंके त्यागनेकी बात दूतसे कहलायी थी, उन्हें छोड़ रहा हूँ। अब सम्हलो!'

गदाके एक ही प्रहारने पौण्ड्रकके रथको चकनाचूर कर दिया। वह रथसे कूदकर पृथ्वीपर खड़ा हुआ ही था कि चक्रने उसका मस्तक उड़ा दिया। उस चाटुकारिताप्रिय मूर्ख एवं पाखण्डीका साथ देनेके कारण काशिराज भी युद्धमें मारे गये।—सु० सिं०

(श्रीमद्भागवत १०।६६)

मैत्री-निर्वाह

कर्णकी महत्ता

(१)

पाण्डव बारह वर्षका वनवास तथा एक वर्षका अज्ञातवास पूर्ण कर चुके थे। वे उपप्लव्य नगरमें अब अपने पक्षके वीरोंको एकत्र कर रहे थे। भाइयोंमें युद्ध न हो, महासंहार रुक जाय, इसके लिये श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवोंके दूत बनकर हस्तिनापुर दुर्योधनको समझाने गये; किंतु हठी दुर्योधनने स्पष्ट कह दिया—'युद्धके बिना सुईकी नोक-जितनी भूमि भी मैं पाण्डवोंको नहीं दूँगा।'

वासुदेवका संधि-प्रयास असफल हो गया। वे लौटने लगे। उनको पहुँचानेके लिये भीष्म, विदुर आदि जो लोग नगरसे बाहरतक आये, उन्हें उन्होंने लौटा दिया; किंतु कर्णको बुलाकर अपने रथपर बैठा लिया। कर्णका खाली रथ सारथि पीछे-पीछे ले आ रहा था।

अपने रथपर बैठाकर, आदरपूर्वक श्रीकृष्णचन्द्र कर्णसे बोले—'वसुषेण! तुम वीर हो, विचारशील हो, धर्मात्मा हो। देखो, मैं तुम्हें आज एक गुप्त बात बतलाता हूँ। तुम अधिरथ सूतके पुत्र नहीं हो, तुम कुन्तीके पुत्र हो। दूसरे पाण्डवोंके समान तुम भी पाण्डव हो, पाण्डु-पुत्र हो; क्योंकि भगवान् सूर्यके द्वारा तुम पाण्डुकी पत्नी कुन्तीसे उनकी कन्यावस्थामें उत्पन्न हुए थे।'

कर्ण सिर झुकाये चुप-चाप सुनते रहे। वासुदेवने उनके कंधेपर हाथ रक्खा—'तुम युधिष्ठिरके बड़े भाई हो। दुर्योधन अन्याय कर रहा है और तुम्हारे ही बलपर अकड़ रहा है। तुम उसका साथ छोड़ दो और मेरे साथ चलो। कल ही तुम्हारा राज्याभिषेक हो। युधिष्ठिर तुम्हारे युवराज बनेंगे। पाण्डव तुम्हारे पीछे चलेंगे। मैं तुम्हें अभिवादन करूँगा। तुम्हारे सहित जब पाण्डव छः भाई साथ खड़े होंगे, तब त्रिभुवनमें उनके सम्मुख खड़े होनेका साहस किसमें है!'

अब कर्ण तनिक मुसकराये। वे बोले—'वासुदेव! मैं जानता हूँ कि देवी कुन्ती मेरी माता हैं। मैं सूर्य-पुत्र हूँ और धर्मतः पाण्डव हूँ। किंतु दुर्योधनने सदासे मेरा विश्वास किया है। जब सब मुझे तिरस्कृत कर रहे थे, दुर्योधनने मुझे अपनाया, मुझे सम्मानित किया। मुझपर दुर्योधनके बहुत अधिक उपकार हैं। [illegible] आयोजन किया है। मैं [illegible] विश्वासघात नहीं करूँगा। [illegible] युद्ध करनेकी। होगा वही [illegible] वीर [illegible]पर पड़े-पड़े न मरें, [illegible]—यही मेरी इच्छा है।'

'कर्ण! तुम [illegible] तो तुम्हारी इच्छा। युद्ध ही होगा [illegible]।' [illegible] रुकवा दिया।

उस रथसे उतरनेसे पूर्व कर्ण बोले—[illegible] एक प्रार्थना आप [illegible] हैं, यह बात आप गुप्त ही रक्खें, क्योंकि [illegible] उन्हें पता लग जायगा कि मैं उनका [illegible] राज्य मुझे दे देंगे और मैं [illegible] दूँगा। [illegible] हूँ, अतः युद्ध [illegible] यही हूँ कि [illegible] हो। [illegible] राज्य प्राप्त करें। [illegible] है, फिर भी आप [illegible]।'

महात्मा कर्णका [illegible] चन्द्रके रथसे उतरकर अपने [illegible] लौट पड़े। (महाभारत, [illegible])

× × × ×

(२)

संधि करानेके प्रयत्नमें असफल होकर [illegible] लौट गये। अब युद्ध निश्चित हो [illegible] निश्चिन्त हो गयी। इधर देवी [illegible] रही थीं। कर्ण उनका ही [illegible] संग्राम करनेको उद्यत! दुर्योधन [illegible] रहा है। [illegible] किया। वे [illegible]।

स्नान करके कर्ण [illegible] किये [illegible] कर रहे थे। [illegible] करनी पड़ी। [illegible]

कुन्तीको देखते ही दोनों हाथ जोड़कर वे बोले—'देवि ! अधिरथका पुत्र कर्ण आपको प्रणाम करता है ।'

कुन्ती प्रेम-विह्वल हो उठीं । बड़े स्नेहसे वे बोलीं—'बेटा ! मेरे सामने तू अपनेको सूतपुत्र मत कह । मैं यही कहने आयी हूँ कि तू इन लोकप्रकाशक भगवान् सूर्यका पुत्र है और इस अभागिनीके गर्भसे उत्पन्न हुआ है । मैं तेरी माता हूँ । तू अपने भाइयोंसे ही युद्धका हठ छोड़ दे, बेटा ! मैं तुझसे यही माँगने आयी हूँ आज ।'

कर्णने फिर दोनों हाथ जोड़े—'माता ! आपकी बात सत्य है । मुझे पता है कि मैं आपका पुत्र हूँ; किंतु मैं दुर्योधनके उपकारोंसे दबा हूँ । दुर्योधन उस समय मेरा मित्र बना, जब मुझे पूछनेवाला कोई नहीं था । आपत्तिके समय मैं मित्रका साथ नहीं छोड़ सकता । युद्ध तो मैं दुर्योधनके ही पक्षमें करूँगा ।'

कुन्तीदेवीने भरे कण्ठसे कहा—'माँ होकर आज संकोच छोड़कर मैं तेरे पास आयी और तू मुझे निराश करके लौटा रहा है ।'

कर्ण बोले—'माता ! आप मुझे क्षमा करें । मैं कर्तव्यसे विवश हूँ । परंतु मैं आपको वचन देता हूँ कि अर्जुनको छोड़कर दूसरे किसी पाण्डवपर मैं घातक प्रहार नहीं करूँगा । दूसरे भाई युद्धमें मेरे सामने पड़ें भी तो मैं उन्हें छोड़ दूँगा । आपके पाँच पुत्र बने रहेंगे । अर्जुन मारे गये तो आपका पाँचवाँ पुत्र मैं और मैं मारा गया तो अर्जुन हैं ही ।'

'तुम अपना यह वचन स्मरण रखना !' देवी कुन्ती आशीर्वाद देकर लौट गयीं ।

(महाभारत, उद्योग० १४४–१४६)

(२)

पितामह भीष्म सदा कर्णका तिरस्कार किया करते थे । युद्धके आरम्भमें महारथी, अतिरथी वीरोंकी गणना करते समय सबके सामने ही उन्होंने कर्णको अर्धरथी कहा था । चिढ़कर कर्णने प्रतिज्ञा कर ली थी कि जबतक पितामह युद्धमें कौरवदलके सेनापति हैं, वह शस्त्र नहीं उठायेगा । दस दिनोंके युद्धमें कर्ण तटस्थ दर्शक ही रहे । दसवें दिन पितामह अर्जुनके बाणोंसे विद्ध होकर रथसे गिर पड़े । उनके शरीरमें लगे बाण ही उनकी शय्या बन गये थे । पितामहके गिरनेपर युद्ध बंद हो गया । सब स्वजन उनके समीप आये । यह भीड़ जब समाप्त हो गयी, जब शरशय्यापर पड़े भीष्म अकेले रह गये, तब एकान्त देखकर कर्ण वहाँ आये । उन्होंने कहा—'पितामह ! सदा आपसे धृष्टता करनेवाला सूतपुत्र कर्ण आपके चरणोंमें प्रणाम करता है ।'

भीष्मपितामहने स्नेहपूर्वक कर्णको पास बुलाया और स्नेहपूर्ण गद्गद वाणीसे बोले—'बेटा कर्ण ! मैं जानता था कि तुम महान् शूर हो । तुम अद्भुत वीर एवं श्रेष्ठ महारथी हो । तुम ज्ञानी हो । परंतु तुम्हें हतोत्साह करनेके लिये मैं सदा तुम्हारा तिरस्कार करता था । इसी उद्देश्यसे मैंने तुम्हें अर्धरथी कहा था; क्योंकि दुर्योधन तुम्हारे ही बलपर युद्धसे उद्यत हुआ । यदि तुम युद्धमें उत्साह न दिखलाते तो दुर्योधन युद्धका हठ छोड़ देता । यह महासंहार किसी प्रकार रुक जाय, यही मैं चाहता था । परंतु हुआ वही जो होनेवाला था । तुम्हारे प्रति मेरे मनमें कभी दुर्भाव नहीं रहा है । मेरी बातोंको तुम मनमें मत रखना ।'

कर्ण मस्तक झुकाये सुनते रहे । पितामहने कहा—'बेटा ! मेरी शक्ति लग चुकी है । तुम चाहो तो यह संहार अब भी रुक सकता है । मैं तुम्हें एक भेदकी बात बतलाता हूँ । तुम अधिरथके पुत्र नहीं हो । तुम सूर्यकुमार हो और कुन्तीके पुत्र हो । तुम पाण्डवोंमें सबसे बड़े हो । दुरात्मा दुर्योधनका साथ छोड़कर तुम्हें अपने धर्मात्मा भाइयोंका पालन करना चाहिये ।'

कर्ण अब बोले—'पितामह ! आप जो कह रहे हैं, उसे मैं पहलेसे जानता हूँ । किंतु दुर्योधन मेरा मित्र है । उसने सदा मुझसे सम्मानका व्यवहार किया है । अपनेपर उपकार करनेवाले मित्रके साथ मैं विश्वासघात कैसे कर सकता हूँ । उसका मुझपर ही भरोसा है, ऐसी दशामें मैं इस संकट-कालमें उसका साथ कैसे छोड़ सकता हूँ । आप तो मुझे युद्ध करनेकी आज्ञा दें । कौरवपक्षमें युद्ध करते हुए मैं वीरोंकी भाँति देहत्याग करूँ, यही मेरी कामना है ।'

पितामहने आशीर्वाद दिया—'वत्स ! तुम्हारी कामना पूर्ण हो । तुम उत्साहपूर्वक दुर्योधनके पक्षमें युद्ध करो । अपने कर्तव्यका पालन करो ।'— सु० सिं०

(महाभारत, भीष्म० १२२)

अलौकिक भ्रातृ-प्रेम

'मैं प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहुँ खेल जितावहिं मोही॥' (श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड)

सरयूके स्वच्छ पुलिनपर चक्रवर्तीजीके चारों कुमार खेलने आये थे सखाओंके साथ। समस्त बालकोंका विभाजन हो गया दो दलोंमें। एक दलके अग्रणी हुए श्रीराम और दूसरे दलके भरतलाल। श्रीरामके साथ लक्ष्मण और भरतके साथ शत्रुघ्न कुमार तो सदासे रहे—रहते आये, सुतरां आज भी थे। दोनों यूथ सुसज्जित खड़े हो गये। दोनों दलोंके मध्यमें विस्तृत समतल भूमि स्थिर हो गयी। मध्यमें रेखा बना दी गयी। खेल चलने लगा। आज राजकुमार कबड्डी खेल रहे थे।

लखनलाल आज उमंगमें थे। वे बार-बार भरतजीको ललकारते थे—'भैया! आज तो रघुनाथजी विजयी होंगे।'

यह ललकार भरतको उल्लसित करती थी। उनके दलके बालक आज हार रहे थे। एक-एक करके उनका दल कम हो रहा था। प्रत्येक बार जब लक्ष्मण आते थे, एक-दो बालकोंको छूकर ही लौटते थे। अन्तमें शत्रुघ्न भी हार गये। अपने दलमें बच रहे अकेले भरत।

'अब सब लोग चुपचाप खड़े रहेंगे। भरतलाल मुझे छू लें तो विजय उनकी, न छू पायें तो विजय मेरे दलकी।' श्रीराघवेन्द्रने खेलमें एक अद्भुत निर्णय दे दिया।

'आप पूरे वेगसे भागें तो सही।' लक्ष्मणजीने बड़े भाईको प्रोत्साहित किया।

भरत आये दौड़ते और श्रीराम भागे: किंतु ऐसे भागे जैसे उन्हें दौड़ना आता ही न हो। दस पग जाते-जाते तो भरतके हाथने उनकी पीठका स्पर्श कर लिया।

'भाई भरत विजयी हुए!' श्रीरामका कमलमुख प्रफुल्लित हो उठा। दोनों हाथोंसे तालियाँ बजायीं उन्होंने। लेकिन भरतका मुख नीचे झुक गया था। उनके नेत्रोंमें उल्लासके स्थानपर लज्जाका भाव था। अपने अग्रजके भ्रातृस्नेहका साक्षात् करके उनके बड़े-बड़े नेत्र भर आये थे।

'विजयी हुए भाई भरत!' श्रीराम ने उल्लासमें ताली बजाते जा रहे थे। [illegible]

अनोखा प्रभु-विश्वास और प्रभु-प्रीति

वृत्रासुरने समरमें इन्द्रके साथ महायुद्ध करते हुए उनसे कहा—'देवराज! भगवान् विष्णुने मुझे मारनेके लिये तुम्हें प्रेरणा दी है, इसलिये तुम मुझे वज्रसे मार डालो। मैं अपने मनको भगवान्‌के चरणोंमें विलीन कर दूँगा। जो पुरुष भगवान्‌के हो गये हैं और उनके चरणोंके अनन्य प्रेमी हैं, उनको भगवान् स्वर्ग, पृथ्वी अथवा पातालकी सम्पत्ति नहीं देते; क्योंकि इनसे परम आनन्दकी प्राप्ति न होकर द्वेष, अभिमान, उद्वेग, मानस पीड़ा, कलह, दुःख और परिश्रम ही हाथ लगते हैं। मुझपर भगवान्‌की अनन्त कृपा है, इसीसे वे मुझे उपर्युक्त सम्पत्तियाँ नहीं दे रहे हैं। मेरे प्रभुकी कृपाका तो अनुभव उनके अकिंचन भक्तोंको ही होता है। दूसरे उसे नहीं जान पाते। वे प्रभु अपने भक्तके अर्थ, धर्म और कामसम्बन्धी प्रयासोंको असफल करके ही उनपर कृपा करते हैं। मैं इसी कृपाका अधिकारी हूँ।' यों कहते-कहते वृत्रासुरने भगवान्‌से प्रार्थना की—'प्रभो! मेरा मन निरन्तर आपके मङ्गलमय गुणोंका ही स्मरण करता रहे। मेरी वाणी उन गुणोंका ही गान करे और शरीर आपकी सेवामें ही लगा रहे। सर्वसौभाग्यनिधे! मैं आपको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मपद, भूमण्डलका साम्राज्य, पातालका एकच्छत्र राज्य, योगकी सिद्धियाँ—यहाँतक कि अपुनर्भव मोक्ष भी नहीं चाहता। जैसे, जिनके पाँख नहीं उगे हैं, ऐसे माँपर निर्भर रहनेवाले पक्षियोंके बच्चे अपनी माँकी बाट देखते रहते हैं, जैसे भूखे बछड़े अपनी मैया-गैयाका दूध पीनेके लिये आतुर रहते हैं, जैसे वियोगिनी पत्नी अपने प्रवासी प्रियतमसे मिलनेके लिये नित्य उत्कण्ठित रहती है, वैसे ही कमललोचन! मेरा मन आपके लिये छटपटा रहा है। मुझे मुक्ति न मिले, मेरे कर्म मुझे चाहे जहाँ ले जायँ; परंतु नाथ! मैं जहाँ-जहाँ जिस-जिस योनिमें जाऊँ, वहाँ आपके प्यारे भक्तोंसे ही मेरी प्रीति—मैत्री रहे। जो लोग आपकी मायासे देह-गेह और स्त्री-पुत्रादिमें आसक्त हैं, उनके साथ मेरा कभी किसी प्रकारका भी सम्बन्ध न हो।'

धन्य प्रभु-विश्वास, प्रभु प्रीति और परम निष्कामभाव!

विश्वास हो तो भगवान् सदा समीप हैं

दुर्योधनके कपट-द्यूतमें सर्वस्व हारकर पाण्डव द्रौपदीके साथ काम्यकवनमें निवास कर रहे थे। परंतु दुर्योधनके चित्तको शान्ति नहीं थी। पाण्डवोंको कैसे सर्वथा नष्ट कर दिया जाय, यह सदा इसी चिन्तामें रहता था। संयोगवश महर्षि दुर्वासा उसके यहाँ पधारे और कुछ काल टिके रहे। अपनी सेवासे दुर्योधनने उन्हें संतुष्ट कर लिया। जाते समय महर्षिने उससे वरदान माँगनेको कहा। कुटिल दुर्योधन नम्रतासे बोला—'महर्षे! पाण्डव हमारे बड़े भाई हैं। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं चाहता हूँ कि जैसे आपने अपनी सेवाका अवसर देकर मुझे कृतार्थ किया है, वैसे ही मेरे उन बड़े भाइयोंको भी कम-से-कम एक दिन अपनी सेवाका अवसर दें। परंतु मेरी इच्छा है कि आप उनके यहाँ अपने समस्त शिष्योंके साथ आतिथ्य-ग्रहण करें और तब पधारें जब महारानी द्रौपदी भोजन कर चुकी हों, जिससे मेरे भाइयोंको देरतक भूखा न रहना पड़े।'

बात यह थी कि पाण्डव जब वनमें गये, तब उनके प्रेमसे विवश बहुत-से ब्राह्मण भी उनके साथ-साथ गये। किसी प्रकार वे लोग लौटे नहीं। इतने सब लोगोंके भोजनकी व्यवस्था वनमें होनी कठिन थी। इसलिये धर्मराज युधिष्ठिरने तपस्या तथा स्तुति करके सूर्यनारायणको प्रसन्न किया। सूर्यने युधिष्ठिरको एक बर्तन देकर कहा—'इसमें वनके कन्द-शाक आदि लाकर भोजन बनानेसे वह भोजन अक्षय हो जायगा। उससे सहस्रों व्यक्तियोंको तबतक भोजन दिया जा सकेगा, जबतक द्रौपदी भोजन न कर ले। द्रौपदीके भोजन कर लेनेपर उस दिन पात्रमें कुछ नहीं बचेगा।' दुर्योधन इस बातको जानता था। इसीसे उसने दुर्वासाजीसे द्रौपदीके भोजन कर चुकनेपर पाण्डवोंके यहाँ जानेकी प्रार्थना की। दुर्वासा मुनिने उसकी बात स्वीकार कर ली और वहाँसे चले गये। दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ यह समझकर कि पाण्डव इन्हें भोजन नहीं दे सकेंगे और तब ये महाक्रोधी मुनि अवश्य ही शाप देकर उन्हें नष्ट कर देंगे। बुरी नीयतका यह प्रत्यक्ष नमूना है।

महर्षि दुर्वासा तो दुर्योधनको वचन ही दे चुके थे। वे अपने दस सहस्र शिष्योंकी भीड़ लिये एक दिन दोपहरके बाद काम्यकवनमें पाण्डवोंके यहाँ जा धमके। धर्मराज युधिष्ठिर तथा उनके भाइयोंने उठकर महर्षिको साष्टाङ्ग प्रणिपात किया। उनसे आसनपर बैठनेकी प्रार्थना की।

महर्षि बोले—'राजन्! आपका मङ्गल हो। हम सब भूखे हैं और अभी मध्याह्न-संध्या भी हमने नहीं की है। आप हमारे भोजनकी व्यवस्था करें। हम पासके सरोवरमें स्नान करके, संध्या-वन्दनसे निवृत्त होकर शीघ्र आते हैं।'

स्वभावतः धर्मराजने हाथ जोड़कर नम्रतासे कह दिया—'देव! मध्यादिसे निवृत्त होकर शीघ्र पधारें।' पर जब दुर्वासाजी शिष्योंके साथ चले गये, तब चिन्तासे युधिष्ठिर तथा उनके भाइयोंका मुख सूख गया। उन्होंने द्रौपदीजीको बुलाकर पूछा तो पता लगा कि वे भोजन कर चुकी हैं। महाक्रोधी दुर्वासाजी भोजन न मिलनेपर अवश्य शाप देकर भस्म कर देंगे—यह निश्चित था और उन्हें भोजन दिया जा सके, इसका कोई भी उपाय नहीं था। अपने पतियोंको चिन्तित देख द्रौपदीजीने कहा—'आपलोग चिन्ता क्यों करते हैं! श्यामसुन्दर सारी व्यवस्था कर देंगे।'

धर्मराज बोले—'श्रीकृष्णचन्द्र यहाँ होते तो चिन्ताकी कोई बात नहीं थी; किंतु अभी ही तो वे हमलोगोंसे मिलकर अपने परिकरोंके साथ द्वारका गये हैं। उनका रथ तो अभी द्वारका पहुँचा भी नहीं होगा।'

द्रौपदीजीने दृढ विश्वाससे कहा—'वे कहाँ आते-जाते हैं! ऐसा कौन-सा स्थान है, जहाँ वे नहीं हैं! वे तो यहीं हैं और अभी-अभी आ जायँगे।'

द्रौपदीजी झटपट कुटियामें चली गयीं और उस जन-रक्षक आर्तिनाशन मधुसूदनको मन ही-मन पुकारने लगीं। पाण्डवोंने देखा कि बड़े वेगसे चार श्वेत घोड़ोंसे जुता द्वारकाधीशका गरुडध्वज रथ आया और रथके खड़े होते-न-होते वे मयूरमुकुटी उसपरसे कूद पड़े। परंतु इस बार उन्होंने न किसीको प्रणाम किया और न किसीको प्रणाम करनेका अवसर दिया। वे तो सीधे कुटियामें चले गये और अत्यन्त क्षुधातुरकी भाँति आतुरतासे बोले—'कृष्णे! मैं बहुत भूखा हूँ, झटपट कुछ भोजन दो।'

'तुम आ गये भैया! मैं जानती थी कि तुम अभी आ जाओगे।' द्रौपदीजीमें जैसे नये प्राण आ गये। वे हड़बड़ाकर उठीं—'महर्षि दुर्वासाको भोजन देना है……'

'पहले मुझे भोजन दो। फिर और कोई बात। [illegible] गदा नहीं हुआ [illegible] भूखके मारे।' [illegible] अद्भुत भूख लगी थी।

'परंतु मैं भोजन कर चुकी हूँ। [illegible] धो माँजकर धर दिया है। भोजन है कहाँ! [illegible] लिये तो तुम्हें पुकारा है [illegible]।' द्रौपदीजी चकित देख रही थी उस [illegible] मुख।

'बातें मत बनाओ! मैं बहुत भूखा हूँ। कहाँ है वह बर्तन! लाओ, मुझे दो।' श्रीकृष्णचन्द्रने जैसे कुछ सुना ही नहीं। द्रौपदीने चुपचाप बर्तन उठाकर हाथमें दे दिया [illegible]। श्यामने बर्तन लेकर घुमा फिराकर ऊपर भीतर देखा। बर्तनके भीतर [illegible] एक नन्हा [illegible] ढूँढकर निकाल ही लिया और अपनी [illegible] में उसे लेकर बोले—'तुम तो कहती थीं कि [illegible]। यह क्या है? इससे तो सारे विश्वकी क्षुधा दूर हो जायगी।'

द्रौपदीजी चुपचाप देखती रहीं और उन [illegible] वह शाकपत्र मुखमें डाला यह कहकर—'विश्वात्मा [illegible] तृप्त हो जायँ' और बस, डकार ले ली। विश्वात्मा श्रीकृष्णचन्द्रने तृप्तिकी डकार ले ली तो अब विश्वमें [illegible] रहा कहाँ।

यहाँ सरोवरमें स्नान करते महर्षि दुर्वासा तथा उनके शिष्योंकी बड़ी विचित्र दशा हुई। उनमेंसे प्रत्येकको डकार-पर-डकार आने लगी। सबको लगा कि [illegible] पेटमें [illegible] भर गया है। आश्चर्यसे वे एक दूसरेकी ओर देखने लगे। अपनी और शिष्योंकी दशा देखकर दुर्वासाजी बोले—'मुझे अम्बरीषकी घटनाका स्मरण हो रहा है। [illegible] में हैं, उनके पास बैठे ही भोजनकी [illegible] आना ही अनुचित हुआ और अब हमसे भोजन [illegible] जायगा। उनका भोजन [illegible] हम सबको एक पलमें नष्ट कर सकते हैं, क्योंकि वे [illegible] भक्त हैं। अब तो एक ही [illegible] कि [illegible] चुपचाप भाग चलें।'

[illegible] दुर्वासा मुनि [illegible] शिष्योंके [illegible] उन्होंने [illegible]

यह आशा कृशतर—दुबली है । मुझे तो इस बातपर बड़ा संशय हो रहा है ।'

"मुनिने कहा—'राजन् ! शक्ति होनेपर भी जो दूसरेका उपकार नहीं करता, योग्य पुरुषोंका सत्कार नहीं करता, उस परमासक्त पुरुषकी दुराशा मुझसे दुबली है । किसी एक पुत्रवाले पिताको जो पुत्रके विदेश जाने या भूल जाने या पता न लगनेपर जो उसकी आशा होती है, वह मुझसे दुबली है । जो आशा कृतघ्न, नृशंस, आलसी तथा अपकारी पुरुषोंमें संलग्न है, वह आशा मुझसे बड़ा [illegible] है ।'

"इन सब बातोंको सुनकर [illegible], और उसने अपने पुत्रकी [illegible] अपने योगबल तथा तपोबलसे [illegible] । पुनः उन्होंने अपना अद्भुत दिव्य [illegible] और वनमें वे अन्यत्र चले गये । [illegible] दुराशा सर्वथा त्याग करनेके योग्य है ।'' [illegible]

(महाभा० शान्तिपर्व, [illegible])

पार्वतीकी परीक्षा

महाभागा हिमाचलनन्दिनी पार्वतीने भगवान् शंकरको पतिरूपसे प्राप्त करनेके लिये घोर तप किया । श्रीशंकरजीने प्रसन्न होकर दर्शन दिया । पार्वतीने उन्हें वरण कर लिया । इसके बाद शंकरजी अन्तर्धान हो गये । पार्वतीजी आश्रमके बाहर एक शिलापर बैठी थीं । इतनेमें उन्हें किसी आर्त बालकके रोनेकी आवाज सुनायी दी । बालक चिल्ला रहा था । 'हाय-हाय ! मैं बचा हूँ, मुझे ग्राहने पकड़ लिया है । यह अभी मुझे चबा जायगा । मेरे माता-पिताके मैं ही एकमात्र पुत्र हूँ । कोई दौड़ो, मुझे बचाओ, हाय ! मैं मरा !'

बालकका आर्तनाद सुनकर पार्वतीजी दौड़ीं । देखा, एक बड़े ही सुन्दर बालकको सरोवरमें ग्राह पकड़े हुए है । वह पार्वतीको देखते ही जल्दीसे चलकर बालकको सरोवरके बीचमें ले गया । बालक बड़ा तेजस्वी था, पर ग्राहके द्वारा पकड़े जानेसे करुण-क्रन्दन कर रहा था । बालकका दुःख देखकर पार्वतीजीका हृदय द्रवित हो गया । वे बोलीं—'ग्राहराज ! बालक बड़ा दीन है, इसे तुरत छोड़ दो ।' ग्राह बोला—'देवी ! दिनके छठे भागमें जो मेरे पास आयेगा, वही मेरा आहार होगा । यह बालक इसी कालमें यहाँ आया है, अतएव ब्रह्माने इसे मेरे आहाररूपमें ही भेजा है; इसे मैं नहीं छोड़ सकता ।' देवीने कहा—'ग्राहराज ! मैं तुम्हें नमस्कार करती हूँ । मैंने हिमाचलकी चोटीपर रहकर बड़ा तप किया है, उसीके बलसे तुम इसे छोड़ दो ।' ग्राहने कहा—'तुमने जो उत्तम तप किया है, वह मुझे अर्पण कर दो तो मैं इसे छोड़ दूँ ।' पार्वतीने कहा—'ग्राहराज ! इस तपकी तो बात ही क्या है, मैंने [illegible] पुण्य-संचय किया है, सब तुम्हें अर्पण करती हूँ, [illegible] बालकको छोड़ दो ।' पार्वतीने इतना [illegible] शरीर तपके तेजसे चमक उठा, उसका [illegible] मध्याह्नके सूर्यके सदृश तेजोमय हो गया । उसने कहा 'देवी ! तुमने यह क्या किया ! जरा विचार तो करो । [illegible] कष्ट सहकर तुमने तप किया था और [illegible] किया था । ऐसे तपका त्याग करना तुम्हारे [illegible] है । अच्छा, तुम्हारी ब्राह्मण-भक्ति और [illegible] मैं बड़ा संतुष्ट हूँ । तुम्हें वरदान देता हूँ—[illegible] को भी वापस लो और इस बालकको [illegible] ।' [illegible] पार्वतीने कहा—'ग्राहराज ! प्राण देकर भी [illegible] बालकको बचाना मेरा कर्तव्य था । [illegible] जायगा, पर यह बालक फिर कहाँसे [illegible] कुछ सोचकर ही बालकको बचाया है और [illegible] दिया है । अब इस दी हुई वस्तुको मैं [illegible] सकती । बस, तुम इस बालकको छोड़ दो ।' [illegible] सुनकर ग्राह बालकको छोड़कर अन्तर्धान हो [illegible] । [illegible] पार्वतीने अपना तप [illegible] का विचार किया । तब [illegible] देवी ! तुम्हें फिरसे तप [illegible] तप मुझको ही दिया है । [illegible] था । तुम्हारी दया और [illegible] मैंने यह लीला की । देखो, [illegible] तपस्या अब हजारगुनी होकर अक्षय हो गयी है ।'

चोरीका दण्ड

ऋषि 'शङ्ख' और 'लिखित' दो भाई थे। दोनों ही बड़े तपस्वी थे और दोनों ही अलग-अलग आश्रम बनाकर रहते थे। एक बार लिखित शङ्खके आश्रमपर आये। दैवयोग उस समय शङ्ख बाहर गये हुए थे। लिखितको भूख लगी थी, इसलिये शङ्खके आश्रमके वृक्षोंसे फल तोड़कर खाने लगे। इतनेमें ही शङ्ख आ गये। उन्होंने उनसे पूछा—'भैया! तुम्हें ये फल कैसे मिले?' लिखितने हँसते हुए कहा—'ये तो इसी सामनेके वृक्षसे हमने तोड़े हैं।' 'तब तो तुमने चोरी की' लिखितने कहा। 'अच्छा, अब तुम राजाके पास जाओ और उससे कहो—'मुझे वह दण्ड दीजिये जो चोरको दिया जाता है।''

लिखित बड़े भाईके इस आदेशसे बड़े प्रसन्न हुए कि भाईने मुझे एक आदर्शके त्यागरूप पापसे बचा लिया। वे राजा सुद्युम्नके पास गये और कहा—'राजन्! मैंने बिना आज्ञा लिये अपने बड़े भाईके फल खा लिये हैं, इसलिये आप मुझे दण्ड दीजिये।'

सुद्युम्नने कहा—'विप्रवर! यदि आप दण्ड देनेमें राजाको प्रमाण मानते हैं, तो उसको क्षमा करनेका भी तो अधिकार है। अतः मैं आपको क्षमा करता हूँ। इसके अतिरिक्त मैं आपकी और क्या सेवा करूँ?' पर लिखितने अपना आग्रह बराबर जारी रक्खा। अन्तमें राजाने उनके दोनों हाथ कटवा दिये। अब वे पुनः शङ्खके पास आये और क्षमा माँगी।

शङ्खने कहा, 'भैया! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम तो धर्मज्ञ हो। यह तो धर्मोल्लङ्घनका दण्ड है। अब तुम इस नदीमें जाकर विधिवत् देवता और पितरोंका तर्पण करो। भविष्यमें कभी अधर्मों मन मत ले जाना।' लिखित नदीके जलमें स्नान करके ज्यों ही तर्पण करने लगे, उनकी भुजाओंमेंसे कमलके समान दो हाथ प्रकट हो गये। इससे उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने आकर भाईको हाथ दिखलाये। शङ्खने कहा—'भाई! शङ्का न करो, मैंने अपने तपके प्रभावसे ये हाथ उत्पन्न कर दिये हैं।' लिखितने पूछा—'यदि आपके तपका ऐसा प्रभाव है तो आपने पहले ही मेरी शुद्धि क्यों नहीं कर दी?' शङ्खने कहा—'यह ठीक है; पर तुम्हें दण्ड देनेका अधिकार मुझे नहीं, राजाको ही था। इससे राजाकी भी शुद्धि हुई और पितरोंके सहित तुम भी पवित्र हो गये।' लिखितको जहाँ बाहु उत्पन्न हुए थे, उस नदीका उस दिनसे नाम 'बाहुदा' हो गया। —जा० श०

(महा० शान्ति० अध्याय २३)

मङ्किका वैराग्य

मङ्कि नामके एक ब्राह्मण थे। उन्होंने धनोपार्जनके लिये बहुत यत्न किया; पर सफलता न मिली। अन्तमें थोड़े-से बचे-खुचे धनसे उन्होंने भार सहने योग्य दो बछड़े खरीदे। एक दिन सधानेके लिये वे उन्हें जोतकर लिये जा रहे थे। रास्तेमें एक ऊँट बैठा था। वे उसे बगलमें करके एकदम दौड़ गये। जब वे उसकी गर्दनके पास पहुँचे, तब ऊँटको बड़ा बुरा लगा और वहाँ खड़ा होकर उनके दोनों बछड़ोंको गर्दनपर लटकाये बड़े जोरसे दौड़ने लगा। इस प्रकार मङ्किने जब अपने बछड़ोंको मरते देखा, तब उन्हें बड़ा कष्ट तथा वैराग्य हो गया और वे कहने लगे—'मनुष्य कैसा भी चतुर क्यों न हो यदि उसके भाग्यमें नहीं होता तो प्रयत्न

करनेपर भी उसे धन नहीं मिल सकता। पहले अनेकों असफलताओंके बाद भी मैं धनोपार्जनकी चेष्टामें लगा ही था, पर विधाताने इन बछड़ोंके बहाने मेरे सारे प्रयत्नको मिट्टीमें मिला दिया। इस समय काक-तालीय न्यायसे ही यह ऊँट मेरे बछड़ोंको लटकाये इधर-उधर दौड़ रहा है। यह दैवकी ही लीला है। यदि कोई पुरुषार्थ सफल होता दिखायी देता है तो विचारनेपर वह भी दैवका ही किया जान पड़ता है। इसलिये जिसे सुखकी इच्छा हो, उसे वैराग्यका ही आश्रय लेना चाहिये। अहो! शुकदेव मुनिने क्या ही, अच्छा कहा है—'जो मनुष्य अपनी समस्त कामनाओंको पा लेता है तथा जो उनका सर्वथा त्याग कर देता है, उन दोनोंमें त्यागनेवाला ही श्रेष्ठ है।'

मङ्किने मन-ही-मन कहा—'ओ कामनाओंके दास! अब तू सब प्रकारकी कर्मवासनाओंसे अलग हो जा। विषयासक्तिको छोड़ दे। ओ मूढ़! भला, तू इस अर्थ-लोलुपतासे कब अपना पिण्ड छुड़ायेगा। यों तो धनके संकल्पमें ही सुख नहीं है। वह मिल जाय तो भी चिन्ता ही बढ़ती है। और यदि एक बार मिलकर नष्ट हो जाय, तब तो मौत ही आ जाती है। मैं समझता हूँ, धनके नाश होनेपर जो कष्ट होता है, वही सबसे बढ़कर है। धनमें जो थोड़ा सुखका अंश दीखता है, वह भी दुःखके लिये ही है। [illegible] आशासे लुटेरे मार डालते हैं अथवा उसे [illegible] पीड़ा देकर नित्यप्रति तंग करते रहते हैं। काम! तेरा पेट भरना बड़ा कठिन है। तू [illegible] है। मैं मनकी सारी चेष्टाएँ छोड़कर [illegible]। अब धनके नाश हो जानेसे मेरी सब [illegible] गयी। अब मैं मौजसे सोऊँगा। काम! तू अब मेरे पास न रह सकेगा। तू मेरा बड़ा शत्रु है। मैं तेरी इच्छा पूर्ण नहीं होने दूँगा। तू [illegible] मुझे वैराग्य, सुख, तृप्ति, शान्ति, सत्य, दम, क्षमा और सर्वभूतदया—ये सभी गुण प्राप्त हो गये हैं। अब काम, लोभ, तृष्णा और कृपणताको चाहिये कि वे मुझे छोड़कर चले जायँ। दुःख, निर्लज्जता और असंतोष—ये कामसे ही उत्पन्न होते हैं। पर अब काम और लोभसे मुक्त होकर मैं सुखी हो गया हूँ। अब मैं परब्रह्ममें प्रतिष्ठित हूँ, पूर्णतया शान्त हूँ और मुझे [illegible] आनन्दका अनुभव हो रहा है।'

इस प्रकारकी बुद्धि पाकर मङ्कि विरक्त हो गये। सब प्रकारकी कामनाओंका परित्याग करके उन्होंने [illegible] प्राप्त किया। दो बछड़ोंके नाशसे ही उन्हें [illegible] हो गया। उन्होंने पाप तथा दुःखोंकी मूल कामनाकी जड़ काट डाली और वे अत्यन्त सुखी हो गये। [illegible]

(महा० शान्तिपर्व, [illegible])

दुःखदायी परिहासका कटु परिणाम

(खगमका क्रोध)

पूर्वकालमें एक सहस्रपाद नामके ऋषिकुमार थे। उनमें सभी गुण थे; केवल एक दुर्गुण था कि वे अपने मित्रों और साथियोंको हँसीमें चौंका दिया करते या डरा दिया करते थे। उनके एक मित्र थे ऋषिकुमार खगम। वे सत्यवादी थे और परम तपस्वी थे, लेकिन अत्यन्त भीरु थे। सर्पसे उन्हें बहुत डर लगता था।

एक दिन ऋषिकुमार सहस्रपादने [illegible] एक साँप बनाया और उसे लेकर [illegible] जैसे ही [illegible] अग्निहोत्र कर रहे थे। [illegible] ऊपर फेंक दिया। [illegible]

मूर्छा [illegible]
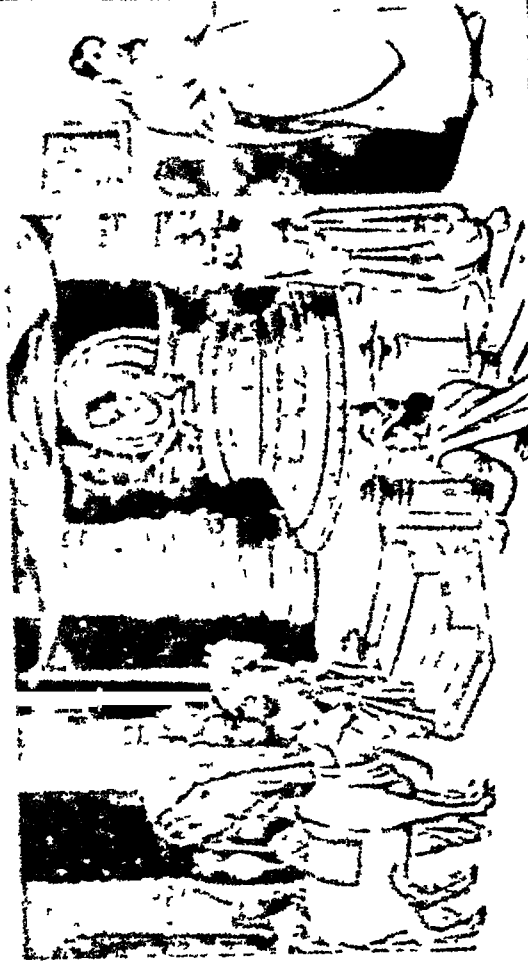
आश्रितका त्याग अभीष्ट नहीं

(धर्मराजकी धार्मिकता)

महाराज युधिष्ठिरने जब सुना कि श्रीकृष्णचन्द्रने अपनी लीलाका संवरण कर लिया है और यादव परस्परके कलहसे ही नष्ट हो चुके हैं, तब उन्होंने अर्जुनके पौत्र परीक्षित्‌का राजतिलक कर दिया। स्वयं सब वस्त्र एवं आभूषण उतार दिये। मौन-व्रत लेकर, केश खोले, वीर-संन्यास लेकर वे राजभवनसे निकले और उत्तर दिशाकी ओर चल पड़े। उनके शेष भाइयों तथा द्रौपदीने भी उनका अनुगमन किया।

धर्मराज युधिष्ठिरने सब माया-मोह त्याग दिया था। उन्होंने न भोजन किया, न जल पिया और न विश्राम ही किया। बिना किसी ओर देखे या रुके वे बराबर चलते ही गये और हिमालयमें बद्रीनाथसे आगे बढ़ गये। उनके भाई तथा रानी द्रौपदी भी बराबर उनके पीछे चलती रहीं।

सत्पथ पार हुआ और स्वर्गारोहणकी दिव्य भूमि आयी। द्रौपदी, नकुल, सहदेव, अर्जुन—ये क्रम-क्रमसे गिरने लगे। जो गिरता था, वह वहीं रह जाता था। उस हिम-प्रदेशमें गिरकर फिर उठनेकी चर्चा ही व्यर्थ है। शरीर तो तत्काल हिम समाधि पा जाता है। उस पावन प्रदेशमें प्राण त्यागनेवालेको स्वर्गकी प्राप्तिसे भला-कौन रोक सकता है। युधिष्ठिर न रुकते थे और न गिरते हुए भाइयों-की ओर देखते ही थे। वे राग द्वेषसे परे हो चुके थे। अन्तमें भीमसेन भी गिर गये।

युधिष्ठिर जब स्वर्गारोहणके उच्चतम शिखरपर पहुँचे, तब भी अकेले नहीं थे। उनके भाई और रानी द्रौपदी मार्गमें गिर चुकी थीं, किंतु एक कुत्ता उनके साथ था। यह कुत्ता हस्तिनापुरसे ही उनके पीछे-पीछे [illegible] था। उस [illegible] पहुँचते ही स्वयं देवराज इन्द्र [illegible] उतरे। उन्होंने युधिष्ठिरका स्वागत करते हुए कहा [illegible] धर्माचरणसे स्वर्ग अब आपका है। [illegible]।'

युधिष्ठिरने जब अपने [illegible] तथा द्रौपदीको भी [illegible] ले जानेकी प्रार्थना की। देवराजने बताया—'वे पहले ही वहाँ पहुँच गये हैं।'

युधिष्ठिरने दूसरी प्रार्थना की—'इस कुत्तेको भी [illegible] बैठा लें।'

इन्द्र—'आप धर्मज्ञ होकर [illegible]! स्वर्गमें कुत्तेका प्रवेश कैसे हो सकता है? [illegible] मुझे देख सका, यही बहुत है।'

युधिष्ठिर—'यह मेरे आश्रित है। [illegible] नगरसे इतनी दूर मेरे साथ आया है। [illegible] अधर्म है। इस आश्रितका त्याग मुझे [illegible] नहीं। [illegible] बिना मैं अकेले स्वर्ग नहीं जाना चाहता।'

इन्द्र—'राजन्! स्वर्गकी प्राप्ति पुण्य[illegible]। यह पुण्यात्मा ही होता तो इस अधम [illegible]!'

युधिष्ठिर—'मैं अपना आधा पुण्य इसे [illegible]।'

'धन्य हो, धन्य हो, युधिष्ठिर! [illegible] प्रसन्न हूँ!' युधिष्ठिरने देखा कि [illegible] साक्षात् धर्म देवता उनके सम्मुख [illegible] दे रहे हैं।—सु० सिं० ([illegible])

मृत्युका कारण प्राणीका अपना ही कर्म है

प्राचीनकालमें एक गौतमी नामकी वृद्धा ब्राह्मणी थी। उसके एकमात्र पुत्रको एक दिन सर्पने काट लिया, जिससे वह बालक मर गया। वहाँपर अर्जुनक नामक एक व्याध इस घटनाको देख रहा था। उस व्याधने फंदेमें सर्पको बाँध लिया और उस ब्राह्मणीके पास ले आया। ब्राह्मणीसे व्याधने पूछा—'देवि! तुम्हारे पुत्रके हत्यारे इस सर्पको मैं अग्निमें डाल दूँ या काटकर टुकड़े-टुकड़े कर डालूँ?'

धर्मपरायणा गौतमी बोली—'अर्जुनक! तुम इस सर्पको छोड़ दो। इसे मार डालनेसे मेरा पुत्र तो जीवित होनेसे रहा और इसके जीवित रहनेसे [illegible] करके अपने सिरपर [illegible] स्वीकार नहीं कर सकता।'

व्याधने कहा—'देवि! [illegible] है, [illegible] इस दुष्ट सर्पको [illegible]।'

[illegible]

लगो। श्रीकृष्णने कहा—'पार्थ! बर्बरीकने अपनी शक्तिके अनुरूप ही बात कही है। इसके विषयमें बड़ी अद्भुत बातें सुनी जाती हैं। पहले इसने पातालमें जाकर नौ करोड़ दैत्योंको क्षणभरमें मौतके घाट उतार दिया था।' फिर उन्होंने बर्बरीकसे कहा—'वत्स! तुम भीष्म, द्रोण, कृप, कर्ण आदि महारथियोंसे सुरक्षित सेनाको इतना शीघ्र कैसे मार सकोगे? इनपर विजय पाना तो महादेवजीके लिये भी कठिन है। तुम्हारे पास ऐसा कौन-सा उपाय है, जो इस प्रकारकी बात कह रहे हो। मैं तुम्हारी इस बातपर कैसे विश्वास करूँ?'

वासुदेवके इस प्रकार पूछनेपर बर्बरीकने तुरत ही अपना धनुष चढाया और उसपर बाण संधान किया। फिर उस बाणको उसने लाल रंगके भस्मसे भर दिया और कानतक खींचकर छोड़ दिया। उस बाणके मुखसे जो भस्म उड़ा, वह दोनों सेनाओंके मर्मस्थलोंपर गिरा। केवल पाँच पाण्डव, कृपाचार्य और अश्वत्थामाके शरीरसे उसका स्पर्श नहीं हुआ। अब बर्बरीक बोला—'आपलोगोंने देखा! इस क्रियासे मैंने मरनेवाले वीरोंके मर्मस्थानका निरीक्षण कर लिया। अब बस दो घड़ीमें इन्हें मार गिराता हूँ।'

यह देख-सुनकर युधिष्ठिर आदिके चित्तमें बड़ा विस्मय हुआ। सभी लोग बर्बरीकको 'धन्य! धन्य!' कहने लगे। इससे महान् कोलाहल छा गया। इतनेमें ही श्रीकृष्णने अपने तीक्ष्ण चक्रसे बर्बरीकका मस्तक काट गिराया। इससे भीम, घटोत्कच आदिको बड़ा क्लेश हुआ। इसी समय सिद्धाम्बिका आदि देवियाँ वहाँ आ पहुँचीं और उन्होंने बतलाया कि इसमें श्रीकृष्णका कोई अपराध नहीं। बर्बरीक पूर्वजन्ममें सूर्यवर्चा नामका यक्ष था। जब पृथ्वी भारसे घबराकर मेरु पर्वतपर देवताओंके सामने अपना दुखड़ा रो रही थी, तब इसने कहा था कि 'मैं अकेला ही अवतार लेकर सब दैत्योंका संहार करूँगा। मेरे रहते किसी देवताको भी पृथ्वीपर अवतार लेनेकी आवश्यकता नहीं।' इसपर [illegible] कहा था—'दुर्मते! तू [illegible] है। अतएव [illegible] पृथ्वीपर [illegible] होगा, उसी समय श्रीकृष्णके हाथसे [illegible] नाश होगा।'

तदनन्तर श्रीकृष्णने [illegible] गिरको अमृतसे सींचो और [illegible] बना दो। देवीने वैसा ही किया। [illegible] भगवान्‌को प्रणाम किया और कहा—[illegible] तब भगवान्‌ने उसके मस्तकको [illegible] जब युद्ध समाप्त हुआ, तब [illegible] हुआ और सब अपनी अपनी [illegible] करने लगे। [illegible] निर्णय हुआ कि [illegible] बर्बरीकके [illegible] जब उनसे जाकर पूछा गया, तब उसने [illegible] शत्रुओंके साथ [illegible] ही पुरुषको युद्ध करते [illegible] है। उस पुरुषके पाँच और पाँच मुख और [illegible] वह त्रिशूल आदि आयुध धारण किये था और [illegible] उसके एक मुख और चार भुजाएँ [illegible] शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित थीं। [illegible] सुशोभित थे और दाहिनी ओरके [illegible] रहा था। वह बाया और [illegible] और चन्दन लगा था। [illegible] और दाहिनी ओर चौमुखको [illegible] (चक्र विष्णुरूप) पुरुषके सिवा [illegible] था। मैंने उसके अतिरिक्त किसी [illegible] करते नहीं देखा।' उसके [illegible] उद्भासित हो उठा। उसी [illegible] साधु-साधुकी ध्वनिसे आकाश भर गया।

इसपर भीम आदि अपने [illegible]

([illegible])

जुआरीसे राजा

(स्वर्गमें अद्भुत दाता)

प्राचीनकालमें देव-ब्राह्मणनिन्दक एक प्रसिद्ध जुआरी था। वह महापापी तथा व्यभिचार आदि अन्य दुर्गुणोंसे भी दूषित था। एक दिन कपटपूर्वक जूएसे उसने बहुत धन जीता। फिर अपने हाथोंसे पानका स्वस्तिकाकार बीड़ा बनाकर तथा गन्ध और माल्य आदि सामग्री लेकर एक वेश्याको भेंट देनेके लिये उसके घरकी ओर दौड़ा। रास्तेमें पैर लड़खड़ाने, [illegible] [illegible] पृथ्वीपर [illegible] [illegible] दुर्लभ [illegible] [illegible] हुआ। [illegible]

पूछना ही क्या—नंगे रहते हैं या बहुत हुआ तो चमड़ा लपेट लिया। कोई नहीं जानता कि उनकी उत्पत्ति कैसे हुई।'

ब्रह्मचारी पता नहीं क्या-क्या कहता; किंतु यह आराध्यकी निन्दा सुने कौन ! उमाका तो दृढ निश्चय था—

[illegible]

अतः वे अन्दम उनेको [illegible] नहीं हुई। [illegible] दृढ निष्ठा है, वहाँ [illegible]

[illegible]

किसी भी बहानेसे धर्मका त्याग नहीं कर सकता

पाँचों पाण्डवोंने भगवान् व्यासकी अनुमतिसे यह नियम कर लिया था कि एक नियमित समयतक द्रौपदीके साथ एक भाई एकान्तमें रहेगा। उस समय दूसरा भाई वहाँ नहीं जायगा। यदि कोई द्रौपदीके एकान्तवासको देख लेगा तो वह बारह वर्षके लिये राज्यसे बाहर निर्वासित होकर रहेगा। एक बारकी बात है। लुटेरोंने ब्राह्मणकी गायें लूट लीं। उन्होंने पुकार मचायी। अर्जुनने ब्राह्मणको आश्वासन दिया। पर यह अड़चन थी कि जिस घरमें अर्जुनके अस्त्र-शस्त्र थे, उसीमें द्रौपदीजीके पास राजा युधिष्ठिर थे। अर्जुनने ब्राह्मणके गोधनकी तथा युधिष्ठिरके राज्यधर्मकी रक्षाके लिये घरमें जाकर अस्त्र लानेका निश्चय किया और वे घरमें जाकर धनुष आदि ले आये और ब्राह्मणकी गौ छुड़ा लाये।

प्रातःकाल युधिष्ठिरके पास जाकर अर्जुनने कहा—'महाराज ! मैंने एकान्त [illegible] नियम भङ्ग किया है, अतः बारह वर्षके निर्वासनकी मुझे [illegible]।' युधिष्ठिरने व्याकुल होकर कहा—'भाई ! [illegible] राजधर्म बचाया है, ब्राह्मणकी रक्षा की है, [illegible] पालन किया है। मुझे इससे तनिक भी [illegible] फिर बड़ा भाई यदि अपनी पत्नीके पास [illegible] छोटे भाईका जाना अपराध नहीं है। हाँ, [illegible] के एकान्तमें नहीं जाना चाहिये। इससे न [illegible] लोप हुआ है, न मेरा अपमान। [illegible] छोड़ दो।' अर्जुनने कहा—'महाराज ! [illegible] सम्मति है कि धर्मके पालनमें कोई भी [illegible] नहीं [illegible] चाहिये। फिर मैं किसी बहानेसे [illegible] छोड़ूँ। किसी भी युक्तिसे मैं अपनी [illegible] सकता।' युधिष्ठिरने मूक सम्मति दी। [illegible]

नियम-निष्ठाका प्रभाव

महर्षि जरत्कारुने पितरोंकी आज्ञासे वंशपरम्परा चलानेके लिये विवाह करना भी स्वीकार किया तो इस नियमके साथ कि वे तभी विवाह करेंगे जब उनके ही नामवाली कन्याको कन्याके अभिभावक उन्हें भिक्षाकी भाँति अर्पित करें। परतु भाग्यका विधान सफल होकर ही रहता है। नागराज वासुकिकी बहिनका नाम भी जरत्कारु था और उसे लाकर स्वयं वासुकिने ऋषिको अर्पित किया।

ऋषिने वासुकिसे कहा—'अपनी बहिन और उससे उत्पन्न होनेवाली संतानका भरण-पोषण तुम्हें ही करना पड़ेगा। मैं तभीतक इसके साथ रहूँगा, जबतक यह मेरी आज्ञा मानेगी और मेरे किसी काममें विघ्न नहीं डालेगी। मेरे किसी कार्यमें इसके द्वारा बाधा पड़ी तो मैं इसे छोड़कर चला जाऊँगा। तुम्हें यह सब स्वीकार हो तभी मैं इसे पत्नी बनाऊँगा।'

ब्रह्माजीने वासुकि नागको बतलाया था कि राजा जनमेजय आगे सर्पयज्ञ करेंगे। उस सर्पयज्ञसे [illegible] धर्मात्मा नागोंकी रक्षा ऋषि जरत्कारुका [illegible] सकेगा। इसलिये ऋषिकी सब बातें वासुकि [illegible]

जरत्कारु ऋषि पत्नीके साथ [illegible] रहने लगे। उनकी पत्नी बड़ी [illegible] तत्पर रहने लगी। वे उनके [illegible] पालन करती और उन्हें [illegible]

एक दिन [illegible]

[illegible]

शिशुमें आसक्ति हो गयी। उस हिरनीके बच्चेमें उन्हें ममत्व हो गया।

मन बड़ा धूर्त है। वह अपने दोषोंको कर्तव्य, धर्म, आवश्यक आदि नाना तर्कोंसे सिद्ध करता ही रहता है। भरतके मनने भी उनसे कहना प्रारम्भ किया—'यह बेचारा मृगशावक अनाथ है, इसकी माता मर गयी है, अब हमीं इसके माता-पिता हैं, यह हमारी शरण है, इसका पालन-पोषण हमारा कर्तव्य है।' मनके दोष जहाँ एक बार अवसर पा जाते हैं, वहाँ फिर तरङ्गसे समुद्र बनते उन्हें कहाँ देर लगती है। मृगशावकमें भरतका मोह बढ़ता गया। वे संध्या-पूजाके बीचमें भी उसे उठकर देख लेते, पूजनके पश्चात् उसे आशीर्वाद देते, यदि मृगशावक कहीं वनमें चला जाता तो व्याकुल होकर उसकी प्रतीक्षा करते और कुछ देर होती उसके लौटनेमें तो उसके सकुशल लौटनेकी देवताओंसे प्रार्थना करने लगते।

काल तो किसी बातकी प्रतीक्षा करता नहीं। भरतका भी जीवनकाल समाप्त हुआ और मृत्युका समय आया। मृगशावक, जो अब मृग हो चुका था, उनसे अत्यन्त प्रेम करने लगा था। मृत्युके समय वह उनके समीप बैठा उनकी ही ओर देख रहा था। भरत भी उसे बड़े स्नेहसे देख रहे थे और व्याकुल होकर सोच रहे थे—'मेरे बिना यह बेचारा कैसे रहेगा?' इसी दशामें उनका शरीर छूट गया। भगवान्‌ने तो स्पष्ट बता दिया है गीतामें—

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥
(८।६)

साम्राज्यत्यागी विरक्त, [illegible] और [illegible] भगवदाराधना करनेवाले भरत मृगशावकका [illegible] मरे; इससे उन्हें मृगयोनिमें जन्म लेना पड़ा। [illegible] हुआ कालिञ्जरमें एक मृगीके गर्भसे। परंतु [illegible] आराधना व्यर्थ नहीं जाती। भरतको उनकी [illegible] यह शक्ति दे दी थी कि मृगशरीरमें भी उन्हें पूर्वजन्मका स्मरण बना रहा। फल यह हुआ कि [illegible] वे चलने-दौड़ने योग्य हुए कि कालिञ्जरसे [illegible] फिर पुलहाश्रम आ गये और वहाँ [illegible] आप सूखकर गिरे पत्ते खाकर रहने लगे। [illegible] पर वहाँके पवित्र तीर्थ जलमें स्नान करके [illegible] त्याग दिया।

भरतका तीसरा जन्म हुआ एक ब्राह्मणके यहाँ। [illegible] भी उन्हें अपने पूर्वजन्मोंका स्मरण तथा [illegible] इसलिये उन्होंने अपनेको ऐसा बना लिया [illegible] बुद्धिहीन, पागल हों। उन्हें [illegible] बुद्धिमान् एवं व्यवहारकुशल बननेमें [illegible] पड़कर कहीं आसक्ति न हो जाय। [illegible] अटपटापन देखकर लोग उन्हें 'जड़' कहने लगे। [illegible] उनका नाम ही जड़भरत पड़ गया। [illegible] जन्म था।—सु० सिं० ([illegible])

श्रद्धा, धैर्य और उद्योगसे अशक्य भी शक्य होता है

महाराज सगरके साठ सहस्र पुत्र महर्षि कपिलका अपमान करके अपने ही अपराधसे भस्म हो गये थे। उनके उद्धारका केवल एक मार्ग था—उनकी भस्म गङ्गाजलमें पड़े। परंतु उस समयतक गङ्गाजी पृथ्वीपर आयी नहीं थीं। वे तो ब्रह्मलोकमें ब्रह्माजीके कमण्डलुमें ही थीं। सगरके पौत्र अंशुमान्‌ने उनको पृथ्वीपर लानेके लिये तपस्या प्रारम्भ की और तपस्या करते-करते ही उनका देहावसान भी हो गया। उनके पुत्र दिलीपने तपस्या करके पिताके कार्यको पूरा करना चाहा, किंतु वे भी असफल रहे। उनकी आयु भी तपस्या करते-करते समाप्त हो गयी। दिलीपके पुत्र भगीरथने जैसे ही देखा कि उनका ज्येष्ठ पुत्र राज्यकार्य चला सकता है, उसे राज्य दे दिया और स्वयं वनमें चले गये। पिता-पितामह जिस कार्यको पूरा नहीं कर सके थे, [illegible] था।

दीर्घकालीन तपस्याके पश्चात् [illegible] दर्शन भी दिया तो बोलीं—'मेरे वेगको [illegible] भी मैं पृथ्वीपर नहीं आना चाहती, [illegible] मुझमें स्नान करेंगे। उनका पाप [illegible] पाप कैसे नष्ट होगा?'

भगीरथने निवेदन किया—[illegible] धारण करेंगे। [illegible] जन भी आपमें स्नान करेंगे। [illegible] निवास करते हैं। [illegible] नष्ट होंगे।'

सच्ची लगन क्या नहीं कर सकती

द्रोणाचार्य उन दिनों हस्तिनापुरमें कुरुकुलके बालक पाण्डव एवं कौरवोंको अस्त्र-शस्त्रकी शिक्षा दे रहे थे। एक दिन एक काले रंगका पुष्ट शरीरवाला भील-बालक उनके समीप आया। उसने आचार्यके चरणोंमें प्रणाम करके प्रार्थना की—'मेरा नाम एकलव्य है। मैं इस आशासे आया हूँ कि आचार्य मुझपर भी अनुग्रह करेंगे और मुझे अस्त्र-संचालन सिखायेंगे।'

आचार्यको उस बालककी नम्रता प्रिय लगी; किंतु राजकुमारोंके साथ वे एक भील-बालकको रहनेकी अनुमति दे नहीं सकते थे। उन्होंने कह दिया—'केवल द्विजाति बालक ही किसी भी गुरुगृहमें लिये जाते हैं। आखेटके योग्य शस्त्र-शिक्षा तो तुम अपने गुरुजनोंसे भी पा सकते हो। अस्त्र-संचालनकी विशिष्ट शिक्षा तुम्हारे लिये अनावश्यक है। प्रजापालन एवं संग्राम जिनका कार्य है, उनके लिये ही उसकी आवश्यकता भी है।'

एकलव्य वहाँसे निराश होकर लौट गया। किंतु उसका उत्साह नष्ट नहीं हुआ। उसमें अस्त्र-शिक्षा पानेकी सच्ची लगन थी। वनमें उसने एकान्तमें एक कुटिया बनाकर द्रोणाचार्यकी मिट्टीकी प्रतिमा, जो उसने स्वयं बनायी थी, स्थापित कर दी और स्वयं धनुष-बाण लेकर उस प्रतिमाके सम्मुख अभ्यास करनेमें जुट पड़ा।

द्रोणाचार्य एक बार अपने शिष्योंके साथ वनमें घूमते हुए निकले। पाण्डवोंका एक कुत्ता उनके साथसे अलग होकर वनमें उधर चला गया, जिधर एकलव्य लक्ष्यवेधका अभ्यास कर रहा था। कुत्ता उस काले भीलको देखकर भूँकने लगा। उसके भूँकनेसे एकलव्यके काममें बाधा पड़ी, इसलिये उसने बाणोंसे उस कुत्तेका मुख भर दिया। इससे घबराकर कुत्ता पाण्डवोंके समीप भागा आया।

सभी पाण्डव तथा कौरव राजकुमार कुत्तेकी दशा देखकर हँसने लगे। किंतु अर्जुनको बड़ा आश्चर्य हुआ। कुत्तेके मुखमें इस प्रकार बाण [illegible] थे कि कोई बाण उसे कहीं चुभा नहीं था; किंतु उसका पूरा मुख [illegible] ठसाठस भर गया था। इतनी सावधानी और [illegible] बाण मारना कोई हँसी-खेल नहीं था। आचार्य द्रोण भी उस [illegible] धनुर्धरकी खोजमें चल पड़े, जिसने यह [illegible] कर दिखाया था।

द्रोणाचार्यको देखते ही एकलव्य दौड़कर उनके चरणों पर गिर पड़ा। उसकी कुटियामें मिट्टीकी बनी अपनी ही प्रतिमा देखकर आचार्य चकित हो उठे। किंतु [illegible] अर्जुनने धीरेसे उनसे कहा—'गुरुदेव! आपने वचन दिया था कि आपके शिष्योंमें मैं सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर होऊँगा, किंतु इस भीलके सम्मुख तो मेरा [illegible] है। आपके वचन...।'

आचार्यने संकेतसे ही अर्जुनको आश्वासन दे दिया। एकलव्यसे उन्होंने गुरुदक्षिणाकी माँग की और जब उसने पूछा—'कौन-सी सेवा करके मैं अपनेको धन्य करूँ?' तब आचार्यने बिना हिचके कह दिया—'अपने दाहिने हाथका अँगूठा मुझे दे दो।'

अनुपम वीर, अनुपम निष्ठावान् एकलव्य अनुपम त्यागी भी सिद्ध हुआ। उसने तत्काल उठाकर दाहिने हाथका अँगूठा काटा और आचार्यके चरणोंके पास उसे [illegible] रख दिया। अँगूठेके कट जानेसे वह बाण चलानेके योग्य नहीं रह गया। बायें हाथसे बाण चलाकर भी वह धनुर्धरोंकी गणनामें कभी नहीं आ सका। किंतु [illegible] विख्यात होनेपर [illegible] अपने त्यागके कारण, अपनी निष्ठाके कारण, [illegible] इतिहासमें अमर हो गया।

—[illegible]

([illegible])

सच्ची निष्ठाका सुपरिणाम

पहले काशीमें माण्टि नामके एक ब्राह्मण रहते थे। उनके कोई पुत्र न था। अतएव उन्होंने सौ वर्षोंतक भगवान् शङ्करकी आराधना की। अन्तमें भगवान् प्रकट हुए और उन्हें अपने ही समान पराक्रमी और प्रभावशाली पुत्र होनेका वरदान देकर अन्तर्धान हो गये। अब माण्टिकी पत्नीने गर्भधारण किया। चार वर्ष बीत गये, गर्भका बालक बाहर नहीं निकला। माण्टिने यह दशा देखकर कहा—'पुत्र! [illegible] [illegible]

खोदकर एक बड़ा सरोवर बना दिया और घड़ेका बचा हुआ जल उस सरोवरमें डाल दिया, जिससे वह तालाब भी पूरा भर गया।

कालभीति उसके इस आश्चर्यमय कर्त्तव्यसे तनिक भी चकित या विचलित न हुआ। उसने कहा—'ऐसी अनेक विचित्रताएँ भूत-प्रेतादिको सिद्ध करनेवालोंमें भी देखी जाती हैं। इससे क्या हुआ ?' इसपर आगन्तुकने कहा—'तुम हो तो मूर्ख, पर बातें पण्डितों-जैसी करते हो; पुराणवेत्ता विद्वानोंके मुखसे क्या यह श्लोक तुमने नहीं सुना—

कूपोऽन्यस्य घटोऽन्यस्य रज्जुरन्यस्य भारत।
पाययत्येकः पिबत्येकः सर्वे ते समभागिनः॥

'भारत! कुआँ दूसरेका, घड़ा दूसरेका और रस्सी दूसरेकी है; एक पानी पिलाता है और एक पीता है; वे सब समान फलके भागी होते हैं।'

अतः कूप-तालाबादिके जलमें क्या दोष होगा, फिर अब तुम इस सरोवरके जलको क्यों नहीं पीते ?'

कालभीतिने कहा—'आपका कहना ठीक है, तथापि आपने अपने घड़ेके जलसे ही तो इस सरोवरको भरा है। यह बात प्रत्यक्ष देखकर भी मेरे-जैसा मनुष्य इस जलको कैसे पी सकता है ? अतः मैं इस जलको किसी प्रकार नहीं पीऊँगा।'

इस तरह कालभीतिके दृढ़ निश्चयको देखकर वह पुरुष एक बार खूब जोरोंसे हँसा और क्षणभरमें अन्तर्धान हो गया। अब तो कालभीतिको बड़ा विस्मय हुआ। वह बार-बार सोचने लगा—'यह क्या वृत्तान्त है ?' इतनेमें ही उस [illegible] एक अत्यन्त तेजस्वी [illegible] प्रकट हो गया। [illegible] गन्धर्व गाने लगे, इन्द्रने [illegible] यह देखकर कालभीति भी बड़ी [illegible] पूर्वक भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे। [illegible] होकर भगवान् शङ्करने उस लिङ्गसे प्रकट होकर [illegible] प्रत्यक्ष दर्शन दिया और कहा, '[illegible]! [illegible] मैं बड़ा संतुष्ट हूँ। तुम्हारी [illegible] यहाँ मनुष्यरूपमें प्रकट हुआ था और इस [illegible] जलको मैंने ही सब तीर्थोंके जलसे [illegible] है। [illegible] वर माँगो। तुम्हारे लिये मुझे कुछ भी [illegible] नहीं है।'

कालभीतिने कहा—'[illegible] निवास करें। आपके इस शुभ लिङ्गपर जो [illegible] आदि किया जाय, वह अक्षय हो। जो [illegible] पितरोंको तर्पण करे, उसे सब तीर्थोंका [illegible] हो [illegible] उसके पितरोंको अक्षय [illegible] प्राप्ति हो।' [illegible] कहा—'जो तुम चाहते हो, वह सब होगा। [illegible] नन्दीके साथ मेरे दूसरे द्वारपाल [illegible] पानेसे तुम महाकालके नामसे प्रसिद्ध होओगे। [illegible] आयेंगे, उन्हें उपदेश करके तुम मेरे [illegible]' इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये। —[illegible]

(स्कन्दपुराण, महेश्वरखण्ड, कुमारिकाखण्ड, [illegible])

सबसे बड़ा आश्चर्य

वनमें धर्मराज युधिष्ठिरके चारों भाई सरोवरके किनारे मृतकके समान पड़े थे। प्यास तथा भ्रातृशोकसे व्याकुल युधिष्ठिरके सम्मुख एक यक्ष प्रत्यक्ष खड़ा था। यक्षके प्रश्नोंका उत्तर दिये बिना जल पीनेके प्रयत्नमें ही भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेवकी यह दशा हुई थी। युधिष्ठिरने यक्षको उसके प्रश्नोंका उत्तर देना स्वीकार कर लिया था। यक्ष प्रश्नपर प्रश्न करता जा रहा था। युधिष्ठिरजी उसे धैर्यपूर्वक उत्तर दे रहे थे। यक्षके अन्तिम प्रश्नोंमेंसे एक प्रश्न था—'आश्चर्य क्या है ?'

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह [illegible]।
शेषाः स्थिरत्वमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः [illegible]॥

'नित्य-नित्य—प्रतिदिन प्राणी [illegible] देख रहे हैं कि प्रतिदिन उनके [illegible] परन्तु (फिर भी) बचे हुए लोग [illegible] रहना चाहते हैं, इससे बड़ा आश्चर्य [illegible] उत्तर था धर्मराजका। —सु॰ सि॰ ([illegible])

भगवत्कथा-श्रवणका माहात्म्य

तत्रैव गङ्गा यमुना च तत्र गोदावरी सिन्धुसरस्वती च।
नद्यः समस्ता अपि देवखाता नमन्ति यत्राच्युतसत्कथारताः॥
न कर्मलोपो न च बन्धक्लेशो न दुःखलेशो न च जन्मदोषः।
न भूतयक्षादिपिशाचपीडा यत्राच्युतोदारकथाप्रसङ्गः॥

(बाबु॰ माहात्म्य॰ [illegible])

[illegible] जाता है। [illegible] इसमें एक [illegible] उन्होंने [illegible] भी [illegible]

हो सकते हैं, पर वे भक्तवत्सल भक्तका परित्याग स्वप्नमें भी नहीं कर सकते*। अतएव तुमलोग उस पुण्यधामाको प्रसन्न करो ! जबतक ऐसा नहीं करते मैं प्रसन्न नहीं होती और तुम्हें जल नहीं दीखता ।

भगवती गङ्गाके द्वारा इस प्रकार समझाये जानेपर वे दोनों मुनि सत्यव्रत ग्राममें गये और पुण्यधामासे प्रार्थना करने लगे । पुण्यधामा उन्हें लेकर अपने गुरुके पास गये । उन्होंने उन दोनोंको भी बुलाकर दो [illegible] भगवत्कथा सुनायी । तत्पश्चात् वे पाँचों गङ्गातटपर [illegible] । भगवती गङ्गाने उठकर वृद्धता, दीनता और [illegible] पूजा की । आश्रममें आये हुए दोनों मुनियोंने भी देखा कि अब गङ्गाजी जलपूर्ण थीं । अब उन पाँचोंने वहाँ गङ्गामें अवगाहन किया तथा परा सिद्धि प्राप्त की ।—[illegible]

([illegible])

भगवद्गीताका अद्भुत माहात्म्य

नर्मदाके तटपर माहिष्मती नामकी एक नगरी है । वहाँ माधव नामके एक ब्राह्मण रहते थे । उन्होंने अपनी विद्याके प्रभावसे बड़ा धन कमाया और एक विशाल यज्ञका आयोजन किया । उस यज्ञमें बलि देनेके लिये एक बकरा मँगाया गया । जब उसके शरीरकी पूजा हो गयी, तब बकरेने हँसकर कहा—'ब्रह्मन् ! इन यज्ञोंसे क्या लाभ है । इनका फल विनाशी तथा जन्म-मरणप्रद ही है । मैं भी पूर्वजन्ममें एक ब्राह्मण था । मैंने समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान किया था और वेदविद्यामें बड़ा प्रवीण था । एक दिन मेरी स्त्रीने बाल-रोगकी शान्तिके लिये एक बकरेकी मुझसे बलि दिलायी । जब चण्डिकाके मन्दिरमें वह बकरा मारा जाने लगा, तब उसकी माताने मुझे शाप दिया—'ओ पापी ! तू मेरे बच्चेका वध करना चाहता है, अतएव तू भी बकरेकी योनिमें जन्म लेगा ।' ब्राह्मणो ! तदनन्तर मैं भी मरकर बकरा हुआ । यद्यपि मैं पशु-योनिमें हूँ, तथापि मुझे पूर्व-जन्मोंका स्मरण बना है । अतएव इन सभी वैतानिक क्रिया-जालसे भगवदाराधन आदि शुद्ध कर्म ही अधिक दिव्य हैं । अध्यात्ममार्गपरायण होकर हिंसारहित पूजा, पाठ एवं गीतादि सच्छास्त्रोंका अनुशीलन ही संसृति-चक्रसे छूटनेकी एकमात्र औषध है । इस सम्बन्धमें मैं आपको एक और आदर्शकी बात बताता हूँ ।

'एक बार सूर्यग्रहणके अवसरपर कुरुक्षेत्रमें [illegible] शर्माने बड़ी श्रद्धाके साथ कालपुरुषका दान करनेकी तैयारी की । उन्होंने वेद-वेदाङ्गोंके पारगामी एक विद्वान् ब्राह्मणको बुलवाया और सपुरोहित स्नान करने [illegible] । स्नानादिके उपरान्त यथोचित विधिसे उस ब्राह्मणको कालपुरुषका दान किया ।

'तब कालपुरुषका हृदय चीरकर उसमेंसे [illegible] चाण्डाल और निन्दात्मा एक चाण्डाली निकली । [illegible] वह जोड़ी आँखें लाल किये ब्राह्मणके शरीरमें हठात् प्रवेश करने लगी । ब्राह्मणने मन-ही-मन गीताके नवम [illegible] जप आरम्भ किया और राजा यह सब [illegible] देख रहा था । गीताके अक्षरोंसे समुद्भूत विष्णुदूतने चाण्डाल जोड़ीको ब्राह्मणके शरीरमें प्रवेश करते देख वे झट दौड़े और उनका उद्योग निष्फल कर दिया । इस घटनाको देख राजा चकित हो गया और उस ब्राह्मणसे इसका रहस्य पूछा । तब ब्राह्मणने सारी बात बतायी । अब राजा उस ब्राह्मणका शिष्य हो गया और उसने उनसे गीताका अध्ययन—अभ्यास किया ।'

इस कथाको बकरेके मुँहसे सुनकर ब्राह्मण [illegible] हुआ और बकरेको मुक्तकर गीतापरायण हो गया ।—[illegible]

(पद्मपुराण, [illegible])

गायका मूल्य

एक बार महर्षि आपस्तम्बने जलमें ही डूबे रहकर भगवद्भजन करनेका विचार किया । वे बारह वर्षोंतक नर्मदा और मत्स्या-संगमके जलमें डूबकर भगवत्स्मरण करते रह गये । जलमें रहनेवाले जीवोंके वे बड़े प्रिय हो गये थे । तदनन्तर एक समय मछली पकड़नेवाले बहुत-से मल्लाह वहाँ आये । उन्होंने वहाँ [illegible] महर्षिको भी खींच लाये । [illegible] पड़ी तो वे भयसे व्याकुल हो उठे और [illegible] गिरकर क्षमा माँगने लगे ।

मुनिने देखा कि इन [illegible]

* कथञ्चिद् रमणी त्यक्तुं विमुखस्तरते क्वचित् । स्वकुलस्तरते [illegible]

भी चिन्तित एवं दुखी रहते थे। पुत्र-प्राप्तिकी इच्छासे
राज रानीके साथ कुलगुरु महर्षि वशिष्ठके आश्रमपर
ये। महर्षिने उनकी प्रार्थना सुनकर आदेश किया—'कुछ
आश्रममें रहो और मेरी होमधेनु नन्दिनीकी सेवा करो।'

महाराजने गुरुकी आज्ञा स्वीकार कर ली। महारानी
:काल उस गौकी भलीभाँति पूजा करती थीं। गो-दोहन
जानेपर महाराज उस गायके साथ वनमें जाते थे। वे
के पीछे-पीछे चलते और अपने उत्तरीयसे उसपर
वाले मच्छर, मक्खी आदि जीवोंको उड़ाते रहते थे।
घास अपने हाथसे लाकर उसे खिलाते थे। उसके शरीर-
हाथ फेरते। गौके बैठ जानेपर ही बैठते और
के जल पी चुकनेपर ही जल पीते थे। सायंकाल जब गौ
लौटती, महारानी उसकी फिर पूजा करती थीं।
में वे उसके पास घीका दीपक रखती थीं। महाराज
में गौके समीप भूमिपर ही सोते थे।

अत्यन्त श्रद्धा और सावधानीके साथ गो-सेवा करते हुए
राज दिलीपको एक महीना हो गया। महीनेके अन्तिम
वनमें वे एक स्थानपर वृक्षोंका सौन्दर्य देखते खड़े हो
। नन्दिनी तृण चरती हुई दूर निकल गयी, इस बातका
ध्यान नहीं रहा। सहसा उन्हें गौके चीत्कारका
सुनायी पड़ा। दिलीप चौंके और शीघ्रतापूर्वक उस ओर
जिधरसे शब्द आया था। उन्होंने देखा कि एक
ान् सिंह गौको पंजोंमें दबाये उसके ऊपर बैठा है। गौ
कातर दृष्टिसे उनकी ओर देख रही है। दिलीपने धनुष
या और सिंहको मारनेके लिये बाण निकालना चाहा; किंतु
का वह हाथ भाथेमें ही चिपक गया।

इसी समय स्पष्ट मनुष्यभाषामें सिंह बोला—'राजन्!
उद्योग मत करो। मैं साधारण पशु नहीं हूँ। मैं
वती पार्वतीका कृपापात्र हूँ और उन्होंने मुझे अपने हाथों
ये इस देवदारु वृक्षकी रक्षाके लिये नियुक्त किया है। जो
अपने-आप यहाँ आ जाते हैं, वे ही मेरे आहार होते हैं।'

महाराज दिलीपने कहा—'आप जगन्माताके सेवक
के कारण मेरे वन्दनीय हैं, मैं आपको प्रणाम करता हूँ।
रुषोंके साथ सात पद चलनेसे भी मित्रता हो जाती है।
मुझपर कृपा करें। मेरे गुरुकी इस गौको छोड़ दें
और क्षुधा-निवृत्तिके लिये मेरे शरीरको आहार [illegible]।'

सिंहने आश्चर्यपूर्वक कहा—'आप [illegible]
हैं! आप युवा हैं, नरेश हैं और आपको [illegible]
प्राप्त हैं। इस प्रकार आपका देहत्याग किसी प्रकार [illegible]
का काम नहीं। आप तो एक गौके बदले [illegible]
सहस्रों गायें दे सकते हैं।'

राजाने नम्रतापूर्वक कहा—'भगवन्! मुझे [illegible]
मोह नहीं और न सुख भोगनेकी [illegible] है। [illegible]
हुई गौ मेरे रहते मारी जाय तो मेरे [illegible] है।
आप मेरे शरीरपर कृपा करनेके बदले मेरे धर्मकी [illegible]।
मेरे यश तथा मेरे कर्तव्यको सुरक्षित बनायें।'

सिंहने राजाको समझानेका बहुत [illegible], किंतु
जब उन्होंने अपना आग्रह नहीं छोड़ा, तब वह बोला—'अच्छी
बात! मुझे तो आहार चाहिये। तुम अपना शरीर देना
चाहते हो तो मैं इस गौको छोड़ दूँगा।'

दिलीपका भाथेमें चिपका हाथ छूट गया। उन्होंने
धनुष तथा भाथा उतारकर दूर रख दिये और [illegible]
झुकाकर भूमिपर बैठ गये। परंतु उनपर [illegible]
बदले आकाशसे पुष्प-वर्षा होने लगी। [illegible]
सुनायी पड़ा—'पुत्र! उठो। तुम्हारी परीक्षा [illegible]
अपनी मायासे मैंने ही यह दृश्य उपस्थित किया था। [illegible]
दोनेमें मेरा दूध दुहकर पी लो। इससे तुम्हें [illegible] पुत्र
प्राप्त होगा।'

दिलीप उठे। वहाँ सिंह कहीं था ही नहीं। नन्दिनीको
उन्होंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। हाथ जोड़कर बोले—[illegible]
आपके दूधपर पहले आपके बछड़ेका [illegible]
गुरुदेवका। आश्रम पहुँचनेपर [illegible]
पीकर तृप्त हो जायगा, तब गुरुदेवकी [illegible]
दूध पी सकता हूँ।'

दिलीपकी धर्मनिष्ठासे नन्दिनी और [illegible]
वह आश्रम लौटी। महर्षि [illegible]
अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनकी [illegible]
दूध पीया। गोसेवाके फलसे उन्हें [illegible]।
[illegible]
[illegible])

पाताल पहुँचनेपर दोनों महर्षियोंकी बात शेषजीने सुन ली और बोले—'आपमेंसे कोई अपने प्रभावसे इस पृथ्वीको कुछ क्षण अधरमें रोके रहें तो मेरा भार कम हो और मैं स्वस्थ होकर विचार करके निर्णय दूँ।'

'मैं एक सहस्र वर्षके तपका फल अर्पित करता हूँ, धरा आकाशमें स्थित रहे।' महर्षि विश्वामित्रने हाथमें जल लेकर सकल्प किया; किंतु पृथ्वी तो हिली भी नहीं।

'मैं आधी घड़ीके अपने [illegible] पुण्य देता हूँ, पृथ्वी देवी कुछ क्षण गगनमें ही [illegible] रहें।' [illegible] संकल्प किया और पृथ्वी [illegible] निराधार स्थित हो गयी।

अब निर्णय करनेको [illegible] कुछ [illegible] था। विश्वामित्रजीने वसिष्ठजीके चरण पकड़ [illegible]—'भगवन्! [illegible] सदासे महान् हैं।' —सु० सिं०

सच्चे संतका शाप भी मङ्गलकारी होता है

धनाधीश कुबेरके दो पुत्र थे—नलकूबर और मणिग्रीव। कुबेरके पुत्र, फिर सम्पत्तिका पूछना क्या। युवावस्था थी, यक्ष होनेके कारण अत्यन्त बली थे, लोकपालके पुत्र होनेके कारण परम स्वतन्त्र थे।

> **यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकता।**
> **एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम्॥**

युवावस्था, धन, प्रभुत्व और विचारहीनता—इनमेंसे प्रत्येक अनर्थका कारण है; फिर जहाँ चारों हों, वहाँ तो पूछना ही क्या। कुबेरके पुत्रोंमें चारों दोष एक साथ आ गये। धन-मदसे वे उन्मत्त रहने लगे।

एक बार वे स्त्रियोंके साथ मदिरा पीकर जल-क्रीडा कर रहे थे नंगे होकर। उसी समय देवर्षि नारद उधरसे निकले। देवर्षिको देखकर स्त्रियाँ झटपट जलसे बाहर निकल आयीं और उन्होंने वस्त्र पहिन लिये; किंतु दोनों कुबेरपुत्र वैसे ही नंग-धड़ंग खड़े रहे। देवर्षिका कोई सत्कार या संकोच करना उन्हें अनावश्यक लगा।

देवर्षिको उनकी दशा देखकर क्रोध तो नहीं आया, दया आ गयी। कुबेरजी लोकपाल हैं, उनके गण भी उपदेव माने जाते हैं, भगवान् शंकर उन्हें अपना सखा कहते हैं; उनके पुत्र ऐसे असभ्य और मदान्ध! दया करके देवर्षिने शाप दे दिया—'तुम दोनों जडकी भाँति खड़े हो, अतः जड वृक्ष हो जाओ।'

संतके दर्शनसे कोई बन्धनमें नहीं पड़ता। संतके शापसे किसीका अमङ्गल नहीं होता। सत तो है ही मङ्गलमय। उसका दर्शन, स्पर्श, सेवन तो मङ्गलकारी है ही, उसके रोष और शापसे भी जीवका परिणाममें मङ्गल ही होता है। देवर्षिने शाप देते हुए कहा—'तुम दोनों [illegible] नन्दद्वारपर रहते हुए अर्जुनके वृक्ष बनो। द्वापरमें [illegible] श्रीकृष्णचन्द्र वृक्षयोनिसे तुम्हारा उद्धार करेंगे और [illegible] तुम्हें भगवद्भक्ति प्राप्त होगी।'

यह शाप है या वरदान! श्रीकृष्णचन्द्रका [illegible] होगा, स्पर्श प्राप्त होगा और भगवद्भक्ति प्राप्त होगी। [illegible] निवास प्राप्त होगा उससे पूर्व, और वह भी नन्दद्वारपर। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने जब श्यामसुन्दरकी [illegible] पश्चात्, तब वे भी इतना साहस नहीं कर सके कि नन्दद्वारपर वृक्ष होनेकी प्रार्थना कर सकें। इतने [illegible] प्रार्थना की—'नाथ! मुझे व्रजमें कुछ भी [illegible] दीजिये।' सृष्टिकर्ता प्रार्थना करके भी [illegible] नहीं पा सके और उधर कुबेरपुत्रोंको [illegible] नन्दद्वारपर दीर्घकालतक वृक्ष [illegible] दर्शनका प्रभाव था।

लीलामय नटनागरने द्वापरमें [illegible] घरमें दहीका मटका फोड़ा, माखन [illegible] मैया यशोदाको यह करके उनसे [illegible] बँधवाया। इसके बाद [illegible] उलूखल घसीटता अपने द्वारपर अर्जुन वृक्ष बने कुबेरपुत्रोंके पास पहुँचा। [illegible] वृक्षोंको गिरा दिया [illegible] उसे सत्य करनी थी। [illegible] दिया उसने। —सु० सिं०

([illegible])

'यह कैसे हो सकता है ?' डाकू विचलित हो उठा था। 'जो मेरे पापसे कमाये धनका सुख भोगते हैं, वे मेरे पापके फलमें भी भाग तो लेंगे ही।'

'बहुत भोले हो, भाई! पापके फलमें कोई भाग नहीं लेगा। तुम्हें मेरी बातका विश्वास न हो तो घर जाकर उन लोगोंसे पूछ लो।' देवर्षिने बात पूरी कर दी।

'बाबाजी! तू मुझे मूर्ख बनाना चाहता है। मैं घर पूछने जाऊँ और तू यहाँसे खिसकता बने!' डाकूने फिर शस्त्र सम्हाला।

'तुम मुझे इस पेड़के साथ भलीभाँति बाँध दो।' चुपचाप नारदजी स्वयं एक पेड़से लगकर खड़े हो गये।

अब डाकूको उनकी बात सच्ची लगी। उसने उन्हें पेड़के साथ वनकी लताओंसे भलीभाँति बाँध दिया और स्वयं शीघ्रतापूर्वक घर पहुँचा। घर जाकर उसने पितासे पूछा—'पिताजी! आप तो जानते ही हैं कि मैं यात्रियोंकी हत्या करके उनके साथकी सामग्री लाता हूँ और उसीसे परिवारका भरण-पोषण करता हूँ। मैं जो नित्य यह पाप करता हूँ, उसके फलमें आपका भी तो भाग है न ?'

तनिक खाँसकर पिताने उसकी ओर देखा और कहा—'बेटा! हमने तुम्हारा पालन-पोषण किया, तुम्हें छोटेसे बड़ा किया और अब तुम समर्थ हो गये। हमारी वृद्धावस्था आ गयी। तुम्हारा कर्तव्य है हमारा भरण-पोषण करना। तुम कैसे धन लाते हो, इससे हमें क्या। तुम्हारे पाप-पुण्यमें भला हमारा भाग क्यों होने लगा।'

पहली बार डाकू चौंका। वह माताके पास गया; किंतु माताने भी उसे वही उत्तर दिया जो पिताने दिया था। उसने पत्नीसे पूछा—तो पत्नीने कहा—'स्वामी! मेरा कर्तव्य है आपकी सेवा करना, आपके गुरुजनों तथा परिवारकी सेवा करना। वह अपना कर्तव्य मैं पालन करती हूँ। आपका कर्तव्य है मेरी रक्षा करना और मेरा पोषण करना, वह आप करते हैं। इसके लिये आप कैसे धन लाते हैं सो आप जानें। आपके उस पापसे मेरा क्या सम्बन्ध। मैं उसमें क्यों भाग लूँगी।'

डाकू निराश हो गया, फिर भी उसने अपने बालक पुत्रसे अन्तमें पूछा। बालकने और स्पष्ट उत्तर दिया—'मैं छोटा हूँ, असमर्थ हूँ; अतः आप मेरा भरण-पोषण करते हैं। मैं समर्थ हो जाऊँगा, तब आप वृद्ध और असमर्थ हो जायँगे। उस समय मैं आपका भरण-पोषण करूँगा और [illegible] करूँगा। यह तो परस्पर सहयोगकी बात है। आपके पापको आप जानें; मैं उसमें कोई भाग लेना नहीं चाहता, न लूँगा।'

डाकूके नेत्रोंके आगे अन्धकार छा गया। जिनके लिये वह इतने पाप कर चुका, वे कोई उस पापका दारुण फल भोगनेमें उसके साथ नहीं रहना चाहते! पश्चात्तापसे जलने लगा उसका हृदय। दौड़ा वह वनकी ओर! वहाँ पहुँचकर देवर्षिके बन्धनकी लताएँ उसने तोड़ फेंकीं और क्रन्दन करता उनके चरणोंपर गिर पड़ा।

'तुम राम-नामका जप करो।' देवर्षिने [illegible] बतलाया। किंतु हत्या-निष्ठुर हृदय, पाप-[illegible] [illegible] यह दिव्य नाम सीधा होनेपर भी उच्चारण करनेमें समर्थ नहीं हुई। देवर्षि हारना नहीं जानते; वे [illegible], वह भगवान्‌के चरणोंसे दूर बना रहे, यह सम्भव नहीं। उन्होंने कहा—'चिन्ता नहीं, तुम 'मरा मरा' ही जपो।'

डाकू वहीं बैठ गया। उसे पता नहीं कि उसके उपदेशक कब चले गये। उसकी [illegible] लग गयी जपमें—'मरा मरा मरा मरा ......' दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष बीतते चले गये; किंतु डाकूको कुछ पता नहीं था। उसके शरीरपर दीमक लग गये, दीमकोंकी पूरी बाँबी—वल्मीक बन गयी उसके ऊपर।

डाकूके तपने सृष्टिकर्ताको आकर्षित कर लिया। वे हंसवाहन स्वयं पधारे वहाँ और अपने कमण्डलुके [illegible] उन्होंने उस तपस्वीपर छींटे दिये। उन छींटोंके [illegible] उस दीमकोंके वल्मीकसे जो पुरुष निकला वह [illegible], वह अब पूरा बदल चुका था। उसका रूप, रंग, [illegible] और हृदय सब दिव्य हो चुका था।

संसार ठीक नहीं जानता कि डाकूका [illegible] कोई-कोई उसे रत्नाकर कहते हैं। [illegible] उठा, वल्मीकसे निकलनेके कारण उसे [illegible] वह आदिकवि, भगवान् श्रीरामके [illegible] गायक—विश्व उसकी वन्दना करके [illegible] है। क्या होगा वह [illegible] इससे साधकने उसे [illegible]

किसीको धर्ममें लगाना ही उसपर सच्ची कृपा करना है

एक बार एक दरिद्र ब्राह्मणके मनमें धन पानेकी तीव्र आकाङ्क्षा हुई। वह सकाम यज्ञोंकी विधि जानता था; किंतु धन ही न था तो यज्ञ कैसे हो! वह धनकी प्राप्तिके लिये देवताओंकी पूजा और व्रत करने लगा। कुछ समय एक देवताकी पूजा करता; परंतु उससे कुछ लाभ नहीं दिखायी पड़ता तो दूसरे देवताकी पूजा करने लगता और पहलेको छोड़ देता। इस प्रकार उसे बहुत दिन बीत गये। अन्तमें उसने सोचा—'जिस देवताकी आराधना मनुष्यने कभी न की हो, मैं अब उसीकी उपासना करूँगा। वह देवता अवश्य मुझपर शीघ्र प्रसन्न होगा।'

ब्राह्मण यह सोच ही रहा था कि उसे आकाशमें कुण्डधार नामक मेघके देवताका प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। ब्राह्मणने समझ लिया कि 'मनुष्यने कभी इनकी पूजा न की होगी। ये बृहदाकार मेघदेवता देवलोकके समीप रहते हैं, अवश्य ये मुझे धन देंगे।' बस, बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे ब्राह्मणने उस कुण्डधार मेघकी पूजा प्रारम्भ कर दी।

ब्राह्मणकी पूजासे प्रसन्न होकर कुण्डधारने देवताओंकी स्तुति की; क्योंकि वह स्वयं तो जलके अतिरिक्त किसीको कुछ दे नहीं सकता था। देवताओंकी प्रेरणासे यक्षश्रेष्ठ मणिभद्र उसके पास आकर बोले—'कुण्डधार! तुम क्या चाहते हो?'

कुण्डधार—'यक्षराज! देवता यदि मुझपर प्रसन्न हैं तो मेरे उपासक इस ब्राह्मणको वे सुखी करें।'

मणिभद्र—'तुम्हारा भक्त यह ब्राह्मण यदि धन चाहता है तो इसकी इच्छा पूर्ण कर दो। यह जितना धन माँगेगा, वह मैं इसे दे दूँगा।'

कुण्डधार—'यक्षराज! मैं इस ब्राह्मणके लिये धनकी प्रार्थना नहीं करता। मैं चाहता हूँ कि देवताओंकी कृपासे यह धर्मपरायण हो जाय। इसकी बुद्धि धर्ममें लगे।'

मणिभद्र—'अच्छी बात! अब ब्राह्मणकी बुद्धि धर्ममें ही स्थित रहेगी।' उसी समय ब्राह्मणने स्वप्नमें देखा कि उसके चारों ओर कफन पड़ा हुआ है। यह देखकर उसके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगा—'मैंने इतने देवताओंकी और अन्तमें कुण्डधार मेघकी भी धनके लिये आराधना की, किंतु इनमें कोई उदार नहीं दीखता। इस प्रकार धनकी आशामें ही लगे हुए जीवन व्यतीत करनेसे क्या लाभ। अब मुझे परलोककी चिन्ता करनी चाहिये।'

ब्राह्मण वहाँसे वनमें चला गया। उसने अब तपस्या करना प्रारम्भ किया। दीर्घकालतक कठोर तपस्या करनेके कारण उसे अद्भुत सिद्धि प्राप्त हुई। वह स्वयं आश्चर्य करने लगा—'कहाँ तो मैं धनके लिये देवताओंकी पूजा करता था और उसका कोई परिणाम नहीं होता था और कहाँ अब मैं स्वयं ऐसा हो गया कि किसीको धनी होनेका आशीर्वाद दे दूँ तो वह निःसंदेह धनी हो जायगा!'

ब्राह्मणका उत्साह बढ़ गया। तपस्यामें उसकी श्रद्धा बढ़ गयी। वह तत्परतापूर्वक तपस्यामें ही लगा रहा। एक दिन उसके पास वही कुण्डधार मेघ आया। उसने कहा—'ब्रह्मन्! तपस्याके प्रभावसे आपको दिव्यदृष्टि प्राप्त हो गयी है। अब आप धनी पुरुषों तथा राजाओंकी गति देख सकते हैं।' ब्राह्मणने देखा कि धनके कारण गर्वमें आकर लोग नाना प्रकारके पाप करते हैं और घोर नरकोंमें गिरते हैं।

कुण्डधार बोला—'भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करके आप यदि धन पाते और अन्तमें नरककी यातना भोगते तो मुझसे आपको क्या लाभ होता? जीवका लाभ तो कामनाओं-का त्याग करके धर्माचरण करनेमें ही है। उन्हें धर्ममें लगानेवाला ही उनका सच्चा हितैषी है।'

ब्राह्मणने मेघके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। कामनाओंका त्याग करके अन्तमें वह मुक्त हो गया। —सु० सिं०

(महाभारत, शान्ति० २७१)

वैष्णव-सङ्गका श्रेष्ठ फल

'मैंने तो अनर्थ-पर-अनर्थ किये हैं—रस, कम्बल और चमड़ेके व्यापारसे ही जीविका चलायी, जिसको लोग अच्छा काम नहीं समझते। मद्यपान, वेश्यागमन, मिथ्या-भाषण—इनमेंसे मैंने किसीको भी नहीं छोड़ा।' अवन्तीपुरीका रहनेवाला धनेश्वर ब्राह्मण इस प्रकारकी अनेक बातोंका चिन्तन करता हुआ अपने पथपर बढ़ रहा था। वह सामान खरीदने-बेचनेके लिये माहिष्मती जा रहा था।

माहिष्मती आ गयी। परम पवित्र भगवती नर्मदाकी स्वच्छ तरङ्गें माहिष्मतीकी प्राचीर चूमकर उसकी पवित्रता बढ़ा रही थीं। ऐसा लगता था मानो अमरकण्टक पर्वतपर तप करनेके

बाद विद्वियोंने माहिष्मतीमें ही निवास करनेका विचार किया हो। इस तीर्थमें कहीं वेदमन्त्रोंका उच्चारण हो रहा था, कहीं बड़े-बड़े यज्ञ हो रहे थे; पुराण श्रवणका क्रम चल रहा था; स्नान, ध्यान-पूजनमें लोग तत्पर थे तो कहीं भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेके लिये नृत्य-गान आदि उत्सव भी विधिपूर्वक सम्पन्न हो रहे थे। नदीके तटपर वैष्णवजन कहीं दान-पुण्य कर रहे थे तो कहीं बड़े-बड़े व्रत-अनुष्ठान भी दर्शनीय थे। धनेश्वरको माहिष्मतीमें निवास करते एक मास पूरा हो रहा था, वह घूम-घूमकर शुभ कृत्योंका दर्शन करता था।

'आह!' एक दिन नदी-तटपर घूमते समय उसके मुखसे सहसा निकल पड़ा। वह मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसे काले साँपने काट लिया था। अगणित लोग एकत्र हो गये। उसकी चेतना लौटानेके लिये वैष्णवोंने तुलसीदल-मिश्रित जलका उसके मुखपर छींटा दिया, श्रीविष्णुका नाम सुनाया, द्वादशाक्षर मन्त्रका उच्चारण किया; पर उसके शरीरमें प्राणका संचार न हो सका।

× × ×

संयमनीपुरीमें पहुँचनेपर धनेश्वरके लिये कड़ी-से-कड़ी यातनाका विधान सोचा गया। यमदूत उसे मुद्गरसे मारने लगे।

'इसने पृथ्वीपर एक भी पुण्य नहीं किया है, [illegible] यह महान् पापी है।' चित्रगुप्तने [illegible] किया; धनेश्वर कुम्भीपाक नरकमें [illegible] दिया गया। उसके गिरते ही तेल ठंडा हो गया।

'संयमनीपुरीमें यह पहली [illegible] है, महाराज!' प्रेतराजने [illegible]।

'इसमें आश्चर्य करनेकी आवश्यकता ही नहीं है, [illegible] एक मासतक वैष्णवोंके [illegible] माहिष्मतीमें [illegible] पुण्य कमाये हैं; व्रत अनुष्ठान, दान, नृत्य [illegible] आदिसे इसका मन पवित्र है; इसके [illegible] हैं।' वीणा बजाते हुए देवर्षि नारद आ पहुँचे। यम और प्रेतराज—दोनोंने उनकी चरण-वन्दना की।

'यह यक्षयोनि पानेका अधिकारी है, [illegible] यातनाकी आवश्यकता नहीं है, [illegible] चल जायगा।' नारद चले गये।

प्रेतराजने धनेश्वरको तप्तवालुका, [illegible] असिपत्रवन, अर्गला, कूटशाल्मली, [illegible] नरकका दर्शन कराया। उसने [illegible]। —[illegible]

([illegible])

चित्रध्वजसे चित्रकला

प्राचीन कालमें चन्द्रप्रभ नामके एक राजर्षि थे। भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उन्हें चित्रध्वज नामक सुन्दर पुत्र प्राप्त था। वह लड़कपनसे ही भगवान्का भक्त था। वह जब बारह वर्षका हुआ, तब राजाने किसी ब्राह्मणके द्वारा उसे अष्टादशाक्षर—(ॐ क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन-वल्लभाय स्वाहा) मन्त्र दिलवा दिया। बालकने मन्त्रपूत अमृतमय जलमें स्नान करके पिताको प्रणाम किया और एक दिन वह सुन्दर पवित्र नवीन वस्त्र तथा आभूषण धारण करके श्रीविष्णु-मन्दिरमें चला गया। वहाँ वह यमुना-पुलिनपर वनमें गोपबालाओंके साथ क्रीड़ा करते हुए भुवनमोहन श्रीकृष्णका ध्यान करने लगा और भगवान्के लिये उसका हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठा। भगवत्कृपासे उसे परमा विद्या प्राप्त हुई और उसने स्वप्नमें देखा—

उस भवनमें सुवर्णपीठपर समस्त सुलक्षणोंसे युक्त श्यामवर्ण स्निग्ध और लावण्यशाली त्रिभङ्गललित भगवान् श्रीकृष्णका मनोहर श्रीविग्रह है। सिरपर मयूरपिच्छ सुशोभित है। वे श्रीविग्रहरूप भगवान् मानो अधरोंपर [illegible] बजा रहे हैं। उनके दोनों ओर दो सुन्दरियाँ [illegible] है। चित्रध्वजने इस प्रकार [illegible] श्रीकृष्णको [illegible] लज्जावनत होकर उन्हें प्रणाम किया। [illegible] अपने दाहिनी ओर बैठी हुई [illegible] कहा—'मृगलोचने! तुम अपने ही [illegible] लिये ऐसा चिन्तन करो मानो यह तुम्हारे [illegible] अद्भुत युवती है। तुम्हारे और इसके [illegible] नहीं रहना चाहिये। तुम्हारे [illegible] अङ्ग-देशका स्पर्श पाकर यह [illegible] हो जायगा।'

तब वह [illegible] अङ्गोंके [illegible] उनके [illegible] करने लगी। [illegible] अङ्गोंका [illegible] देखते-ही-देखते वह सुन्दर [illegible]

एक सर्वाङ्गसुन्दरी कन्यामें परिणत हो गया। वह रमणी सम्पूर्ण सुन्दर वस्त्र, आभूषण तथा हार आदिसे सुशोभित होकर वैसे ही हाथ जोड़े प्रसन्न दीखने लगी। तब एक क्षणमें सूर्यके दीपके रूप उठनेकी भाँति देवीशरीरसे प्रसन्न देवी मूर्तिको देखकर उस देवीने उस लज्जासे संकुचित और कोमल सुन्दर मन्द मुसकानसे युक्त नवीन रमणीका हाथ पकड़कर साथ आनन्दसे उसे श्रीगोविन्दकी बायीं ओर बैठा दिया। तदनन्तर उस देवीने श्रीभगवान्‌से कहा—'प्रभो! आपकी यह दासी उत्पन्न हुई है; इसका नामकरण कीजिये और इसको आपकी रुचिकी कौन-सी अत्यन्त प्रिय सेवामें नियुक्त किया जाय, यह भी बता दीजिये।' इसके पश्चात् उसने स्वयं ही उसका 'चित्रकला' नाम रखकर उससे कहा कि 'तुम इस वीणाको लो और सदा-सर्वदा प्रभुके समीप रहकर विविध स्वरोंसे मेरे प्राणनाथका गुणगान किया करो। तुम्हारे लिये यही सेवा है।'

'चित्रकला'ने उसका आदेश स्वीकार करके भगवान् श्रीकृष्णको प्रणाम किया और उनकी प्रेयसीके चरणारविन्दकी धूलि लेकर वह युगलस्वरूपके आनन्दवर्धक गुणोंका सुललित स्वरोंमें गान करने लगी। तब आनन्दमय भगवान् श्रीकृष्णने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसका आलिङ्गन किया। भगवान् श्रीकृष्णके आनन्दमय स्पर्शसे चित्रकला ज्यों ही आनन्द-सागरमें निमग्न हुई कि उसकी नींद टूट गयी। अब तो श्रीकृष्ण-प्रेम परवश होकर कुमार चित्रध्वज स्वप्नके उस अपार अलौकिक आनन्दका स्मरण करके फुफकार मारकर उच्च स्वरसे रोने लगा। उसका आहार-विहार सब छूट गया। महीनेभर इस प्रकार व्याकुल हृदयसे घरमें रहा, फिर एक दिन आधी रात्रिके समय श्रीकृष्णको सहचर बनाकर वह घरसे निकल पड़ा और श्रीकृष्ण-प्राप्तिके लिये मुनियोंके लिये भी दुःसाध्य तपस्या करने लगा। इसी महामुनिने देह-त्यागके अनन्तर वीरगुप्त नामक गोपके घर 'चित्रकला' नामसे कन्यारूपसे जन्म लिया। चित्रकला गोपीके कंधेपर सदा-सर्वदा सप्तस्वर-शोभित मनोहर वीणा रहती है और वह भगवान्‌के समीप युगल-स्वरूप श्रीराधाकृष्णका नित्य निरन्तर गुणगान किया करती है।

सु-भद्रा

(लेखक—पं० श्रीसूरजचन्दजी सत्यप्रेमी 'डाँगीजी')

जो पहले था, अब भी है और सदा रहेगा, वही 'सत्' है; जिसके सुननेसे हित होता है, ऐसे वृत्तान्तको भी 'सत्' कहते हैं। ऐसे सत्‌की कथा करना ही 'कल्याण'के इस अङ्कका उद्देश्य है। मैं आपकी सेवामें ऐसी एक सत्कथा उपस्थित करता हूँ, जो जीवनका उत्तम दर्शन है एवं जिसके अनुसार हमारा मनुष्य-जीवन प्रत्येक अवस्थामें शान्त, निर्मल और कर्तव्यनिष्ठ रहकर स्व-पर-कल्याणकारी सिद्ध हो सकता है—

वसुदेव-नन्दन, कंस-चाणूर-मर्दन, देवकी-परमानन्द जगद्गुरु श्रीकृष्णकी बहिन 'सुभद्रा' देवी दोग्धा गोपाल-नन्दनके मित्र वत्स पार्थको दी गयी थी।

पुत्र अभिमन्युके चन्द्र-लोकगमनका समाचार सुनकर सुभद्राकी अश्रुधारा रोकना धर्मराजको भी असम्भव लगा। नन्दनन्दन बोले—'बहिन! तू योगेश्वरकी बहिन होकर रोती है—यह शोभा नहीं देता। जो आत्मा था, वह तो किसीने देखा नहीं और जो शरीर दिखायी दिया, वह अब भी है। कौन अभिमन्यु पैदा हुआ और कौन मरा! बता तो सही।' इस प्रकार तत्त्वज्ञान सुननेपर भी रुदन बंद नहीं हुआ। भगवान् बोले—'बहिन! युद्धमें तो तूने ही उसे तिलक करके भेजा था और कहा था कि हारा हुआ मुँह मुझे मत दिखाना। यदि विजय करके आया तो मेरी गोद है अन्यथा पृथ्वी माताकी गोद है। इस प्रकार वीरतापूर्ण संदेश देनेवाली रोये, यह अयोग्य है।'

सुभद्राने उत्तर दिया, 'भैया, चुप रहो! इस समय बोलो मत। तुम्हारी बहिन सुभद्रा तो सु-भद्रा ही है—परम शान्त है—वह कभी नहीं रोती। युद्धमें भेजनेवाली वीर-पत्नी क्षत्रियाणी थी और रोनेवाली बेटेकी माँ है, इसे रो लेने दो। जाओ! तुम पहले माँ बनो और बेटा मर जाये तो नहीं रोओ, तब मुझे समझाने आना।' भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो गये।

प्रत्येक मनुष्यके मानसमें ऐसी एक सुभद्रावृत्ति रहती है, जो भगवान्‌की बहिन है। वह निरन्तर शान्त रहती है और दुनियाके सब कर्तव्यकर्म निर्लिप्तभावसे करती है—उसे पहचानकर स्वधर्मका पालन करना ही जीवनका उत्तम दर्शन है।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।

धैर्यसे पुनः सुखकी प्राप्ति

एक बार युधिष्ठिरने पितामह भीष्मसे पूछा—'पितामह! क्या आपने कोई ऐसा पुरुष देखा या सुना है, जो एक बार मरकर पुनः जी उठा हो?'

भीष्मने कहा—''राजन्! पूर्वकालमें नैमिषारण्यमें एक अद्भुत घटना हुई थी, उसे सुनो। एक बार एक ब्राह्मणका एकमात्र बालक अल्पावस्थामें ही चल बसा। रोते बिलखते उसे लेकर सभी श्मशानमें पहुँचे और उसे भूमिपर रखकर करुण क्रन्दन करने लगे। उनके रोनेका शब्द सुनकर वहाँ एक गीध आया और कहने लगा—'अब तुमलोग इस बालकको छोड़कर तुरंत घर चले जाओ। व्यर्थ विलम्ब मत करो। सभीको अपनी आयु समाप्त होनेपर कूच करना ही पड़ता है। यह श्मशान-भूमि गृध्र और गीदड़ोंसे भरी है। इसमें सर्वत्र नरकङ्काल दिखलायी पड़ रहे हैं। तुमलोगोंको यहाँ अधिक नहीं ठहरना चाहिये। प्राणियोंकी गति ऐसी ही है कि एक बार कालके गालमें जानेपर कोई जीव नहीं लौटता। देखो, अब सूर्यभगवान् अस्ताचलके अञ्चलमें पहुँच चुके हैं, इसलिये इस बालकका मोह छोड़कर तुम अपने घर लौट जाओ।'

''उस गृध्रकी बातें सुनकर वे लोग उस बालकको पृथ्वीपर रखकर रोते-बिलखते चलने लगे। इतनेमें ही एक काले रंगका गीदड़ अपनी माँदमेंसे निकला और वहाँ आकर कहने लगा—'मनुष्यो! वास्तवमें तुम बड़े स्नेहशून्य हो। अरे मूर्खो! अभी तो सूर्यास्त भी नहीं हुआ। इतने डरते क्यों हो? कुछ तो स्नेह निबाहो। किसी शुभ घड़ीके प्रभावसे यह बालक कहीं जी ही उठे। तुम कैसे निर्दयी हो। तुमने पुत्रस्नेहको तिलाञ्जलि दे दी है और इस नन्हे से बालकको भीषण श्मशानमें यों ही पृथ्वीपर सुलाकर छोड़कर जानेको तैयार हो गये हो! देखो, पशु-पक्षियोंको भी अपने बच्चोंपर इतना कम स्नेह नहीं होता। यद्यपि उनका पालन-पोषण करनेपर उन्हें इस लोक या परलोकमें कोई फल नहीं मिलता।'

''गीदड़की बातें सुनकर वे लोग शवके पास लौट आये। अब वह गृध्र कहने लगा—'अरे बुद्धिहीन मनुष्यो! इस तुच्छ मन्दमति गीदड़की बातोंमें आकर तुम लौट कैसे आये। मुझे जन्म लिये आज एक हजार वर्षसे अधिक हो गया; किंतु मैंने कभी किसी पुरुष, स्त्री या नपुंसकको मरनेके बाद यहाँ जीवित होते नहीं देखा। देखो, इसका मृत-देह निस्तेज और काष्ठके समान निश्चेष्ट हो गया है। अब तुम्हारा स्नेह और श्रम तो व्यर्थ ही है। इससे कोई फल हाथ लगनेवाला नहीं। मैं तुमसे अवश्य कुछ कठोर बातें कह रहा हूँ; पर ये हेतु-जनित हैं और मोक्षधर्मसे सम्बद्ध हैं। इसलिये मेरी बात मानकर तुम घर चले जाओ। किसी मरे हुए सम्बन्धीको देखनेपर और उसके कामोंको याद करनेपर तो मनुष्यका शोक दुगुना हो जाता है।'

''गृध्रकी बातें सुनकर पुनः सब वहाँसे जाने लगे। उसी समय गीदड़ तुरंत उनके पास आया और बोला—'भैया! देखो तो सही, इस बालकका रंग सोनेके समान चमक रहा है। एक दिन यह अपने पितरोंको पिण्ड देगा। तुम गृध्रकी बातोंमें आकर इसे क्यों छोड़े जाते हो? इसे छोड़कर जानेमें तुम्हारे स्नेह, दया और रोने-धोनेमें तो कोई कमी आयेगी नहीं। हाँ, तुम्हारा संताप अवश्य बढ़ जायगा। सुनते हैं भगवान् श्रीरामने शम्बूकको मारकर ब्राह्मणके मरे बालकको पुनः जिला दिया था। एक बार राजर्षि श्वेतका बालक भी मर गया था, किंतु धर्मनिष्ठ श्वेतने उसे पुनः जीवित कर लिया था। इसी प्रकार यहाँ भी कोई सिद्ध मुनि या देवता आ गये तो वे रोते देखकर तुम्हारे ऊपर कृपा करके इसे पुनः जिला सकते हैं।'

''गीदड़के इस प्रकार कहनेपर वे सब लोग फिर श्मशानसे लौट आये और उस बालकका सिर गोदमें रखकर रोने लगे। अब वह गृध्र उनके पास आया और कहने लगा—'अरे लोगो! यह तो धर्मराजकी आज्ञासे सदाके लिये सो गया है। जो बड़े तपस्वी, धर्मात्मा और बुद्धिमान् होते हैं, उन्हें भी मृत्युके हाथमें पड़ना पड़ता है। अब बार-बार रोकर शोकका बोझ सिरपर लादनेसे कोई लाभ नहीं है। क्योंकि एक बार जिस देहसे नाता तोड़ लेता है, वह दुबारा उस शरीरमें नहीं आ सकता। अब यदि इसके लिये एक नहीं, सैकड़ों गीदड़ अपने शरीरका बलिदान भी कर दें तो भी यह बालक नहीं जी सकता। तुम्हारे रोने-कल्पने, लंबी साँस लेने या गला फाड़कर रोनेसे भी इसको जीवन नहीं मिल सकता।'

''उसके ऐसा कहनेपर वे लोग फिर घरकी ओर चल पड़े। इसी समय गीदड़ फिर बोल उठा—[illegible]

बात समाप्त होते ही देवराजका भाव बदल गया। ठोर स्वरमें वे बोले—'ययाति! मेरे आसनसे उठ जाओ। मने अपने मुखसे अपनी प्रशंसा की है, इससे तुम्हारे वे व पुण्य नष्ट हो गये, जिनकी तुमने चर्चा की है। देवता, नुष्य, गन्धर्व, ऋषि आदिमें किसने कितना तप किया है—ह बिना जाने ही तुमने उनका तिरस्कार किया है, इससे त्र तुम स्वर्गसे गिरोगे।'

आत्म-प्रशंसाने ययातिके [illegible] नष्ट कर दिया। वे स्वर्गसे गिर गये। उनकी [illegible] देवराजने कृपा करके यह सुविधा उन्हें दे दी थी कि वे [illegible] मण्डलीमें ही गिरें। [illegible] वे पुनः शीघ्र ही स्वर्ग जा सकें।—सु॰ सिं॰

(महाभारत, [illegible] ८०-८१)

जरा-मृत्यु नहीं टल सकतीं

राजा जनकने पञ्चशिख मुनिसे वृद्धावस्था और मृत्युसे चनेका उपाय पूछा। तब पञ्चशिखने कहा—'कोई ी मनुष्य जरा और मृत्युसे नहीं बच सकता। ज्ञानी मनुष्य जरा-मृत्युरूपी जलचरोंसे भरे हुए कालरूपी ागरमें नित्य ही बिना नावके डूबते-उतराते रहते हैं। इन्हें ोई नहीं बचा सकता। संसारमें कोई किसीका नहीं है। से राहमें चलते हुए यात्रियोंकी एक-दूसरेसे भेंट हो जाती है, संसारमें स्त्री पुत्र और भाई-बन्धुके [illegible] भी ऐसा ही समझना चाहिये। जैसे [illegible] हुए बादलोंको [illegible] अनायास ही एक जगहसे उड़ाकर दूसरी जगह ले जाती है, वैसे ही भूत-प्राणी कालसे प्रेरित होकर [illegible] हुए मरते और जन्मते रहते हैं। जरा और मृत्यु [illegible] भाँति दुर्बल और बलवान् तथा नीच और ऊँच, [illegible] जाती हैं; इसलिये शरीरके लिये शोक नहीं करना चाहिये।'

विद्या अध्ययन करनेसे ही आती है

कनखलके समीप गङ्गा-किनारे थोड़ी दूरके अन्तरसे हर्षि भरद्वाज तथा महर्षि रैभ्यके आश्रम थे। दोनों महर्षि रस्पर घनिष्ठ मित्र थे। रैभ्यके अर्वावसु और परावसु नामके पुत्र हुए। ये दोनों ही अपने पिताके समान शास्त्रोंके म्भीर विद्वान् हुए। भरद्वाजजी तपस्वी थे। अध्ययन-ध्यापनमें उनकी रुचि नहीं थी। शास्त्रज्ञ न होनेके कारण नकी ख्याति भी रैभ्यकी अपेक्षा कम थी। उनके एक पुत्र यवक्रीत। पिताके समान यवक्रीत भी अध्ययनसे अलग रहे। परंतु यवक्रीतको अपने पिताकी समाजद्वारा उपेक्षा ौर रैभ्य तथा उनके पुत्रोंका सम्मान देखकर बड़ा दुःख ता था। अन्तमें सोच-समझकर उन्होंने वैदिक ज्ञान प्राप्त रनेके लिये उग्र तप प्रारम्भ किया। पञ्चाग्नि तापते हुए वे ज्वलित अग्निसे अपना शरीर संतप्त करने लगे।

यवक्रीतका कठोर तप देखकर देवराज इन्द्र उनके पास ाये और उनसे इस तपका कारण पूछने लगे। यवक्रीतने ताया—'गुरुके मुखसे वेदोंकी सम्पूर्ण शिक्षा शीघ्र नहीं ायी जा सकती, इसलिये मैं तपके प्रभावसे ही सम्पूर्ण वेद-ास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ।'

इन्द्रने कहा—'आपने सर्वथा उलटा मार्ग पकड़ा है। गुरुके पास जाकर अध्ययन कीजिये। इस प्रकार [illegible] हत्या करनेसे क्या लाभ।'

इन्द्र तो चले गये; किंतु यवक्रीतने तपस्या छोड़ी नहीं। उन्होंने और कठोर तप प्रारम्भ कर दिया। देवराज [illegible] करके फिर पधारे और बोले—'[illegible]! आपका यह उद्योग बुद्धिमत्तायुक्त नहीं है। किसीको गुरुमुखसे पढ़े बिना विद्या प्राप्त भी हो तो वह सफल नहीं होती। अतः आपने दुराग्रह-को छोड़ दें।'

जब देवराज यह [illegible] चले गये, तब यवक्रीतने निश्चय किया कि वे अपने अङ्ग [illegible] काटकर अग्निमें हवन कर देंगे। उन्होंने तपस्याके ही [illegible]। उनका निश्चय जानकर देवराज इन्द्र [illegible] ब्राह्मणका रूप बनाकर वहाँ आये और [illegible] गङ्गाजीमें स्नान किया करते थे, [illegible] बालू डालने लगे।

यवक्रीत जब स्नान करने [illegible] एक दुर्बल वृद्ध ब्राह्मण [illegible] [illegible] रहा है। उन्होंने [illegible]—'[illegible]'

इन्द्र ब्राह्मणने उत्तर दिया—'लोगोंको यहाँ गङ्गाके पार करनेमें बड़ा कष्ट होता है, इसलिये मैं गङ्गापर पुल बाँध देना चाहता हूँ।'

यवक्रीत बोले—'भगवन्! आप इस महाप्रवाहको बालूसे किसी प्रकार बाँध नहीं सकते। इसलिये इस असम्भव कार्यको छोड़कर जो कार्य हो सके, उसके लिये प्रयत्न कीजिये।'

अब इन्द्रने घूमकर यवक्रीतकी ओर देखा—'तुम जैसे तपस्याके द्वारा वैदिक ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो, वैसे ही मैं यह कार्य कर रहा हूँ। तुम असाध्यको यदि साध्य कर सकोगे तो मैं क्यों नहीं कर सकूँगा।'

ब्राह्मण कौन है, यह यवक्रीत समझ गये। उन्होंने नम्रतापूर्वक कहा—'देवराज! मैं अपनी भूल समझ गया। आप मुझे क्षमा करें।' —सु० सिं०

(महाभारत, वन० १३५)

जहाँ मन, वहीं हम

सुशील नामके एक ब्राह्मण थे। उनके दो पुत्र थे। बड़ेका नाम था सुवृत्त और छोटेका वृत्त। दोनों युवा थे। दोनों गुणवान् तथा कई विद्याओंके विशारद थे। घूमते-घामते दोनों एक दिन प्रयाग पहुँचे। उस दिन थी जन्माष्टमी। इसलिये श्रीवेणीमाधवजीके मन्दिरमें महान् उत्सव था। महोत्सव देखनेके लिये वे दोनों भी निकले। वे लोग सड़कपर निकले ही थे कि बड़े जोरकी वर्षा आ गयी। इसलिये दोनों मार्ग भूल गये। किसी निश्चित स्थानपर उनका पहुँचना कठिन था। अतएव एक तो वेश्याके घरमें चला गया, दूसरा भूलता-भटकता माधवजीके मन्दिरमें जा पहुँचा। सुवृत्त चाहता था कि वृत्त भी उसके साथ वेश्याके यहाँ ही रह जाय। पर वृत्तने इसे स्वीकार नहीं किया। वह माधवजीके मन्दिरमें पहुँचा भी, पर वहाँ पहुँचनेपर उसके संस्कार बदले और वह लगा पछताने। वह मन्दिरमें रहते हुए भी सुवृत्त और वेश्याके ध्यानमें डूब गया। वहाँ भगवान्की पूजा हो रही थी। वृत्त उसे सामनेसे ही खड़ा देख रहा था। पर वह वेश्याके ध्यानमें ऐसा तल्लीन हो गया था कि वहाँकी पूजा, कथा, नमस्कार, स्तुति, पुष्पाञ्जलि, गीत-नृत्यादिको देखते-सुनते हुए भी नहीं देख रहा था और नहीं सुन रहा था। वह तो [illegible] चित्रके समान वहाँ निर्जीव-सा खड़ा था।

इधर वेश्यालयमें गये सुवृत्तकी दशा विचित्र थी। वह पश्चात्तापकी अग्निमें जल रहा था। वह सोचने लगा—'ओह! आज भैया वृत्तके हजारों जन्मोंके पुण्य उदय हुए हैं जो वह जन्माष्टमीकी रात्रिमें प्रयागमें भगवान् माधवका दर्शन कर रहा है। ओहो! इस समय वह प्रभुको प्रणाम कर रहा होगा। अब वह पूजा-आरतीका दर्शन कर रहा होगा। अब वह नाम एवं कथा-कीर्तनादि सुन रहा होगा। अब तो नमस्कार कर रहा होगा। सचमुच आज उसके नेत्र, कान, सिर, जिह्वा तथा अन्य सभी अङ्ग सफल हो गये। मुझे तो बार-बार धिक्कार है जो मैं इस पापमन्दिर वेश्याके घरमें आ पड़ा। मेरे नेत्र मोरके पाँखके समान हैं, जो आज भगवद्दर्शन न कर पाये। मेरे हाथ, जो आज प्रभुके सामने नहीं जुड़े, कलछुलसे भी गये बीते हैं। हाय! आज संत-समागमके बिना मुझे यहाँ एक-एक क्षण युगसे बड़ा मालूम होने लगा है। अरे! देखो तो मुझ दुरात्माके आज कितने जन्मोंके पाप उदित हुए कि प्रयाग-जैसी मोक्षपुरीमें आकर भी मैं घोर दुष्टसङ्गमें फँस गया!'

इस तरह दोनोंको सोचते रात बीत गयी। प्रातःकाल उठकर वे दोनों परस्पर मिलने चले। वे अभी सामने आये ही थे कि वज्रपात हुआ और दोनोंकी तत्क्षण मृत्यु हो गयी। तत्काल वहाँ तीन यमदूत और दो भगवान् विष्णुके दूत आ उपस्थित हुए। यमदूतोंने तो वृत्तको पकड़ा और विष्णुदूतोंने सुवृत्तको साथ लिया। ज्यों ही वे लोग चलनेको तैयार हुए, सुवृत्त घबराया-सा बोल उठा, 'अरे! आपलोग यह कैसा अन्याय कर रहे हैं। कलके पूर्व तो हम दोनों समान थे। पर आजकी रात मैं वेश्यालयमें रहा हूँ, और वह वृत्त, मेरा छोटा भाई, माधवजीके मन्दिरमें रहकर परम पुण्य अर्जन कर चुका है। अतएव भगवान्के परम धाममें तो वही जानेका अधिकारी हो सकता है।'

अब भगवान्के दोनों पार्षद ठहाका मारकर हँस पड़े। वे बोले—'हमलोग भूल या अन्याय नहीं करते। देखो, धर्मका रहस्य बड़ा सूक्ष्म तथा विचित्र है। सभी धर्मकर्मोंमें मनःशुद्धि ही मूल कारण है। मनसे भी किया गया

पाप दुःखद होता है, और मनसे भी चिन्तित धर्म सुखद होता है। आज तुम रातभर शुभचिन्तामें लगे रहे हो, अतएव तुम्हें भगवद्धामकी प्राप्ति हुई। इसके विपरीत यह आजकी सारी रात अशुभ-चिन्तनमें ही रहा है, अतएव यह नरक जा रहा है। इसलिये सदा धर्मका ही चिन्तन और मन लगाकर धर्मानुष्ठान करना चाहिये।'

वस्तुतः जहाँ मन है, वहीं मनुष्य है। मन वेश्यालयमें हो तो मन्दिरमें रहकर भी मनुष्य वेश्यालयमें है और मन भगवान्‌में है तो वह चाहे कहीं भी हो, भगवान्‌में ही है।

सुदृनने कहा 'पर जो हो, इस प्राणीके बिना मेरी भगवद्धाममें जानेकी इच्छा ही नहीं होती। अतएव आप लोग कृपा करके इसे भी यमयातनासे मुक्त कर दें।'

विष्णुदूत बोले—'सुदृन! यदि तुम्हें उसपर दया है तो तुम्हारे गतजन्मके मानसिक [illegible] पुण्य बच रहा है, उसे तुम इसको दे दो तो यह भी तुम्हारे साथ ही विष्णुलोकको चला जायगा।' सुदृनने [illegible] ही किया और फलतः वह भी [illegible] उनके [illegible] ही चला गया।—जा० शु० (वायुपुराण, [illegible], अध्याय [illegible])

बुरे काममें देर करनी चाहिये

महर्षि गौतमके एक पुत्रका नाम था चिरकारी। वे बुद्धिमान् थे, कार्यकुशल थे, किंतु प्रत्येक कार्यको बहुत सोच-विचार करनेके पश्चात् करते थे। उनका स्वभाव ही धीरे-धीरे कार्य करनेका हो गया था। जबतक किसी कार्यकी आवश्यकता और औचित्य उनकी समझमें नहीं आ जाता था, तबतक वे कार्य प्रारम्भ ही नहीं करते थे। केवल उस कार्यके सम्बन्धमें विचार करते रहते थे। बहुत-से लोग उनको इस स्वभावके कारण आलसी समझते थे।

एक बार महर्षि गौतम किसी कारणसे अपनी पत्नीसे रुष्ट हो गये। क्रोधमें आकर उन्होंने चिरकारीको आज्ञा दी—'बेटा! अपनी इस दुष्टा माताको मार डालो।' यह आज्ञा देकर महर्षि वनमें चले गये।

अपने स्वभावके अनुसार चिरकारीने विचार करना प्रारम्भ किया—'मुझे क्या करना चाहिये। पिताकी आज्ञाका पालन करनेपर माताका वध करना पड़ेगा और माताका वध न करनेपर पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन होगा। पुत्रके लिये पिता और माता दोनों पूज्य हैं। दोनोंमेंसे किसीकी भी अवज्ञा करनेसे पुत्र पापका भागी होता है। कोई भी माताका नाश करके सुखी नहीं हो सकता। पिताकी आज्ञा टालकर भी सुख और कीर्ति नहीं मिल सकती। मेरी मातामें कोई दोष है या नहीं, यह सोचना मेरे लिये अधर्म है। इसी प्रकार पिताकी आज्ञा भी उचित है या नहीं, यह सोचना मेरे अधिकारमें नहीं।'

चिरकारी तो ठहरे ही चिरकारी। [illegible] शस्त्र लेकर बैठे रहे और सोचते रहे। किसी भी निश्चयपर उनकी बुद्धि पहुँचती नहीं थी और बुद्धिसे [illegible] निर्णय किये बिना कोई काम करना उनके स्वभावमें नहीं था।

उधर वनमें जानेपर जब महर्षि गौतमका क्रोध शान्त हुआ, तब उन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई। वे बहुत दुःखी होकर सोचने लगे—'मैंने आज कितना बड़ा अनर्थ किया। [illegible] मुझे स्त्री-वधका पाप लगेगा। मेरी पत्नी तो निर्दोष है। क्रोधमें आकर मैंने बिना विचारे ही उसको मार डालनेका आदेश दे दिया। कितना अच्छा हो कि चिरकारी अपने नामको सार्थक करे।'

महर्षि शीघ्रतापूर्वक आश्रममें लौट आये। उनको [illegible] देखकर चिरकारीने शस्त्र [illegible] दिया और [illegible] चरणोंमें प्रणाम किया। महर्षिने उसे [illegible] लगा लिया और सब वृत्तान्त जानकर प्रसन्न होकर [illegible] आशीर्वाद दिया। वे चिरकारीको उपदेश देते हुए [illegible] हिंसाका कार्य और [illegible] करना चाहिये। किसीसे मित्रता करनी हो [illegible] करनी चाहिये। क्रोध, अभिमान, [illegible] तथा पापकर्म करनेमें [illegible] किसीके भी अपराध करनेपर उसे [illegible] बहुत सोच-समझकर देर करनी चाहिये। [illegible]

[illegible]

प्रतिज्ञा

त्रेतामें राम अवतारी, द्वापरमें कृष्णमुरारी

(लेखक—श्रीहरानन्दजी शर्मा)

भगवान् श्रीराम जब समुद्र पारकर लङ्का जानेके लिये समुद्रपर पुल बाँधनेमें संलग्न हुए, तब उन्होंने समस्त वानरोंको आदेश दिया कि 'वानरो! तुम पर्वतोंसे पर्वत-खण्ड लाओ जिससे पुलका कार्य पूर्ण हो।' आज्ञा पाकर वानरदल भिन्न-भिन्न पर्वतोंपर खण्ड लानेके लिये दौड़ चले और अनेक पर्वतोंसे बड़े-बड़े शिला-पर्वतखण्डोंको लाने लगे। नल और नील जो इस दलमें शिल्पकार थे, उन्होंने कार्य प्रारम्भ कर दिया। हनुमान् इस वानरदलमें अधिक बलशाली थे। वे भी गोवर्धन नामक पर्वतपर गये और उस पर्वतको उठाने लगे; परंतु अनन्त परिश्रम करनेपर भी वे पर्वतराज गोवर्धनको न उठा सके। हनुमान्‌को निराश देखकर पर्वतराजने कहा, 'हनुमन्! यदि आप प्रतिज्ञा करें कि भक्तशिरोमणि भगवान् श्रीरामके दर्शन करा दूँगा तो मैं आपके साथ चलनेको तैयार हूँ।' यह सुनकर हनुमान्‌ने कहा—'पर्वतराज! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप मेरे साथ चलनेपर श्रीरामजीका दर्शन कर सकेंगे।' विश्वास प्राप्तकर पर्वतराज गोवर्धन हनुमान्‌जीके करकमलोंपर सुशोभित होकर चल दिये। जिस समय हनुमान्‌जी पर्वतराज गोवर्धनको लेकर व्रजभूमितकसे आ रहे थे, उस समय सेतु-बाँधनेका कार्य सम्पूर्ण हो चुका था और भगवान् श्रीरामने आज्ञा दी कि 'वानरो! अब और खण्ड न लाये जायँ; जो जहाँपर है, वह वहींपर पर्वतखण्डोंको रख दे।' आज्ञा पाते ही समस्त वानरोंने जहाँ-के-तहाँ पर्वतशिखरोंको रख दिया। हनुमान्‌जीने भी आज्ञाका पालन किया और उन्हें पर्वतराज गोवर्धनको वहींपर रखना पड़ा। यह देख पर्वतराजने कहा—'हनुमान्‌जी! आपने तो विश्वास दिलाया था कि मुझे श्रीरामजीका दर्शन करायेंगे, पर अब तो मुझे यहींपर छोड़कर चले जाना चाहते हैं। भला कहिये तो सही, अब मैं पतितपावन श्रीरामजीका दर्शन कैसे कर सकूँगा।' हनुमान्‌जी विवश थे; क्या करते, प्रभुकी आज्ञा ही ऐसी थी। हनुमान्‌जी शोकातुर होकर कहने लगे, 'पर्वतराज! निराश मत हो, मैं श्रीरामजीके समीप जाकर प्रार्थना करूँगा; आशा है कि दीनदयालु आपको लानेकी आज्ञा प्रदान कर देंगे, जिससे आप उनका दर्शन कर सकेंगे।'

इतना कहकर हनुमान्‌जी वहाँसे चल दिये और रामदलमें आकर श्रीरामजीके चरणोंमें उपस्थित हो अपनी 'प्रतिज्ञा' निवेदन की। श्रीरामजीने कहा—'हनुमान्‌जी! आप अभी जाकर पर्वतराजसे कहिये कि वह निराश न हो। द्वापरमें कृष्णरूपसे उसे दर्शन होगा।' हनुमान्‌जी तुरंत ही पर्वतराज गोवर्धनके पास गये और जाकर बोले—'पर्वतराज! भगवान् श्रीरामजीकी आज्ञा है कि आपको द्वापरमें कृष्ण-रूपसे दर्शन होंगे।'

द्वापर आया। भगवान् श्रीरामने श्रीकृष्णरूप धारणकर व्रजमें जन्म लिया। एक समय देवताओंके राजा इन्द्रने व्रजवासियोंद्वारा अपनी पूजा न पानेके कारण क्रोधातुर हो व्रजको समूल नष्ट करनेका विचार करके मेघोंको आज्ञा दी कि 'आप व्रजमें जाकर समस्त व्रजभूमिको वर्षाद्वारा नष्ट कर दो।' मेघ देवराज इन्द्रकी आज्ञा पाकर व्रजपर मूसलाधार जल बरसाने लगे।

अतिवृष्टिके कारण व्रजमें हाहाकार मच गया। समस्त व्रजवासी इन्द्रके कोपसे भयभीत होकर नन्दबाबाके घरकी ओर दौड़े। भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'व्रजवासियो! धैर्य धारण करो, इन्द्रका कोप आपका कुछ न कर सकेगा; आओ, हमारे साथ चलो।' भगवान् श्रीकृष्ण गोप तथा व्रजबालाओं-सहित गोवर्धनकी ओर चल दिये। पर्वतराज गोवर्धनको दर्शन देकर अङ्गुलिपर धारण कर लिया और समस्त व्रजवासियोंका भय हर लिया तथा अपने वचन तथा सेवक हनुमान्‌की प्रतिज्ञा भी पूरी की।

बोलो भगवान् श्रीराम-कृष्णकी जय।

गृध्र और उलूकका न्याय

एक बार जब भगवान् श्रीरामचन्द्र अपने दरबारमें विराज रहे थे, तब एक उल्लू और एक गृध उनके चरणोंमें उपस्थित हुए, और बारम्बार उनके चरणोंको [illegible] छूने लगे। प्रभुके द्वारा कार्य पूछे जानेपर गीध कहने लगा—'आप देवताओं तथा असुरोंमें प्रधान हैं। बुद्धिमें आप बृहस्पति और शुक्रसे भी बढ़-चढ़कर हैं। साथ ही प्राणियोंके बाहर-

भीतर, ऊपर-नीचे सर्वत्रकी बातें जानते हैं। प्रभो! इस उल्लूने मेरे अपने बाहुवीर्यसे बनाये हुए मकानका अपहरण कर लिया है। मैं, नाथ! आपकी शरण हूँ। आप कृपया मेरी रक्षा करें।'

गीधकी बात समाप्त भी न हो पायी थी कि उल्लू कहने लगा—'महाबाहु राम! इन्द्र, चन्द्र, यम, कुबेर और सूर्यके अंशसे राजाकी उत्पत्ति होती है। उसमें मनुष्यका अंश तो थोड़ा ही होता है। फिर आप तो सर्वदेवमय साक्षात् भगवान् नारायण ही हैं। इसलिये आपसे परे तो कुछ है ही नहीं। नाथ! सबके स्वामी होनेके कारण आप हमलोगोंके भी स्वामी तथा न्यायकर्त्ता हैं। देव! घर मेरा है और यह गीध उसमें घुसकर नित्यप्रति मुझे बाधा पहुँचाता है। इसलिये स्वामिन्! इसे शासित किया जाय।'

इसपर भगवान्‌ने गीधसे पूछा—'अच्छा, तुम यह तो बतलाओ कि तुम उस मकानमें कितने वर्षोंसे रह रहे हो?' गीधने कहा—'प्रभो! जबसे यह पृथ्वी मनुष्योंसे घिरी हुई प्रकट हुई, तभीसे वह घर मेरा आवास रहा है।'

इसपर प्रभुने अपने सभासदोंसे कहा—'सभ्यो! वह सभा नहीं, जहाँ वृद्ध न हों; वे वृद्ध नहीं, जिन्हें धर्मका परिज्ञान न हो। वह धर्म भी नहीं, जहाँ सत्य न हो और वह सत्य सत्य भी नहीं, जो छलसे अनुविद्ध हो। इसके साथ ही यदि सभासद्‌गण सभी बातोंको ठीक-ठीक जानते हुए भी चुप्पी साधे बैठे रहते हैं और यथावसर बोलनेका कष्ट नहीं करते तो वे सभी मिथ्यावादी ही समझे जाते हैं। या जो काम, क्रोध और भयके कारण जानते हुए भी प्रश्नोंका ठीक-ठीक उत्तर नहीं देते, वे सभासद् अपनेको एक सहस्र वारुणपाशोंसे बाँध लेते हैं। उन पाशोंमेंसे एक पाश एक वर्षपर छूटता है। इसलिये कौन-सा ऐसा सभासद् होगा, जो इन रहस्योंको जानते हुए भी सत्यका अपलाप करे, या जान-बूझकर मौन साध ले*। अतएव आपलोग इनके व्यवहारका ठीक-ठीक निर्णय करें।'

सभासदोंने कहा—'महामति, राजसिंह रघुनन्दन! लक्षणों तथा वाणीके [illegible] ठीक नहीं जान पड़तीं। उल्लू ही ठीक कह रहा है। [illegible] इसमें [illegible] मत है, यथार्थतः महाराज! [illegible] प्रमाण हैं।'

मन्त्रियोंकी बात सुनकर प्रभुने कहा—'पुराणोंमें कहा गया है कि पहले यह सारी पृथ्वी [illegible] जगत् जलमय था और यह [illegible] उदरमें [illegible] हो गया था। महातेजस्वी विष्णु इसे उदरमें लिये हुए [illegible] वर्षोंतक योगनिद्रामें सोते रहे। उनके [illegible] पद्म उत्पन्न हुआ, जिससे ब्रह्माजी प्रकट हुए। उनके [illegible] मलसे मधु और कैटभ—ये दो दैत्य उत्पन्न हुए, जो ब्रह्माजीको ही खाने दौड़े, किंतु जिन्हें [illegible] मार डाला। उन्हीं असुरोंके मेदसे [illegible] होकर यह [illegible] उत्पन्न हुई। उसे श्रीविष्णुने [illegible] एवं नाना प्रकारके धान्योंसे परिपूर्ण किया। अब यह [illegible] कह रहा है कि यह उस घरमें तबसे रहता आ रहा है, [illegible] मनुष्योंसे आवृत यह पृथ्वी निकली। ऐसी स्थितिमें यह घर उल्लूका ही है, गीधका नहीं। अतएव [illegible] होनेके नाते गीधको दण्ड दिया जाना चाहिये।'

भगवान् यों कह ही रहे थे कि आकाशसे [illegible] सुनायी पड़ी—''रामभद्र! आप इस गीधको [illegible] यह कालगौतमके तपोबलसे पहले ही दग्ध हो चुका है। पूर्व जन्ममें यह ब्रह्मदत्त नामका राजा था। एक बार [illegible] नामक महात्मा इनके घर भोजनके लिये पधारे। उनके [illegible] आहारमें अनजानमें थोड़ा मांस [illegible]। इसपर [illegible] क्रोधमें इसे शाप दे डाला कि '[illegible] गीध हो [illegible]।' यह 'नहीं-नहीं, क्षमा कीजिये, अनजानमें [illegible] हो गयी है' [illegible] बातें कहता ही रह गया, पर [illegible] अन्तमें [illegible] करते हुए उन्होंने कहा [illegible] इक्ष्वाकुकुलमें महायशस्वी [illegible] और वे तुम्हें अपने हस्तस्पर्शसे [illegible]

---

* न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तद् सत्यं यच्छलेनानुविद्धम् ॥
ये तु सभ्याः सदा ज्ञात्वा तूष्णीं ध्यायन्त आसते।
यथाप्राप्तं न ब्रुवते ते सर्वेऽनृतवादिनः ॥
जानन्न चाभिवीत यस्तु कामात् क्रोधाद्भयात् तथा।
सहस्रं वारुणान् पाशानात्मनि प्रतिमुञ्चति ॥

तेषां [illegible] पूर्णे [illegible]
[illegible]
(वा० उत्तर० [illegible])

[illegible]

[illegible] ।' अतः देव ! यह दण्डनीय है, वध्य नहीं।'"

इस अन्तरिक्षगत अशरीरवाणीको सुनकर भगवान्ने वैसे ही उसका स्पर्श किया। जीवने दूषित शरीर त्यागकर दिव्यगन्धानुलिप्त दिव्य पुरुषका रूप धारण कर लिया और 'राघव ! साधु, साधु; धर्मज्ञ रामभद्र साधु !' आज आपने मेरा घोर नरकसे उद्धार कर दिया, मेरे शापका अन्त कर दिया।' यों कहता हुआ वह दिव्यलोकको चला गया। —बा० श०

पुण्य-कार्य कलपर मत टालो

धर्मराज युधिष्ठिरके समीप कोई ब्राह्मण याचना करने आया। महाराज युधिष्ठिर उस समय राज्यके कार्यमें अत्यन्त व्यस्त थे। उन्होंने नम्रतापूर्वक ब्राह्मणसे कहा—'भगवन् ! आप कल पधारें, आपको अभीष्ट वस्तु प्रदान की जायगी।'

ब्राह्मण तो चला गया; किंतु भीमसेन उठे और लगे राजसभाके द्वारपर रक्खी हुई दुन्दुभि बजाने। उन्होंने सेवकोंको भी मङ्गलवाद्य बजानेकी आज्ञा दे दी। असमयमें मङ्गलवाद्य बजनेका शब्द सुनकर धर्मराजने पूछा—'आज इस समय मङ्गलवाद्य क्यों बज रहे हैं ?'

सेवकने पता लगाकर बताया—'भीमसेनजीने ऐसा करनेकी आज्ञा दी है और वे स्वयं ही दुन्दुभि बजा रहे हैं।'

भीमसेनजी बुलाये गये तो बोले—'महाराजने कालको जीत लिया, इससे बड़ा मङ्गलका समय और क्या होगा।'

'मैंने कालको जीत लिया ?' युधिष्ठिर चकित हो गये।

भीमसेनने बात स्पष्ट की—'महाराज ! विश्व जानता है कि आपके मुखसे हँसीमें भी झूठी बात नहीं निकलती। आपने याचक ब्राह्मणको अभीष्ट दान कल देनेको कहा है, इसलिये कम-से-कम कलतक तो अवश्य कालपर आपका अधिकार होगा ही।'

अब युधिष्ठिरको अपनी भूलका बोध हुआ। वे बोले—'भैया भीम ! तुमने आज मुझे उचित सावधान किया। पुण्य-कार्य तत्काल करना चाहिये। उसे पीछेके लिये टालना ही भूल है। उन ब्राह्मण देवताको अभी बुलाओ।' —सु० सिं०

तर्पण और श्राद्ध

एक बार महाराज करन्धम महाकालका दर्शन करने गये। कालभीतिने जब करन्धमको देखा, तब उन्हें भगवान् शंकरका वचन स्मरण हो आया। उन्होंने उनका स्वागत-सत्कार किया और कुशल-प्रश्नादिके बाद वे सुखपूर्वक बैठ गये। तदनन्तर उन्होंने महाकाल (कालभीति) से पूछा—'भगवन् ! मेरे मनमें एक बड़ा संशय है कि यहाँ जो पितरोंको जल दिया जाता है, वह तो जलमें ही मिल जाता है; फिर वह पितरोंको कैसे प्राप्त होता है ? यही बात श्राद्धके सम्बन्धमें भी है। पिण्ड आदि जब यहीं पड़े रह जाते हैं, तब हम कैसे मान लें कि पितरलोग उन पिण्डादिका उपयोग करते हैं। साथ ही यह कहनेका साहस भी नहीं होता कि वे पदार्थ पितरोंको किसी प्रकार मिलते ही नहीं; क्योंकि स्वप्नमें देखा जाता है कि पितर मनुष्योंसे श्राद्ध आदिकी याचना करते हैं। देवताओंके चमत्कार भी प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। अतः मेरा मन इस विषयमें संदेहमग्न हो रहा है।'

महाकालने कहा—'राजन् ! देवता और पितरोंकी योनि ही इस प्रकारकी है कि दूरसे कही हुई बात, दूरसे किया हुआ पूजन-सत्कार, दूरसे की हुई अर्चा, स्तुति तथा भूत, भविष्य और वर्तमानकी सारी बातोंको वे जान लेते हैं और वहीं पहुँच जाते हैं। उनका शरीर केवल नौ तत्त्वों (पाँच तन्मात्रा, चार अन्तःकरण) का बना होता है, दसवाँ जीव होता है; इसलिये उन्हें स्थूल उपभोगोंकी आवश्यकता नहीं होती।'

करन्धमने कहा, 'यह बात तो तब मानी जाय, जब पितर लोग यहाँ भूलोकमें हों। परंतु जिन मृतक पितरोंके लिये यहाँ श्राद्ध किया जाता है, वे तो अपने कर्मानुसार स्वर्ग या नरकमें चले जाते हैं। दूसरी बात, जो शास्त्रोंमें यह कहा गया है कि पितरलोग प्रसन्न होकर मनुष्योंको आयु, प्रजा, धन, विद्या, राज्य, स्वर्ग या मोक्ष प्रदान करते हैं, यह भी सम्भव नहीं है; क्योंकि जब वे स्वयं कर्मबन्धनमें पड़कर नरकमें हैं, तब दूसरोंके लिये कुछ कैसे करेंगे ?'

महाकालने कहा—'ठीक है, किंतु देवता, असुर, यक्ष आदिके तीन अमूर्त तथा चारों वर्णोंके चार मूर्त—ये सात प्रकारके पितर माने गये हैं। ये नित्य पितर हैं। ये कर्मोंके अधीन नहीं, ये सबको सब कुछ देनेमें समर्थ हैं। इन नित्य पितरोंके अत्यन्त प्रबल इक्कीस गण हैं। वे तृप्त होकर श्राद्ध-कर्ताके पितरोंको, वे चाहे कहीं भी हों, तृप्त करते हैं।'

करन्धमने कहा, 'महाराज ! यह बात तो समझमें आ गयी; किंतु फिर भी एक संदेह है—भूत-प्रेतादिके लिये जैसे एकत्रित बलि आदि दी जाती है, वैसे ही एकत्र ही संक्षेपसे देवतादिके लिये भी क्यों नहीं दी जाती ? देवता, पितर, अग्नि—इनको अलग-अलग नाम लेकर देनेमें बड़ा झंझट तथा विस्तारसे कष्ट भी होता है ।'

महाकालने कहा—'सभीके विभिन्न नियम हैं । घरके दरवाजेपर बैठनेवाले कुत्तेको जिस प्रकार खानेको दिया जाता है, क्या उसी प्रकार एक विशिष्ट सम्मानित व्यक्तिको भी दिया जाय ? और क्या वह उस तरह दिये जानेपर स्वीकार करेगा ? अतः जिस प्रकार भूतादिको दिया जाता है, उसी प्रकार देनेपर देवता उसे नहीं ग्रहण करते । बिना श्रद्धाके दिया हुआ चाहे वह जितना भी पवित्र तथा बहुमूल्य क्यों न हो, वे उसे कदापि नहीं लेते । श्रद्धापूर्वक पवित्र पदार्थ भी बिना [illegible] वे स्वीकार नहीं करते ।'

करन्धमने कहा—'मैं यह जानना चाहता हूँ कि [illegible] दान दिया जाता है, वह कुश, ति[illegible] और [illegible] जाता है ?' महाकालने कहा—'पहले [illegible] दान दिये जाते थे, उन्हें असुरलोग बीचमें ही [illegible] थे । देवता और पितर मुँह देखते ही रह [illegible] । [illegible] ब्रह्माजीसे शिकायत की । ब्रह्माजीने कहा कि—[illegible] दिये गये पदार्थोंके साथ तिल, जल, कुश [illegible] देवताओंको दिया जाय, उसके साथ अक्षत (जौ, चावल) [illegible], कुशका प्रयोग हो । ऐसा करनेपर असुर इन्हें न ले [illegible] । [illegible] यह परिपाटी है ।' अन्तमें [illegible] भी सुनकर कृतकृत्य हो करन्धम लौट आये ।—[illegible]

(स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड, कुमारिकाखण्ड, अध्याय ३५, ३८)

आत्महत्या कैसी मूर्खता !

पूर्वकालमें काश्यप नामक एक बड़ा तपस्वी और संयमी ऋषिपुत्र था । उसे किसी धनमदान्ध वैश्यने अपने रथके धक्केसे गिरा दिया । गिरनेसे काश्यप बड़ा दुखी हुआ और क्रोधवश आपेसे बाहर होकर कहने लगा—'दुनियामें निर्धन-का जीना व्यर्थ है, अतः अब मैं आत्मघात कर लूँगा ।'

उसे इस प्रकार क्षुब्ध देखकर इन्द्र उसके पास गीदड़का रूप धारण करके आये और बोले, 'मुनिवर ! मनुष्य-शरीर पानेके लिये तो सभी जीव उत्सुक रहते हैं । उसमें भी ब्राह्मणत्वका तो कुछ कहना ही नहीं । आप मनुष्य हैं, ब्राह्मण हैं और शास्त्रज्ञ भी हैं । ऐसा दुर्लभ शरीर पाकर उसे यों ही नष्ट कर देना, आत्मघात कर लेना भला, कहाँकी बुद्धिमानी है । अजी ! जिन्हें भगवान्‌ने हाथ दिये हैं, उनके तो मानो सभी मनोरथ सिद्ध हो गये । इस समय आपको जैसे धनकी लालसा है, उसी प्रकार मैं तो केवल हाथ पानेके लिये उत्सुक हूँ । मेरी दृष्टिमें हाथ पानेसे बढ़कर संसारमें कोई लाभ नहीं है । देखिये, मेरे शरीरमें काँटे चुभे हैं; किंतु हाथ न होनेसे मैं उन्हें निकाल नहीं सकता । किंतु जिन्हें भगवान्‌से हाथ मिले हैं, उनका क्या कहना ! वे वर्षा, शीत, धूपसे अपना कष्ट निवारण कर सकते हैं । जो दुःख बिना हाथके दीन, दुर्बल और मूक प्राणी सहते हैं, सौभाग्यवश, वे तो आपको नहीं सहन करने पड़ते । भगवान्‌की बड़ी दया [illegible] आप गीदड़, कीड़ा, चूहा, साँप या मेंढक आदि किसी दूसरी योनिमें नहीं उत्पन्न हुए ।

'काश्यप ! आत्महत्या करना बड़ा पाप है । [illegible] मैं वैसा नहीं कर रहा हूँ; अन्यथा देखिये, मुझे ये [illegible] रहे हैं, किंतु हाथ न होनेसे मैं इनसे अपनी [illegible] नहीं कर सकता । आप मेरी बात मानिये, [illegible] वास्तविक फल मिलेगा । आप [illegible] और अग्निहोत्र कीजिये । सत्य बोलिये, इन्द्रि[illegible] रखिये, दान दीजिये, किसीसे स्पर्धा न [illegible] । [illegible] यह शृगालयोनि मेरे कुकर्मोंका परिणाम है । [illegible] अब कोई ऐसी साधना करना [illegible], [illegible] आप-जैसी मनुष्ययोनि प्राप्त हो सके ।'

काश्यपको मानवदेहकी [illegible] भी भान हुआ कि यह कोई [illegible] शृगालदेहमें [illegible] हैं । [illegible] और उनकी आज्ञा सादर [illegible] ।

([illegible])

रोम-रोमसे 'जय कृष्ण' की ध्वनि

[illegible] निरन्तर [illegible] थे। उसी प्रसङ्गमें जगज्जननी [illegible] श्रीशंकरजीसे निवेदन किया—[illegible] आप इनकी महिमा वर्णन करते हैं, [illegible] करनेकी कृपा कीजिये। आपके श्री-[illegible] सुनकर मेरे चित्तमें बड़ा आह्लाद हुआ है [illegible] भगवान्‌के दर्शनकी अति उत्कण्ठा हो रही है। [illegible] कीजिये।'

[illegible] वचन सुनकर श्रीभोलानाथ उन्हें [illegible] गये और वहाँ कृष्ण-सखा अर्जुनके [illegible] द्वारपालोंसे पूछा—'कहो, इस समय अर्जुन कहाँ हैं?' उन्होंने कहा—'इस समय महाराज शयनागारमें सो रहे हैं।' यह सुनकर पार्वतीजीने उतावलीसे कहा, 'तो [illegible] दर्शन कैसे हो सकेंगे?' प्रियाको अधीर देखकर [illegible] कहा—'देवि! कुछ देर शान्त रहो। [illegible] हो, भक्तको उसके इष्टदेव भगवान्‌के द्वारा [illegible] मैं इसका प्रयत्न करता हूँ।' [illegible] होकर प्रेमार्पणद्वारा आनन्दकन्द [illegible] को बुलाया और कहा, 'भगवन्! कृपया अपने [illegible] कीजिये, देवी पार्वती उनका दर्शन करना चाहती हैं।' श्रीमहादेवजीके कहनेसे श्यामसुन्दर तुरत ही [illegible], देवी रुक्मिणी और सत्यभामासहित अर्जुनके शयनागारमें गये और देखा कि वह अधिक थकानसे सो रहा है और सुभद्रा उसके सिरहाने बैठी हुई धीरे-धीरे पंखा डुला-[illegible] बैठी [illegible] रही हैं। भाई कृष्णको आते हुए देखकर सुभद्रा हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुईं और [illegible] होकर पंखा डुलाने [illegible] थीं, इसलिये भगवान्‌का संकेत पाकर [illegible] लगीं। इतनेमें ही अकस्मात् [illegible] और [illegible] चकित होकर एक दूसरेकी ओर ताकने [illegible], [illegible] किस विचारमें पड़े हो? उन्होंने कहा—[illegible] अन्तर्यामी हैं, सब जानते हैं; हमें [illegible]?' [illegible] श्रीकृष्ण बोले, 'बताओ तो सही, [illegible]?' तब उद्धवने कहा कि 'अर्जुनके प्रत्येक [illegible] आवाज आ रही है।' रुक्मिणीजी [illegible]—'[illegible]! पैरोंसे भी यही आवाज आती है।' भगवान्‌ने समीप जाकर सुना तो उन्हें भी स्पष्ट सुनायी दिया कि अर्जुनके प्रत्येक केशसे निरन्तर 'जय कृष्ण-कृष्ण, जय कृष्ण-कृष्ण' की ध्वनि निकल रही है। कुछ और ध्यान दिया तो विदित हुआ कि उसके शरीरके प्रत्येक रोमसे यही ध्वनि निकल रही है। तब तो भगवान् उसे जगाना भूलकर स्वयं भी उसके प्रेम पाशमें बँध गये और गद्गद होकर स्वयं उसके चरण दबाने लगे। भगवान्‌के नवनीत-कोमल कर-कमलोंका स्पर्श होनेसे अर्जुनकी निद्रा और भी गाढ़ी हो गयी।

इधर महादेव और पार्वतीको प्रतीक्षा करते हुए जब बहुत देर हो गयी, तब वे मन ही-मन कहने लगे, 'भगवान् श्रीकृष्णको गये बहुत विलम्ब हो गया। मालूम होता है उन्हें भी निद्राने घेर लिया है।' तब उन्होंने ब्रह्माजीको बुलाकर अर्जुनको जगानेके लिये भेजा। किंतु अन्तःपुरमें पहुँचनेपर ब्रह्माजी भी अर्जुनके रोम-रोमसे 'कृष्ण-कृष्ण'की ध्वनि सुनकर और स्वयं भगवान्‌को अपने भक्तके पाँव पलोटते देखकर अपने प्रेमावेशको न रोक सके। एवं अपने चारों मुखोंसे वेद-स्तुति करने लगे। अब क्या था, ये भी हाथसे गये। जब ब्रह्माजीकी प्रतीक्षामें भी श्रीमहादेव और पार्वतीको बहुत समय हो गया, तब उन्होंने देवर्षि नारदजीका आवाहन किया। अबकी बार वे अर्जुनको जगानेका बीड़ा उठाकर चले। किंतु शयनागारका अद्भुत दृश्य देख-सुनकर उनसे भी न रहा गया। वे भी अपनी वीणाकी खूँटियाँ कसकर हरि-कीर्तनमें तल्लीन हो गये। जब उनके कीर्तनकी ध्वनि भगवान् शङ्करके कानमें पड़ी तो उनसे भी और अधिक प्रतीक्षा न हो सकी; वे भी पार्वतीजीके साथ तुरंत ही अन्तःपुरमें पहुँच गये। वहाँ अर्जुनके रोम-रोमसे 'जय कृष्ण, जय कृष्ण' का मधुर नाद सुनकर और सभी विचित्र दृश्य देखकर वे भी प्रेम-समुद्रकी उत्ताल तरङ्गोंमें उछलने-डूबने लगे। अन्तमें उनसे भी न रहा गया। उन्होंने भी अपना त्रिभुवन-मोहन ताण्डव नृत्य आरम्भ कर दिया; साथ ही श्रीपार्वतीजी भी स्वर और तालके साथ सुमधुर वाणीसे हरि-गुण गाने लगीं। इस प्रकार वह सम्पूर्ण समाज प्रेम-समुद्रमें डूब गया, किसीको भी अपने तन-मनकी सुध-बुध नहीं रही। सभी प्रेमोन्मत्त हो गये। भक्तराज अर्जुनके प्रेम-प्रवाहने सभीको सराबोर कर दिया। अर्जुन! तुम्हारा वह अविचल प्रेम धन्य है!

(क० ६—२)

रोम रोममें 'राम कृष्ण' ध्वनि

आनन्द और प्रेमका रस-नृत्य

कृतघ्न पुरुषका मांस राक्षस भी नहीं खाते

गौतम नामका एक ब्राह्मण था। ब्राह्मण वह केवल इस अर्थमें था कि ब्राह्मण माता-पितासे उत्पन्न हुआ था, अन्यथा था वह निरक्षर और म्लेच्छप्राय। पहले तो वह भिक्षा माँगता था; किंतु भिक्षाटन करता हुआ जब म्लेच्छोंके नगरमें पहुँचा, तब वहीं एक विधवा स्त्रीको पत्नी बनाकर बस गया। म्लेच्छोंके संसर्गसे उसका स्वभाव भी उन्हींके समान हो गया। वनमें पशु-पक्षियोंका आखेट करना ही उसकी जीविका हो गयी।

संयोगवश उधर एक विद्वान् ब्राह्मण आ निकले। यज्ञोपवीतधारी गौतमको व्याधके समान पक्षियोंको मारते देख उन्हें दया आ गयी। उन्होंने गौतमको समझाया कि यह पापकर्म वह छोड़ दे। उनके उपदेशसे गौतम भी धन कमानेका दूसरा साधन ढूँढ़ने निकल पड़ा। उसने पहले व्यापारियोंके एक यात्रीदलका साथ पकड़ा; किंतु वनमें मतवाले हाथियोंने उस दलपर आक्रमण कर दिया। कितने व्यापारी मारे गये, पता नहीं। प्राण बचानेके लिये गौतम अकेला भागा और फिर घोर वनमें भटक गया।

ब्राह्मण गौतमका भाग्य अच्छा था। वह भटकता हुआ एक ऐसे वनमें पहुँच गया, जिसमें पके हुए मधुर फलोंवाले वृक्ष थे। सुगन्धित वृक्ष भी वहाँ पर्याप्त थे और मधुर स्वरमें बोलनेवाले पक्षियोंका तो वह निवास ही था। उसी वनमें महर्षि कश्यपके पुत्र राजधर्मा नामक बगुलेका निवास था। ब्राह्मण गौतम संयोगवश उस वनमें उसी विशाल वटवृक्षके नीचे जा बैठा, जिसपर राजधर्माका विश्रामस्थान था।

संध्याके समय चमकीले पङ्खोंवाले राजधर्मा ब्रह्मलोकसे अपने स्थानपर आये तो उन्होंने देखा कि उनके यहाँ एक अतिथि आया है। उन्होंने मनुष्यभाषामें गौतमको प्रणाम किया और अपना परिचय दिया। गौतमके लिये उन्होंने कोमल पत्तों तथा सुगन्धित पुष्पोंकी शय्या बना दी। उसे भोजन कराया। भोजन करके जब ब्राह्मण लेट गया तब राजधर्मा अपने पंखोंसे उसे हवा करने लगे।

जब राजधर्माको पता लगा कि ब्राह्मण दरिद्र है और धन पानेके लिये यात्रा कर रहा है, तब उन्होंने उसे यहाँसे तीन योजन दूर अपने मित्र विरूपाक्ष नामक राक्षसराजके यहाँ जानेको कहा। दूसरे दिन प्रातःकाल ब्राह्मण वहाँसे चल पड़ा। जब राक्षसराजने सुना कि उनके मित्र राजधर्माने गौतमको भेजा है, तब उन्होंने गौतमका [illegible] और [illegible] अधिक धन दिया।

[illegible]राजसे विदा होकर गौतम फिर [illegible] आया। राजधर्माने उसका फिर [illegible] किया। [illegible] भूमिपर ही सो रहे। वहाँ उन्होंने [illegible], जिससे वन्य पशु रात्रिमें आक्रमण [illegible]। [illegible] ही ब्राह्मणकी निद्रा भङ्ग हुई। वह सोचने लगा — [illegible] यहाँसे दूर है। लोभवश मैंने धन भी बहुत ले लिया [illegible] भोजनके लिये कुछ मिलेगा नहीं और [illegible] है नहीं। इस मोटे बगुलेको मारकर [illegible] चल जायगा।' यह विचारकर उस [illegible] मार डाला। उनके पंख नोचकर [illegible] भून लिया और धनकी गठरी लेकर [illegible]।

इधर राक्षस विरूपाक्षने अपने पुत्रसे [illegible] — मेरे मित्र राजधर्मा प्रतिदिन ब्रह्माजीको प्रणाम करने [illegible] जाते हैं और लौटते समय मुझसे मिले बिना [illegible] नहीं जाते। आज दो रातें बीत गयीं वे मुझसे [illegible] आये। मुझे उस गौतम ब्राह्मणके [illegible] नहीं [illegible]। मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है। तुम पता [illegible] मित्र किस अवस्थामें हैं।'

राक्षसराजका कुमार दूसरे राक्षसोंके [illegible] निवासस्थानपर पहुँचा, तब वहाँ उसने उन [illegible] पंखोंको इधर उधर बिखरे देखा; [illegible] शोक और क्रोधके मारे उसने उस [illegible] किया। थोड़ी ही देरमें राक्षसोंने [illegible] लेकर वे राक्षसराजके पास पहुँचे।

अपने मित्र बगुलेका [illegible] शोकसे मूर्छित हो गये। [illegible] होकर रोने लगे। [illegible]

[illegible]

[illegible]

अब योग्य ब्राह्मण कहाँ मिले, जिसे मैं भूमि-दान दूँ। यह सोचकर उन्होंने बारह प्रश्न बनाये और उन्हें ही गाते हुए वे ऋषियोंके आश्रमोंपर विचरने लगे । उनके प्रश्न थे— (१) मातृका क्या और कितनी हैं ? (२) पचीस वस्तुओंसे बना अद्भुत गृह क्या है ? (३) अनेक रूपवाली स्त्रीको एक रूपवाली बनानेकी कलाका किसे ज्ञान है ? (४) संसारमें विचित्र कथाकी रचना करना कौन जानता है ? (५) समुद्रमें बड़ा ग्राह कौन है ? (६) आठ प्रकारके ब्राह्मण कौन हैं ? (७) चार युगोंके आरम्भके दिन कौन से हैं ? (८) चौदह मन्वन्तरोंका आरम्भ किस दिन हुआ ? (९) सूर्यनारायण रथपर पहले-पहल किस दिन बैठे ? (१०) काले साँपकी तरह प्राणियोंका उद्वेजक कौन है ? (११) इस घोर संसारमें सबसे बड़ा चतुर कौन है ? और (१२) दो मार्ग कौन-से हैं ?

इन प्रश्नोंको पूछते हुए वे सारी पृथ्वीपर घूम आये, पर कहीं उनके प्रश्नोंका समाधान न हुआ। योग्य ब्राह्मण न मिलनेके कारण नारदजी बड़े दुखी हुए और हिमालय पर्वतपर एकान्तमें बैठकर विचारने लगे । सोचते-सोचते अकस्मात् उनके ध्यानमें आया कि 'मैं कलापग्राममें तो गया ही नहीं। वहाँ ८४ हजार विद्वान् ब्राह्मण नित्य तपस्या करते हैं। सूर्य-चन्द्र-वंश एवं सद्‌ब्राह्मणोंके पुनः प्रवर्तक देवापि और मरुत्त वहीं रहते हैं।' यों विचारकर वे आकाश-मार्गसे कलापग्राम पहुँचे। वहाँ उन्होंने बड़े तेजस्वी, विद्वान् एवं कर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंको देखा। उन्हें देखकर नारदजी बड़े प्रसन्न हुए । ब्राह्मण जहाँ बैठे शास्त्रचर्चा कर रहे थे, वहाँ जाकर नारदजीने कहा—'आपलोग यह क्या काँव-काँव कर रहे हैं। यदि कुछ समझनेकी शक्ति है तो मेरे कठिन प्रश्नोंका समाधान कीजिये।'

यह सुनकर ब्राह्मण अचंभेमें पड़ गये और बोले, 'वाह, सुनाओ तो जरा अपने प्रश्नोंको।' नारदजीने अपने बारह प्रश्नोंको दुहरा दिया। यह सुनकर वे मुनि कहने लगे, 'मुने! ये आपके प्रश्न तो बालकोंके-से हैं। आप यहाँ जिसे सबसे छोटा और मूर्ख समझते हों, उसीसे पूछिये; वही इनका उत्तर दे देगा।' अब नारदजी बड़े विस्मयमें पड़ गये; उन्होंने एक बालकसे, जिसका नाम सुतनु था, इन प्रश्नोंको पूछा।

सुतनुने कहा—"इन बालोचित प्रश्नोंके उत्तरमें मेरा मन नहीं लगता। तथापि आपने मुझे सबसे मूर्ख समझा है, इसलिये कहना पड़ता है—(१) क, अ, आ इत्यादि ५२ अक्षर ही मातृका हैं। (२) [illegible] गृह यह शरीर ही है। (३) बुद्धि ही [illegible] है। जब इसके साथ धर्मका [illegible] हो जाती है। (४) विचित्र [illegible] करते हैं। (५) इस [illegible] है। (६) मात्र, ब्राह्मण, श्रोत्रिय, अनूचान, भ्रूण, [illegible], ऋषि और मुनि—ये आठ प्रकारके [illegible] हैं। [illegible] केवल ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न है और [illegible] है, वह 'मात्र' है। [illegible] कर्मकारी ब्राह्मण 'ब्राह्मण' कहा जाता है। [illegible] का पूर्ण ज्ञान प्राप्तकर [illegible] है। वेदका पूर्ण तत्त्वज्ञ, शुद्धात्मा, [illegible] करनेवाला ब्राह्मण 'अनूचान' है। [illegible] अनूचान ही 'भ्रूण' है। [illegible] परिपूर्ण जितेन्द्रिय ब्राह्मण [illegible] है। [illegible] निःस्पृह, शापानुग्रह-सक्षम, [illegible] है। सदा ध्यानस्थ, मृत्तिका और [illegible] ब्राह्मण 'मुनि' है।

"अब सातवें प्रश्नका उत्तर सुनिये। [illegible] को कृतयुगका, वैशाख शुक्ल तृतीयाको [illegible] अमावास्याको द्वापरका और [illegible] कलियुगका आरम्भ हुआ। अतः उक्त तिथियाँ [illegible] कही जाती हैं। अब आठवें प्रश्नका [illegible]। आश्विन शुक्ल नवमी, कार्तिक शुक्ल द्वादशी, चैत्र शुक्ल [illegible], भाद्रपद शुक्ल तृतीया, फाल्गुन [illegible], एकादशी, आषाढ शुक्ल दशमी, माघ शुक्ल [illegible], कृष्ण अष्टमी, आषाढ शुक्ल पूर्णिमा, [illegible], फाल्गुनी पूर्णिमा, चैत्री पूर्णिमा और [illegible] स्वायम्भुव आदि चौदह मनुओंकी [illegible] (९) माघ शुक्ल सप्तमीको पहले-पहल [illegible] हुए थे। (१०) [illegible] है। (११) पूर्ण चतुर—'दक्ष' वही है [illegible] समझकर इससे अलग [illegible] (१२) 'अर्चि' और 'धूम'—ये दो [illegible] लौटना पड़ता है।"

इन उत्तरोंको सुनकर [illegible] उन्हें धर्मात्मा [illegible]

[illegible]

पूर्ण समर्पण

(तेरा, सो सब मेरा)

(लेखक—श्री[illegible] झवेरी)

[illegible] अश्वमेध यज्ञ करना चाहते थे। लगभग [illegible] यज्ञ वे कर चुके थे। उनके गुरु उस समय [illegible] थे। [illegible] यह पूरा करनेपर स्वर्गका राज्य पायेंगे और [illegible] हो जायेंगे, क्योंकि फिर वे [illegible] करेंगे और [illegible] होते ही वे फिर [illegible] के चक्करमें पड़ [illegible]। यह [illegible] न होने पावे और राजा फिरसे आत्मोन्नतिके [illegible] जायँ।'—यह विचारकर उनके श्रीगुरुने [illegible] यहाँ जन्म लिया। राजाने जब सौवाँ यज्ञ [illegible], उस समय उनके गुरु श्रीवामदेवजी भी वहाँके थे। [illegible] हो चुका था। भिक्षा माँगने समय [illegible] श्रीवामदेवजी प्रथम भिक्षा माँगने राजाके [illegible]। श्रीवामदेवजी अद्भुत [illegible], अनुपम [illegible] देखकर राजा हाथ जोड़कर खड़े हो गये। श्रीवामदेवजीने कहा—'मैं भिक्षा माँगने आया हूँ।' अश्वमेध यज्ञके नियमानुसार राजाने उनसे इच्छानुसार माँगनेको कहा। इसपर श्रीवामदेवजीने कहा—'मैं [illegible] माँगूँ, पर यदि मुझे न मिला तो फिर क्या होगा! [illegible] यह [illegible] कि मैं जो कुछ माँगूँगा, [illegible] दे चुके हैं।' 'वे बहुत माँगेंगे तो सारा राज्यपाट [illegible] और अश्वमेध यज्ञमें मुँहमाँगा देनेके लिये [illegible] ही पड़ता है'—यह सोचकर राजाने [illegible] कहा—'आप जो माँगेंगे, वह मैंने [illegible] दे दिया।' तब वामदेवजीने कहा—'जो तेरा है, वह सब मेरा हो जाय।' [illegible] तुरंत सिंहासनपरसे हट गये और [illegible] आ गिरे। अपने दानपर दक्षिणा [illegible] सारे [illegible] आभूषण उतारकर वामदेवजीके [illegible] रख दिये। परंतु 'तेरा है, वह सब मेरा हो जाय' इस [illegible] अनुसार [illegible] सभी चीजें श्रीवामदेवजीकी [illegible] हो चुकी थीं। [illegible] श्रीवामदेवजीने कहा कि—'ये [illegible] हो चुके हैं। अब आपके पास यदि कुछ शेष रहा हो तो उसमेंसे दक्षिणा दीजिये।' ये शब्द सुनते ही राजाने सोचा कि वामदेवजीने उनके अश्वमेधका सारा पुण्य भी ले लिया है। अब राजा सोचने लगे कि 'क्या किया जाय?' तब वामदेवजीने कहा—'सावधान! कुछ मत सोचो। कारण, तुम्हारा मन भी तो मेरा हो चुका है। तुमको मैं विचारतक नहीं करने दूँगा।' यह सुनकर राजा मूर्छित हो गये और स्वप्न देखने लगे कि वे मरनेके बाद यमके दरबारमें पहुँचे हैं। वहाँ उनका बड़ा सत्कार हुआ। फिर उनसे कहा गया कि उनका बहुत बड़ा पुण्य है और उन्हें स्वर्गका राज्य मिलनेवाला है परंतु कुछ पाप भी है। अतएव यह प्रश्न आया। 'वे पहले पाप भोगेंगे या पुण्य?' उसी स्वप्नावस्थामें राजाने सोचा कि पुण्यके बाद पापके भोगनेमें कष्ट होगा, इसलिये उन्होंने पहले पाप भोगनेकी इच्छा प्रकट की। इसपर वे मरुभूमिमें डाल दिये गये। वहाँ सूर्यकी कड़ी धूप और गरमागरम बालूसे राजा मानो झुलसने लगे। उस समय वे विचार करने लगे कि 'मैंने अपना सब कुछ वामदेवजीको दे दिया है। पुण्य भी दे दिया है, तब फिर यह पाप मुझे क्यों भोगना पड़ रहा है?' उनके यह सोचते ही वह मरुभूमि चन्दनवत् शीतल हो गयी और वामदेवजीने वहाँ प्रकट होकर कहा—'यदि तुम यमके दरबारमें कह देते कि तुमने पाप-पुण्य दोनों मुझे दे दिये हैं तो तुम्हें पाप भोगना न पड़ता। परंतु तुम्हें पुण्य भोगनेका मन था, इसलिये यह पाप भी भोगना पड़ा। जब पुण्य तुम भोगते, तब पाप मैं थोड़े ही भोगता।'

राजाकी मूर्छा दूर हो गयी। वे उठकर बैठ गये। सामने श्रीवामदेवजी खड़े थे। अपने गुरुको पहचानकर राजाने उन्हें सादर प्रणाम किया।

भक्तको इसी तरह अपने मनका साधन करना पड़ता है। मन अर्पण करनेके बाद साधकका कुछ भी नहीं रहता। फिर तो साधक ऐसा काम करेगा ही नहीं, जिससे उसको पाप-पुण्यका बन्धन हो।

जरा-सा भी गुण देखो, दोष नहीं

[illegible] गुणैर्[illegible] भवन्ति गुण[illegible]।
[illegible] हि [illegible] [illegible]॥

[illegible] कि इस समय मनुष्योंकर्में श्रीकृष्ण देव (कोई राजा) ही सबसे श्रेष्ठ और गुणशाली पुरुष हैं।

ऐसे श्रीकृष्णकी बड़ाई एक देवताको अच्छी नहीं

लगी। वह परीक्षा करनेके लिये मरे कुत्तेका रूप धारण करके रास्तेमें पड़ गया। उसके शरीरसे दुर्गन्ध निकल रही थी। उसका मुँह फट गया था। रास्ते जाते श्रीकृष्णने उस मरे कुत्ते-को देखा और कहा—'अहो, इस मरे कुत्तेके दाँतोंकी पङ्क्ति कैसी निर्मल, मोती-जैसी दिप रही है!' इस प्रकार सही दुर्गन्धके दोषकी ओर उनका [illegible] जो जरा-सा गुण था, उसीपर उनकी [illegible]। [illegible] देवता कुत्तेका रूप त्यागकर अपने [illegible] प्रकट हो [illegible] बोला—'सच है, [illegible] आपमें ही है। संसारमें [illegible]'

एक मुट्ठी अनाजपर भी अधिकार नहीं

एक बड़ा सुन्दर मकान है। उसके नीचे अनाजकी दूकान है। दूकानके सामने अनाजकी ढेरी लगी है। एक बकरा आया। उसने ढेरीपर मुँह मारा। दूकानका मालिक एक तरुण धनी दूकानपर बैठा था। उसके हाथमें नुकीली छड़ी थी। उसने बकरेके सिरपर जोरसे छड़ी मार दी। बकरा में-में करता हुआ भागा।

श्रीनारदजी तथा श्रीअङ्गिराजी अपनी राह जा रहे थे। बकरेकी उपर्युक्त घटना देखकर नारदजीको हँसी आ गयी। अङ्गिराजीने इस हँसीका रहस्य पूछा। तब नारदजीने बताया कि 'यह अनाजकी दूकान पहले बहुत छोटी थी। इसके मालिकने इसी दूकानसे अपने व्यापारकी प्रतिष्ठा की। वह अन्तमें करोड़पति हो गया। उसीने यह इतनी बड़ी इमारत बनवायी। वह बहुत बड़े-बड़े [illegible]। पर अनाजकी बुनियादी दूकानको अपने [illegible] रक्खा; क्योंकि इसी दूकानसे उसकी [illegible] थी। मालिक मर गया। उसका बेटा [illegible] यही तरुण दूकानपर बैठा है, जिसने बकरेको [illegible] भगाया है। यह इस दूकानपर [illegible] है। काम-काज तो नौकर करते हैं। [illegible] गयी कि दूकानका यह मालिक—[illegible] की योनिमें पैदा हुआ है। [illegible] मकानका और सारे कारोबारका [illegible] मुट्ठी अनाजपर भी उसका अधिकार नहीं है। [illegible] मुँह करते ही मार पड़ती है और जिस पुत्रको वह [illegible] पाला-पोसा, वही मारता है। [illegible]।'

परोपकारमें आनन्द

स्वर्गकी देवसभामें देवराजने किसी नरेशकी दयालुताका वर्णन किया। एक देवताके मनमें राजाकी परीक्षा लेनेकी इच्छा हुई। वे पृथ्वीपर आये और राजासे बोले—'नरेश! तू मुझे प्रतिदिन एक मनुष्यकी बलि दे, नहीं तो मैं तेरे नगरके सभी मनुष्योंको मार डालूँगा।'

राजाने शान्त चित्तसे कह दिया—'जो कुछ होनेवाला हो, हो जाय। मैं जान-बूझकर किसी प्राणीकी बलि नहीं दूँगा।'

देवताने ऐसा दृश्य उपस्थित कर दिया जिससे प्रत्येक नगरवासीको आकाशमें एक विशाल चट्टान दीखने लगी। लगता था कि चट्टान गिरनेवाली ही है और पूरा नगर उसके गिरनेसे ध्वस्त हो जायगा। नगरके लोग राजाके पास गये और उन्होंने प्रार्थना की—'सम्पूर्ण नगरकी रक्षाके लिये एक बलिदान दे देना चाहिये।'

राजाने स्थिरभावसे स्पष्ट कह दिया—'जो होनेवाला हो, हो जाय। मैं जान-बूझकर किसी प्राणीको नहीं मारूँगा।'

नगरके लोगोंने अब परस्पर [illegible]। [illegible] करके धन एकत्र किया और [illegible] बनवायी। अब उन लोगोंने यह [illegible] प्रसन्नतासे अपने घरके [illegible] उसे यह मूर्ति तथा और भी धन [illegible]।'

एक लोभी व्यक्तिने धनके लोभसे [illegible] के लिये दे दिया। जब उस लड़केको [illegible] पहुँचाया गया तब वह हँस रहा [illegible]। [illegible] कारण पूछा। लड़का बोला—'[illegible] दिन है; क्योंकि एक मेरे प्राण [illegible] रक्षा हो जायगी।'

राजाको [illegible]। [illegible] हटा दिया और स्वयं [illegible] राजाकी दयालुताने [illegible]। [illegible] शिला तो दीख रही थी, [illegible] आशीर्वाद दिया। —[illegible]

आत्मज्ञानसे ही शान्ति

द्वापरान्तमें उज्जैनमें शिखिध्वज नामके नरेश थे। उनकी पत्नी चूडाला सौराष्ट्रनरेशकी कन्या थी। रानी [illegible] रही है और [illegible]

है। उनकी तपस्यामें मुझे बाधा नहीं देनी चाहिये। प्रजापालन-रूप पतिका कर्तव्य मुझे पूरा ही करना चाहिये। प्रारब्धवश यह जो मुझे पति-वियोग प्राप्त हुआ है, उसे भोग लेना ही उचित है।' ऐसा निश्चय करके रानी चूडाला नगरमें लौट आयीं। उन्होंने सम्पूर्ण राज्य-संचालन अपने हाथमें ले लिया और प्रजाका भली प्रकार पालन करने लगीं।

कुछ काल बीत जानेपर चूडालाके मनमें पति-दर्शनकी इच्छा हुई। वे आकाशमार्गसे उस तपोवनमें पहुँच गयीं। महाराज शिखिध्वजका शरीर कठोर तप करनेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो गया था। वे अत्यन्त कृश, शान्त और उदास दीखते थे। योगिनी चूडालाने समझ लिया कि तपस्यासे राजाके चित्तका मल नष्ट हो गया है और विक्षेप भी समाप्त-प्राय है, अब वे तत्त्वबोधके अधिकारी हो गये हैं। परंतु श्रद्धाके बिना सुने हुए उपदेशमें विश्वास नहीं होता, इसलिये अपने स्त्री-वेशसे रानीने महाराजके सम्मुख जाना उचित नहीं समझा। उन्होंने एक युवक ऋषिका स्वरूप अपनी संकल्प-शक्तिसे धारण कर लिया और आकाशमार्गसे तपस्वी नरेशके सम्मुख उतर पड़ीं।

राजा शिखिध्वजने आकाशसे उतरते एक तेजस्वी ऋषि-को देखा तो उठ खड़े हुए। उन्होंने ऋषिको प्रणाम किया और ऋषिने भी उन्हें प्रणाम किया। राजाने अर्घ्य आदि देकर आगत अतिथिका सत्कार किया। यह सब हो जानेपर सत्सङ्ग प्रारम्भ हुआ। ऋषिरूपधारिणी रानीने पूछा—'आप कौन हैं?'

राजाने अपना परिचय देकर कहा—'संसाररूपी भयसे भीत होकर मैं इस वनमें रहता हूँ। जन्म-मरणके बन्धनसे मैं डर गया हूँ। कठोर तप करते हुए भी मुझे शान्ति नहीं मिल रही है। मेरा प्रयत्न कुण्ठित हो गया है। मैं असहाय हूँ। आप मुझपर कृपा करें।'

चूडालाने कहा—'कर्मोंका आत्यन्तिक नाश ज्ञानके द्वारा ही होता है। ज्ञानी कर्म करते हुए भी अकर्ता है। उसके कर्म उसके लिये बन्धन नहीं बनते; क्योंकि उसमें आसक्ति-कामना नहीं रहती। सभी देवता और श्रुतियाँ ज्ञानको ही मोक्षका साधन मानती हैं, फिर आप तपको मोक्षका हेतु मानकर क्यों भ्रान्त हो रहे हैं? यह दण्ड है, यह कमण्डलु है, यह आसन है, आदि नानात्वके भ्रममें आप क्यों पड़े हैं? मैं कौन हूँ, यह जगत् कैसे उत्पन्न हुआ, इसकी शान्ति कैसे होगी,—इस प्रकारका विचार आप क्यों नहीं करते?'

शिखिध्वजने अब उस ऋषिकुमारको ही [illegible] करनेका आग्रह किया—'मैं आपका शिष्य हूँ, [illegible] अनुगत हूँ; अब आप कृपा करके मुझे [illegible] दें।'

चूडालाने कहा—'आपकी पत्नीने तो बहुत पहले [illegible] तत्त्व-ज्ञानका उपदेश किया था। आपने उनके उपदेशको ग्रहण नहीं किया और न सर्वत्यागका ही आश्रय लिया।'

राजाने सर्वत्यागका ठीक आशय नहीं समझा। उन्होंने उस वनके त्यागका संकल्प किया। परंतु जब ऋषिकुमारने उस त्यागको भी सर्वत्याग नहीं माना, तब राजाने [illegible] ममता भी छोड़ दी। उन्होंने कुटियाकी सब वस्तुएँ एकत्र करके उनमें अग्नि लगा दी। राजामें विचार उत्पन्न हो गया था; अब वे स्वयं सोचने लगे थे कि सर्वत्याग हुआ या नहीं। ऋषिकुमार चुपचाप उनकी ओर देख रहे थे। [illegible] कमण्डलु, दण्ड आदि सब कुछ उन्होंने एकत्र करके अग्निमें डाल दिया।

'राजन्! अभी आपने कुछ नहीं छोड़ा है। [illegible] आनन्दका झूठा अभिनय मत कीजिये। आपने जो कुछ जलाया है, उसमें आपका था ही क्या! वे तो [illegible] निर्मित वस्तुएँ थीं।' अब उस ऋषिकुमारने कहा।

राजाने दो क्षण सोचा और कहा—'आप ठीक कहते हैं। अभी मैंने कुछ नहीं छोड़ा है, किंतु [illegible] त्याग करता हूँ।'

अपने शरीरकी आहुति देनेको उद्यत नरेशको ऋषि-कुमारने फिर रोका—'तनिक ठहरिये! यह शरीर [illegible] है, यह भी आपका भ्रम है। यह [illegible] है। इसे नष्ट करनेसे कुछ लाभ नहीं।'

'तब मेरा क्या है?' अब नरेश [illegible] और पूछने लगे।

ऋषिकुमार बोले—'यह अहंकार ही आपका है [illegible] इस अहंकारको कि यह सब मेरा है [illegible] अहंभाव छोड़नेपर ही आपका सर्वत्याग पूर्ण होगा।'

'अहंकारका त्याग!' शिखिध्वजके [illegible] बात प्रकाश बनकर पहुँची। अहंकारके [illegible] है, यह तो [illegible] हुआ नरेशको और तब ऋषिकुमारके [illegible] चूडालाने [illegible] दर्शन [illegible] करने।—सु० सिं०

भक्त विमलतीर्थ

एक नैष्ठिक भक्त पण्डित थे। भक्त विमलतीर्थ उनके ही पुत्र थे। पिताने बाल्यकालमें इन्हें यथाविधि यज्ञोपवीतादि संस्कारोंसे संस्कृत कर दिया। इनकी नानी बड़ी भक्तिमती थीं। उनके संसर्गमें आकर इनकी भक्ति अनुदिन भगवच्चरणोंमें बढ़ने लगी। समयपर इनका विवाह हो गया। इनकी पत्नी सुनयना तो मानो भक्तिकी प्रतिमूर्ति ही थीं। उनके संसर्गमें आकर विमलतीर्थजी-का वैराग्य तथा उपासना पराकाष्ठाको ही पहुँच गयी। दोनोंने उत्साहसे भगवदाराधन-व्रत ले लिया। तथापि सुनयनाने बाजी मार ली। उन्हें प्रथम भगवत्साक्षात्कार हो गया।

अब तो विमलतीर्थजीको और उत्साह हुआ। वे वनमें जाकर रहने लगे। अहर्निश भगवद्ध्यानमें प्रमत्त। अन्ततोगत्वा प्रभुने प्रकट होकर इन्हें गले लगा लिया। इन्होंने प्रभुसे विमल भक्तिका वर माँग लिया और सर्वदाके लिये पवित्र हो गये।

जगत् कल्पना है ! संकल्पमात्र है !!

कोसलमें गाधि नामके एक बुद्धिमान्, श्रोत्रिय, धर्मात्मा ब्राह्मण रहते थे । शास्त्रज्ञान और धर्माचरणका फल विषयोंसे वैराग्य न हो तो शास्त्रज्ञान और धर्माचरणको वन्ध्य ही मानने चाहिये । गाधिको वैराग्य हो गया । वे बन्धु-बान्धवोंसे अलग होकर वनमें तपस्या करने चले गये ।

गाधिने वनमें एक सरोवरके जलमें खड़े होकर तपस्या प्रारम्भ की । जलमें वे बराबर आकण्ठ मग्न रहते थे । भगवद्दर्शनके अतिरिक्त कोई कामना नहीं थी उनके मनमें । आठ महीनेकी कठोर तपस्याके बाद भगवान् विष्णु उनके सम्मुख प्रकट हुए । ब्राह्मणके नेत्र धन्य हो गये । उनका तपस्यासे क्षीण शरीर पुष्ट हो गया एक ही क्षणमें ।

'वर माँगो !' मेघ-गम्भीर वाणीमें प्रभुने कहा ।

'प्रभो ! जीवोंको मोहित करनेवाली उस मायाको मैं देखना चाहता हूँ, जिसके द्वारा यह संसार आपमें अध्यस्त है ।' ब्राह्मणने वरदान माँगा; क्योंकि बहुत विचार करके वह थक गया था; जगत् नित्य है या अनित्य, तथ्य है या अतथ्य—यह उसकी समझमें ठीक आता नहीं था ।

भगवान् बोले—'अच्छी बात ! मायाको तुम देखोगे और तब उसका त्याग करोगे ।'

वरदान देकर गरुडध्वज प्रभु अदृश्य हो गये । कई दिन बीत गये ब्राह्मणको उसी वनमें । अब वे जलमें खड़े रहकर तपस्या नहीं करते थे । वृक्षके नीचे रहकर फल-मूल खाकर भजन करते थे । मायाके दर्शनकी प्रतीक्षामें थे वे ।

एक दिन सरोवरमें स्नान करके विप्रश्रेष्ठ गाधिने हाथके कुशोंसे जलमें आवर्त बनाया और जलमें डुबकी लगाकर अघमर्षण मन्त्रका जप करने लगे । सहसा वे मन्त्र भूल गये । उनके चित्तकी अद्भुत दशा हो गयी । उन्हें लगा कि वे अपने घर लौट आये हैं और वहाँ उनका शरीर छूट गया है । अब वे सूक्ष्म शरीरमें हैं । उनके सम्बन्धी रो रहे हैं । उन्होंने सूक्ष्म शरीरमें स्थित होकर देखा कि उनके मृत देहको सम्बन्धी श्मशान ले गये और वहाँ उसे चितामें रखकर जला दिया गया ।

सूक्ष्म शरीरमें स्थित गाधिने अनुभव किया कि वह भूत-मण्डल नामक देशके एक गाँवमें एक चाण्डाल [illegible] गर्भमें पहुँच गया है । वह [illegible] नहीं [illegible] केवल अनुभव कर रहे थे । [illegible] अघमर्षणके लिये डुबकी लगायी थी । [illegible] कि वे चाण्डाल-बालक होकर [illegible] हुए । [illegible] बालकका नाम कटज रक्खा ।

चाण्डालकुमार कटज धीरे धीरे बढ़ने लगा । [illegible] बलवान् निकला । युवा होनेपर [illegible] हो गया । उसका एक चाण्डाल-कन्यासे विवाह हो गया । कालक्रमसे उसके कई पुत्र हुए । [illegible] महामारी फैली । चाण्डाल कटजके [illegible] पुत्र तथा [illegible] लोगोंकी समाप्ति हो गयी उस महामारीमें । [illegible] हीन शोकाकुल कटज वह ग्राम छोड़कर [illegible] । अनेक देशोंमें वह घूमता भटकता रहा ।

उस समय कीरदेशका नरेश मर गया था । [illegible] प्रथा थी कि राजाके मरनेपर एक [illegible] हाथी छोड़ दिया जाता था नगरमें और वह हाथी जिसे अपनी [illegible] लेता था, उसे राजगद्दी दे दी जाती थी । [illegible] राजधानी श्रीमतीपुरीमें जब चाण्डाल कटज घूमता [illegible] पहुँचा, तब नगर भली प्रकार सजाया गया था । [illegible] खोज करनेके लिये छोड़ा हुआ हाथी नगरमें [illegible] नगरके लोग मार्गमें खड़े थे और [illegible] देखनेको कि राजा होनेका सौभाग्य किसे [illegible] हाथी कटजके पास आया और उसे [illegible] अपने मस्तकपर बैठा लिया । नगरमें [illegible] जयध्वनि होने लगी नवीन नरेशके [illegible] ।

कटजने अब अपना नाम [illegible] छिपा ली । उसने अपना नाम [illegible] उसका स्वागत हुआ । [illegible] हुए उसे । अनेक [illegible] उसने कीरदेशमें [illegible] राज्य किया ।

एक दिन नगरके [illegible] दूसरे [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] उस [illegible] देखने लगा । [illegible] एक वृद्ध भी [illegible]

गुफामें पहुँचे और फिर तपस्या करने लगे । डेढ़ वर्षतक उन्होंने केवल एक चुल्लू पानी प्रतिदिन पिया । उनके तपसे भगवान् नारायणने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया । भगवान्ने गाधिसे कहा—'ब्रह्मन् ! तुमने मेरी मायाको देख लिया ! तुम जिस संसारको देखते हो, सत्य मानते हो, वह केवल भ्रम है । वह आत्माका मनोभाव—संकल्पमात्र है । भूत, भविष्य, वर्तमानकाल तथा संसारके सब दृश्य चित्तके ही धर्म हैं । यह जगत्-रूपी जाल जब चित्तसे ही प्रकट हुआ है, तब उसमें एक चाण्डाल और प्रकट हो गया—इसमें आश्चर्य क्या है । तुमने जो कुछ देखा, वह सब भ्रमात्मक है और उसके समान ही यह [illegible] है । अब तुम उठो, शान्तचित्तसे अपने [illegible] कर्मको करो ।'

ब्राह्मणको आश्वासन देकर [illegible] कि 'जैसे बहुत से लोग समान स्वप्न देखें, वैसे ही [illegible] कारण तुमने अपने [illegible] और [illegible] उन घटनाओंका समर्थन किया । [illegible] मूर्त होता रहा ।' भगवान् अन्तर्हित हो गये ।

ब्राह्मण गाधि उस पर्वतपर [illegible] आराधना करने लगे ।—सु० सि० ([illegible])

सर्वत्याग

देवगुरु महर्षि बृहस्पतिके पुत्र कचने युवा होते ही निश्चय किया कि 'प्राणीका पहला कर्तव्य है—जन्म-मरणके पाशसे छुटकारा पा लेना ।' वे देवगुरुके पुत्र थे, वेद-वेदाङ्गोंके विद्वान् थे । सात्त्विकता उनकी पैतृक सम्पत्ति थी । उन्हें सद्गुरु ढूँढ़ना नहीं था । पिताकी सेवामें उपस्थित होकर उन्होंने पूछा—'भगवन् ! इस संसारसागरसे मैं कैसे पार हो सकता हूँ ?'

देवगुरु बोले—'पुत्र ! नाना अनर्थरूपी संसारसागरसे जीव सर्वत्यागका आश्रय लेकर अनायास पार हो जाता है ।'

पिताका उपदेश सुनकर कचने उन्हें प्रणाम किया और देवलोक त्यागकर वे एक वनमें चले गये । महर्षि बृहस्पतिको इस प्रकार पुत्रके जानेसे न खेद हुआ न शोक और न चिन्ता ही । पुत्र सत्पथपर जाता हो तो विचारवान् पिताको प्रसन्नता ही होती है ।

कचको देवलोकसे गये आठ वर्ष बीत गये । उनके चित्तकी क्या दशा है, यह जाननेके लिये महर्षि बृहस्पति उनके तपोवनमें पहुँचे । कचने पिताको प्रणाम किया, उनकी पूजा की और बोले—'भगवन् ! सर्वत्याग किये मुझे आठ वर्ष हो गये; किंतु मुझे शान्ति नहीं मिली ।'

'पुत्र ! सभीका त्याग करो ।' केवल इतना कहकर देवगुरु बृहस्पति अदृश्य हो गये । महर्षिके अदृश्य हो जानेपर कचने अपने शरीरपरसे वल्कल उतार दिया । वह दिगम्बर अवधूत बन गया । उसने वह आश्रम छोड़ दिया । अब धूप, शीत या वर्षासे बचनेके लिये वह गुफामें भी नहीं जाता था । एक स्थानपर वह नहीं रहता था । दिगम्बर अवधूत कचका अब न कोई आश्रम था न [illegible] । वह तपस्यासे क्षीणकाय हो गया ।

तीन वर्ष और बीत गये । [illegible] महर्षि बृहस्पति कचके सामने प्रकट हुए । [illegible] पुत्रका आलिङ्गन किया । कचने [illegible]—'भगवन् ! मैंने आश्रम, [illegible] त्याग कर दिया; किंतु आत्मतत्त्वका [illegible] नहीं हुआ ।'

बृहस्पतिजी बोले—'पुत्र ! चित्त ही सब कुछ है । तुम उस चित्तका ही त्याग करो । चित्तका त्याग ही [illegible] जाता है ।'

देवगुरु उपदेश देकर चले गये । कच [illegible] लगे कि 'चित्त है क्या और उसका त्याग कैसे [illegible] ?' बहुत प्रयत्न करनेपर भी जब उन्हें चित्तका पता नहीं [illegible], तब वे स्वर्गमें अपने पिताके [illegible] उपस्थित हुए [illegible] उन्होंने पूछा—'भगवन् ! चित्त क्या है ?'

देवगुरुने [illegible]—'[illegible] ! [illegible] चित्त है । प्राणियोंमें जो [illegible] है, [illegible] स्वरूप है ।'

कचने [illegible] । [illegible] पूछा—'इस अहंकारका त्याग कैसे हो [illegible] ? [illegible] है ।'

देवगुरु हँसकर बोले—'पुत्र ! [illegible] कोमल [illegible] है । [illegible]

तुम्हारी कामना अवश्य पूरी करेंगे। मेरे लिये पाँच बदरीफल पकाकर रख देनेसे ही सेवा हो जायगी।' वसिष्ठने अपना रास्ता लिया।

× × × ×

'सारा दिन बीत गया, आँच भी तेज है; पर ये बदरीफल अभीतक सिद्ध नहीं हो सके। न जाने भाग्यमें क्या लिखा है!' श्रुतावती विस्मित थी। फिर थोड़ी देर बाद उसने पात्रका ढकना हटाकर फलोंको देखा, पर वे कड़े-के-कड़े थे। सेवामें विघ्न उपस्थित होते देखकर वह चिन्तित हो उठी।

'तप ही भगवान्‌की पूजा है, तपोबलसे बड़ी-बड़ी सिद्धियाँ मिलती हैं।' उसने वसिष्ठके इन शब्दोंका स्मरण किया और जब सारा ईंधन जल गया, तब अपने शरीरको आगमें लगा देनेका निश्चय किया। उसे भय था कि कहीं वसिष्ठ शाप दे दें और आराध्य इन्द्र न मिल पायें।

श्रुतावतीने आगमें पैर डाल दिये, पर [illegible] ऐसा लगा कि मानो वह [illegible] रही है। उद्देश्यकी सिद्धिके लिये तन मन [illegible]।

× × × ×

'देवि! मैं प्रसन्न हूँ, मैं तुम्हारी [illegible] रहा था।' एक दिन पुरुषने [illegible] किया। उनके कानमें दिव्य कुण्डल [illegible] दिव्य था, उत्तरीय समीरके मन्द-मन्द [illegible]।

'अभिवादन स्वीकार कीजिये।' [illegible] साँस ली।

'मैंने वसिष्ठका रूप धारणकर तुम्हें [illegible] फसनेका दुस्साहस किया था, [illegible] हूँ। मैं इन्द्र हूँ, श्रुतावती! इस शरीरको छोड़कर तुम मेरे [illegible] रूपमें निवास करोगी।' श्रुतावती [illegible]।

—रा० श्री० ([illegible] ४८)

विचित्र न्याय

कहते हैं कि प्राचीन रोमनिवासियोंके न्यायालयमें न्यायके स्थानपर एक ऐसी स्त्रीकी प्रतिमा बनी रहती थी, जिसकी आँखोंके ऊपर तो कपड़ेकी पट्टी बँधी रहती थी और हाथमें तराजू होता था। इसका अर्थ था कि यदि उसके सामने उसका पिता, पुत्र या पति भी आ जाय तो उसके माप-तौलमें वह न्यूनाधिक कुछ भी न कर सकेगी। इसी तरह न्यायाधीशको भी वहाँ अपने पुत्र, मित्र, शत्रु और मध्यस्थ—सभीको एक प्रकारका उचित न्याय वितरण करना पड़ेगा। (देखिये Youths Noble Path, by F. J. Gould pp 226)

अन्यान्य देशोंमें यह चाहे जैसा भी रहा हो, पर भारतके प्राचीन इतिहासमें ऐसे न्यायोंकी कमी न थी। राजा दिष्टके पुत्र नाभागने एक वैश्य-कन्यासे शादी कर ली थी। वैश्यने राजासे निवेदन किया कि 'आपके पुत्रने बलपूर्वक मेरी कन्याका अपहरण कर लिया है। आप यथोचित न्याय करें।' राजाने देखा कि उसका पुत्र विद्रोही [illegible] है तो वह एक छोटी-सी टुकड़ी लेकर उसे पकड़ने [illegible]। युद्ध [illegible]। युद्धमें ऋषियोंने राजासे आकर कहा—[illegible] पुत्र वैश्य हो गया; क्योंकि यदि कोई उच्च [illegible] अपने वर्णकी कन्यासे विवाह किये बिना निम्न [illegible] विवाह कर लेता है तो वह उसी वर्णका हो जाता है, [illegible] कन्या होती है। अतएव अब [illegible] वैश्यसे युद्ध न्यायोचित नहीं है।' [illegible] युद्ध बंद हो [illegible]।

अब थोड़ी देरमें नाभाग [illegible] पास उपस्थित हुआ और बोला—[illegible] आपकी वैश्य जातिकी एक प्रजा हूँ और [illegible] प्रदान करें।' तबसे नाभागने [illegible] आदि वैश्योचित धर्म-कर्मोंको ही [illegible]। —[illegible]

([illegible])

विचित्र सहानुभूति

कोसलका राजा ब्रह्मदत्त प्रायः आखेटमें ही रहता था। जब वह शिकारमें निकलता था, तब उसके पीछे-पीछे उसकी बड़ी भारी सेना तथा बहुत-सी प्रजा भी जाती। इस तरह बहुत-से वन्य जन्तुओं एवं मृग, पक्षियोंका भारी संहार प्रतिदिन होता ही रहता था।

उन्हीं दिनों [illegible] ([illegible]) [illegible] [illegible] बड़ा [illegible] हुआ। [illegible] एक [illegible]। [illegible]

[illegible] । [illegible] हो गया, [illegible] बहुत कुछ [illegible] । [illegible] राजाने भी [illegible] कर लिया ।

[illegible] पर उनकी [illegible] कर दिया । [illegible] हुआ कि [illegible] ।

[illegible] बोला—'राजन् ! तुम मुझे मारते क्यों नहीं ?' [illegible] कहा—'मृग ! तुममें बहुतसे दिव्य गुण हैं, तुम [illegible] हो, मैं तुम्हें नहीं मार सकता । मैं तुम्हें पूर्ण आयुके [illegible] प्रदान करता हूँ ।'

'राजन् ! क्या तुम अन्य मृगोंको इसी प्रकार अभय प्रदान पूर्णायु उपभोगका सौभाग्य नहीं प्रदान कर सकते ?' मृग बोला ।

'मैं अवश्य कर दूँगा'—राजाने कहा ।

'और क्या तुम इन हवामें उड़नेवाले पक्षियों तथा जलमें रहनेवाली मछलियोंको भी इस प्रकारका आश्वासन नहीं दे सकते ?' मृगने पूछा ।

'अवश्यमेव !' राजा बोला ।

तदनन्तर उसने दूतोंद्वारा सारे राज्यमें घोषणा करा दी कि अबसे सभी वन्य जन्तु, पक्षी एवं जलचरोंको अभय-दान दिया जा रहा है । कोई भी व्यक्ति इनकी हिंसा न करे ।

प्राचीन जातक-कथाएँ बतलाती हैं कि गौतम बुद्धके पूर्वमें सौ अवतार हुए थे । मृगदावका यह नन्दीय मृग भी उन्हींमेंसे एक है ।—जा० श०

(जातक भाग ३, कथा ३८५, फ्रांसिस और नेल्के अंग्रेजी अनुवादसे)

सदुपदेश

[illegible] राजा सर्वमित्रके शासनकालमें महात्मा बुद्ध [illegible] थे । उन्होंने [illegible], उदारता, [illegible] और [illegible] प्राप्त कर लिया था । वे [illegible] रहकर भी कभी ऐश्वर्य और विषय-[illegible] न हो सके । [illegible] दिनमें ही [illegible] । [illegible] देखकर प्रसन्न होते थे ।

× × × ×

[illegible] था । वह अपने [illegible] तथा राजकर्मचारियोंको भी [illegible] था । उसके [illegible] राज्यभरमें [illegible] । लोग दुराचारी हो गये, पापकी वृद्धि होने लगी । प्रजाका उत्पीड़न होने लगा । अन्याय-अत्याचार, [illegible] और [illegible] आदिसे लोगोंकी [illegible] हो गयी । राजा सर्वमित्रको इन बातोंकी [illegible] नहीं थी । वह तो [illegible] निमग्न था ।

एक समय राजा [illegible] अधिकारियोंके साथ बैठा हुआ था, [illegible] ही था कि लोग चौंक उठे ।

'[illegible] सुरा भरी हुई है । इसका सुगन्धित [illegible] है; इसे कौन खरीदेगा ?' एक ब्राह्मणने [illegible] की । उसका स्वर्ण वर्ण था, जटाएँ धूलिधूसरित और गुँथी हुई थीं, शरीर-पर वल्कल और मृगचर्मका परिधान था । उसके बायें हाथमें सुरा-पात्र था ।

'आप कोई बहुत बड़े मुनि हैं, आपके नेत्रोंसे चन्द्र-ज्योत्स्नाकी तरह दया उमड़ रही है । अद्भुत तेज है आपका !' राजाने उठकर चरणवन्दना की । उपस्थित अधिकारियोंने अभिवादन किया ।

'यदि तुम्हें इस लोक और परलोककी चिन्ता न हो, नरक-यातनाका भय न हो तो इसे खरीद लो ।' ब्राह्मणके शब्द थे ।

'महाराज ! आप तो विचित्र ढंगका सौदा कर रहे हैं; सब अपनी वस्तुकी प्रशंसा करते हैं, पर आप अपनी वस्तुके सारे दोष प्रकट कर रहे हैं । कितने सत्यवादी हैं ! आप धर्मपर अडिग हैं ।' सर्वमित्र आश्चर्यमें पड़ गया ।

'सर्वमित्र ! न तो इसमें पवित्र फूलोंका मधु है न गङ्गा-जल है, न दूध है और न दही है । इसमें विषमयी मदिरा है । जो पीता है, वह वशमें नहीं रहता । उसे भक्ष्याभक्ष्यका विचार नहीं रहता । राजपथपर लड़खड़ाकर गिर पड़ता है, अपनी की हुई उल्टीको आप खाता है, कुत्ते उसका मुख चाटते हैं । इसे खरीद लो; अच्छा अवसर है । इसका पानकर तुम सड़क-पर नंगे होकर नाचोगे; तुम्हें पत्नी और अपनी युवती कन्यामें

भेद नहीं दीख पड़ेगा । इसका पानकर स्त्री अपने धनी-से धनी पतिको भी खूँखसे बाँधकर पीटती है । इसका पानकर बड़े-बड़े धनवान् दरिद्र हो गये । राजाओंके राज्य मिट गये । यह अभिशापकी मूर्ति है, पापकी जननी है; यह ऐसे नरकमें ले जाती है, जिसमें रात-दिन अग्नि-ज्वाला धधकती रहती है ।' ब्राह्मण-ने समझाया ।

'भला, इसका पान ही कोई क्यों करेगा । आपने अपने सदुपदेशसे मेरी आँखें खोल दीं । आपने मुझे उस तरह शिक्षा दी है जिस तरह पिता पुत्रको, गुरु शिष्यको और मुनि दुखीको सन्मार्गपर ले जाते हैं । मैं [illegible] करता हूँ कि [illegible] मदिरा-पान नहीं करूँगा । [illegible] पाँच गाँव, सौ दासियाँ और [illegible] हूँ ।' सर्वमित्र ब्राह्मणके [illegible] ।

'सर्वमित्र ! मुझे [illegible] मेरे पास तो स्वर्गका वैभव है । [illegible] गया, इसीलिये ऐसा [illegible] बताये । मैं इन्द्र-पुरन्दर हूँ ।' [illegible] रहस्य स्पष्ट किया । —रा० श्री० [illegible]

सहनशीलता

भगवान् बुद्ध किसी जन्ममें भैंसेकी योनिमें थे । जंगली भैंसा होनेपर भी बोधिसत्त्व अत्यन्त शान्त थे । उनके सीधेपनका लाभ उठाकर एक बंदर उन्हें बहुत तंग करता था । वह कभी उनकी पीठपर चढ़कर कूदता, कभी उनके सींग पकड़कर हिलाता और कभी पूँछ खींचता था । कभी-कभी तो उनकी आँखमें भी अँगुली डाल देता था । परंतु बोधिसत्त्व सदा शान्त ही रहते थे । यह देखकर देवताओंने कहा—'ओ शान्तमूर्ति ! इस दुष्ट बंदरको दण्ड देना चाहिये । इसने क्या तुमको खरीद लिया है या तुम इससे डरते हो ।'

बोधिसत्त्व बोले—'देवगण ! न इस बंदरने मुझे [illegible] है न मैं इससे डरता हूँ । इसकी दुष्टता भी मैं [illegible] हूँ और केवल सिरके एक झटकेसे अपने [illegible] फाड़ डालने जितना बल भी मुझमें है । परंतु मैं इसके अपराध क्षमा करता हूँ । अपनेसे बलवानोंके [illegible] सभी विवश होकर सहन करते हैं । [illegible] है जब अपनेसे निर्बलके अपराध सहन किये जायँ ।'

—[illegible]

धनका सदुपयोग

भगवान् बुद्धके पहले जन्मकी बात है । उस समय वे बोधिसत्त्व अवस्थामें थे । उन्होंने एक समृद्ध घरमें जन्म लिया था । अपनी दानशीलता, उदारता और दरिद्रों तथा भिखारियोंकी अहैतुकी सेवाके लिये वे बहुत प्रसिद्ध थे । वे किसीको दुखी और दरिद्र नहीं देख सकते थे; अपने पास जो कुछ भी था, उसीसे कंगालोंकी सेवा करते थे । उनके लिये यह बात असह्य थी कि कोई दरवाजेपर आकर लौट जाय; इसलिये लोगोंमें बोधिसत्त्व अविरद्ध नामसे प्रसिद्ध थे ।

एक दिन प्रातःकाल शय्यासे उठनेपर उन्होंने देखा कि घरकी समस्त वस्तुएँ चोरी चली गयी हैं; नाममात्रको भी चोरने कुछ नहीं छोड़ा है । धनमें उनकी आसक्ति—ममता तो थी नहीं, इसलिये चोरीसे वे सतप्त नहीं हो सके, पर बार-बार यह सोचकर दुखी होने लगे कि जिस घरसे आजतक कोई भी व्यक्ति खाली हाथ नहीं गया, उसीसे भिक्षु और कंगाल लोग भूखे-प्यासे और अतृप्त चले जायँगे । अविरद्ध इस प्रकार सोच ही रहे थे कि उनके [illegible] गया, वे हर्षसे नाच उठे । चोरोंने [illegible] और रस्सीकी गेंडुल छोड़ दी थी । [illegible] सेवाका साधन मिल गया । अब मेरे [illegible] लौटने पायेगा । निर्धनतामें भी [illegible] सम्पादनका उपाय सोच लिया ।

वे दिन भर उसी [illegible] होनेपर [illegible] गेंडुल [illegible] देखा करते थे । [illegible] भिक्षुओं और [illegible] कभी तो [illegible] आवश्यकता पूरी कर देते थे ।

[illegible]

[illegible]

स्त्रीकी यह दशा सर्वज्ञ प्रभुकी दृष्टिसे छिपी नहीं थी। उनके मुँहसे निकल पड़ा—'उसके आनेसे न उसे हर्ष होता है और न उसके जानेसे विषाद। [illegible] है ब्राह्मण सङ्घामनी।'—वि० दु०

अग्नि-परीक्षा

'कौन जाग रहा है ?' शकारि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यकी नींद टूट गयी। राजभवनमें दीप टिम-टिमा रहा था; हसन्तिका (अँगीठी) जल रही थी। हेमन्तकालीन शीत अपने पूर्ण यौवनपर था। रात आधीसे अधिक बीत चुकी थी। प्रहरी सो गये थे।

'आपका सेवक।' मातृगुप्तने शयनगृहमें प्रवेशकर दीप-बत्ती प्रज्वलित कर दी। वह शीतसे काँप रहा था। देहपर एक मैला-कुचैला वस्त्र था, ओठ फट गये थे ठंडसे। मुखपर चिन्ताके बादल थे। नींदसे परित्यक्त था वह अभागा और सत्पात्रको दी गयी पृथ्वीके समान रात समाप्त होना जानती ही नहीं थी। शयनगृहका पट बंदकर वह पहरेपर आ गया।

सम्राट्का हृदय द्रवित हो गया। मातृगुप्त उच्च कोटिका कवि था। वह अनेक राजाओं और सामन्तोंद्वारा सम्मानित था, पर अपनी योग्यताका प्रमाणपत्र वह कान्यकुब्जेश्वर चन्द्रगुप्तसे पाना चाहता था। महाराजने सदा उसके प्रति उपेक्षा दिखायी, पर वह विचलित नहीं हो सका; वह जानता था कि सम्राट् उच्च कोटिके साहित्य-मर्मज्ञ और व्यवहार-कुशल शासक हैं, वे किसी-न-किसी दिन मेरी सेवासे प्रसन्न होकर मुझे पुरस्कृत अवश्य करेंगे। वह इस प्रकार सोच ही रहा था कि महाराजने शयनकक्षसे बाहर आकर एक भोजपत्र दिया।

'यह पत्र नहीं जायेगा, [illegible]। इसे [illegible] मन्त्रिमण्डल ही पढ़ सकता है।' सम्राट्ने [illegible] आदेश दिया।

× × ×

काश्मीरराज्यकी सीमामें प्रवेश करते ही [illegible] कि मन्त्रिमण्डल भावुक घटोंसे [illegible] उपस्थित है। वह [illegible] होकर [illegible] गया और राजमुद्राङ्कित पत्र [illegible]।

'क्या मातृगुप्त आप ही हैं ?' [illegible] नाम सुनकर कवि आश्चर्यचकित हो गया। [illegible] कहा कि सम्राट्का एक दूत [illegible] है, हम लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। [illegible] ओर संकेत किया।

'[illegible], काश्मीरका [illegible] है। वे आपकी सच्ची सेवा और [illegible] हैं।' मन्त्रियोंने वैदिक [illegible] मातृगुप्तका राज्याभिषेक किया।

मातृगुप्तने सम्राट् विक्रमादित्यके [illegible] जिसका आशय यह था—[illegible] आपसे दानकी इच्छा प्रकट [illegible] हैं। शब्दरहित मेघके द्वारा [illegible] प्रसन्नता फलसे ही मिली [illegible] है।' [illegible] परीक्षामें सफलता प्राप्त की।—[illegible]

सच्ची माँग

'सिन्धुका वेग बढ़ रहा है, महाराज ! सेनाका पार उतरना कठिन ही है।' सेनापतिने काश्मीरनरेश ललितादित्यका अभिवादन किया।

'पर हमे पञ्चनद देशमे अपना दल बढ़ाना ही है। काश्मीरके धर्मसिंहासनका व्रत पूरा ही करना है कि आसेतु-हिमाचल प्रदेशमें धर्मकी भावना जाग्रत् हो, जनता सत्यका पालन करे और सर्वत्र न्यायकी विजय हो। इसी कार्यके लिये हम काश्मीरसे इतनी दूर [illegible] शिविरसे बाहर [illegible] [illegible] सम्मान प्रकट किया।

× × ×

[illegible]

'तुम निःशङ्क होकर मुझपर खड्गसे प्रहार करो । मेरे प्राण-दानसे असहाय वध्य और तुम्हारे बालक—दो प्राणियोंकी रक्षा हो जायगी । दोनोंकी प्राण-रक्षा मेरा धर्म है, कर्तव्य है ।' महाराज मेघवाहन चण्डिकाकी प्रतिमाके सामने नत हो गये । शबर-सेनापति काँपने लगा ।

'महाराज ! आपके द्वारा असंख्य प्राणियोंके प्राण सुरक्षित हैं । आप विशेष दयाके आवेशमें ही ऐसा कार्य करनेकी प्रेरणा दे रहे हैं । आप सोच लीजिये । आपका शरीर तो अनेक प्राणियोंका प्राण-दान करके भी सर्वथा रक्षणीय है, यह अमूल्य है; आप सर्वदेवमय भगवान्के अंश हैं, पृथ्वीपर उनके प्रतिनिधि हैं । राजालोग अपने प्राणोंकी रक्षाके लिये धन, धर्म, परिवार—किसीकी भी चिन्ता नहीं करते ।' शबर-सेनापतिने असहाय पुरुषके वधपर जोर दिया ।

'शबर ! तुम अपनी दृष्टिसे ठीक ही कहते हो । जिस प्रकार मरुदेशवासी गङ्गाजलके निर्मल स्वाद और स्पर्शको नहीं जानते, उसी प्रकार तुम लोगोंने [illegible]-रूपी अमृतके स्वादका पता नहीं लगा पाया । मैं अपने नश्वर शरीरसे अमर पदकी खरीद कर रहा हूँ, तुम मुझपर कृपा करो । तुम यदि मेरा वध नहीं कर सकते तो मैं अपनी तलवारसे ही उसका सम्पादन करता हूँ । मेरे आत्मदानसे भगवती प्रसन्न होंगी । दोनों प्राणियोंकी रक्षा होगी ।' महाराज आत्मबलिदान करने ही जा रहे थे कि उन्होंने अपने सामने एक दिव्य पुरुषको देखा । शबर-सेनापति, चण्डिकाकी मूर्ति, असहाय पुरुष और वह बालक—सब-के-सब अदृश्य हो गये ।

'मैं आपके अहिंसा-व्रत और प्राणदानकी परीक्षा ले रहा था । आप धन्य हैं ।' धर्मदेव अपना परिचय देकर अन्तर्धान हो गये ।—रा० श्री० ([illegible])

'जाको राखै साइयाँ, मारि सकै ना कोय'

गौडेश्वर वत्सराजका मन राजा मुञ्जके आदेश-पालन और स्वकर्तव्य-निर्णयके बीच झूल रहा था । वह जानता था कि यदि राजा मुञ्ज भोजका खूनसे लथपथ सिर न देखेगा तो मुझे जीवित नहीं छोड़ेगा । वह इसी उधेड़-बुनमें था कि सूर्यास्त हो गया । पश्चिमकी लालिमामें उसकी नंगी तलवार चमक उठी, मानो वह भोजके खूनकी प्यासी हो ।

भुवनेश्वरी-वनके मध्यमें वत्सराजने रथ रोक दिया और भोजको राजादेश सुनाया कि मुञ्ज राजसिंहासनका पूरा अधिकार-भोग चाहता है; उसने तुम्हारे वधकी आज्ञा दी है ।

'तुमको राजाकी आज्ञाका पालन करना चाहिये । भगवान् श्रीरामने वनवासका क्लेश सहा; समस्त यादवकुलका निधन हो गया । नलको राज्यसे च्युत होना पड़ा । सब कालके अधीन है ।' कुमार भोजने अपने खूनसे वटपत्रपर एक श्लोक लिखा मुञ्जके लिये ।

वनकी नीरवतामें काली रात भयानक हो उठी । वत्सराजके हाथमें लपलपाती-सी नंगी तलवार ऐसी लगती थी मानो निरपराधीके खूनसे नहानेमें मृत्यु सहम रही हो । वत्सराजके हाथसे तलवार गिर पड़ी, वह सिहर उठा ।

'मैं भी मनुष्य हूँ, मेरा हृदय भी सुख-दुःखका अनुभव करता है ।' उसने कुमारको अपनी गोदमें उठा लिया । उसके नेत्रोंसे अश्रु-कण झरने लगे । अँधेरा बढ़ता गया ।

× × × ×

'उसने मरते समय कुछ कहा भी था ?' [illegible] दीपके मन्द प्रकाशमें खूनसे लथपथ सिर देखकर [illegible] मुञ्ज । 'हाँ, महाराज !' वत्सराजने पत्र हाथमें रख दिया । 'उसने ठीक ही लिखा है—

> मान्धाता च महीपतिः कृतयुगालङ्कारभूतो गतः
> सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः ।
> अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते
> नैकेनापि समं गता वसुमती मुञ्ज त्वया यास्यति ॥

कितना सच्चा महाकवि था कुमार भोज । मैं स्वर्गीय महाराज सिन्धुको क्या उत्तर दूँगा, जिन्होंने मरते समय अल्पवयस्क कुमारको मेरी गोदमें रख दिया था । [illegible] विधवा [illegible]की ममता—[illegible] 'मुञ्ज रोने लगा ।

राजप्रासादमें हाहाकार मच गया । [illegible]

[illegible]

[illegible] वत्सराजने उसके [illegible] [illegible]

[illegible] ।

× × × ×

[illegible] निश्चय किया है। मेरे प्राण तुच्छ ही धर्मोके लिये इस शरीरमें हैं। आप कुमार-को जीवन-दान दीजिये।' मुञ्जने खूनसे रँगा सिर कापालिकके हाथमें रख दिया। बुद्धिसागर कापालिकके साथ तत्काल श्मशानमें गया।

× × × ×

दूसरे दिन सबेरे धारा नगरीमें प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी। 'कुमार भोजको कापालिकने प्राण-दान किया।' यही बात प्रत्येक व्यक्तिकी जीभपर थी। राजा मुञ्जने राजसिंहासन भोजको सौंप दिया तथा स्वयं तप करनेके लिये वनकी राह पकड़ी। —रा० श्री० (भोजप्रबन्ध)

गुणग्राहकता

[illegible] बैठे कुछ ही दिन हुए थे। [illegible] होकर [illegible] रहे थे। सूर्यकी [illegible] रही थी। [illegible] बढ़ा आ रहा था। सहसा [illegible] दिया। वे [illegible] उतर [illegible]। ब्राह्मणका नाम गोविन्द था। [illegible] था। महाराज [illegible] ब्राह्मणने दोनों नेत्र मूँद लिये। [illegible] पड़ गये।

[illegible] और न आशीर्वाद [illegible] दोनों नेत्र बंद कर लिये। [illegible] महाराज भोजने बड़े [illegible] की।

[illegible] भी दूसरोंको पीड़ा [illegible] उपकार कर सकते हैं, [illegible] कुछ [illegible] कृपणका [illegible]। ब्राह्मणकी विद्या, कृपणका धन और कायरका बाहुबल—ये तीनों पृथ्वीपर व्यर्थ हैं। राजाके पास सम्पत्ति भले न हो; पर यदि वह गुण-ग्राही है तो श्रेय है। दधीचि, शिबि और कर्ण आदि स्वर्ग जानेपर भी अपने दानके बलपर पृथ्वीपर अमर हैं; लोग उनका यश गाते हैं, उनकी उदारता और दानशीलताकी प्रशंसा करते हैं। महाराज! यह देह नश्वर है, अनित्य है; इसलिये कीर्ति ही उपार्जनीय है।' गोविन्दने महाराज भोजसे अत्यन्त खरा सत्य कहा।

'मैंने आपके वचनामृतसे परम तृप्ति पायी है। आपने अत्यन्त कोमल ढंगसे मेरे हितकी बात कही है। संसारमें प्रशंसा करनेवाले तो अनेक लोग मिलते हैं; पर आप-जैसे मनस्वी और हितैषी कम ही दीख पड़ते हैं। आपने मेरे हितकी बात कहकर मेरी आँखें खोल दी हैं। आपने मेरा बड़ा उपकार किया है; वास्तवमें ऐसी औषध नहीं मिलती है, जो हितकर और साथ-ही-साथ स्वादयुक्त भी हो। आपने मेरी दान-वृत्ति जगाकर मुझे नरकमें जानेसे बचा लिया।' राजा भोजने ब्राह्मणकी स्पष्टवादिता और सत्यनिष्ठाकी सराहना की तथा एक लाख रुपयेसे पुरस्कृत किया। उसके लिये राजप्रासादके दरवाजे सदाके लिये खोल दिये गये। —रा० श्री० (भोजप्रबन्ध)

धनी कौन ?

[illegible] मुके थे। [illegible] बिम्बसार [illegible] है।'

[illegible] कहा—कोसलराज प्रसेनजित् बड़ा है।'

'तुम्हें पता नहीं'! पहले भिक्षुने अपनी बातका समर्थन किया। 'महाराज श्रेणिय बिम्बसारके राज्यकोषकी तुलना कोसलराजसे कैसे हो सकती है।'

'प्रसेनजित्के वैभवसे महाराज सेनिय बिम्बसारकी तुलना नहीं।' दूसरे भिक्षुने चटसे उत्तर दिया 'और……'

'क्या बात हो रही है!' भगवान् आ निकले। दूसरे भिक्षुका मुँह खुला-का-खुला ही रह गया। प्रथम भिक्षु भी मौन था।

'महाराज सेनिय बिम्बसार और कोसलराज प्रसेनजित्में राज्य, धन एवं वैभवकी दृष्टिसे कौन बड़ा है! इसीपर चर्चा हो रही थी।' [illegible] भिक्षुने [illegible] अत्यन्त विनीत [illegible] कहा।

'भिक्षुओ!' प्रभु बोले—[illegible] चर्चा ही उचित नहीं। तुम्हें [illegible] चर्चा करो, अन्यथा मौन रहो।'

कुछ क्षणोंके अनन्तर [illegible] क्षयके दिव्य सुखकी तुलनामें [illegible] तुल्य हैं।' —शि० दु०

'युक्ताहारविहारस्य……योगो भवति दुःखहा।'

अपनी प्रियपत्नी यशोधराको, नवजातपुत्र राहुलको, स्नेहमूर्ति पिता महाराज शुद्धोदनको तथा वैभवसम्पन्न राज्यको ठुकराकर युवावस्थामें ही गौतम घरसे निकले थे। केवल तर्कपूर्ण बौद्धिक ज्ञान उन्हें कैसे संतुष्ट कर सकता था। उन्हें तो रोगपर, बुढ़ापेपर और मृत्युपर विजय पानी थी। उन्हें शाश्वत जीवन—अमरत्व अभीष्ट था। प्रख्यात विद्वानों, उद्भट शास्त्रज्ञोंके समीप वे गये; किंतु वहाँ उनका संतोष नहीं हुआ—हो नहीं सकता था। आश्रमोंसे, विद्वानोंसे निराश होकर वे गयाके समीप वनमें आये और तपस्या करने लगे।

जाड़ा, गरमी और वर्षामें भी गौतम वृक्षके नीचे नग्न अपनी वेदिकापर स्थिर बैठे रहे। उन्होंने सब प्रकारका आहार बंद कर दिया था। दीर्घकालीन तपस्याके कारण उनके शरीरका मांस और रक्त सूख गया। केवल हड्डियाँ, नसें और चमड़ा शेष रहा।

गौतमका धैर्य अविचल था। कष्ट क्या है, इसे वे अनुभव ही नहीं करते थे; किंतु उन्हें अपना अभीष्ट प्राप्त नहीं हो रहा था। तपस्यासे ज्ञान नहीं हुआ करता। उससे सिद्धियाँ मिलती हैं। एक [illegible] सिद्धियाँ बाधक हैं, [illegible] प्रलोभन हैं। [illegible] प्रलोभनोंपर विजय प्राप्त कर ली थी।

एक दिन जहाँ गौतम [illegible] समीपके मार्गसे कुछ [illegible] उत्सवमें भाग लेकर अपने घर [illegible] गाती, बाजे बजाती, नाचती, [illegible] थीं। वे जब गौतमकी तपोभूमिके [illegible] गीत गा रही थीं। उस गीतका भाव [illegible] तारोंको ढीला मत छोड़ो। ढीला [illegible] उत्पन्न करेंगे। परंतु उन्हें [illegible] जायँ।'

गौतमके कानोंमें यह संगीत [illegible] सहसा प्रकाश आ गया। [illegible] मार्ग उपयुक्त नहीं। [illegible] निद्रादि व्यवहार ही उपयुक्त हैं। [illegible] गया। उसी समय उन्होंने [illegible] दिया और नदीकी ओर चल पड़े।—[illegible]

अपनी खोज

सम्यक् सम्बोधि प्राप्त करनेके बाद भगवान् बुद्ध वाराणसी चले आये। मृगदाव ऋषिपत्तनमें पञ्चवर्गीय शिष्योंको सम्बुद्ध कर उन्होंने चारिका-विचरणके लिये उरुवेल वनमें प्रवेश किया और एक घने वृक्षकी छायामें पद्मासन लगाकर बैठ गये।

× × × ×

'वह इधर ही गयी होगी। कितनी नीच है वह!' किसीने अत्यन्त उद्वेगभरे स्वरमें चिन्ता प्रकट की।

'वह [illegible] अमूल्य थे [illegible]।' [illegible] संतोषको [illegible]।

'न उसके लिये [illegible] [illegible] प्रकट की।

वे उसको [illegible]

भगवान्ने आनुपूर्वी कथा—दान, शील, धर्म और वासनाक्षयपर प्रकाश डाला । उसे दुःखका कारण और उसके नाशका उपाय बताया । यशमें धर्मचक्षु उत्पन्न हुआ; निर्मल वैराग्य मिला उसे ।

× × ×

'मेरी पत्नी, यशकी पत्नी और समस्त परिजन निकल हैं, भन्ते !' यशके पिताने भगवान् बुद्धको प्रणाम किया । उनके सानिध्यमें सेठने धर्मचक्षु प्राप्त किया । वह उपासक बन गया ।

'तेरी माँ रोती-पीटती है । तेरी पत्नी मरणासन्न है । प्राणका सञ्चार करना चाहिये, तात !' सेठने यशका आलिङ्गन करना चाहा । यश एक क्षणके वैराग्यके परिणाम-स्वरूप निर्मल हो गया था, दोषमुक्त था ।

'अब यश कामोपभोगके योग्य नहीं है, [illegible]' [illegible] बुद्धने यशके पिताको [illegible] ।

× × ×

सेठके अनुरोधपर [illegible] बुद्ध उनीके घर भिक्षा लेने गये । [illegible] आसक्ति निष्फल हो गयी । वे [illegible] । [illegible] अनेक मित्र और परिजनोंने भी वैराग्यके [illegible] राज्यमें प्रवेश किया ।

वैराग्यका एक [illegible] ।
उसे [illegible] [illegible] उसने । भगवान् बुद्धने उसे प्रव्रज्या दी ।

'ब्रह्मचर्यका पालन करो । यह [illegible] । [illegible] दुःखका क्षय होता है ।' यशने [illegible] आजीवन पालन किया ।—रा० श्री० ([illegible])

संन्यासका मूल्य

'मैं अपने सारे सम्बन्ध, यौवन और धन आदिको त्यागकर संन्यास लूँगा । प्रव्रजित होना ही मेरे जीवनका लक्ष्य है ।' मगधदेशीय महातिष्य-ग्रामनिवासी कपिल ब्राह्मणके पुत्र पिप्पली माणवकका दृढ संकल्प था । उसकी माँने उसे वैवाहिक बन्धनमें बाँधनेकी बार-बार चेष्टा की, पर उसकी स्वीकृति न मिल सकी । माणवकने एक हजार निष्क (स्वर्ण-मुद्रा) की लागतकी एक स्वर्ण-प्रतिमा बनवाकर माँसे कहा—'यदि मेरी होनेवाली पत्नी इतनी ही रूपवती होगी तो मैं विवाह कर लूँगा । इस तरह उसने समय टालना चाहा; पर माँने प्रतिमाके साथ कन्याकी खोजके लिये आठ ब्राह्मण बाहर भेजे ।

ब्राह्मणोंने मद्रदेशमें जाकर एक अत्यन्त रूपवती कन्याका पता लगाया, कन्याके पिताने विवाह करना स्वीकार कर लिया । ब्राह्मणोंने माणवकके घर समाचार भेजा । वह चिन्तित हो उठा । उसने अपनी होनेवाली पत्नी भद्रा कापिलायनीको पत्र लिखा कि 'अपनी जाति, गोत्र और रूप-रंगके अनुसार गृहस्थ-धर्म स्वीकार करना चाहिये । मेरा प्रव्रजित होनेका विचार है ।' इसी आशयका पत्र भद्राने भी लिखा था । दोनोंके पत्र-वाहकोंकी बीचमें ही भेंट हो गयी; उन्होंने पत्र फाड़कर अनुकूल पत्र उपस्थित किये । सम्बन्ध हो गया; अपने पहलेके लिखे पत्रोंके अनुरूप दोनों एक-दूसरेसे खिंचे-खिंचे रहते थे । दैवयोगसे विवाह होनेके बाद दोनोंने एक दूसरेका [illegible] ।

कुछ दिनोंके बाद [illegible] कुटुम्बके लिये [illegible] हो गया । एक दिन [illegible] खेतके लिये [illegible] कौओंको कीड़े-मकोड़े [illegible] हमारी [illegible] है ।' इसी प्रकारका [illegible] । एक-दूसरेसे मिलनेपर [illegible] । [illegible] मिट्टीके नये पात्र मँगवाये गये । दोनोंने [illegible] काटे, प्रव्रजित होकर [illegible] निकल पड़े । [illegible] नयनोंमें अश्रु उमड़ पड़ते थे ।

'देवि ! [illegible] है । संसारके लोग [illegible] [illegible] का हृदय कठोर हो गया ।

'[illegible] बुद्धके [illegible] मा दी ।

दूसरा रास्ता पकड़ना ही चाहते थे कि महाश्रमणने चीवर-पात्र अपने हाथमें ले लिये। नागसमाल चले गये।

× 　　 × 　　 ×

श्रावस्तीमें प्रवेश करके गन्धकुटीके परिवेण (चौक) के बिछे आसनपर भगवान् बुद्ध बैठे ही थे कि नागसमाल आ पहुँचे। उनके सिरमें चोट थी, रास्तेमें चोरोंने पात्र-चीवर आदि छीन लिये थे। उन्होंने चरणवन्दना की और आज्ञा-उल्लङ्घन करनेपर पश्चात्ताप किया।

'मेरे लिये परिचारक नियत करनेकी आवश्यकता है। लोग मेरा साथ आधे रास्तेमें ही छोड़ दिया करते हैं, पात्र-चीवर रखकर चले जाते हैं।' तथागतके इस उद्गारसे उपस्थित भिक्षुसङ्घ दुखी हुआ।

'मैंने जन्म-जन्मान्तर आपके उपस्थानके लिये तप किया है, मुझे अवसर मिले।' आयुष्मान् सारिपुत्रका यह प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया।

'तुम जिस दिशामें चारिका करते हो, वह मुझसे अशून्य रहती है। तुम उपस्थानके योग्य नहीं हो।' तथागतने संकेत किया।

महामौद्गल्यायन आदि अस्सी महाश्रावकोंने उपस्थान-का अधिकार माँगा, पर तथागतने स्वीकृति नहीं दी।

'दशबल उपस्थानका अधिकार दे रहे हैं, माँग लो, आयुष्मन्।' कुछ लोगोंने स्थविर आनन्दको प्रोत्साहित किया।

'यदि माँगनेसे मिला तो अधिकार है ही नहीं, सेवाका अधिकार तो सहज ही मिला करता है। भगवान् दशबल मुझे देख ही रहे हैं, उचित समझेंगे तो [illegible]' स्थविर आनन्द मौन था।

'आनन्दको प्रोत्साहित करना ठीक नहीं है, [illegible] वह स्वयं ही मेरा उपस्थान करेगा।' [illegible]

'मेरे चार प्रतिरोध और चार [illegible] हैं।' [illegible] तथागतसे निवेदन किया कि भगवान् [illegible] मुझे न दें, पिण्ड (भिक्षा) न दें, [illegible] न दें, निमन्त्रणमें लेकर न जायँ।

'इनमें दोष क्या है, आनन्द!' [illegible]

'यदि आप इनको मुझे देंगे तो लोग [illegible] कि आनन्द अपने स्वार्थ-लाभके लिये [illegible] करता है।' उसने चार [illegible]। [illegible] आनन्दने कहा कि 'मेरी चार याचनाएँ ये हैं कि [illegible] स्वीकार किये निमन्त्रणमें जायँ, यदि दूसरे [illegible] कोई व्यक्ति दर्शनके लिये उपस्थित हो तो [illegible] मैं आपका दर्शन करा पाऊँ, किसी भी समय [illegible] आनेमें मेरे लिये रोक न रहे, आप मेरे परोक्षमें जो [illegible] करें, उसका आकर मुझे भी उपदेश कर दें।'

'यह सदाचारका पथ है, स्थविर! [illegible] अभिव्यञ्जन है, आनन्द! [illegible] अधिकारका यही उपाय है।' भगवान् [illegible] प्रशंसा की; उसकी समस्त माँगें स्वीकार [illegible] उपस्थानका सहज (स्वाभाविक) अधिकार [illegible]

—[illegible]

निर्वाण-पथ

'साधन और अनुष्ठान तीर्थोंमें ही शीघ्र सफल होते हैं और उनका अक्षय फल होता है। इसी विचारसे साधु बाहिय सुप्पारक तीर्थमें वास करने लगे थे।

बाहियका जीवन अत्यन्त सरल एवं सात्त्विक था। उनके मनमें किसी प्राणीके प्रति वैर-विरोध नहीं था। अपने साधनमें उनकी निष्ठा थी और उसमें वे सतत संलग्न थे। उनके तेजके साथ उनकी सम्मान-प्रतिष्ठा भी बढ़ने लगी थी।

समीपके ही नहीं, दूर-दूरके लोग उनके समीप आते और चरणोंमें सिर झुकाते। सभी उनकी पूजा और देवोचित आदर करते। चीवर, पिण्डपात, शयनासन और दवा-इसीसे उनको अनायास ही प्रचुर [illegible]

'संसारमें जो अर्हत् या अर्हत्-[illegible] हैं, उनमें एक मैं भी हूँ।' बाहियके मनमें एक दिन [illegible]

'बाहिय मेरा अत्यन्त हित [illegible]' [illegible]

'और [illegible] लिये [illegible] है [illegible] बुद्धिकी प्रशंसा [illegible] है, [illegible] चाहिये।'

'बाहिय! तुम अर्हत् नहीं हो [illegible] बाहियके [illegible] भी नहीं हो। अर्हत् या अर्हत्-[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

× × ×

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

× × × ×

बाहिय तेजीसे दौड़ पड़े थे। उनके पैरोंमें जैसे पंख लग आये थे। भगवान्के दर्शन बिना वे अधीर-से हो रहे थे। गाँवमें पहुँचकर उन्होंने भगवान्को देखा, भगवान् भिक्षाके लिये एक गृहस्थ परिवारकी देहरीपर खड़े थे। भगवान्‌का भुवनमोहन सौन्दर्य एवं उनकी आकृतिपर क्रीड़ा करती हुई दिव्य ज्योति देखकर बाहिय चकित हो गये। [illegible] संयमी, अत्यन्त शान्त एवं शमथ-दमथ*को प्राप्त प्रभुको देखकर बाहिय उनके चरणोंमें दण्डकी भाँति पड़ गये। अपने हाथोंमें उन्होंने भगवान्के पद-पद्मोंको पकड़ लिया और नेत्रोंसे प्रवाहित अनवरत वारिधाराओंसे वे बहुत देरतक उनका प्रक्षालन करते रहे।

'भन्ते!' कुछ देर बाद स्वस्थ होकर उन्होंने अत्यन्त श्रद्धापूरित नम्र वाणीमें निवेदन किया, 'भगवान् मुझे धर्मोपदेश करें, जिससे मुझे चिरकालिक अक्षय सुख-शान्तिकी प्राप्ति हो। सुगत कृपापूर्वक मुझे धर्मोपदेश करें।'

'बाहिय!' भगवान्ने अत्यन्त शान्तिपूर्वक कहा, 'मैं भिक्षाटनके लिये निकला हूँ। यह समय धर्मोपदेशके उपयुक्त नहीं।'

'भन्ते!' बाहियने तुरत निवेदन किया—'जीवन अत्यन्त अस्थिर है। पता नहीं अगले क्षण भगवान् या मैं ही रह सकूँगा या नहीं। अतएव भगवान् मुझे वह उपदेश करें, जिससे मुझे चिरकालिक अक्षय सुख-शान्ति उपलब्ध हो। भगवन् मुझे शीघ्र उपदेश करें।'

'बाहिय!' दूसरी बार भी भगवान्ने अत्यन्त शान्तिसे उत्तर दिया, 'मैं भिक्षार्थ गाँवमें हूँ। गृहस्थ परिवारकी देहरीपर खड़ा हो भिक्षापात्रमें भिक्षा लेनेकी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। धर्मोपदेशके लिये यह उचित समय नहीं।'

'भन्ते!' बाहियने तीसरी बार पुनः अनुरोध किया, 'जीवनका ठिकाना नहीं। आम्र-पल्लवकी नोकपर लटके जल-सीकरका ठिकाना है, पर जीवनके सम्बन्धमें यह भी निश्चय नहीं। अगले क्षण भगवान् या मैं ही रह पाऊँगा या नहीं, कुछ भी निश्चित नहीं। अतएव जिससे मुझे चिरकालिक अक्षय सुख-शान्तिकी उपलब्धि हो, इस भवार्णवसे मैं सदाके लिये मुक्ति प्राप्त कर लूँ, भगवान् मुझे वैसा ही उपदेश दें।'

'अच्छा, बाहिय!' भगवान् उसी अवस्थामें गृहस्थकी

---

* [illegible] प्रज्ञाविमुक्ति और चेतोविमुक्तिवाले उत्तम शम और दमको जो प्राप्त कर चुके हैं। (अट्ठकथा)

देहरीपर अपना रिक्त पात्र लिये अत्यन्त शान्त स्वरमें बोले, 'तुम्हें अभ्यास करना चाहिये, तुम्हें देखनेमें केवल देखना ही चाहिये, सुननेमें केवल सुनना ही चाहिये । सूँघने, चखने और स्पर्श करनेमें केवल सूँघना, चखना, स्पर्श ही करना चाहिये । जाननेमें केवल जानना ही चाहिये । बाहिय! यदि तुमने ऐसा सीख लिया अर्थात् देखकर, सूँघकर, चखकर, स्पर्शकर और जानकर उसमें लिप्त नहीं हो सके, आसक्ति तुम्हें स्पर्श नहीं कर सकी, तो तुम्हारे दुःखोंका अन्त हो जायगा । जागतिक आसक्ति ही जगत्में आबद्ध करनेवाली है एव इससे त्राण पाना ही निर्वाण है ।'

'भन्ते !' बाहिय पुनः भगवान्‌के चरणोंमें गिर पड़े । उन्होंने अनुभव किया, भगवान्‌के उपदेशमात्रसे उनका चित्त उपादान (प्रापञ्चिक जगत्‌की आसक्ति) से रहित तथा आश्रवोंसे मुक्त हो गया । वे बोले—'मैं आपका आजीवन ऋणी रहूँगा । भगवान्‌ने मुझे मुक्तिके मूल तत्त्वका साक्षात्कार करा दिया ।'

मधुर स्मितके साथ भगवान् भिक्षाटनके लिये आगे बढ़े । बाहिय उनकी ओर ललकभरे अपलक नेत्रोंसे तबतक देखते रहे, जबतक वे दृष्टिसे ओझल नहीं हो गये ।

× × × ×

'भन्ते !' एक भिक्षुने दौड़कर भिक्षाटनसे नगरके बाहर लौटते हुए भगवान्‌से कहा । वह हाँफ रहा था । आगे वह नहीं बोल पाया ।

'क्या बात है ?' भगवान्‌ने प्रश्न किया ।

'भन्ते !' कुछ स्थिर होकर उसने निवेदन किया, 'भगवान्‌के धर्मोपदेशके अनन्तर लौटते हुए बाहियको एक गायने अपने [illegible] । [illegible] ऐहिक जीवन [illegible] हो [illegible] । [illegible] पड़ा है ।'

भगवान् उठे और दौड़ पड़े । [illegible] देखकर एकत्र हुए भिक्षुओंसे कहा—'भिक्षुओ ! [illegible] एक सत्पुरुष ([illegible]) था । [illegible] बनाकर अग्निमें जला दो और [illegible] कर दो ।'

'जैसी आज्ञा !' भिक्षुओंने [illegible] शवके अन्तिम संस्कारमें लग गये ।

× × × ×

'भन्ते !' भगवान्‌के [illegible] भिक्षुओंमें एकने विनम्र निवेदन किया । [illegible] बाहियकी निर्जीव देह [illegible] हो [illegible] उनके भस्मोंपर स्तूप [illegible] ।'

कुछ क्षण [illegible] उसी भिक्षुने पुनः [illegible]—'भगवान्‌से [illegible] जानना चाहते हैं कि बाहियकी क्या गति होगी ।'

अत्यन्त शान्त एवं [illegible] उत्तर दिया, 'भिक्षुओ ! [illegible] कर लेता है, तब वह [illegible] है । बाहियने मेरे बताये धर्मोपदेशको [illegible] था, वह निर्वाणके [illegible] हो गया था ।'

भिक्षुओंकी [illegible] । [illegible] मौन हो गये । [illegible] करके प्रसन्नतासे [illegible] । —[illegible]

कोई घर भी मौतसे नहीं बचा

किसा गौतमीका प्यारा इकलौता पुत्र मर गया । उसको बहुत बड़ा शोक हुआ । वह पगली-सी हो गयी और पुत्रकी लाशको छातीसे चिपटाकर 'कोई दवा दो, कोई मेरे बच्चेको अच्छा कर दो' चिल्लाती हुई इधर-उधर दौड़ने लगी । लोगोंने बहुत समझाया, परंतु उसकी समझमें कुछ नहीं आया । उसकी बड़ी ही दयनीय स्थिति देखकर एक सज्जनने उसे भगवान् बुद्धके पास यह कहकर भेज दिया कि 'तुम सामनेके विहारमें भगवान्‌के पास जाकर दवा माँगो, वे निश्चय ही तुम्हारा दुःख मिटा देंगे ।'

किसा दौड़ी हुई गयी और [illegible] भगवान् बुद्धसे [illegible]

भगवान्‌ने कहा—[illegible] । [illegible] ।'

[illegible]

गयी। तनातनी बढ़ गयी। दोनों एक दूसरेके प्राणोंके शत्रु हो गये। द्वेषकी आग प्रज्वलित हो उठी।

'किस बातका कलह है, महाराजो !' भगवान् बुद्ध उस समय कपिलवस्तुमें ही रोहिणीके तटपर चारिका कर रहे थे। प्रातःकालका समय था। दोनों ओरके सैनिकोंने शस्त्र अलग रखकर तथागतकी वन्दना की। वे कलहका कारण नहीं बता सके।

'रोहिणीके पानीका झगड़ा है, भन्ते !' दोनों ओरके मजदूरोंने भगवान्‌के प्रश्नका सम्मिलित उत्तर दिया।

'उदकों (पानी) का क्या मूल्य है, महाराजो !' भगवान्‌ने दोनों ओरके सेनापतियों और सैनिकों तथा मजदूरोंसे प्रश्न किया।

'कुछ भी नहीं है, भन्ते। पानी बिना मूल्यके ही प्रत्येक स्थानपर आसानीसे मिल जाता है।' शाक्यों और कोलियोंको अपनी [illegible] हुआ। [illegible]

'क्षत्रियों (सैनिकों) का [illegible] है, महाराजो !' भगवान् तथागतके [illegible]

'क्षत्रियोंका मूल्य [illegible] नहीं [illegible] है नितान्त अनमोल है !' दोनों [illegible]

'अनमोल क्षत्रियोंका [illegible] क्या उचित है, महाराजो !' प्रश्न था।

'नहीं, भन्ते ! [illegible] प्राप्त हो गया।' उन्होंने [illegible]

'शत्रुओंमें अशत्रु होकर [illegible] सुख है। [illegible] अवैरी होकर रहना चाहिये।' भगवान् बुद्धने [illegible] वाणीसे लोगोंको आप्लावित किया।

समझौता हो गया शाक्यों और कोलियोंमें। [illegible]

[illegible]

सच्चे सुखका बोध

उसके केश और वस्त्र भीगे हुए थे। मुखपर बड़ी उदासी और मनमें अत्यन्त खिन्नता थी। उसके नेत्रोंमें जिज्ञासाका चित्र था और होठोंपर कोई अत्यन्त निगूढ़ प्रश्न था।

'तुम्हारी ऐसी असाधारण-सी स्थितिसे आश्चर्य होता है।' भगवान् बुद्धने मृगारमाता विशाखासे पूछा। वह अभिवादन करके उनके निकट बैठ गयी।

'इसमें आश्चर्यकी क्या बात है, भन्ते ! मेरे पौत्रका देहान्त हो गया है, इसलिये मृतके प्रति यह शोक-आचरण है।' विशाखाने भगवान्‌के चरणोंमें निवेदन किया, वह स्वस्थ दीख पड़ी।

'विशाखे ! श्रावस्तीमें इस समय जितने मनुष्य हैं, तुम उतने पुत्र-पौत्रकी इच्छा करती हो !' भगवान्‌के प्रश्नसे श्रावस्तीके पूर्वाराम विहारका कण-कण चकित हो उठा।

'हाँ, भन्ते !' विशाखाका उत्तर था।

'श्रावस्तीमें नित्य कितने मनुष्य मरते होंगे !' तथागतका दूसरा प्रश्न था।

'प्रतिदिन कम-से-कम दस मरते हैं। किसी किसी दिन तो संख्या एकतक ही सीमित रहती है। पर कभी नागा नहीं हो पाता।' विशाखा इसी प्रकारके प्रश्नोत्तरसे विस्मित थी।

'तो क्या किसी दिन [illegible] तुम रह सकती हो !' शाक्यमुनिका [illegible]

'नहीं, भन्ते ! [illegible] वस्त्रकी आवश्यकता है, [illegible] होगा।' विशाखाका [illegible]

'इसलिये यह स्पष्ट हो गया [illegible] अपने (सम्बन्धी) हैं, सौ दुःख होते हैं [illegible] प्रिय—अपना होता है, उसे [illegible] दुःख [illegible] जिसका एक भी प्रिय—अपना नहीं है, [illegible] कहीं भी दुःख नहीं है, वह [illegible] हो जाता है।' भगवान्‌ने [illegible]

'मैं भूलमें थी, भन्ते ! [illegible] विशाखाने [illegible]

[illegible]

[illegible]

'भगवान् बुद्धदेवकी जय !' नन्दके मुखसे स्वत: निकल गया। उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रु बहते ही जा रहे थे।

'बुद्धं शरणं गच्छामि।'

'धम्मं शरणं गच्छामि।'

'संघं शरणं गच्छामि।'

नन्द बार-बार उच्चारण करते। बोधिसत्त्वके चरणोंका ध्यान एवं उनके उपदेशका वे प्रतिक्षण मनन करते। 'जगत्की प्रत्येक प्रिय और मनोरम वस्तुका विछोह होगा। वे छूटेंगी ही। उनका नाश निश्चित है।' बोधिसत्त्वकी इस वाणीने उनके मनमें वैराग्य उत्पन्न कर दिया था। मुक्ति-प्राप्तिके लिये वे प्राणपणसे प्रयत्न कर रहे थे। उनकी प्रत्येक क्रिया मुक्तिके लिये ही हो रही थी।

किंतु जिस प्रकार सघन जलद-मालाके बीच सौदामनी कौंधकर क्षणार्द्धके लिये घनान्धकारको समाप्त कर देती है, सर्वत्र प्रकाश छा जाता है, उसी प्रकार नन्दके मस्तिष्कमें एक ऐसी स्मृति उदित हो जाती, जिसके कारण वे क्षणभरके लिये सहम जाते, उनका सारा प्रयत्न जैसे शिथिल हो जाता। मुक्तिके सम्पूर्ण प्रयत्नपर जैसे पानी फिर जाता।

'प्रिय ! शीघ्र लौटना।' नागिन-जैसे अपने कृष्ण केशोंको फैलाये चन्द्रमुखी शाक्यानी जनपद-कल्याणीने अत्यन्त करुण स्वरमें कहा था। उसकी चम्पकलता-सी कोमल काया काँप रही थी और कमल-सरीखे नेत्रोंसे आँसूकी गोल-गोल बड़ी बड़ी बूँदें लुढ़क रही थीं। नन्दने अपनी प्राणप्रियाके इस रूपको तिरछे नेत्रोंसे एक बार, केवल एक ही बार देखा था, पर उसकी वह करुणमूर्ति बरबस न चाहनेपर भी नन्दके हृदय-मन्दिरमें प्रवेश कर गयी थी—चुपकेसे नेत्रोंमें बस गयी थी।

पर नन्दने बोधिसत्त्वके तेजस्वी रूपका दर्शन कर लिया था, उनका अमृतमय उपदेश सुन लिया था। संसारकी असारता तथागतके शब्दोंमें अब भी उनके कानोंमें झङ्कृत हो रही थी, फिर वे किस प्रकार पीछे पग रखते। वे बढ़े—बढ़ते गये तथागतके चरणोंमें। जीवमात्रको मुक्तिका मार्ग बतानेके लिये जब भगवान्ने धरित्रीपर पग रक्खा था, तब नन्दको वे क्यों नहीं दीक्षित करते !

नन्द विशुद्ध अन्तर्मनसे ब्रह्मचर्यका पालन कर रहे थे। किंतु प्रातः-सायं-मध्याह्न या नीरव निशीथमें जब वे एकान्तमें 'बुद्धं शरणं गच्छामि'...की आवृत्ति करते होते, तब अचानक शाक्यानी जनपद-कल्याणी [illegible] जाती। उसकी बड़ी-बड़ी [illegible] उठते और उसी [illegible] देता—'प्रिय ! शीघ्र लौटना।'

नन्द आकुल हो जाते। [illegible] नहीं थी। [illegible] जायँगे, इसकी आशा [illegible] जा रही थी।

'आवुस !' [illegible] एक भिक्षुपर प्रकट कर दी। [illegible] रहा है। ब्रह्मचर्यका पालन [illegible] को त्यागकर पुनः गार्हस्थ्य [illegible] कर रहा हूँ।'

'सत्य कहते हो, नन्द !' भिक्षुने [illegible] और नन्दकी ओर देखने लगा।

'आवुस !' नन्दने [illegible] सत्य कहता हूँ। [illegible]

नन्द चकित थे। उन्होंने ऐसे [illegible] प्रासाद कभी नहीं देखे थे। [illegible] दीप्तिमय ऊँचे कलश देखकर [illegible] विस्तीर्ण पथ, उपवन और [illegible] रह जाती। नन्दने [illegible]

'यह देवलोक है।' [illegible]

बढ़ गये।

'भन्ते ! ऐसा [illegible] नन्दके आश्चर्यकी [illegible] जो कभी नहीं देखा [illegible] मिला और [illegible] तक नहीं दीख रहा [illegible] जनपद-कल्याणी [illegible] अप्सराओंसे [illegible] भी अलौकिक [illegible] कौन है ?' [illegible]

[illegible]

[illegible]

अम्बपाली अपने प्रासादकी ओर लौट रही थी। उसने देखा कि अनेक रथ नगरसे वनकी ओर आ रहे हैं। उनपर लिच्छवी युवक लाल-पीले-नीले हरे और श्वेत परिधानसे समलंकृत होकर तथागतका स्वागत करने जा रहे थे।

'इतनी प्रसन्नता क्यों है, अम्बपाली!' लिच्छवियोंने राजपथपर रथ रोक दिये।

'भद्रो! मुझे आत्मकल्याणका पथ मिल गया है। तथागतने कलके (भात) भोजनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया है। वे कल मेरे वनमें (पिण्ड-चार) भिक्षा ग्रहण करेंगे।' गणिकाने हृदयके समग्र भाव उँड़ेल दिये।

'ऐसा कदापि नहीं हो सकता। शास्ता हमारा निमन्त्रण स्वीकार करेंगे। हम बड़ी-से-बड़ी कीमत देकर भात खरीदना चाहते हैं, मिल सकेगा अम्बपाली!' युवकोंने उसका मन धनसे जीतना चाहा।

'नहीं, भद्रो। अब ऐसा नहीं हो सकता। धन तो मैंने जीवनभर कमाया; आत्मकल्याणका मूल्य धनसे नहीं लग सकता।' अम्बपाली स्वस्थ हो गयी।

रथ अपनी-अपनी [illegible] । [illegible]

लिच्छवियोंने भगवान् बुद्धका [illegible] । [illegible] पिण्डचारका निमन्त्रण दिया, [illegible] ।

× × × ×

'आज मैं कृतकृत्य हो गयी। भगवान् [illegible] मेरे हाथका परोसा भोजन [illegible] प्रपञ्चसे उद्धार कर दिया।' [illegible] भगवान् बुद्धके भोजनोपरान्त उनके आसनके निकट बैठकर [illegible] साँस ली।

'सम्यक् सम्बुद्धने मेरे [illegible] है; मैं इस आरामको भिक्षुसंघके हाथोंमें [illegible] हूँ।' [illegible]गतने अम्बपालीके इस निवेदनपर मौन [illegible] दी।

भगवान् बुद्धने उसको धार्मिक [illegible] । अम्बपाली धन्य हो गयी, पवित्र हो गयी। उसका [illegible] पुलकित था। उसका कल्याण हो गया।—[illegible]

(बुद्धचर्या)

दानकी मर्यादा

भगवान् गौतम बुद्ध श्रावस्तीमें विहार कर रहे थे। एक दिन विशेष उत्सव था। धर्मकथा श्रवणके लिये विशाल जन-समूह उनकी सेवामें उपस्थित था। विशाखा भी इस धर्म-परिषद्में सम्मिलित थी। भगवान्के सामने आनेके पहले विहारके दरवाजेपर ही उसने अपना महालता प्रसाधन (विशेष आभरण) उतारकर दासीको सौंप दिया था; तथागतके सम्मुख पहनकर जानेमें उसे बड़ा संकोच था।

धर्म-परिषद् समाप्त होनेपर अपनी सुप्रिया नामकी दासीके साथ विहारमें ही घूमती रही। दासी आभरण भूल गयी।

'विशाखाका महालता-प्रसाधन छूट गया है, भन्ते!' स्थविर आनन्दने तथागतका आदेश माँगा। परिषद् समाप्त होनेपर भूली वस्तुओंको आनन्द ही सम्हाला करते थे। शास्ताने आभरणको एक ओर रखनेका आदेश दिया।

'आर्य! मेरी स्वामिनीके पहनने योग्य यह अलङ्कार नहीं रह गया है। आपके हाथसे छू गयी वस्तुको वे विहारकी सम्पत्ति मानती हैं।' सुप्रियाने विशाखाके उदार दानकी प्रशंसा की। वह विहारके दरवाजेपर लौट गयी; विशाखा रथ रोककर उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। स्थविर आनन्द दासीके कथनसे विस्मित थे। वे विशाखाकी त्यागमयी वृत्ति और विशेष दानशीलतासे प्रसन्न थे।

विशाखाने सोचा कि [illegible] महाभरणको विशेष चिन्ता होगी। [illegible] दूसरी तरहसे भी सदुपयोग हो सकता है। उसने [illegible] लौटा दिया।

× × ×

दूसरे दिन विहारके दरवाजेपर [illegible] रथ आ पहुँचा। विशाखा उतर पड़ी। [illegible] अभिवादन किया, बैठ गयी।

'भन्ते, मैंने नगरके सुनारोंको [illegible] मूल्य नौ करोड़ उन लोगोंने ([illegible]) [illegible] और एक लाख बनवानेका मूल्य [illegible] । [illegible] लाख आपकी सेवामें उपस्थित है।' [illegible]

'तुम्हारे दानकी मर्यादा [illegible] है। [illegible] संघके लिये [illegible] विशाखाको [illegible]

भगवान् बुद्धकी [illegible] खरीदी और [illegible] निर्माण [illegible] । [illegible] दानकी मर्यादा [illegible]

'ऐसा ही सही !' नगरसेठको तो क्रोध चढ़ा था। वे पुत्र-वधूको निकाल देना चाहते थे। उन्होंने आठ प्रतिष्ठित व्यक्तियोंको बुलवाया।

विशाखाने सब लोगोंके आ जानेपर कहा—'मनुष्यको अपने पूर्वजन्मके पुण्योंके फलसे ही सम्पत्ति मिलती है। मेरे श्वसुरको जो [illegible] पुण्योंका फल है। इन्होंने [illegible] दिया है, इसीसे मैंने [illegible]

[illegible] पञ्च बने पुरुषोंसे [illegible] लज्जित होकर पुत्रवधूसे [illegible] —सु० [illegible]

चमत्कार नहीं, सदाचार चाहिये

गौतम बुद्धके समयमें एक पुरुषने एक बहुमूल्य चन्दन-का एक रत्नजटित शराव (बड़ा प्याला) ऊँचे खंभेपर टाँग दिया और उसके नीचे यह लिख दिया 'जो कोई साधक, सिद्ध या योगी इस शरावको बिना किसी सीढ़ी या अङ्कुश आदिके, एकमात्र चमत्कारमय मन्त्र या यौगिक शक्तिसे उतार लेगा, मैं उसकी सारी इच्छा पूर्ण करूँगा।' उसने इसकी देख-रेखके लिये वहाँ कड़ा पहरा भी नियुक्त कर दिया।

कुछ ही समयके बाद कश्यप नामका एक बौद्ध भिक्षु वहाँ पहुँचा और केवल उधर हाथ बढ़ाकर उस शरावको उतार लिया। पहरेके लोग आश्चर्यचकित नेत्रोंसे देखते ही रह गये और कश्यप उस शरावको लेकर बौद्ध-विहारमें चला गया।

बात-की-बातमें एक भीड़ एकत्रित हो गयी। यह भीड़ भगवान् बुद्धके पास पहुँची। सबने प्रार्थना की—'भगवन्! आप निःसंदेह महान् हैं; क्योंकि कश्यपने, जो आपके अनुयायियोंमेंसे एक है, [illegible] पर टँगा था, केवल ऊपर हाथ उठाकर [illegible] उसे लेकर वे विहारमें चले गये।'

भगवान्‌का इसे सुनना था कि वे [illegible] सीधे चले और पहुँचे उस विहारमें [illegible] उन्होंने झट उस रत्नजटित शरावको [illegible] अपने शिष्योंको सम्बोधित करते हुए कहा—[illegible] तुमलोगोंको इन चमत्कारोंका [illegible] बार-बार मना करता हूँ। यदि तुम्हें इन [illegible] आकर्षण और अन्यान्य [illegible] प्रलोभन ही इष्ट है तो मैं [illegible] हूँ कि अद्यावधि तुमलोगोंने [illegible] नहीं प्राप्त की। यदि तुम [illegible] चमत्कारोंसे बचकर केवल [illegible]।'

—[illegible]

(Caru's Gospel of [illegible])

धर्मविजय

'भगवती स्वर्णलेखा और गोदावरी सरिताके मध्यदेश—कलिङ्गकी प्रजाने विद्रोह कर दिया है, महाराज! यदि यह विद्रोह पूर्णरूपसे दबा नहीं दिया जायगा तो भरतखण्ड अराजकता और अशान्तिका शिकार हो जायगा।' प्रधानामात्य राधागुप्तने मगधपति अशोकका ध्यान आकृष्ट किया; राजसभा-में सन्नाटा छा गया।

'पाटलिपुत्रका राजतन्त्र साम्राज्यकी प्रत्येक घटनासे परिचित है। इस विद्रोहको दबानेका उपाय है युद्ध। पूर्वीय महासागरकी उत्तुङ्ग तरङ्गें हमारी रणभेरीसे प्रकम्पित हो जायँगी। सागरका नीला पानी शत्रुके रक्तसे लाल हो जायगा।' अशोककी भृकुटी तन गयी। सम्राट्ने आक्रमणका आदेश दिया। उन्होंने सैन्य-सञ्चालनका भार स्वयं सम्हाला। कलिङ्ग [illegible]

× × ×

[illegible]

[illegible]

अर्जुनका अभिमान-भङ्ग

नारदका अभिमान-भङ्ग

भौंहोंके इशारेसे उन्हें कमण्डलुकी ओर निर्देश किया। हनुमान्जीने चुपचाप जाकर कमण्डलुमें देखा तो ठीक उसी प्रकारकी रामनामाङ्कित हजारों मुद्रिकायें दिखलायी पड़ीं। अब ये बहुत घबराये। उन्होंने पूछा, 'ये सब मुद्रिकाएँ आपको कहाँसे मिलीं तथा इनमें मेरी मुद्रिका कौन-सी है?'

मुनिने उत्तर दिया कि जब-जब श्रीरामावतार होता है और सीता-हरणके पश्चात् हनुमान्जी पता लगाकर लौटते हैं, तब शोध-मुद्रिका यहीं छोड़ जाते हैं। वे ही सब मुद्रिकाएँ इसमें पड़ी हैं।' अब तो हनुमान्जीका गर्व गल गया। उन्होंने पूछा—'मुने! कितने राघव यहाँ आये हैं?' मुनिने कहा, 'यह तो मुद्रिकाओंकी गणनासे ही पता चल सकता है।' पर हनुमान्जीने देखा तो उन मुद्रिकाओंका कोई अन्त नहीं था। उन्होंने सोचा, 'भला मुझ-जैसे कितने लोगोंने ऐसे कार्य कर डाले हैं, [illegible] असत्य कर रहा है।' और फिर [illegible] प्रभुने कहा—[illegible] ही यह कौतुक [illegible] [illegible] हो रहा है।'

अब [illegible] सर्वथा नष्ट हो गया। [illegible] किया और वहीं [illegible] फिर [illegible] रहे।

([illegible])

भीमसेनका गर्व-भङ्ग

भीमसेनको अपनी शक्तिका बड़ा गर्व था। एक बार वनवास-कालमें जब ये लोग गन्धमादन पर्वतपर रह रहे थे, तब द्रौपदीको एक सहस्रदल-कमल वायुकोणसे उड़ता आता दीखा। उसे उसने ले लिया और भीमसेनसे उसी प्रकारका एक और कमल लानेको कहा। भीमसेन वायुकोणकी ओर चल पड़े। चलते समय भीषण गर्जना करना उनका स्वभाव ही था। उनके इस भीषण शब्दसे बाघ अपनी गुफाओंको छोड़कर भागने लगे। जंगली जीव जहाँ-तहाँ छिपने लगे, पक्षी भयभीत होकर उड़ने लगे और मृगोंके दल घबराकर चौकड़ी भरने लगे। भीमसेनकी गर्जनासे सारी दिशाएँ गूँज उठीं। वे बराबर आगे बढ़ते जा रहे थे। आगे जानेपर गन्धमादनकी चोटीपर उन्हें एक विशाल केलेका वन मिला। महाबली भीम नृसिंहके समान गर्जना करते हुए उसके भीतर घुस गये।

इधर इसी वनमें महावीर हनुमान्जी रहते थे। उन्हें अपने छोटे भाई भीमसेनके उधर आनेका पता लग गया। उन्होंने सोचा कि अब आगे स्वर्गके मार्गमें जाना भीमके लिये भयकारक होगा। यह सोचकर वे भीमसेनके रास्तेमें लेट गये। अब भीमसेन उनके पास पहुँचे और भीषण सिंहनाद किया। भीमसेनकी उस गर्जनासे वनके जीव-जन्तुओं और पक्षियोंको बड़ा त्रास हुआ। हनुमान्जीने भी अपनी आँखें खोलीं और उपेक्षापूर्वक उनकी ओर देखते हुए कहा—'भैया! मैं तो रोगी हूँ, यहाँ आनन्दसे सो रहा था; तुमने आकर क्यों जगा दिया? समझदार व्यक्तिको जीवोंपर दया करनी चाहिये। यहाँसे [illegible] अगम्य है। [illegible] लौट जाओ। [illegible] जाते हो।'

भीमसेनने कहा—[illegible] नहीं पूछ रहा हूँ। तुम जरा उठकर [illegible] ने कहा, 'मैं रोगसे पीड़ित हूँ; [illegible] चले जाओ।' भीमसेन बोले—[illegible] देखते हैं, किसीको लाँघकर [illegible] जाता।' हनुमान्जीने कहा, [illegible] हो और निकल जाओ।' [illegible] भीमसेनने [illegible] कर बड़े जोरसे खींची। [illegible] जोरसे भरकर उन्होंने दोनों [illegible] आरम्भ किया। [illegible] हुई। जब [illegible] मुँह लजासे [illegible] नहीं है। [illegible] हनुमान्जीकी [illegible] [illegible] ([illegible])

अब आचार्यने हड्डियाँ दिखायीं। धर्मपाल बोला—'महाराज! ये हड्डियाँ तो बकरे-कुत्तेकी होंगी। हमारे यहाँ तो ऐसा होता नहीं।' इतना कहकर वह फिर खिलखिलाकर हँस पड़ा।

अन्तमें आचार्यने अपने कपटका भेद खोला और उससे युवावस्थामें किसीके न मरनेका कारण पूछने लगे। धर्मपालने कहा—'महाराज! हम धर्मका आचरण करते हैं, पापकर्मोंसे दूर रहते हैं, सत्य बोलते हैं, असत्यसे दूर रहते हैं। सत्सङ्ग करते हैं, दुर्जनसे दूर रहते हैं। दान देते समय मीठे वच बोलते हैं। श्रमण, ब्राह्मण, प्रवासी, याचक, दरिद्र—इन सबों को अन्न-जलसे संतुष्ट रखते हैं। हमारे यहाँके पुरुष पत्नीव्र और स्त्रियाँ पतिव्रतका पालन करती हैं। इसी कारण ध धर्मचारीकी रक्षा करता है और हमलोग अल्पावस्थामें क भी मौतके मुँहमें नहीं जाते। —जा० श०

(जातक १०१९)

मैं दलदलमें नहीं गिरूँगा

अभिरूप कपिल कौशाम्बीके राजपुरोहितका पुत्र था और आचार्य इन्द्रदत्तके पास अध्ययन करने श्रावस्ती आया था। आचार्यने उसके भोजनकी व्यवस्था नगरसेठके यहाँ कर दी। किंतु यहाँ अभिरूप कपिल भोजन परोसनेवाली सेविकाके रूपपर मुग्ध हो गया। उस सेविकाने वसन्तोत्सव पास आनेपर अभिरूप कपिलसे उत्तम वस्त्र तथा आभूषण माँगे।

अभिरूप कपिलके पास क्या धरा था; किंतु सेविकाने ही उसे मार्ग दिखलाया—'श्रावस्तीनरेशका नियम है कि प्रातःकाल सर्वप्रथम उन्हें जो अभिवादन करता है, उसे वे दो माशे स्वर्ण प्रदान करते हैं। तुम प्रयत्न करो।'

अभिरूप कपिलने दूसरे दिन कुछ रात्रि रहते ही महाराजके शयनकक्षमें प्रवेश करनेकी चेष्टा की। परिणाम यह हुआ कि द्वारपालोंने उसे चोर समझकर पकड़ लिया। महाराजके सामने वह उपस्थित किया गया और पूछे जानेपर उसने सब बातें सच-सच कह दीं। महाराजने उसके भोलेपनपर प्रसन्न होकर कहा—'तुम जो चाहो, माँग लो। जो माँगोगे, दिया जायगा।'

'तब तो मैं सोचकर माँगूँगा।' अभिरूप कपिलने कहा। और उसे एक दिनका समय मिल गया। वह सोचने लगा—'दो माशा स्वर्ण तो बहुत कम है—क्यों सौ स्वर्णमुद्राएँ न माँगी जायँ? किंतु सौ स्वर्णमुद्राएँ कितने दिन चलेंगी। यदि सहस्र मुद्राएँ माँगूँ तो? उँहुँ, ऐसा अवसर जीवनमें क्या फिर आवेगा? इतना माँगना चाहिये कि जीवन सुखपूर्वक व्यतीत हो। तब लक्ष मुद्रा? यह भी अल्प ही है। एक कोटि स्वर्ण मुद्रा ठीक होगी।'

अभिरूप कपिल सोचता रहा, सोचता रहा और उसके मनमें नये-नये अभाव होते गये, उसकी कामनाएँ बढ़ती गयीं। दूसरे दिन जब वह महाराजके सम्मुख उपस्थित हुआ, तब उसने माँग की—'आप अपना पूरा राज्य मुझे दे दें।'

श्रावस्तीनरेशके कोई संतान नहीं थी। वे धर्मात्मा नरेश किसी योग्य व्यक्तिको राज्य देकर वनमें तपस्या करने जानेका निश्चय कर चुके थे। अभिरूप कपिलकी माँगसे वे प्रसन्न हुए। यह ब्राह्मणकुमार उन्हें योग्य पात्र प्रतीत हुआ। महाराजने उसको सिंहासनपर बैठानेका आदेश दिया और स्वयं वन जानेको उद्यत हो गये।

महाराजने कहा—'द्विजकुमार! तुमने मेरा उद्धार कर दिया। तृष्णारूपी सर्पिणीके पाशसे मैं सहज ही छूट गया। कामनाओंका अथाह कूप भरते-भरते मेरा जीवन समाप्त ही हो चला था। विषयोंकी तृष्णारूपी दलदलमें पड़ा प्राणी उससे पृथक् हो जाय, यह उसका महान् सौभाग्य है।'

अभिरूप कपिलको जैसे झटका लगा। उसका विवेक जाग्रत् हो गया। वह बोला—'महाराज! आप अपना राज्य अपने पास रक्खें। मुझे आपका दो माशा स्वर्ण भी नहीं चाहिये। जिस दलदलसे आप निकल जाना चाहते हैं, उसीमें गिरनेको मैं प्रस्तुत नहीं हूँ।'

अभिरूप कपिल वहाँसे चल पड़ा; किंतु अब वह निर्द्वन्द्व, निश्चिन्त और प्रसन्न था।—सु० सिं०

भगवान् प्रसन्न होते हैं

(गिलहरीपर राम-कृपा)

कहा जाता है कि जब लंका-विजयके लिये नल-नील समुद्रपर सेतु बनानेमें लगे थे और अपार वानर-भालुसमुदाय गिरिशिखर तथा वृक्षसमूह ला-लाकर उन्हें दे रहा था, एक गिलहरी भी मर्यादा-पुरुषोत्तमके कार्यमें सहायता करने वृक्षसे उतरकर वहाँ आ गयी। नन्हीं-सी गिलहरी—उससे न वृक्षकी शाखा उठ सकती थी और न शिलाखण्ड। लेकिन उसने अपने उपयुक्त एक कार्य निकाल लिया। वह बार-बार समुद्रके जलमें स्नान करके रेतपर लोट-पोट होती और सेतुपर दौड़ जाती। वहाँ वह अपने शरीरमें लगी सारी रेत झाड़ देती और फिर स्नान करने दौड़ती। अविराम उसका यह कार्य चलता रहा।

महापुरुष तथा शास्त्र बतलाते हैं कि भगवान् साधन-साध्य नहीं हैं। जीवका महान्-से-महान् साधन उन सर्वेशको न तो विवश कर सकता और न उनकी प्राप्तिका मूल्य बन सकता। इसलिये किसने कितना जप, तप आदि किया, इसका वहाँ महत्त्व नहीं है। जीवनिष्ठ साधन तथा भगवन्निष्ठ कृपाके संयोगसे भगवत्प्राप्ति होती है, यह महापुरुष कहते हैं; किंतु भगवान् तो नित्य कृपाके अनन्त-अनन्त सागर हैं। जीव अप्रमत्त होकर अपनी शक्तिका पूरा उपयोग करके सच्ची श्रद्धा तथा प्रीतिसे जब साधन करता है, वे करुणासागर प्रसन्न हो जाते हैं। कितने समय या कितना साधन किसीने किया, यह प्रश्न वहाँ रहता नहीं। भगवान् प्रसन्न होते हैं…वे नित्य प्रसन्न जो हैं।

गिलहरीकी चेष्टा बड़े कुतूहलसे, बड़ी एकाग्रतासे मर्यादा-पुरुषोत्तम देख रहे थे। उस क्षुद्र जीवकी ओर [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

—•••—

मस्तक-विक्रय

कोसलके राजाका नाम दिग्-दिगन्तमें फैल रहा था। वे दीनोंके रक्षक और निराधारके आधार थे। काशीपतिने जब उनकी कीर्ति सुनी, तब वे जल-भुन गये। झट उन्होंने एक बड़ी सेना ली और कोसलपर चढ़ आये। युद्धमें कोसलनरेश हार गये और वनमें भाग गये। पर किसीने काशिराजका स्वागत नहीं किया। कोसलनरेशकी पराजयसे वहाँकी प्रजा रात-दिन रोने लगी। काशिराजने देखा कि प्रजा उनका सहयोगकर कहीं पुनः विद्रोह न कर बैठे, इसलिये शत्रुको निःशेष करनेके लिये उन्होंने घोषणा करा दी कि—'जो कोसलपतिको ढूँढ लायेगा, उसे सौ मोहरें दी जायँगी।' जिसने भी यह घोषणा सुनी आँख-कान बंदकर जीभ दबा ली।

इधर कोसलनरेश दीन-मलिन हो जंगलोंमें भटक रहे थे। एक दिन एक पथिक उनके सामने आया और पूछने लगा—'वनवासी! इस वनका कहाँ जाकर अन्त होता है और कोसलपुरका मार्ग कौन-सा है?' राजाने पूछा—'तुम्हारे वहाँ जानेका कारण क्या है?' पथिक बोला—'मैं व्यापारी हूँ। मेरी नौका डूब गयी है। अब द्वार-द्वार कहाँ भीख माँगता फिरूँ। सुना था कि कोसलका राजा बड़ा उदार है, अतएव उसीके दरवाजे जा रहा हूँ।' थोड़ी देरतक कुछ सोचकर राजाने कहा—'चलो, तुम्हें वहाँतक पहुँचा ही आऊँ। तुम बहुत दूरसे हैरान होकर आये हो।'

× × × ×

काशिराजकी सभामें एक जटाधारी व्यक्ति आया। काशीनरेशने पूछा—'कहिये किस लिये पधारे?' जटाधारीने कहा—'मैं कोसलराज हूँ। तुमने मुझे पकड़ लानेवालेको सौ स्वर्णमुद्रा देनेकी घोषणा करायी है। बस, मेरे इस साथीको वह धन दे दो। इसने मुझे पकड़कर तुम्हारे पास उपस्थित किया है।'

सारी सभा सन्न रह गयी। प्रहरीकी आँखोंमें भी आँसू आ गये। काशीपति सारी बातें जान-सुनकर स्तब्ध रह गये। क्षण भरके बाद वे बोल उठे—'महाराज! आज युद्धस्थलमें इस दुरन्त आशाको ही जीतूँगा; आपका राज्य भी लौटा देता हूँ, साथ ही अपना हृदय भी प्रदान करता हूँ।' बस, झट उन्होंने उनका हाथ पकड़कर सिंहासनपर बिठला दिया और उनके मलिन मस्तकपर मुकुट चढ़ा दिया। सारी सभा 'धन्य धन्य' कह उठी। व्यापारीको मुँहमाँगी मुद्राएँ तो मिलनी ही थीं। —जा० श०

(कवीन्द्र श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कृति बँगला 'मस्तक-विक्रय'का भाषान्तर)

मातृ-भक्त आचार्य शंकर

बालक श्रीशंकराचार्यने विद्याध्ययन समाप्तकर संन्यास लेना चाहा; परंतु जब उन्होंने मातासे आज्ञा माँगी, तब माताने नाहीं कर दी। शंकर माताके बड़े भक्त थे, उन्हें कष्ट देकर संन्यास लेना नहीं चाहते थे। एक दिन माताके साथ वे नदीमें स्नान करने गये। उन्हें एक मगरने पकड़ लिया। इस प्रकार पुत्रको संकटमें देख माताके होश उड़ गये। वह बेचैन होकर हाहाकार मचाने लगी। शंकरने मातासे कहा—'मुझे संन्यास लेनेकी आज्ञा दे दो तो मगर मुझे छोड़ देगा।' माताने तुरंत आज्ञा दे दी और मगरने शंकरको छोड़ दिया। इस तरह माताकी आज्ञा प्राप्तकर वे आठ वर्षकी उम्रमें ही घरसे निकल पड़े।

माताने कहा—'अच्छी बात है—बेटा! तुम जाओ; परंतु मेरी एक बात माननी पड़ेगी, मेरी मृत्युके समय तुम्हें मेरे पास रहना पड़ेगा।' मातृभक्त शंकरने इसे स्वीकार किया और माताकी मृत्युके समय आदर्श संन्यासी आचार्य शंकर संन्यासके नियमकी परवा न करके माताके समीप रहे।

कमलपत्रोंपर गङ्गापार

(लेखक—आचार्य श्रीबलरामजी शास्त्री, एम्० ए०, साहित्यरत्न)

स्वामी शंकराचार्य दिग्विजय करते हुए काशी पधारे। धर्मप्रेमी काशीके पण्डितोंसे उनका डटकर शास्त्रार्थ हुआ। एक पक्षतक 'अद्वैतवाद'के विषयमें काशीके पण्डितोंने हार मानी। अद्वैतवादका प्रचार करते हुए आचार्य शंकर कुछ दिन काशीमें रुक गये। वे नित्य गङ्गास्नान और बाबा विश्वनाथका दर्शन करते और शेष समय सत्सङ्गमें व्यतीत करते थे। एक दिन आचार्य शंकर गङ्गातटपर विचर रहे थे कि उनकी दृष्टि गङ्गाके उस पार गयी। आचार्यने देखा एक

तथागतके भक्तने कुमारिलको बहुत प्रेमसे बौद्ध-धर्मके तत्त्वों और बौद्धदर्शनका अध्ययन कराया। प्रतिभाशाली कुमारिल थोड़े ही दिनोंमें बौद्धधर्मके गहन तत्त्वों और बौद्धदर्शनके पूर्ण ज्ञाता हो गये। एक दिन कुमारिलको अपनी पूर्वप्रतिज्ञा स्मरण हो आयी और उन्होंने अपने पूज्य गुरुसे ही शास्त्रार्थ करनेकी अभिलाषा प्रकट की। एक ओर ब्रह्मचारी कुमारिल, दूसरी ओर बौद्धधर्मके समस्त आचार्य। विषय था—ईश्वरकी सत्ता और उसके कर्मनियन्ता होनेका प्रमाण। शास्त्रार्थ छिड़ गया। दोनों ओरसे मध्यस्थताकी आवश्यकता पड़ी। मगधराज सुधन्वा मध्यस्थ बनाये गये। शास्त्रार्थ प्रारम्भ हुआ। कुमारिलकी जिह्वापर जान पड़ता था कि सरस्वती आकर बैठ गयीं। विषयका निर्णय असम्भव हो गया। मध्यस्थके लिये कुछ भी निर्णय देना असम्भव था। अन्ततोगत्वा ब्रह्मचारी कुमारिलके आगे वहाँकी अध्यापक-मण्डलीको झुकना पड़ा। कुमारिलकी प्रतिभा और शास्त्रार्थसे सभी प्रभावित हुए; किंतु ईश्वरके अस्तित्वको यों ही तर्कसे माननेके लिये बौद्ध आचार्य तैयार न थे। ईश्वर-सत्ताका प्रत्यक्ष निर्णय करनेके लिये बौद्धोंने एक युक्ति सोची और घोषित किया 'यदि दोनों वक्ता अपना पक्ष सिद्ध करके विजय प्राप्त करना चाहते हैं तो पर्वतकी ऊँची चोटीसे कूदनेपर उनमें जो सुरक्षित रह जायगा, वही विजयी माना जायगा; अतः दोनों शास्त्रार्थी पर्वतकी ऊँची चोटीसे कूदकर अपने पक्षकी विजय सिद्ध करें।' कुमारिल उक्त घोषणासे तनिक नहीं घबराये और समस्त राजकर्मचारियोंके सम्मुख पर्वतकी ऊँची चोटीपर चढ़कर उन्होंने भगवान्‌का स्मरण किया और स्पष्ट घोषणा की—"वेद प्रमाण है। भगवान् ही रक्षक हैं। सर्वज्ञाता ईश्वर ही शक्तिमान् हैं। आत्मा अच्छेद्य है। सत्य ही अमर है।' यह कहकर ब्रह्मचारी कुमारिल कूद पड़े उस ऊँचे शिखरसे। कुमारिलका बाल भी बाँका नहीं हुआ। बौद्धोंने उसे 'जादुई चमत्कार' कहा और जब उनके आचार्यकी बारी आयी; तब वे भाग खड़े हुए। उस घटनासे वैदिकधर्मकी पताका समस्त भारतमें फहरा गयी। काशीकी राजकुमारी और काशीवासियोंको उस घटनासे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। कुमारिलकी विजयकी चर्चा समस्त भारतमें व्याप्त हो गयी; लोग कुमारिलका यशोगान करने लगे।

कुमारिलको उस विजयपर गर्व नहीं हुआ, किंतु उनके मनपर उलटा ही प्रभाव पड़ा। शास्त्रार्थमें गुरुको पराजित करनेका जो 'पाप' हुआ, उसका उन्होंने प्रायश्चित्त करना चाहा; क्योंकि वैदिकधर्ममें गुरुका अपमान महान् अपराध माना जाता है। बस; कुमारिल प्रयाग पहुँचे प्रायश्चित्तके लिये। उस समय भारतके कोने-कोनेसे विद्वान् और आचार्य कुमारिलका प्रायश्चित्त देखने पहुँचे। सुना जाता है कि स्वयं शंकराचार्य भी वहाँ पधारे थे। वीरात्मा कुमारिलने शास्त्रानुसार 'तुषाग्नि'से शनैः-शनैः अपने शरीरको जलाकर प्रायश्चित्त करके शरीरका त्याग किया; किंतु वैदिक-धर्मका उद्धार करके वे अमर हो गये।

भगवान् नारायणका भजन ही सार है

महान् संत श्रीविष्णुचित्त पेरि-आळ्वारमें बाल्यकालसे ही भगवद्भक्तिके चिह्न दीखने लगे थे। यज्ञोपवीत-संस्कार होनेके बाद ही बालकने बिना जाने-पहचाने अपना तन-मन और प्राण भगवान् श्रीनारायणके चरणोंमें समर्पित कर दिया था। श्रीनारायणके रूपका ध्यान, उनके नामका जप तथा श्रीविष्णुसहस्रनामका गायन वे किया करते थे। युवावस्थामें पदार्पण करते ही उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति बेचकर एक उर्वरा भूमि ले ली और उसमें एक सुन्दर बगीचा लगाया। प्रतिदिन वे प्रातःकाल उठकर 'नारायण' नामका जप करते हुए पुष्प-चयन करते और उसकी माला बनाकर भगवान् नारायणको पहनाते और मन-ही-मन प्रसन्न होते। एक दिन रात्रिमें उन्हें श्रीनारायणने स्वप्नमें कहा—"तुम मदुराके धर्मात्मा राजा बल्लदेवसे मिलो, वहाँ सब धर्मोके लोग एकत्र होंगे। वहाँ जाकर तुम मेरे प्रेम और भक्तिका प्रचार करो। तुम वहाँ 'भगवान्‌के सविशेष रूपकी उपासना ही आनन्द प्राप्त करनेका सच्चा और सरल मार्ग है' यह प्रमाणित कर दो।"

विष्णुचित्त भगवान्‌का आदेश पाकर प्रसन्नतासे खिल उठे। वे बोले, 'प्रभो! मैं अभी मदुराके लिये प्रस्थान करता हूँ; किंतु मुझे शास्त्रोंका किंचित् भी ज्ञान नहीं। आपके चरणोंको अपने हृदेशमें विराजितकर मैं सभामें जा रहा हूँ। आप जैसा चाहें, यन्त्रवत् मुझसे करा लें।' विष्णुचित्त मदुरा चले।

× × ×

बल्लदेव नामक राजा मदुरा और तिन्नेवेली जिलोंपर शासन करते थे। उन्हें प्रजाके सुखका अत्यधिक ध्यान था। इसी कारण वे कभी-कभी अपना वेश बदलकर रात्रिमें घूमा

करते थे। एक दिन रात्रिमें घूमते हुए उन्होंने वृक्षके नीचे विश्राम करते हुए एक ब्राह्मणको देखा। राजाने उनसे परिचय पूछा और ब्राह्मणने बताया कि मैं गङ्गास्नान करने गया था और अब सेतु नदीमें स्नान करनेके लिये जा रहा हूँ। रातभर विश्राम करनेके लिये यहाँ ठहर गया हूँ। राजाने उनसे कुछ अनुभवकी बात पूछी। ब्राह्मणने कहा—

वर्षार्थमष्टौ प्रयतेत मासान् निशार्थमर्धं दिवसं यतेत ।
वार्द्धक्यहेतोर्वयसा नवेन परत्रहेतोरिह जन्मना च ॥

राजाके पूछनेपर उन्होंने अर्थ किया—'मनुष्यको चाहिये कि आठ महीनेतक खूब परिश्रम करे, जिससे वह वर्षा-ऋतुमें सुखपूर्वक खा सके; दिनभर इसलिये परिश्रम करे कि रातको सुखकी नींद सो सके; जवानीमें बुढ़ापेके लिये संग्रह करे और इस जन्ममें परलोकके लिये कमाई करे।'

इस उपदेशसे राजा बहुत प्रभावित हुए। ब्राह्मणने उनके मनमें भक्तिका बीज डाल दिया था। लौटकर उन्होंने समस्त धर्मोंके आचार्योंको एकत्रकर उपर्युक्त निश्चय किया था, जिससे उन्हें संतोंका सङ्ग [illegible]

[illegible]

भगवान्से विवाह

कर्कटे पूर्वफाल्गुन्यां तुलसीकाननोद्भवम् ।
पाण्ड्ये विश्वंभरां कोदां वन्दे श्रीरङ्गनायकीम् ॥

पुष्प-चयन करते समय प्रातःकाल श्रीविष्णुचित्तने तुलसी-काननमें एक नवजात कन्या देखी। उसे उठाकर उन्होंने श्रीनारायणके चरणोंमें रखकर निवेदन किया, 'दयामय! यह तुम्हारी सम्पत्ति है और तुम्हारी ही सेवाके लिये आयी है, इसे अपने चरणकमलोंमें आश्रय दो।' श्रीविग्रहसे उत्तर मिला—'इस बालिकाका नाम कोदयी रक्खो और अपनी ही पुत्रीकी भाँति इसका लालन-पालन करो।'

'कोदयी'का अर्थ होता है 'पुष्पतुल्य कमनीय'। बड़ी होनेपर जब इस बालिकाने भगवान्का प्रेम प्राप्त कर लिया, तब इसका नाम 'आण्डाल' हो गया।

भगवान्के आदेशानुसार श्रीविष्णुचित्त कन्याका लालन-पालन करने लगे। लड़कीकी वाणी खुली तो वह श्रीकृष्णके अतिरिक्त कुछ बोल ही नहीं सकती थी। वह भगवान्के लिये सुगन्धित पुष्प तोड़ती और हार गूँथकर भगवान्को अर्पण करती। बड़ी होनेपर भगवान् श्रीरङ्गनाथको [illegible] भजने लगी। [illegible]

जिसमें आनन्द मिलता है। इसलिये मुझे वही चढ़ाया करो।' अब विष्णुचित्तको निश्चय हो गया कि यह कोई अद्भुत कन्या है और वे उसकी पहनी हुई माला भगवान्‌को पहनाने लगे।

आण्डालकी मधुरभावकी उपासना चरम सीमापर पहुँच गयी थी। वह शरीरसे ऊपर उठी हुई थी। उसे बाहर-भीतर, आगे-पीछे, सर्वत्र उसके प्राणवल्लभ ही दीखते रहते थे। शरीरसे वह विष्णुचित्तकी वाटिकामें रहती, पर मनसे वह वृन्दावनमें भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाओंका दर्शन करती रहती। कभी-कभी वियोगमें छटपटा उठती।

एक दिन वह अपने प्रियतम श्रीरङ्गनाथके विरहमें अत्यन्त व्याकुल हो गयी। श्रीरङ्गनाथसे मिलनेके लिये वह अधीर थी, भगवान् श्रीरङ्गनाथने मन्दिरके अधिकारियोंको दर्शन देकर कहा—'मेरी प्राणप्रिया आण्डालको मेरे पास ले आओ।' और विष्णुचित्तको स्वप्नमें दर्शन देकर प्रभुने कहा—'आण्डालको शीघ्र मेरे पास पहुँचा दो। मैं उसका पाणिग्रहण करूँगा।' भगवान्‌ने आण्डालको भी स्वप्नमें दर्शन दिया। उसे लगा कि 'बड़ी ही धूमधामसे मेरा विवाह भगवान् श्रीरङ्गनाथके साथ सम्पन्न हो रहा है।'

दूसरे ही दिन श्रीरङ्गनाथजीके मन्दिरसे आण्डाल और उसके धर्मपिता विष्णुचित्तको लेनेके लिये कई पालकियाँ और सामग्रियाँ आयीं। ढोल बजने लगे, वेदपाठी ब्राह्मण वेद पढ़ने लगे, शङ्ख-ध्वनि हुई। भक्तलोग श्रीरङ्गनाथ और आण्डालकी जय बोलने लगे। प्रेमोन्मत्त आण्डाल मन्दिरमें प्रवेश करते ही भगवान्‌की शेषशय्यापर चढ़ गयी। लोगोंने देखा, उस समय एक दिव्य प्रकाश छा गया और आण्डाल सदाके लिये अपने प्राणनाथमें लीन हो गयी। प्रेमी और प्रेमास्पद एक हो गये। वह भगवान् श्रीरङ्गनाथमें मिल गयी।

—शि० दु०

नम्रताके आँसू

(लेखक—श्रीयुत ति० न० आत्रेय)

उस गाँवमें कुळशेखर एक विद्वान् और ईश्वरभक्त व्यक्ति थे। रोज उनके घरके पार्श्ववर्ती मन्दिरमें कथावाचनका क्रम चलता था। कथा सुनानेमें कुळशेखर बड़े प्रख्यात थे। गाँवके अधिकांश लोग उनकी कथा सुनने नित्य एकत्र होते थे।

नंबियार उसी गाँवके एक सज्जन थे। विद्वत्तामें कुळशेखरकी बराबरी तो नहीं कर सकते थे, फिर भी विद्वलोगोंमें इनकी भी गिनती थी। आज ये भी कुळशेखरके समान ही एक संत माने जाते हैं।

मानव-सहज दोष कभी-कभी संतोंकी भी परीक्षा ले लेते हैं।

एक दिन नंबियारके मनमें ईर्ष्याका अनुभव होने लगा। वे मनमें सोचने लगे कि 'लोग कथा सुनने कुळशेखरके ही पास क्यों जाते हैं? मेरे पास क्यों नहीं आते? मैं कुळशेखरसे किस बातमें कम हूँ।'

देखते-देखते यह ईर्ष्या द्वेषका रूप धारण करने लगी।

एक दिन सन्ध्याको नंबियार बाहरसे थके-माँदे घर आये। भूख लगी थी। उनकी पत्नी कहीं बाहर गयी थी। बैठे-बैठे कुळशेखरके ही बारेमें सोचते रहे। नंबियारके मनमें शङ्का उत्पन्न हुई कि उनकी पत्नी भी कहीं कुळशेखरकी कथा सुनने तो नहीं गयी।

पर्याप्त प्रतीक्षा की। फिर भी पत्नी नहीं आयी। कुछ और समय पत्नीकी बाट देखते बैठे। तब भी पत्नी नहीं आयी। लगभग घंटाभर बीत गया। नंबियारकी भूख जोर पकड़ रही थी। अबतक भी पत्नी घर न आयी। अब उनसे सहा नहीं गया। उन्हें विश्वास हो चला कि हो-न-हो उनकी पत्नी निश्चय कुळशेखरकी कथा सुनने ही गयी है।

नंबियार मन-ही-मन झल्ला उठे। घरसे बाहर निकल पड़े। क्रोधमें घरका किंवाड़तक बंद करना भूल गये। लंबे-लंबे डग रखते हुए सीधे उस मन्दिरके सामने जा पहुँचे।

रामायणकी कथा चल रही थी। कथा सुननेमें सब लोग लीन थे। नंबियारको द्वारपर खड़े-खड़े दो-तीन मिनट बीत गये। किसीका ध्यान उनकी ओर नहीं गया। नंबियारने जब देखा उनकी पत्नी भी वहाँ बैठी कथा सुन रही है, तब तो वे अपना आपा खो बैठे, उनका विवेक जाता रहा। दो कदम बढ़कर कठोर स्वरसे चिल्ला उठे—'तुम मूर्ख हो, तुम कथा सुनाना क्या जानते हो; ये सारे लोग तुमसे बढ़कर मूर्ख हैं जो तुम्हारी कथा सुनने आते हैं।'

स्त्रीके सहवाससे भक्तका पतन

भक्त ब्राह्मण श्रीविप्रनारायण भक्तपदरेणुने वेदाध्ययन करनेके उपरान्त अपना जीवन भगवान् श्रीरङ्गनाथके चरणोंमें अर्पित कर दिया। मन्दिरके चारों ओर एक बगीचा लगाया। प्रातःकाल ही वे उसके पुष्प उतारते और हार बनाकर भगवान्को अर्पित करनेके लिये नियमसे देते। स्वयं एक वृक्षके नीचे साधारण झोंपड़ीमें रहते। मन्दिरका प्रसाद पाकर शरीर-निर्वाह करते हुए भगवान्का स्मरण तथा नाम-जप करते रहते। उन्हें जगत्की कोई सुधि नहीं रहती। रात्रिमें भगवान्को शयन करते देखकर उनका शरीर प्रेमसे शिथिल हो जाया करता था।

किंतु भगवान् बड़े विलक्षण हैं। वे अपने प्रियजनोंकी परीक्षा कब किस प्रकार लेते हैं, कहा नहीं जाता। श्रीरङ्गनाथजीके मन्दिरमें एक अत्यन्त लावण्यवती देवदासी रहती थी, जिसके सौन्दर्यपर स्वयं राजा मुग्ध थे। उसका नाम देवदेवी था। एक दिन वह अपनी छोटी बहिनके साथ वाटिकामें घूमते हुए श्रीविप्रनारायणके समीपसे निकली; किंतु उसने देखा कि उक्त साधारण ब्राह्मणने उसकी ओर दृष्टितक नहीं डाली। उसके मनमें बड़ा क्षोभ हुआ। अपनी बहिनसे उसने कहा—'देखो, मेरे रूपपर स्वयं नरेश मुग्ध हैं, पर यह अहंकारवश मेरी ओर देख भी नहीं रहा है।' बहिनने उत्तर दिया—'नहीं बहिन, जिन्होंने अपना जीवन भुवनमोहन परमेश्वरको अर्पित कर दिया है, उन्हें जगत्का कोई रूप अपनी ओर आकर्षित करनेमें सफल नहीं होता।' देवदेवीने साभिमान कहा—'यदि छः मासमें इसे मैं अपना दास नहीं बना लूँ, अपने पीछे-पीछे नहीं घुमा दूँ, तो छः मासतक तुम्हारी दासी होकर रहूँगी।' छोटी बहिनने भी कह दिया—'यदि तुमने इसपर अपना प्रभाव डाल दिया तो छः मासतक मैं तुम्हारी दासीकी भाँति सेवा करूँगी।' दोनों बहिनोंमें होड़ लग गयी।

एक दिन देवदेवीने संन्यासिनीके वेषमें आकर विप्रनारायणसे अत्यन्त करुण स्वरमें कहा—'महाराज! मेरी माता मुझे अपना धर्म बेचनेके लिये विवश कर रही है, इस कारण भागकर मैंने यह वेष अपनाया है। मैंने निश्चय किया है कि अपना जीवन भगवान्के चरणोंमें अर्पित कर दूँगी। मुझे कहीं आश्रय नहीं। आप कृपापूर्वक अपनी झोंपड़ीके बाहर रहनेकी आज्ञा मुझे दे दें। मैं आपकी झोंपड़ीमें प्रवेश नहीं करूँगी और भगवान्की सेवा करती हुई अपना जीवन सफल कर लूँगी। आपने इतनी कृपा नहीं की तो मेरा जीवन नरकगामी बन जायगा।'

सरल ब्राह्मण देवदेवीकी कपटचातुरीको नहीं समझ सके। उन्होंने उसे अनुमति दे दी। देवदेवी वहाँ रहने लगी।

एक बारकी बात है, माघका महीना था। वर्षा हो रही थी। शीत समीर तेज छुरीकी भाँति शरीरको जैसे काट रहा था। देवदेवी जलसे भीग गयी थी। गीली साड़ीमें वह काँप रही थी। विप्रनारायणका करुण हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने उसे भीतर आनेकी आज्ञा दे दी और सूखा वस्त्र पहननेके लिये दिया।

एकान्तमें स्त्री-पुरुषको नहीं मिलना चाहिये। कन्या, बहिन और युवती माताके साथ भी एकान्तमें रहनेकी शास्त्र आज्ञा नहीं देते। देवदेवीका जादू चल गया। वह विप्रनारायणको पराजित करनेमें सफल रही। विप्रनारायणका मन भगवान्के चिन्तनसे हटकर मानवी-वेश्याका चिन्तन करने लगा।

देवदेवी वहाँसे चली गयी। विप्रनारायण उसके घर जाने लगे। वे उसके यहाँ जाते नियमित रूपसे। धीरे-धीरे उसने विप्रनारायणकी समस्त सम्पत्ति हड़प ली। इनके पास कुछ नहीं रहा। धनलुब्धा वेश्या फिर इन्हें कैसे पूछती, उसने दुतकार दिया। ये अधीर रहने लगे। देवदेवीके बिना इन्हें कुछ अच्छा नहीं लगता था। कई दिन बीत गये।

'यह सोनेका थाल ले लो, विप्रनारायणने भेजा है। मैं उनका नौकर हूँ।' आवाज सुनकर देवदेवीने द्वार खोल और सोनेका थाल पाकर वह बड़ी प्रसन्न हुई। उसने तुरं विप्रनारायणको बुलवाया। विप्रनारायणकी प्रसन्नताका क्य कहना। दौड़े उसके घरकी ओर।

दूसरे दिन हल्ला हुआ, भगवान् श्रीरङ्गनाथकी स्वर्ण-थाल नहीं मिल रही है। गुप्तचर फैले। देवदेवी पकड़ी गयी उसने बताया—'विप्रनारायणका नौकर मुझे दे गया। विप्रनारायणने निवेदन किया—'मुझ दरिद्रके पास नौक कहाँसे आया।'

चोरीका माल स्वीकार करनेके कारण देवदेवीको राज्यक ओरसे दण्ड दिया गया और विप्रनारायणको निगलापुरीके राजा हिरासतमें रक्खा। उनका विश्वास था कि विप्रनारायण भक्त हैं, इस प्रकारका कर्म इनसे कैसे सम्भव हुआ!

छोटी कोठरीमें भगवद्दर्शन

सरोयोगी अथवा पोयगै आळवार, भूतत्ताळवार और पेयाळवार—ये तीनों ही अद्भुत ज्ञानी एवं भगवान्‌के भक्त थे। ये निर्लोभी और भगवान्‌के गुणगानमें तन्मय रहते थे। ये चाहते तो नरेशके कोषसे अगाध सम्पत्ति प्राप्त कर सकते थे, पर इन्हें सम्पत्तिका करना ही क्या था।

एक बार ये तीनों संत तिरुक्कोइलूर नामक क्षेत्रमें गये और वहीं तीनोंका एक साथ मिलन हुआ। इसके पूर्व ये लोग एक दूसरेसे सर्वथा अपरिचित थे। भगवान्‌की पूजाके बाद रात्रिके समय सरोयोगी एक भक्तकी कुटियामें आकर लेट गये। वहाँ घना अन्धकार था और कुटिया बहुत छोटी थी। ये लेटे हुए भगवान्‌का ध्यान कर रहे थे कि सुनायी पड़ा—'भीतर रातभर मुझे आश्रय मिल सकता है क्या?' संतने तुरंत उत्तर दिया—'अवश्य मिल सकता है। इस कुटियामें स्थान है—एक आदमी लेट सकता है और दो आदमी मजेसे बैठ सकते हैं। आइये, हम दोनों बैठ रहें।' आगन्तुक भीतर आया और परस्पर भगवच्चर्चा होने लगी। इसी बीचमें पुनः शब्द सुनायी पड़ा—'रातभरके लिये आश्रय मिल सकता है?' सरोयोगीने उत्तर दिया—'अवश्य आइये, इस कुटियामें इतना स्थान है कि एक आदमी लेट सकता है, दो बैठ सकते हैं और तीन खड़े रह सकते हैं।' तीनों खड़े होकर भगवान्‌का ध्यान करने लगे। इन्हें लगा कि हम तीनोंके बीचमें कोई चौथा व्यक्ति खड़ा है। देखनेपर कोई दीखा नहीं। तब ध्यानके नेत्रोंसे देखा तो पता चला कि भगवान् श्रीनारायण हमारे बीचमें खड़े हैं। तीनों एक साथ ही भगवान्‌का दर्शन करके कृतार्थ हो गये। उनका जीवन सफल हो गया। भगवान्‌ने वर माँगनेके लिये कहा, तब तीनोंने कहा—'प्रभो! हम जीवनभर आपका गुणगान करते रहें; आप हमें यही वरदान दें कि हमसे आपका गुणगान कभी न छूटे।' भगवान्‌ने कहा—'प्यारे भक्तो! मैं तुमलोगोंके प्रेममें इतना जकड़कर बँध गया हूँ, कि तुमलोगोंको छोड़कर कहाँ जा सकता हूँ।' उस समय इन लोगोंने भगवान्‌की महिमाके सौ-सौ पद रचे, जो 'ज्ञानका प्रदीप' के नामसे प्रसिद्ध है।

—शि० दु०

भगवान् लूट लिये गये

भक्त नीलन्–तिरुमंगैयाळवार भगवान्‌के दास्यभावके उपासक थे। ये बाणविद्यामें अत्यन्त कुशल और योद्धा थे। चोळदेशके राजाने इनकी वीरतासे प्रभावित होकर इन्हें अपने सेनापतिके पदपर प्रतिष्ठित किया था।

ये दक्षिणके तिरुवालि नामक क्षेत्रमें रहनेवाली कुमुदवल्ली नामक सुन्दरी कन्यासे विवाह करना चाहते थे। उस लावण्यवतीसे विवाह करनेके लिये कितने ही बड़े राजा भी इच्छुक थे। कुमुदवल्लीका पालन एक भक्तने किया था। वह नारायणकी भक्ता थी। नीलन्‌के आग्रहपर उसने उत्तर दिया—'विष्णु-भक्तसे ही मेरा विवाह हो सकता है।' उत्तर सुनकर नीलन् एक वैष्णव भक्तसे दीक्षित होकर उसके सम्मुख उपस्थित हो गये। कुमुदवल्लीने कहा—'मुझसे विवाह करनेके लिये इतना ही पर्याप्त नहीं। एक वर्षतक प्रतिदिन एक सहस्र आठ भक्तोंको भोजन कराकर उनका प्रसाद लाकर मुझे देना होगा।' नीलन्‌ने यह भी स्वीकार किया और उन दोनोंका विवाह हो गया। प्रतिदिन एक सहस्र आठ भक्त भोजन करने लगे। इससे नीलन्‌के जीवनमें महान् परिवर्तन होने लगा। उनका मन धीरे धीरे भगवान् नारायणके चरणोंमें अनुरक्त होने लगा और पहलेकी अपेक्षा अत्यधिक प्रेमसे ये भक्तोंकी सेवा करने लगे। पर सम्पत्ति कितने दिन साथ देती। वह समाप्त हो गयी। यहाँतक कि चोळदेशके राजाको वार्षिक कर देनेके लिये जो रुपया बचा था, वह भी खर्च हो गया। नरेशको पता चला तो उन्होंने इनके विरुद्ध सेना भेज दी। पर इनकी वीरताके सम्मुख सेना टिक न सकी, भाग गयी। दूसरी बार राजाने बड़ी वाहिनी भेजी, वह भी इनके सम्मुख नहीं टिक सकती थी; पर उनकी वीरताकी प्रशंसा करके राजाने संधिका प्रस्ताव रक्खा और कर न देनेके कारण इनको कारावासमें डाल दिया। ये एक सहस्र आठ भक्तोंको भोजन करानेका व्रत भङ्ग नहीं करना चाहते थे और कारागारमें इसकी व्यवस्था सम्भव नहीं थी; इस कारण ये उपवास करने लगे। भक्तप्राणधन भगवान्‌ने उन्हें स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—"काञ्चीनगरीमें वेगवती नदीके तटपर अमुक स्थानमें विपुल सम्पत्ति गाड़ी हुई है, उससे 'कर' देकर अपना सेवाकार्य चालू कर सकते हो।" नीलन्-

ने नरेशसे वहाँ जाकर कर देनेकी बात कही तो उन्होंने कई अधिकारियोंके साथ उन्हें वहाँ जाने दिया । निर्दिष्ट स्थानपर विपुल धनराशि मिली । नीलन्‌ने [illegible] को कर दे दिया और भक्तोंको भोजन एवं भजनका कार्यक्रम चलने लगा । काञ्चीमें भगवान् वरदराजने नीलन्‌को दर्शन दिये और चोळदेशके नरेशको भी निश्चय हो गया कि नीलन् असाधारण पुरुष और भगवान्‌के भक्त हैं । उन्होंने नीलन्‌से क्षमा-याचना की ।

भक्तोंको भोजन करानेमें दम्पतिका उत्साह और बढ़ा, पर सम्पत्ति पुनः समाप्त हो गयी । अब आयका कोई मार्ग नहीं था । इन्होंने भक्तोंकी सेवाके लिये धनवानोंको लूटना आरम्भ किया । जहाँ कहीं धनवान् मिलता, इनका दल उसपर टूट पड़ता और ये उसका धन लेकर दीन-असहाय और भगवान्‌के भक्तोंमें वितरित कर देते । किंतु भगवान्‌को यह मार्ग अनुचित प्रतीत हुआ । एक दिन भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायण एक धनवान् दम्पतिके रूपमें मार्गसे निकले कि इनका दल उनपर टूट पड़ा, वे लूट लिये गये । हीरे-मोती आदि [illegible]

[illegible]

भगवान्‌की मूर्ति बोल उठी

मधुर कविके गुरुका नाम नम्माळवार-शठकोप था । ये तिरुक्कुरुकूर—श्रीनगरीमें उत्पन्न हुए थे । इनके जन्म लेते ही माता-पिताने इन्हें भगवान्‌के मन्दिरमें भेंट चढ़ा दिया, और कहते हैं मन्दिरमें प्रवेश करते ही ये चलने लगे थे और मन्दिरके समीप इमलीके पेड़के कोटरमें जाकर आँखें मूँदकर ध्यानस्थ हो गये । इन्हें शरीरका ज्ञान बिल्कुल नहीं था, इसीलिये इन्हें 'शठकोप' भी कहा जाता है । इन्होंने बहुतसे पद बनाये थे, उनका दक्षिणमें बहुत प्रचार है और '[illegible] सार'के नामसे उनकी ख्याति है ।

[illegible]

गुरु-प्राप्ति

मधुर कवि तिरुकोलूर नामक स्थानमें एक सामवेदी ब्राह्मणके यहाँ उत्पन्न हुए थे । ये वेदके अच्छे ज्ञाता थे, किंतु इन्होंने सोचा कि भगवान्‌की भक्तिके बिना वेदके ज्ञानका कोई मूल्य नहीं । इन्हें भगवान्‌की भक्तिकी तीव्र अभिलाषा थी । एक दिन ये गङ्गातटपर घूम रहे थे कि दक्षिणकी ओर इन्हें प्रकाश दिखायी दिया । यह प्रकाश इन्हें तीन दिनोंतक दीखता । [illegible]

[illegible]

असर डाला, पर महात्मापर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। विवशतः मधुर कविने प्रणाम किया और कोटरके समीप जाकर बोले—'महाराज! मैं आपसे एक प्रश्न पूछना चाहता था। यदि शुद्ध सत्य (सूक्ष्म चेतन शक्ति) असत् (जड प्रकृति)के अंदर ही आविर्भूत हो जाय, तो वह क्या खायेगा और कहाँ विश्राम करेगा?' योगीने अब उत्तर दिया—'वह उसीको खायेगा और वहींपर विश्राम करेगा।' मधुर कविने अपने गुरुको पहचान लिया, जिनकी वे इतने दिनोंसे खोज कर रहे थे। वे इस असत्-शरीरके अंदर सत् (परमात्मा) के रूपमें विद्यमान थे। —शि० दु०

भगवान्‌का पेट कब भरता है?

(लेखक—पं० श्रीगोविन्द नरहरि वैजापुरकर)

प्राचीन कालमें एक परम शिवभक्त राजा था। एक दिन उसे कल्पना सूझी कि आगामी सोमवारको अपने इष्टदेव शंकरका हौद दूधसे लबालब भर दिया जाय। हौद काफी गहरा और चौड़ा था। उसने प्रधानसे मन्त्रणा की। प्रधानने उसी हाथ डुग्गी पिटवा दी—'सोमवारको सारे ग्वाले शहरका पूरा दूध लेकर मन्दिर चले आयें। हौद भरना है, राजाकी आज्ञा है। जो इसका उल्लङ्घन करेगा, वह कठोर दण्डका भागी होगा।'

सारे ग्वाले घबरा उठे। उस दिन किसीने घूँट भर भी दूध अपने बच्चोंको नहीं पिलाया। कुछने तो बछड़ोंको गायको मुँह लगाते ही छुड़ा लिया।

दूध आया और हौदमें छोड़ा गया। हौद थोड़ा खाली ही रह गया। राजा बड़ी चिन्तामें पड़ गया। इसी बीच एक बूढ़ी आयी। भक्ति-भावसे उसने लुटियाभर दूध चढ़ाकर भगवान्‌से कहा कि 'शहरभरके दूधके आगे मेरी लुटियाकी क्या बिसात! फिर भी भगवन्, बुढ़ियाकी श्रद्धाभरी ये दो बूँदें स्वीकार करो।'

दूध चढ़ाकर बुढ़िया बाहर निकल आयी। सभीने देखा—भगवान्‌का हौद एकाएक भर गया। उन्होंने राजासे जाकर कहा। राजाके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

दूसरे सोमवारको राजाने फिर वैसा ही आदेश दिया और गाँवभरका दूध महादेवके हौदमें छोड़ा गया, फिर भी हौद खाली ही रहा। पहलेकी तरह बुढ़िया आयी और उसकी लुटियाका दूध छोड़ते ही हौद भर गया। राजसेवकोंने राजाको जाकर वृत्तान्त सुनाया।

राजाका आश्चर्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया। अबकी बार उसने स्वयं उपस्थित होकर रहस्यका पता लगानेका निश्चय किया।

तीसरा सोमवार आया और पुनः गाँवभरका दूध राजाने अपने सामने हौदमें डलवाया। हौद खाली ही रहा। इसी बीच बूढ़ी आयी और उसके लुटिया उँड़ेलते ही हौद भर गया। बुढ़िया पूजा करके निकल गयी।

राजा भी उसके पीछे हो लिया। कुछ दूर जानेके बाद उसने बुढ़ियाका हाथ पकड़ा। वह काँपने लगी। राजाने अभय दिया और इसके रहस्यकी जिज्ञासा करते हुए कहा—'बताओ क्या बात है, तुमने कौन-सा जादू कर दिया जो हौद एकाएक भर गया?'

बुढ़ियाने कहा—'बेटा! जादू-वादू कुछ नहीं। घरके बाल-बच्चों, ग्वालबालों—सभीको पिलाकर बचे दूधमेंसे एक लुटिया लेकर मैं आती हूँ। सभीको तृप्त करके शेष दूध भगवान्‌को चढ़ाते ही वे प्रसन्न हो जाते, भावसे उसे ग्रहण करते हैं और हौद भर जाता है। किंतु तुम राजबलसे गाँवके सारे बाल-बच्चों, ग्वालबालों, रुग्ण-बूढ़ोंका पेट काटकर, उन्हें तड़पता रखकर सारा दूध अपने कब्जेमें करते और उसे भगवान्‌को चढ़ाते हो तो उनकी आहसे भगवान् उसे ग्रहण नहीं करते। उतनेसे उनका पेट नहीं भरता। इसीलिये हौद खाली रह जाता है।'

राजाको अपनी भूल समझमें आयी। वह बुढ़ियाको प्रणाम करके लौट गया और ऐसी हरकतोंसे विरत हो गया।

—प्राचीन कथायें

अपना काम स्वयं पूरा करें

एक राजाके चार पत्नियाँ थीं। राजाने हर एकको एक-एक काम सौंप दिया। पहलीको दूध दुहनेका काम बताया, दूसरीको रसोई पकानेका, तीसरीको बाल-बच्चे सँभालनेका और चौथीको अपनी सेवा करनेका।

कुछ दिनों तो चारोंने ठीक-ठीक अपना-अपना काम किया। पर आगे चलकर हर एकको यह मालूम पड़ने लगा कि मैं ही क्यों रसोई पकाऊँ, राजाकी सेवा क्यों न करूँ; मैं ही दूध क्यों दुहूँ, बच्चोंको क्यों न खिलाऊँ। इस तरह एक-दूसरी

आपसमें लड़ने लगीं। फलतः घरका काम भी रुक गया।

राजा इस गृहकलहसे भीतर ही भीतर सदा उदास रहता। एक बार उसके यहाँ एक महात्मा आये। राजाने अर्घ्य-पाद्यादिसे उनकी सम्भावना की। महात्माने राजाका उदास चेहरा देखकर कारण पूछा। राजाने सारा किस्सा कह सुनाया। महात्माने उसे आश्वासन देकर इसका उपाय कर देना स्वीकार किया।

महात्माने अन्तर्दृष्टि लगायी। झगड़ेके कारणोंका पता पा लिया और राजाको लेकर पहली रानीके यहाँ आये। उससे पूछा—'तुम्हें दूध दुहनेका काम दिया गया है न?' उसने कहा—'हाँ।' महात्माने बताया—'तो सुनो, पूर्वजन्ममें तुम गाय थी। दिनभर जंगलमें चरती और शामको नदीके एक शिवालयमें आ अपने स्तनोंकी दुग्धधारासे उनपर अभिषेक करती थीं। पर बीचमें ही मृत्यु हो गयी। उस पुण्यसे रानी बनी, पर आराधना पूर्ण नहीं हुई थी। इसीलिये राजाने तुम्हें दूध दुहनेको कहा। दूध दुहकर शंकर भगवान् उन्हें पिलाती जाओ, इसीमें तुम्हारा कल्याण है।'

रानीने 'तथास्तु' कहकर नमस्कार किया।

महात्मा आगे बढ़े। दूसरी रानीके पास आकर कहा कि 'तुम रसोई पकानेसे क्यों भागती हो। अरी, पूर्वजन्ममें तुम गरीब ब्राह्मणकी पत्नी थीं। सोमवारका व्रत करती और

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सबके कल्याणका पवित्र भाव

गुरुदेवने श्रीरामानुजाचार्यको अष्टाक्षर नारायण मन्त्रका उपदेश करके समझाया—'वत्स! यह परम पावन मन्त्र एक बार भी जिसके कानमें पड़ जाता है, वह समस्त पापोंसे छूट जाता है। मरनेपर वह भगवान् नारायणके दिव्य वैकुण्ठधाममें जाता है। जन्म मृत्युके बन्धनमें वह फिर नहीं पड़ता। यह अत्यन्त गुप्त मन्त्र है। इसे किसी अनधिकारीको मत सुनाना।'

श्रीरामानुजाचार्यके मनमें उसी [illegible] द्वन्द्व प्रारम्भ हुआ—'जब इस भगवन्मन्त्रको एक बार सुननेसे ही घोर [illegible] भी पाप-मुक्त होकर भगवद्धामका अधिकारी हो [illegible] है, तब संसारके ये प्राणी क्यों मृत्युपाशमें पड़े रहें। क्यों न इन्हें यह परम पावन मन्त्र सुनाया जाय। लेकिन गुरु-आज्ञाका उल्लङ्घन महापाप है—ऐसा पाप, जिसे कोई दूर नहीं [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

गुरुदेवके नेत्र भर आये। उन्होंने रामानुजको हृदयसे लगाते हुए कहा—'तू ही सच्चा शिष्य है। प्राणियोंके उद्धारकी जिसे इतनी चिन्ता है, वही प्राणियोंका उद्धारक बनेगा।'

—सु० सिं०

भक्त आचार्यकी आदर्श विनम्रता

(लेखक—आचार्य स्वामीजी श्रीराघवाचार्यजी महाराज)

शेषावतार श्रीरामानुज महामुनीन्द्रके पवित्र सम्प्रदायमें श्रीवैष्णव जगत्के महान् आचार्य श्रीवेङ्कटनाथका प्राकट्य विक्रम संवत् १३२५ में विजयादशमीके दिन हुआ था। ये बहुत बड़े विद्वान्, प्रचारक, महान् भक्त, परम आदर्श-चरित्र महात्मा थे। श्रीवेदान्तदेशिकका चमत्कारपूर्ण जीवन सर्वथा वन्दनीय है। श्रीदेशिकजीके जीवनकी एक घटना यहाँ दी जाती है। श्रीदेशिककी प्रतिष्ठासे जलनेवाले कुछ लोग इनसे द्वेष करते थे और वे सदा यही सोचा करते थे कि किसी प्रकार श्रीदेशिककी प्रतिष्ठा भङ्ग हो।

एक दिन कुछ ईर्ष्यालु लोगोंने मिलकर आपके द्वारपर जूतोंकी माला लटका दी। वह इतनी नीची थी कि बाहर निकलते ही उसका सिरमें लगना अवश्यम्भावी था। जब श्रीदेशिकजी अपनी कुटीरसे बाहर निकले तो उन्होंने इस कुकृत्यको देखा। देखकर वे शान्तिपूर्वक बाहर निकल आये और यह कहने लगे—

कर्मावलम्बकाः केचित् केचिज्ज्ञानावलम्बकाः।
वयं तु हरिदासानां पादरक्षावलम्बकाः॥

अर्थात् 'कोई कर्ममार्गका अनुसरण करते हैं और कोई ज्ञानमार्गका अनुसरण करते हैं, किंतु हम तो हरिदासों—भगवद्भक्तोंके जूतोंके अनुयायी हैं।'

इन शब्दोंको सुनकर आस-पासके लोग बहुत प्रभावित हुए; और जिन लोगोंने यह कुकृत्य किया था, उनको बड़ी लज्जा आयी। वे आकर श्रीदेशिकके चरणोंपर गिर पड़े और क्षमा माँगने लगे।

विद्यादान न देनेसे ब्रह्मराक्षस हुआ

बात उस समयकी है, जब श्रीरामानुजाचार्य अपने प्रथम विद्यागुरु श्रीयादवप्रकाशजीसे अध्ययन करते थे। यादवप्रकाशजी अपने इस अद्भुत प्रतिभाशाली शिष्यसे डाह रखने लगे थे। उन्हीं दिनों काञ्चीनरेशकी राजकुमारी प्रेत-बाधासे पीड़ित हुई। अनेक मन्त्रज्ञ बुलाये गये, किंतु कोई लाभ नहीं हुआ। नरेशका आमन्त्रण पाकर शिष्योंके साथ यादवप्रकाशजी भी वहाँ पहुँचे। उन्होंने जैसे ही मन्त्रप्रयोग प्रारम्भ किया, राजकुमारीके मुखसे प्रेत बोला—'तू जीवन-भर मन्त्रपाठ करे तो मेरा कुछ बिगाड़ नहीं सकता। उलटे मैं तुझे चाहूँ तो अभी धर पटकूँ। मैं सामान्य प्रेत नहीं हूँ, ब्रह्मराक्षस हूँ।'

यादवप्रकाशजी डरकर हटने लगे। उस समय श्रीरामानुजाचार्य आगे आये। उन्होंने पूछा—'ब्रह्मन्! आपको यह दुःखदायिनी योनि क्योंकर मिली?'

रोकर ब्रह्मराक्षस बोला—'मैं विद्वान् था, किंतु मैंने अपनी विद्या छिपा रक्खी। किसीको भी मैंने विद्यादान नहीं किया, इससे ब्रह्मराक्षस हुआ। आप समर्थ हैं। मेरे मस्तकपर आप अपना अभय कर रख दें तो मैं इस प्रेतत्वसे छूट जाऊँ।'

श्रीरामानुजने राजकुमारीके मस्तकपर हाथ रखकर जैसे ही भगवान्का स्मरण किया, वैसे ही ब्रह्मराक्षसने उसे छोड़ दिया; क्योंकि वह स्वयं प्रेतयोनिसे मुक्त हो गया।—सु० सिं०

प्रेमपात्र कौन ?

बिल्वमङ्गलके पिताका श्राद्ध था। विवश होकर बिल्वमङ्गलको घर रहना पड़ा। जैसे-तैसे दिन बीता; क्या हुआ, कैसे हुआ—यह सब किसे पता था। बिल्वमङ्गल बेमनसे सब काम कर रहे थे। एक-एक क्षण उन्हें भारी हो रहा था। कब इस उलझनसे छूटें और कब अपनी प्रेयसी वेश्या चिन्तामणिके पास जायँ—यही चिन्ता थी उन्हें।

संध्याको बिल्वमङ्गलको छुटकारा मिला। दौड़े-दौड़े नदी-किनारे गये; किंतु उसी समय आकाशमें घटाएँ छा गयीं, वेगकी आँधी आयी, चारों ओर अन्धकार छा गया। कोई केवट नदी किनारे मिला नहीं। नौका ढूँढनेमें देर हुई। रात्रि हो गयी। जब कोई साधन पार जानेको नहीं मिला, तब बिल्वमङ्गल नदीमें कूद पड़े। संयोगवश एक बहता मुर्दा मिल गया। उसे लकड़ी समझकर बिल्वमङ्गलने पकड़ लिया और उसीके सहारे नदी-पार हुए।

आँधी-पानीके मारे वेश्याने अपने घरका द्वार तथा खिड़कियाँ बंद कर दी थीं। बिल्वमङ्गलके पर श्राद्ध होनेसे उसके आनेकी बात थी ही नहीं, अतः वेश्या निश्चिन्त सो गयी थी। बिल्वमङ्गलने उसे द्वारपर पहुँचकर बहुत पुकारा, द्वार खटखटाया; किंतु वर्षा तथा आँधीके कारण उनका शब्द वेश्या सुन नहीं सकी। बिजली चमकी, बिल्वमङ्गलको एक खिड़कीसे रस्सी-जैसा कुछ लटकता दीखा। वे उसे पकड़कर ऊपर चढ़ गये। वह खिड़की संयोगवश खुली थी, अतः भीतर पहुँच गये।

जगायी जानेपर चिन्तामणि पानीसे भीगे बिल्वमङ्गलको देखकर चौंक गयी। उसने पूछा—'तुम इतनी रात गये कैसे आये? तुम्हारे शरीरसे इतनी दुर्गन्ध क्यों आ रही है?' बिल्वमङ्गलने बताया कि वे लकड़ीके तख्तेपर बैठकर नदी पार हुए हैं [illegible]

[illegible]

[illegible] कुमार! आज तुम्हें [illegible] मेरे यहाँ दौड़े [illegible] दुर्गन्ध नहीं आयी, [illegible] पड़ा, वह तुम्हारा प्रेमास्पद [illegible] देख लो। यह ऐसा देह [illegible] ऐसा ही मल, हड्डियाँ, [illegible] है। यह मुर्दा है तुम्हारा [illegible] तुम्हारा इस मुर्देसे [illegible] तो तुम निश्चय कृतार्थ हो [illegible]।'

[illegible] को प्रणाम किया—'तुम्हीं मेरी गुरु हो।' [illegible] मङ्गलकी ओर। [illegible] धारण किया था।—सु० सिं०

सत्याग्रह

विक्रमीय दसवीं शताब्दीकी बात है।...एक दिन काश्मीर-नरेश महाराज यशस्करदेव अपनी राजसभामें बैठकर किसी गम्भीर विषयका चिन्तन कर रहे थे कि प्रासादप्रवेशन-अधिकारीने सूचना दी कि एक व्यक्ति राजद्वारपर प्राण-त्याग करनेके लिये प्रस्तुत है। महाराज विस्मित हो उठे; उनके राज्यमें प्रजा सुखी, स्वस्थ और सम्पन्न थी। कहीं चोरीका भय नहीं था, लोग धर्मपर आरूढ थे, जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें सत्यपरक आचरण होता था। महाराजने तत्क्षण उस व्यक्तिको सभा-भवनमें बुलाया।

'किसी दस्यु या अनार्यने तुम्हारे धन-धर्ममें विघ्न तो नहीं उपस्थित किया? ऐसा तो नहीं है कि किसी राजकर्मचारीने अनजानमें तुम्हारे प्रति अनागरिकताका बर्ताव किया हो?' महाराज उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

'भगवती वितस्ता (झेलम) की पवित्र जलधारासे लालित आपके विशाल राज्यमें मुझे किसीसे भय नहीं है। मेरे साथ राज्यके न्यायालयोंने [illegible] मैंने उनसे सब कुछ [illegible] के पक्षमें ही निर्णय दिया।' [illegible] प्राण-त्याग करना [illegible]।

'[illegible] है! [illegible] न्याय किसने नहीं किया [illegible] ने अन्याय किया।

[illegible]

[illegible] खटखटाया तो उसने मेरे सत्यकी [illegible] कर दी।' नागरिकने स्पष्ट किया।

× × × ×

'हमलोगोंने सोच-समझकर निर्णय किया है, महाराज!' न्यायाधीशोंने अपना पक्ष दृढ़ किया। सभाभवनमें श्रेष्ठ नागरिक उपस्थित थे। जिसने मकान खरीदा था, वह भी था। महाराज धर्म-सिंहासनपर विराजमान थे। नागरिक कीमती अँगूठी पहने हुए थे। महाराज कौतूहलसे उनकी अँगूठियाँ हाथमें लेकर परीक्षण कर रहे थे। मकान खरीदनेवाले व्यक्तिकी अँगूठी हाथमें आते ही महाराज लोगोंको बैठे रहनेका आदेश देकर बाहर आ गये। उस मुद्रिकाको सेठके घर भेजकर महाराजने सेवकसे उसके बदलेमें वह बही मँगायी, जिसमें मकानके विक्रय-पत्रका विवरण लिखा था.......उन्होंने उसको पढ़ा।

वे बही लेकर धर्म-सिंहासनपर बैठ गये। महाराजने न्यायाधीशोंको समझाया कि विक्रय-पत्रके अधिकरण-शुल्कमें सेठने राजलेखकको एक हजार दीनार दिये हैं। यह बात समझमें नहीं आती कि एक साधारण कामके लिये इतना धन क्यों व्यय किया गया। मुझे ऐसा लगता है कि लेखकने उत्कोच (घूस) पाकर 'सोपान-कूपरहित मकान' के स्थानपर 'सोपान-कूपसहित मकान' लिख दिया है। सभामें सन्नाटा छा गया।'.....महाराज यशस्करदेवके आदेशसे न्यायालयके लेखकको सभाभवनमें उपस्थित होना पड़ा। वह लज्जित था। 'महाराज न्यायका खून मैंने किया है। 'रहित' के बदले सहित मैंने ही लिखा था।' लेखकने प्रमाणित किया।

'सोपान, कूप, मकान—सब कुछ नागरिकका है।' महाराजने न्यायको धोखा देनेके अपराधमें मकान खरीदनेवालेको आजीवन देश-निर्वासनका दण्ड दिया।

नागरिकके सत्याग्रहने विजय प्राप्त की। न्यायने सत्यकी पहचान की।—रा० श्री० (राजतरङ्गिणी)

धर्मकी सूक्ष्म गति

लगभग एक हजार वर्ष पहलेकी बात है। महाराज यशस्करदेव काश्मीरमें शासन करते थे। प्रजाका जीवन धर्म, सत्य और न्यायके अनुरूप था। महाराज स्वयं रात-दिन प्रजाका हित-चिन्तन किया करते थे। एक दिन वे सायंकालिक सन्ध्या-वन्दन समाप्त करके भोजन करने जा ही रहे थे कि द्वारपालने एक ब्राह्मणके राजद्वारपर आमरण अनशनकी सूचना दी। महाराजने भोजनका कार्यक्रम स्थगित कर दिया, वे तुरंत बाहर आये। उन्होंने ब्राह्मणको दुखी देखा और उनका हृदय करुणासे द्रवित हो गया।

'महाराज! आप अपने राज्यमें अन्यायका प्रचार कर रहे हैं। प्रजाका मन अधर्ममें सुख मान रहा है। यदि आप ठीक तरह न्याय नहीं करेंगे तो राजद्वार ब्राह्मणकी समाधिके रूपमें परिणत हो जायगा।' ब्राह्मणने यशस्करदेवको सावधान किया।

'मैंने आपके कथनका आशय नहीं समझा, ब्राह्मण-देवता! मुझे अपने न्याय-विधानपर भरोसा है। आप जो कुछ कहना चाहते हैं, कह डालिये। कहीं ऐसा तो नहीं है कि द्वारपालके यह कहनेसे कि मुझसे कल भेंट हो सकेगी, आपने प्राण-त्यागका निश्चय कर लिया है?' महाराजकी भृकुटी तन गयी।

'नहीं, महाराज! मैंने विदेशसे सौ स्वर्ण-मुद्राएँ उपार्जित करके आपके राज्यमें प्रवेश किया। मुझे पता चला कि आपके शासन-कालमें काश्मीरमें सुराज्य आ गया है। रास्तेमें मैंने इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया। पर लवणोत्स ग्रामके निकट आते-आते मैं थक गया। रातमें एक रमणीय उद्यानमें पेड़के नीचे मैं शयन करने लगा। दैवयोगसे मेरे शयन-स्थलके निकट घाससे आच्छादित एक कूप था, जिसका पता मुझे नहीं था; उसमें मेरी स्वर्ण-मुद्राओंकी गठरी गिर पड़ी। सवेरा होनेपर मैंने कूपमें कूदकर प्राण-त्यागका निश्चय किया ही था कि ग्रामवाले एकत्र हो गये। उनमेंसे एक साहसी व्यक्तिने कहा कि 'यदि मैं गठरी निकाल दूँ तो क्या दोगे?' मैंने कहा कि 'उस धनपर मेरा अधिकार ही क्या रह गया है; तुमको जो ठीक लगे, वह मुझे दे देना।' उसने गठरी निकाल ली और मुझे केवल दो मुद्राएँ दीं। मैंने इसपर आपत्ति की तो उसने कहा कि महाराज यशस्करदेवके राज्यमें व्यवहार मनुष्यके वचनपर चलते हैं। सरलताके कारण इस औपचारिक वचनके कथनसे मेरा धन उसने हड़प लिया। इसका उत्तरदायित्व आपपर है, अन्याययुक्त व्यवहार राज्यमें आपके नामपर होता है।' ब्राह्मणने अपनी कथा सुनायी। महाराजने कहा कि निर्णय कल

होगा और ब्राह्मणके साथ ही भोजन करने चले गये।

× × × ×

दूसरे दिन स्वर्णोत्स ग्रामके लोग महाराजके आदेशसे सभाभवनमें उपस्थित हुए। ब्राह्मणने पोटली निकालनेवाले व्यक्तिको आकृतिसे पहचाना। महाराज धर्म-आसनपर थे।

'ब्राह्मणने जो कुछ भी कहा है, वह अक्षरशः ठीक है। मैंने सत्यका पालन किया है। वचनके अनुरूप आचरण किया है, महाराज!' पोटली निकालनेवालेने यशस्करदेवको सत्यकी स्वीकृतिसे विस्मित कर दिया। वे गम्भीर होकर सोचने लगे।

'अट्ठानबे मुद्राएँ ब्राह्मणको दी जायँ और दो पोटली निकालनेवालेको [illegible] है।' [illegible] हो उठे।

[illegible] है। [illegible] निकालनेवालेको दो मुद्राएँ [illegible] ब्राह्मणको [illegible] यह अच्छा था।' [illegible]

सच्ची प्रशंसा

कन्नौजके महामहिम शासक महाराज हर्षकी कृपासे मातृगुप्तका काश्मीरके सिंहासनपर राज्याभिषेक हुआ। मातृगुप्तकी उदारता, काव्यप्रियता और दानशीलतासे आकृष्ट होकर बड़े-बड़े विद्वानों, कवियों और गुणज्ञोंने काश्मीरकी राजसभा समलंकृत की।

महाकवि मेण्ठ सातवीं शताब्दीके महान् कवियोंमें परिगणित थे। एक दिन राजा मातृगुप्तको द्वारपालने मेण्ठके आगमनकी सूचना दी, राजाने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। धूम धामसे उनका स्वागत किया। मातृगुप्तने मेण्ठसे अपना प्रसिद्ध काव्य हयग्रीव-वध सुनानेकी प्रार्थना की।

'आपपर सरस्वती और लक्ष्मी दोनों अनुकूल हैं। धन्य हैं आप!' कवि मेण्ठने राजकी प्रशस्ति गायी और उसके बाद काव्य सुनाना आरम्भ किया।

समस्त राजसभा काव्य-श्रवणके आनन्दसे झूम उठी, पर मेण्ठका मुख उतरा हुआ-सा था। उनके नयनोंमें विस्मय था कि इतनी सुन्दर रचना होनेपर भी राजने काव्य-श्रवणके समय एक बार भी 'साधुवाद' नहीं दिया। कवि मेण्ठके मनमें विचार उठा कि मातृगुप्तने जीवनके पहले चरणमें दरिद्रताका अनुभव किया और सम्पत्ति-राज्य मुझे अपनेसे छोटा कवि भी समझा है; अपनी काव्य-बुद्धिपर राजको अभिमान हो गया है। [illegible] मेण्ठने [illegible] मातृगुप्तने [illegible] आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा।

[illegible] महाराज!' [illegible]

'कविवर! [illegible] है कि [illegible] है। [illegible]

[illegible] किया।

[illegible]

'और मुझे [illegible] की ओर देखा। [illegible] है [illegible]

— [illegible]

जीरादेई

ई० ७०१ की बात है। मकरान (बलूचिस्तान) में राजा [illegible] राज्य करते थे। ये भारतीय क्षत्रिय थे तथा बौद्धधर्मके अनुयायी थे। इनके पुत्र सुबल एवं प्रबलराय बड़े ही उदार तथा साहसी थे। एक बार छाछ नामक ब्राह्मणने इनपर आक्रमण किया और इनका राज्य छीन लिया। [illegible] तो लड़ाईमें काम आये; पर दोनों राजकुमार [illegible] निकलकर भारतकी ओर चले। प्रबलरायको एक [illegible] अर्शीफ नामका एक बहुमूल्य रत्न प्राप्त हो गया और वह गुरौलमें गढ़ बनाकर राज्य करने लगा।

इधर सुबलरायने चम्पारण्य (चम्पारन) में प्रवेश किया। उसे सुदूर वनमें एक ज्योति दीख पड़ी। उसकी ओर ये बढ़ते गये। अन्तमें देखा कि यह ज्योति और कुछ नहीं, एक कुमारीके ताटङ्ककी आभामात्र थी। वह कुमारी एक डाकूकी कन्या थी, जिसका नाम था जीरादेई। वह सुबलरायपर मुग्ध हो गयी।

जब डाकू लौटकर आया, तब बड़ी कठिनतासे उसने जीरादेईका प्रस्ताव स्वीकार किया। राजकुमारसे बातें करते हुए उसने बतलाया कि 'जीरादेई भारतीय नरेश रतिबलरायकी पुत्री है। उसके ईरानविजयके समय मैं उस राजाके पास ही था। वह मुझे बहुत मानता था। पर इस कन्याके लिये मैंने उसके साथ विश्वासघात किया और इसे ले भागा। तत्पश्चात् इस जंगलमें आश्रय लिया। जब यह कन्या बड़ी हुई, तब मैंने इसके योग्य वर खोजनेके लिये अङ्ग, बङ्ग, कलिङ्ग—सभी देशोंको छान डाला; पर कहीं सफलता न मिली। पर आज तुम्हारे यहाँ आ जानेसे यह मेरी कामना स्वयमेव पूरी हो गयी।'

अन्तमें उसने कन्याके पिता रतिबलरायको भी बुलाया। उन्होंने आकर अपने हाथों कन्यादान किया। तत्पश्चात् वहीं एक गढ़ बनाकर जीरादेईके साथ सुबलरायने शासन आरम्भ किया; गढ़का नाम उसने सुरौल रखा। दोनों पति-पत्नी बड़े धर्मात्मा एवं सात्त्विक थे। तथापि उनसे एक अपराध बन गया, जिससे पाँच वर्षतक वहाँ अनावृष्टिका कुचक्र चल पड़ा। इस घोर अकालसे प्रजाका त्राण करनेके लिये राजा सुबलराय तथा जीरादेई तन-मनसे प्रजाकी सेवामें लग गये। सारा राज्य-कोष समाप्त हो गया। अब राजदम्पति शरीर-त्याग करनेपर तुल गये। तब राज्यके धनाढ्य लोगोंने आकर स्थिति सँभालनेका आश्वासन दिया। फिर वृष्टि भी हुई। प्रजाका कष्ट भी दूर हो गया। पर सुबलरायकी अवस्था नहीं सुधरी। वे इस आघातको सहन न कर सके और अन्तमें उनका शरीर छूट गया। रानी जीरादेई भी उनके साथ सती हो गयीं। चितापर उनके अञ्चलसे अपने-आप अग्निकी लपट निकल पड़ी।

रानी जीरादेई जहाँ सती हुई थीं, उस ग्रामका नाम जीरादेई पड़ गया। अब भी उसका यही नाम है। सुरौल भी, जिसे अब सुरवल कहते हैं, पासमें ही है। जीरादेई पूर्वोत्तर रेलवेके भाटपोखर स्टेशनसे दो मील दक्षिण है। भारतराष्ट्रके अद्यतन अध्यक्ष देशरत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसाद-की जन्मभूमि होनेका सौभाग्य इसी ग्रामको प्राप्त है।

—आ० श०

(History of Persia by V. A. Smith)

दुष्टोंको भी सौजन्यसे जीतिये

एक बार एक तंग रास्तेपर काशिराज और कोसलराज दोनोंके ही रथ आमने-सामने आ गये। अब बिना रास्तेसे एक ओर हटे दूसरे रथको निकलनेकी गुंजाइश न थी। काशिराजके सारथिने कहा—'मेरे रथपर महाराज काशीनरेश हैं; तुम रास्ता दो, हम निकल जायँ।'

'नहीं-नहीं, तुम रास्ता छोड़कर हट जाओ। तुम्हें मुझे रास्ता देना चाहिये; क्योंकि मेरे रथपर कोसलके राजा बैठे हैं।' दूसरे सारथिने कहा।

'जो अवस्थामें छोटा हो, वह बड़ेको जाने दे।' दोनोंको यह बात पसंद आ गयी। पर कोई हल न निकल सका; क्योंकि दोनों राजाओंकी अवस्था सर्वथा समान थी।

'जो बड़ा राजा हो, उसे प्रथम निकलनेका अधिकार होना चाहिये' इसे दोनों सारथियोंने उचित समझा। पर यह भी कोई हल न बन सका; क्योंकि दोनों राजाओंका राज्य समान—तीन सौ योजनका था।

'जो अधिक सदाचारी हो, उसे प्रथम निकलनेका अधि-

कार है।' दोनोंने फिर एक हल्का मार्ग ढूँढ़ा।

कोशलराजके सारथिने बतलाया 'मेरे राजा भलेके साथ भला तथा शठके साथ शठताके साथ व्यवहार करते हैं। यह इनका महान् गुण है।'

काशिराजके सारथिने बतलाया 'तब तो मेरा रथ ही [illegible] दूर करते हैं।'

[illegible]

(The Jataka, [illegible] Story 151)

दानका फल

प्रतिष्ठानपुर-नरेश सातवाहन आखेटको निकले और सैनिकोंसे पृथक् होकर वनमें भटक गये। वनमें भटकते भूखे-प्यासे राजा सातवाहन एक भीलकी झोपड़ीपर पहुँच गये। भील उन्हें पहचानता नहीं था, फिर भी अतिथि समझकर उसने उनका स्वागत किया। भीलकी झोपड़ीमें धरा क्या था; सत्तू था उसके पास। राजाने वह सत्तू खाकर ही क्षुधा दूर की। रात्रि हो चुकी थी, भीलकी झोपड़ीमें ही वे सो रहे।

रात्रि शीतकालकी थी। शीतल वायु चल रही थी। भील स्वयं झोपड़ीसे बाहर सोया और राजा सातवाहनको उसने झोपड़ीमें सुलाया। रात्रिमें वर्षा भी हुई। भील भीगता रहा। उसे सर्दी लगी और उसी सर्दीसे रात्रिमें ही उसकी मृत्यु हो गयी।

प्रातःकाल राजाके सैनिक उन्हें ढूँढ़ते पहुँचे। सातवाहनने बड़े सम्मानसे भीलका अन्तिम संस्कार कराया। भीलकी पत्नीको उन्होंने बहुत-सा धन दिया। यह सब करके भी नरेशको शान्ति नहीं हुई। वे नगर लौट तो आये, किंतु उदास रहने लगे। [illegible]

[illegible] अतिथि-सत्कारका [illegible] करेगा।' [illegible]

[illegible] समाचार पाकर वे [illegible] बैठके पर गये। [illegible] बोल उठा—'राजन्! [illegible] सत्तू देनेके [illegible] हुआ हूँ और [illegible] भी है।'—सु० सिं०

केवल इतनेसे ही पतन

मनुष्यके जीवनमें संयमकी बड़ी आवश्यकता है। गृहस्थ, तपस्वी और संन्यासी—सब-के-सब इन्द्रिय-संयम और सात्त्विक आचार-विचारसे समुन्नति करते हैं। जीवन क्षणभरमें ही असंयम और असावधानीसे विनष्ट हो जाता है।

लगभग तीन हजार वर्ष पूर्वकी बात है। मगध (बिहार) प्रान्तमें माही नदीके तटस्थ वनमें एक उदरामपुत्र नामके महात्मा रहते थे। वे उच्चकोटिके सिद्ध थे, अपनी लौकिक सिद्धियोंके लिये बहुत प्रसिद्ध थे। मगधेश्वरके निमन्त्रणपर प्रतिदिन दोपहरको आकाशमार्गसे उड़कर भिक्षा करने आया करते थे। मगधपति उनका यथाशक्ति सम्मान करते थे।

×　　×　　×　　×

[illegible]

[illegible] सम्पूर्ण आनन्दित है।' महात्मा उद्रामपुत्रने आसन ग्रहण किया। वे भोजन करने लगे।'' परिचारक-दासी सन्त उनकी सेवामें तत्पर थी।

'नहीं, अब कुछ नहीं चाहिये।' उद्रामपुत्र उसीको देखने लगे।'' दासी संकोचमें पड़ गयी।

योगीने आकाशमार्गसे उड़कर तपोवनमें जानेकी बड़ी चेष्टा की, पर उनकी शक्ति कुण्ठित हो गयी। वे लज्जासे नत हो गये।

'दासी! आज मेरा उड़कर जानेका विचार नहीं है। राजधानीमें घोषणा कर दी जाय कि संन्यासी उद्रामपुत्र असंख्य नागरिकोंको अपने दर्शनसे तृप्त करेंगे, उनकी चिरकालीन पिपासा शान्त करेंगे।' महात्माने बात बदल दी।

राजपथपर अगणित लोगोंने अचानक पैदल चलकर दर्शन देनेवाले महात्माके जयनादसे धरती और गगनको प्रकम्पित कर दिया। वे अपने आश्रमतक पैदल गये।'' उनकी योगसिद्धि समाप्त हो गयी केवल एक क्षणके लिये युवतीका रूप देखनेसे। उनका तपोबल नष्ट हो गया उससे पलभरके लिये एकान्तमें बात करनेसे। उनकी बहुत दिनोंसे दबायी गयी वासनाकी आग प्रज्वलित हो गयी नारीके नश्वर सौन्दर्यसे। उनका आत्मबल क्षीण हो गया।

वे मगधके राजप्रासादमें आकाशमार्गसे फिर कभी नहीं जा सके। संयमके मार्गसे च्युत हो गये थे वे। —रा० श्री०

आत्मयज्ञ

'देश, धर्म और स्वराज्यकी बलिवेदीपर प्रत्येक भारतीयको चढ़ जाना चाहिये; यह पवित्र कार्य है। इसीमें आत्मसम्मानका संरक्षण है।' महाराज दाहिरके ये अन्तिम वाक्य थे। मुहम्मद बिन कासिमकी सेनाने सिंधके अधिपतिका प्राणान्त कर डाला। राजधानी अलोरमें उदासी छा गयी महाराजके स्वर्ग-प्रस्थानसे। उनके पुत्र जयसिंहने अरबी सेनाका पीछा किया। किलेमें भयानक नीरवता थी।

'माता! महाराजके आकस्मिक स्वर्ग-गमनसे सारा-का-सारा नगर क्षुब्ध हो गया है; पर हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि शत्रुकी छाया भी इस किलेमें नहीं आ सकती।' सेनापतिने तलवार खींच ली; वह रणभूमिके लिये प्रस्थान करनेवाला ही था, पर सहसा ठहर गया।

'बोलो, अम्मा! आदेश दो।' उसने फिर प्रार्थना की। दाहिरकी महारानी गहरी चिन्तामें थीं; वे बड़ी गम्भीरतासे कुछ सोच रही थीं कि जयसिंहने चरणाभिवादन किया।

'शत्रु किलेके द्वारपर आ पहुँचे हैं, वे शीघ्र ही भीतर प्रवेश करेंगे।' जयसिंह कुछ और कहने जा रहे थे कि महारानीके नेत्र लाल हो उठे; वे गरज उठीं, मानो महिषमर्दिनी दुर्गाका उनपर आवेश हो।

'शत्रु किलेमें नहीं प्रवेश कर सकते, हम उन्हें अपने सतीत्वकी आगमें स्वाहा कर देंगी।' महारानीने सेनापतिके हाथमें नंगी तलवार रख दी महाराज दाहिरकी।

'माँ, मुझे इसकी शपथ है, विदेशी हमारी पवित्र स्वाधीनताको कलङ्कित नहीं कर सकेंगे।' सेनापतिने कुमार जयसिंहके साथ किलेसे बाहर निकलना चाहा।

'रण आज किलेमें ही होगा; अधर्मका अस्तित्व समाप्त करनेके लिये धर्मयुद्ध होगा, असत्यका मस्तक उड़ा देनेके लिये युद्ध-ऐसे सत्कार्यका आरम्भ यहीं होगा।' महारानीने भीतरी प्राङ्गणमें प्रवेश किया सेनापति और कुमार जयसिंहके साथ।

अनेक चिताएँ सजायी गयी थीं। नगरकी कुलवधुएँ उपस्थित थीं। अत्यन्त भयंकर दृश्य था। किलेके द्वारपर रणका बाजा बज रहा था। शत्रु द्वार तोड़नेकी चेष्टामें थे।

'वीरो! हमलोग आपसे पहले स्वर्ग जा रही हैं; पर स्मरण रहे कि शत्रु हमारे चिताभस्मका भी स्पर्श न कर सकें। इस सत्कर्मकी पवित्रता कलङ्कित होगी तो हिमालयका उन्नत दिव्य भाल सदाके लिये लज्जासे नत हो जायगा। स्वतन्त्रता, स्वधर्म और स्वदेशकी रक्षाके लिये मर मिटना ही वीरता है। भगवान् सहायता करेंगे।' महारानी अन्य नगर-वधुओंके साथ धधकती चितामें कूद पड़ीं।

अलोर किलेकी रक्षाके लिये भीषण युद्ध हुआ। अरबोंने भीतर प्रवेश किया; पर उनमें इतना साहस नहीं था कि वे अग्निकी लपटोंके सामने खड़े हो सकें। —रा० श्री०

सच्ची क्षमा

गीतगोविन्दके कर्ता भक्तश्रेष्ठ महाकवि जयदेव तीर्थ-यात्राको निकले थे। एक नरेशने उनका बहुत सम्मान किया और उन्हें बहुत-सा धन दिया। धनके लोभसे कुछ डाकू उनके साथ हो लिये। एकान्त स्थानमें पहुँचनेपर डाकुओंने आक्रमण करके जयदेवजीको पटक दिया, उनके हाथ पैर काटकर उन्हें एक कुएँमें डाल दिया और धनकी गठरी लेकर चलते बने।

संयोगवश उस कुएँमें पानी नहीं था। जयदेवजीकी जब चेतना लौटी, तब कुएँमें ही भगवन्नाम-कीर्तन करने लगे। उधरसे उसी दिन गौडेश्वर राजा लक्ष्मणसेनकी सवारी निकली। कुएँके भीतरसे मनुष्यका शब्द आता सुनायी पड़ा उन्हें। नरेशकी आज्ञासे जयदेवजी बाहर निकाले गये। जयदेवजीको लेकर नरेश राजधानी आये। नरेशपर जयदेवजी-की विद्वत्ता तथा भगवद्भक्तिका इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने जयदेवजीको अपनी पञ्चरत्नसभाका प्रधान बना दिया और सर्वाध्यक्षका भार भी उन्हें सौंप दिया।

बहुत पूछनेपर भी नरेशको जयदेवजीने अपने हाथ-पैर काटनेवालोंका हुलिया बताया नहीं। एक बार राजमहल-में कोई उत्सव था। बहुत अधिक भिक्षुक, साधु तथा ब्राह्मण भोजन करने आये थे। उन्हींमें जयदेवजीके हाथ पैर काटनेवाले डाकू भी साधुके वेशमें आये थे। लूले, पङ्गु जयदेवजीको यहाँ सर्वाध्यक्ष देखकर डाकुओंके प्राण सूख गये। जयदेवजीने भी उन्हें पहचान लिया और राजासे बोले—'मेरे कुछ पुराने मित्र आये हैं। आप कहें तो उन्हें कुछ धन दे सकते हैं।'

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

धन्य भामती

(लेखक—[illegible])

रात्रिका समय है। दक्षिणभारतके एक छोटे-से गाँवकी एक छोटी-सी कोठरीमें रेंड़ीके तेलका दीपक जल रहा है। कोठरीका कच्चा आँगन और मिट्टीकी दीवालें गोबरसे लिपी-पुती बड़ी स्वच्छ और सुन्दर दिखायी दे रही हैं। एक कोनेमें कुछ मिट्टी पड़ी है, एक ओर पानीका घड़ा रक्खा है, दूसरे कोनेमें एक चक्की, मिट्टीके कुछ बरतन और छोटी-सी एक चारपाई पड़ी है। दीपकके समीप कुशके आसनपर एक पण्डितजी बैठे हैं, पास ही मिट्टीकी दावात रक्खी है और

[illegible]

इस ओरसे हट गया। स्त्री बत्ती उतारकर तुरंत वहाँसे और वहीं थी कि पण्डितजीकी दृष्टि उधर चली गयी। उन्होंने कौतूहलसे भरकर पूछा—'देवी ! आप कौन हैं ?' 'आप अपना काम कीजिये। दीपक बुझनेसे आपके काममें विघ्न हुआ, इसीके लिये क्षमा कीजिये।' स्त्रीने जाते-जाते बड़ी नम्रतासे कहा। 'परंतु ठहरें, बताइये तो आप कौन हैं और यहाँ कहाँ आयी हैं ?' पण्डितजीने बल देकर पूछा। स्त्रीने कहा—'महाराज ! आपके काममें विघ्न पड़ रहा है, इस विक्षेपके लिये मैं बड़ी अपराधिनी हूँ।'

अब तो पण्डितजीने पन्ने नीचे रख दिये, कलम भी रख दी, मानो उन्हें जीवनका कोई नया तत्त्व प्राप्त हुआ हो। वे बड़ी आतुरतासे बोले—'नहीं, नहीं, आप अपना परिचय दीजिये—जबतक परिचय नहीं देंगी, मैं पन्ना हाथमें नहीं लूँगा।' स्त्री सकुचायी, उसके नेत्र नीचे हो गये और बड़ी ही विनयके साथ उसने कहा—'स्वामिन् ! मैं आपकी परिणीता पत्नी हूँ, 'आप' कहकर मुझपर पाप न चढ़ाइये।' पण्डितजी आश्चर्यचकित होकर बोले—'हैं, मेरी पत्नी ! विवाह कब हुआ था ?' स्त्रीने कहा—'लगभग पचास साल हुए होंगे, तबसे दासी आपके चरणोंमें ही है।'

पण्डितजी—तुम इतने वर्षोंसे मेरे साथ रहती हो, मुझे आजतक इसका पता कैसे नहीं लगा ?

स्त्री—प्राणनाथ ! आपने विवाहमण्डपमें दाहिने हाथसे मेरा बायाँ हाथ पकड़ा था और आपके बायें हाथमें ये पन्ने थे। विवाह हो गया, पर आप इन पन्नोंमें सलग्न रहे। तबसे आप और आपके ये पन्ने नित्यसङ्गी बने हुए हैं।

पण्डितजी—पचास वर्षका लंबा समय तुमने कैसे बिताया ? मैं तुम्हारा पति हूँ, यह बात तुमने इससे पहले मुझको क्यों नहीं बतलायी ?

स्त्री—प्राणेश्वर ! आप दिन-रात अपने काममें लगे रहते थे और मैं अपने काममें। मुझे बड़ा सुख मिलता था इसीमें कि आपका कार्य निर्विघ्न चल रहा है। आज दीपक बुझनेसे विघ्न हो गया ! इसीसे यह प्रसङ्ग आ गया।

पण्डितजी—तुम प्रतिदिन क्या करती रहती थी ?

स्त्री—नाथ ! और क्या करती; जहाँतक बनता, स्वामीके कार्यको निर्विघ्न रखनेका प्रयत्न करती। प्रातःकाल आपके जागनेसे पहले उठकर धीरे-धीरे चर्खा चलाती। आप उठते तब आपके शौच-स्नानके लिये जल दे देती। तदनन्तर सन्ध्या आदिकी व्यवस्था करती, फिर भोजनका प्रबन्ध होता। रातको पढ़ते-पढ़ते आप सो जाते, तब मैं पोथियाँ बाँधकर ठिकाने रखती और आपके सिरहाने एक तकिया लगा देती एवं आपके चरण दबाते-दबाते वहीं चरणप्रान्तमें सो जाती।

पण्डितजी—मैंने तो तुमको कभी नहीं देखा।

स्त्री—देखना अकेली आँखोंसे थोड़े ही होता है, उसके लिये तो मन चाहिये। दृष्टिके साथ मन न हो तो फिर ये चक्षु-गोलक कैसे किसको देख सकते हैं। चीज सामने रहती है, पर दिखायी नहीं देती। आपका मन तो नित्य-निरन्तर तल्लीन रहता है—अध्ययन, विचार और लेखनमें। फिर आप मुझे कैसे देखते।

पण्डितजी—अच्छा, तो हमलोगोंके खान-पानकी व्यवस्था कैसे होती है ?

स्त्री—दुपहरको अवकाशके समय अड़ोस-पड़ोसकी लड़कियोंको बेल-बूटे निकालना तथा गाना सिखा आती हूँ और वे सब अपने-अपने घरोंसे चावल, दाल, गेहूँ आदि ला देती हैं; उसीसे निर्वाह होता है।

यह सुनकर पण्डितजीका हृदय भर आया, वे उठकर खड़े हो गये और गद्गद कण्ठसे बोले—'तुम्हारा नाम क्या है, देवी ?' स्त्रीने कहा—भामती ! 'भामती ! भामती ! मुझे क्षमा करो; पचास-पचास सालतक चुपचाप सेवा ग्रहण करनेवाले और सेविकाकी ओर आँख उठाकर देखनेतककी शिष्टता न करनेवाले इस पापीको क्षमा करो'—यों कहते हुए पण्डितजी भामतीके चरणोंपर गिरने लगे।

भामतीने पीछे हटकर नम्रतासे कहा—'देव ! आप इस प्रकार बोलकर मुझे पापग्रस्त न कीजिये। आपने मेरी ओर दृष्टि डाली होती तो आज मैं मनुष्य न रहकर विषय-विमुग्ध पशु बन गयी होती। आपने मुझे पशु बननेसे बचाकर मनुष्य ही रहने दिया, यह तो आपका अनुग्रह है। नाथ ! आपका सारा जीवन शास्त्रके अध्ययन और लेखनमें बीता है। मुझे उसमें आपके अनुग्रहसे जो यत्किंचित् सेवा करनेका सुअवसर मिला है, यह तो मेरा महान् भाग्य है। किसी दूसरे घरमें विवाह हुआ होता तो मैं संसारके प्रपञ्चमें कितना फँस जाती। और पता नहीं, शूकर-कूकरकी भाँति कितनी वंश-वृद्धि होती। आपकी तपश्चर्यासे मैं भी पवित्र बन गयी। यह सब आपका ही प्रताप और प्रसाद है। अब आप कृपापूर्वक अपने अध्ययन-लेखनमें लगिये। मुझे सदाके लिये भूल जाइये।' यों कहकर वह जाने लगी।

पण्डितजी—भामती ! भामती ! तनिक रुक जाओ, मेरी बात तो सुनो !

भामती—नाथ ! आप अपनी जीवनभरकी साधनाका विस्मरण करके क्यों मोहके गर्तमें गिरते हैं और मुझको भी क्यों इस पाप-पङ्कमें फँसाते हैं।

पण्डितजी—भामती ! मैं तुझे पाप-पङ्कमें नहीं फँसाना चाहता। मैं तो अपने लिये सोच रहा हूँ कि मैं पाप-गर्तमें गिरा हूँ या किसी ऊँचाईपर स्थित हूँ।

भामती—नाथ ! आप तो देवता हैं; आप जो कुछ लिखेंगे, उससे जगत्‌का उद्धार होगा।

पण्डितजी—'भामती ! तुम सच मानो ! भगवान् व्यासने वर्षों तप करनेके बाद इस वेदान्त-दर्शन ग्रन्थकी रचना की और मैंने जीवनभर इसका पठन एवं मनन किया; परंतु तुम विश्वास करो कि मेरा यह समस्त पठन, मनन, मेरा समग्र विवेक, यह सारा वेदान्त तुम्हारे पवित्र सहज तपोमय जीवनकी तुलनामें सर्वथा नगण्य है। व्यासभगवान्‌ने ग्रन्थ लिखा, मैंने पठन-मनन किया; परंतु तुम तो मूर्तिमान् वेदान्त हो।' यों कहते-कहते पण्डितजी पुनः उसके चरणोंपर गिरने लगे। भामतीने उन्हें उठाकर विनम्रभावसे कहा—'प्रतिदेव ! यह क्या कर रहे हैं ! मैंने तो अपने जीवनमें आपकी सेवाके अतिरिक्त कभी कुछ चाहा नहीं। आपने मुझ-जैसीको ऐसी सेवाका सुअवसर दिया, यह आपका मुझपर महान् उपकार है। आजतक मैं प्रतिदिन आपके चरणोंमें सुखसे सोकर नींद

[illegible] सकूँ तो [illegible]

[illegible]

[illegible] दीजिये [illegible] जीवन [illegible] आनन्दमें [illegible] भामती [illegible] मृत्‌ [illegible] ने पोथी बंद करके [illegible]

पण्डितजीके द्वारा [illegible] (ब्रह्मसूत्र) का [illegible] अद्वितीय [illegible] और इसके [illegible] सिद्ध।

किसीकी हँसी उड़ाना उसे शत्रु बनाना है

(दुर्योधनका अपमान)

धर्मराज युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ समाप्त हो गया था। वे भूमण्डलके चक्रवर्ती सम्राट् स्वीकार कर लिये गये थे। यज्ञमें पधारे नरेश तथा अन्य अतिथि-अभ्यागत विदा हो चुके थे। केवल दुर्योधनादि बन्धुवर्गके लोग तथा श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थमें रह गये थे।

राजसूय यज्ञके समय दुर्योधनने पाण्डवोंका जो विपुल वैभव देखा था, उससे उसके चित्तमें ईर्ष्याकी अग्नि जल उठी थी। उसे यज्ञमें आये नरेशोंके उपहार स्वीकार करनेका कार्य मिला था। देश-देशके नरेश जो अपरिमित मूल्यकी अपार दुर्लभ वस्तुएँ धर्मराजको देनेके लिये ले आये, दुर्योधनको ही उन्हें लेकर कोषागारमें रखना पड़ा। उनको देख-देखकर दुर्योधनकी ईर्ष्या बढ़ती ही गयी। यज्ञ समाप्त हो जानेपर जब सब अतिथि चले गये, तब एक दिन [illegible]

[illegible]

[illegible] युधिष्ठिर [illegible] श्रीकृष्णचन्द्र [illegible] दुर्योधनके [illegible]

यह स्थल सूखा है, तब उसे क्षोभ हुआ। लोग उसकी ओर देख रहे हैं, यह देखकर उसका क्रोध और बढ़ गया। उसने वस्त्र छोड़ दिये और वेगपूर्वक चलने लगा। आगे ही जलपूर्ण सरोवर था। उसे भी उसने सूखा स्थल समझ लिया और स्थलके समान ही वहाँ भी आगे बढ़ा। फल यह हुआ कि वह जलमें गिर पड़ा। उसके वस्त्र भीग गये।

दुर्योधनको गिरते देखकर भीमसेन उच्चस्वरसे हँस पड़े। द्रौपदीने हँसते हुए व्यंग किया—'अंधेका पुत्र अंधा ही तो होगा।'

युधिष्ठिरने सबको रोका; किंतु बात कही जा चुकी थी और उसे दुर्योधनने सुन लिया था। वह क्रोधसे उन्मत्त हो उठा। जलसे निकलकर भाइयोंके साथ शीघ्रगतिसे वह राजसभासे बाहर चला गया और बिना किसीसे मिले रथमें बैठकर हस्तिनापुर पहुँच गया।

इस घटनासे दुर्योधनके मनमें पाण्डवोंके प्रति इतनी घोर शत्रुता जग गयी कि उसने अपने मित्रोंसे पाण्डवोंको पराजित करनेका उपाय पूछना प्रारम्भ किया। शकुनिकी सलाहसे जुएमें छलपूर्वक पाण्डवोंको जीतनेका निश्चय हो गया। आगे जो जुआ हुआ और जुएमें द्रौपदीका जो घोर अपमान दुर्योधनने किया, जिस अपमानके फलस्वरूप अन्तमें महाभारतका विनाशकारी संग्राम हुआ, वह सब अनर्थ इसी दिनके भीमसेन एवं द्रौपदीके हँस देनेका भयंकर परिणाम था।

(श्रीमद्भागवत १० । ७५)

परिहासका दुष्परिणाम

(यादव-कुलको भीषण शाप)

द्वारकाके पास पिण्डारकक्षेत्रमें स्वभावतः घूमते हुए कुछ ऋषि आ गये थे। उनमें थे विश्वामित्र, असित, कण्व, दुर्वासा, भृगु, अङ्गिरा, कश्यप, वामदेव, अत्रि, वसिष्ठ तथा नारदजी जैसे त्रिभुवनवन्दित महर्षि एवं देवर्षि। वे महापुरुष परस्पर भगवच्चर्चा करने तथा तत्त्वविचार करनेके अतिरिक्त दूसरा कार्य जानते ही नहीं थे।

यदुवंशके राजकुमार भी द्वारकासे निकले थे घूमने-फिरने। वे सब युवक थे, स्वच्छन्द थे, बलवान् थे। उनके साथ कोई भी वयोवृद्ध नहीं था। युवावस्था, राजकुल, शरीरबल और धनबल और उसपर इस समय पूरी स्वच्छन्दता प्राप्त थी। ऋषियोंको देखकर उन यादव-कुमारोंके मनमें परिहास करनेकी सूझी।

जाम्बवती-नन्दन साम्बको सबने साड़ी पहिनायी। उनके पेटपर कुछ वस्त्र बाँध दिया। उन्हें साथ लेकर सब ऋषियोंके समीप गये। साम्बने तो घूँघट निकालकर मुख छिपा रक्खा था, दूसरोंने कृत्रिम नम्रतासे प्रणाम करके पूछा—'महर्षिगण! यह सुन्दरी गर्भवती है और जानना चाहती है कि उसके गर्भसे क्या उत्पन्न होगा। लेकिन लज्जाके मारे स्वयं पूछ नहीं पाती। आपलोग तो सर्वज्ञ हैं, भविष्यदर्शी हैं, इसे बता दें। यह पुत्र चाहती है, क्या उत्पन्न होगा इसके गर्भसे?'

महर्षियोंकी सर्वज्ञता और शक्तिका यह परिहास था। दुर्वासाजी क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने कहा—'मूर्खो! अपने पूरे कुलका नाश करनेवाला मूसल उत्पन्न करेगी यह।' ऋषियोंने दुर्वासाका अनुमोदन कर दिया। भयभीत यादव-कुमार घबराकर वहाँसे लौटे। साम्बके पेटपर बँधा वस्त्र खोला तो उसमेंसे एक लोहेका मूसल निकल पड़ा।

अब कोई उपाय तो था नहीं, यादव-कुमार वह मूसल लिये राजसभामें आये। सब घटना राजा उग्रसेनको बताकर मूसल सामने रख दिया। महाराजकी आज्ञासे मूसलको कूटकर चूर्ण बना दिया गया। वह सब चूर्ण और कूटनेसे बचा छोटा लौहखण्ड समुद्रमें फेंक दिया गया।

महर्षियोंका शाप मिथ्या कैसे हो सकता था। लौहचूर्ण लहरोंसे बहकर किनारे लगा और एरका नामक घासके रूपमें उग गया। लोहेका बचा टुकड़ा एक मछलीने निगल लिया। वह मछली मछुओंके जालमें पड़ी और एक व्याधको बेची गयी। व्याधने मछलीके पेटसे निकले लोहेके टुकड़ेसे बाणकी नोक बनायी। इसी जरा नामक व्याधका वह बाण श्रीकृष्णचन्द्रके चरणमें लगा और यादव-वीर जब समुद्र-तटपर परस्पर युद्ध करने लगे मदोन्मत्त होकर, तब शस्त्र समाप्त हो जानेपर एरका घास उखाड़कर परस्पर आघात करते हुए उसकी चोटसे समाप्त हो गये। इस प्रकार एक विचारहीन परिहासके कारण पूरा यदुवंश नष्ट हो गया।

किसीकी हँसी उड़ाना उसे शत्रु बनाना है

भगवन्नाम समस्त पापोंको भस्म कर देता है

अद्भुत क्षमा

भगवन्नाम-जप करनेवाला सदा निर्भय है

कुन्तीका त्याग

भगवन्नामका जप करनेवाला सदा निर्भय है

(प्रह्लादकी निष्ठा)

दैत्यराज हिरण्यकशिपु हैरान था । जिन विष्णुको मारने के लिये उसने सहस्रों वर्षोंतक तपस्या करके वरदान प्राप्त किया, जिन विष्णुने उसके छोटे भाईको वाराहरूप धारण करके मार डाला, उसी विष्णुका स्मरण, उसीके नामका जप, उसीकी उपासना चल रही है हिरण्यकशिपुके ही [illegible] उसके राज्यमें ही नहीं, उसके राजसदनमें और वह भी उसके अपने पुत्रके द्वारा । नन्हा-सा बालक होनेपर भी प्रह्लाद [illegible] रहा है । वह अपना हठ किसी प्रकार छोड़ नहीं रहा है । सबसे अधिक चिन्ताकी बात यह है कि जिस हिरण्यकशिपुकी भौंहोंपर बल पड़ते ही समस्त लोक और लोकपाल थर थर काँपने लगते हैं, उसके क्रोधकी प्रह्लाद राई-रत्ती भी चिन्ता नहीं करता ।

प्रह्लाद जैसे डरना जानता ही नहीं और अब तो हिरण्यकशिपु स्वयं अपने उस नन्हे पुत्रसे चित्तमें भय मानने लगा है । वह सोचता है—'यह बालक क्या अमर है ! क्या इसे समस्त पदार्थोंपर विजय प्राप्त है ! कहीं इसके विरोधसे मेरी मृत्यु तो नहीं होगी !'

हिरण्यकशिपुकी चिन्ता अकारण नहीं थी । उसने दैत्योंको आज्ञा दी थी प्रह्लादको मार डालनेके लिये; किंतु दैत्य भी क्या कर सकते थे, उनके शस्त्र प्रह्लादका शरीर छूते ही ऐसे टूट जाते थे, जैसे हिम या चीनीके बने हों । उन्होंने पर्वतपरसे फेंका प्रह्लादको तो वह बालक ऐसे उठ खड़ा हुआ जैसे पुष्पराशिपर गिरा हो । समुद्रमें डुबानेका प्रयत्न भी असफल रहा । सर्प, सिंह, मतवाले हाथी—पता नहीं क्यों, सभी क्रूर जीव उसके पास जाकर ऐसे बन जाते हैं मानो युगोंसे उसने उन्हें पाला हो । उसे उपवास कराया गया [illegible]

[illegible]

हिरण्यकशिपु [illegible]

[illegible]

भगवन्नाम समस्त पापोंको भस्म कर देता है

(यमदूतोंका नया अनुभव)

कन्नौजके आचारच्युत एक [illegible] कुलटा दासीको पत्नी बना लिया था । [illegible] भी धन मिले, वैसे [illegible] ही उसका काम हो गया था । [illegible]

[illegible]

भ्रष्ट हुआ। अजामिल ब्राह्मण नहीं रहा, म्लेच्छप्राय हो गया। पशुतुल्य पामर जीवन हो गया उसका और महीने-दो-महीने नहीं, पूरा जीवन ही उसका ऐसे ही पापोंमें बीता।

उस कुलटा दासीसे अजामिलके कई संतानें हुईं। पहलेका किया पुण्य सहायक हुआ, किसी सत्पुरुषका उपदेश काम कर गया। अपने सबसे छोटे पुत्रका नाम अजामिलने 'नारायण' रखा। वृद्धावस्थाकी अन्तिम संतानपर पिताका अपार मोह होता है। अजामिलके प्राण जैसे उस छोटे बालकमें ही बसते थे। वह उसीके प्यार-दुलारमें लगा रहता था। बालक कुछ देरको भी दूर हो जाय तो अजामिल व्याकुल होने लगता था। इसी मोहमग्न दशामें जीवनकाल समाप्त हो गया। मृत्युकी घड़ी आ गयी। यमराजके भयंकर दूत हाथोंमें पाश लिये आ धमके और अजामिलके सूक्ष्मशरीरको उन्होंने बाँध लिया। उन विकराल दूतोंको देखते ही भयसे व्याकुल अजामिलने पास खेलते अपने पुत्रको कातर स्वरमें पुकारा—'नारायण! नारायण!'

'नारायण!' एक मरणासन्न प्राणीकी कातर पुकार सुनी सदा सर्वत्र अप्रमत्त, अपने स्वामीके जनोंकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले भगवत्पार्षदोंने और वे दौड़ पड़े। यमदूतोंका पाश उन्होंने छिन्न भिन्न कर दिया। बलपूर्वक दूर हटा दिया यमदूतोंको अजामिलके पाससे।

बेचारे यमदूत हक्के-बक्के देखते रह गये। उनका ऐसा अपमान कहीं नहीं हुआ था। उन्होंने इतने तेजस्वी देवता भी नहीं देखे थे। सब-के-सब इन्दीवर-सुन्दर, कमललोचन, रत्नाभरणभूषित, चतुर्भुज, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म लिये, अमिततेजस्वी—इन अद्भुत देवताओंसे यमदूतोंका कुछ वश भी नहीं चल सकता था। साहस करके वे भगवत्पार्षदोंसे बोले—'आपलोग कौन हैं? हम तो धर्मराजके सेवक हैं। उनकी आज्ञासे पापीको उनके समक्ष ले जाते हैं। जीवके पाप पुण्यके फलका निर्णय तो हमारे स्वामी संयमनी-नाथ ही करते हैं। आप हमें अपने कर्तव्यपालनसे क्यों रोकते हैं?'

भगवत्पार्षदोंने तनिक फटकार दिया—"तुम धर्मराजके सेवक भले हो, किंतु तुम्हें धर्मका ज्ञान ही नहीं है। जानकर या अनजानमें ही जिसने 'भगवान् नारायण' का नाम ले लिया वह पापी रहा कहाँ! हकलानेसे, हँसीमें, छलसे, गिरनेपर या और किसी भी बहाने लिया गया भगवन्नाम जीवके जन्म-जन्मान्तरके पापोंको वैसे ही भस्म कर देता है जैसे अग्निकी छोटी चिनगारी सूखी लकड़ियोंकी महान् ढेरोंको भस्म कर देती है। इस पुरुषने पुत्रके बहाने सही, नाम तो नारायण प्रभुका लिया है; फिर इसके पाप रहे कहाँ। तुम एक निष्पापको कष्ट देनेकी धृष्टता मत करो!'

यमदूत क्या करते, वे अजामिलको छोड़कर यमलोक आ गये और अपने स्वामीके सम्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो गये। उन्होंने उन धर्मराजसे ही पूछा—'स्वामी! क्या विश्वका आपके अतिरिक्त भी कोई शासक है? हम एक पापीको लेने गये थे। उसने अपने पुत्र नारायणको पुकारा; किंतु उसके 'नारायण' कहते ही वहाँ कई तेजोमय सिद्ध पुरुष आ धमके। उन सिद्धोंने आपके पाश तोड़ डाले और हमारी बड़ी दुर्गति की। वे अन्ततः हैं कौन, जो निर्भय आपकी भी अवज्ञा करते हैं?'

दूतोंकी बात सुनकर यमराजने हाथ जोड़कर किसी अलक्ष्यको मस्तक झुकाया। वे बोले—'दयामय भगवान् नारायण मेरा अपराध क्षमा करें। मेरे अज्ञानी दूतोंने उनके जनकी अवहेलना की है।' इसके पश्चात् वे दूतोंसे बोले—'सेवको! समस्त जगत्के जो आदिकारण हैं, सृष्टि-स्थिति-संहार जिनके भ्रूभङ्गमात्रसे होता है, वे भगवान् नारायण ही सर्वेश्वर हैं। मैं तो उनका क्षुद्रतम सेवकमात्र हूँ। उन नारायण भगवान्के नित्य सावधान पार्षद सदा-सर्वत्र उनके जनोंकी रक्षाके लिये घूमते रहते हैं। मुझसे और दूसरे समस्त संकटोंसे वे प्रभुके जनोंकी रक्षा करते हैं।'

यमराजने बताया—'तुमलोग केवल उसी पापी जीवको लेने जाया करो, जिसकी जीभसे कभी किसी प्रकार भगवन्नाम न निकला हो, जिसने कभी भगवत्कथा न सुनी हो, जिसके पैर कभी भगवान्के पावन लीलास्थलोंमें न गये हों अथवा जिसके हाथोंने कभी भगवान्के श्रीविग्रहकी पूजा न की हो।' यमदूतोंने अपने स्वामीकी यह आज्ञा उसी दिन भलीभाँति रटकर स्मरण कर ली; क्योंकि इसमें प्रमाद होनेका परिणाम वे भोग चुके थे।

यमदूतोंके अदृश्य होते ही अजामिलकी चेतना सजग हुई; किंतु वह कुछ पूछे या बोले, इससे पूर्व ही भगवत्पार्षद भी अदृश्य हो गये। भले भगवत्पार्षद अदृश्य हो जायँ; किंतु अजामिल उनका दर्शन कर चुका था। यदि एक क्षणके कुसङ्गने उसे पापके गड्ढेमें ढकेल दिया था तो एक क्षणके सत्सङ्गने उसे उठाकर ऊपर खड़ा कर दिया। उसका हृदय बदल चुका था। आसक्ति नष्ट हो चुकी थी।

दुःखी हुए और उन्होंने माताको इसके लिये उलाहना दिया। इसपर कुन्तीदेवी बोलीं—

'युधिष्ठिर! तू धर्मात्मा होकर भी इस प्रकारकी बातें कैसे कर रहा है। भीमके बलका तुमको भलीभाँति पता है, वह राक्षसको मारकर ही आवेगा; परंतु कदाचित् ऐसा न भी हो, तो इस समय भीमसेनको भेजना ही क्या धर्म नहीं है! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—किसीपर भी विपत्ति आये तो बलवान् क्षत्रियका धर्म है कि अपने प्राणोंको संकटमें डालकर भी उसकी रक्षा करे। ये प्रथम तो ब्राह्मण हैं, दूसरे निर्बल हैं और तीसरे हमलोगोंके आश्रयदाता हैं। आश्रय देनेवालेका बदला चुकाना तो मनुष्यमात्रका धर्म होता है। मैंने आश्रयदाताके उपकारके लिये, ब्राह्मणकी रक्षारूप क्षत्रिय-धर्मका पालन करनेके लिये और प्रजाको संकटसे बचानेके लिये भीमको यह कार्य समझ-बूझकर सौंपा है। इस कर्तव्य पालनसे ही भीमसेनका क्षत्रिय-जीवन सार्थक होगा। क्षत्रिय वीराङ्गना ऐसे ही अवसरोंके लिये पुत्रको जन्म दिया करती हैं। तू इस महान् कार्यमें क्यों बाधा देना चाहता है और क्यों इतना दुखी होता है।'

धर्मराज युधिष्ठिर माताकी धर्मसम्मत वाणी सुनकर लज्जित हो गये और बोले—'माताजी! मेरी भूल थी। आपने धर्मके लिये भीमसेनको यह काम सौंपकर बहुत अच्छा किया है। आपके पुण्य और शुभाशीर्वादसे भीम अवश्य ही राक्षसको मारकर लौटेगा।'

तदनन्तर माता और बड़े भाईकी आज्ञा और आशीर्वाद लेकर भीमसेन बड़े ही उत्साहसे राक्षसके यहाँ गये और उसे मारकर ही लौटे।

अद्भुत क्षमा

(द्रौपदीका मातृ-भाव)

महाभारतका युद्ध जिस दिन समाप्त हो गया, उस दिन श्रीकृष्णचन्द्र पाण्डवोंके साथ उनके शिविरमें नहीं लौटे। वे सात्यकि तथा पाण्डवोंको लेकर शिविरसे दूर वहाँ चले गये, जहाँ युद्धकालमें द्रौपदी तथा अन्य रानियाँ रहती थीं। उसी रात्रिमें द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने पाण्डवोंके शिविरमें आग लगा दी और पाण्डवपक्षके बचे हुए वीरोंको उसने सोती दशामें मार डाला। उसने द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंको भी मार दिया था।

प्रातःकाल श्रीकृष्णचन्द्रके साथ पाण्डव लौटे। शिविरकी दशा देखकर जो दुःख उन्हें हुआ, नारियोंमें जो क्रन्दन व्याप्त हुआ, उसका वर्णन व्यर्थ है। महारानी द्रौपदीकी व्यथाका पार नहीं था। उनके पाँचों पुत्रोंके मस्तकहीन शरीर उनके सामने पड़े थे।

'मैं हत्यारे अश्वत्थामाको इसका दण्ड दूँगा। उसका कटा मस्तक देखकर तुम अपना शोक दूर करना।' अर्जुनने द्रौपदीको आश्वासन दिया।

श्रीकृष्णचन्द्रके साथ जब गाण्डीवधारी अर्जुन एक रथमें बैठकर चले, तब ऐसा कोई कार्य नहीं था जो उनके द्वारा पूर्ण न हो। अश्वत्थामा ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करके भी बच नहीं सका। अर्जुनने उसे पकड़ लिया, किंतु गुरुपुत्रका वध करना उन्हें उचित नहीं जान पड़ा। रस्सियोंसे भली प्रकार बाँधकर रथमें डालकर वे उसे ले आये और द्रौपदीके सम्मुख खड़ा कर दिया।

अश्वत्थामाको देखते ही भीमसेनने दाँत पीसकर कहा—'इस दुष्टको तत्काल मार देना चाहिये। एक क्षण भी इसे जीवित रहनेका अधिकार नहीं।'

दयामयी देवी द्रौपदीकी दशा ही भिन्न थी। पाँच-पाँच पुत्रोंकी लाश सम्मुख पड़ी थी और उनका हत्यारा सामने खड़ा था; किंतु उन दयामयीको पुत्र-शोक भूल गया। पशुके समान बँधे, लज्जासे मुख नीचा किये अश्वत्थामाको देखकर वे बोलीं—'हाय! हाय! यह क्या किया आपने! जिनकी कृपासे आप सबने अस्त्रज्ञान पाया है, वे गुरु द्रोणाचार्य ही यहाँ पुत्ररूपमें खड़े हैं; इन्हें झटपट छोड़ दीजिये, छोड़ दीजिये। पुत्र-शोक कैसा होता है, यह मैं अनुभव कर रही हूँ। इनकी पूजनीया माता कृपी देवीको यह शोक न हो, वे मेरे समान रुदन न करें। इन्हें अभी छोड़िये!'

द्रौपदीकी दया विजयिनी हुई। अश्वत्थामाके मस्तककी मणि लेकर अर्जुनने उसे छोड़ दिया। (श्रीमद्भागवत १। ७)

उसे अन्त कर नहीं सकते; इसलिये उसका बताना व्यर्थ ही है।'

मिश्रजीने फिर कहा—'आप उसे बतायें, मैं अवश्य करूँगा। जिस किसीने जो उपाय मुझे बताया है, उसे मैंने अवश्य किया है। आप संकोच न करें। इसके लिये मैं सर्वस्व-त्याग करनेको भी तैयार हूँ।'

श्रीपुण्डरीकाक्ष—'आपने अभीतक अंधोंसे ही यह बात पूछी है, आँखवालोंसे नहीं। अंधेकी लकड़ी पकड़कर भला, आजतक कोई गन्तव्य स्थानपर पहुँचा है।'

मिश्रजी—'हाँ, ऐसा ही हुआ है। मैंने ठोकर खाकर इसका अनुभव किया है। तभी तो आँखवालोंके पास आया हूँ।'

श्रीपुण्डरीकाक्ष—'आपके उस अनुभवमें एक बातकी कमी रह गयी है। आपमें आँखवालोंकी पहचान नहीं है, नहीं तो मेरे पास क्यों आते।'

मिश्रजीके बहुत अनुनय विनय करनेपर आचार्य पुण्डरीकाक्षजीने उन्हें छः महीने पीछे बतानेको कहा। जब अवधि बीतनेपर मिश्रजी फिर आये, तब संतने कहा—'दूसरोंका पाप छिपाने और अपना पाप कहनेसे धर्ममें दृढ़ता प्राप्त होती है।'

इस सुन्दर उपदेशको सुनकर मिश्रजीने गद्गद स्वरसे कहा—'भगवन्! कृपाके लिये धन्यवाद! मुझे अपने सदाचारीपनका बड़ा गर्व था और दूसरोंकी बुराइयाँ सुनकर उन्हें मुँहपर फटकारना और भरी सभामें उन्हें बदनाम करना अपना कर्तव्य समझता था। उसी अंधेकी लकड़ीको पकड़कर मैं भवसागरको पार करना चाहता था। कैसी उलटी समझ थी!'

अपनी भूल समझकर पश्चात्ताप करनेसे जीवनकी घटनाओंपर विचार करनेका दृष्टिकोण ही बदल जाता है। तब मनुष्य अपनी अल्पज्ञतासे सधे हुए दृष्टिकोणको छोड़कर भगवदीय दृष्टिकोणसे देखने और विचार करने लगता है।

गोस्वामीजीकी कविता

एक बार श्रीसूरदासजी बादशाह अकबरके दरबारमें विराज रहे थे। उनसे पूछा गया कि 'कविता सर्वोत्तम किसकी है, निष्पक्ष भावसे बतलाइये।' श्रीसूरदासजीने कहा—'कविता मेरी सर्वोत्तम है।' इसपर बादशाहको संतोष न हुआ। उसने आश्चर्यसे पूछा—'मैं समझ नहीं सका। आपने अपनी कविताको सबसे उत्तम कहा भी कैसे! क्या इसमें कोई रहस्य है? गोस्वामी तुलसीदासजीकी कविताके सम्बन्धमें आपका क्या मत है?'

श्रीसूरदासजीने हँसकर कहा—'गोस्वामीजीकी कविता तो कविता है ही नहीं, मैं तो उसे सर्वोत्तम महामन्त्र मानता हूँ। मैंने जो अपने काव्यकी श्लाघा की सो तो इसलिये कि उसमें सर्वत्र भगवन्नाम—यश अङ्कित है।'

इसके बाद सूरदासजीने गोस्वामीजीका पूरा परिचय तथा बड़ी प्रशंसा सुनायी।

सूरदास और कन्या

उस समय मुगलसम्राट् अकबर राज्य कर रहा था। उसकी बहुत-सी हिंदू बेगमें भी थीं। उनमेंसे एकका नाम था जोधाबाई।

एक दिन जोधाबाई नदीमें नहाने गयी। वहाँ उसने देखा कि एक छोटी-सी सुकुमार लड़की पानीमें डूब-सी रही है। उसको दया आ गयी। उसने उस लड़कीको उठा लिया और घर ले आयी तथा अपनी गर्भजात कन्याकी भाँति बड़े स्नेहसे उसका लालन-पालन करने लगी। जब लड़की ग्यारह-बारह वर्षकी हो गयी, तब एक दिन जोधाबाईने देखा कि यह उसकी पेटी खोल रही है। जोधाबाई छिपकर देखने लगी कि देखूँ, वह क्या करती है। लड़कीने पेटी खोलकर एक सुन्दर-सी साड़ी पहन ली और अपनेको सजा लिया। सजकर वह ऊपर छतपर जाकर खड़ी हो गयी। वह रोज ऐसे ही करती।

एक दिन जोधाबाईने पूछा—'बेटी! तू ऐसा क्यों करती है?'

लड़की चुप रही, पर बार-बार आग्रह करनेपर बोली—'माँ! उस समय मेरा पति गाय चराकर लौटा करता है। उसके सामने मलिन वेषमें रहना ठीक नहीं, इसीलिये मैं ऐसा करती हूँ।'

कहा—'सूरदास ! तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो ।'

सूरदासने कहा—'आप देंगे नहीं ।'

श्रीकृष्णने कहा—'तुम्हारे लिये कुछ भी अदेय नहीं है ।'

सूरदास—'वचन देते हैं ?'

श्रीकृष्ण—'अवश्य ।'

सूरदासने कहा—'जिन आँखोंसे मैंने आपको देखा, उनसे मैं संसारको नहीं देखना चाहता । मेरी आँखें पुनः फूट जायँ ।'

श्रीराधा और श्रीकृष्णकी आँखें छल-छल करने लगीं और देखते-देखते सूरदासकी दृष्टि पूर्ववत् हो गयी । —'राधा'

समर्पणकी मर्यादा

महाप्रभु यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गये कि भगवद्-सेवाके उपयोगके लिये द्रव्यका अभाव हो चला है ।

'सोनेकी कटोरी गिरवी रख दी जाय,' महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यके आदेशका तुरंत पालन हुआ । भगवान् श्रीनाथजीके समक्ष राजभोग प्रस्तुत किया गया, पर महाप्रभुके भावोंने इस व्यापारकी बड़ी निन्दा प्रकट की कि आचार्यने स्वयं प्रसाद नहीं ग्रहण किया। केवल इतना ही नहीं—महाप्रभुने दो दिनतक उपवास भी किया, अन्न-जल कुछ भी ग्रहण नहीं किया । वैष्णवोंने कारण पूछनेका साहस नहीं किया ।

दो दिनोंके बाद द्रव्य आनेपर उन्होंने प्रसाद स्वीकार किया । वैष्णवोंद्वारा कारण पूछनेपर आचार्यने कहा कि 'सोनेकी कटोरी पहलेसे ही भगवत्सेवामें अर्पित थी; उसपर भगवान्‌का ही अधिकार था; उसके बदलेमें लाया गया भोग भगवान् तो ग्रहण कर सकते हैं, पर उनके इस भोगका प्रसाद लेना मेरे लिये महापातक था ।' आचार्यने व्यवस्था कर दी कि मेरे वंशमें या मेरा कहलाकर जो कोई भगवद्द्रव्यका उपयोग करेगा उसका नाश हो जायगा । —रा० श्री०

भागवत-जीवन

मध्यकालीन भक्त संत कुम्भनदासका जीवन समग्ररूपसे श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें समर्पित था । वे उच्चकोटिके त्यागी थे । व्रजके निकट जमुनावतो ग्राममें खेती कर अपनी जीविका चलाते और भगवान् श्रीनाथजीकी सेवामें उपस्थित होकर महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यकी आज्ञासे कीर्तन सुनाया करते थे ।

एक समयकी बात है । बादशाह अकबरके दाहिने हाथ महाराजा मानसिंहका व्रजमें आगमन हुआ था । जिस समय वे श्रीनाथजीका आरती-दर्शन कर रहे थे, उस समय वीणा और मृदङ्गके सहारे महात्मा कुम्भनदासजी प्रेमोन्मत्त होकर प्रभुके चरणोंमें कीर्तन समर्पित कर रहे थे । महाराजा उनकी कीर्तन-शैलीसे बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने उनके निवास-स्थानपर चलकर मिलनेका निश्चय किया ।

× × ×

[illegible] भगवान्‌के भक्तका दरवाजा खटखटाया । महाराजा मानसिंह उनके घरपर उपस्थित हुए । कुम्भनदास स्नान करके तिलक करने जा रहे थे कि महाराजने उनको [illegible] प्रणाम किया ।

'मेरा दर्पण और आसनी तो लाओ ।' कुम्भनदासने अपनी भतीजीको आदेश दिया ।

'बाबा, दर्पण पड़ियाने पी लिया है और आसनी भी खा गयी ।' भतीजीके मुखसे ऐसे शब्द सुनकर मानसिंह आश्चर्यचकित हो गये और जब उन्हें पता चला कि वे पानीमें मुख देखकर तिलक लगाते हैं और पुआलसे आसनीका काम लेते हैं, तब उनकी श्रद्धा गङ्गा और यमुनाकी बाढ़के समान बढ़ गयी । उन्होंने अपना सोनेका दर्पण कुम्भनदासके हाथमें रख दिया ।

'मेरा घर तो एक झोंपड़ीमात्र है । इस दर्पणसे मेरी आन्तरिक शान्ति नष्ट हो जायगी और चोर-डाकू जान लेनेपर तुल जायँगे ।' महात्माने दर्पण लौटा दिया ।

'महाराज ! मेरी बड़ी इच्छा है कि जमुनावतो ग्राम आपके नाम लग जाय ।' मानसिंहका मस्तक नत था संतके चरणपर ।

'मेरी सबसे बड़ी जागीर है श्रीनाथजीकी सेवा ।' कुम्भनदासने प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। राजा मानसिंहने मोहरोंकी थैली भेंटमें दी ।

'नरेश ! व्रजके करील और बेर मेरे सबसे बड़े मोदी हैं ।' कुम्भनदासने थैली लौटा दी ।

महाराजा मानसिंहका रोम-रोम पुलकित हो उठा । कण्ठ अवरुद्ध हो गया ।

'महाभागवत ! मैंने आपका दर्शन पाकर परमधन प्राप्त कर लिया । आपका भागवत-जीवन धन्य है । व्रजदेशकी श्रीकृष्णभक्तिकी गोद सदा फूले-फले । मुझे प्रकाश मिल गया ।' राजा मानसिंहने सादर अभिवादन किया और चले गये । —रा० श्री०

[illegible] करै अनादर, [illegible] ।
[illegible] 'व्यास' [illegible] अनादर ॥

यह देखकर [illegible] दंग रह गये। तब भक्तने उन्हें सुनाया—

[illegible] भागवत टेरि ।
[illegible] ना बनै, ज्यों बेरा [illegible] बेरि ॥
'व्यास' कुलीननि कोटि मिलि पंडित लाख पचीस ।
स्वपच भक्त की पानही तुलै न तिन के सीस ॥

'व्यास' मिठाई विप्र की तामें लागै आग ।
बृंदावन के स्वपच की जूठिन खैये माँग ॥

व्यासजीके इस प्रकारके अनेक पुनीत चित्र हैं, जिन्हें देखकर ही महात्मा ध्रुवदासजीने उनके लिये लिखा था—

प्रेम-मगन नहि गन्यौ कछु बरनाबरन विचार ।
सबन मध्य पायौ प्रगट ह्वै प्रसाद रस-सार ॥

अनन्य आशा

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

कवि श्रीपतिजी निर्धन ब्राह्मण थे, पर थे बड़े तपस्वी, धर्मपरायण, निर्भीक भगवद्भक्त । भगवान्में आपका पूर्ण विश्वास था । आप भिक्षा माँगकर लाते, उसीसे अपने परिवारका पालन-पोषण करते । ब्राह्मणी आपसे बार-बार कहती—'नाथ ! आप कोई काम कीजिये, जिससे घरका काम चले ।' पर आप उसे यही उत्तर देते कि 'ब्राह्मणोंका परम धर्म भजन करना ही है ।' एक दिन पत्नीने आपको बहुत विनय करके प्रार्थना की—'आप इतने बड़े कवि हैं और आपका काव्यसौन्दर्य अत्यन्त मनमोहक है । सुना है बादशाह अकबरको कविता सुननेका बहुत शौक है । आप उनके दरबारमें एक बार अवश्य जायँ ।' पत्नीके बहुत आग्रह करनेपर श्रीपतिजी अकबरके दरबारमें गये और गुणग्राही बादशाहको जब अपनी स्वरचित कवितामें भगवान् श्रीरामके गुणानुवादको सुनाया, तब बादशाह गद्गद हो गये और इनको अपने दरबारमें रख लिया । ये दरबारी कवि हो गये, परतु इन्होंने बादशाहकी प्रशंसामें कभी एक भी रचना नहीं की; ये केवल भगवत्सम्बन्धी रचना ही करते थे । दरबारके दूसरे कविगण दिन-रात बादशाहके गुण-गानमें ही लगे रहते थे । वे मानो भगवान्की भक्तिको ही भूले हुए थे । अकबर श्रीपतिजीकी कवितापर प्रसन्न होकर उन्हें समय-समयपर अच्छा इनाम दिया करते थे, इससे वे सब इनसे जलते थे । उन सबने मिलकर इन्हें नीचा दिखानेकी युक्ति सोची और बादशाहको समझानेकी चेष्टा की कि श्रीपति तो आपका अपमान करता है ।

एक दिन दरबारमें सबने मिलकर एक समस्या रक्खी—'करौ मिलि आस अकब्बरकी' और प्रस्ताव किया कि कल सब कवि इसी समस्याकी पूर्ति करें । सबने सोचा—'देखें अब श्रीपति क्या करते हैं ।' उन्हें कहाँ पता था कि यह लोभी टुकड़खोर ब्राह्मण नहीं है, यह तो भगवान्का परम विश्वासी है । दूसरे दिन दरबारमें भीड़ लग गयी । सभीकी दृष्टि श्रीपतिजीकी ओर थी । इधर श्रीपतिजी भगवान्पर विश्वास करके निश्चिन्त अपने स्थानपर बैठे प्रभुका स्मरण कर रहे थे । सब कवियोंने बारी-बारीसे बादशाहकी प्रशंसामें लिखी कविताएँ सुनायीं । सबने दिल खोलकर अकबरकी प्रशंसाके पुल बाँधे । तदनन्तर भक्त श्रीपतिजीकी बारी आयी । वे निर्भय निश्चिन्त मुसकराते हुए उठे और उन्होंने निम्नलिखित कवित्त सुनाया—

अबके सुल्तान फनियान समान हैं, बाँधत पाग अटब्बरकी ।
तजि एक को दूसरे को जु भजै, कटि जीभ गिरै वा लब्बरकी ॥
सरनागत 'श्रीपति' रामहि की, नहि त्रास है काहुहि जब्बरकी ।
जिनको हरिमें परतीति नहीं, सो करौ मिलि आस अकब्बरकी ॥

इस कवित्तको सुनते ही सब द्वेषी लोग भौंचक्के हो गये, उनके होश गुम हो गये और चेहरे फीके पड़ गये । भगवत्प्रेमी दरबारी और दर्शकोंके मुख खिल उठे । बादशाह प्रसन्न हो गये श्रीपतिजीकी निष्ठा और रचना-चातुरी देखकर । धन्य विश्वास !

ब्रज-रजपर निछावर

लगभग ढाई सौ वर्ष पहलेकी बात है । बादशाह मुहम्मदशाहके खास-कलम—मीर-मुंशी थे कविवर घनानन्द । वे ब्रजरसके महान् रसिक थे । जीवनके अन्तिम दिनोंमें किसी षड्यन्त्र-विशेषके कारण बादशाहने उन्हें दिल्ली छोड़ देनेका आदेश दे दिया । तब वे वृन्दावन चले आये और एक पेड़के नीचे संन्यास ग्रहण करके श्रीकृष्ण-की भक्तिमें रँग गये ।

नादिरशाहने भारतवर्षपर आक्रमण किया । उसके

दर्शनके लिये आते। भक्त आनन्द अश्रु तथा प्रेमसे उनके चरणोंपर भेंट भाव करते। दर्शनार्थी निश्चिन्त होकर प्रभुके दर्शन कर आते। इससे दर्शनार्थियोंको बड़ी सुविधा रहने लगी और श्रीनारायणदासजीको इससे बड़ी तृप्तिकर शान्ति प्राप्त होती थी।

× × ×

'मेरी गठरी सिरपर रख ले और मेरे साथ चल!' मार्गमें आपका भगवा देखकर एक व्यक्तिने अभिमानके साथ कहा।

'अच्छी बात है!' आपने गठरी सिरपर उठा ली और उस व्यक्तिके साथ हो लिये। भगवदिच्छा समझकर उन्होंने गठरी ढोनेमें भी आपत्ति नहीं की। क्योंकि उन्हें साधारण मनुष्य समझ रहा था।

'महाराज!' गठरी ढोते हुए श्रीनारायणदासजीके युगल चरणोंपर एक परिचित पुरुष गिर पड़ा। 'आप यह क्या कर रहे हैं!' सहसा उसके मुँहसे निकल गया। वह आश्चर्य-विस्फारित नेत्रोंसे श्रीनारायणदासजीकी ओर देख रहा था।

'प्रभुकी इच्छा ही अपनी इच्छा है।' वैराग्यके प्रतीक साधुने सीधे शब्दोंमें उत्तर दे दिया।

गठरीवाला व्यक्ति अब उन्हें समझ सका। उसका मस्तक आपके चरणोंपर था। उसके नेत्र अश्रु बरसा रहे थे। वह मन-ही-मन छटपटा रहा था।

'तुम्हारा कोई दोष नहीं है, भैया!' बड़े प्यारसे उसे उठाकर सहलाते हुए आपने कहा। 'यह तो उस लीला-मयकी लीला है।'

संत-स्पर्शसे उस व्यक्तिके पाप धुल गये। उसका मन पवित्र हो गया। पूर्वके शुभ-संस्कार जाग्रत् हो गये। वह मन और कर्म दोनोंसे दुष्ट था। परंतु उस दिन उसने श्रीनारायणदासजीसे दीक्षा ले ली और फिर घर लौटकर नहीं गया। उसका जीवन बदल गया। वह स्वयं तो सिद्ध साधु हुआ ही, उसके सम्पर्कमें आनेवालोंको भी प्रभु-प्रेमकी प्राप्ति हुई।

× × ×

भक्त श्रीनारायणदासजीकी संसारमें तनिक भी आसक्ति नहीं थी। प्रभुमें भक्ति और प्रेम आपका अद्वितीय था। आप सदैव भगवन्नामका जप किया करते थे। साधु-संत तथा दीन दुखी, स्त्री-पुरुष, सबकी—उन्हें नारायणका स्वरूप समझकर—आप बड़े प्रेमसे सेवा करते थे और इस प्रकार अपूर्व सुखका अनुभव करते थे। आपके द्वारा बदरिकाश्रमके मनुष्योंका तो उपकार ही हुआ; अन्यत्र भी जहाँ कहीं जो भी आपके सम्पर्कमें आया, उसका जीवन पावन हो गया। वह प्रभुके चरणोंकी प्रीति पाकर कृतार्थ हो गया। —शि० दु०

मरते पुत्रको बोध

ठाकुर मेघसिंह बड़े प्रजाप्रिय और न्यायकारी जागीरदार थे। भगवान‌के विश्वासी भक्त थे। वे इतने साधु-स्वभाव थे कि बुरा करनेवालेमें भी भलाई देखते थे।

भगवत्-कृपा तथा भगवान‌के मङ्गल-विधानमें उनका अटूट विश्वास था। ठाकुर मेघसिंहके एक ही कुमार था—सज्जनसिंह। सोलह वर्षकी उम्र थी। शील, सौन्दर्य और गुणोंका भंडार था वह। अभी तीन ही महीने हुए उसका विवाह हुआ था। भगवान‌के विधानसे वह एक दिन घोड़ेसे गिर पड़ा और उसके मस्तकमें गहरी चोट आयी। थोड़ी देरके लिये तो वह चेतनाशून्य हो गया, परंतु कुछ ही समय बाद उसको चेत हो आया। यथाशक्य पूरी चिकित्सा हुई, पर घावमें कोई सुधार नहीं हुआ। होते होते घाव बढ़ गया और उसका जहर सारे शरीरमें फैल गया। अब सबको निश्चय हो गया कि सज्जनसिंहके प्राण नहीं बचेंगे। सज्जनसिंहसे भी यह बात छिपी नहीं रही। उसके चेहरेपर कुछ उदासी आ गयी। ठाकुर मेघसिंह पास बैठे विष्णुसहस्रनामका पाठ कर रहे थे। उसे उदास देखकर उन्होंने हँसते हुए कहा—'बेटा! तुम्हारे चेहरेपर उदासी क्यों है। अभी तुम मेरे पुत्र हो, मेरी जागीरके मालिक हो, तुम्हें मेरे कुँअरका पद मिला है। यह सब तुम्हारे गोपालजीके मङ्गलविधानसे ही हुआ है। अब उन्हींके मङ्गलविधानसे तुम साक्षात् उनके पुत्र बनने जा रहे हो। अब तुम्हें उनके कुँअरका पद मिलेगा और तुम दिव्यधामकी जागीरीके अधिकारी बनोगे। यह तो बेटा! हर्षका समय है। तुम प्रसन्नतासे जाओ, मङ्गलमय प्रभुसे मेरा नमस्कार कहना और यह भी कहना कि मेघसिंहके आपके धाममें तर्वादिलेकी भी कोई व्यवस्था हो रही है क्या? मुझे कोई जल्दी नहीं है; क्योंकि मुझे तो सदा चाकरीमें रहना है, चाहे जहाँ रक्खें; परंतु इतना अवश्य होना चाहिये कि आपकी चाकरीमें हूँ, मुझे इसका स्मरण सदा बना रहे।

'बेटा! यहाँके संयोग-वियोग सब उन लीलामयके

सम्पत्तिके सब साथी, विपत्तिका कोई नहीं

[illegible] सेठके [illegible] पर एक भिखारी आया। सेठ[illegible] एक [illegible] अन्न देने लगे तो उसने अस्वीकार कर दिया। [illegible] सेठ बोले—'अन्न नहीं लेना, तब क्या मनुष्य लेगा?'

भिखारी भी [illegible] हठी था। उसे भी क्रोध आ गया। उसने कहा—'अब तो मैं मनुष्य ही लेकर उठूँगा।' [illegible] सेठके द्वारपर और अन्न-जल छोड़ दिया उसने। सेठ घबराये, उन्होंने उसे बहुत धन देना चाहा; किंतु भिखारी तो हठपर आ गया था। वह अड़ा हुआ था—'अब तो मैं यहीं मरूँगा या मनुष्य लेकर उठूँगा।'

सेठजी गये नगरके मन्त्री तथा अन्य अधिकारियोंके पास [illegible]। सबने कहा—'मर जाने दो उस मूर्खको।'

सेठजी लौट आये, किंतु थे बुद्धिमान। उनके मनमें यह बात आयी कि अभी तो मन्त्री तथा राजकर्मचारी यह बात कहते हैं; किंतु यदि भिक्षुक सचमुच मर गया तो मेरी रक्षा करेंगे या नहीं, यह देख लेना चाहिये। वे फिर मन्त्रीके पास गये और बोले—'भिक्षुक तो मर गया।'

मन्त्री चौंक पड़े। कहने लगे—'सेठजी! यह तो बुरा हुआ। आपको उसे किसी प्रकार मना लेना था। यह मृत्यु आपके द्वारपर हुई। नियमानुसार इसकी जाँच होगी और उसमें आप निमित्त सिद्ध होंगे। पता नहीं आपको क्या दण्ड मिलेगा। मेरा कर्तव्य है इस काण्डकी सूचना राजाको दे देना। आप मुझे क्षमा करें। सरकारी कर्मचारी होनेसे मैं आपको कोई सलाह नहीं दे सकता।'

सेठजीने कहा—'धन्यवाद! मैं हँसी कर रहा था। वह अभी जीवित है।'

घर लौटकर सेठजीने कुछ सोचा और पत्नीको ले जाकर भिक्षुकके सामने खड़ी करके बोले—'तुम्हें मनुष्य ही लेना है न! इनको ले जाओ।'

भिक्षुक उठ खड़ा हुआ। वह बोला—'ये तो मेरी माता हैं। मैं अपनी बात सत्य करनेको अड़ा था, वह सत्य हो गयी। भगवान् आपका मङ्गल करें।' वह चला गया वहाँसे। —सु० सिं०

श्रीधर स्वामीका संन्यास

परम भागवत श्रीधर स्वामी पूर्वाश्रममें दिग्विजयी पण्डित थे। एक बार वे दिग्विजय करके घर लौट रहे थे। रास्तेमें डाकुओंने उनको घेर लिया। तब वे आँखें मूँदकर मन-ही-मन अपने इष्टदेव भगवान् श्रीरामचन्द्रका स्मरण करने लगे। उसी क्षण डाकुओंको दिखायी दिया कि एक नवदूर्वादल-श्यामतेजस्वी तरुण धनुष-बाण लिये ललकार रहा है। डाकू डर गये और उन्होंने श्रीधरजीके चरणोंपर गिरकर दीन भावसे कातर प्रार्थना की—'महाराज! आपके साथी ये श्यामसुन्दर युवक हमें बाणोंसे मार डालना चाहते हैं—बचाइये, बचाइये।' यह सुनकर श्रीधरजी मन-ही-मन बड़े दुखी हुए और उन्होंने सोचा कि तुच्छ धनकी रक्षाके लिये मेरे प्रभुको कितना कष्ट सहना पड़ रहा है। उन्हें वैराग्य हो गया और वे उसी क्षण संसार छोड़कर काशी चले गये और वहाँ श्रीपरमानन्द स्वामीजीसे संन्यास लेकर श्रीनृसिंह-मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त की।

विकट तपस्वी

'महाराज! हमें जिनकी खोज थी, वे मिल गये।' [illegible] शिविरमें प्रवेश करके [illegible] वीरसिंहको शुभ सूचना दी। महाराज [illegible] और चल पड़े। उन्हें स्वप्नमें [illegible] सूचना दी थी कि महात्मा मधुसूदन [illegible] दर्शन करनेसे सन्तानप्राप्ति होगी। महाराजा [illegible] राजधानीसे थोड़ी दूरपर एक सरिताके किनारे कई दिनोंसे शिविरमें निवास कर रहे थे।… वे प्रसन्नतासे आगे बढ़ रहे थे और उनके पीछे-पीछे महामन्त्री और असंख्य सैनिक थे।

'महाराज! भगवान्‌की कृपासे आपका दर्शन हो सका।' राजाने तपस्वीसे सपनेकी बात कही, पर वे कुछ बोले ही नहीं। उन्होंने पलक उठाकर देखा तक नहीं! पिछले चौदह

[illegible] विश्वनाथका हृदय फिर भर आया। [illegible] आँसू बहने लगे। वे [illegible] हो गये। परन्तु निर्मलाकी [illegible] ऊँची थी। वह [illegible] समझती थी, परन्तु वह [illegible] भिन्न थी, उसपर [illegible] कुछ भी प्रभाव नहीं था। उसने कहा, 'पिताजी! आप विद्वान्, ज्ञानी और भगवद्भक्त होकर रोते क्यों हैं! शरीर तो मरणधर्मा है ही। जड पञ्चभूतोंसे बने हुए शरीरमें तो [illegible] ही है। फिर उसके लिये शोक क्यों करना चाहिये? यदि शरीरकी दृष्टिसे देखा जाय तो स्त्री अपने स्वामीकी अर्द्धाङ्गिनी है। उसके आधे अङ्गमें वह है और आधे अङ्गमें उसके स्वामी हैं। इस रूपमें स्वामीका वियोग कभी होता ही नहीं। सती स्त्रीका स्वामी तो सदैव उसके हृदयमें उसके साथ मिला हुआ ही रहता है। अतएव सती स्त्री वस्तुतः कभी विधवा होती ही नहीं। वह [illegible] नहीं करती, वह तो धर्मतः पतिको अपना [illegible] है। ऐसी अवस्थामें—पृथक् शरीरके लिये शोककी क्या आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त सबसे महत्त्वकी बात तो यह है कि सारा जगत् ही प्रकृति है, पुरुष—स्वामी तो एकमात्र भगवान् श्रीरघुनाथजी ही हैं। श्रीरघुनाथजी अजर, अमर, नित्य, शाश्वत, सनातन, अखण्ड, अनन्त, अनामय, पूर्ण पुरुषोत्तम हैं। प्रकृति कभी उनके अंदर सोती है, कभी बाहर उनके साथ खेलती है। प्रकृति उनकी अपनी ही स्वरूपा शक्ति है। इस प्रकृतिसे पुरुषका वियोग कभी होता ही नहीं। पुरुषके बिना प्रकृतिका अस्तित्व ही नहीं रहता। अतएव हमारे रघुनाथजी नित्य ही हमारे साथ हैं। आप इस बातको जानते हैं, फिर भी आप रोते क्यों हैं। कर्म की दृष्टिसे देखें तो जीव अपने-अपने कर्मवश जगत्में जन्म लेते हैं, कर्मवश ही सबका परस्पर यथायोग्य संयोग होता है, फिर कर्मवश ही समयपर वियोग हो जाता है। कर्मजनित यह सारा सम्बन्ध अनित्य, क्षणिक और मायिक है। यह नश्वर जगत् संयोग वियोगमय ही तो है। यहाँपर नित्य क्या। इस संयोग वियोगमें हर्ष-विषाद क्यों होना चाहिये।

'फिर भगवान्का भक्त तो प्रत्येक बातमें भगवान्के मङ्गलमय विधानको देखकर विधानके रूपमें स्वयं विधाताका स्पर्श पाकर प्रफुल्लित होता रहता है, चाहे वह विधान देखनेमें कितना ही भीषण क्यों न हो। अतएव पिताजी! आप निश्चय मानिये—भगवान्ने हमारे परम मङ्गलके लिये ही यह विधान किया है, जो जगत्की दृष्टिमें बड़ा ही अमङ्गलरूप और भयानक है। आप निश्चिन्त रहिये, हमारा परम कल्याण ही होगा।'

निर्मलाके दिव्य वचन सुनकर विश्वनाथजीकी सारी पीड़ा जाती रही। उन्होंने कहा—'बेटी! तू मानवी नहीं है, तू तो दिव्यलोककी देवी है। तभी तेरे ऐसे भाव हैं। तूने मुझको शोकसागरसे निकाल लिया। मैं धन्य हूँ, जो तेरा पिता कहलाने योग्य हुआ हूँ।'

मेरा उगना कहाँ गया ?

[illegible] महाकवि [illegible] विद्यापति मधुर कण्ठसे कीर्तन करते रहते और आँखोंसे झर-झर अश्रु झरता रहता—

कखन हरब दुख मोर।
हे भोलानाथ।
दुखहि जनम भेल दुखहि गमाएब।
सुख सपनहु नहिं भेल, हे भोलानाथ।

× × ×

भन विद्यापति मोर भोलानाथ गति।
देहु अभय वर मोहि, हे भोलानाथ॥

आशुतोषको प्रसन्न होते कितनी देर लगती। एक दिन एक [illegible] आया। जितना वह सुन्दर था और जैसी उसकी मीठी बोली थी—विद्यापति मन्त्रमुग्ध-से उसकी ओर देखते रह गये। आखिर उसने विद्यापतिसे अपनेको नौकर रख लेनेकी याचना की। विद्यापतिने भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। उसका नाम था 'उगना'। अब आगे उगना ही विद्यापतिकी समस्त सेवाएँ किया करता।

'उगना! भैया! पानी पिला सकोगे? बड़ी प्यास लगी है।'—चलते-चलते विद्यापति थक गये थे। लंबी यात्रा थी। साथमें केवल उगना था।

उगना समीपकी वृक्षावलीकी ओटमें गया और कुछ ही देर बाद हाथमें जलसे भरा लोटा लेकर लौट आया। विद्यापति जल पीने लगे, किंतु जलका स्वाद भी कहीं इतना मधुर होता है! यह तो निश्चय ही भागीरथीका जल है।—विद्यापति एकटक अपने सेवकको देख रहे थे।

[illegible] नहीं होने दी कि वह [illegible] करे। मैंने [illegible] अब [illegible] है, मेवाड़की मिट्टीसे यह शरीर बना है, मैं मेवाड़को [illegible] नष्ट होते नहीं देख सकता।'

[illegible]ने कटार निकालकर अपनी छातीमें मार ली। दोनों भाइयोंके बीचमें उनका शरीर भूमिपर गिर पड़ा। दोनों भाइयोंके मस्तक लज्जासे झुक गये।—सु० सिं०

स्वामिभक्ति

मारवाड़—जोधपुरके अधिपति जसवंतसिंहके स्वर्गवासके बाद दिल्लीपति औरंगजेबने महारानीके पुत्र अजीतसिंहका उत्तराधिकार अस्वीकार कर दिया। उसने जसवंतसिंहके [illegible] आसकरणके वीर पुत्र दुर्गादासको आठ हजार स्वर्ण-मुद्राओंका [illegible] प्रदानकर अल्पवयस्क राजकुमार और [illegible] सौंपनेके लिये विमुग्ध करना चाहा, पर दुर्गादास वशमें न आ सके। औरंगजेबने अपने राजमहलमें ही अजीतसिंहके [illegible] आश्वासन दिया, पर राजपूतोंने उसका विश्वास नहीं किया। दुर्गादासने राजकुमारकी प्राण-रक्षा की और जबतक वह राज्यभार सँभालनेके योग्य नहीं हो सका, तबतक उन्हें इधर-उधर छिपाते रहे। दुर्गादासकी स्वामिभक्ति तथा [illegible] अजीतसिंहने मारवाड़का आधिपत्य प्राप्त किया।

× × ×

'आपने बचपनमें मेरी बड़ी ताड़ना की है। आपने मेरा अभिभावक बनकर मुझे जितना दुःख दिया, उसे सोचनेपर मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। क्या आप जानते नहीं थे कि मैं एक दिन मारवाड़के राजसिंहासनपर बैठूँगा? कठोर बर्तावके लिये मैं आपको कड़े-से-कड़ा दण्ड प्रदान करता हूँ।' अजीतसिंहके इस कथनसे समस्त राजसभा विस्मित थी। वृद्ध दुर्गादासके चेहरेपर तनिक भी शिकन नहीं थी। उनका मौन प्रकट कर रहा था कि वे स्वामीकी आज्ञासे प्रसन्न हैं।

'आप एक मिट्टीका टूटा-फूटा करवा लेकर जोधपुरकी गलियोंमें निवास कीजिये। इतना दण्ड पर्याप्त है।' अजीतसिंहका आदेश था।

दुर्गादासने अपने नरेशका अभिवादन किया और राजदण्डको कार्यरूप प्रदान करनेके लिये राजसभासे बाहर निकल गये।

× × ×

एक दिन महाराजा अजीतसिंह घोड़ेकी पीठपर सवार होकर राजप्रासादकी ही ओर जा रहे थे। उनके साथ अनेक सेवक थे। वे राजसी ठाटमें थे। महाराजाने सहसा घोड़ेकी रास रोक ली राजपथपर। दुर्गादास एक धनीके मकानके सामने खड़े थे। हाथमें वही फूटा मिट्टीका करवा था, तनपर फटे वस्त्र थे, चेहरेपर झुर्रियाँ थीं, पर आँखमें विचित्र तेज था।

'आप प्रसन्न तो हैं?' महाराजाका प्रश्न था।

'मेरी प्रसन्नताकी भी कोई सीमा है क्या? आपकी राजधानीमें सब-के-सब समृद्ध हैं, सोने-चाँदीके पात्रमें भोजन करते हैं। अच्छे-अच्छे कपड़े पहनते हैं। केवल मैं बिना घरका हूँ; कभी भोजन मिलता है, कभी फाँका करना पड़ता है। केवल करवा ही मेरी एकमात्र सम्पत्ति है। यदि मैंने आपको कड़ाईसे न रक्खा होता, आपमें अनेक शिथिलताएँ आने देता, तो मैं भी आज इन्हीं लोगोंकी तरह सुखी रहता और ये लोग एक अन्यायी शासकके राज्यमें दरिद्र हो जाते।' दुर्गादासने अजीतसिंहको प्रेमभरी दृष्टिसे देखा। वे प्रसन्न थे।

महाराजा घोड़ेपरसे कूद पड़े। उन्होंने दुर्गादासका आलिङ्गन किया। आँखोंसे सावन-भादों बरस रहे थे दोनोंकी।

'मैं आपकी स्वामिभक्तिकी परीक्षा ले रहा था, इसीलिये दण्डका स्वाँग किया था। आप तो मेरे पिताके समान हैं।' महाराजाने अपने अभिभावकके साथ पैदल चलकर राजप्रासादमें प्रवेश किया।—रा० श्री०

आतिथ्य-निर्वाह

मारवाड़के ही नहीं, समस्त भारतीय इतिहासमें दुर्गादास राठौरका नाम अमर है। जिस समय औरंगजेबकी भारी [illegible] कुमार अजीतसिंहकी रक्षामें तत्पर थे, दिल्लीपतिने अपने पुत्र आजम और अकबरकी अध्यक्षतामें मेवाड़ और मारवाड़को जीतनेके लिये महती सेना भेजी। अकबर दुर्गादासके शिष्ट व्यवहार और सौजन्यसे प्रभावित होकर उनसे मिल गया। औरंगजेबको यह बात अच्छी नहीं लगी, वह हाथ धोकर दोनोंके पीछे पड़ गया। अकबर

ब्राह्मणी [illegible] । राजमाताने उससे कहा—'अपना पुण्य मुझे दे दे और बदलेमें तेरी इच्छा हो, उतना धन ले ले।' उसने किसी तरह भी स्वीकार नहीं किया। तब राजमाताने कहा—'तूने ऐसा क्या पुण्य किया है, मुझे बता तो सही।'

ब्राह्मणीने कहा—'मैं घरसे निकलकर सैकड़ों गाँवोंमें भीख माँगती हुई यहाँतक पहुँची हूँ। कल तीर्थका उपवास था। आज किसी पुण्यात्माने मुझे सेर लेकर थोड़ा-सा बिना [illegible] दिया। उसके आधे हिस्सेसे मैंने भगवान् शिवजीकी पूजा की। आधेमेंसे आधा एक अतिथिको दिया और शेष बचे हुएसे मैंने पारण किया। मेरा पुण्य ही क्या है। आप बड़ी पुण्यवती हैं; आपके पिता, भाई, स्वामी और पुत्र—सभी राजा हैं। यात्राकी खुशीमें आपने प्रजाका [illegible] माफ करवा दिया। सवा करोड़ मोहरोंसे शंकरकी पूजा की। इतना पुण्य कमानेवाली आप मेरा अल्प-सा दीखने-वाला पुण्य क्यों माँग रही हैं? मुझपर कोप न करें तो मैं निवेदन करूँ।'

राजमाताने क्रोध न करनेका विश्वास दिलाया। तब ब्राह्मणीने कहा—'सच पूछें तो मेरा पुण्य आपके पुण्यसे बहुत बढ़ा हुआ है। इसीसे मैंने रुपयोंके बदलेमें इसे नहीं दिया। देखिये—१. बहुत सम्पत्ति होनेपर भी नियमोंका पालन करना, २. शक्ति होनेपर भी सहन करना, ३. जवान उम्रमें व्रतोंको निबाहना और ४. दरिद्र होकर भी दान करना—ये चार बातें थोड़ी होनेपर भी इनसे बड़ा लाभ हुआ करता है।'

ब्राह्मणीकी इन बातोंसे राजमाता मीणलदेवीका अभिमान नष्ट हो गया। शंकरजीने कृपा करके ही ब्राह्मणीको भेजा था।

'अंत न होइ कोई आपना'

सवारने ऍड़ लगायी और घोड़ा रुक गया भैंसावा [illegible]।

'समुझि देखो रे मना भाई।
अंत न होइ कोई आपना॥'

महात्मा ब्रह्मगिरिके शिष्य साधु मनरंगीर बड़ी मस्तीसे पद गा रहे थे।......सवारने घोड़ा रोक दिया; हृदयमें [illegible] शब्द-बाण लग चुके थे, इसलिये विकलता बढ़ती जा रही थी।

'महाराज! आप अपने चरणोंमें मुझे स्थान दीजिये। आपके शब्दामृतसे मुझे नया जीवन मिल गया। मेरा कल्याण हो गया।' सवारने घोड़ेसे उतरकर अत्यन्त श्रद्धापूर्वक महात्मा मनरंगीरके चरणोंमें माथा टेक दिया।

'अब मुझसे हरकारेका काम नहीं हो सकता, चाहे भामगढ़के राव साहब प्रसन्न हों या अप्रसन्न। मैं भगवान्‌के भजनामृतका त्याग करके सांसारिक प्रपञ्चका विष नहीं पी सकता।' सवारके उद्गार थे।

'सिंगाजी! वास्तवमें आपने संतका हृदय पाया है। आप धन्य हैं।' महात्मा मनरंगीरने सिंगाजीके त्यागकी प्रशंसा की। वे मध्यप्रदेशके नीमाड़ मण्डलमें भामगढ़के राव साहब-की डाक ले आया करते थे। उनका वेतन एक रुपया था। सिंगाजीने राव साहबकी नौकरी छोड़ दी और साधु मनरंगीरकी कृपासे पीपाल्याके जंगलमें कुटी बनाकर भगवान्‌के भजनमें तल्लीन हो गये। उन्होंने अनेक पद रचे। संत सिंगाजी तुलसीदासके समकालीन थे।—रा० श्री०

शेरको अहिंसक भक्त बनाया!

[illegible] राजा पीपाजी राज-पाट छोड़ रामानन्द स्वामीके शिष्य बने और उनकी आज्ञासे द्वारकामें हरि-दर्शन [illegible]। दर्शन करके अपनी पत्नीसहित लौट रहे थे कि रास्तेमें उन्हें एक [illegible] मिला।

रानी शेरको देख कातर हो उठी। राजाने उसे समझाया—'रानी! घबराती क्यों है। गुरुदेवने सर्वत्र हरिरूप देखनेका जो उपदेश दिया था, वह भूल गयी? मुझे तो इसमें हरिरूप ही दीख रहा है। और हरिसे भय कैसा।'

रानी कुछ आश्वस्त हुई। राजाने गलेसे तुलसी-माला निकाल व्याघ्रके गलेमें डाल दी और उसे एक कृष्ण-मन्त्रका उपदेश देते हुए कहा—'मृगेन्द्र! इसे जपो; इसीके प्रभावसे वाल्मीकि, अजामिल, गजेन्द्र—सभी तर गये।'

कारण प्रभु श्रीरामचन्द्रका प्राकट्य (अवतार) हुआ था। और यह [illegible] जिस महात्माके आविर्भाव होनेके [illegible] है। [illegible] गुरुके [illegible] है, इसकी भी परीक्षा हो जायगी।'

गुरुजी श्रीरामदासजीने स्नेह भरसे अम्बादासको पास बुलाया। मुझे गुरुजीने बुलाया है, इसी बातसे अम्बादासको अपार आनन्द हुआ। स्वामीजी उस कुएँपर पहुँचे हुए डालीको दिखाकर रामदासजी बोले— 'अम्बादास! तुम उस डालीको काट सकोगे?' तत्परतासे अम्बादासने उत्तर दिया—'हाँ जी! सहज ही काट सकूँगा।'

'तो फिर देर क्यों, कुल्हाड़ी साथ ले जाओ। उस डालपर जाकर उसे काट डालो।' गुरुजीने आज्ञा दी।

अपनेपर ही अनुग्रह करनेवाले अम्बादासने 'जी, अभी लो' कहकर अपनी धोतीको अच्छी तरहसे बाँधकर पेड़पर चढ़नेकी तैयारी की। वे चढ़ ही रहे थे कि गुरुजीने फिर कहा—'देखो, अच्छी तरह काटना। परंतु एक काम करना, डालीके आगे भागकी ओर पीठ करके डालपर खड़े होकर डालको अपने सामनेसे काटना।'

सब शिष्य तो यह सुनकर देखते ही रह गये। इस प्रकारके अनुसार काटनेपर तो अम्बादास भी डालके साथ ही कुएँमें गिरेंगे। इसका कुछ भी विचार गुरुजीने नहीं किया।

परंतु अम्बादासके मनमें कोई दूसरा विचार ही नहीं आया। 'जो आज्ञा' कहकर वह शीघ्र ही उस डालतक पहुँच गया। और जैसे गुरुजीने कहा था, उसी तरह डालके छोरपर खड़े होकर उसे काटना आरम्भ किया। उसके मनमें संदेह उत्पन्न करनेके लिये रामदासजी बोले—'मूर्ख! यों काटोगे तो तुम स्वयं गिर जाओगे। कुएँमें पड़कर डूबोगे।'

अम्बादासने उसी स्थानसे प्रणाम करके विनयपूर्वक कहा—'गुरुदेव! आपका पालन करते समय मुझे कुछ भी नहीं हो सकता। जब आपकी कृपासे मैं संसार-सागरसे ही तर जाऊँगा, तब इस छोटे कुएँकी तो बात ही क्या है।'

'ठीक है!' गुरुजीने हँसते हुए कहा—'इतनी श्रद्धा है तो काट डालो।'

अम्बादासने डालको आधा काटा होगा कि वह टूटकर बड़ी आवाजके साथ अम्बादासके सहित कुएँमें गिर पड़ी। शिष्य मण्डली काँपकर हाहाकार कर उठी। श्रीरामदासजीने सबको वहीं चुपचाप बैठे रहनेकी आज्ञा दी। व्यथित चित्तसे सब वहीं बैठ गये। वे तरह-तरहकी कल्पना करने लगे कि 'जलमें डूबकर अम्बादासका देहान्त तो नहीं हो गया होगा।' 'इतने बड़े कुएँमें तो गिरनेकी आशङ्कासे ही आदमी मर जाता है और अम्बादास तो प्रत्यक्ष गिरा है।' 'गिरते समय मारे भयके उसकी चेतना लुप्त हो गयी होगी। तभी कोई आवाज नहीं आयी। देखें, अब उसकी आवाज आयेगी।' परंतु समर्थ श्रीरामदासजी तो बड़ी शान्तिसे पहली बातें आगे चलाने लगे, मानो कुछ हुआ ही नहीं।

अम्बादास सीधा कुएँके बीचमें गिरा। न मालूम शाखा और करौत कहाँ गयी! जलमें गिरते समय उसने अपने गुरुका और प्रभु श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण किया। एक बार जलसे ऊपर आकर आँखें खोलीं तो देखा कि जिनके पुण्य तथा दुर्लभ दर्शनके लिये अनेकों साधकोंने अपने प्राण-मन अर्पण कर दिये, जिनके लिये वह स्वयं बड़ी आतुरता तथा अधीरतासे प्रतीक्षा कर रहा था, वे ही भास्कर-कुल-दिवाकर रघुवंशशिरोमणि सच्चिदानन्दघन-विग्रह भगवान् श्रीरामचन्द्र उसके सामने मन्द-मन्द मुसकराते हुए खड़े हैं। पता नहीं, जल कहाँ चला गया। निर्निमेष नेत्रोंसे टकटकी लगाये अम्बादास देखता ही रहा। अत्यन्त तेजःपुञ्ज शरीरसे मधुर-मधुर दिव्य सुगन्ध निकलकर मनको मुग्ध कर रही थी। अति सुन्दर श्यामसुन्दर शरीर था। प्रभुके एक हाथमें बाण और दूसरेमें धनुष था। मस्तकपर अति प्रखर सुवर्ण-मुकुटसे बिखरे हुए बाल बाहर निकलकर कंधोंतक फैले हुए थे। सुन्दर पीताम्बर फहरा रहा था।

बस, अम्बादास स्मित-मुग्ध होकर देखता ही रह गया। उसके नेत्रोंसे प्रेमानन्दके आँसू बहने लगे। तदनन्तर बाह्य चेतना आनेपर वह प्रभुके चरणोंपर गिर गया। उसका जीवन कृतार्थ हो गया। एकमात्र दिव्य सुखानुभूतिके अतिरिक्त कोई भी संवेदना उसके मनमें उस समय नहीं रह गयी। हाथमें और सिरमें समीप सटे हुए भगवान्के कोमल चरण-कमल और सिरपर प्रभुका वरद हस्त। इसके अतिरिक्त सारा जगत् उसके लिये विस्मृत अथवा विलुप्त हो गया। वह अनन्त सुखसागरमें निमग्न हो गया।

ऊपर वृक्षके नीचे बैठे हुए शिष्योंने देखा कि बहुत देर हो गयी है और स्वामीजी उसी पूर्वप्रसङ्गको शान्तिपूर्वक चला रहे हैं। तब अधीर होकर एक शिष्यने हाथ जोड़कर विनती की—'महाराज! जबतक हम अम्बादासको नहीं

कुत्तेको भी न्याय

(रामराज्यकी महिमा)

[illegible] राजेन्द्र श्रीरामचन्द्रकी राजसभा [illegible] और धर्मकी मूर्ति सनातन थी। उनके राज्यमें किसीको [illegible] या किसी प्रकारकी भी बाधा थी ही नहीं। [illegible] एक दिन श्रीरामभद्र प्रभुने आज्ञा दी कि देखो बाहर कोई व्यवहारी या प्रार्थी तो उपस्थित नहीं है। कोई हो तो उसे बुलाओ, उसकी बात सुनी जाय। एक बार लक्ष्मणजी बाहर गये और कहा कि 'दरवाजेपर कोई भी उपस्थित नहीं है।' प्रभुने कहा—'नहीं, तुम ध्यानसे देखो, जो कोई भी हो उसे तत्परतापूर्वक बुला लाओ।' इस बार जब लक्ष्मणजीने देखा तो मनुष्य तो कोई दरवाजेपर था नहीं, पर एक श्वान वहाँ अवश्य खड़ा था, जो बार-बार दुःखित होकर रो रहा था। जब लक्ष्मणजीने उससे भीतर चलनेको कहा तो उसने बतलाया कि 'हमलोग अधम योनिमें उत्पन्न हुए हैं और राजा साक्षात् धर्मका विग्रह ही होता है, अतएव महाराज! मैं राजदरबारमें प्रवेश कैसे करूँ?'

अन्तमें लक्ष्मणजीने भगवान्से पुनः आज्ञा लेकर उसकी प्रभुके पास पेशी करायी। भगवान्ने देखा तो उसके मस्तकमें चोट लगी हुई थी। भगवान्ने उसे अभयदान देकर पूछा—'बतलाओ, तुम्हें क्या कष्ट है, निडर होकर बतलाओ, मैं तुम्हारा कार्य तत्काल सम्पन्न कर देता हूँ।'

कुत्ता बोला—'नाथ! मैंने किसी प्रकारका अपराध नहीं किया, तो भी सर्वार्थसिद्धि नामक भिक्षुने मेरे मस्तकपर प्रहार किया है। मैं इसीका न्याय कराने श्रीमान्के द्वारपर आया हूँ।' भगवान् रामने उस भिक्षुको बुलाकर पूछा—'तुमने किस अपराधके कारण इसके मस्तकपर लाठीका प्रहार कर इसका सिर फोड़ दिया है?'

भिक्षुने कहा—'प्रभो! मैं क्षुधातुर होकर भिक्षाटनके लिये जा रहा था और यह श्वान विषम ढंगसे मार्गमें आ गया। भूखसे व्याकुल होनेके कारण मुझे क्रोध आ गया। मैं अपराधी हूँ, आप इच्छानुसार मेरा शासन करें।'

इसपर भगवान्ने अपने सभासदोंसे न्याय-व्यवस्थानुसार दण्ड बतलानेको कहा। ब्राह्मण अदण्ड्य होता है अतः सभासदोंने कुत्तेको ही प्रमाण माना। कुत्तेने भगवान्से कहा कि 'यदि प्रभो! आप मुझपर प्रसन्न हैं और मेरी सम्मति चाहते हैं तो मेरी प्रार्थना है कि इस भिक्षुको कालंजर मठके कुलपति पदपर अभिषिक्त कर दिया जाय।' कुत्तेके इच्छानुसार भिक्षुको मान-दानपूर्वक हाथीपर चढ़ाकर वहाँ भेज दिया गया। तदनन्तर सभासदोंने बड़े आश्चर्यपूर्वक श्वानसे पूछा, 'भैया! यह तो तुमने उस भिक्षुको वर ही दे डाला, शाप नहीं।' कुत्ता बोला—'आपलोगोंको इसका रहस्य विदित नहीं है। मैं भी पूर्वजन्ममें वहींका कुलपति था। यद्यपि मैं बड़ा सावधान था और बड़ा विनीत, शीलसम्पन्न, देव-द्विजकी पूजा करनेवाला, सभी प्राणियोंका हितचिन्तक तथा देव-द्रव्यका रक्षक था। तथापि कुलपतित्वके दोषसे मैं इस दुर्योनिको प्राप्त हुआ; फिर यह भिक्षु तो अत्यन्त क्रोधी, असंयमी, नृशंस, मूर्ख तथा अधार्मिक है। ऐसी दशामें वहाँका कुलपतित्व इसके लिये वरदान नहीं, अपितु घोर अभिशाप है। किसी भी कल्याणकामी व्यक्तिको मठाधिपतित्वको तो भूलकर भी नहीं स्वीकार करना चाहिये। मठाधिपत्य सात पीढ़ियों तकको नरकमें डाल देता है। जिसे नरकमें गिराना चाहे, उसे देवमन्दिरोंका आधिपत्य दे दे। जो ब्रह्मस्व, देवांश, स्त्रीधन, बालधन अथवा अपने दिये हुए धनका अपहरण करता है, वह सभी इष्ट-मित्रोंके साथ विनाशको प्राप्त होता है। जो मनसे भी इन द्रव्योंपर बुरी दृष्टि रखता है, वह घोर अवीचिमान नामक नरकमें गिरता है। और फिर जो सक्रिय इनका अपहरण करता है उसका तो एक-से-दूसरे नरकोंमें बराबर पतन ही होता चलता है। अतएव भूलकर भी मनुष्य ऐसा आधिपत्य न ले।'

कुत्तेकी बात सुनकर सभी महान् आश्चर्यमें डूब गये। वह कुत्ता जिधरसे आया था उधर ही चला गया और काशी आकर प्रायोपवेशनमें बैठ गया।

(वा० रामायण, उत्तरकाण्ड, अध्याय ५९ के बाद प्रक्षिप्तसर्ग अ० १)

[illegible] लगी। [illegible] किसीको नहीं दिया।

[illegible] कहा—'भाई, अब पॉकेटमें [illegible] किसीको देते नहीं बना,

तब भगवान् तुम्हें हाड़-मांसके बच्चे कैसे देंगे। प्रेम और दयाके बिना कोरे व्रत-उपवासोंसे भगवान् कभी प्रसन्न नहीं होते।' उपस्थित लोगोंने यह शिक्षा गाँठ बाँध ली। —गो० न० बै०

(संतचरित्रमाला, पृ० २११)

परधर्मसहिष्णुताकी विजय

शिवाजी अपने तंबूमें बैठे सेनानी [illegible] [illegible] कर रहे थे। इसी बीच हाथमें एक [illegible] लिये सेनानी पहुँचे। उनके पीछे एक डोला लिये दो सैनिक आये। डोला रखकर वे चले गये।

सेनानीने प्रसन्नमुद्रासे कहा—'छत्रपते! आज मुगलसेना [illegible] हो गयी। सेनापति बहलोल जान लेकर भागा। अब इतना दम नहीं कि मुगल सेना यहाँ पुनः पैर रख सके।'

शिवाजीने डोलेकी ओर देखते हुए गम्भीरतापूर्वक पूछा—'यह क्या है?'

अट्टहास करते हुए सेनानीने कहा—'इसमें मुस्लिम रमणियोंमें सुन्दरताके लिये प्रसिद्ध बहलोलकी बेगम है, जो [illegible] भेंट करनेके लिये लायी गयी है और यह मेरे हाथका कुरान शरीफ है। हमारी हिंदू-संस्कृतिसे खिलवाड़ करनेवालोंसे जी भर कर प्रतिशोध लीजिये।'

शिवाजीने कुरान लेकर चूम लिया और डोलेके पास जाकर पर्दा हटाया और बहलोलकी बेगमको बाहर आनेको कहा। उसको ऊपरसे नीचे तक निहारकर कहा—'सचमुच तू बड़ी ही सुन्दर है। अफसोस है कि मैं तेरे पेटसे पैदा नहीं हुआ, नहीं तो मैं भी कुछ सुन्दरता पा जाता।'

उन्होंने अपने एक अन्य अधिकारीको आदेश दिया कि सम्मान और पूरी सुरक्षाके साथ बेगम तथा कुरान-शरीफको बहलोलखाँको जाकर सौंप आइये।

फिर शिवाजीने सेनानीको फटकारा—'सेनापते! आप मेरे साथ इतने दिन रहे, पर मुझे नहीं पहचान सके। हम वीर हैं; वीरकी यह परिभाषा नहीं कि अबलाओंपर प्रहार करें, उनका सतीत्व लूटें और धर्मग्रन्थोंकी होली जलायें। किसीकी संस्कृति नष्ट करना कायरता है। ऐसे कायरोंका शीघ्र अन्त हो जाता है। परधर्म-सहिष्णु ही सच्चा वीर है।'

सेनापतिको अपनी मूर्खतापर लज्जा आयी।

इधर पत्नी और कुरानको ससम्मान लौटाया देख बहलोलखाँ-जैसा क्रूर सेनापति भी पिघल गया। शिवाजीने उसे दिल्ली लौट जानेका जो पत्र भेजा, उसे भी उसने पढ़ लिया और अन्तमें यही निश्चय किया कि इस फरिश्तेको देखकर दिल्ली लौटूँगा।

बहलोलने सैनिक भेजकर शिवाजीसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। साथ ही भेटके समय दोनोंके निःशस्त्र रहनेकी प्रार्थना की। शिवाजीने भी स्वीकार कर लिया।

नियत तिथि और समयपर शिवाजी मशाल लिये नियत स्थानपर बहलोलकी प्रतीक्षा करते खड़े थे। इसी बीच बहलोलखाँ आ पहुँचा और 'फरिश्ते' कहकर शिवाजीसे लिपट गया। फिर शिवाजीके पैरोंपर गिरकर कहने लगा—'माफ कर दे मुझे। बेगुनाहोंका खून मेरे सर चढ़कर बोलेगा। खुदाके लिये तू तो माफ कर दे। अब मुझ-जैसे नापाक इन्सानको इस दुनियामें रहनेका कोई हक नहीं। सिर्फ तेरे पाक कदम चूमने की ख्वाहिश थी। विदा! अलविदा!!'

बहलोल छुरा निकाल आत्महत्या करना ही चाहता था कि शिवाजीने हाथ पकड़ लिया और छुरा दूर फेंक उसे गले लगा लिया। —गो० न० बै०

शिवाका आदर्श दान

सन् १६७६ की बात है, शिवाजी महाराज रायगढ़में [illegible] किलेमें आकर निवास कर रहे थे। एक दिन वे यहीं राजमहलमें बैठे थे कि नीचेसे 'जय-जय रघुवीर समर्थ!' की आवाज आयी।

शिवाजी तत्काल नीचे उतर आये। देखा, सामने साक्षात् गुरुदेव भिक्षाकी झोली लिये खड़े हैं। उन्होंने प्रणाम किया और भिक्षा लानेके लिये वे भीतर आये।

भिक्षाके लिये अन्न-वस्त्र, सोना-मोती, मणि-माणिक्य

[illegible] पहुँचे। महाराजने पूछा—'क्या इतने [illegible] लिखनेके लिये तुमसे कहा था, वे लिखा है [illegible]' बालाजीने कहा—'हाँ, महाराज!' 'तो दिखाओ।'—[illegible] दिया। बालाजीने कहा—'अभी साफ नहीं [illegible], [illegible] कहें तो सुनाऊँ।'

'[illegible], [illegible] लिखे बिना पत्र नहीं पढ़ना चाहिये!' [illegible] कहा।

[illegible] कागज निकाल, 'जैसी महाराजकी इच्छा!' कहते हुए बालाजी पढ़ने लगा—

'श्री। [illegible] श्रीपितृचरणोंमें बालक शिवाका [illegible] साष्टाङ्ग नमस्कार। अनन्तर—

आपका पत्र प्राप्त हुआ। आशय ध्यानमें आया। आपने [illegible] जिस कार्यका बीड़ा उठाया, उसके लिये [illegible] रहो; सो आपका आदेश हमारे लिये [illegible] है। अनन्तर आपने शुभ कामना प्रकट की है कि तुम्हारे शत्रुओंकी पत्नियाँ अपने गरम-गरम अश्रुओंसे अपने [illegible] हृदयकी शान्ति करें, सो आपके तथा पूर्वजोंके पुण्यसे आपका यह आशीर्वाद सदा सफल रहा है। अनन्तर आपने लिखा है कि शिवा, यदि तू मेरा पुत्र है तो मेरा अपमान करनेवाले, मुझे कैद करानेवाले नीच बाजी घोरपडेका [illegible] चाहिये, सो आपके प्रतापसे वह नीच घोरपडे [illegible] नष्ट होगा, जिस प्रकार गजराजके सामनेसे [illegible] इति अलम्। आशीर्वादेच्छु—'

महाराजको पत्र पसंद आ गया। उन्होंने कल साफकर दरबारमें पढ़नेको कहा। और आज्ञा लेकर बालाजी चला गया। सारी घटना देख और सुनकर शिवाजीका सेवक [illegible] मुस्करा रहा था।

[illegible] शिवाजीने उससे मुस्करानेका कारण पूछा। सेवकने अपराधके लिये क्षमा माँगकर कहा—'बालाजी [illegible] पूर्वसे सादा कागज पढ़ रहा था, इसीलिये हँसी आयी।' शिवाजीके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

दूसरे दिन दरबार लगनेपर शिवाजीने बालाजीसे पत्र धारा करनेकी बात पूछी। बालाजीने पत्र निकाल सामने रख दिया। शिवाजीने पास पड़े सादे कागजको उठा बालाजीको देते हुए कहा—'यह तुम्हारे इस पत्रकी प्रथम प्रति, जो तुमने कल पढ़ी, लो और ठीक उसी तरह पढ़ो। अगर एक भी गलती हुई तो माँ भवानी ही तुम्हारी रक्षा कर सकती है।'

सरदार आबाजीको पत्र देते हुए कहा—'आप इसे मिलाइये, यह जो पढ़ेगा।'

बालाजीने सिर अञ्जलिमें छिपाकर कहा—'क्षमा हो महाराज! कार्यव्यस्ततासे लिख नहीं पाया। महाराजकी आज्ञा हुई तो 'नहीं' कहनेका साहस भी नहीं हुआ और''और'''

महाराजने कहा—'और सादा कागज इस तरह पढ़ दिया मानो लिखा हुआ ही पढ़ रहे हो। पर बिल्लीके आँखें मूँदनेसे दुनिया अंधी नहीं हो जाती। दरबारियो! इसने धोखा दिया है। बतायें, क्या दण्ड दें?'

दरबारी चुप रहे। महाराजने कहा—'अच्छा मैं स्वयं दण्डविधान करता हूँ। बालाजी! तुमने गम्भीर अपराध किया है, इसलिये दण्ड भी गम्भीर भुगतना होगा। आगे आओ!'

बालाजी आगे आ सिर झुकाकर खड़ा हो गया। महाराजने सेवकको संकेत किया। सेवक आच्छादित चाँदीका थाल ले आया। शिवाने उसमेंके वस्त्र उलटकर पगड़ी निकाली और बालाजीके सिरपर धर दी।

बालाजीने आनन्द और आश्चर्यके साथ कहा—'महाराज!'

शिवाजीने कहा—'हाँ, बालाजी! आजसे तुम दरबारके मन्त्री नियुक्त किये गये। अबसे सरकारी पत्र-व्यवहार-विभाग तुम्हारे अधीन रहेगा। तुम्हारे अपराधका दण्ड यह है कि आजसे तुम अपनी यह समय-सूचकता, अद्भुत स्मरण-शक्ति, अलौकिक चातुर्य और अपने मोतीके समान अक्षरोंका उपयोग स्वदेश-हितको छोड़ और किसी काममें न लानेकी शपथ लो।'

बालाजीने जमीनपर सिर लगाकर शपथ ली।—गो०न०[illegible]

उदारताका त्रिवेणी-सङ्गम

(शिवाजीका ब्राह्मण-प्रेम, तानाजीकी स्वामिनिष्ठा और ब्राह्मणकी प्रत्युपकार-बुद्धि)

औरंगजेबने मैत्रीके बहाने शिवाजीको दिल्ली बुलाकर कैद कर लिया और शिवाजीने भी धोखा देकर आगरेसे भाग [illegible] इसका कारण प्रकट किया। भागते समय उनके साथ उनके पुत्र संभाजी और दो अन्य अनन्य स्वामिभक्त सेवक और तानाजी थे।

रास्तेमें एक झाड़ीके बीच उनकी शेरसे मुठभेड़ हुई।

[illegible] और [illegible] उन्होंने [illegible] सूबेदार [illegible] था ।

[illegible] तानाजीने [illegible] और [illegible] सूबेदारके [illegible] थे और वे असावधान भी थे । इसलिये इसका परिणाम क्या हुआ, वह सहज ही समझा जा सकता है । सूबेदारसहित सारी पल्टन-का सफाया कर तानाजी शिवाजीको लेकर ब्राह्मणके घर लौट आये ।

ब्राह्मण आनन्दसे फूला नहीं समाता था । तीनों उदार नेताओंका संगम वहाँ त्रिवेणी और तीर्थराजका दृश्य उपस्थित कर रहा था ।—गो० न० बै० (नीतिबोध पृ० ७०)

धन है धूलि समान

(लेखक—श्रीताराचन्द्रजी अडालजा)

छत्रपति शिवाजीने जब तुकारामकी अटल निःस्पृहताकी बात सुनी, तब वे ऐसे सच्चे संतके दर्शनके लिये अधीर हो उठे और स्वय तुकारामके पास जा पहुँचे ।

देहू गाँवकी जनताको आज और आश्चर्यका अनुभव हुआ । देहू-जैसे छोटे-से गाँवमें छत्रपति शिवाजी महाराजका शुभागमन ! जय घोषणासे दिशाएँ गूँज उठीं ।—'छत्रपति शिवाजी महाराजकी जय !'

तुकारामको देखते ही शिवाजी उनके चरणोंमें लोट गये।

'हैं, हैं छत्रपति ! राजाको ईश्वरस्वरूप माना जाता है। आप तो पूजनीय हो ।' तुकारामने शिवाजीको उठाया और प्रेमसे हृदयसे लगा लिया ।

'आज आप-जैसे संतके दर्शन पाकर मैं कृतार्थ हो गया । मेरी प्रार्थना है कि मेरी इस अल्प सेवाको आप स्वीकार करें ।'

राजाने स्वर्ण-मुद्राओंसे भरी थैली तुकारामके चरणोंमें रख दी ।

'यह आप क्या कर रहे हैं महाराज ! भक्तिमें बाधा डालने-वाली मायामें मुझे क्यों फँसाते हैं ! मुझे धन नहीं चाहिये। मुझे जो कुछ चाहिये वह मेरे विट्ठल प्रभुकी कृपासे अनायास मिल जाता है । जब भूख लगती है, तब भिक्षा माँग लाता हूँ । रास्तेमें पड़े चिथड़ोंसे शरीरको ढँक लेता हूँ । कहीं भी सोकर नींद ले लेता हूँ । फिर मुझे किस बातकी कमी है। मैं तो मेरे विठोबाकी सेवामें परम सुख-सर्वस्वका अनुभव कर रहा हूँ महाराज ! आप इस धनको वापस ले जाइये । प्रभु आपका कल्याण करें ।'

शिवाजी चकित हुए । वे बोल उठे—'धन्य हो भक्त-शिरोमणि ! ऐसी अनुपम निःस्पृहता और निर्ममता मैंने कभी [illegible] धन तो नहीं [illegible] रहे हैं ! मैं इस सम्मानका पात्र नहीं हूँ ।'

'भूले नहीं हैं, निश्चय ही हम आपकी ही सेवामें उपस्थित हुए हैं ।'

'ऐसी बात ! मैं तो पामर प्राणी हूँ । मेरा तो विट्ठल [illegible] कोई नहीं !'

'आप सन्तोंमें परम श्रेष्ठ हैं', यह सुनकर महाराजा छत्रपति शिवाजीने [illegible] क्योंकि लिये ये हाथी, घोड़े, [illegible] और [illegible] हैं । आप हमारे साथ पधारने-की कृपा करें ।'

सन्त तुकाराम हँस पड़े—'अरे भाई ! यदि मुझे [illegible] है तो ईश्वरके दिये हुए पैर तो मौजूद हैं । फिर इस [illegible] क्या [illegible] !'

[illegible] उदासीनता [illegible] मिला—'चाह, अब तुम [illegible] छोड़कर राजदरबारमें विराजो ।'

संत तुकाराम नम्रतापूर्वक कहने लगे—'आप छत्रपतिको मेरा संदेश कह दें कि मेरा आपको सदा-सर्वदा आशीर्वाद है । कृपा करके मुझे मेरे विट्ठल भगवान्की सेवासे विमुख न करें । मैं जहाँ और जैसे हूँ, यहाँ वैसे ही ठीक हूँ । मेरी यह कुटिया ही मेरा राजमहल है और यह छोटा-सा मन्दिर ही मेरे प्रभुका मेरा राजदरबार है । वैभवकी वासनाको जगा-कर मुझे इस भक्ति-आनन्दसे विचलित न करें । मेरे विठोबा आपका कल्याण करें ।'

[illegible] हुए सैनिकोंसे फिर हँस पड़े—'कैसे गँवार हैं [illegible] ! भगवान्के दिये हुए धन-वैभवको ठुकराते हैं, पर [illegible] करते हैं ।'

× × ×

[illegible] दिन [illegible] प्रायश्चित्त [illegible]।

[illegible] न था। उन्होंने लिखित [illegible], पर मैं [illegible]। जो [illegible] बैठे हुए हैं, [illegible]।'

[illegible] तो हमलोग भी [illegible] है। फिर भी हमलोगोंको [illegible] प्रसन्न कर लो।'

[illegible] हो गये। उनके समक्ष नाथने नदीमें [illegible] अन्न, तीर्थ और पञ्चगव्य मन्त्र। [illegible] पढ़ रहे थे।

[illegible] यहाँ अकस्मात् [illegible] एक [illegible] कौन और कहाँ है?' यह पूछने लगा। [illegible] कुष्ठ हो गया था, [illegible] रखनेको [illegible]।

[illegible] कहा—'देखो, यह नदी किनारे प्रायश्चित्त कर रहे हैं। [illegible] तुम्हें उनसे क्या काम है?'

अभ्यागत ब्राह्मणने बताया—'मैंने त्र्यम्बकेश्वरमें कठोर अनुष्ठान किया। भगवान् शंकरने प्रसन्न हो मुझे आदेश दिया कि पैठणमें जाओ। वहाँ विष्णुभक्त एकनाथने श्राद्धके दिन एक चमारको अन्न खिलाकर भूतदयाका अपूर्व पुण्य कमाया है। यदि वह तुम्हें उसमेंसे कुछ पुण्य दे देगा तो तुम्हारा कुष्ठ मिट जायगा।'

ब्राह्मण आश्चर्यके साथ आपसमें तरह-तरहके वितर्क करने लगे। कोढ़ी ब्राह्मणने एकनाथके पास पहुँचकर सारा हाल कह सुनाया।

नाथने कहा—'अवश्य ही उस दिन अन्त्यजको अन्न-दान कराकर भगवान् शंकरने मुझे भूतदयाका पुण्य प्राप्त कराया है। लो, उनकी आज्ञा है तो उसका थोड़ा भाग तुम्हें भी दिये देता हूँ।'

प्रायश्चित्त करानेवाले ब्राह्मण एकटक देखते रहे। नाथने हाथमें जल ले उस पुण्यका अंशदान कर उस ब्राह्मणपर प्रोक्षण किया। देखते देखते उसकी काया स्वर्ण सी चमक उठी। कुष्ठका नामोनिशान न था। प्रायश्चित्त करानेवालोंने ही नाथसे क्षमा माँग अपने संत-द्रोहका प्रायश्चित्त किया।

—गो०न०बै० (भक्ति-विजय, अ० ४६)

क्षमाने दुर्जनको सज्जन बनाया

[illegible] पैठण नगरमें गोदावरी-स्नानके मार्गमें ही एक [illegible] थी। उस मसजिदमें एक पठान रहता था। मार्गसे [illegible] हिंदुओंको वह बहुत तंग किया करता था। [illegible] ही उसे अपना बड़प्पन [illegible]।

[illegible] भी उसी मार्गसे गोदावरी-स्नानको [illegible] थे। वह पठान उन्हें भी बहुत तंग करता था। दूसरे [illegible] कुछ कहते थे; किंतु एकनाथ महाराज [illegible] नहीं थे। एक दिन जब श्रीएकनाथजी [illegible] जा रहे थे, तब उस पठानने उनके ऊपर कुल्ला कर दिया। श्रीएकनाथजी फिर नदी-स्नान करने [illegible], किंतु जब वे स्नान करके आने लगे, तब पठानने फिर [illegible]। [illegible] चार-पाँच बार [illegible] पड़ता था।

'यह काफिर गुस्सा क्यों नहीं करता?' पठान एक दिन श्रीएकनाथजीके पीछे ही पड़ गया। वह बार-बार कुल्ला करता और एकनाथजी बार-बार गोदावरी-स्नान करके लौटते गये। पूरे एक सौ आठ बार उसने कुल्ला किया और उतनी ही बार एकनाथजीने स्नान किया।

संतकी क्षमाकी अन्तमें विजय हुई। पठानको अपने कामपर लज्जा आयी। वह एकनाथजीके पैरोंपर गिर पड़ा—'आप खुदाके सच्चे बंदे हैं। मुझे माफ कर दें। अब मैं कभी किसीको तंग नहीं करूँगा।'

'इसमें क्षमा करनेकी क्या बात है। आपकी कृपासे आज मुझे एक सौ आठ बार गोदावरीका पुण्य स्नान प्राप्त हुआ।' एकनाथजीने उस पठानको आश्वासन दिया।

—सु० सिं०

[illegible] चन्द्रभागामें [illegible] और कुछ [illegible] दिया।

इधर [illegible] भगवानकी पत्नी [illegible] लगी। [illegible] पहुँचकर [illegible] उन्होंने कहा—'उसे तो [illegible] दिया।'

[illegible] दो [illegible] आकर भगवानकी [illegible]। बेचारी [illegible] हाथ घर लौटी।

[illegible] के घर [illegible] उन्होंने मणि न देखकर अपनी [illegible]। [illegible] सुनाया। उसने सर्वत्र [illegible] नामदेवने पारस [illegible] लिया। लोगोंमें एक [illegible]।

देखते-देखते चन्द्रभागापर भीड़ लग गयी। भगवानने आकर नामदेवसे सीधेसे पारस दे देनेको कहा। नामदेवने कहा—'उसे मैंने तो चन्द्रभागामें डाल दिया। चाहिये तो निकालकर दिया दूँ।'

लोग हँसने लगे। नदीके गर्भमें गयी मणि कैसे निकल सकती है।

नामदेवने डुबकी लगायी, अञ्जलिभर कुछ कङ्कड़ निकाले और कहा—'लीजिये, इतने सारे पारस!'

मजाक करते हुए लोगोंने लोहेके टुकड़े उन कङ्कड़ोंसे स्पर्श कराये। सचमुच वे सोनेके बन गये। लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। —गो० न० बै०

(भक्तिविजय, अध्याय १८)

धूलपर धूल डालनेसे क्या लाभ?

राँका-बाँका पति-पत्नी थे। बड़े भक्त और प्रभुविश्वासी थे। [illegible] निःस्पृह थे। भगवानने उनकी परीक्षा करनेकी ठानी। एक दिन वे लकड़ी लाने जंगलको जा रहे थे। पति आगे-आगे चल रहे थे, पत्नी पीछे-पीछे आ रही थीं। राहमें किसी [illegible] होकर [illegible]। उन्होंने देखा, सोनेकी मोहरोंसे भरी थैली खुली पड़ी है। वे उसे देखकर जल्दी-जल्दी धूल डालकर उसे ढकने लगे। इतनेमें बाँकाजी आ पहुँचीं। उन्होंने पतिसे पूछा, 'क्या कर रहे हैं?' राँकाजीने पहले तो नहीं बताया, पर विशेष आग्रह करनेपर कहा—'सोनेकी मोहरें थीं। मैंने समझा, इनपर कहीं तुम्हारा मन न चल जाय; इसलिये इन्हें धूल डालकर ढक रहा था।' बाँकाने हँसकर कहा—'वाह, धूलपर धूल डालनेसे क्या लाभ है! सोनेमें और धूलमें भेद ही क्या है, जो आप इन मोहरोंको ढक रहे हैं।'

जब सूली पानी-पानी हो गयी!

एक शूद्र अपनी पत्नीके साथ कार्तिकी यात्राके निमित्त पंढरपुर गया। उसके साथ उसकी नन्हीं-सी पुत्री जनी भी थी। उत्सव समाप्त होनेपर वह अपने घर लौटने लगा। जनीका मन पंढरपुरमें भगवानके भजन-कीर्तनमें इतना रम गया कि वह माता-पिताके साथ घर जानेके लिये तैयार नहीं हो रही थी। माता-पिताने बहुत समझाया, पर उसने एक भी न मानी। अन्तमें माता-पिता उसे विट्ठल मन्दिरमें ही छोड़कर चले गये।

भजन समाप्त होनेपर जब सभी भक्त चले गये, तब नामदेवकी दृष्टि जनीपर पड़ी। उसके अभिभावकोंको वहाँ न देख उस बालिकाको वे अपने साथ घर ले आये। अब जनी नामदेवके घर दासी बनकर रहने लगी।

नामदेवके यहाँ नित्य ही बड़े-बड़े साधु-संत आते। जनीको अनायास उनका सत्सङ्ग प्राप्त होता। सत्सङ्गकी महिमासे धीरे-धीरे उसका मन भगवान्में इतना रमने लगा कि वह अपना नित्यका काम भी भूल जाती। उसने अपना चित्त प्रभु-चरणोंमें समर्पित कर दिया। इस कारण भक्तवत्सल भगवान्को उसके काम पूरे करने पड़ते। कई बार ऐसा हुआ कि वह भजनकी धुनमें जितने ही घरके काम करना भूल गयी। नामदेवकी माता गोणाई ज्यों ही उसे डाँटने फटकारने लगतीं त्यों ही भगवान् उन कामोंको स्वयं रूप बदलकर कर देते।

प्रातःकाल आटा पीसनेका काम जनीके जिम्मे रहा। एक दिन वह सो गयी। भगवान्ने तत्काल पहुँचकर उसे जगाया और आटा पीसनेमें उसका साथ स्वयं देने लगे। आटा

पीसते-पीसते सुबह हो गयी । भगवान् जल्दीसे उठे और मन्दिरमें जाकर बैठ गये । इसी बीच उनके गलेका जड़ाऊ हार वहीं रह गया ।

पूजाके समय पुजारीने हार न देखकर शोर मचाया । सभीकी तरह जनीसे भी पूछा गया । पर उसने साफ इनकार कर दिया । बेचारी कुछ जानती ही न थी । जनीपर जलनेवालोंने उसके घरकी तलाशी लेनेको कहा और जाँचमें हार उसीकी कोठरीसे बरामद हुआ ।

भगवान्‌के [illegible] अपराधमें लोगोंने जनीको [illegible] दिया । [illegible] उधर भगवान्‌का [illegible] भक्तको बचानेकी [illegible] देखते सभी पानी-पानी हो गये [illegible] बता उसे गौरव देने लगे । [illegible]

नित्य-नियमका कठोर आचरण

काशी नगरमें जोगा परमानन्द नामक प्रसिद्ध हरिभक्त नित्य पूजाके बाद गीताका एक-एक श्लोक पढ़कर पंढरिको ७०० बार साष्टाङ्ग नमस्कार करता । नमस्कार किये बिना कभी उसने अन्न-जल ग्रहण नहीं किया । एक बार महाद्वारमें एक व्यापारी आया । रातमें पानी बरसनेसे कीचड़ हो गया था । जोगा नित्यकी तरह उस दिन भी आया और उसने नमस्कार शुरू कर दिये । उसकी देह कीचड़से सन गयी ।

व्यापारी यह स्थिति देख अत्यन्त प्रभावित हुआ । पासकी दूकानसे एक बहुमूल्य पीताम्बर खरीदकर वह जोगाको देने लगा । जोगाने कहा—'भाई ! मुझपर दया आती हो तो कोई फटा-पुराना वस्त्र दे दो । यह बहुमूल्य वस्त्र तो भगवान्‌को ही फबता है । इसे भगवान्‌को ही चढ़ाओ ।' व्यापारी नहीं माना, उसका अत्याग्रह और निष्ठा देख जोगाने पीताम्बर स्वीकार कर लिया ।

दूसरे दिन जोगा पीताम्बर पहनकर नमस्कार करने लगा । उसका मन रह-रहकर पीताम्बरको कीचड़से बचानेमें ही लग जाता । फलतः मध्याह्न हो गया, पर उसके नमस्कार पूरे नहीं हुए । जोगाको यह बात ध्यानमें आते देर न लगी । पीताम्बरके कारण नित्यके नियममें विघ्न पड़ते देख वह बड़ा दुखी हुआ और सोच-विचार करता भगवान्‌के महाद्वारके पास आ अनमना-सा बैठ गया । अपने विवेकपर पश्चात्तापके कारण उसकी आँखोंसे अविरल अश्रुधारा बह चली ।

इसी बीच एक विशाल सुन्दर [illegible]

पुत्र रखने [illegible] । [illegible] प्रायश्चित्तकी एक [illegible] उतरना पड़ा । तुमने [illegible] बहुमूल्य पीताम्बर [illegible] दो । इसपर मुझे [illegible] दो बाहुएँ जहाँ [illegible] सिर तुम [illegible]

पीताम्बर [illegible] आ गया और [illegible] विवेक नहीं रहा । [illegible] पश्चात्ताप । [illegible]

[illegible]

प्रेम-तपस्विनी ब्रह्मविद्या

देवर्षि नारद व्रजभूमिमें भ्रमण कर रहे थे। श्रीकृष्णचन्द्रका अवतार हुआ नहीं था; किंतु होनेवाला था। घूमते हुए वे एक यमुनापारके वनमें पहुँचे। देवर्षिको आश्चर्य हुआ—सृष्टिमें ऐसी शान्ति भी सम्भव है? लगता था कि उस काननमें पवनके पद भी शिथिल हो जाते हैं। पशु-पक्षी कहीं दीखते नहीं थे। पूरा कानन निस्पंद-गतिहीन और आश्चर्य तो यह था कि वहाँ पहुँचकर देवर्षिकी वीणा भी मूक हो गयी थी। उनकी गति भी शिथिल होती जा रही थी और उनका मन भी लगता था कि विलीन होने जा रहा है।

'क्या है यहाँ? किसका प्रभाव है यह?' देवर्षिने इधर-उधर देखा। एक अद्भुत शान्ति वहाँ सर्वत्र व्याप्त थी; किंतु उसमें तमस् नहीं था। यह प्रकाशमयी शान्ति। जैसे आलोक एवं आनन्दसे परिपूर्ण कण-कण अपनी गति खोकर स्थिर हो गया हो।

'तुम कौन हो देवि?' एक अद्भुत ज्योतिर्मयी देवी कुञ्जमें बैठी दीख पड़ी। वह तपस्विनी थी, शृङ्गार और आभूषणसे रहित थी। उसमें लगता था कि कोई पार्थिव अंश है ही नहीं, केवल ज्योतिका पुञ्जीभाव है यह। देवर्षिको लगा कि यह चिरपरिचिता है, फिर भी अपरिचिता है। उसे पहचानकर भी पहचाना नहीं जा पाता।

'मैं ब्रह्मविद्या हूँ।' देवीका स्वर प्रणवके परानादके समान गूँजा।

'ब्रह्मविद्या! आप? आप क्या कर रही हैं यहाँ?' देवर्षिने श्रद्धासे मस्तक झुका दिया।

'आप देख ही रहे हैं कि तपस्या कर रही हूँ।' देवीने उत्तर दिया।

'परंतु आपका प्राप्तव्य क्या है?' देवर्षि नहीं समझ पाते थे कि जिनकी प्राप्तिके लिये ऋषिगण युग-युगके तपसे पवित्र मनके द्वारा ध्यान करते हैं, मनन-निदिध्यासन करते हैं, उस ब्रह्मज्ञानकी साक्षात् अधिदेवताको पाना क्या हो सकता है। जो निखिल कामनाओंकी निषेधरूपा हैं, उनमें कामना क्या और बिना कामनाके तप क्यों?

'मैं गोपीभावसे श्रीनन्दनन्दनके चरण-कमल पाना चाहती हूँ!' ब्रह्मविद्याके नेत्र सजल हो गये। 'उनकी कृपाके बिना उनके श्रीचरण मिला नहीं करते देवर्षि!'

—पद्मपुराण, पातालखण्ड ७२

प्रेम-तपस्विनी मजलिया
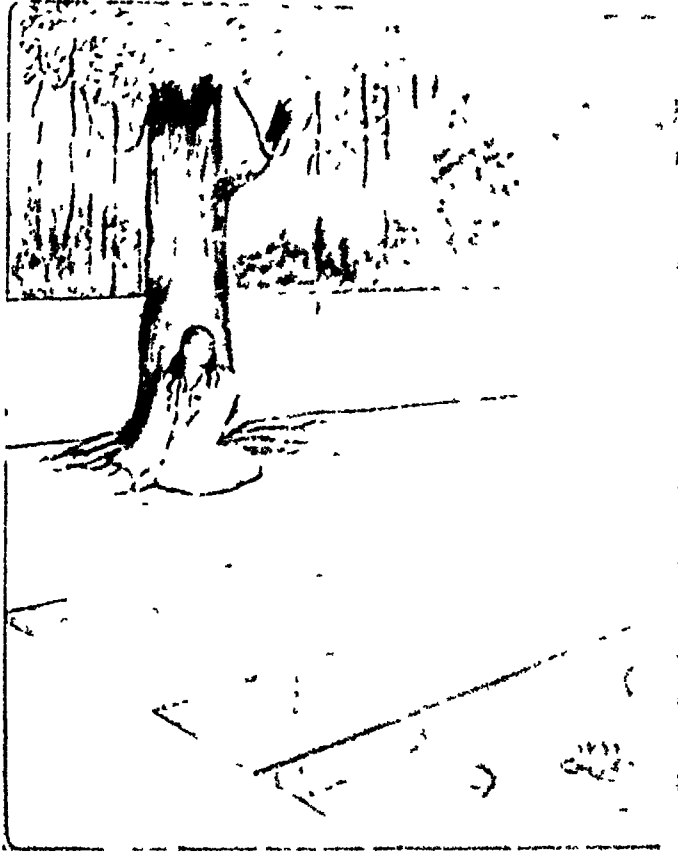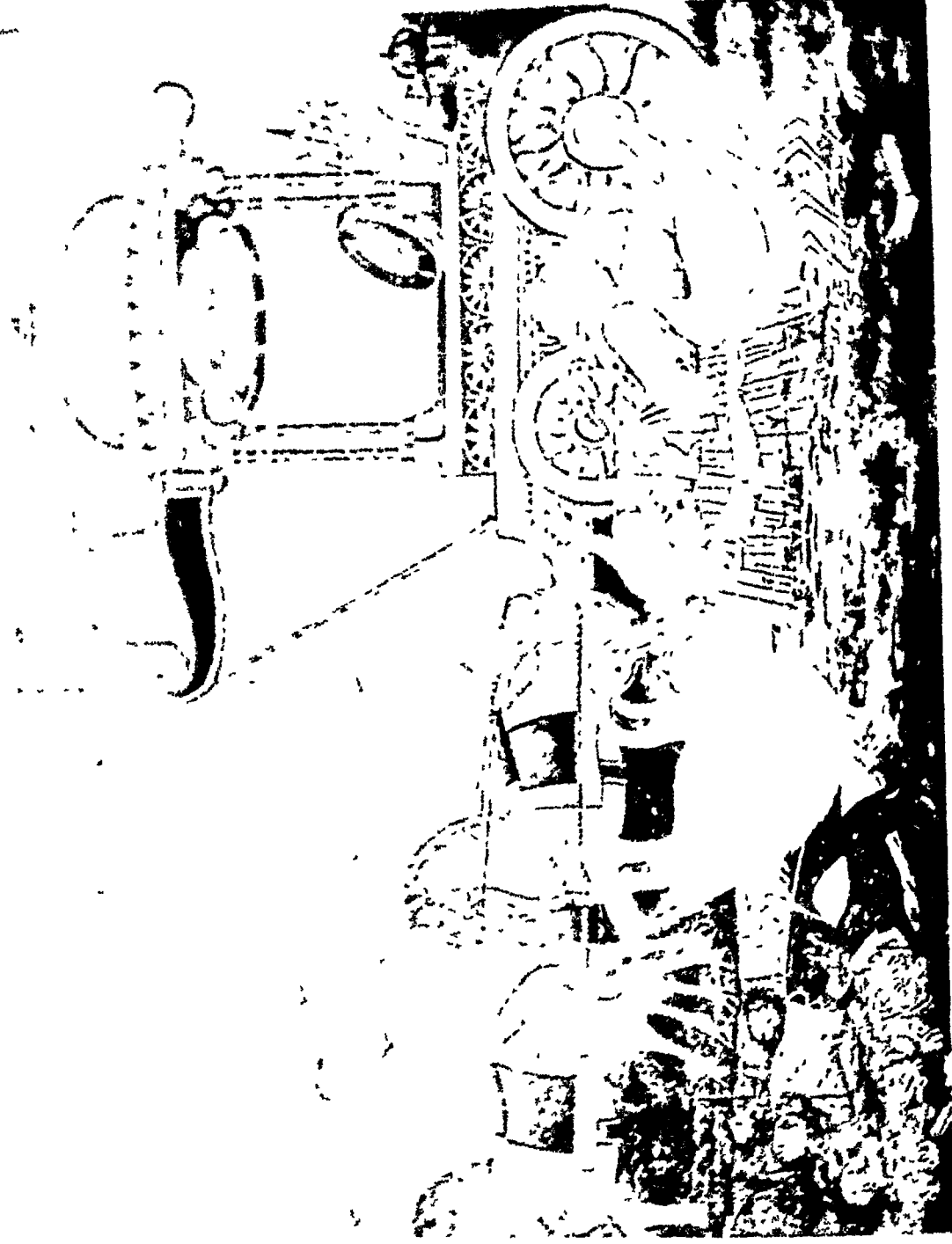
हंसोंके द्वारा भीष्मको संदेश

हंसोंके द्वारा भीष्मको सन्देश

महाभारत युद्धके १०वें दिन भीष्मपितामहके ही बतलाये मार्गसे शिखण्डीकी आड़ लेकर अर्जुनने उन्हें घायल कर दिया और अन्ततोगत्वा उन्हें रथसे गिरा दिया। उस समय सूर्य अस्त हो रहे थे और उस दिन पौष कृष्ण पञ्चमी थी। तबतक सूर्य दक्षिणायन ही थे। भीष्मजीके शरीरमें सभी ओरसे बाण बिंधे हुए थे। इसलिये गिरनेपर भी वे उन बाणोंके ऊपर ही टँग गये। धरतीसे उनका स्पर्श न हो सका। तबतक उनमें दिव्य भावका आवेश हो गया और उन्हें यह पता चल गया कि यह दक्षिणायन काल मरनेके उपयुक्त नहीं है। इसलिये उन्होंने अपने होश-हवाश ठीक रक्खे तथा प्राणोंका भी त्याग नहीं किया। तब-तक आकाशमें दिव्य वाणी हुई कि—'समस्त शास्त्रोंके वेत्ता भीष्मजीने अपनी मृत्यु दक्षिणायनमें कैसे स्वीकार कर ली?'

भीष्मजीने कहा—'मैं अभी जीवित हूँ और उत्तरायण आनेतक अपने प्राणोंको रोक रक्खूँगा।' जब उनकी माता भगवती भागीरथी गङ्गाको मालूम हुआ, तब उन्होंने महर्षियोंको हंसके रूपमें उनके पास भेजा। [illegible] शीघ्रगामी हंस भीष्मपितामहके [illegible] लिये वहाँ आये जहाँ [illegible] वे शरशय्यापर पड़े थे। हंसरूपधारी मुनियोंने उनकी प्रदक्षिणा की। [illegible] आपसमें कुछ [illegible] किया और कहने लगे—'भीष्मजी तो बड़े महात्मा हैं। भला वे दक्षिणायनमें [illegible] क्योंकर करेंगे?' ऐसा कहकर वे जाने लगे। भीष्मजी उन हंसोंको पहचान गये। वे बोले—'हंसगण! मैं दक्षिणायन [illegible] भी [illegible]-यात्रा नहीं करता। इसका आप पूर्ण निश्चय रक्खें। मैंने उत्तरायण सूर्यमें परलोक [illegible] मनमें पहलेसे ही निश्चय कर रक्खा है। [illegible] वरदानसे मृत्यु मेरे अधीन है [illegible] प्राण धारण करनेमें मुझे कोई कठिनाई [illegible] नहीं उपस्थित होगी।'

ऐसा कहकर वे [illegible] गये उड़ते हुए दक्षिण [illegible]

[illegible]

सबको उठाया और एक साथ बैठ प्रभुके भजनमें रात बिता दी।

भोरमें जागते ही लोगोंको आग दिखायी दी। उन्होंने सोचा—हो न हो, आग रातमें देरीसे लगी हुई है। वे शोर करते दौड़ पड़े—हरे! हरे! किस दुष्टने जगन्मित्रके घरमें आग लगायी। निश्चय ही सपरिवार भक्त इसमें भस्म हो गया होगा।

लेकिन ईंधनको जलाकर अग्निदेव शान्त हो गये। जगन्मित्रके भजनने उन्हें वशमें कर लिया था, फिर वे कैसे उसके घरके भीतर जलाने पहुँच सकते। लोग दरवाजा खोल भीतर घुसे। जगन्मित्र सपरिवार भगवद्भजनमें ही लगे थे। उनके घरकी भीतर आगकी एक चिनगारी, राख या कोयला—कुछ भी घरके भीतर दिखायी न पड़ा। लोग भक्त जगन्मित्रको श्रद्धापूर्वक नमस्कार करने लगे।—गो० न० बै०

(भक्तिविजय, अध्याय १९)

साधुसे छेड़छाड़ न करें

नये दारोगाने जगन्मित्रकी जमीन जब्त करनेका निश्चय किया। लोगोंने उसे समझाया—'इस संतको हम लोगोंने यह भूमि इनाममें दी है और इन्हीं संतके निमित्त हमलोग ही जमीनकी देखभाल करते हैं। इनपर दया करो, इनसे छेड़छाड़ मत करो।'

दारोगा आगमें ही दहकता जलता रहा। उसने एक नहीं सुनी। [illegible] ... जमीन छीन लेंगे।'

[illegible]

आश्चर्य! साँप दूर भागते जा रहे थे। नगरके पास पहुँचते ही नागरिकोंमें कुहराम मच गया। सभी दारोगाकी दुष्टताको कोस रहे थे। शेरने दहाड़ लगायी; पुरद्वार, जिसे लोगोंने भयसे बंद कर रक्खा था, गड़गड़ाकर गिर पड़ा। जगन्मित्र शेरको ले भीतर घुसा।

लोग किलेपर चढ़कर यह दृश्य देखते और भयसे काँप रहे थे। जगन्मित्र दारोगाके घर पहुँचा। घरके कपाट बंद थे। घरके बाल-बच्चे कोठरीमें बंद थे। जगन्मित्रने दरवाजा खुलवाया। शेरको देख दारोगा थरथर काँपने लगा। उसकी पत्नीने, जो घरपर बैठी पतिकी दुष्टताको कोस रही थी, पतिसे कहा—'नाथ! अब भी संतकी शरण जायँ और लोगोंकी रक्षा करें।'

दारोगाने जगन्मित्रके चरण पकड़े—'संत! आप सचमुच जगत्के मित्र हैं। भूलसे आपसे छेड़छाड़ की, क्षमा करें और मुझे जीवनदान दें।'

जगन्मित्र शेरको पकड़कर जंगल चला गया।—गो० न० बै०

(भक्तिविजय, अध्याय १९)

अपकारका प्रत्यक्ष दण्ड

[illegible]

मनुदास व्यापारमें जरा भी असत्यका सहारा लेना अनुचित मानते। ग्राहक आते ही माल, उसका सार, उसका मूल्य ठीक बतलाकर यह भी कह देते—इसमें मुझको इतना नफा है। इस कारण उनकी अच्छी साख बाजारमें जम गयी।

मनुदासका व्यापार दिनोंदिन बढ़ने लगा और बाजारके अन्य व्यापारियोंका काम ठप पड़ने लगा। व्यापारी [illegible] लगे। गल्लेदार व्यापारी उसकी सच्चाईको

'ना'

'तुम्हारी आजीविका किस प्रकार चलती है ?'

'भगवान् सिरपर बैठा है। मैं लकड़ी काट लाती हूँ और उससे अनाज मिल जाता है। लड़की गूँथ लेती है।' सो मजदूरीसे हमारा गुजरान कुछ-न-कुछ निभ जाता है।

'तो इस लड़कीके पिताजी..........।'

यह बहिन उदास हो गयी, कुछ देर ठहरकर बोली—'लड़कीके पिता गोदी उम्र लेकर आये थे। जवानीमें ही वे हमें अकेले छोड़कर चले गये। यद्यपि लगभग तीन बीघे जमीन और दो बैल वे छोड़ गये थे, तो भी मैंने विचार किया कि इस सम्पत्तिमें मेरा क्या लेना-देना है, मैं कब इसके लिये पसीना बहाने गयी थी!' अथवा यदि मैं पुरानी बुढ़िया होती या अपंग अथवा अशक्त होती तो अपने लिये सम्पत्तिका उपयोग भी करती। परंतु ऐसी तो मैं थी नहीं। मेरे मनमें आया कि इस सम्पत्तिका क्या करूँ

और [illegible]

[illegible]

इस प्रकार [illegible]

[illegible]

संतके सामने दम्भ नहीं चल सकता

बंगालमें द्वारका नदीके तटपर तारापीठ एक प्रसिद्ध स्थान है। कुछ ही साल पहलेकी बात है, एक सज्जन तारादेवीका दर्शन करनेके लिये तारापीठ आये। उन्होंने भगवतीका दर्शन करनेके पहले द्वारका नदीमें स्नान करके आह्निक कृत्य समाप्त करनेका विचार किया।

वे स्नान करके नदीके तटपर बैठकर आह्निक कर रहे थे। उसी समय अघोरी संत वामाक्षेपा नदीमें स्नान कर रहे थे। वे हँस हँसकर उस सज्जनके ऊपर जलके छींटे फेंकने लगे। सज्जनको पता नहीं था कि ये महात्मा वामाक्षेपा हैं।

'तुम अंधे हो? इस समय मैं आह्निक कर रहा हूँ और तुम विघ्न डाल रहे हो!' सज्जन बिगड़ने लगे। वे बहुत बड़े जमींदार थे।

'तुम [illegible] कर रहे हो [illegible] देखकर [illegible]' [illegible] फेंकने लगे।

[illegible] कि ये कोई [illegible] हैं।

[illegible] पड़ा।

'[illegible]

[illegible]

संतकी सर्वसमर्थता

कुछ ही दिनों पहलेकी बात है, एक महात्माने [illegible] एक सज्जनको देखकर दीर्घ साँस ली। पूछनेपर उन्होंने बताया कि एक सप्ताहमें तुम्हें साँप काट लेगा, तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। महात्माने उनको घबराया जानकर [illegible] दिया और कहा कि [illegible] पत्थर [illegible] रहते हैं, वे ही तुम्हारे प्राणोंकी रक्षा करेंगे। वे [illegible] महात्माने [illegible]

[illegible]

[illegible]

सम्पन्न हो !' इस भयंकर चिन्ताज्वरसे ग्रस्त होकर बेचारे प्रियव्रत अन्तमें मृत्युको प्राप्त हो गये । प्रियव्रतकी पत्नी भी पातिव्रत्यका पालन करती हुई उनके साथ सती हो गयी ।

अब माता-पिताके मरनेपर सुलक्षणा दुःखसे व्याकुल हो उठी । उसने किसी प्रकार उनका और्ध्वदैहिक तथा दशाह आदि संस्कार किये । अब वह अनाथा सोचने लगी—'मैं असहाय अबला इस संसारको कैसे पार करूँगी ? स्त्रीभाव सबसे तिरस्कृत ही होता है । मेरे माता-पिताने मुझे किसी वरको अर्पण भी नहीं किया । ऐसी दशामें मैं स्वेच्छासे किस वरको वरण करूँ ? यदि मैंने किसीका वरण किया भी और यदि वह कुलीन, गुणवान्, सुशील और अनुकूल न मिल पाया तो उसका वरण करनेसे भी क्या लाभ होगा ?' यद्यपि उसके पास कई युवक इस इच्छासे आये भी, पर उसने किसीको वरण नहीं किया । वह सोचने लगी—'अहो ! जिन्होंने मुझे जन्म दिया, बड़े लाड़-प्यारसे पाला, वे मेरे माता-पिता कहाँ चले गये ? देहधारी इस जीवकी अनित्यताको धिक्कार है । जैसे मेरे माता-पिताका शरीर चला गया, निश्चय ही उसी प्रकार मेरा यह शरीर भी चला ही जायगा ।'

ऐसा विचार कर सुलक्षणाने उत्तरार्कके समीप घोर तपस्या आरम्भ की । उसकी तपस्याके समय प्रतिदिन एक छोटी-सी बकरी उसके आगे आकर अविचल भावसे खड़ी हो जाती । फिर शामको वह कुछ घास तथा पत्ते आदि चरकर और उत्तरार्क-कुण्डका जल पीकर अपने स्वामीके घर चली जाती । इस प्रकार छः वर्ष बीत गये । तदनन्तर एक दिन भगवान् शङ्कर पराम्बा भगवती पार्वतीके साथ लीलापूर्वक विचरते हुए वहाँ आये । सुलक्षणा वहाँ ठूँठकी भाँति खड़ी थी । वह तपस्यासे अत्यन्त दुर्बल हो रही थी । दयामयी भगवतीने भगवान् शङ्करसे निवेदन किया, 'भगवन् ! यह सुन्दरी कन्या बन्धु-बान्धवोंसे हीन है, इसे वर देकर अनुगृहीत कीजिये ।' दयासागर भगवान्ने भी इसपर सुलक्षणासे वर माँगनेको कहा ।

सुलक्षणाने जब नेत्र खोले, तब देखा, सामने भगवान् त्रिलोचन खड़े हैं । उनके वामाङ्कमें उमा विराजमान हैं । सुलक्षणाने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया । इतनेहीमें उसकी दृष्टि अपने आगे खड़ी उस बकरीपर पड़ी । उसने सोचा—'इस लोकमें अपने स्वार्थके लिये तो सभी जीते हैं, पर जो परोपकारके लिये जीता है, उसीका जीवन सफल है ।' वह बोली—'कृपानिधान ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं, तो पहले इस बकरीपर कृपा करें ।'

सुलक्षणाकी बात सुनकर भगवान् शङ्कर बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने पार्वतीसे कहा—'देवि ! देखो, साधुपुरुषोंकी बुद्धि ऐसी ही परोपकारमयी होती है । वास्तवमें एकमात्र परोपकार ही संग्रहणीय है; क्योंकि सभी संग्रहोंका क्षय हो जाता है, पर एकमात्र परोपकार ही चिरस्थायी होता है । अब तुम्हीं बतलाओ, इस बकरी एवं सुलक्षणाका मैं कौन-सा उपकार करूँ ?'

तदनन्तर पराम्बा जगज्जननी पार्वतीने कहा—'यह शुभलक्षणा—सुलक्षणा—तो मेरी सखी होकर रहे । यह बालब्रह्मचारिणी है, अतएव मेरी बड़ी प्रिया है, इसलिये यह दिव्य शरीर धारणकर सदैव मेरे पास रहे और यह बकरी काशिराजकी कन्या हो और बादमें उत्तम भोगोंको भोगकर मोक्षको प्राप्त हो । इसने शीत आदिकी चिन्ता न कर पौष मासके रविवारको सूर्योदयके पूर्व स्नान किया है । इसलिये इस कुण्डका नाम आजसे बर्करीकुण्ड हो जाय । यहाँ इसकी प्रतिमाकी सभी लोग पूजा करें ।'

'एवमस्तु' कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये । इस प्रकार सुलक्षणाने अपने साथ उस बकरीका भी परम कल्याण सिद्ध कर लिया ।

(स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, ४८ वाँ अध्याय)

राक्षसीका उद्धार

परोपकारका आदर्श

न्याय और धर्म

शास्त्रज्ञानने रक्षा की

विक्रमकी जीवदया

सर्वस्वदान

न्याय और धर्म

चमारसे भूमिदान

काश्मीरके हिंदू-नरेश अपनी उदारता, विद्वत्ता और न्यायप्रियताके लिये बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। उनमेंसे महाराज चन्द्रापीड उस समय गद्दीपर थे। उन्होंने एक देवमन्दिर बनवानेका सकल्प किया। शिल्पियोंको आमन्त्रण दिया गया और राज्यके अधिकारियोंको शिल्पियोंके आदेशोंको पूरा करनेकी आज्ञा हो गयी।

शिल्पियोंने एक भूमि मन्दिर बनानेके लिये चुनी। परतु उस भूमिको जब वे मापने लगे, तब उन्हें एक चमारने रोक दिया। भूमिके एक भागमें चमारकी झोपड़ी थी। उस झोपड़ीको छोड़ देनेपर मन्दिर ठीक बनता नहीं था। राज्यके मन्त्रीगण चमारको बहुत अधिक मूल्य देकर वह भूमि खरीदना चाहते थे; किंतु चमार किसी भी मूल्यपर अपनी झोपड़ी बेचनेको उद्यत नहीं था। बात महाराजके पास पहुँची। उन न्यायप्रिय धर्मात्मा राजाने कहा—'बलपूर्वक तो किसीकी भूमि छीनी नहीं जा सकती। मन्दिर दूसरे स्थानपर बनाया जाय।'

शिल्पियोंके प्रधानने निवेदन किया—'पहिली बात तो यह कि उस स्थानपर मन्दिर बननेका संकल्प हो चुका, दूसरे आराध्यका मन्दिर सबसे उत्तम स्थानपर होना चाहिये और उससे अधिक उपयुक्त स्थान हमें दूसरा कोई दीखता नहीं।'

महाराजकी आज्ञासे चमार बुलाया गया। नरेशने उससे कहा—'तुम जो मूल्य चाहो, तुम्हारी झोपड़ीका दिया जायगा। दूसरी भूमि तुम जितनी कहोगे, तुम्हें मिलेगी और यदि तुम स्वीकार करो तो उसमें तुम्हारे लिये भवन भी बनवा दिया जाय। धर्मके काममें विघ्न क्यों डालते हो? देवमन्दिरके निर्माणमें [illegible] पाप है, यह तो तुम जानते ही होगे।'

चमारने नम्रतापूर्वक कहा—'[illegible]! [illegible] झोपड़ी या भूमिका प्रश्न नहीं है। वह [illegible] पिता, पितामह आदि कुलपुरुषोंकी निवासभूमि है। मेरे लिये वह भूमि माताके समान है। जैसे किसी मूल्यपर, किसी प्रकार आप अपना पैतृक [illegible] किसीको नहीं दे सकते, वैसे ही मैं अपनी [illegible] नहीं बेच सकता।'

नरेश उदास हो गये। चमार दो क्षण चुप रहा और फिर बोला—'परतु आपने मुझे [illegible] दिया है। देवमन्दिरके निर्माणमें बाधा [illegible] पाप मैं करूँ तो वह पाप मुझे और मेरे [illegible] ले डूबेगा। आप धर्मात्मा हैं, उदार हैं [illegible] जातिका कगाल मनुष्य हूँ, किंतु यदि आप [illegible] पधारें और मुझसे मन्दिर बनानेके लिये [illegible] मैं वह भूमि आपको दान कर दूँगा। [illegible] मेरे पूर्वजोंको भी पुण्य ही होगा।'

'महाराज इस चमारसे भूमि-दान [illegible]!' [illegible] के सभासदोंमें रोषके भाव [illegible]। वे [illegible] फुसी करने लगे।

'अच्छा, तुम जाओ!' [illegible] समय बिना कुछ कहे विदा कर दिया, [illegible] दूसरे दिन काश्मीरके वे [illegible] झोपड़ीपर पहुँचे और उन्होंने उस [illegible] ग्रहण किया।

[illegible]

शास्त्रज्ञानने रक्षा की

महाराज भोजके नगरमें ही एक विद्वान् ब्राह्मण रहते थे। वे स्वयं याचना करते नहीं थे और बिना माँगे उन्हें द्रव्य कहाँसे मिलता। दरिद्रता महादुःखदायिनी है। उससे व्याकुल होकर ब्राह्मणने राजभवनमें चोरी करनेका निश्चय किया; वे रात्रिमें राजभवनमें पहुँचनेमें सफल हो गये।

ब्राह्मण दरिद्र थे, दुखी थे, धन-प्राप्तिके इच्छुक थे और राजभवनमें पहुँच गये थे। वहाँ सब सेवक-सेविकाएँ निश्चिन्त सो रही थीं। स्वर्ण, रत्न आदि बहुमूल्य पात्र इधर-उधर पड़े थे। ब्राह्मण चाहे जो उठा लेते, कोई रोकनेवाला नहीं था।

परंतु एक रोकनेवाला था और ब्राह्मण जैसे ही कोई वस्तु उठानेका विचार करते थे, वह उन्हें उसी क्षण रोक देता था। वह था ब्राह्मणका शास्त्र-ज्ञान। ब्राह्मणने जैसे ही स्वर्णराशि उठानेका संकल्प किया, बुद्धिमें स्थित शास्त्रने कहा—'स्वर्णचौर नरकगामी होता है। स्मृतिकार कहते हैं कि स्वर्णकी चोरी पाँच महापापोंमेंसे है।'

वस्त्र, रत्न, पात्र, अन्न आदि जो भी ब्राह्मण लेना चाहता, उसीकी चोरीको पाप बतानेवाले शास्त्रीय वाक्य उसकी स्मृतिमें स्पष्ट हो उठते। वह ठिठक जाता। पूरी रात्रि व्यतीत हो गयी, सवेरा होनेको आया, किंतु ब्राह्मण कुछ ले नहीं सका। सेवक जागने लगे। उनके द्वारा पकड़े जानेके भयसे ब्राह्मण राजा भोजकी शय्याके नीचे ही छिप गया।

नियमानुसार महाराजके जागरणके समय रानियाँ और दासियाँ सुसज्जित होकर जलकी झारी तथा दूसरे उपकरण लेकर शय्याके समीप खड़ी हुईं। सुहृद्-वर्गके लोग तथा परिवारके सदस्य प्रातःकालीन अभिवादन करने द्वारपर एकत्र हुए। सेवकसमुदाय पंक्तिबद्ध प्रस्तुत हुआ; उठते ही महाराजका स्वागत करनेके लिये सजे हुए हाथी तथा घोड़े भी राजद्वारसे बाहर प्रस्तुत किये गये। राजा भोज जगे और उन्होंने यह सब देखा। आनन्दोल्लासमें उनके मुखसे एक श्लोकके तीन चरण निकले—

'चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः।
वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः'

इतना बोलकर महाराज रुक गये तो उनकी शय्याके नीचे छिपे विद्वान् ब्राह्मणसे रहा नहीं गया, उन्होंने श्लोकका चौथा चरण पूरा कर दिया—

'सम्मीलने नयनयोर्न हि किञ्चिदस्ति॥'

अर्थात् नेत्र बंद हो जानेपर यह सब वैभव कुछ नहीं रहता। महाराज यह सुनकर चौंके। उनकी आज्ञासे ब्राह्मणको शय्याके नीचेसे निकलना पड़ा। पूछनेपर उन्होंने राजभवनमें आनेका कारण बतलाया। राजा भोजने पूछा—'आपने चोरी क्यों नहीं की?'

ब्राह्मण बोले—'राजन्! मेरा शास्त्रज्ञान मुझे रोकता रहा। उसीने मेरी रक्षा की।'

राजा भोजने ब्राह्मणको प्रचुर धन दिया।

विक्रमकी जीव-दया

महाराज विक्रमादित्य प्रजाके कष्टोंका पता लगानेके लिये प्रायः अकेले घूमा करते थे। एक बार वे घोड़ेपर चढ़कर एक वनमेंसे जा रहे थे। संध्या हो चुकी थी। भयङ्कर पशुओंसे पूर्ण वनसे उन्हें शीघ्र बाहर चले जाना था; किंतु उन्हें एक गायकी डकराहट सुनायी पड़ी। महाराजने उस शब्दकी दिशा पकड़ी। वर्षा-ऋतु-में नदीकी बाढ़ उतर रही थी। नालोंमें चढ़ आया नदीका जल नीचे जा चुका था; किंतु उनमें एकत्र

पंक दल-दल बन गया था। ऐसे ही एक नालेकी दल-दलमें एक गाय फँस गयी थी। गायके चारों पैर पेटतक दलदलमें डूब चुके थे। वह हिलनेमें भी असमर्थ होकर डकरा रही थी।

महाराज विक्रमादित्यने अपने वस्त्र उतार दिये और वे गायको निकालनेका प्रयत्न करने लगे। उन्होंने बहुत परिश्रम किया। स्वयं कीचड़से लथपथ हो गये, अन्धकार फैल गया; किंतु गायको निकालनेमें वे सफल नहीं हुए। उधर गायकी डकराहट सुनकर एक सिंह वहाँ आ पहुँचा। महाराज अब अन्धकारके कारण कुछ कर तो सकते नहीं थे, तलवार लेकर गायकी रक्षा करने लगे, जिससे सिंह उसपर आक्रमण न कर दे। सिंह बार-बार आक्रमण कर रहा था और बार-बार महाराज उसे रोक रहे थे।

नालेके समीप एक भारी वटवृक्ष था। उसपरसे एक शुक बोला—'राजन्! गाय तो मरेगी ही। वह अभी न भी मरे तो दलदलमें डूबकर कलतक मर जायगी। उसके लिये तुम क्यों प्राण दे रहे हो। यहाँसे शीघ्र चले जाओ या इस वृक्षपर चढ़ जाओ। सिंहनी तथा दूसरे वन-पशु आ जायँगे तो तुम्हारे प्राण संकटमें पड़ जायँगे।'

महाराज बोले—'पक्षिश्रेष्ठ! मुझे अधर्मका मार्ग मत दिखलाओ। अपनी रक्षा तो सभी जीव करते हैं, किंतु दूसरोंकी रक्षामें जो प्राण दे देते हैं, वही धन्य हैं, जैसे स्वामीके बिना सेना व्यर्थ है, वैसे ही दयाके बिना अन्य सब पुण्य कर्म व्यर्थ हैं। अपने प्राण देकर भी मैं इस गायको बचानेका प्रयत्न करूँगा।'

पूरी रातभर महाराज गायकी रक्षा करते रहे; किंतु प्रातःकाल उन्होंने देखा कि वहाँ न गाय है, न सिंह है और न शुक पक्षी ही है। उनके बदले वहाँ देवराज इन्द्र, धर्म और भू देवी खड़ी हैं। देवराज इन्द्रने प्रसन्न होकर महाराजको कामधेनु गौ प्रदान की।

सर्वस्वदान

(हर्षवर्धनकी उदारता)

'भारतके सार्वभौम-सम्राट् महाराजाधिराज शिलादित्य—हर्षवर्धनकी जय हो; वे चिरायु हों।' सरस्वती-पुत्रोंने प्रशस्ति गायी। गङ्गा-यमुनाके सङ्गमके ठीक सामने ऊँची सैकत-भूमिपर असंख्य जनताकी भीड़ एकत्र थी। देश-देशके सामन्त और कामरूप, गौड़, वल्लभी आदिके नरेशोंसे परिवेष्टित महाराज हर्षने मोक्ष-सभामें पदार्पण किया। बहिन राज्यश्री साथ थी। विशेष अतिथि-आसनपर चीनके धर्मदूत ह्वेनसांग उपस्थित थे। उनके गैरिक कौशेय परिधान, ठिगने और पीत वर्णके शरीर तथा छोटी-छोटी दाढ़ीने लोगोंके लिये अद्भुत कौतूहल उपस्थित किया था।

'महाराज! आपने समस्त धर्मोंके प्रति उदारता प्रकटकर आर्य-संस्कृतिकी उदार मनोवृत्तिका परिचय दिया है। आपने पाँच वर्षसे संचित कोषागार इन पचहत्तर दिनोंमें दानकर इस 'महादान भूमि' पर जो दिव्य कीर्ति कमायी है, उससे इन्द्रकी भी स्पर्धा-वृत्ति बढ़ गयी है। आप धन्य हैं!' [illegible] ह्वेनसांगकी प्रशस्ति थी।

'महाराज! दशबल और दिक्पालोंका पूजन समय आ गया।' धर्माचार्यने सम्राट्का ध्यान आकृष्ट किया। सम्राट् गम्भीर हो उठे।

वसन्त-ऋतुका पहला चरण था। [illegible] सङ्गमके स्पर्शसे अपने-आपको पवित्र कर रहा था। मोक्ष-सभाका अन्तिम उत्सव था यह और सम्राट् [illegible]

गमनका आदेश महामन्त्रीको दे चुके थे।

'महाराजकी दान-वृत्ति सराहनीय है, सत्य दानकी ही नींवपर स्थित है। दान सर्वश्रेष्ठ धर्म है, पर…।' एक ब्राह्मणने सभामें अचानक प्रवेशकर लोगोंको आश्चर्य-चकित कर दिया। यह एक विचित्र घटना थी।

'कहो विप्र, कहो! यह धर्मसभा है, इसमें सत्यपर कोई रोक नहीं है।' महाराज दिक्पालोंके पूजनके लिये प्रस्थान करना चाहते थे।

'आपने हरिश्चन्द्र, शिवि, दधीचि, रघु और कर्णके दान-यशको अमर कर दिया है सम्राट्!' वह उनके स्वर्णमुकुट और कण्ठ-देशकी रत्नमालाकी ओर ही देख रहा था।

'मैं 'पर'का आशय समझ गया।' सम्राट्ने अपनी शेष सम्पत्ति (मुकुट और रत्नमाला) ब्राह्मणके कर-कमलोंमें रख दी। उनकी जयसे जनताकी कण्ठ-वाणी सम्प्लावित थी।

'बहिन! भारत-सम्राट्ने आजतक किसीसे या[illegible] नहीं की।' हर्षने राज्यश्रीको देखा। वह च[illegible] थी।

'मेरे पास दशबल और दिक्पालोंके पूजनके [illegible] अब कोई वस्त्र शेष नहीं है। मैंने शत्रुसे वे[illegible] उनके सिरकी ही याचना की है। मुझे इन्द्रके सिंहा[illegible] की भी अपेक्षा नहीं है।' सम्राट्ने भिक्षा माँगी।

'भैया! इस महादानभूमिमें आपके पहनने [illegible] मेरे पास भी कोई वस्त्र नहीं रह गया है। इस प[illegible] तीर्थसे कुछ भी बचाकर ले जाना दानराज्यमें अ[illegible] है।' देवी राज्यश्रीने एक जीर्ण-शीर्ण वस्त्र सम्रा[illegible] हाथमें रख दिया।

हर्ष प्रसन्न थे मानो उन्हें सर्वस्व मिल गया। स[illegible] भगवान् दशबल और दिक्पालोंकी पूजामें लग गये[illegible]

बैलोंकी चोट संतपर

श्रीकेवलरामजी ऐसे ही थे। श्रीकृष्णके नयन-शरके लक्ष्य ये हो चुके थे। श्रीकृष्णके अतिरिक्त इनकी आँखोंमें और कोई था ही नहीं। ये विषय-वासनाको बहुत दूर छोड़ आये थे। मायाकी छाया भी इनको स्पर्श नहीं कर पाती थी। करुणा और प्रेमके आप मूर्तिमान् स्वरूप थे।

'भिक्षा दो, माँ!' किसीकी देहरीपर पहुँचकर ये आवाज लगा देते। माताएँ चावल, दाल, शाक और घृतादि लेकर आपके सामने आतीं तो आप कहने लगते—'अत्यन्त प्रेमपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा करें, मेरी यही भिक्षा है!' और उलटे पाँव लौट पड़ते। बड़ा प्रभाव पड़ता इनकी बातोंका सुननेवालोंपर। इसी प्रकार ये प्रत्येक स्त्री-पुरुषको श्रीकृष्ण-प्रेम-पथपर अग्रसर करनेके लिये सतत प्रयत्न करते रहते।

'मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करें!' किसी अनाचारी वैष्णवको देखते ही ये झटसे विनय-पूर्वक कहते। ये भगवद्भक्त थे। इनके मनमें अविरल शान्ति लहरें लेती रहती। पर श्रीकृष्णके पूजा-प्रचारके लिये जैसे इनके मनमें आग लगी रहती थी। जिस किसीको देखते ही ये उसके पीछे पड़ जाते [illegible] श्रीकृष्णका नाम-जप करनेका वचन ले ही लेते थे। [illegible] और आग्रहको देखकर वैष्णव पूछ बैठते 'क्या कहते है[illegible]

'आप श्यामसुन्दरकी प्रतिदिन नियमपूर्वक अन्त[illegible] विशुद्ध प्रेमसे पूजा किया करें!' कहते हुए ये श्यामसुन्[illegible] मनोहर प्रतिमा सामने रख देते। साथ ही इनकी [illegible] छलक पड़तीं।

साधु इनका ढंग देखकर दंग हो जाते। उनके [illegible] पश्चात्ताप होता और प्रभुकी प्रतिमा लेकर प्रेमपूर्वक उपा[illegible] में लग जाते।

एक बारकी बात है, आप एक गाड़ीवानके साथ [illegible] रहे थे। गाड़ीवान गाड़ीपर बैठा गाड़ी हाँकता जा रह[illegible] और श्रीकेवलरामजी पृथ्वीपर पैदल ही गाड़ीवानको श्री[illegible] कथा सुनाते जा रहे थे।

एक स्थानपर बैल थोड़ेसे रुके तो गाड़ीवानने क्रो[illegible] होकर दो-तीन सॉंटियाँ जोरसे उनकी पीठपर दे मारीं।

मोंटीके भयसे दौड़ने लगे। गाड़ीवानने कथा सुननेके लिये श्रीकेवलरामजीकी ओर देखा तो वे नहीं थे। गाड़ीवानने गाड़ीपर खड़े होकर देखा तो आप पीछे मूर्च्छित होकर गिर पड़े थे।

गाड़ीवान घबराकर गाड़ीसे कूद पड़ा और उसने दौड़कर श्रीकेवलरामजीको अपनी गोदमें उठा लिया। उसने देखा जो सोंटी उसने बैलको मारी थी, वह श्रीकेवलरामजीकी पीठपर लगी थी। उसका चिह्न स्पष्ट दीख रहा था।

ये संत इतनी उच्चकोटिपर पहुँच गये हैं, इसकी गाड़ीवानके मनमें कल्पना भी नहीं थी। वह उनके चरणोंपर गिरकर क्षमा-प्रार्थना करने लगा। गाड़ीवान और भी कई आदमी थे। सब-के-सब श्रीकेवलरामजीके चरणोंपर मस्तक रखकर क्षमाकी याचना कर रहे थे। 'भगवान् श्रीकृष्ण प्रेम और क्षमाके मूर्तिमान् स्वरूप हैं। सृष्टिके कर्ता, पालक और विनाशक वे ही हैं। माया-मोह उन्हींकी देन है; पर जो सबको त्यागकर उनके चरण-कमलोंके भ्रमर बन जाते हैं, वही सरलतासे वे भवसागर पार कर लेते हैं। तुम लोग श्रीकृष्णके बन जाओ। बस, वे स्वयं क्षमा कर देंगे।' कहकर श्रीकेवलरामजी हँसने लगे, पर उपस्थित व्यक्तियोंकी आँखोंसे अश्रु-सरिता प्रवाहित हो रही थी। —[illegible]

संत-दर्शनका प्रभाव

'इस संसारके सब प्राणी अपने ही हैं, कोई भी पराया नहीं है। पापी घृणाका पात्र नहीं है, उससे निष्कपट प्रेम करना चाहिये। भगवान् पापीके ही उद्धारके लिये अवतार लेते हैं।' महात्मा हरनाथने निर्भयतापूर्वक अपने प्रेमियों और शिष्योंको समझाया और उस ओर चल पड़े, जिधर डाकू रामखान रहता था। उसके अत्याचार और लूटपाटसे समस्त कटक प्रदेश संत्रस्त था। उसके भयसे लोग थर-थर काँपते थे और धोखेसे भी उसका नाम नहीं लेते थे।

'पागल' हरनाथने उस वनमें प्रवेश किया, जिसमें उस डाकूका निवास-स्थान था। निर्जन वनमें महात्माने भीषण आकारवाले एक व्यक्तिको देखा और समझ गये कि यह रामखान ही है। वे बढ़ते गये और दो-चार क्षणके बाद ही डाकू उनके सामने खड़ा था।

'पिताजी! मैंने आजतक पाप-ही-पाप किये हैं। मैंने अपने पाप और अत्याचारकी कथा किसीसे नहीं कही। मेरे उद्धारका समय आ पहुँचा है। मैं इस निर्जन पथपर खड़ा होकर केवल आपकी राह देख रहा था। जगत्के किसी भी पदार्थमें मुझे सुख नहीं मिल सका। मुझे भवसागरके पार उतारिये।' डाकू रामखानकी वृत्ति बदल गयी। एक क्षणके लिये ही संतके सम्पर्कमें आनेसे उसके पाप नष्ट हो गये और वह पागल हरनाथके चरणोंपर गिर पड़ा। वह सिसक रहा था। महात्मा हरनाथने उसका बड़े प्रेमसे आलिंगन किया और कहा कि 'परमात्माके राज्यमें शान्ति और परम आनन्दकी प्राप्ति हो सकती है, तुमने पश्चात्तापकी आगमें अपने समस्त पाप जला दिये।'

'मुझे रास्ता दिखाइये। प्रकाश दीजिये। मैं आपका दास हूँ।' रामखानने कातर स्वरसे कहा।

'भगवान्का नाम ही मन्त्रराज है। सोते जागते, उठते बैठते और खाते-पीते उस मधुर नामामृतका पान करते रहना चाहिये। वे प्रभु सर्वसमर्थ हैं। [illegible]भावसे प्रेम करो, सच्चा प्रेम ही प्रभुकी प्राप्तिका सुगम पथ है।' महात्मा हरनाथने उसे अपनी अहैतुकी कृपासे धन्य कर दिया।

रामखानने संन्यास ले लिया और वृन्दावनमें यमुना-तटपर किसी रमणीय स्थानमें निवास करके वे भगवान् श्रीकृष्णका भजन करने लगे। संतदर्शनकी महिमाका बखान नहीं किया जा सकता। बड़े भाग्यसे ही संतका दर्शन मिलता है।

—[illegible]

रामूकी तीर्थयात्रा

एक संत किसी प्रसिद्ध तीर्थस्थानपर गये थे। वहाँ एक दिन वे तीर्थ-स्नान करके रातको मन्दिरके पास सोये थे। उन्होंने स्वप्नमें देखा—दो तीर्थ-देवता आपसमें बातें कर रहे हैं। एकने पूछा—

'इस वर्ष कितने नर-नारी तीर्थमें आये?'

'लगभग छः लाख आये होंगे।' दूसरेने उत्तर दिया।

'क्या भगवान्ने सबकी सेवा स्वीकार कर ली?'

'तीर्थके माहात्म्यकी बात तो दूसरी है; नहीं [illegible]

बहुत ही कम ऐसे होंगे, जिनकी सेवा स्वीकृत हुई हो।'

'ऐसा क्यों?'

'इसीलिये कि भगवान्‌में श्रद्धा रखकर पवित्र भावसे तीर्थ करने बहुत थोड़े ही लोग आये, उन्होंने भी तीर्थोंमें नाना प्रकारके पाप किये।'

'कोई ऐसा भी मनुष्य है जो कभी तीर्थ नहीं गया, परन्तु जिसको तीर्थोंका फल प्राप्त हो गया हो और जिसपर प्रभुकी प्रसन्नता बरस रही हो?'

'कई होंगे, एकका नाम बताता हूँ; वह है रामू चमार, यहाँसे बहुत दूर केरल देशमें रहता है।'

इतनेमें संतकी नींद टूट गयी। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और इच्छा हुई केरल देशमें जाकर भाग्यवान् रामू चमारका दर्शन करनेकी। संत उत्साही और दृढ़निश्चयी तो होते ही हैं, चल दिये और बड़ी कठिनतासे केरल पहुँचे। पता लगाते-लगाते एक गाँवमें रामूका घर मिल गया। संतको आया देखकर रामू बाहर आया। संतने पूछा—'क्या करते हो, भैया?'

'जूते बनाकर बेचता हूँ, महाराज!' रामूने उत्तर दिया।

'तुमने कभी तीर्थयात्रा भी की है?'

'नहीं, महाराज! मैं गरीब आदमी—पैसा कहाँसे लाता तीर्थयात्राके लिये। यात्राका मन तो था परंतु जा सका नहीं।'

'तुमने और कोई बड़ा पुण्य किया है?'

'ना, महाराज! मैं नीच पुण्य कहाँसे करता।'

तब संतने अपना स्वप्न सुनाकर उससे पूछा—

'फिर भगवान्‌की इतनी कृपा तुमपर कैसे हुई?'

"भगवान् तो दयालु होते ही हैं, उनकी कृपा दीनोंपर विशेष होती है। (इतना कहते-कहते वह गद्‌गद हो गया, फिर बोला—) महाराज! मेरे मनमें वर्षोंसे तीर्थ-यात्राकी चाह थी। बहुत मुश्किलसे पेटको खाली रख-रखकर मैंने कुछ पैसे बचाये थे, मैं तीर्थ-यात्राके लिये जानेवाला ही था कि मेरी स्त्री गर्भवती हो गयी। एक दिन पड़ोसीके घरसे मेथीकी सुगन्ध आयी। मेरी स्त्रीने कहा—मेरी इच्छा है मेथीका साग खाऊँ; पड़ोसीके यहाँ बन रहा है, जरा माँग लाओ। मैंने जाकर साग माँगा। पड़ोसिन बोली—'ले जाइये, परंतु है यह बहुत अपवित्र। हमलोग सात दिनोंसे सब-के-सब भूखे थे, प्राण जा रहे थे। एक जगह एक मुर्देपर चढ़ाकर साग फेंका गया था। वही मेरे पति बीन लाये। उसीको मैं पका रही हूँ।' (रामू फिर गद्‌गद होकर कहने लगा—) मैं उसकी बात सुनकर काँप गया। मेरे मनमें आया, पड़ोसी सात-सात दिनोंतक भूखे रहें और हम पैसे बटोरकर तीर्थयात्रा करने जायँ? यह तो ठीक नहीं है। मैंने बटोरे हुए सब पैसे आदरके साथ उनको दे दिये। वह परिवार अन्न-वस्त्रसे सुखी हो गया। रातको भगवान्‌ने स्वप्नमें दर्शन देकर कहा—'बेटा! तुझे सब तीर्थोंका फल मिल गया, तुझपर मेरी कृपा बरसेगी।' महाराज! तबसे मैं सचमुच सुखी हो गया। अब मैं तीर्थस्वरूप भगवान्‌को अपनी आँखोंके सामने ही निरन्तर देखा करता हूँ और बड़े आनन्दसे दिन कट रहे हैं।"

रामूकी बात सुनकर संत रो पड़े। उन्होंने कहा—सचमुच तीर्थयात्रा तो तूने ही की है।

रंगनादकी पितृभक्ति

सन् १८३१ की बात है, एक १२ वर्षका हिंदू बालक चित्तूरके जिला-जजके दरवाजेपर उपस्थित हुआ। वह एक ऐसे किसानका लड़का था, जिसे समयपर मालगुजारी न अदा करनेके कारण जेलकी सजा दे दी गयी थी। किसानने कुछ सरकारी जमीन ली थी, पर उस वर्ष कोई फसल न हुई और तत्कालीन कानूनके अनुसार उसे जेल जाना पड़ा। इधर पिता जेलमें ही था कि उसके पितामहके वार्षिक श्राद्धका अवसर आ गया। अब उसकी माँ इसलिये रोने लग गयी कि उसका पिता इस समय घर न होकर जेलमें था, फिर यह क्रिया हो कैसे! यही रंगनादके चित्तूरके जिला-जजके दरवाजेपर उपस्थित होनेका कारण था।

जजने बालककी पूरी बात सुन ली और कहा—'मैं तुम्हारे पिताको बिना किसी जमानत तथा प्रतिभूके नहीं जाने दे सकता।'

लड़केने बड़े उत्साहके साथ कहा, 'मेरे पास धन तो है नहीं जो जमानत-मुचलकेकी बात करूँ। पर मैं पिताके स्थानपर स्वयं ही जेलमें बंद रहूँगा।'

जजका हृदय पिघल गया। उसने उसके पिताकी मुक्ति-सम्बन्धी कागजातपर हस्ताक्षर करके उसे छोड़ दिया। दोनों पिता-पुत्र उसी रात घर पहुँचे। उचित समयपर श्राद्ध-क्रिया सम्पन्न हुई।

यही रंगनाद आगे चलकर पंद्रह भाषाओंमें अच्छी तरह बोल और लिख लेनेवाला प्रसिद्ध रंगनाद शास्त्री हुआ।

—जा० श० (Representative Indians by G. P. Pillai)

कृतज्ञता

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपनी असीम उदारताके कारण कंगाल हो चुके थे। एक समय ऐसा आया जब उनके पास इतने पैसे नहीं थे कि आये हुए पत्रोंका उत्तर भेज सकें। जो पत्र आते थे, उनका उत्तर लिखकर लिफाफे बंद करके भारतेन्दुजी मेजपर रख देते थे। उनपर टिकट लगानेको पैसे हों तो पत्र भेजे जायँ। पत्रोंकी एक ढेरी एकत्र हो गयी उनकी मेजपर। उनके एक मित्रने उन्हें पाँच रुपयेके टिकट लाकर दिये और तब वे पत्र डाकमें डाले गये।

भारतेन्दुजीकी स्थिति कुछ ठीक हुई। अब जब वे मित्र मिलते थे, तभी भारतेन्दुजी [illegible] पाँच रुपये उनकी [illegible] डाल देते और कहते—'आपको [illegible] नहीं, [illegible] पाँच रुपये मुझपर ऋण हैं।'

अन्तमें मित्रने एक दिन कहा—'मुझे अब [illegible] मिलना बंद कर देना पड़ेगा।'

भारतेन्दु बाबूके नेत्र भर आये। वे बोले—'[illegible]! तुमने ऐसे समय मुझे पाँच रुपये दिये थे कि मैं [illegible] प्रतिदिन तुम्हें अब पाँच रुपये देता रहूँ, तो भी तुम्हारे ऋणसे छूट नहीं सकता।'—सु० सिं०

गुरु-निष्ठा

आर्यसमाजके प्रवर्तक स्वामी दयानन्दजीको बड़ी खोजके बाद विरजानन्द-ऐसे परम वेदज्ञ महात्माका दर्शन हुआ। विरजानन्द अंधे थे। उन्होंने दयानन्दको शिष्य बना लिया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती अपने गुरुको प्रसन्न रखनेके लिये सदा प्रयत्नशील रहते थे। उनकी सेवाका वे सदा ध्यान रखते थे। विरजानन्द तीनों ऋतुओंमें यमुना-जलसे स्नान किया करते थे। दयानन्द बड़े सबेरे उनके लिये बारह घड़े यमुना-जल लाते थे और उसके बाद निवास स्थानमें झाड़ू-बहारू किया करते थे।

एक दिन दयानन्दजी महाराज झाड़ू दे रहे थे। दैवयोगसे कहींपर थोड़ा-सा कूड़ा शेष रह गया था और [illegible] विरजानन्दका पैर पड़ गया। वे दयानन्दको डंडेसे [illegible] लगे। स्वामी दयानन्दने उफ् तक नहीं किया।

'गुरुदेव! आप मुझे और मत मारिये। [illegible] सहते मेरी पीठ पत्थर जैसी हो गयी है। इसपर प्रहार करते आपके हाथोंमें पीड़ा होती होगी।' स्वामी दयानन्द महाराज अपने गुरुके हाथ सहलाने लगे।

स्वामी विरजानन्दने बड़े प्रेमसे उन्हें [illegible] और उनकी गुरुनिष्ठाकी सराहना की। [illegible]

स्वामी श्रीदयानन्दजी सरस्वतीके जीवनकी कुछ कथाएँ

(लेखक—श्रीबाबूरामजी गुप्त)

कानपुरमें एक दिन आप अपनी मौजमें गङ्गामें लेटे हुए थे। थोड़ी दूरपर एक मगरमच्छ निकला। किनारे खड़े श्रीप्यारेलालने चिल्लाकर कहा, 'महाराज! देखिये वह मगरमच्छ निकला है।' ईश्वर-विश्वासी, निर्भय दयानन्द बोले, 'भाई! जब हम इसका कुछ नहीं बिगाड़ते, तब हमें यह क्यों दु:ख देगा।'

एक बार कुम्भके अवसरपर एक साधुने कहा, स्वामीजी! आप ज्ञानी होकर भी भिक्षुककी तरह ईश्वरसे प्रार्थना करते रहते हैं! ये तो अज्ञानियोंके [illegible]।' बड़ी गम्भीरतासे आपने उत्तर दिया, '[illegible] कि ज्ञानीजन परमात्मासे प्रार्थना नहीं करते। [illegible] सत्य यह है कि जैसे [illegible] जाता है, वैसे ही [illegible] ईश्वर [illegible] कल्याणके बिना पूरी नहीं हो सकती।'

फर्रुखाबादके [illegible] पूछने लगे—'स्वामीजी! [illegible]

मजूत हूँ !' स्वामीजीने कहा, 'पहले यह बताइये, आपके पाँवमें यह नुक्स क्यों है ?' (साहिब कुछ लँगड़ाकर चलते थे।) साहब बोले, 'खुदाकी मर्जी है।' स्वामीजीने कहा—'खुदाकी मर्जी न कहिये। वह तो बड़ा दयालु तथा न्यायकारी है। जब किसी कष्टका कारण इस जन्ममें मालूम और दिखायी न दे तो समझ लेना चाहिये कि यह किसी पिछले जन्मका पापफल है।'

एक साधु 'पुरुषार्थ और प्रारब्धमेंसे किसकी मान्यता है ?' पूछने लगे। कहा, 'दोनों आवश्यक हैं। प्रारब्ध पिछले कर्मों तथा उनके भोगका नाम है और पुरुषार्थ इस जन्मके नये कर्म करनेका।'

अनूपशहरमें किसीने स्वामीजीको पानमें विष दे दिया। उनके मुसल्मान भक्त सैय्यद मुहम्मद तहसीलदारको पता चला तो विष देनेवाले व्यक्तिको पकड़ मँगवाया। दयानन्दके दरबारमें अपराधी पेश किया गया। महाराजने कहा, 'इसे मुक्त कर दो। मैं संसारमें लोगोंको कैद कराने नहीं अपितु छुड़ाने आया हूँ।'

कायमगंजमें किसीने कहा, 'आपके पास पात्र नहीं है। कमण्डलु तो होना चाहिये।' हँसकर बोले, 'हमारे हाथ भी तो पात्र हैं।'

स्वामीजी अपने आरम्भिक जीवनमें केवल एक कौपीनसे निर्वाह करते थे। एक दिन एक सज्जनने आकर कहा, 'महाराज! आपके पास एक ही लँगोटी है। मैं यह नयी लँगोटी लाया हूँ।' दयानन्दजी बोले, 'अरे, मुझे तो यह अकेली लँगोटी बोझ हो रही है। तू और ले आया है; जा, ले जा; भाई, इसे ले जा।'

फर्रुखाबादमें एक देवी अपने मृत बालकका शव लेकर पाससे गुजरी। लाश मैले-कुचैले कपड़ोंसे लपेटी हुई थी। स्वामीजीने कहा—'माई, इसपर सफेद कपड़ा क्यों नहीं लपेटा ?' 'मेरे पास सफेद कपड़ा और उसके लिये पैसे कहाँ, महाराज!' रोकर उसने कहा। ठंडी साँसके साथ करुणानिधि दयानन्दके आँसू उमड़ आये और वे बोले, 'हाँ! राजराजेश्वर भारतकी यह दुर्दशा कि आज उसके बच्चोंके लिये कफनतक नहीं!'

अमृतसरमें एक साधारण व्यक्तिने एक दिन पूछा, "दीनबन्धु धनी लोग तो दान-पुण्यसे धर्मशालाएँ बना और धर्मकार्योंमे दान देकर तर जायँगे, महाराज! गरीबोंके लिये क्या उपाय है।' कहा, 'तुम भी नेक और धर्मात्मा बन सकते हो। संसारमें जहाँ एक पुरुष दान देने और परोपकारसे पार हो सकता है, वहाँ दूसरा बुराई न करनेसे, परनिन्दासे बचते हुए, नेक बन सकता है। पाप न करना संसारकी भलाई करना है।'

बरसातकी ऋतु थी। बनारसमें वायुसेवन करते-करते दादूपुर नगरकी सड़कपर आप जा निकले। देखा एक गाड़ीके बैल और पहिये कीचड़में फँसे हुए हैं। पास खड़े लोग, तमाशाइयोंकी तरह तरकीबें बता रहे हैं। करुणासागर दयानन्दसे यह दृश्य कैसे देखा जाता। समीप जाकर बैलोंको खोल दिया। अखण्ड ब्रह्मचारी दयानन्दके कंधेपर आयी गाड़ी दलदलसे निकलकर पार हो गयी।

शाहजहाँपुरमें अपने कर्मचारियोंको नियत समयसे आध घंटे देरसे आये देखकर बोले—'आज हमारे देशवासी समयकी महानताको भूल गये हैं। समयकी सारताका तब पता चलता है जब मृत्युशय्यापर पड़े किसी रोगीको देखकर वैद्य कहता है, यदि पाँच मिनट पहले मुझे बुला लिया होता तो बच जानेकी सम्भावना थी। अब लाखों खर्च करनेपर भी नहीं बच सकता।'

बम्बईमें एक सेठजीके साथ आये हुए उनके दशवर्षीय पुत्रको पास बुलाकर बड़े प्यारसे कहा, 'प्रातःकाल उठकर हाथ-मुँह धोकर माता-पिताको प्रणाम किया करो। अपनी पुस्तकोंको आप ही उठाया करो, नौकरोंसे

नहीं। मार्गमें कोई माता मिले तो दृष्टि नीचे रक्खा करो। ऐसा किया करो तो कल्याण होगा।'

सन् १८९१ में वीरभूमि चित्तौड़ पधारे। एक दिन कुछ राजकर्मचारियोंके साथ भ्रमण कर रहे थे। मार्गमें एक मन्दिरके पास छोटे-छोटे बालक खेल रहे थे। उनमें एक पञ्चवर्षीय बालिका भी थी। स्वामी दयानन्दने उस बालिकाको देखकर सीस झुका दिया। साथियोंने मर्मको न समझते हुए इधर-उधर देखा। दयानन्दजीने उनके आश्चर्यको बड़ी गम्भीरतासे यह कहकर दूर कर दिया, 'देखते नहीं हो, वह मातृशक्ति सामने खड़ी है।'

मौन व्याख्यान

एक दिनकी बात है। योगिराज गम्भीरनाथ अपने कपिलधारा पहाड़ीवाले आश्रममें अत्यन्त शान्त और परम गम्भीर मुद्रामें बैठे हुए थे। वे आत्मानन्दके चिन्तनमें पूर्ण निमग्न थे। उसी समय उनके पवित्र दर्शनसे अपने आपको धन्य करनेके लिये कुछ शिक्षित बंगाली सज्जन आ पहुँचे। उन्होंने विनम्रतापूर्वक योगिराजसे उपदेश देनेके लिये निवेदन किया। योगिराजके अधरोंपर मुसकानकी मृदुल शान्ति थी; उनकी दृष्टिमें कल्याणप्रद आशीर्वादका अमृत था; उन्होंने बड़ी आत्मीयतासे उन सज्जनोंको आसन ग्रहण करनेका संकेत किया।

सज्जनोंने उपदेशके लिये बड़ा आग्रह किया; योगिराजकी विनम्रता मुखरित हो उठी—'वास्तवमें मैं कुछ भी नहीं जानता, आपको मैं क्या उपदेश दूँ।' आगत सज्जन महापुरुषकी विनम्रतासे बहुत ही प्रभावित हुए, पर उनका यह दृढ़ विश्वास था कि बाबा गम्भीरनाथ आध्यात्मिक उन्नतिकी पराकाष्ठापर पहुँचे हुए हैं। अतएव उनके हृदयमें योगिराजके श्रीमुखसे उपदेश श्रवण करनेकी उत्सुकता कम न हो सकी। उन्होंने अपना आग्रह फिर उपस्थित किया और योगिराजने भी विनम्रताके साथ अपने पहले उत्तरको दुहरा दिया। उनके उत्तरमें किसी प्रकारका दम्भ या दिखावा नहीं था; योगिराजने मौन संकेत किया कि 'यदि वे वास्तवमें जिज्ञासु हैं तो मेरे आचरणको देखें तथा सत्य—वस्तु-तत्त्वकी खोज अपने भीतर करें।'

—[illegible]

पैदल यात्रा

'महाराज! आपका पैदल जाना कदापि उचित नहीं है। रास्ता ऊबड़-खाबड़ है तथा शान्तिपुरसे नीलाचलतक पैदल जानेसे स्वास्थ्य बिगड़ जायगा।' शिष्योंने महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामीसे प्रार्थना की।

'तुमलोग अपने भावके अनुसार बिल्कुल ठीक कहते हो। पर मुझे अपने पूर्वज अद्वैताचार्यका, जिन्होंने महाभावमें निमग्न महाप्रभु श्रीचैतन्यकी लीलाका रसास्वादन किया था, स्मरण होते ही मनमें विश्वास हो जाता है कि भगवान् जगन्नाथ मेरा प्रेमसे आलिङ्गन करनेके लिये तथा अपने चरणोंमें स्थान देनेके लिये कितने उत्सुक हैं। तुम्हें यह बात अच्छी तरह विदित ही है कि मेरे पिताने नीलाचल क्षेत्रकी दण्डौती यात्रा पूरी की थी। उनके चरणोंमें बड़े-बड़े छाले पड़ गये थे, तलवेसे रक्त बह रहा था, पर उन्होंने यात्रा पूरी कर दी। अतएव मैं पैदल ही जाऊँगा [illegible] मेरे साथ कोई दूसरा नहीं जायगा।' उनका [illegible] पुलकित था। नयनोंसे अश्रुपात हो रहा था। [illegible] पड़े। उनकी श्रद्धा साकार हो उठी।

'महाराज! [illegible]

आप-ऐसे पुण्यात्माका साथ मिला है। हमें अपने सङ्गसे वञ्चित न कीजिये।' कुछ शिष्योंने उनके हृदयकी करुणाका दरवाजा खटखटाया। अन्तमें इस यात्रामें पचास शिष्योंने उनका साथ दिया। शेष व्यक्ति अपने-आपको नहीं सम्हाल सके। वे उनके वियोगकी आशङ्कासे फूट-फूटकर रोने लगे।

'आपलोग यह क्या कर रहे हैं। आशीर्वाद दीजिये कि जगन्नाथदेव मुझे स्वीकार कर लें; आपलोग प्रार्थना करें कि वे मुझे अपने चरणोंमें शरण दें।'

महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामीने पैदल यात्रा आरम्भ की। उनके जय-जयकारसे यात्रापथ धन्य हो उठा। उनके हृदयकी श्रद्धा फलवती हो उठी। —रा० श्री०

भाव सच्चा होना चाहिये

प्रसिद्ध संत महात्मा रूपकलाजीके बचपनकी बात है। वे उस समय प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। वे अपने दो-तीन मित्रोंके साथ नदी-स्नानके लिये जाया करते थे। एक दिन वे अपने दो मित्रोंके साथ नदीमें स्नान कर रहे थे कि अचानक सरिताका वेग बढ़ आया, लहरें उठने लगीं और उनके साथी नन्दकुमार बाबू मध्य धाराकी ओर बढ़ चले।

'प्रभो! आपने यह क्या किया। मैं घर जाकर नन्दकुमारके माता-पिताको क्या उत्तर दूँगा। क्या आप चाहते हैं कि मेरा अपयश हो?' वे श्रीसीता-रामका स्मरण करने लगे, जोर-जोरसे भगवान्‌का परम मधुर नाम लेने लगे। भगवान् तो भावके भूखे हैं, सच्चे भाव और निष्कपट व्यवहारसे वे दयामय बहुत प्रसन्न होते हैं। इधर भगवानसहाय गिड़गिड़ाये और उधर जल-का वेग शान्त होने लगा। देखते-ही-देखते किसी अदृश्य शक्तिकी प्रेरणासे नन्दकुमार बाबूको लहरोंने किनारेपर फेंक दिया। वे अचेत थे।

रूपकला जोर-जोरसे भगवन्नाम-कीर्तन करने लगे। उनके सच्चे भावने नन्दकुमार बाबूको नया जीवन प्रदान किया।—रा० श्री०

जीवनचरित कैसे लिखना चाहिये

आर्यसमाजके संस्थापक श्रीस्वामी दयानन्दजी सरस्वतीके अत्यन्त निकटके श्रद्धालु भक्तोंमें थे पंजाबके पण्डित श्रीगुरुदत्तजी विद्यार्थी। स्वामीजीके देहावसानके अनन्तर उनके एक दूसरे श्रद्धालु अनुयायीने पण्डित गुरु-दत्तजीसे कहा—'पण्डितजी! स्वामीजी महायोगी थे। आपको उनके घनिष्ठ सम्पर्कमें रहनेका सुअवसर मिला है। आपको उनके सम्बन्धमें विस्तृत जानकारी है। आप स्वामीजीका एक जीवनचरित क्यों नहीं लिखते?'

पण्डित गुरुदत्तजी बड़ी गम्भीरतासे बोले—'स्वामी-जीका जीवनचरित लिखनेका मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। थोड़ा प्रारम्भ भी कर चुका हूँ।'

बड़ी उत्सुकतासे उस श्रद्धालुने पूछा—'यह जीवन-चरित कब सम्पूर्ण होगा? कबतक प्रकाशित हो जायगा।'

गुरुदत्तजी बोले—'आप यह धारणा मत बनायें कि मैं कागजपर कोई जीवनचरित लिख रहा हूँ। मेरे विचारसे तो महापुरुषोंका जीवनचरित मनुष्योंके स्वभावमें लिखा जाना चाहिये। मैं इसी प्रकार प्रयत्न कर रहा हूँ कि मेरा जीवन स्वामीजीके पद-चिह्नोंपर चले।'

—सु० सिं०

दयालुता

स्वर्गीय श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणिने महामना मालवीयजीके सम्बन्धमें कहा था—'वे सिरसे पैरतक हृदय-ही-हृदय हैं।'

महामनाके शिक्षाकालकी घटना है। उन्होंने देखा कि एक कुत्तेके कानके समीप घाव हो गया है, वह पीड़ासे छटपटाता कुत्ता इधर-से-उधर भाग रहा है। ऐसे घावसे सड़े कुत्ते हम-आप देखते ही रहते हैं, देखकर उधरसे मुख फेर लेते हैं; किंतु मालवीयजी ऐसा नहीं कर सके। उन्होंने अपना काम छोड़ा और दौड़े गये औषधालयमें। वैद्यजीने उनकी बातें सुनीं। दवा तो दे दी वैद्यजीने, पर वे बोले—'मदनमोहन! ऐसे कुत्ते प्रायः पागल हो जाते हैं, छूनेपर काट लेते हैं। तुम इस खतरेमें न पड़ो तो अच्छा है।'

मालवीयजी ऐसी सम्मति कब सुननेवाले थे। उन्होंने औषध ली, एक लंबे बाँसमें कपड़ा लपेटा और कुत्तेको ढूँढ़ने लगे। कुत्ता एक सँकरी गलीमें बैठ गया था। मालवीयजी बाँस लेकर डट गये दवा लगानेमें। कुत्ता गुर्राता था, दाँत निकालता था, झपटनेका ढंग भी बनाता था; किंतु मालवीयजी बिना हिचके लगे रहे। औषध भलीभाँति लग जानेसे कुत्तेकी पीड़ा कम हुई और वह सो गया, तब मालवीयजीको शान्ति मिली।

—सु० सिं०

संकटमें भी चित्तशान्ति

सन् १८९७ की बात है, लोकमान्य तिलक दाजी साहेब खरेके बँगलेपर उतरे। रातके ९॥ बजे एक यूरोपियन पुलिस सुपरिंटेंडेंट आया और उसने तिलकको बाहर बुलाकर १२४ धाराके अन्तर्गत वारंट दिखाया।

उसे पाँच मिनट ठहरनेको कहकर तिलक भीतर आये और दाजी साहेबके साथ उस धारापर चर्चा की तथा दाजी साहेबसे कहा—'आप मजिस्ट्रेटके बँगलेपर जाकर जमानतके लिये प्रार्थना-पत्र दीजिये और उसका निर्णय जेलमें आकर बताइये।'

तिलक दस बजेके करीब पुलिसके साथ चले गये। १०॥ बजे जेलमें पहुँचते ही वे निश्चिन्त होकर बिस्तरपर सो गये। तत्काल उन्हें गाढ़ निद्रा आ गयी। ११॥ बजे दाजी साहेब आये। तब निश्चिन्त सो रहे थे। उन्होंने दो बार आवाज लगायी, तब जाकर वे जगे।

—गो० न० बै०

विद्या-व्यासङ्गकी रुचि

तिलक महाराजके एक मित्रने बातचीतके प्रसङ्गमें उनसे कहा—'बलवंतराव! स्वराज्य होनेपर आप कौन-सा काम अपने हाथमें लेंगे—आप प्रधान मन्त्री बनेंगे या परराष्ट्रमन्त्री?'

तिलकने तत्काल उत्तर दिया—'नहीं, भैया! जब स्वराज्य स्थापित हो जायगा, तब मैं किसी स्वदेशी कालेजमें गणित विषयके प्रोफेसरका काम करूँगा और सार्वजनिक आन्दोलनसे संन्यास ले लूँगा। राजनीतिसे मेरा जी ऊब गया है। 'डिफरेंशियल कैलकुलस' पर एक आध पुस्तक लिखनेकी मेरी बड़ी इच्छा है। देशकी स्थिति बड़ी बुरी है और आजकल कोई कुछ नहीं करता, इसलिये मुझे इस ओर समय लगाना पड़ता है।'

—गो० न० बै०

कागज-पत्र देखना था, रमणी नहीं

प्रत्येक महान् पुरुषके यशका बीज उसके शुभा-चरणमें ही समाया होता है। सन् १८९६ सालकी घटना है, श्री ल० रा० पांगारकर और लोकमान्य तिलक बैठे हुए बातचीत कर रहे थे।

इसी बीच किसी बड़े रईसकी पत्नी कुछ कागज-पत्र और नीचेकी अदालतका निर्णय लेकर अपील तैयार कर देनेके निमित्त तिलकजीके पास आयी। लोकमान्य डेढ़ घंटेतक उन कागज-पत्रोंको देखते रहे और साथ ही उस रमणीसे आवश्यक प्रश्न भी करते रहे।

रमणीका सारा मामला समझकर उन्होंने उससे कहा—'आप आठ दिन बाद आइये, तबतक मैं अपील तैयार किये देता हूँ। आप अभी जा सकती हैं।'

रमणी चली गयी। आश्चर्यकी बात यह कि रमणी डेढ़ घंटेतक दरवाजेके बीच खड़ी थी और तिलक महाराजने उससे प्रश्नोत्तर भी किये। पर उन्होंने एक बार भी सिर उठाकर नहीं देखा कि रमणी कैसी है।

—गो० न० बै०

विपत्तिमें भी विनोद

कठिन समयमें भी तिलक महाराजका विनोदी स्वभाव बना ही रहता। समयकी कठिनता उनपर कुछ भी असर नहीं करती थी।

उनका एक मुकदमा हाईकोर्टमें चल रहा था। उनके बैरिस्टरको आनेमें थोड़ा विलम्ब हुआ। वहींके एक युवक बैरिस्टर अपने एक मित्र दूसरे बैरिस्टरके साथ लोकमान्यके निकट पहुँचे और कहा—'आपके बैरिस्टरको आनेमें विलम्ब हुआ तो कोई बात नहीं, हमलोग आपकी मददके लिये तैयार हैं।'

तिलकने हँसते हुए कहा—'किसी षोडशीके लिये बीस-बाईस सालके पूर्ण युवककी जगहपर दस-दस सालके दो किशोर वर क्या कभी चल सकते हैं?'

हाईकोर्टमें हँसीकी धूम मच गयी। दोनों बैरिस्टर अपना-सा मुँह लेकर चले गये।—गो० न० बै०

स्थितप्रज्ञता

सन् १९१६ की २३ जुलाईको लोकमान्य तिलककी ६०वीं वर्षगाँठ थी। दो वर्ष पूर्व ही वे मॉंडलेमें छः वर्षकी सजा भोगकर छूटे थे। उनका यह हीरक-जयन्ती-उत्सव सभीने धूम-धामसे मनानेका निश्चय किया। सार्वजनिक अभिनन्दनका पूनामें आयोजन करके एक लाख रुपयोंकी थैली उन्हें देनेका निर्णय हुआ।

वह शुभ दिन आ गया। देशके कोने-कोनेसे अनेक राष्ट्रिय नेता एवं तिलकभक्त उनके अभिनन्दनार्थ पूनेमें पधारे थे। आयोजन गायकवाड़ेमें किया गया था। सभी कुशलप्रश्न, हँसी-मजाक और तिलकके कार्यसे कृतकृत्यताका अनुभव करनेमें लीन थे। स्वयं तिलक महाराज भी सम्भाषणोंमें विलक्षण रीतिसे मग्न थे।

इसी बीच जिला पुलिस सुपरिंटेंडेंट आये और उन्होंने तिलकको एक नोटिस दिया। नोटिसमें लिखा था—'आपके अहमदनगर और बेलगाँवमें दिये गये भाषण राजद्रोहात्मक हैं, इसलिये एक वर्षतक नेकचलनीका बीस हजारका मुचलका और दस-दस हजारकी दो जमानतें आपसे क्यों न ली जायँ?'

किसी स्थितप्रज्ञकी तरह तिलकने नोटिस ले लिया और फिर समारम्भमें आकर उसी तरह समरस हो गये।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः !

लोकमान्य तिलक कितने स्थितप्रज्ञ थे, यह उनके जीवनकी अनेक घटनाओंसे प्रकट है।

एक बार वे अपने कार्यालयमें किसी महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर विचार कर रहे थे। प्रश्न बड़ा ही जटिल और राजनीतिक था। इधर उनके ज्येष्ठ पुत्र कई दिनोंसे बीमार थे।

एकाएक चपरासीने आकर कहा—'बड़े लड़के साहबकी तबियत बहुत खराब है।' तिलकने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वे अपने काममें लगे रहे।

थोड़ी देर बाद उनके एक सहयोगीने आकर कहा—'पुत्र इतना अस्वस्थ है कि कब क्या हो जाय' कहा नहीं जा सकता। फिर भी आप अपने काममें ही उलझे हैं।'

तिलकने प्रश्नोत्तरोंसे काममें बाधा होनी देख बड़ी उपेक्षासे कहा—'उसके लिये डाक्टरोंको कह दिया है। वे देख ही लेंगे। मैं जाकर क्या करूँगा। यह काम तो मुझे ही न करना है।' साथी चला गया।

काम पूरा करके लोकमान्य शामको घर लौटे तो पुत्रका प्राणोत्क्रमण हो चुका था। लगे हाथ कपड़े उतार वे उसकी महायात्राकी तैयारीमें जुट पड़े।—गो० न० बै०

सत्याचरण

श्रीगोपालकृष्ण गोखले जब बालक थे और पाठशालामें पढ़ते थे, उस समय एक दिन उनके अध्यापकने कुछ अङ्कगणितके प्रश्न विद्यार्थियोंको घरसे लगा लानेको दिये। उनमें एक प्रश्न गोखलेको आता नहीं था, उसे उन्होंने दूसरे विद्यार्थीसे पूछकर लगाया।

पाठशालामें शिक्षकने विद्यार्थियोंके उत्तरोंकी जाँच की। केवल गोपालकृष्णके सभी उत्तर ठीक थे। शिक्षकने प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा की और उन्हें कुछ पुरस्कार देने लगे। किंतु गोखले तो फूट-फूटकर रोने लगे। आश्चर्यपूर्वक शिक्षकने पूछा—'तुम रोते क्यों हो?'

गोखले बोले—'आपने समझा है कि सब प्रश्नोंका उत्तर मैंने स्वयं लिखा है, किंतु एक प्रश्न मैंने अपने मित्रकी सहायतासे लगाकर आपको धोखा दिया है। मुझे तो पुरस्कारके स्थानमें दण्ड मिलना चाहिये।'

शिक्षक गोखलेकी सत्यप्रियतासे बहुत प्रसन्न हुए। वे बोले—'अब यह पुरस्कार मैं तुम्हें तुम्हारी सत्यप्रियताके लिये देता हूँ।'—सु० सिं०

जिह्वाको वशमें रखना चाहिये

श्रीमहादेव गोविन्द रानडेके यहाँ एक दिन उनके किसी मित्रने आम भेजे। श्रीरानडेकी पत्नी रमाबाईने वे आम धोकर, बनाकर रानडेके सम्मुख रखे। रानडेने आमके दो-एक टुकड़े खाकर उनके स्वादकी प्रशंसा की और कहा—'इसे तुम भी खाकर देखो और सेवकोंको भी देना।'

रमाबाईको आश्चर्य हुआ कि उनके पतिदेवने आमके केवल दो-तीन टुकड़े ही क्यों लिये! उन्होंने पूछा—'आपका स्वास्थ्य तो ठीक है?'

रानडे हँसे—'तुम यही तो पूछती हो कि आम स्वादिष्ट हैं, सुपाच्य हैं तो मैं अधिक क्यों नहीं लेता! देखो, ये मुझे बहुत स्वादिष्ट लगे, इसीलिये मैं अधिक नहीं लेता।'

यह अच्छा उत्तर है कि स्वादिष्ट लगता है, इसीलिये

अधिक नहीं लेना है ! पतिकी यह अटपटी बात रमाबाई समझ नहीं सकीं । रानडेने कहा—"तुम्हारी समझमें मेरी बात नहीं आती दीखती । देखो, बचपनमें जब मैं बंबईमें पढ़ता था, तब मेरे पडोसमें एक महिला रहती थीं । वे पहिले सम्पन्न परिवारकी सदस्या रह चुकी थीं, किंतु भाग्यके फेरसे सम्पत्ति नष्ट हो गयी थी । किसी प्रकार अपना और पुत्रका निर्वाह हो, इतनी आय रही थी । वे अनेक बार जब अकेली होतीं, तब अपने-आप कहती थीं—'मेरी जीभ बहुत चटोरी हो गयी है । इसे बहुत समझाती हूँ कि अब चार-छः साग मिलनेके दिन गये । अनेक प्रकारकी मिठाइयाँ अब दुर्लभ हैं । पकवानोंका स्मरण करनेसे कोई लाभ नहीं । फिर भी मेरी जीभ मानती नहीं । मेरा बेय रूखी-सूखी खाकर पेट भर लेता है, किंतु दो-तीन साग बनाये बिना मेरा पेट नहीं भरता ।"

श्रीरानडेने यह घटना सुनाकर बताया—'पड़ोसमें रहनेके कारण उस महिलाकी बातें मैंने बार-बार सुनीं । मैंने तभीसे नियम बना लिया कि जीभ जिस पदार्थको पसंद करे, उसे बहुत ही थोड़ा खाना । जीभके वशमें न होना । यदि उस महिलाके समान दुःख न भोगना हो तो जीभको वशमें रखना चाहिये ।'—सु० सिं०

अद्भुत शान्तिप्रियता

एक बार महात्मा गांधीके पास एक उद्धत युवा पुरुष आया और उसने उनसे लगातार प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी । बहुत-से बेसिर-पैरके प्रश्न कर लेनेके बाद उसने उनसे व्यङ्ग्यपूर्वक पूछा—'आपको जब कन्याकुमारीके मन्दिरमें लोगोंने प्रवेश करनेसे रोक दिया था, तब आप अंदर क्यों नहीं गये ? आप तो संसारकी दिव्य ज्योति हैं, फिर वे आपको रोकनेवाले कौन होते थे ।' गांधीजीने उसके सारे प्रश्नोंका उत्तर बड़े शान्तिपूर्ण ढंगसे दिया था । उसके इस प्रश्नपर वे थोड़ा मुसकराये और बोले—'या तो मैं संसारकी ज्योति नहीं था और वे लोग मुझे बाहर रखकर न्याय करना चाहते थे अथवा यदि मैं जगत्की ज्योति था तो मेरा यह कर्तव्य नहीं था कि मैं बलपूर्वक घुसनेकी चेष्टा करता ।'

उस युवकने उनसे पुनः पूछा—"अस्तु ! आपको मालूम होना चाहिये मौलाना मुहम्मद अलीने कहा है—'गांधीजीकी अपेक्षा तो एक दुराचारी मुसल्मान भी श्रेष्ठ है ।' फिर क्या इतनेपर भी आप हिंदू-मुसलिम-एकताकी आशा करते हैं ?"

'क्षमा कीजिये !' गांधीजी बोले—"उन्होंने ऐसा बिल्कुल नहीं कहा । अलबत्ता उन्होंने यह कहा था कि 'ऐसा मुसलमान केवल एक बातमें बड़ा है और वह है अपने धर्ममें । और वह भी केवल कहनेका एक सुन्दर ढंग मात्र था । उसे हम इस तरह क्यों न समझनेकी चेष्टा करें—'मान लीजिये मेरे पास कोहिनूर हीरा है और यदि किसीने इसपर यह कहा कि गांधीजीके पास हीरा है, इस अर्थमें वे अमुक जमींदारसे अच्छे हैं' तो इसमें क्या बुरा कहा । इसी प्रकार अपने मजहबको सर्वोत्तम समझनेका सबको वैसा ही अधिकार है, जैसे किसी पुरुषको अपनी स्त्रीको सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी समझनेका अधिकार है । आपने पढ़नेमें भूल की है । मुहम्मद अलीका तर्कपूर्ण दृष्टिकोण सर्वथा निर्दोष हैं; क्योंकि धार्मिक मामलोंमें मैं सचमुच बड़ा ढीला-ढाला हूँ ।"

युवक निरुत्तर होकर चला गया । —जा० श०

हस्त-लेखका मूल्य

१९२५ के जूनमें, जब गांधीजीका खादी-प्रचार तथा चरखा-उद्योगका प्रयत्न चल रहा था, देशबन्धु चितरञ्जन दासने उनसे दार्जिलिंगमें अपने यहाँ ठहरकर कुछ दिन विश्राम करनेका नम्र प्रस्ताव रक्खा। गांधीजीने वहाँ पाँच दिन ठहरना स्वीकार कर लिया। अब देशबन्धुजीका घर एक आकर्षणका केन्द्र बन गया और दार्जिलिंगका पर्वतीय स्थान चरखोंसे गूँज उठा।

उन दिनों गांधीजीके पास फोटोग्राफरों तथा स्वहस्त-लेख-याचकों (autograph-hunters) की खासी भीड़-सी रहती। पर गांधीजी उन लोगोंसे अपना मूल्य कुछ ले लेते। वे कहते कि हमारा मूल्य आधुनिक है और वह है—'आधा घंटा प्रतिदिन चरखा कातना और खादी धारण करना।'

एक दिन एक लड़की अपनी स्वहस्त-लेख-संग्रह-पुस्तिका (autograph book) के साथ महात्मा गांधीके पास आयी। जब गांधीजीने परिस्थिति बतलायी, तब उसने वैसा करने (चर्खा कातने तथा खादी पहनने) की प्रतिज्ञा की। गांधीजीने—'तो धन्यवाद! लो, मैं यह अपना स्वहस्त-लेख (autograph) दिये देता हूँ,' कहते हुए यों उसकी पुस्तिकामें लिख दिया—'Never make a promise in haste. Having once made a promise, fulfil it even at the cost of your life. (जल्दीमें कभी कोई प्रतिज्ञा न करो। पर एक बार प्रतिज्ञा कर लेनेपर उसे प्राणपणसे निभा दो।'

—[illegible]

काले झंडेका भी स्वागत

२३ मार्च १९३१ की रातमे लाहौर जेलमें भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरुको श्रीगांधीजी आदिकी लाख चेष्टाके बाद भी फाँसी दे दी गयी। समाचार मिलते ही देशमें तीव्र रोष फैल गया। नेहरूजीने कहा—'भगतसिंहकी लाश इंग्लैंड तथा हमलोगोंके बीचमें दरार-जैसी रहेगी। 'भगतसिंह जिंदाबाद' का नारा भारतभरमें गूँज उठा। अंग्रेज अधिकारियोंने चेतावनी दी कि उनकी स्त्रियाँ दस दिनोंतक घरसे बाहर न निकलें। सर्वत्र रोषपूर्ण प्रदर्शन हुए। कलकत्तेमें तो प्रदर्शनकारियोंकी पुलिससे मुठभेड़ हो गयी और बहुत बड़ी संख्यामें लोग मारे गये और घायल हुए। उन्हीं दिनों कराँचीमें कांग्रेस-अधिवेशनके लिये उसके सदस्यगण एकत्र हो रहे थे। गांधीजी भी आये। वे ज्यों ही स्टेशनपर उतरे नवजीवन-सभाके सदस्योंने, जो लाल कुर्ते पहने हुए थे—'गांधी, लौट जाओ'—'गांधीवाद नष्ट हो' के नारे लगाये। साथ ही 'भगतसिंह जिंदाबाद।' 'गांधीजीकी युद्धविराम-घोषणाने ही भगतसिंहको फाँसीके तख्तेपर भेजा है' आदि नारोंके साथ काले झंडे भी दिखलाये गये।

पर गांधीजी इससे तनिक भी अप्रसन्न न हुए। उलटे उन्होंने एक वक्तव्य प्रकाशित करके उनकी प्रशंसा की। उन्होंने कहा—'यद्यपि वे अत्यन्त दुःखी तथा क्रुद्ध थे—वे चाहते तो मुझे शारीरिक हानि पहुँचा सकते थे तथा वे अन्य कई प्रकारसे मुझे अधिक अपमानित कर सकते थे फिर भी उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। केवल काले फूल तथा कपड़ोंसे मेरा स्वागत किया! जहाँ तक मैं समझता हूँ, इससे उन्होंने उन तीन भारतीय देशभक्तोंके फूल (भस्म) का अभिप्राय व्यक्त किया है। मैं उनसे बैठक समाप्त होनेतक इसी शिष्टताकी आशा करता हूँ; क्योंकि वे यह जानते और समझते हैं कि मैं भी उसी लक्ष्यके लिये प्रयत्नशील हूँ, जिसके लिये वे प्रयत्न कर रहे हैं। भेद केवल इतना ही है कि

हमारे मार्ग कुछ-कुछ भिन्न हैं। भगतसिंहकी वीरता तथा त्यागके सामने किसका सिर न झुकेगा; पर मेरा यह अनुमान भी गलत नहीं है कि हमलोग जिस देश-कालमें रह रहे हैं, यह वीरता कम मिलेगी। फिर पूर्ण अहिंसाका पालन तो शायद इससे भी बड़ी वीरता है।'

गांधीजीके शब्दोंका उनपर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने तत्काल उनके प्रति अपने हार्दिक प्रेमका परिचय दिया।—जा० श०

कर्मण्येवाधिकारस्ते

महात्मा गांधी और लेनिन

(लेखक—पं०श्रीबनारसीदासजी चतुर्वेदी)

गांधीजी

उड़ीसा-यात्रा—

'हाँ, अब मुझे ठीक तौरपर प्रणाम करो। तुम जानते हो कि मेरा रक्तका दबाव १९५ है?'

महात्माजीने डाक्टरके छोटे बच्चेके सोनेके बटन झपटकर हँसते हुए कहा और तत्पश्चात् डाक्टरसे भी अनेक मजाक किये। डाक्टर बेचारे अत्यन्त चिन्तित थे। यन्त्र लगाकर उन्होंने हालमें ही देखा था। वे सोच रहे थे कि यह क्या हुआ। बापूने कोई बदपरहेजी तो नहीं की? सवेरे तो रक्तका दबाव कुल जमा १८२ ही था, शामको एक साथ इतना क्यों बढ़ गया? कारण, आखिर क्या हुआ? कारणका ब्यौरा स्व० महादेव भाईके शब्दोंमें सुन लीजिये—

'अपनी उड़ीसाकी यात्रामें गांधीजीको बेशुमार मेहनत करनी पड़ती थी। यद्यपि सब लोग उनसे यही प्रार्थना करते थे कि आप कुछ आराम कर लें, इतना कठोर श्रम न करें, फिर भी वे किसीकी क्यों सुनने लगे। उन्हें ज्ञात हुआ कि एक कार्यकर्ताने उनके भाषणको गलत समझा है। उन्होंने उससे तथा उसके साथियोंसे गरमागरम बहस की और उन्हें अपना दृष्टिकोण समझानेकी भरपूर कोशिश की। डाक्टरने बापूको कह रक्खा था कि वे अधिक बात न करें; पर वे कहते थे—'उड़ीसा आनेके बाद मेरा यह फर्ज हो जाता है कि मैं अपना सर्वोत्तम समय और पूर्ण शक्ति यहाँके कार्यकर्ताओंको अर्पित कर दूँ। भला, ऐसा किये बिना मैं यहाँसे कैसे लौट सकता हूँ।' बापूने उन लोगोंको एक बार वक्त दिया, दुबारा वक्त दिया और अन्तिम दिन तिबारा समय दिया। वे अत्यन्त थके हुए थे। उन्हें ज्ञात था कि इस जगहपर कुष्ठाश्रम है, जहाँ वे दो वर्ष पहले गये थे। बापूने उस आश्रमके मित्रोंको कलकत्तेसे आये हुए फूल भेंटस्वरूप भेजे। आश्रमके सुपरिंटेंडेंटकी स्वभावतः यह इच्छा हुई कि बापू एक बार फिर कुष्ठाश्रममें पधारें। गांधीजी अबकी बार नारंगियोंकी टोकरी लेकर वहाँ गये। अध्यक्ष महोदयके प्रार्थनानुसार उन्हें आश्रमका निरीक्षण भी करना पड़ा। आध घंटे धूपमें इधर-उधर घूमना पड़ा, यद्यपि स्वास्थ्यकी वर्तमान दशामें उनके लिये यह असह्य था। निवास-स्थानपर लौटे तो अत्यन्त थके हुए। डाक्टर साहब शामको आये तो उन्हें कार्यकर्ताओंसे बातचीत करते हुए पाया।'

डाक्टर साहबने कहा—'महात्माजी! आप भी ज्यादती कर रहे हैं—दूसरे मरीजोंकी तरह।'

महादेव भाईने लिखा था—'बापू अपने अट्टहास्यमें मानो अपने घोर कष्टको डुबो देना चाहते थे। कठोर परिश्रम करना उन्होंने अपना स्वभाव ही बना लिया था।'

'प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।'

वर्धा—

बापूने रातको नौ बजेसे आध घंटेका समय बातचीतके लिये मुझे दिया था। बापू खूब हँसते और हँसाते रहे, फिर गम्भीरतापूर्वक बोले—'अब साढ़े नौ बज चुके। मैं रातके डेढ़ बजेका उठा हुआ हूँ और दोपहरको सिर्फ पचीस मिनटके लिये आराम किया है।' रातके डेढ़ बजेसे लेकर रातके साढ़े नौ बजेतक पूरे बीस घंटे ! मैं चकित रह गया। मद्रासके भाई हरिहर शर्मासे, जो उन दिनों वहीं थे, दूसरे दिन मैंने पूछा—'बापू इतनी मेहनत क्यों करते हैं ?' उन्होंने तुरंत ही उत्तर दिया—'प्रायश्चित्तस्वरूप ! हम सब लोग आलसी हैं, उसीका तो प्रायश्चित्त बापू कर रहे हैं।'

काशी—

२ अक्टूबर। 'आज तो महात्माजी ! आपने और भी अधिक काम किया।' श्री-श्रीप्रकाशजीने कहा। 'भाई, आज मेरी वर्षगाँठ है न ?' बापूने उत्तर दिया।

हरिजन-आश्रम, दिल्ली—

'महात्माजी ! क्या आपकी घड़ी बंद हो गयी थी ? आप तो ढाई बजे रातसे ही काम कर रहे हैं।' श्रीवियोगी हरिजीने पूछा। महात्माजीने उत्तर दिया—'घड़ी तो मेरी बिल्कुल ठीक चल रही है। मेरी नींद पूरी हो चुकी थी सो अपनी डाक निपटानेमें लग गया। अब साढ़े पाँच बज चुके हैं।'

विश्ववन्द्य महात्मा गांधीजीके जीवनकी ऐसी सैकड़ों ही घटनाएँ लिखी जा सकती हैं। वे अपने क्षण-क्षणका हिसाब रखते थे। उनकी तपस्या अद्वितीय थी।

लेनिन

और वैसी ही साधना की थी एक अन्य तपस्वीने। सन् १९१९ की बात है। मास्को-कजान रेलवे कई जगहपर टूटी पड़ी थी। रूसी मजदूरोंने उस वक्त अपनी शनिवारकी छुट्टीको, जो कानूनन उन्हें मिलती थी, स्वेच्छापूर्वक राष्ट्रके अर्पित कर दिया था। उस दिन भी वे कामपर आते थे। लेनिनने उस समय कहा था—'मजदूरोंका यह त्याग इतिहासमें अनेक साम्राज्यवादी युद्धोंकी अपेक्षा अधिक उल्लेखनीय तथा महत्त्वपूर्ण घटना है।'

यद्यपि लेनिनके गलेमें तकलीफ थी, एक [illegible] साम्यवादी लड़कीने उनपर छर्रेभरी पिस्तौल चला दी थी। कुछ छर्रे अभी भी गलेमें रह गये थे और वे कष्ट देते थे, फिर भी नवयुवक सिपाहियोंका साथ देनेके लिये लेनिन खुद अपने कंधोंपर लट्ठे उठाकर सवेरेसे शामतक काममें जुटे रहते थे। लोग कहा करते कि आप कोई हलका काम ले लें; पर वे नहीं मानते थे। जब सालभरतक इसी प्रकार अपने शनिवारोंको बिना किसी इनाम या मजदूरीके उन श्रमजीवियोंने दान किया और इस 'यज्ञ' की वर्षगाँठ मनायी गयी, तब लेनिनने कहा था—

'साम्यवादियोंका श्रम समाजके निर्माणके लिये होता है—वह किसी इनाम या पुरस्कारकी इच्छासे नहीं, बल्कि 'बहुजनहिताय' अर्पित किया जाता है। स्वस्थ शरीरके लिये श्रम तो एक अनिवार्य वस्तु है।'

श्रमकी महिमाके उपर्युक्त दो दृष्टान्त क्या हमारे लिये पर्याप्त प्रेरणाप्रद नहीं हैं ? १९५ [illegible] धूपमें आध घंटे चलना और तीस-तीस घंटे निरन्तर काम करना—यह थी बापूकी साधना; और गलेमें [illegible] का छर्रा लिये हुए सवेरेसे शामतक [illegible], कंधेपर लट्ठे उठाना—यह था लेनिनका तप।

पूरे सालभर आम नहीं खाये !

एक बार गांधीजीके यहाँ, जब कि वे आठ वर्षके थे, कोई उत्सव था। उस दिन भोजनके लिये कई लोग आमन्त्रित थे, जिनमें [illegible] भी थे। उस दिन भोजनके [illegible]

का फल। भूलसे उस दिन उचित समयपर उस मित्र-को सूचना नहीं मिल सकी। अतएव वह सम्मिलित नहीं हो सका। गांधीजीको इससे बड़ा आघात पहुँचा। बस! शिष्टाचारकी इस चूकके प्रायश्चित्तमें उस दिनसे उन्होंने आम न खानेका व्रत ले लिया और पूरे एक वर्षतक आम नहीं खाये। उनके माता-पिता तथा पूर्वोक्त मित्रने भी बड़ा आग्रह किया कि वे इस व्रतको छोड़ दें; पर उन्होंने अपनी टेक पूरी करके ही छोड़ी।

—जा० श०

मारे शरमके चुप!

गांधीजीके बचपनके एक मित्र थे—शेख मेहताब साहब। इन मित्रके कारण उनमें पहले अनेकों बाल-सुलभ दुर्गुण भी आ गये थे, जिन्हें गांधीजीने पीछे अपने मित्रके साथ ही बड़ी कठिनतासे एक-एक करके परित्याग किया। इन्हीं महोदयने कृपा करके इन्हें एक दिन वेश्यालय भी पहुँचा दिया था। पर भगवत्कृपासे या जन्मान्तरके संस्कार या अज्ञानसे ये कैसे बच गये, इसका विस्तृत विवरण स्वयं उन्हींके शब्दोंमें पढ़िये—

—'मैं मकानमें दाखिल तो हुआ; पर ईश्वर जिसे बचाना चाहता है, वह गिरनेकी इच्छा करता हुआ भी बच सकता है। उस कमरेमें जाकर मैं तो मानो अंधा हो गया। कुछ बोलनेका औसान ही न रहा। मारे शरमके चुपचाप उस बाईकी खटियापर बैठ गया। बाई झलाई और दो-चार बुरी-भली सुनाकर सीधा दरवाजे-का रास्ता दिखलाया।

'उस समय तो मुझे लगा, मानो मेरी मर्दानगीको लाञ्छन लग गया और धरती फट जाय तो मैं उसमें समा जाऊँ। पर बादको इससे मुझे उबार लेनेके लिये मैंने ईश्वरका सदा उपकार माना है। मेरे जीवनमें ऐसे ही चार प्रसङ्ग और आये हैं। पर मैं दैवयोगसे बचता गया हूँ। विशुद्ध दृष्टिसे इन अवसरोंपर मैं गिरा ही समझा जा सकता हूँ; क्योंकि विषयकी इच्छा करते ही मैं उसका भोग तो कर चुका। फिर भी लौकिक दृष्टिसे हम उस आदमीको बचा हुआ ही मानते हैं, जो इच्छा करते हुए भी प्रत्यक्ष कर्मसे बच जाता है। और मैं इन अवसरोंपर इतने ही अंशतक बचा हुआ समझा जा सकता हूँ। फिर कितने ही काम ऐसे होते हैं, जिनके करनेसे बचना व्यक्तिके तथा उसके सम्पर्कमें आनेवालों-के लिये बहुत लाभदायक साबित होता है। और विचार-शुद्धि हो जानेपर उस कर्मसे बच जानेमें व्यक्ति ईश्वरका अनुग्रह मानता है। जिस प्रकार न गिरनेका यत्न करते हुए भी मनुष्य गिर जाता है, उसी प्रकार पतनकी इच्छा हो जानेपर भी मनुष्य अनेक कारणोंसे बच जाता है। इसमें कहाँ पुरुषार्थके लिये स्थान है, कहाँ दैवके लिये अथवा किन नियमोंके वशवर्ती होकर मनुष्य गिरता है या बचता है, ये प्रश्न गूढ़ हैं। ये आजतक हल नहीं हो सके हैं। और यह कहना कठिन है कि इनका अन्तिम निर्णय हो सकेगा या नहीं।'

सचमुच इन विचारोंमें गांधीजीकी सरलता तथा महत्ता साफ फूट पड़ती है।

—जा० श०

अद्भुत क्षमा

जिसने दक्षिण अफ्रीकाके सत्याग्रहका इतिहास पढ़ा होगा, वह भलीभाँति जानता होगा कि निरपराध होते तथा परोपकार करते हुए महात्मा गांधी-जितना दूसरा कोई भी व्यक्ति न पिटा होगा। इतनेपर भी इन्होंने किसीपर हाथ उठाना तो दूर रहा, अपने प्रतिरोधीके अकल्याणकी बात कभी मनमें भी न आने दी। क्षमा

तो उसे तुरंत कर ही दिया, दण्डसे भी बचानेकी भरपूर चेष्टा की । इतना ही नहीं, जहाँतक हो सका, बड़े प्रेमसे शक्तिभर जी लगाकर उसकी भलाई की। आदिसे अन्ततक ऐसी घटनाओंको पढ़कर मानवहृदय सर्वथा दुःखित, चकित, विस्मित और क्या-क्या होता जाता है, यह कौन बताये । ऐसी घटनाएँ उनके जीवनमें एक-दो नहीं, पग-पगपर और जीवनके अन्ततक होती दीखती हैं; उनकी गणना कौन करे ? पर इनमें ट्रान्सवाल (दक्षिण अफ्रीका) की एक घटना बड़ी मर्मस्पर्शी है। वह नीचे दी जाती है—

जनवरी १९०८ की बात है । ट्रान्सवालमें उपनिवेशवाद (भारतीयोंके वहाँ बसने-न-बसने) का सत्याग्रह चल रहा था । कुछ लोगोंने मिलकर गांधीजीके एक पुराने मवक्किल मीर आलमको उनके विरुद्ध बहकाया और उनको मारनेके लिये ठीक किया । एक दिन वे फॉन ब्राडिस स्कायर स्थित एशियाटिक आफिसमें आम मार्गसे चले जा रहे थे । वे गिब्सनकी कोठीके पार ही हुए थे कि मीर आलम उनकी बगलमें आ गया और उनसे पूछा, 'कहाँ जाते हो ?' गांधीजीने पहले दिनके दिये भाषणके अनुसार बतलाया कि 'मैं दस अंगुलियोंकी निशानी देकर रजिस्ट्रीका सर्टिफिकेट लेने जा रहा हूँ । अगर तुम भी चलो तो तुम्हें दसों अंगुलियोंकी निशानी न देकर केवल दोनों अंगूठेकी निशानी देनेपर ही पहले सर्टिफिकेट दिल्वा दूँ ।' गांधीजी अभी यह कह ही रहे थे कि इतनेमें उसने ताबड़तोड़ उनके सिरपर लाठी बरसाना आरम्भ किया । गांधीजी तो पहली लाठीमें ही 'हे राम' कहकर गिर पड़े और बेहोश हो गये । गिरते समय उनका शिरोभाग एक नुकीले पत्थरपर गिरा; परिणामतः ऊपरका ओठ और ठुड्डी बुरी तरह फट गयी, एक दाँत टूट गया । दूसरे नुकीले पत्थरसे ललाट फटा और तीसरेसे आँख । इतनेपर भी आलम और उसके साथी गांधीजीको लाठियों और लातोंसे मारते ही रहे । उनमेंसे कुछ इसप मियाँ और थम्बी नायडूको भी लगे ।

शोर हुआ । गोरे आ गये । आलम और उसके साथी भागने लगे । पर गोरोंने उन्हें पकड़ लिया । गांधीजीको लोग मि० गिब्सनके दफ्तरमें ले गये । होश आते ही उन्होंने पूछा—'मीर आलम कहाँ है ?' रेवरेंड डोक उनके पास थे । उन्होंने बतलाया 'वह और उसके सभी साथी पकड़ लिये गये हैं ।' गांधीजीने तुरंत कहा—'उन्हें छूटना चाहिये ।' लोगोंने लाख समझाया कि अभी इतनी क्या जल्दी है, अभी आप आराम करें; पर गांधीजीने एक न सुनी और ऐटर्नी-जेनरलके नाम तुरंत तार भेजा—'मीर आलम और उनके साथियोंने मेरे ऊपर जो हमला किया, उसके लिये मैं उन्हें दोषी नहीं मानता । उनपर फौजदारी मुकदमा न चलाकर मेरी खातिर उन्हें तुरत छोड़ दिया जाय ।' इस तारके उत्तरमें वे छोड़ दिये गये ।

पर जोहान्सबर्गके गोरोंने तुरत ऐटर्नी-जेनरलको एक कड़ा पत्र लिखा—'गांधीजीके निजी विचार यहाँ नहीं चल सकते । अपराधियोंने उन्हें सरेआम बीच सड़कमें मारा है । यह सार्वजनिक अपराध है । अपराधियोंको पकड़ना ही होगा ।' फलतः वे पुनः पकड़ लिये गये । गांधीजीकी छुड़ानेकी चेष्टाके बावजूद भी उन्हें तीन मासकी सख्त सजा मिली ।

मुश्किलसे चार महीने बीते होंगे । डरबनकी एक सभामें मीर आलमको गांधीजीने देखा । उसने सामने अपनी भूल स्वीकार की और उसने क्षमा माँगी । गांधीजीने उसका हाथ पकड़ लिया और बड़े प्रेमसे उसे दबाते हुए कहा—'मैंने तुम्हारे विरुद्ध कभी कुछ नहीं सोचा । इसमें तो तुम्हारा कोई अपराध था ही नहीं । तुम बिल्कुल निश्चिन्त रहो ।' — [illegible]

सहनशीलता

महात्मा गांधीजी उन दिनों चम्पारनमें थे। एक दिन वे वहाँसे बेतिया जा रहे थे। रातका समय था, ट्रेन खाली थी। महात्माजीको चलना तो तीसरे दर्जेमें ही ठहरा। वे एक सीटपर सो गये। उनके दूसरे साथी दूसरी सीटोंपर बैठ गये। आधी रातको गाड़ी एक स्टेशनपर खड़ी हुई तो एक किसान उसी डिब्बेमें चढ़ा। उसने डिब्बेमें घुसते ही सीधे महात्माजीको धक्का देकर उठाया—'उठो, बैठो! तुम तो ऐसे पसरे पड़े हो जैसे गाड़ी तुम्हारे ही बापकी है।'

महात्माजी उठकर बैठ गये और उनके पास ही बैठकर वह किसान गाने लगा—

'धन धन गाँधीजी महाराज दुखीका दुःख मिटानेवाले।'

वह महात्माजीका दर्शन करने बेतिया जा रहा था। उसे क्या पता कि उसने जिन्हें धक्का दिया है, वे ही महात्माजी हैं और उसका गीत सुनकर अब मुसका रहे हैं।

बेतिया स्टेशनपर हजारों व्यक्ति महात्माजीके स्वागतके लिये एकत्र थे। ट्रेनके स्टेशनपर पहुँचते ही जयध्वनिसे आकाश गूँजने लगा। अब किसानको अपनी भूलका पता लगा। वह फूट-फूटकर रोने लगा और महात्माजीके पैरोंपर गिर पड़ा। महात्माजीने उसे उठाया और आश्वासन दिया।—सु० सिं०

रामचरितमानसके दोष

एक बार गांधीजीको उनके मित्रोंने लिखा कि 'रामचरितमानसमें स्त्रीजातिकी निन्दा है, बालि-वध, विभीषणके देशद्रोह, जाति-द्रोहकी प्रशंसा है। काव्य-चातुर्य भी उसमें कोई नहीं, फिर आप उसे सर्वोत्तम ग्रन्थ क्यों मानते हैं?'

इसके उत्तरमें उन्होंने लिखा था—"यदि आपलोग जैसे कुछ और अधिक समीक्षक मिल सकें तो फिर कहना पड़ेगा कि सारी रामायण केवल 'दोषोंका पिटारा' है। इसपर मुझे एक बात याद आती है। एक चित्रकारने अपने समीक्षकोंको उत्तर देनेके लिये एक बड़े सुन्दर चित्रको प्रदर्शिनीमें रक्खा और उसके नीचे लिख दिया—'इस चित्रमें जिसको जहाँ कहीं भूल या दोष दिखायी दे, वह उस जगह अपनी कलमसे चिह्न कर दे।' परिणाम यह हुआ कि चित्रके अङ्ग-प्रत्यङ्ग चिह्नोंसे भर गये। परंतु वस्तुस्थिति यह थी कि 'वह चित्र अत्यन्त कलायुक्त था।' ठीक यही दशा रामायणकी आपलोगोंने की है। ऐसे तो वेद, बाइबिल और कुरानके आलोचकोंका भी अभाव नहीं है। पर जो गुणदर्शी हैं, उनमें दोषोंका अनुभव नहीं करते। तब मैं रामचरितमानसको सर्वोत्तम इसलिये नहीं कहता कि कोई उसमें एक भी दोष नहीं निकाल सकता, पर इसलिये कि उसमें करोड़ों मनुष्योंको शान्ति मिली है। और यह बात इस ग्रन्थके लिये दावेके साथ कही जा सकती है।

"मानस'का प्रत्येक पृष्ठ भक्तिसे भरपूर है। वह अनुभवजन्य ज्ञानका भंडार है।"—जा० श०

मैं खून नहीं पी सकता!

महात्मा गांधीजीने कहा है—'मैंने गुरु नहीं बनाया; किंतु मुझे कोई गुरु मिले हैं तो वे हैं—रायचंद भाई।'

ये रायचंद भाई पहले बम्बईमें जवाहरातका व्यापार

करते थे । उन्होंने एक व्यापारीसे सौदा किया । यह निश्चित हो गया कि अमुक तिथितक, अमुक भावमें इतना जवाहरात वह व्यापारी देगा । व्यापारीने रायचंद भाईको लिखा-पढ़ी कर दी ।

संयोगकी बात, जवाहरातके मूल्य बढ़ने लगे और इतने अधिक बढ़ गये कि यदि रायचंद भाईको उनके जवाहरात वह व्यापारी दे तो उसे इतना घाटा लगे कि उसका अपना घरतक नीलाम करना पड़े ।

श्रीरायचंद भाईको जवाहरातके वर्तमान बाजार भावका पता लगा तो वे उस व्यापारीकी दूकानपर पहुँचे । उन्हें देखते ही व्यापारी चिन्तित हो गया । उसने कहा—'मैं आपके सौदेके लिये स्वयं चिन्तित हूँ । चाहे जो हो, वर्तमान भावके अनुसार जवाहरातके घाटेके रुपये अवश्य आपको दे दूँगा, आप चिन्ता न करें ।'

रायचंद भाई बोले—'मैं चिन्ता क्यों न करूँ ? तुमको जब चिन्ता लग गयी है तो मुझे भी चिन्ता होनी ही चाहिये । हम दोनोंकी चिन्ताका कारण यह लिखा-पढ़ी है । इसे समाप्त कर दिया जाय तो दोनोंकी चिन्ता समाप्त हो जाय ।'

व्यापारी बोला—'ऐसा नहीं । आप मुझे दो दिनका समय दें, मैं रुपये चुका दूँगा ।'

रायचंद भाईने लिखा-पढ़ीके कागजके टुकड़े-टुकड़े करते हुए कहा—'इस लिखा-पढ़ीसे तुम बँध गये थे । बाजार-भाव बढ़नेसे मेरा चालीस-पचास हजार रुपया तुमपर लेना हो गया । किंतु मैं तुम्हारी परिस्थिति जानता हूँ । ये रुपये तुमसे मैं लूँ तो तुम्हारी क्या दशा होगी? रायचंद दूध पी सकता है, खून नहीं पी सकता ।'

वह व्यापारी तो रायचंद भाईके पैरोंपर गिर पड़ा । वह कह रहा था—'आप मनुष्य नहीं, देवता हैं ।'

क्या ही अच्छा हो कि छल-कपट, ठगी-मक्कारी, झूठ-फरेब करके किसी प्रकार दूसरेकी परिस्थितिसे लाभ उठानेको आतुर आजका समाज इन महापुरुषोंके उदार चरितसे कुछ भी प्रेरणा ले ।—सु० सिं०

चिन्ताका कारण

सन् १९२७ में 'स्टूडेंट्स वर्ल्ड फेडरेशन' का अधिवेशन मैसूरमें हुआ । अमेरिकाके रेवरेंड मॉट् उसके अध्यक्ष थे । वे जब भारत आये, तब गांधीजीसे मिलनेके लिये उन्होंने समय चाहा । उन दिनों गांधीजीको अवकाश बहुत कम मिलता था । इसलिये उन्होंने उन्हें रातमें सोनेके पहले दस मिनटका समय दिया । कई लोग इस कुतूहलसे कि 'देखें दस मिनटमें ये लोग क्या बातें करते हैं' वहाँ जा उपस्थित हुए ।

गांधीजी आँगनमें सोये हुए थे । रेवरेंड मॉट्ने अपने प्रश्न लिख रक्खे थे और उन्हें लेकर वे एक बेंचपर बैठ गये । उन्होंने पूछा कि 'आपको ऐसी क्या वस्तु दिखी, जिससे अधिक आश्वासन मिलता है ?'

गांधीजीने कहा—'कितनी ही [illegible] भी यहाँके लोगोंके मनसे अहिंसा-वृत्ति नहीं जाती । इससे मुझे बहुत आश्वासन मिलता है ।'

'और कौन-सी ऐसी चीज है, जिससे दिन-रात आप चिन्तित तथा अस्वस्थ रहते हैं ?' मॉट्ने पूछा ।

'शिक्षित लोगोंके अंदरसे दयाभाव सूखता जा रहा है । इससे मैं सर्वदा चिन्तित रहता हूँ ।'

गांधीजीके उत्तरसे मॉट् तथा दर्शक चले गये । कालेलकरजीके मनपर इसका इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने तत्काल '[illegible]' आरम्भ किया ।

एक बार एक [illegible], जो सिर्फ [illegible] साधारण नौकर था, गांधीजीसे [illegible] ([illegible]

—अपने हाथका लिखा कोई वाक्य तथा हस्ताक्षर) माँगा । उन्होंने लिखा—'It does not cost to be kind—(दयालु बननेमें कुछ भी खर्च नहीं पड़ता) ।' कहते हैं कि इस वाक्यसे उस व्यक्तिका स्वभाव ही बदल गया ।—जा० श०

विलक्षण संकोच

गांधीजीने जब दक्षिण अफ्रिकामें आश्रम खोला था, तब अपना सर्वस्व वहाँके आश्रम अर्थात् देशवासियोंको दे दिया । गोकी नामकी इनकी बहिन थीं; जिनका निर्वाह करना कठिन था । गांधीजीके पास अपनी कोई सम्पत्ति थी नहीं । बड़ी कठिनतासे डा० प्राणजीवन मेहतासे कहकर दस रुपये मासिककी व्यवस्था करवायी ।

थोड़े ही दिनोंके बाद गोकी बहिनकी लड़की भी विधवा हो गयी । गोकीने गांधीजीको लिखा—'अब खर्च बढ़ गया है । हमें पड़ोसियोंका अनाज पीसकर काम चलाना पड़ता है । कोई उपाय ढूँढ़ो ।'

जवाबमें गांधीजीने लिखा—'आटा पीसना बड़ा अच्छा है । तुम दोनोंका स्वास्थ्य अच्छा रहेगा । हम भी आश्रममें आटा पीसते हैं । जब जी चाहे आश्रममें रहने तथा जन-सेवा करनेका तुम दोनोंका पूरा अधिकार है । पर मैं घरपर कुछ नहीं भेज सकता, न इसके लिये अपने मित्रोंसे ही कह सकता हूँ ।'—जा० श०

भगवत्-विस्मृतिका पश्चात्ताप

एक बार गांधीजीको दक्षिणभारतके दौरेमें चर्खा-दंगल देखनेमें बड़ी रात हो गयी । वहाँसे जब वे लौटे, तब इतने थक गये थे कि एक चारपाईपर लेटते ही उन्हें नींद लग गयी । दो बजे उनकी नींद खुली तो स्मरण आया कि सोनेके पूर्व प्रार्थना करना भूल गये । फिर तो वे सारी रात सोये नहीं । उनके मनपर बड़ा आघात पहुँचा । शरीर थर-थर काँपने लगा । सारा बदन पसीनेसे लथपथ हो गया । प्रातःकाल लोगोंने जब पूछा, तब सारी बात बतलाते हुए उन्होंने कहा—'जिसकी कृपासे मैं जीता हूँ, उस भगवान्‌को ही भूल गया, इससे बढ़कर बड़ी गलती और क्या होगी ।'

—जा० श०

गोरक्षाके लिये स्वराज्य भी त्याज्य

कांग्रेसका २६ वाँ अधिवेशन मद्रासमें हो रहा था । गांधीजी श्रीनिवास आयंगरके मकानपर ठहरे थे । वे उन दिनों प्रायः राजनीतिसे अलग-से रह रहे थे । शामको श्रीआयंगर महोदय एक मसविदा उनके सामने लाये, जिसमें हिंदू-मुस्लिम समझौतेकी बात थी । गांधीजीने उसे हाथमें लेकर कहा—'इसे मुझे क्या दिखाना है । किसी भी शर्तपर हिंदू-मुस्लिम समझौता हो सके तो वह मुझे मंजूर ही है ।' तत्पश्चात् शामकी प्रार्थनाके बाद वे सो गये ।

प्रातः उठते ही उन्होंने महादेव देसाईको जगाया, काका कालेलकरको भी बुलाया और कहने लगे—"रात बड़ी गलती हो गयी । मैंने मसविदेपर बिना ही विचारे कह दिया कि 'ठीक है' उसमें मुसलमानोंको गो-वध

करनेकी आम इजाजत दी गयी है। भला, यह मुझसे कैसे बर्दाश्त होगा। मैं तो स्वराज्यके लिये भी गोरक्षाका आदर्श नहीं छोड़ सकता। अतएव उन लोगोंको जाकर तुरंत कह आओ कि यह प्रस्ताव मुझे बिल्कुल मान्य नहीं है। परिणाम चाहे जो हो, पर मैं देवकी मंदिरपर इस प्रकार आपत्ति नहीं देख सकता।'

बस, तत्काल उनके आदेशानुसार व्यवस्था की गयी।

—म० दे०

अन्यायका परिमार्जन

डाक्टर प्राणजीवन मेहता गांधीजीके मित्रोंमेंसे थे। रेवाशंकर जगजीवनदास इनके भाई थे। पहले गांधीजी जब बम्बई जाते तब प्राय: इनके ही मकानमें ठहरते थे। एक दिन वहीं आनन्दस्वामी भी गांधीजीके साथ थे। उनकी रेवाशंकरजीके रसोइयेके साथ कुछ बोल-चाल हो गयी। बात-बातमें उसने आनन्दस्वामीका अपमान कर दिया। स्वामीजीने क्रोधावेशमें कसकर उसे एक चाँटा जड़ दिया। शिकायत बापूतक पहुँची। बापूने स्वामीजीसे कहा—'अगर बड़े लोगोंसे तुम्हारा ऐसा झगड़ा हो जाता तो उन्हें तो तुम चाँटा नहीं लगाते। वह नौकर है, इसलिये तुमने उसे चाँटा जड़ दिया। अभी जाकर उससे क्षमा माँगो।' जब आनन्दस्वामीने आनाकानी की, तब आपने कहा—'यदि तुम अन्यायका परिमार्जन नहीं कर सकते तो तुम मेरे साथ नहीं रह सकते।'

आनन्दस्वामी सीधे गये और उन्होंने रसोइयेसे क्षमा माँगी।

नल-राम-युधिष्ठिर पूजनीय हैं

किसीने महात्मा गांधीजीसे पूछा कि 'रामचन्द्रने सीताका अग्निमें प्रवेश कराया और उसका त्याग किया। युधिष्ठिरने जुआ खेला और द्रौपदीकी रक्षा करनेकी भी हिम्मत नहीं बतलायी। नलने अपनी पत्नीपर कलङ्क लगाया और अर्धनग्न-अवस्थामें उसे घोर वनमें अकेली छोड़ दिया। इन तीनोंको पुरुष कहें या राक्षस?' इसके उत्तरमें महात्माजीने उनको लिखा—

'इसका जवाब सिर्फ दो ही व्यक्ति दे सकते हैं—या तो स्वयं कवि या वे सतियाँ। मैं तो प्राकृत दृष्टिसे देखता हूँ तो मुझे ये तीनों ही पुरुष वन्दनीय लगते हैं। रामकी तो बात ही छोड़ देनी चाहिये। परंतु आइये, जरा देरके लिये ऐतिहासिक रामको दूसरे दोनोंकी पंक्तिमें रख दें। ये तीनों सतियाँ इतिहासमें सती न बखानी गयी होतीं यदि वे इन तीनों महापुरुषोंकी अर्धाङ्गनाके रूपमें न रही होतीं। दमयन्तीने नलका नाम रसनासे नहीं छोड़ा, सीताके लिये रामने जिस इस जगत्में दूसरा कोई न था। द्रौपदी धर्मराजपर भौंहें ताने रहती थीं, फिर भी उनने [illegible] थीं। जब-जब इन तीनोंने इन सतियोंको सताया, तब-तब हम यदि उनकी हृदय-गुफामें बैठ गये होते तो उसमें जलती हुई दु:खाग्नि हमें भस्म कर डालती। रामको जो दु:ख हुआ है, उसका चित्र भवभूतिने चित्रित किया है। द्रौपदीको [illegible] वे पाँचों भाई थे। उसके [illegible]। नलने जो कुछ किया, वह तो अपनी [illegible]। नलकी पत्नी-परायणताको तो देवता भी [illegible] आकाशमें ठहरकर देख रहे थे, जब वह [illegible] लेकर आया था। इन तीनों [illegible] लिये बस है। हाँ, यह सच है कि [illegible] पतियोंसे [illegible] है। [illegible]

बिना रामकी क्या शोभा ! दमयन्तीके बिना नलकी क्या शोभा ! और द्रौपदीके बिना धर्मराजकी क्या शोभा ! पुरुष विह्वल, उनके धर्म-प्रसङ्गानुसार भिन्न-भिन्न और उनकी भक्ति 'व्यभिचारिणी' है । पर इन सतियोंकी भक्ति तो स्वच्छ स्फटिक-मणिकी तरह अव्यभिचारिणी है । स्त्रीकी क्षमाशीलताके सामने पुरुषकी क्षमाशीलता कोई चीज नहीं । और क्षमा तो वीरताका लक्षण है । इसलिये ये तीनों सतियाँ अबला नहीं बल्कि सबला थीं । पर मानना चाहें तो यह दोष पुरुषमात्रका मान सकते हैं, नलादिका विशेषरूपसे नहीं । कवियोंने इन सतियोंको सहनशीलताकी साक्षात् मूर्ति चित्रित किया है । मैं तो इनको सती-शिरोमणिके रूपमें पहचानता हूँ । परंतु इनके पुण्यरूप पतियोंको राक्षसके रूपमें नहीं देखना चाहता । उन्हें राक्षस माननेसे सतियाँ दूषित होती हैं । सतियोंके पास आसुरी भावना रह ही नहीं सकती । हाँ, वे सतियोंसे कनिष्ठ भले ही माने जायँ; पर दोनोंकी जाति तो एक ही है, दोनों पूजनीय हैं ।

संत-सेवा

अहमदाबादके प्रसिद्ध संत महाराज सरयूदासके जीवनकी एक घटना है; उनके पूर्वाश्रमकी बात है । वे साधु-संतोंकी सेवामें बड़ा रस लेते थे । यदि उनके कानमें साधु-महात्माओंके आगमनका समाचार पड़ जाता तो सारे काम-काज छोड़कर वे उनका दर्शन करने चल पड़ते थे ।

एक दिन वे अपनी दूकानपर बैठे हुए थे, इतनेमें अचानक उन्हें पता चला कि गाँवके बाहर पेड़के नीचे कुछ संत अभी-अभी आकर विश्राम कर रहे हैं । उन्होंने तुरंत दूकान बंद कर दी और खड़ी दोपहरीमें उनके दर्शनके लिये दौड़ पड़े । मध्याह्न-कालका सूर्य बड़े जोरसे तप रहा था । तेजीसे चलनेके नाते उनका शरीर श्रान्त-क्लान्त हो गया और पसीनेसे भीग गया था ।

'महाराज ! दास सेवामें उपस्थित है । इस गाँवका परम सौभाग्य है कि आपने अपनी चरण-धूलिसे इसको पवित्र कर दिया । बड़े पुण्यसे आप-ऐसे महात्माओंका दर्शन होता है ।' सरयूदासने उनका चरणस्पर्श किया और उनकी चरण-धूलि-गङ्गामें स्नान करके स्वस्थ हो गये ।

मध्याह्नकाल समाप्त हो रहा था । ऐसी स्थितिमें गाँवमें भिक्षा माँगनेके लिये निकलना कदापि उचित नहीं था । संतोंको बड़ी भूख लगी थी, पर वे संकोचवश कुछ कह नहीं पाते थे । श्रद्धालु सरयूदाससे यह बात छिपी नहीं रह सकी । वे तुरंत घर गये । भोजनालयमें देखा तो आटा केवल दो-ढाई सेर ही था । उन्होंने घरवालोंको छेड़ना उचित नहीं समझा और स्वयं आटेकी चक्कीपर गेहूँ पीसने बैठ गये । भोजनकी सारी आवश्यक सामग्री लेकर वे संतोंकी सेवामें उपस्थित हुए । उन्होंने बड़े प्रेमसे भोजन किया । वे सरयूदासजीकी श्रद्धा और सेवासे बहुत प्रसन्न हुए तथा उनके संत-प्रेमकी बड़ी सराहना की ।—रा० श्री०

आदर्श सहनशीलता

अहमदाबादके प्रसिद्ध संत सरयूदासजी महाराज एक बार रेलगाड़ीकी तीसरी श्रेणीमें बैठकर डाकोर जा रहे थे । गाड़ीमें बड़ी भीड़ थी । कहीं तिल छींटनेका भी अवकाश नहीं था । महाराजके पास ही बगलमें एक हट्टा-कट्टा पठान बैठा हुआ था । वह महाराजकी ओर अपने पैर बढ़ाकर बार-बार ठोकर मार रहा था ।

'भाई ! संकोच मत करो । दिखाओ, तुम्हारे पैरमें किस स्थानपर पीड़ा हो रही है । तुम मेरी ओर पैर बढ़ाकर भी पीछे खींच लिया करते हो । मुझे एक बार तो सेवाका अवसर दो । मैं तुम्हारा ही हूँ ।' सरयूदासजी महाराज पैर पकड़कर सहलाने लगे । उसकी ओर [illegible] दृष्टिसे देखा ।

'महाराज ! मेरा अपराध क्षमा कीजिये । [illegible] औड़िया हूँ, यह बात मुझे अब विदित [illegible] है ।' वह शरमा गया । उसने बड़े [illegible] चरणस्पर्श किया, क्षमा-याचना की । —[illegible]

विलक्षण क्षमा

स्वामी उग्रानन्दजी बहुत अच्छे संत थे । बड़े सहिष्णु तथा सर्वत्र भगवद्बुद्धि रखनेवाले थे । एक बार आप उन्नाव जिलेके किसी ग्राममें पहुँचे । संध्या हो गयी थी । आप ब्रह्मानन्दकी मस्तीमें निमग्न एक पेड़के तले गुदड़ी बिछाकर लेट गये । रात्रिमें उसी गाँवमें किसी किसानके बैलको चोर चुराकर ले गये । गाँवमें थोड़ी देर बाद ही हल्ला मचा और सबने कहा कि 'चलो, बैलोंको ढूँढ़ें, कहीं चोर जाता हुआ मिल ही जायगा ।' ऐसा विचार करके बहुतसे गाँववाले लाठी ले-लेकर बैलको ढूँढ़ने निकले । ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वे उस जगहपर आये, जहाँ स्वामीजी पेड़के नीचे सो रहे थे । उनमेंसे एक आदमीको स्वामीजी दिखायी दिये । उसने सबको पास बुलाकर कहा कि 'लो, चोरका पता तो लग गया । देखो ! यह जो पेड़के नीचे पड़ा हुआ है इसके साथी तो बैल आगे लेकर भाग गये हैं और यह यहीं रह गया है ।' यों कहकर उन सबने स्वामीजीको चोर समझकर पकड़ लिया, उनकी गुदड़ी छीन ली और सबने मिलकर उन्हें खूब मारा । किंतु स्वामीजी बिल्कुल शान्त रहे और कुछ भी नहीं बोले । पिटते-पिटते स्वामीजीके मुखसे खूनतक बहने लगा । फिर वे उन्हें बाँधकर गाँवमें ले आये और उन्हें किसी चौपाल-पर ले जाकर एक कोठरीमें बंद करके [illegible] । जब प्रातःकाल हुआ, तब सबने उन्हें उस कोठरीमेंसे [illegible] और पकड़कर उन्हें थानेमें ले जाने लगे । थानेदार स्वामीजीको अच्छी तरहसे जानता था और [illegible] स्वामीजीका बड़ा प्रेमी था । जब गाँववाले उन्हें लेकर वहाँ पहुँचे, तब थानेदारने दूरसे उन्हें देख लिया । वह कुर्सी छोड़कर भागा हुआ वहाँ आया और स्वामीजीके पैरोंमें पड़कर उसने प्रणाम किया । थानेदारको प्रणाम करते देखकर गाँववाले बहुत घबराये कि यह क्या [illegible] है । थानेदारने सिपाहियोंको बुलाकर कहा कि 'पकड़ो इन दुष्टोंको, ये स्वामीजीको क्यों पकड़कर लाये हैं ।' किसानलोग थर-थर काँपने लगे । जब सिपाही उन्हें पकड़ने चले, तब स्वामीजीने उन्हें ऐसा करनेसे रोका और फिर थानेदारसे कहा कि 'देख, जो तू मेरा प्रेमी है तो तू इन्हें कुछ भी दण्ड न दे और इन्हें छोड़ दे तथा सबको मिठाई मँगवाकर खिला ।' थानेदारने बहुत-कुछ कहा, परंतु स्वामीजी नहीं माने । उन्होंने [illegible] मिठाई मँगवाकर उन्हें खिलवायी और तब [illegible] आज्ञा दी । थानेदार यह देखकर दंग रह गया और बोला कि 'ऐसा महात्मा तो आजतक नहीं देखा ।'

स्वामीजीके [illegible]

घट-घटमें भगवान्

लगभग पचास वर्ष पहलेकी बात है। दक्षिण-भारतके प्रसिद्ध संत औलिया साईं बाबाने अध्यात्म-जगत्में बड़ा नाम कमाया। एक समयकी बात है। वे किसी विचारमें मग्न थे कि सहसा उनके अधरोंपर मुसकराहट थिरक उठी।

'तुम्हारे पास मन्दिरमें अन्य व्यक्ति भी आते हैं?' उन्होंने बड़े प्रेमसे प्रश्न किया अपने प्रसिद्ध शिष्य उपासनी महाराजसे। वे बाबाकी आज्ञासे शिरडीकी सीमापर नदीतटपर श्मशान-भूमिके निकट ही खण्डोबाके टूटे-फूटे मन्दिरमें निवास करते थे। वे ब्राह्मण थे, इसलिये द्वारिका माई (मस्जिद)में रहनेमें उन्होंने आपत्ति की। वे नित्य बाबाका दर्शन करते रहते थे। अपने हाथसे भोजन बनाकर नित्य दोपहरको मस्जिदमें बाबाके लिये ले जाया करते थे। साईं बाबाके भोजन करनेके बाद ही अन्न-जल ग्रहण करते थे।

'वहाँ कोई नहीं जाता, बाबा!' उपासनी महाराजका उत्तर था।

'अच्छा, कभी-कभी मैं आता रहूँगा।' बाबाने महाराजपर कृपा की।

× × ×

खड़ी दोपहरीका समय था। सूर्यकी प्रखर किरणोंसे पृथ्वी पूर्ण संतप्त थी। महाराज कड़ी धूपमें भोजनकी थाली लेकर गुरुके पास जा रहे थे। अचानक वे मार्गमें रुक गये। उन्होंने एक काला कुत्ता देखा, जो भूखसे व्याकुल था। महाराजने सोचा कि गुरुको भोजन समर्पित करनेके बाद ही इसे खिलाना उचित है। वे आगे बढ़ रहे थे कि सहसा विचार-परिवर्तन हुआ; पर काला कुत्ता अदृश्य हो गया।

'तुम्हें इतनी कड़ी धूपमें आनेकी क्या आवश्यकता थी। मैं तो रास्तेमें ही खड़ा था।' साईं बाबाके कथनसे महाराजको कुत्तेका स्मरण हो आया, वे पश्चात्ताप करने लगे। साईं बाबा मौन थे।

दूसरे दिन भोजनकी थाली लेकर महाराज ज्यों ही मन्दिरसे बाहर निकले थे कि दीवारके सहारे खड़ा एक शूद्र दीख पड़ा। महाराजने मस्जिदकी ओर प्रस्थान किया। भूखे शूद्रकी ओर देखा तक नहीं। वह गिड़गिड़ाने लगा, पर महाराजको गुरुके पास पहले पहुँचना था।

'तुमने आज फिर व्यर्थ कष्ट किया। मैं तो मन्दिरके पास ही खड़ा था।' साईं बाबाने अपने प्यारे शिष्यकी आँख खोल दी।

'कुत्ते और शूद्र—सबमें एक ही परमात्माका वास है। मैंने उनके रूपमें आत्म-सत्य प्रकटकर तुम्हें वेदान्त-प्रतिपाद्य परब्रह्म परमात्माकी सर्वव्यापकताका रहस्य समझाया है। सबमें परमात्मा हैं, प्रत्येकके प्रति सद्भाव रखकर यथोचित कर्तव्यका पालन करना परम श्रेयस्कर है। भगवान् घट-घटमें परिव्याप्त हैं। उन्हें पहिचानो, जानो, मानो।' साईंबाबाने आशीर्वाद दिया।—रा० श्री०

मैं नहीं मारता तो मुझे कोई क्यों मारेगा

ऋषिकेशके जंगलमें पहले एक महात्मा रहते थे। उनका नाम था द्वारकादासजी। वे बिल्कुल दिगम्बर रहा करते थे।

एक बार एक साहब उस जंगलमें शिकार करने गये। उन्होंने एक बाघके जोड़ेमेंसे बाघको तो मार दिया, किंतु बाघिन बचकर भाग गयी। तब साहबका

उसको भी मारनेका मन हुआ । बस, वे खूब सँभलकर मचानपर बैठ गये ।

इसी समय द्वारकादासजी साहबके पास गये और उससे कहा कि 'आज बाघिनको मत मारना, वह दुखी है ।' यह कहकर वे वहीं लेट गये ।

इतनेमें बाघिन आयी । यह देखकर साहबने बंदूक तानी । द्वारकादासजी ऊँचे स्वरमें चिल्लाये—'तुझे मना किया था न, फिर तू क्यों नहीं मानता ।'

साहब रुक गये । बाघिन आयी और उनके चारों तरफ चक्कर लगाकर वापस चली गयी ।

यह देखकर साहबको बड़ा आश्चर्य हुआ । वे आकर उनसे पूछने लगे—'महाराज ! आपको बाघिनने क्यों नहीं मारा ।'

महात्मा—'मैं किसीको नहीं मारता, तब वह मुझे क्यों मारेगी ।'

साहब—'आपको डर नहीं लगता क्या !'

महात्मा—'नहीं ।'

साहब—'मुझे भगवान्के दर्शनका कुछ उपाय बता दीजिये ।' महात्माने उसको कुछ उपाय बता दिये ।

(कु० गुप्त)

प्रसादका स्वाद

एक महात्मा थे । वे किसीके यहाँ भोजन करने गये । भोजनमें उनको थोड़ी-सी खीर मिली । उसमें उनको अपूर्व स्वाद मिला । उन्होंने थोड़ी-सी और माँगी, भोजन परसनेवालेने लाकर दे दी । किंतु उसमें वैसा स्वाद नहीं आया । उन्होंने इसका कारण पूछा । उन सज्जनने बहुत आग्रह करनेके पश्चात् बताया—'जब मैं भगवान्से प्रार्थना करता हूँ, तब वे कभी-कभी कोई चीज आकर खा लेते हैं । आज छोटी कटोरीकी खीर तनिक-सी उन्होंने खा ली थी । वही खीर मैंने आपको पहली बार दी थी । किंतु दूसरी बार आपके माँगनेपर मैंने दूसरी खीर दी; क्योंकि भोगवाली खीर तनिक भी बची नहीं थी ।'

भगवन्नाममय जीवन

लोग उन्हें काछी बाबा कहते थे । वे जातिके काछी थे और साधु होनेसे नहीं, वृद्ध होनेसे उस प्रदेशकी प्रथाके अनुसार बाबा कहलाते थे । वैसे वे बगीचेमें मजदूरीका काम करते थे, दिनभर परिश्रम करते थे । शामको सरोवरके किनारे माल्ती-कुञ्जके नीचे रोटियाँ सेंककर खा लेते और वहीं सो रहते थे ।

रात्रिमें किसीको शौच जाना हो तो माल्ती-कुञ्जवाले घाटपर ही हाथ धोनेकी सुविधा थी । घाटपर पहुँचते ही सुनायी पड़ता था स्पष्ट—'राम, राम, राम' । यह किसीकी जप-ध्वनि नहीं थी । निद्रामग्न काछी बाबाके श्वाससे यह स्पष्ट ध्वनि आया करती थी ।

एक दिन काछी बाबाने नगरमें अपने बगीचेके स्वामीसे रसगुल्ला खानेकी इच्छा प्रकट की । भरपेट रसगुल्ला खिलाया गया उन्हें । दूसरे दिन फिर पूछा गया—'काछी बाबा ! रसगुल्ला खाओगे !'

काछी बाबा बोले—'बाबू ! ऐसा पाप मैं फिर कभी नहीं करूँगा । [illegible] इन्होंने मेरे [illegible] नहीं आने ।'

नित्य वे वृद्ध श्रीरामजीका दर्शन करते थे ; उन्होंने फिर कभी मिठाई खायी ही नहीं ।—सु० [illegible]

परोपकारके लिये अपना मांस-दान

त्रावणकोर राज्यके तोरूर ग्राममें एक साहूकारका हाथी किसी कारणसे उन्मत्त हो उठा। उसने अपने महावत नारायण नायरको सूँडसे पकड़कर पृथ्वीपर पटक दिया और उनकी पीठमें दाँतसे आघात किया। संयोग अच्छा था, दूसरे लोगोंने हाथीको झटपट वशमें कर लिया। नारायण नायरके प्राण बच गये। वे मूर्छित थे, उठाकर अस्पताल लाये गये।

डाक्टरने महावत नारायण नायरके घावकी जाँच की। हाथीका दाँत भीतरतक पीठमें घुस गया था। घाव बड़ा था, वह टाँकेसे बंद होने योग्य नहीं था। उससे रक्तका प्रवाह चल रहा था। डाक्टरने बताया—'रोगीका जीवन संकटमें है। किसी जीवित मनुष्यका लगभग डेढ़ पौण्ड (तीन पाव) मांस मिले तो उसे घावमें भरकर घावपर टाँका दिया जा सकता है।'

अपने शरीरमेंसे तीन पाव मांस कौन काटने दे। रोगीके परिवारमें, मित्रोंमें, परिचितोंमें ऐसा कोई उसका शुभचिन्तक नहीं निकला जो इतना त्याग उसके लिये कर सके। किंतु भारतकी पवित्र भूमि कभी अलौकिक त्यागियोंसे शून्य नहीं हुई है। समाचार पाकर पानावली ग्रामके एक सम्पन्न कुटुम्बके सदस्य श्रीकन्नड़कृष्ण नायर डाक्टरके पास पहुँचे। उन्होंने डाक्टरसे अपना मांस लेनेको कहा। डाक्टरने उनकी जाँघसे मांस लेकर रोगीके घावमें भरा और टाँका लगाया, इससे महावत नारायण नायरके प्राण बच गये। श्रीकन्नड़कृष्ण नायरको भी जाँघका घाव भरनेतक अस्पतालमें रहना पड़ा।—सु० सिं०

गुप्ताज़ फ़ॉली

विश्वास कीजिये—बिल्कुल सत्य बात है—यह एक मकानका नाम है, जो उत्तर प्रदेशके एक विख्यात शहरमें ही है। इस विचित्र नामकरणका कोई रहस्य तो होगा ही और वह यह है कि गुप्ता महोदय जब मकान बनवा रहे थे, तब उस जमीनके सिलसिलेमें एक झगड़ा हुआ और मुकदमेबाजी हो गयी। हजारों रुपये खर्च करनेके बाद श्रीगुप्ता जीत तो गये, पर उन्हें इस प्रसङ्गमें जो हानि और ग्लानि हुई, उससे उन्होंने अपने मकानको अपनी मूर्खताका परिणाम मान लिया और उसका नामकरण ही कर दिया गुप्ताज़ फ़ॉली (गुप्ताकी मूर्खता)। —जा० श०

विचित्र पञ्च

कलकत्तेमें श्रीलक्ष्मीनारायणजी मुरोदिया नामक एक संतस्वभावके व्यापारी थे। एक बार किन्हीं दो भाइयोंमें सम्पत्तिको लेकर आपसमें झगड़ा हो गया और बँटवारेमें एक अँगूठीपर बात अड़ गयी। दोनों ही भाई उस अँगूठीको लेना चाहते थे। श्रीमुरोदियाजी पञ्च थे, उन्होंने समझाया कि एक भाई अँगूठी ले ले और दूसरा भाई कीमत ले ले, पर वे नहीं माने। तब मुरोदियाजीने युक्ति सोची और ठीक वैसी ही एक अँगूठी अपने पाससे बनवायी। फिर, जिस भाईके पास अँगूठी थी, उसको समझाया कि 'देखो, मैं उसे समझा दूँगा, पर आप अँगूठी पहनना छोड़कर उसे घरमें रख दीजिये ताकि उसको उसकी याद ही न आये।' उसने बात मान ली। तदनन्तर दूसरे भाईके पास जाकर उसे अपनी बनवायी हुई अँगूठी देकर कहा कि 'देखो, मैंने तुमको अँगूठी ला दी है, परंतु इस बातको किसीसे भी कहना नहीं। नहीं तो, तुम्हारा भाई अपनी हार समझ-

कर दुखी होगा। अँगूठीको घरमें रख देना, उसे पहनना ही मत। तुम्हें अँगूठीसे काम था सो मिल गयी। अब इसकी चर्चा ही मत करना।' उसने खुशी-खुशी अँगूठी ले ली और बात मान ली। दोनों भाइयोंमें निपटारा और मेल हो गया। दो-तीन साल बाद जब यह भेद खुला, तब दोनों भाइयोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे अँगूठी लौटाने लगे, पर मुरोदिपार्जीने यह कहकर कि 'दोनोंमें मैं उम्रमें बड़ा हूँ और इसलिये मुझे अधिकार है कि मैं अपनी ओरसे आपको कुछ उपहार दूँ' अँगूठी नहीं ली।

तुलसीका चमत्कार

श्रीठाकुरसाहब ल्दाणा (जयपुर) के पास एक मुसल्मान सजन आये, उनके गलेमें तुलसीकी कंठी बँधी हुई थी। ठाकुरसाहबने पूछा कि 'आप मुसल्मान होते हुए तुल्सीकी कंठी कैसे पहने हुए हैं ?' उत्तरमें उन्होंने कहा कि "ठाकुरसाहब! इसके लिये एक समय मैंने प्रत्यक्ष बड़ा चमत्कार देखा है; तभीसे यह तुल्सीकी माला हमेशा रखता हूँ। चमत्कार क्या देखा, सो आपसे निवेदन करता हूँ—

"एक समय मैं पैदल ही किसी दूसरे गाँव जा रहा था। रास्तेमें एक जंगल था। उस जंगलमें एक पेड़के नीचे बड़े आकारके दो मनुष्य मिले। मैं उनको देखकर डर गया। मुझे डरा हुआ जानकर उन्होंने विश्वास दिलाया कि 'घबराओ मत; आपको कुछ नहीं कहेंगे। हम यमराजके दूत हैं। अभी थोड़ी देरमें एक मनुष्य गाड़ी लेकर यहाँ आयेगा, उसके बैलकी जोती (जो जुआसे बैलके कंधेपर बाँधी जाती है) टूट जायगी। फिर हम बैलरूपी काल बनकर उसको मारकर यमलोक ले जायँगे।'

"यह बात सुनकर मैं भी वहीं ठहर गया। थोड़ी देर बाद एक गाड़ीवान गाड़ी लेकर आया और वहाँ [illegible] वह जोती टूट गयी और गाड़ीवान सुधारनेके लिये नीचे उतरा, उसी समय बैलने उसके पेटमें इतने जोरसे सींग मारा कि तत्काल वह एक पेड़के झुरमुटमें जा गिरा और उसके प्राण छूट गये।

"तब यमके दोनों दूत निराश होकर मुझसे बोले कि 'हम तो खाली हाथ जा रहे हैं, अब हमारा इसपर अधिकार नहीं रहा।' इसे भगवान्‌के दूत ले गये जो आपको नजर नहीं आये।' मैंने यमदूतोंसे कारण पूछा, तब बोले कि 'उस झुरमुटमें तुलसीके पौधे हैं। इसके शरीरसे उनका स्पर्श हो गया। अतः हमें इसको ले जानेका अधिकार नहीं रहा।'

"इस प्रकार मैंने स्वयं जब तुलसीका चमत्कार देखा, तभीसे मैं तुलसीकी माला पहनता हूँ।"

भगवान्‌के भरोसे उद्योग कर्तव्य है

भिखारिणीका अक्षय भिक्षापात्र

घोर दुष्काल पड़ा था। लोग दाने-दानेके लिये भटक रहे थे। भगवान् बुद्धसे जनताका यह कष्ट सहा नहीं गया। उन्होंने नागरिकोंको एकत्र किया। नगरके सभी सम्पन्न व्यक्ति जब उपस्थित हो गये, तब तथागतने उनसे प्रजाकी पीड़ा दूर करनेका कुछ प्रबन्ध करनेको कहा।

नगरके सबसे बड़े अन्नके व्यापारी [illegible] देखा। वे उठकर कहने लगे [illegible] सभी संचित अन्न देनेको प्रस्तुत हूँ, [illegible] नहीं है कि उससे पूरी प्रजाको एक [illegible] दिया जा सके।'

नगरसेठने निवेदन किया—'प्रभु आज्ञा दें तो मैं अपना सम्पूर्ण कोष लुटा दे सकता हूँ; किंतु प्रजाको दस दिन भी भोजन उससे मिलेगा या नहीं—संदेहकी बात है।'

स्वयं नरेशने भी अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। सम्पूर्ण सभा मौन हो गयी। सबने मस्तक झुका लिये। तथागतके मुखपर चिन्ताकी रेखाएँ झलकने लगीं। इतनेमें सभामें सबसे पीछे खड़ी फटे मैले वस्त्रोंवाली एक भिखारिणीने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाया और बोली—'प्रभु आज्ञा दें तो मैं दुष्कालपीड़ित जनोंको भोजन दूँगी।'

एक ओरसे सबकी दृष्टि उस कंगाल नारीकी ओर उठ गयी। सबने देखा कि वह तो अनाथपिण्डदकी कन्या है। अपना ही पेट भरनेके लिये उसे प्रतिदिन द्वार-द्वार भटककर भीख माँगना पड़ता है। तथागत उस भिखारिणीकी ओर देखकर प्रसन्न हो गये थे। किसीने क्रोधपूर्वक पूछा—'तेरे यहाँ कहीं खजाना गड़ा है कि तू सबको भोजन देगी?'

बिना हिचके, बिना भयके उस नारीने कहा—'मैं तो भगवान्की कृपाके भरोसे उद्योग करूँगी। मेरा कर्तव्य उद्योग करना है। मेरा कोष तो आप सबके घरमें है। आपकी उदारतासे ही यह मेरा भिक्षापात्र अक्षय बनेगा।'

सचमुच उस भिखारिणीका भिक्षापात्र अक्षय बन गया। वह जहाँ भिक्षा लेने गयी, लोगोंने उसके लिये अपने भण्डार खोल दिये। जबतक वर्षा होकर खेतोंमें अन्न नहीं हुआ, अनाथपिण्डदकी कन्या प्रजाको भोजन देती रही।

अहिंसाका चमत्कार

लगभग तीन हजार साल पहलेकी बात है। एक समय भगवान् बुद्ध राजगृहमें विहार कर रहे थे। देवदत्त उनसे ईर्ष्या करता था। बहुत-से भिक्षुओंको साथ लेकर पूर्वाह्नके समय पात्र, चीवर लेकर पिंडचार (भिक्षा) के लिये उन्होंने नगरमें प्रवेश किया ही था कि देवदत्तके आदेशसे महावतने राजपथपर नालागिरि नामका प्रचण्ड गज छोड़ दिया। मतवाला हाथी सूँड उठाकर बड़े वेगसे भगवान्की ओर झपट पड़ा, उसके कान फट-फट शब्द करते हिल रहे थे।

'भन्ते! नालागिरि आ रहा है। प्राण ले लेगा। पथसे हट जाइये।' भिक्षुओंने सुगतके चरणोंमें निवेदन किया।

'अहिंसा-बल श्रेष्ठ है, भिक्षुओ!' तथागतने आश्वासन दिया।

राजपथके दोनों किनारोंके प्रासाद, हर्म्य और छतपर खड़े जन-समूह चिन्तामग्न थे।

दुराचारियोंने सोचा कि सुगत मारे जायँगे। सदाचारियोंने उनकी प्राण-रक्षाकी कामना की।

नालागिरि अति निकट आ गया। शाक्यसिंहने उसको मैत्री-भावनासे भर दिया। उनकी करुणदृष्टिसे वह पानी-पानी हो गया। अहिंसाकी तेजस्विनी ज्योतिसे उसके नेत्र चमत्कृत हो उठे। उसकी हिंसा-वृत्ति समाप्त हो गयी। हाथीने सूँड नीची कर भगवान्की वन्दना की, चरण-धूलिसे अपना मस्तक पवित्र किया; ऐसा लगता था मानो गजराजने अहिंसाके राज्यमें प्रवेश कर अपना राज्याभिषेक किया हो। हिंसाने नतमस्तक होकर आत्मसमर्पण कर दिया। अहिंसाके पद-देशमें हाथी अपने स्थानको लौट गया।—बुद्धचर्या

हृदय-परिवर्तन

अंगुलिमालका परिवर्तन

अंगुलिमालके नामके श्रवणमात्रसे ही समस्त कोशल-राज्य त्रस्त और संतप्त हो उठता था। गुरुके दक्षिणा-स्वरूप मैत्रायणीपुत्र वनमें रहता था और यात्रियोंको मारकर उनकी अंगुलियोंकी माला पहनता था; धन या वस्तु आदिका वह अपहरण नहीं करता था। श्रावस्तीके प्रसेनजित् और उनकी प्रजा उससे भयभीत थी।

× × . ×

'इस वनमें डाकू अंगुलिमाल रहता है, भन्ते। वह प्राणियोंका वध करता है।' गोपालकों और किसानोंने भगवान् बुद्धको आगे बढ़नेसे रोका। वे श्रावस्तीमें पिण्डचार समाप्त कर वनमें जा रहे थे विहारके लिये। भिक्षु-संघके मना करनेपर भी वे आगे बढ़ते गये।

अंगुलिमालको आश्चर्य हुआ कि लोग समूहमें भी मेरे पास आनेमें डरते हैं और यह श्रमण तनिक भी भय नहीं मानता है। उसने इनको मार डालनेका संकल्प किया; पर वेगसे दौड़नेपर भी वह तथागतके पास नहीं पहुँच सका।

'खड़े रहो, श्रमण!' अंगुलिमालने संकेत किया।

'खड़ा हूँ, अंगुलिमाल! प्राणियोंके प्रति दण्डका त्याग करनेसे स्थित हूँ। तुम अस्थित हो।' तथागतने प्रबुद्ध किया।

'श्रमण असत्य भाषण नहीं कर सकता है। मैं अंधा हो गया था। मैंने बड़े-बड़े पाप किये हैं।' वह दौड़कर तथागतके चरणोंपर गिर पड़ा और भगवान्‌ने 'आ भिक्षु' कहकर उसे उपसम्पदा दी। वह प्रव्रजित हो गया।

× × ×

'कुशल तो है, प्रसेनजित्!' भगवान् बुद्धने कोशलपतिको पाँच सौ घुड़सवारोंके साथ आते देखकर प्रश्न किया। प्रसेनजित्‌ने चरण-वन्दना की।

'अंगुलिमालका दमन करने जा रहा हूँ, भन्ते! उसके उत्पातसे जनता आतङ्कित है।' राजाके शब्द थे।

'यदि वह काषायवेषधारी प्रव्रजित हो गया हो तो कैसा व्यवहार करोगे?' शास्ता गम्भीर थे।

'उसका स्वागत होगा, भन्ते। [illegible], [illegible] और आसनकी व्यवस्था करेंगे, [illegible] [illegible] करेंगे।' राजाका उत्तर था।

'तो यह है अंगुलिमाल।' तथागतने उसकी ओर दृष्टिपात किया। कोशलनरेशका हृदय [illegible] लगा। प्रसेनजित्‌ने सम्मान प्रकट किया।

'जिसे हम शस्त्र-अस्त्रसे भी न जीत [illegible] है, [illegible] जीत लिया गया।' राजाने तथागतकी [illegible] राजप्रासादकी ओर प्रस्थान किया।

× × ×

तथागतके आदेशसे पिण्डचारके लिये [illegible] में प्रवेश किया। भोजनके [illegible] स्त्रीको देखा जिसका गर्भ [illegible]। [illegible] हृदय व्यथित हो गया।

'यदि जानकर मैंने [illegible] मङ्गल हो; गर्भका मङ्गल हो।' [illegible] जाकर उसे ऐसा [illegible]

'[illegible] [illegible] प्रकट की; [illegible] पालन किया और [illegible] हो गये।

श्रावस्तीसे लौटनेपर उसका सिर फट गया था; खूनकी धारा बह रही थी; जनताने उसे पत्थरसे मारा था पर उसने किसीका भी विरोध नहीं किया। उसके पात्र टूट गये थे; चीवर फट गया था। स्थविरने सहनशीलताका परिचय दिया।

'सत्य भाषण और अविरोध व्रतसे तुम्हारा अन्तः-करण शुद्ध हो गया है, स्थविर! अपूर्व हृदय-परिवर्तन है यह।' तथागतने धर्मकथासे उसे समुत्तेजित किया।

अंगुलिमालका नाम मिट गया; उसने नये जीवनका प्रकाश प्राप्त किया।—बुद्धचर्या

इन्द्रिय-संयम

नर्तकीका अनुताप

मथुराकी सर्वश्रेष्ठ नर्तकी, सौन्दर्यकी मूर्ति वासवदत्ता-की दृष्टि अपने वातायनसे राजपथपर पड़ी और जैसे वहीं रुक गयी। पीत-चीवर ओढ़े, भिक्षापात्र लिये एक मुण्डितमस्तक युवा भिक्षु नगरमें आ रहा था। नगरके प्रतिष्ठित धनी-मानी लोग एवं राजपुरुषतक जिसकी चाटुकारी किया करते थे, जिसके राजभवन-जैसे प्रासाद-की देहलीपर चक्कर काटते रहते थे, वह नर्तकी भिक्षु-को देखते ही उन्मत्तप्राय हो गयी। इतना सौन्दर्य! ऐसा अद्भुत तेज! इतना सौम्य मुख!—नर्तकी दो क्षण तो ठिठकी देखती रह गयी और फिर जितनी शीघ्रता उससे हो सकी, उतनी शीघ्रतासे दौड़ती हुई सीढ़ियाँ उतरकर अपने द्वारपर आयी।

'भन्ते!' नर्तकीने भिक्षुको पुकारा।

'भद्रे!' भिक्षु आकर मस्तक झुकाये उसके सम्मुख खड़ा हो गया और उसने अपना भिक्षापात्र आगे बढ़ा दिया।

'आप ऊपर पधारें!' नर्तकीका मुख लज्जासे लाल हो उठा था; किंतु वह अपनी बात कह गयी—'यह मेरा भवन, मेरी सब सम्पत्ति और स्वयं मैं अब आपकी हूँ। मुझे आप स्वीकार करें।'

'मैं फिर तुम्हारे पास आऊँगा।' भिक्षुने मस्तक ऊपर उठाकर बड़ी वेधक दृष्टिसे नर्तकीकी ओर देखा और पता नहीं क्या सोच लिया उसने।

'कब?' नर्तकीने हर्षोत्फुल्ल होकर पूछा।

'समय आनेपर!' भिक्षु यह कहते हुए आगे बढ़ गया था। वह जबतक दीख पड़ा, नर्तकी द्वारपर खड़ी उसीकी ओर देखती रही।

× × ×

मथुरा नगरके द्वारसे बाहर यमुनाजीके मार्गमें एक स्त्री भूमिपर पड़ी थी। उसके वस्त्र अत्यन्त मैले और फटे हुए थे। उस स्त्रीके सारे शरीरमें घाव हो रहे थे। पीब और रक्तसे भरे उन घावोंसे दुर्गन्ध आ रही थी। उधरसे निकलते समय लोग अपना मुख दूसरी ओर कर लेते थे और नाक दबा लेते थे। यह नारी थी नर्तकी वासवदत्ता! उसके दुराचारने उसे इस भयकर रोगसे ग्रस्त कर दिया था। सम्पत्ति नष्ट हो गयी थी। अब वह निराश्रित मार्गपर पड़ी थी।

सहसा एक भिक्षु उधरसे निकला और वह उस दुर्दशाग्रस्त नारीके समीप खड़ा हो गया। उसने पुकारा—'वासवदत्ता! मैं आ गया हूँ।'

'कौन?' उस नारीने बड़े कष्टसे भिक्षुकी ओर देखनेका प्रयत्न किया।

'भिक्षु उपगुप्त!' भिक्षु बैठ गया वहीं मार्गमें और उसने उस नारीके घाव धोने प्रारम्भ कर दिये।

'तुम अब आये? अब मेरे पास क्या धरा है। मेरा यौवन, सौन्दर्य, धन आदि सभी कुछ तो नष्ट हो गया।' नर्तकीके नेत्रोंसे अश्रुधार चल पड़ी।

'मेरे आनेका समय तो अभी हुआ है।' भिक्षुने उसे धर्मका शान्तिदायी उपदेश देना प्रारम्भ किया। ये भिक्षुश्रेष्ठ ही देवप्रिय सम्राट् अशोकके गुरु हुए।

भिखारिणीको अक्षय भिक्षापात्र
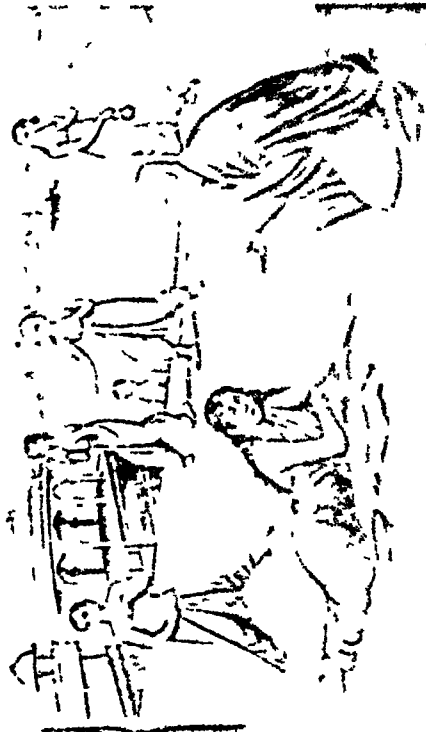
निष्पक्ष न्याय

अहिंसाकी हिंसापर विजय
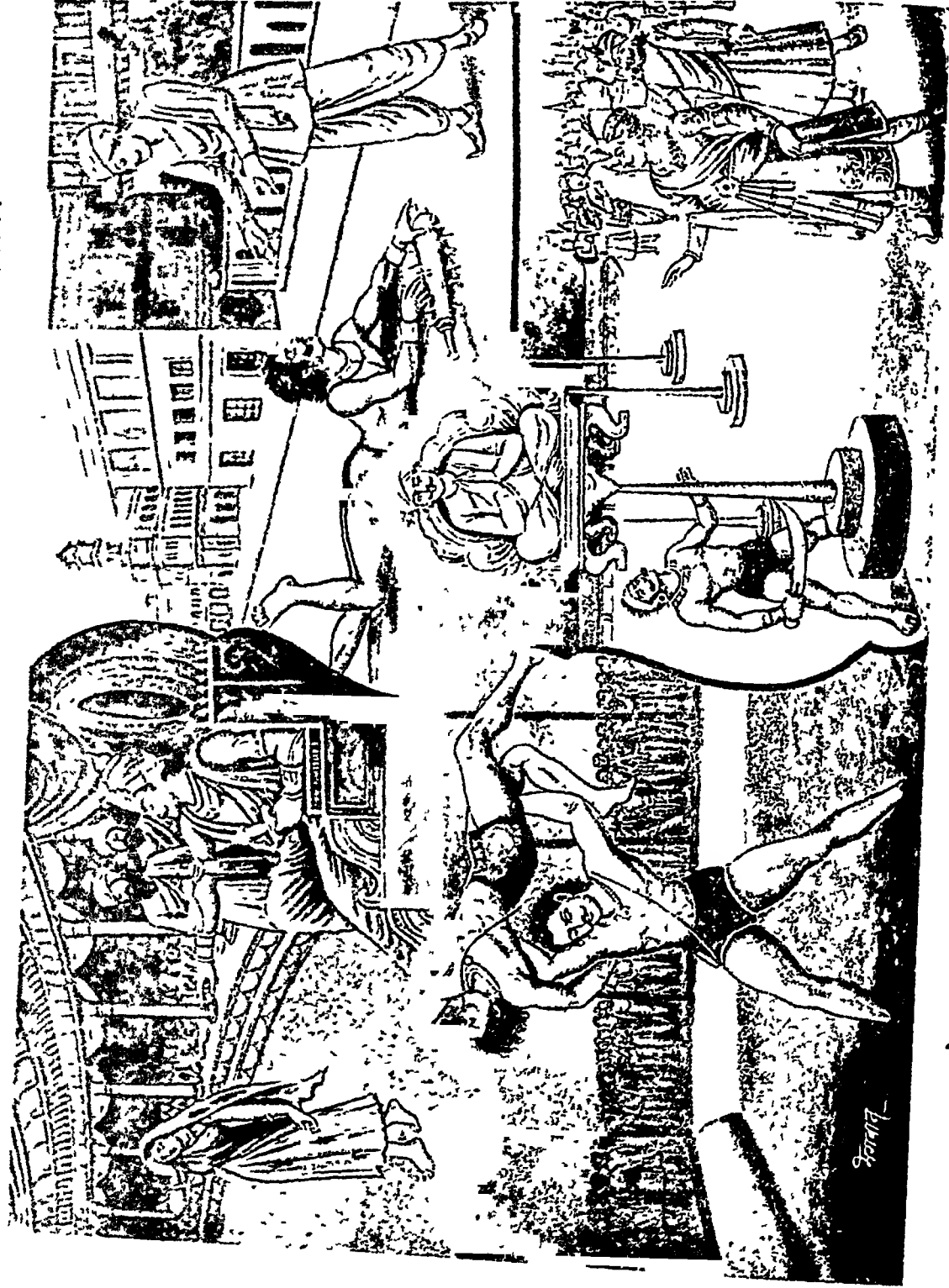
वैभवको धिक्कार है

शूलीसे सिंहासन

निष्पक्ष न्याय

रानीको दण्ड

काशीनरेशकी महारानी अपनी दासियोंके साथ वरुणा स्नान करने गयी थीं। उस समय नदीके किनारे दूसरे किसीको जानेकी अनुमति नहीं थी। नदीके पास जो झोपड़ियाँ थीं, उनमें रहनेवाले लोगोंको भी राजसेवकोंने वहाँसे हटा दिया था। माघका महीना था, प्रातःकाल स्नान करके रानी शीतसे काँपने लगीं। उन्होंने इधर-उधर देखा; किंतु सूखी लकड़ियाँ वहाँ थीं नहीं। रानीने एक दासीसे कहा—'इनमेंसे एक झोपड़ेमें अग्नि लगा दे। मुझे सर्दी लग रही है, हाथ-पैर सेंकने हैं।'

दासी बोली—'महारानी! इन झोपड़ोंमें या तो कोई साधु रहते होंगे या दीन परिवारके लोग। इस शीतकालमें झोपड़ा जल जानेपर वे बेचारे कहाँ जायँगे।'

रानीजीका नाम तो करुणा था; किंतु राजमहलोंके ऐश्वर्यमें पली होनेके कारण उन्हें गरीबोंके कष्टका भला क्या अनुभव! अपनी आज्ञाका पालन करानेकी ही वे अभ्यासी थीं। उन्होंने दूसरी दासीसे कहा—'यह बड़ी दयालु बनी है। हटा दो इसे मेरे सामनेसे और एक झोपड़ेमें तुरंत आग लगाओ।'

रानीकी आज्ञाका पालन हुआ। किंतु एक झोपड़ेमें लगी अग्नि वायुके वेगसे फैल गयी। सब झोपड़े भस्म हो गये। रानीजी तो इससे प्रसन्न ही हुईं। परंतु वे राजभवनमें पहुँचीं और जिनके झोपड़े जले थे, वे दुखी प्रजाजन राजसभामें पहुँचे। राजाको इस समाचारसे बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने अन्तःपुरमें जाकर रानीसे कहा—'यह तुम्हें क्या सूझी! तुमने प्रजाके घर जलवा कर कितना अन्याय किया है, इसका कुछ ध्यान है तुम्हें!'

रानी अत्यन्त रूपवती थीं। महाराज उन्हें बहुत मानते थे। अपने रूप तथा अधिकारका गर्व था उन्हें। वे बोलीं—'आप उन घासके गंदे झोपड़ोंको घर [illegible] रहे हैं। वे तो फूँक देने ही योग्य थे। इसमें अन्याय-की क्या बात।'

महाराजने कठोर मुद्रामें कहा—'न्याय सबके लिये समान होता है। तुमने लोगोंको कितना कष्ट दिया है। वे झोपड़े गरीबोंके लिये कितने मूल्यवान् हैं, यह तुम समझ जाओगी।'

महाराजने दासियोंको आज्ञा दी—'रानीके वस्त्र तथा आभूषण उतार लो। इन्हें एक फटा वस्त्र पहिना-कर राजसभामें ले आओ।'

रानी कुछ कहें, इससे पहिले महाराज चले गये अन्तःपुरसे बाहर। दासियोंने राजाज्ञाका पालन किया। एक भिखारिनीके समान फटे वस्त्र पहिने रानी जब राजसभामें उपस्थित की गयीं, तब न्यायासनसे [illegible] महाराजकी घोषणा प्रजाने सुनी। वे कह रहे थे—'जबतक मनुष्य स्वयं विपत्तिमें नहीं पड़ता, दूसरोंके कष्टोंकी व्यथा समझ भी नहीं पाता। रानीजी! [illegible] राजभवनसे निर्वासित किया जा रहा है। ये सब झोपड़े, जिन्हें आपने जला दिया है, [illegible] जब आप बनवा देंगी, तब राजभवनमें [illegible]।'

अहिंसाकी हिंसापर विजय

अर्जुनमाली बड़ी श्रद्धापूर्वक एक यक्षकी नित्य पूजा करता था। एक दिन उसने जैसे ही पूजा समाप्त की, छः डाकू आ धमके। उन दुर्जनोंने अर्जुनको रस्सियोंसे बाँध दिया और उसके सामने [illegible] [illegible]के साथ भी वे दुर्व्यवहार करने लगे।

अब अर्जुनमालीके [illegible]

दाँत पीसने लगा और मन-ही-मन कहने लगा—'मैंने इतने दिनों व्यर्थ इस यक्षकी पूजा की। इसके सामने ही मेरी तथा मेरी पत्नीकी यह दुर्गति हो रही है। मैं जानता कि यह इतना कापुरुष तथा असमर्थ है तो इसकी प्रतिमा यहाँसे उठा फेंकता।'

अर्जुन क्रोधमें भी सच्चे भावसे मान रहा था कि प्रतिमा जड नहीं है, उसमें सचमुच यक्ष है। उसके इस भावसे यक्ष संतुष्ट हो गया। अर्जुनके शरीरमें ही यक्षका आवेश हुआ। अब तो आवेशमें अर्जुनने अपने बन्धन तोड़ डाले और मूर्तिके पास रक्खा एक लोहेका मुद्गर उठा लिया। अर्जुनमें यक्षका बल था, उसने छः डाकुओं तथा अपनी स्त्रीको भी तत्काल मार दिया। परंतु इसके पश्चात् यक्षके आवेशमें अर्जुनमाली जैसे उन्मत्त हो गया। वह प्रतिदिन सात मनुष्योंको मारने लगा। राजगृहमें हाहाकार मच गया। लोगोंने घरोंसे निकलना बंद कर दिया।

उन्हीं दिनों भगवान् महावीर राजगृहके समीप उद्यानमें पधारे। उनके आगमनका समाचार सेठ सुदर्शनको मिला। तीर्थंकरका दिव्योपदेश श्रवण करने उन्हें अवश्य जाना था। घरके लोगोंने उन्हें मना किया कि अर्जुन राजपथपर मुद्गर लिये घूम रहा है, तो वे बोले—'वह भी तो मनुष्य ही है, मैं उसे समझाऊँगा।'

सेठ सुदर्शन राजपथपर पहुँचे। अर्जुन आज छः व्यक्तियोंका वध कर चुका था और सातवेंकी खोजमें था। सेठको देखते ही वह मुद्गर उठाकर दौड़ा; किंतु सेठ स्थिर खड़े रहे। प्रहारके लिये उसने मुद्गर उठाया तो मुद्गरके साथ स्वयं भूमिपर गिर पड़ा। उसके शरीरमें आविष्ट यक्ष एक नैष्ठिक आचारवान् अहिंसकका तेज सहन नहीं कर सका था, इसलिये वह भाग गया था।

सेठ सुदर्शनने पुकारा—'उठो अर्जुन! मेरी ओर क्या देख रहे हो भाई! आओ! हम दोनों साथ चलकर आज तीर्थंकरकी पवित्र वाणी श्रवण करें।'

सेठने हाथ पकड़कर उसे उठाया और सचमुच उठा लिया जीवनके पाप-पंकसे; क्योंकि तीर्थंकरके सम्मुख पहुँचते ही अर्जुन उनके चरणोंमें नत हो गया। वह दीक्षित हो गया। नगरवासी उसे मुनिवेशमें देखकर भी उसके द्वारा मारे गये अपने स्वजनोंका बदला लेनेके लिये उसे पत्थरोंसे मारते थे, उसपर दण्डप्रहार करते थे; किंतु वह अब शान्त रहता था। उसे आदेश जो मिला था—मा हतो।

वैभवको धिक्कार है!

भरत और बाहुबलि

सम्राट् भरतको चक्रवर्ती बनना था। वे दिग्विजय कर चुके थे, किंतु अभी वह अधूरी थी; क्योंकि उनके छोटे भाई पोदनापुरनरेश बाहुबलिने उनकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। बाहुबलिके पास संदेश भेजा गया तो उन्होंने उत्तर दिया—'महासम्राट् पिता श्रीऋषभदेव महाराजने मुझे यह राज्य दिया था। मैं अपने ज्येष्ठ भ्राताका सम्मान करता हूँ; किंतु वे इस राज्यपर कुदृष्टि न डालें।'

भरतको तो चक्रवर्ती सम्राट् बनना था। वे अपनी दिग्विजय अपूर्ण रहने देना नहीं चाहते थे। बाहुबलिके उत्तरसे उनका क्रोध भड़क उठा। रणभेरी बजने लगी। चतुर मन्त्रियोंने सम्मति दी—'व्यर्थ नरसंहार करनेसे क्या लाभ? भाई-भाईका यह युद्ध है सम्राट्! आप दोनों दृष्टियुद्ध, जलयुद्ध तथा मल्लयुद्ध करके परस्पर ही जय-पराजयका निर्णय कर लें।'

दोनोंने यह सम्मति स्वीकार कर ली। परंतु दृष्टियुद्ध और जलयुद्धमें बाहुबलि विजयी हो गये। सम्राट् भरतने बाहुबलिको मल्लयुद्धके लिये ललकारा। दोनों

भाई अखाड़ेमें उतरे। इस संघर्षमें भी भरतको जब जीतनेकी आशा नहीं रह गयी, तब क्रोधपूर्वक उन्होंने छोटे भाईपर अपने पितासे प्राप्त अमोघ अस्त्र 'चक्ररत्न' का प्रयोग कर दिया। वे क्रोधमें यह भूल ही गये कि 'चक्ररत्न' कुटुम्बियोंपर नहीं चलेगा। किंतु उन्हें अपनी भूल शीघ्र ज्ञात हो गयी। 'चक्ररत्न' बाहुबलिके समीप पहुँचकर लौट गया।

भरतने अन्याय किया था। उनके अन्यायसे बाहुबलि क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने अपनी प्रचण्ड भुजाओंसे भरतको पृथ्वीसे ऊपर उठा लिया—ऊपर उठा लिया अपने सिरसे भी। एक क्षणमें वे भरतको पृथ्वीपर पटक फेंकनेवाले थे। सहसा प्रज्ञाका उदय हुआ। बाहुबलिने धीरेसे भरतको सामने खड़ा कर दिया और बोले—'भाई! क्षमा करना। इस राज्य और वैभवको धिक्कार है, जिसके मदमें अंधा होकर मनुष्य बड़े-छोटेका मान करना भी भूल जाता है।'

भरत पुकारते रहे, प्रजाके लोग पुकारते रहे, किंतु बाहुबलि मल्लशालासे जो निकले तो फिर नहीं लौटे। उन्होंने दीक्षा ले ली। मोह-मायाकी सब गाँठें तोड़कर वे निर्ग्रन्थ हो गये।

शूलीसे स्वर्णसिंहासन

राजपुरोहित तथा सेठ सुदर्शनकी प्रगाढ़ मैत्री थी। पुरोहितजीकी पत्नीने सेठके सदाचारकी परीक्षा लेनेका निश्चय किया। एक दिन जब पुरोहितजी घरसे कहीं गये थे, उनकी पत्नीने सेठजीके पास संदेश भेजा—'आपके मित्र अस्वस्थ हैं।'

सेठ सुदर्शन पुरोहितजीके घर पहुँचे तो पुरोहित-पत्नीका पापपूर्ण प्रस्ताव सुनकर वे काँप उठे। उन्होंने कानोंपर हाथ रखकर कहा—'मुझे क्षमा करो बहिन!' और वहाँसे चले आये।

राजपुरोहितकी पत्नी चम्पानरेशकी रानीके साथ दूसरे दिन धर्मचर्चा करते हुए बोलीं—'आज भी पृथ्वीपर सच्चे सदाचारी विद्यमान हैं।'

रानी हँसी—'तभीतक, जबतक कोई सुन्दरी नारी अपने कटाक्षका उन्हें लक्ष्य नहीं बनाती।'

पुरोहितानी—'आपका भ्रम है रानीजी! ऐसे महापुरुष भी हैं जिन्हें देवाङ्गनाएँ भी विचलित नहीं कर सकतीं। इतिहास साक्षी है।'

रानी—'वे बातें लिखने तथा पढ़नेकी ही हैं।'

पुरोहितानी—'आप चाहें तो परीक्षा कर देखें। सेठ सुदर्शन वे जा रहे हैं राजपथसे।'

रानीको बात लग गयी। उसने दासी भेजकर सेठ सुदर्शनको राजभवनके अन्तःपुरमें बुलवाया। परंतु रानी विफल हुई। उसके हाव-भाव, प्रलोभन तथा धमकियोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ऐसे अवसरोंपर प्रायः पराजित नारी जो करती है, रानीने भी वही किया। उसने सेठ सुदर्शनपर कलंक लगाया कि वे छिपकर अन्तःपुरमें पहुँचे और रानीको भ्रष्ट करना चाहते थे।

सेठ सुदर्शन मौन बने रहे। उनका अपराध ही ऐसा बताया गया था कि नरेश क्रोधसे लाल हो उठे। उन्होंने आज्ञा दी—'इसे इसी समय शूलीपर चढ़ा दो।'

सेठ सुदर्शन शूलीपर चढ़ाये गये, किंतु नरेश, दर्शक तथा सभी उपस्थित लोग चकित रह गये यह देखकर कि शूली सहसा स्वर्णसिंहासन बन गयी। अब जाकर रानीका सच्चा अपराध प्रकट हुआ, परंतु सेठने उसे जीवनदान दिला दिया।

अडिग निश्चय—सफलताकी कुंजी

राष्ट्रिय स्वयंसेवक सङ्घके मूल संस्थापक स्वनामधन्य डाक्टर श्रीकेशवराव बलिराम हेडगेवार किसी कारणवश एक बार शनिवारके दिन कुछ साथियोंको लेकर अड़ेगाँव गये हुए थे। वहाँ कार्यक्रममें संध्या हो गयी। यह गाँव नागपुरसे बत्तीस मीलकी दूरीपर स्थित है; रास्ता बहुत ही विकट है। गाँव नागपुर अमरावतीकी पक्की सड़कसे भी नौ-दस मील दूर है। डाक्टर साहबका नागपुर पहुँचना आवश्यक था; क्योंकि उनका नियम था कि प्रत्येक रविवारको प्रभातकी परेडमें वे स्वयं नागपुरमें उपस्थित रहते थे। साथियोंने अनुरोध किया कि आज रात यहाँ ठहरें। पर वे उनके निश्चयको परिवर्तित नहीं कर सके।

रात अँधेरी, रास्तेमें कीचड़ और पैर मिट्टीसे सने हुए, इसपर पैरमें एक काँटा गहरा चुभा हुआ। इतनी दूरकी पैदल यात्रा। कुछ भी हो, प्रत्येक बाधापर पैर रखकर निःशङ्क आगे बढ़ते जाना तो उनकी आदत हो गयी थी। उनका विश्वास था कि लक्ष्य-प्राप्तिके मार्गमें कठिनाइयाँ तो आयेंगी ही। इसलिये निश्चय करके उत्साहपूर्वक उन्होंने यात्रा प्रारम्भ कर दी।

डाक्टरजीके यात्रा प्रारम्भ करते ही घनघोर मूसलाधार वृष्टि आरम्भ हो गयी। पर संकटोंने अधिक देरतक उनकी परीक्षा नहीं ली। भगवान् सम्भवतः उनके साहसको ही परखना चाहते थे। डाक्टरजी इस कसौटीपर खरे उतरे। कुछ ही मील पैदल चलनेपर उसी रास्ते नागपुर जानेवाली मोटर लगभग ग्यारह बजे रातको मिल गयी। ड्राइवरने डाक्टरजीको पहचानकर गाड़ी खड़ी की और उसमें चढ़ा लिया। गाड़ी खचाखच भरी थी, फिर भी किसी प्रकार पावदान आदिपर खड़े होकर साथियोंने जगह ली। ढाई-तीन बजे रातको सब नागपुर पहुँच गये। निश्चयानुसार डाक्टरजी प्रभातमें परेडके कार्यक्रममें उपस्थित रह सके।

डाक्टरजीकी सफलताकी यही कुंजी है। उनका निश्चय अटल था। आत्म-विश्वास तथा आत्म-श्रद्धा उनमें भरपूर थी। कठिनाइयों और विपत्तियोंका सामना करनेमें उन्हें आनन्द आता था। साहस, शौर्य, निश्चयपर अडिग रहना उनका स्वभाव था।

सर्वत्र परम पिता

(लेखक—श्रीलोकनाथप्रसादजी ढाँढनिया)

लाला बलदेवसिंहजी देहरादूनके रईस थे। वे प्राणिमात्रमें भगवान्की ज्योतिका निरन्तर अनुभव करते थे। प्रेम-तत्त्वका उच्चकोटिका अनुभव उन्हें प्राप्त था। प्राणिमात्रसे उनका प्रेमका बर्ताव प्रत्यक्ष था। कोई भी प्राणी कितना ही उनके विरुद्ध अपना भाव या आचरण रखता हो, उनके प्रेममें किसी प्रकारकी कमी नहीं होती, बल्कि विरोधियोंके प्रति तो उनका विशेष प्रेम दिखायी देता था। उनके जीवनके कई अनुभव और आदर्श विलक्षण घटनाएँ मेरे देखने-सुननेमें आयी हैं। उनमेंसे दो घटनाएँ संक्षेपमें लिख रहा हूँ।

डाकूके रूपमें परम पिता

एक बार उन्हें कुछ डाकुओंका एक पत्र मिला। जिसमें लिखा था 'अमुक तारीखको हमलोग आपके यहाँ डाका डालने आयेंगे।' इसको पढ़कर उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। उनके चेहरेसे और बातचीतसे यही प्रकट होता था कि मानो साक्षात् भगवान् ही या उनके अपने पूर्वजोंके आत्मा ही डाकुओंके रूपमें पधारेंगे। इसलिये उस दिन उनके स्वागतके लिये

लालाजीने हलुआ, पूरी आदि बहुत-सी चीजें बनवायीं और बड़े उत्साह तथा आनन्दके साथ उनकी प्रतीक्षा की गयी। लालाजीके भतीजे श्रीअनिरुद्धकुमारके नाम भी ऐसा ही पत्र आया था। वे पत्र पढ़कर बहुत घबरा गये। उन्होंने पुलिस सुपरिंटेंडेंट तथा जिलाधीशको सूचना दी और अपनी रक्षाके लिये बड़ी तैयारी की। वे जब बलदेवसिंहजीके पास इस पत्रकी सूचना देने आये, उस समय मैं वहाँ मौजूद था, मैंने देखा—उनके चेहरेपर बड़ी घबराहट थी। लालाजीने उनको बहुत समझाया और कहा कि 'भैया! मेरे पास भी ऐसी चिट्ठी आयी है। पर मुझे तो इस बातसे बहुत हर्ष हो रहा है। पता नहीं, भगवान् ही उनके रूपमें पधार रहे हैं या हमारे-तुम्हारे बाप-दादोंकी आत्मा उन्हींके रूपमें आ रही है। इसलिये मैं तो उनके स्वागतके लिये आनन्द और उत्साहके साथ तैयारी कर रहा हूँ, तुमको भी ऐसा ही करना चाहिये और बहुत आनन्द तथा हर्ष मनाना चाहिये। यह तो परम पिताकी बहुत बड़ी कृपा है। यदि उन लोगोंके कामकी चीज होगी और वे ले जायँगे तो बहुत ही आनन्दकी बात होगी।' लाला बलदेवसिंहजीकी ये बातें अनिरुद्धकुमारजीको अच्छी नहीं लगी थीं। वे मनमें कुछ नाराज-से भी हुए थे; परंतु जिस तारीखको डाकुओंने आनेकी सूचना दी थी, उस तारीखको कोई आया नहीं। लालाजीको इसका विचार हुआ और डाकुओंके स्वागतके लिये बने हुए हलुआ-पूरी आदिको हमलोगोंने खाया।

प्रजाके रूपमें परम पिता

इनके भतीजे श्रीअनिरुद्धकुमारजी जमींदार थे। एक बार मालगुजारीका रुपया वसूल न होनेके कारण उन्होंने रैयतोंको धमकाया और डाँटा। कुछ कहा-सुनी हो गयी। इसपर प्रजाके लोगोंने दुखी होकर उनके विरुद्ध फौजदारी कोर्टमें मामला कर दिया। मामला सच्चा था और उन लोगोंके पास काफी सबूत थे अतएव मामला कुछ संगीन हो गया। अनिरुद्धकुमारजीने अपने चचा लाला बलदेवसिंहजीसे सलाह पूछी। दोनों ओरके वकील-बैरिस्टर लोग मामलेको अपने-अपने [illegible] खूब सजाकर लड़ रहे थे। लालाजीने अनिरुद्धकुमारजीको समझाया कि 'जिनको तुमने रैयत समझा और जिनके साथ ऐसा बर्ताव किया है वे तो साक्षात् भगवान्‌के ही रूप हैं, सबमें परम पिताजीकी ज्योति ही प्रकाशित हो रही है। अथवा पता नहीं, उनके भीतर हमलोगोंके बाप-दादोंकी आत्मा ही आयी हुई है। तुमको उनसे माफी माँग लेनी चाहिये तथा उनका [illegible] करना चाहिये।' परंतु अनिरुद्धकुमारजीको यह बात पसंद नहीं आयी। इस स्थितिमें मामलेकी तारीखके दिन स्वयं लाला बलदेवसिंहजी कोर्टमें गये। इनको देखकर न्यायाधीशने इनका सम्मान किया और अपने समीप कुर्सीपर आदरसे बैठाया। दोनों ओरसे वकील-बैरिस्टर पैरवी कर रहे थे। इस बीच लालाजीने हाकिमसे कहा—'आपको इसमें व्यर्थ तकलीफ हो रही है। मैं [illegible] हूँ अज्ञानताके कारण अनिरुद्धकुमारसे भूल हुई है। इन लोगोंको अनिरुद्धकुमारने प्रजा समझा और उनसे लगान वसूल करनेके लिये ऐसा बर्ताव किया। यह बड़े खेदकी बात है। जिनको ये रैयत समझते हैं, उनमें परम पिता परमात्माकी ही प्रत्यक्ष ज्योति है और न मालूम उनके भीतर हमारे ही बाप-दादोंकी [illegible] आयी हुई है। इसलिये मेरी यह राय है कि अनिरुद्धकुमार तुरंत प्रजासे माफी माँग ले और प्रजा [illegible] उचित दण्ड दे, जिससे प्रजाको [illegible]।'

यों कहकर वे उठकर [illegible] और अनिरुद्धकुमारका हाथ पकड़कर प्रजाके सम्मुख ले गये और [illegible] जोड़कर इनसे माफी [illegible]। [illegible] लोग विह्वल हो गये और [illegible] अनिरुद्धकुमारके चरणोंपर गिरने लगे। [illegible] आनन्दमग्न हो गये। [illegible]

लिया गया। राजाजीने प्रजाके सब लोगोंको अनिरुद्धकुमारजीसे गले लगाया। उनको परस्पर हृदयसे हृदय लगाकर मिलाया और प्रजाके लोगोंके लिये अपने यहाँ प्रीतिभोज कराया। सब ओर प्रसन्नता छा गयी। सारा वैमनस्य क्षणोंमें दूर हो गया और दोनों पक्ष अपनेको दोषी बताकर क्षमाप्रार्थी हो गये। कचहरी तथा सारे शहरमें यह बात फैल गयी। चारों ओर सद्भावनाका प्रसार हो गया। लोगोंको आश्चर्यमिश्रित अभूतपूर्व आनन्द मिला।

संन्यासी और ब्राह्मणका धनसे क्या सम्बन्ध ?

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

परम पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय पं० श्रीडूँगरदत्तजी महाराज बड़े ही उच्चकोटिके विद्वान्, परम त्यागी, तपस्वी, पूर्ण सदाचारी, कर्मकाण्डो, अनन्य भगवद्भक्त ब्राह्मण थे। मेरठके एक ग्राममें रहा करते थे। एक छोटी-सी संस्कृतकी पाठशाला थी, उसीमें आप ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके लड़कोंको संस्कृत पढ़ाया करते थे, पर लेते किसीसे एक पाई भी न थे। बिना माँगे कहीं किसीसे कुछ आ जाता तो उसीमें संतोष करते थे। भगवान्‌की कृपासे आपको धर्मपत्नी भी परम तपस्विनी और संतोषी मिली थी। दोनोंका सारा समय भगवान् शालिग्रामकी सेवामें व्यतीत होता था। आप किसीसे माँगते नहीं थे, इसलिये कभी-कभी कई दिनोंतक भोजन किये बिना रह जाना पड़ता था।

एक दिनकी बात है कि अकस्मात् एक दण्डी संन्यासी गाँवमें आ गये और उन्होंने आकर किसी कर्मकाण्डी ब्राह्मणका मकान पूछा। उन्हें भिक्षा करनी थी। लोगोंने पण्डित डूँगरदत्तजी महाराजका मकान बता दिया। स्वामीजी आपके पास आये। स्वामीजीको देखते ही पण्डितजी गद्गद हो गये और श्रीचरणोंमें सिर टेककर बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे बैठाया। भिक्षाकी प्रार्थना की। स्वामीजी तो भिक्षा करने आये ही थे। पण्डितजी घरमें गये और धर्मपत्नीसे स्वामीजीके लिये भिक्षा बनानेको कहा।

ब्राह्मणीने कहा—'नाथ! घरमें तो एक दाना भी नहीं है, भिक्षा कैसे बनेगी?' पण्डितजी बड़ी चिन्तामें पड़े। अन्तमें यह तय हुआ कि न माँगनेकी प्रतिज्ञा आज तोड़ी जाय और पड़ोसीके घरसे आटा ले आया जाय। ब्राह्मणी आटा-दाल ले आयी और भिक्षा तैयार हो गयी। दोनों कई दिनोंके भूखे थे, पर इन्हें अपनी चिन्ता नहीं थी। चिन्ता यह थी कि घरपर आये दण्डी संन्यासी कहीं भूखे न चले जायँ। पण्डितजीने भरसक प्रयत्न किया कि इस बातका तनिक भी स्वामीजीको पता न लगे। बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे रसोई तैयार हो जानेपर सबसे पहले श्रीठाकुरजी महाराजको भोग लगाया गया और फिर स्वामीजीको बड़े प्रेमसे भिक्षा करायी गयी। पर न जाने कैसे स्वामीजीको आपकी निर्धनताका पता लग गया और स्वामीजीने मन-ही-मन कहा कि 'देखो कितने बड़े उच्चकोटिके विद्वान् हैं, फिर भी इन्हें कई दिनों भूखों रह जाना' पड़ता है और संतोष तथा त्याग इतना कि ये किसीको माळूम भी नहीं पड़ने देते।

स्वामीजीको पण्डितजीपर बड़ी दया आयी और उन्होंने पण्डितजीका दुःख-दारिद्रय दूर करनेका निश्चय कर लिया। स्वामीजी रसायन बनाना जानते थे और आपके पास सोना भी था। आपने पण्डितजीको पास बैठाकर कहा कि 'पण्डितजी! मैं श्रीहरिद्वार जा रहा हूँ। आप अमुक दिन श्रीहरिद्वारमें जरूर आइये। मैं अमुक स्थानपर मिलूँगा।' पण्डितजी इस रहस्यको नहीं समझ सके और उन्होंने स्वामीजीकी आज्ञाका पालन करनेकी दृष्टिसे श्रीहरिद्वार जाना स्वीकार कर लिया। आप ठीक समयपर श्रीहरिद्वार पहुँच गये और स्वामीजीसे मिले। स्वामीजी आपको पाकर बड़े प्रसन्न हुए। अगले दिन स्वामीजी और पण्डितजी दोनों श्रीगङ्गास्नानके लिये गये और वहाँपर

पण्डितजीने बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे शास्त्रानुसार स्नान-ध्यान किया । जब आप भजन-पूजनसे निवृत्त हो गये, तब स्वामीजीने पण्डितजीको अपने पास बुलाकर अपनी एक झोली निकाली और उसमेंसे आपने एक तो बहुमूल्य सुवर्णकी पाँच-सात तोलेकी मूर्ति निकाली और एक बड़ी सोनेकी डली निकाली तथा उसे हाथमें लेकर पण्डितजी महाराजसे कहा कि 'डूँगरदत्त ! देखो यह सुवर्णकी मूर्ति है और यह कई तोले सुवर्णकी डली है; यह सब तुम ले लो । तुम बड़े निर्धन ब्राह्मण हो । इसीलिये मैंने तुम्हें बुलाया था । जाओ अब तुम्हें इतना माल दे दिया है, तुम्हारी सारी निर्धनता भाग जायगी ।'

पण्डितजी महाराज स्वामीजीके हाथसे सब चीजें अपने हाथमें लेकर एकदम उठे और सीधे श्रीगङ्गाजीके अंदर गहरे जलमें जा पहुँचे । संन्यासीजी इस रहस्यको न समझ सके । पण्डितजीने जाकर मन्त्र बोलते हुए उन बहुमूल्य मूर्तिको और सोनेकी डलीको एकदम जलमें बहा दिया और स्वयं बाहर निकल आये । आपको इतने बड़े धनको न लेते प्रसन्नता हुई और न फेंकते दुःख हुआ ।

जब स्वामीजीने यह देखा तो वे आश्चर्यमें डूब गये और उन्हें इस घटनासे महान् दुःख हुआ तथा उन्होंने क्रोधमें भरकर पण्डितजीको बड़ी डाँट-फटकार सुनाते हुए कहा—'अरे डूँगरदत्त ! तूने यह क्या किया ! हमने तुझे यह सब इस लिये नहीं दिया था कि तू इन्हें श्रीगङ्गाजीमें ले जाकर फेंक दे ।'

पण्डितजीने हाथ जोड़कर नम्रतासे कहा—

पण्डितजी—महाराज ! [illegible]

स्वामीजी—बताओ ।

पण्डितजी—महाराज ! [illegible]

स्वामीजी—कैसे [illegible] !

पण्डितजी—अपना भी कल्याण किया और [illegible] भी कल्याण किया ।

स्वामीजी—अरे मेरे पास [illegible] अपने पास भी नहीं रहने दिया । [illegible]

पण्डितजी—जी हाँ महाराज, [illegible] ।

स्वामीजी—कैसे ?

पण्डितजी—महाराज ! मेरा तो कल्याण [illegible] कि हम ब्राह्मणोंको [illegible] धन तो तप ही है । [illegible] भूल जाते । और आपका कल्याण [illegible] शास्त्रोंमें संन्यासीके लिये [illegible] महान् पाप तथा निषिद्ध बताया है । [illegible] आपसे भी यह [illegible] छूट गया । [illegible] आपका दोनोंका ही कल्याण हो गया ।

स्वामीजी महाराज [illegible] विलक्षण त्यागको इससे देखकर [illegible] दाँतोंतले अँगुली दबा गये [illegible] कलिकालमें इस प्रकारके त्यागी ब्राह्मण [illegible] तो व्यर्थ ही संन्यास लिया । [illegible] हैं । पण्डित डूँगरदत्तने [illegible] कल्याण किया । इनका [illegible] ब्राह्मण और सन्तशिरोमणि [illegible] है ।'

स्वप्नके पापका भीषण प्रायश्चित्त

(लेखक—भक्त श्री[illegible])

परम संत श्रीबाबा वैष्णवदासजी महाराज बड़े ही उच्चकोटिके श्रीरामभक्त—संत थे । आपका सारा समय श्रीरामभजनमें व्यतीत होता था । जो भी दर्शनार्थी आपके पास आता, आप उसे किसी भी जीवको न सताने, सबपर दया करने, [illegible] श्रीरामभजन [illegible]

गा और श्रीरामभजन करना प्रारम्भ कर दिया था। श्रीहनुमान्‌जी महाराजकी प्रसन्नताके निमित्त आप बंदरोंको लड्डू खिलाते थे और मीठे रोटका भोग लगाते थे। आप मन, कर्म, वचन तीनोंसे किसीको न कभी सताते, न दुःख पहुँचाते थे। और सभीको इसी प्रकारका उपदेश दिया करते थे।

स्वप्नमें किये पापका प्रायश्चित्त—शरीरका त्याग

एक दिन नित्यकी भाँति जब भक्त आपके पास आये तो सबने देखा कि आज महात्माजीका चेहरा सदाकी भाँति प्रसन्न नहीं है। क्या कारण है, इसका कुछ पता नहीं है। एक भक्तने उन्हें उदास देखकर पूछा—

भक्त—महाराजजी! कुछ पूछना चाहता हूँ?

महात्माजी—पूछो।

भक्त—आज आप कुछ उदास-से प्रतीत होते हैं?

महात्माजी—हाँ, ठीक, बिल्कुल ठीक।

भक्त—महाराजजी! क्यों?

महात्माजी—हमसे आज एक घोर पाप हो गया।

भक्त—महाराज! क्या पाप हो गया?

महात्माजी—पूछो मत।

भक्त—पाप और आपसे हो गया। यह तो असम्भव है। बतलाइये, क्या हुआ?

महात्माजी—नहीं भैया! हो गया—बस हो गया, पूछो मत, घोर पाप हो गया?

भक्त—नहीं महाराज! बताना ही होगा।

महात्माजी—पाप ऐसा हुआ है कि जिसके कारण खाना, पीना, सोना सभी हराम हो गया है।

भक्त—महाराज! आखिर क्या पाप हो गया?

महात्माजी—आज रात्रिको हमने स्वप्न देखा और आगे मत पूछो भैया!

भक्त—नहीं महाराज, बताओ क्या हुआ?

महात्माजी—अरे भैया! हुआ क्या, स्वप्नमें हमसे घोर पाप बन गया जो कि महात्माओंसे नहीं होना चाहिये। स्वप्नमें देखा कि हमने स्वप्नमें अपने हाथोंसे किसी बंदरको मार डाला है। यही पाप अब हमें चैनसे नहीं बैठने दे रहा है। हाय! मुझसे स्वप्नमे बंदर मारा गया। मालूम होता है कि मुझसे श्रीहनुमान्‌जी महाराज अप्रसन्न हैं तभी तो मुझसे ऐसा घोर पाप हुआ।

भक्त—महाराज! आप चिन्ता न करें। यह तो स्वप्न है; स्वप्न दीखते ही रहते हैं।

महात्माजी—क्या मुझे ऐसे ही स्वप्न दीखने चाहिये थे? क्या अच्छे स्वप्न मेरे भाग्यमें नहीं लिखे थे। बंदर मारना तो घोर पाप है। इससे बढ़कर और घोर पाप क्या होगा? शास्त्रोंमें लिखा है कि यदि भूलसे भी बंदर मर जाय तो नरक जाय और जबतक पैदल चारों धामोंकी यात्रा न कर ले, पाप दूर नहीं होता। हाय! मुझसे स्वप्नमें बंदर मारा गया, बड़ा पाप हुआ।

भक्त—महाराज! आप स्वप्नकी बातोंमें व्यर्थ दुखी होते हैं।

महात्माजी—अरे, स्वप्नमें ऐसा घोर पाप होते देखना क्या उचित था?

भक्तोंने महात्माजीको खूब समझाया, पर महात्माजीका दुःख दूर नहीं हुआ। आपने स्वप्नमें बंदर मारे जानेके कारण खाना-पीना सब छोड़ दिया और दिन-रात श्रीहनुमान्‌जी महाराजसे क्षमा-प्रार्थना करनी प्रारम्भ कर दी। एक दिन भक्तोंने आकर देखा कि महात्माजीके शरीरपर कुछ मला हुआ है और आपके मुखसे श्रीराम-रामका उच्चारण हो रहा है और आपका शरीर जल रहा है। भक्त देखकर भागे पर महात्माजीने उन्हें पास आनेसे रोका और कहा 'वहीं रहो, मुझे न छूओ। मैं पापी हूँ, मैंने स्वप्नमें बंदर मार दिया है; अब मैं अपने पापोंका सहर्ष प्रायश्चित्त कर रहा हूँ। संत वह है जो स्वप्नमें भी किसी जीवको न सताये, किसीका जी न दुखाये।'

भगवत्सेवक अजेय है

महावीर हनूमान्जी

जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥
दासोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
हनूमान् शत्रुसैन्यानां निहन्ता मारुतात्मजः ॥
न रावणसहस्रं मे युद्धे प्रतिबलं भवेत् ।
शिलाभिश्च प्रहरतः पादपैश्च सहस्रशः ॥
अर्दयित्वा पुरीं लङ्कामभिवाद्य च मैथिलीम् ।
समृद्धार्थो गमिष्यामि मिषतां सर्वरक्षसाम् ॥

—वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्ड ४२ । ३३—३६

महावीर श्रीहनूमान्जी समुद्र-लङ्घन करके लङ्कामें पहुँच गये थे। उन्होंने अशोकवाटिकामें श्रीजानकीजीके दर्शन कर लिये थे और उनको श्रीराघवेन्द्रका कुशल-संवाद सुना दिया था। अब तो वे श्रीविदेहनन्दिनीकी अनुमति प्राप्त करके अशोकवाटिकामें पहुँच गये थे।

त्रिभुवनजयी राक्षसराज रावणकी परमप्रिय वाटिका ध्वस्त हो रही थी। वृक्षोंकी पङ्क्तियाँ धराशायी पड़ी थीं। तरुशाखाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी थीं। जहाँ-तहाँ ठूँठ खड़े थे और उनके मध्य हेमाभ, पर्वताकारदेह, प्रचण्डमूर्ति श्रीपवनकुमार बार-बार हुंकार करते कूद रहे थे, गिराते-तोड़ते जा रहे थे वृक्षोंको। उपवनके रक्षकोंमें-से एक किसी प्रकार साहस करके आगे बढ़ा। कुछ दूरसे ही उसने पूछा—'निर्भीक कपि! तू कौन है?'

जैसे विशाल पर्वतके सम्मुख छोटा-सा भैंसा खड़ा हो। वृक्षोंसे भी ऊपर मस्तक उठाये केशरीकुमारके सम्मुख कुछ दूर खड़ा वह राक्षस—एक बार उसकी ओर देखा श्रीरामदूतने। वे स्थिर खड़े हो गये और उनकी भुवनघोषी हुंकार गूँज उठी—'अमित पराक्रम श्रीराघवेन्द्रकी जय! महाबलशाली कुमार लक्ष्मणकी जय! श्रीरघुनाथजीद्वारा रक्षित वानरराज सुग्रीवकी जय! मैं अतुलकर्मा कोसलेन्द्र [illegible] राक्षस! शत्रुसेनाके संहारक [illegible] हनूमान् हूँ। सुन ले भली प्रकार! [illegible] सहस्रों वृक्षोंसे मैं जब प्रहार करने लगूँगा, तब [illegible] एक सहस्र रावण भी मेरा सामना नहीं कर [illegible]। तुमलोग सावधान हो जाओ! इस [illegible] पूरी लङ्कापुरीको चौपट करके, [illegible] करके, तुम सब राक्षसोंके देखते-देखते मैं अपना [illegible] पूर्ण करके यहाँसे जाऊँगा।'

यह निर्भय गर्जना गर्वकी नहीं थी। [illegible] सर्वसमर्थ स्वामीके प्रति विश्वासकी [illegible] भुवनत्रिजयी रावण देखता रह गया और [illegible] भस्म कर दी—अकेले हनूमान्ने [illegible] कैलासको उठा लेनेवाला रावण, [illegible] वाला मेघनाद और कुम्भकर्ण [illegible] सभी देखते रहे; किंतु [illegible] सका। लङ्काको भस्म करके [illegible] प्रणाम करके [illegible] सकुशल लौट गये। [illegible] पराजित कर [illegible]

—————

दीनोंके प्रति आत्मीयता

(प्रेषक—श्रीव्रजगोपालदासजी अग्रवाल)

श्रीधाम पुरीके 'बड़े बाबाजी' सिद्ध श्रीरामरमणदास-जीके विद्यार्थी-जीवनका नाम राइचरण था। उस समय इनकी आयु दस-बारह वर्षकी थी। इस अवस्थामें आप सदैव परहितमें तत्पर रहते थे। एक दिन विद्यालयसे आते समय एक विद्यार्थीको बिना छातेके आता हुआ देखकर आपने अपना छाता उसे दे दिया और स्वयं धूपमें तपते घर आये। एक दिन एक व्यक्तिको वस्त्राभावसे जाड़ेमें कष्ट पाते देख आपने अत्यन्त आग्रहपूर्वक अपना मूल्यवान् शीतवस्त्र उसे दे दिया और स्वयं शीतसे काँपते हुए घर लौटे। माँसे डरकर कहा—'माँ, मेरी अलवान कहीं खो गयी।' माँ कनकसुन्दरी दुःख करने लगी। इसपर उनके कुछ साथियोंने कहा कि 'नहीं माँ! राइचरण झूठ बोल रहा है, कल स्कूलसे आते समय एक गरीबको जाड़ेसे काँपते देखकर यह अपनी अलवान उसे दे आया है।' यह सुनकर देवी कनकसुन्दरी हँसकर कहने लगी—'अच्छा! गरीबको दे आया, बहुत अच्छा किया। माँ जगदम्बा तुझे और देंगी।' माता और पुत्रके इस व्यवहारको देखकर सभी अवाक् रह गये। जैसी दयामयी माँ, वैसा ही दयार्द्रहृदय बेटा।

एक दिन राइचरणने देखा कि एक वृद्ध बाजारसे लौटते समय ज्वराक्रान्त हो गया है। वह दाल-चावलादि सामान बाजारसे खरीदकर घर ले जा रहा था। अब वह उस सामानको लेकर घर जानेमे असमर्थ है। आपने शीघ्रतासे उसका गट्ठर उठाकर अपने सिरपर रख लिया और उसके घर ले जाने लगे। वह भय एवं सकोचसे कहने लगा—'बाबूजी! आप मेरा बोझ अपने सिरपर न रक्खें, मैं तो नीच जाति धोबी हूँ।' आपने उत्तर दिया—'तुम कोई भी क्यों न हो, परिचयसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं। इस समय तुम पीड़ित हो, चलो, तुम्हें घर पहुँचा दूँ।' वृद्धको पहुँचाकर घर लौटनेमें इन्हें देर हुई, स्नेहमयी माँ रोने लगीं। कुछ समय पश्चात् जब आप घर पहुँचे तो बात सुनकर माता आनन्दमग्न हो गयीं।

संस्कृत-हिंदीको छोड़कर अन्य भाषाका कोई भी शब्द न बोलनेका नियम

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

पूज्यपाद गोस्वामी श्रीगुल्लूजी देववाणी—संस्कृत, हिंदी या व्रजभाषाको छोड़कर दूसरी भाषाका एक शब्द भी नहीं बोलते थे। उन्होंने एक दिन सुना कि उनके पुत्र गोस्वामी श्रीराधाचरण अंग्रेजी पढ़ रहे हैं, तब आपने उन्हें अपने पास बुलाया और बहुत समझाया। एक बार आप श्रीसाहूजी साहेब श्रीललितकिशोरीजीसे मिले थे। बातों-ही-बातोंमें बंदूकका प्रसङ्ग सामने आ गया। आपका कड़ा नियम था कि संस्कृत और व्रजभाषाको छोड़कर एक शब्द भी नहीं बोलूँगा। आपने बंदूक चलानेका वर्णन इस प्रकार व्रजभाषामें किया—

—'लौहनलिकामें श्याम चूर्ण प्रवेश करिके अग्नि दीनी तो भड़ाम शब्द भयौ।'

गो-ब्राह्मण-भक्ति

स्वर्गीय धार्मिक नरेश परम भक्त महाराज प्रतापसिंहजी काश्मीरके जीवनकी घटनाएँ

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

स्वर्गीय काश्मीरनरेश महाराज प्रतापसिंहजी बड़े ही कट्टर आस्तिक, धर्मपरायण तथा गो-ब्राह्मणोंके अनन्य भक्त थे। ब्राह्मणोंको देखते ही खड़े हो जाते थे और उनका बड़ा आदर-सम्मान करते थे। आपके यहाँ सैकड़ों ब्राह्मण रहा करते थे। कोई विद्वान् ब्राह्मण रुद्रीका पाठ करते, तो कोई चण्डीका पारायण; कोई लक्ष्मीका पठन करते तो कोई जप-अनुष्ठान, कोई पूजा-अर्चना तो कोई वेदपाठी ब्राह्मण वेदपाठ करते। आप प्रतिदिन बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे ब्राह्मण-भोजन कराते थे और हर महीने उन्हें दान-दक्षिणा देकर प्रसन्न करते थे। एक बार जब आपसे घरवालोंने कहा कि 'महाराज! आपने इन सैकड़ों ब्राह्मणोंका खर्च व्यर्थ ही क्यों बाँध रक्खा है, इससे क्या लाभ है?' यह सुनकर आपको बड़ा दु:ख हुआ और आपने उन्हें उत्तर दिया कि 'भाई! देखो बहुतसे राजा-नवाब विलास तथा दुराचारमें धन तथा जीवन बिता रहे हैं! उनसे तो हमारा यह कार्य लाखोंगुना अच्छा है जो हमे पूज्य ब्राह्मणोंके नित्यप्रति दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त होता है और उनके द्वारा पूजा-पाठ करानेसे हमारा जन्म सफल हो रहा है। वेदध्वनि, वेदपाठ, देव-पूजा आदिके कारण देश सुख-शान्तिकी ओर जा रहा है। यह [illegible] धनकी सार्थकता है।' यह सुनकर सब शान्त हो गये।

गोमाताके भी आप ऐसे अनन्य भक्त थे कि [illegible] रियासतमें अस्सी प्रतिशत मुसलमान [illegible] सर्वथा निषिद्ध था। गायें निर्भय होकर [illegible] थीं। महाराजको चलते समय रास्तेमें यदि [illegible] जाती थी तो आप गायको बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे [illegible] झुकाते थे और दाहिनी ओर [illegible]। एक बार [illegible] जा रहे थे तो आगे रास्तेमें कहीं गाय बैठी थी, [illegible] दौड़कर गायको उठा दिया ताकि [illegible] लिये [illegible] साफ हो जाय। आपने उस नौकरको बड़े जोरसे डाँटकर कहा कि 'आनन्दसे बैठी गोमाताको कष्ट पहुँचाना महा अपराध है। इससे बढ़कर और क्या पाप होगा? [illegible] गोमाताकी रक्षाके लिये परमात्मा श्रीकृष्ण [illegible] आते हैं और नंगे पाँव उन्हें चराते [illegible] हैं, उसी गोमाताको मेरे लिये कष्ट पहुँचाना [illegible] है। हम क्षत्रियोंका जन्म गौओंके लिये हुआ है, गोमाताको कष्ट पहुँचानेके लिये नहीं। [illegible] भी ऐसा किया तो दण्ड दिया जायगा।'

आजादकी अद्भुत जितेन्द्रियता

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

सुप्रसिद्ध महान् देशभक्त क्रान्तिकारी तरुण वीर चन्द्रशेखर आजाद बड़े ही दृढ़प्रतिज्ञ थे। हर समय आपके गलेमें यज्ञोपवीत, जेबमें गीता और पिस्तौल साथ रहा करती थी। आप कट्टर आस्तिक, ईश्वरपरायण, सदाचारी, ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय और संयमी थे। व्यभिचारियोंको बड़ी घृणाकी दृष्टिसे देखा करते थे और कहा करते थे कि [illegible] परस्त्रीगामी हैं, [illegible] है और न [illegible] हैं [illegible] चाहते थे कि [illegible] और एक भी [illegible] जिन्होंने [illegible]

वे अनेक आपत्ति किये बिना नहीं रहते थे और आप कहा करते थे कि इनसे दूर रहनेमें ही देशभक्तका कल्याण है।

एक बार आप अपने एक मित्र महानुभावके यहाँ ठहरे हुए थे। उनकी नवयुवती कन्याने उन्हें काम-जालमें फाँसना चाहा, आजादजीने डाँटकर उत्तर दिया 'इस बार तुम्हें क्षमा करता हूँ, भविष्यमें ऐसा हुआ तो गोलीसे उड़ा दूँगा।' यह बात आपने उसके पिताको भी बता दी और भविष्यमें उनके यहाँ ठहरना तक बंद कर दिया।

आपके पास क्रान्तिकारी दलके हजारों रुपये भी रहते थे; परंतु उसमेंसे अपनी कराहती माँको भी कभी एक पैसा आपने नहीं दिया। जब किसीने इस सम्बन्धमें उनसे कहा तो आपने उत्तर दिया 'यह पैसा मेरा नहीं, राष्ट्रका है। चन्द्रशेखर इसमेंसे एक भी पैसा व्यक्तिगत कार्योंमें नहीं लगा सकता।'

सिगरेट आपकी तो उसका धुआँ किसका ?

(लेखक—स्वामीजी श्रीप्रेमपुरीजी)

एक बार कैलासाश्रम ऋषिकेशसे ब्रह्मलीन महात्मा स्वामीजी श्रीप्रकाशानन्दपुरीजी होशियारपुरसे हरद्वार पधार रहे थे। रेलके अम्बाला छावनी स्टेशनपर खड़ी होते ही तीन-चार पहलवान सेवकोंके साथ एक नव-शिक्षित युवक धूम्रपान करता हुआ स्वामीजीवाले डिब्बेमें चढ़ा। जिन नाक, आँख, मुखको प्रथम कभी सिगरेटके धुएँका परिचय नहीं था, उनको इससे बड़ा कष्ट हुआ। परंतु उस अल्हड़ युवकसे कुछ कहना तो दूर रहा, उसकी ओर झाँकनेकी भी हिम्मत किसीकी न हो सकी। यह करुण दृश्य स्वामीजीसे नहीं देखा जा सका। उन्होंने युवकसे कहा—'आप नीचे प्लेटफॉर्मपर उतरकर धूम्रपान करें।' युवक—'क्यों! हम क्यों नीचे उतरें! हमारा सिगरेट पीना जो सहन न कर सकता हो, वही उतर जाय।' स्वामीजी—'आप देख रहे हैं कि आपके अतिरिक्त अन्य किसीको भी सहन नहीं हो रहा है, ऐसी दशामें सबके उतरनेकी अपेक्षा अकेले आपको ही यह कष्ट करना उचित है।'

युवक—'सिगरेट हमारी है, हम पी रहे हैं, इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ता है? अपनी चीजका उपयोग करनेमें हम स्वतन्त्र हैं, हमें नीचे उतारनेका तुम्हें क्या अधिकार है? हाँ, तुमसे न सहा जाता हो तो लो हमसे सिगरेट लो और तुम भी पियो।' स्वामीजी शान्त, सौम्य, परंतु प्रभावोत्पादक ढंगसे बोले—'जो कुछ बिगड़ रहा है वह तो सबके सामने है, इस बीभत्स धूमसे अनभ्यस्त इन बच्चे एवं माताओंकी मुखमुद्रा तो देखिये। आप स्वतन्त्र हैं, ईश्वरके अनुग्रहसे पूर्ण स्वतन्त्र बने रहें; किंतु स्वच्छन्दी बनकर दूसरोंकी स्वतन्त्रताका विघात न करें। हम-आप सभी भारतीय हैं, इस नाते आपसे उपर्युक्त निवेदन करनेका हमें पूरा अधिकार है। आप हमें सिगरेट भेंट कर रहे हैं, यह आपकी उदारता है, आप और भी उदार बनें; किंतु उड़ाऊ (दूसरोंके मुखपर धुआँ उड़ानेवाले) मत बनें। सिगरेट आपकी है तो उसका धुआँ किसका है? वह भी आपका ही होना चाहिये। आप अपनी सिगरेट अपने ही मुखमें रक्खें और उसके धुएँको भी अपने ही मुखमें छिपाये रक्खें।'

युवकको कुछ प्रभावित हुआ-सा देख स्वामीजी और भी अधिक उत्साहसे उसे उपदेश देने लगे—'मैं आपसे सिगरेटकी आशा नहीं रखता, प्रत्युत इस विनाशकारी व्यसनको सदाके लिये

छोड़ देनेकी आशा अवश्य रखता हूँ, मुझे आप कुछ देना चाहते हैं तो यही दीजिये। युवक तो आप हैं ही, कुलीन भी माळूम होते हैं; किंतु आपके मुखपर यौवनकी आभा कहाँ है ! इस सत्यानाशी व्यसनने सब नष्ट कर डाला है। शरीरका स्वास्थ्य अमूल्य है, मनके स्वास्थ्यका महत्त्व इससे भी कहीं अधिक है, सिगरेट दोनोंको चौपट कर देती है। मानवसे दानव बना डालनेवाले व्यसनमें मनुष्य जितना आसक्त रहता है उतना ही आसक्त वह यदि व्यसनियोंके भी जीवनदाता प्रभुमें रह सके तो दानवसे देव बन जाता है।'

युवक ध्यानसे सुन रहा था, अतः स्वामीजीने प्रसन्नतापूर्वक अपना वक्तव्य चालू रक्खा—'हम अपने जीवनकी लम्बाईको यद्यपि नहीं बढ़ा सकते, तथापि उसकी चौड़ाई, गहराई एवं ऊँचाईको अवश्य बढ़ा सकते हैं और इसके लिये जीवनको दुर्व्यसनोंसे ऊपर उठाना आवश्यक है। निर्मल वस्तुके संसर्गसे हमें निर्मलताका अनुभव नहीं होता, परंतु मलिन वस्तुके तो स्पर्शमात्रसे ही मलिनताका चेप प्रत्यक्ष अनुभवमें आ जाया करता है। शुभ संस्कार सहसा नहीं पड़ते, अशुभ अभ्यास सहज ही हो जाता है। कपड़ेपर दाग लगनेमें देर नहीं लगती, देर लगती है दागके छुड़ानेमें। उसके लिये खर्च तथा परिश्रम भी करना पड़ता है, इतनेपर भी सम्भव है, दाग सर्वथा साफ न हो, थोड़ा-बहुत धब्बा रह जाय। अपने जीवनकी भी यही दशा है। जीवनको कलुषित करनेवाले [illegible] आग्रह [illegible] करना उचित है। [illegible] गया तो फिर [illegible] बिना उसका छूटना असम्भव है। [illegible] है और व्यसन ([illegible]) [illegible] हो जाता है। तात्पर्य कि [illegible] छोड़नेके प्रयत्नमें [illegible] सुधरनेकी आशा [illegible] आनेवाली और विचार करनेपर [illegible] मान्यताओंको तो जोरसे पकड़े रहते हैं और [illegible] छूनेमें भी सकुचाते हैं। [illegible] माळूम देते हैं, यही नहीं, [illegible] होते हैं। मेरी बातें आपने [illegible] छितकर ऊँची [illegible] चाहिये और इस [illegible] हिम्मत करनी चाहिये। बस, [illegible] चाहता हूँ। परम दयानिधान परमात्मा [illegible] दें, शक्ति दें, साहस दें।'

युवकका संस्कारी हृदय पुकार उठा,—'[illegible] स्वामीजीके मनचाहा [illegible]' [illegible] सिगरेटका डिब्बा फेंक दिया और [illegible] स्वामीजीके चरण पकड़कर [illegible] जाना कबूल, पर सिगरेट [illegible] है।' [illegible] अहाहा तथा युवा हृदय [illegible]

कर सौं तलवार गहौ जगदंबा

जीवन मिश्र नामके एक पण्डित थे। वे देवीके भक्त थे। एक दिन वे कहींसे देवीकी पूजा करवाके आ रहे थे। उनके पास बहुत रुपये थे। रास्तेमें उनको चोरोंने घेर लिया और कहा—'तुम्हारे पास जो कुछ है सब दे दो, नहीं तो, हम तुमको मार डालेंगे।' तब जीवन मिश्रने कहा—

'[illegible]'

उसी समय एक [illegible] वहाँ आयी और चोरोंने [illegible] दिया तथा चोर [illegible] जीवन मिश्रकी बहुत [illegible] देकर हुई।

जीव ब्रह्म कैसे होता है

(लेखक—श्रीयोगेश्वरजी त्रिपाठी, बी० ए०)

बाबा श्रीभास्करानन्दजी अपनी गङ्गातटकी कुटियामें बैठे भगवन्नामका जप कर रहे थे। सहसा आहट पाकर उनकी दृष्टि सामनेकी ओर गयी। बोले—'आओ, माधवदास! कैसे आ गये?'

अभिवादनादिके बाद बैठकर माधवदासने विनम्र भावसे पूछा—'महाराजजी! क्या कभी जीव ब्रह्मके पदको प्राप्त कर सकता है? यदि कर सकता है तो कैसे?'

बाबाजीने कहा—कमरेकी दीवाल टूटनेसे जैसे कमरेका आकाश बाहरके आकाशसे मिलकर एक हो जाता है, वह है तो एक अब भी, परंतु दीवालके कारण अलग मानता है। वैसे ही मायारूपी दीवालके हट जानेपर जीव ब्रह्म हो जाता है। अथवा यों समझो कि एक छोटा घड़ा, जिसमें थोड़ा जल है, नदीमें बहता जा रहा है, घड़ा फूट जाता है तो घड़ेका जल नदीके जलमें मिलकर एक हो जाता है, है तो जल अपनी जातिसे एक ही, पर घड़ेके कारण अलग दीखता है, वैसे ही मायारूपी घड़ेके फूट जानेपर जीव ब्रह्ममें मिल जाता है।

न समझमें आया हो तो जाओ भीतरसे लोहेकी डिबिया उठा लाओ। आज्ञा पाते ही माधवदास अंदरसे डिबिया ले आये और बाबाजीसे पूछने लगे—'इसमें क्या है?'

बाबाजी बोले—इसमें पारसकी बटिया है।

माधवदासके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा, उन्होंने पूछा—'महाराज! मैंने तो सुन रक्खा है कि पारसके स्पर्शसे लोहा सोना हो जाता है, फिर यह लोहेकी डिबिया लोहेकी ही कैसे रह गयी?'

'समझ जाओगे भैया! जरा इसे खोलो तो' बाबाजीने कहा। माधवदासने तुरंत डिबिया खोली, देखा कि कोई वस्तु पतली कागजकी झिल्लीमें लपेटी रक्खी है।

बाबाजी बोले—'भैया! इस कागजकी झिल्लीको निकालकर बटियाको डिबियामें रख दो।' आज्ञा पाकर माधवदासने ऐसा ही किया और डिबिया सोनेकी हो गयी। बाबा भास्करानन्दजीने कहा—देखो—लोहेकी डिबियामें पारस था, पर कागजकी झिल्लीका व्यवधान बीचमें था। पारसका स्पर्श नहीं हो पाता था। इसीसे लोहा लोहा बना रहा। इसी प्रकार यह पतली-सी माया है जिसने स्वरूपतः एक होनेपर भी ब्रह्मसे जीवको अलग कर रक्खा है। माया हटते ही जीव ब्रह्म हो जाता है।

भगवत्-प्रेम

एक समयकी बात है। महात्मा ईसा अपने शिष्योंसे घिरे हुए एक स्थानपर विश्राम कर रहे थे। कुछ देर पहले उपदेश देकर कहीं बाहरसे आये हुए थे।

कुछ शिष्ट महिलाएँ उनके दर्शनके लिये आ पहुँचीं। शिष्योंने उनको महात्मा ईसाके पास जानेसे रोक दिया। उनकी गोदमें भोले-भाले नन्हे बच्चे थे।

'उन्हें मेरे पास आने दो। ये बच्चे स्मरण दिलाते हैं कि ईश्वरके प्रेमराज्यमें आनेके लिये इन्हींके समान सीधा-सादा और भोला-भाला बन जाना चाहिये। ये भगवत्प्रेमकी निर्मल मूर्ति हैं।' महात्मा ईसाने बच्चोंको गोदमें ले लिया और अपने स्नेहामृतसे उन्हें धन्य करने लगे।

'परमात्मा प्रेम हैं। उनके दिव्य राज्यमें—भक्ति-साम्राज्यमें प्रवेश करनेका साधन प्रेम, केवल प्रेम है। बच्चेके समान सीधे-सादे निष्कपट हृदयसे भगवत्प्रेमकी आराधना करनी चाहिये।' महात्मा ईसाने शिष्योंको भगवत्प्रेमका रहस्य समझाया।—रा० श्री०

पड़ोसी कौन ?

एक बार कोई वकील ईसामसीहके पास आया और कहने लगा—'प्रभो ! मुझे अमरत्व-प्राप्तिके लिये क्या करना होगा ?' ईसाने कहा—'तुम्हारे कानूनमें क्या लिखा है ?' वकीलने उत्तर दिया—'प्रभो ! कानूनमें तो यह लिखा है कि हमें भगवान्‌को हृदयसे सर्वाङ्गना प्रेम करना चाहिये । तन, मन, शक्ति, जीवन सबको भगवान्‌में लगा देना चाहिये और अपने पड़ोसी इष्ट-मित्रोंको भी भगवान्‌से सम्बद्ध कर देना चाहिये ।'

ईसाने कहा—'बिल्कुल ठीक तो कहा । बस, तुम इसीका आचरण करो और तुम अपनेको नित्य सनातन अध्यात्म-जीवनमें प्रविष्ट समझो ।'

'पर पड़ोसी मेरा कौन है ?'—वकीलने ठीक-ठीक समझना चाहा ।

ईसा बोले—'देखो ! एक व्यक्ति जेरुसलमसे जेरिको जा रहा था । बीचमें उसे कुछ चोर मिल गये । उन्होंने उसका सारा धन छीन लिया तथा वे उसे मार-पीटकर अधमरी स्थितिमें छोड़कर चलते बने । संयोग-वश उधरसे एक पादरी आया । उसने उस व्यक्तिको वहाँ पड़े देखा और देखकर वह एक ओर किनारे खिसक गया । इसी प्रकार एक दूसरा [illegible] और वह भी उसे देखकर एक ओर [illegible] ।

पर उसी रास्तेसे एक [illegible] रहा था । उसने उस [illegible] पर दया आयी, उसने उसके [illegible] मरहम-पट्टी की । उसे [illegible] पहुँचाया और उसकी सेवा-शुश्रूषा [illegible] । [illegible] दिन जब वह जाने लगा, तब [illegible] गया—'देखो, तुम [illegible] । [illegible] सेवामें तुम्हारा जो कुछ व्यय होगा, [illegible] लोगोंको चुका दूँगा ।'

'अब कहो इन तीनोंमेंसे उस [illegible] सगा पड़ोसी कौन हुआ, दोनों [illegible] अपरिचित यात्री ?'

'वह अपरिचित, जिसने उसपर [illegible] ।' वकील बोला ।

'तो बस, तुम भी इसे समझकर [illegible] करो, वैसे ही बनो ।'—[illegible]

दर्शनकी पिपासा

महात्मा ईसाने जेरिको नगरमें प्रवेश किया । क्षण-मात्रमें उनके दर्शन और उपदेश-श्रवणके लिये एक बड़ी भीड़ एकत्र हो गयी । महात्मा ईसा राजपथपर आगे बढ़ने लगे और भीड़ उनके पीछे थी ।

'मैं महात्माका दर्शन अवश्य करूँगा । मुझे इस दर्शनसे कोई नहीं रोक सकता है । यह सच बात है कि महात्माओंके दर्शनसे कल्याण होता है ।' नगरका शुल्क-आदाता जैकियस सोच रहा था । महात्माके दर्शन-की प्यास बढ़ रही थी । भीड़ निकट आ गयी, महात्मा ईसा भीड़में इस [illegible] लिये कठिन हो गया । [illegible] नाटा था । पर [illegible] ।

राजपथपर ही [illegible] [illegible]

उसका नाम लेकर नीचे आनेको कहा ।

'जैकियस ! शीघ्र नीचे उतरो । आज मैं तुम्हारे घरपर निवास करूँगा ।' महात्मा ईसाने उसके सद्भावपर प्रसन्नता प्रकट की । जैकियसकी दर्शनकी प्यास निवृत्त हो गयी और उसने अपने-आपको धन्य माना ।

—रा० श्री०

परमात्मामें विश्वास

'और सैनिक ! घूम जाओ, आगे बढ़नेपर प्राण चले जायँगे ।' राजकन्याने घोड़ेके सवारको सावधान किया । वह सुन्दर-से-सुन्दर वस्त्र पहने समुद्रतटपर किसीकी प्रतीक्षा कर रही थी ।

'परमात्मामें विश्वास रखनेवाला, उनकी कृपापर निर्भर रहनेवाला किसीसे भी नहीं डरता, मृत्यु भी उसके सामने आनेमें संकोच करती है ।' सैनिक आगे बढ़ आया; उसके हाथमें तलवार और भाला था ।

राजकन्या उसे देखकर आपादमस्तक सिहर उठी । पीछे कुछ दूरसे लोग जोर-जोरसे चिल्ला रहे थे; वे दल-दलवाली पहाड़ीपर बने नगरके प्राचीरपर खड़े होकर समुद्रकी ओर देख रहे थे ।

'इस समुद्रमेंसे अभी कुछ ही क्षणोंमें एक काला नाग निकलनेवाला है । समुद्रकी नीली-नीली तरङ्गोंका रंग काला होता जा रहा है । इस नागने अनेक बार हमारे नगरमें प्रवेशकर अनेक पशु-पक्षी और प्राणियोंका प्राणान्त कर डाला है । प्रत्येक वर्ष एक कुमारी इसकी पूजाके लिये इस स्थानपर उपस्थित होती है और नाग उसका भक्षण करता है । यदि नगरकी ओरसे उसे पूजा नहीं मिलती है तो वह नित्य नगरमें प्रवेश कर उत्पात करता है ।' राजकन्या शबराने अपनी उपस्थिति-का कारण बताया ।

'तुमलोग भगवान्‌को नहीं मानते हो इसीसे यह उत्पात हो रहा है । भगवद्भक्तोंका इन विषैले पदार्थोंसे कोई अमङ्गल नहीं हो सकता ।' इंगलैंडकी राज-कन्याका सैनिक जार्जने समाधान किया ।

समुद्रकी उत्ताल तरङ्गें फेनिल हो उठीं और भयंकर नाग विष-वमन करता हुआ समुद्रतटपर आ गया । उसके मुखसे विकराल ज्वाला निकल रही थी । नागने जार्जपर आक्रमण किया । जार्जने भाला चलाया, पर उसके हजार टुकड़े हो गये । वीर जार्ज शान्त चित्तसे भगवान्‌की प्रार्थना करने लगे । नागकी शक्ति कुण्ठित हो गयी । भगवान्‌के भक्तने उसे अपने वशमें कर लिया ।

शबरा और जार्ज नगरकी ओर बढ़ने लगे और नाग शान्तिसे उनके पीछे-पीछे चलने लगा । बाजारमें पहुँचते ही लोग नागको देखकर इधर-उधर भागने लगे ।

'भाई ! डरनेकी बात ही नहीं है । परमात्माकी शक्तिमें विश्वास करो; परमात्माकी भक्ति प्रदान करनेके लिये ही मैंने नागको अपने पीछे-पीछे आनेकी प्रेरणा दी है ।'—जार्जने राजधानीके लोगोंमें परमात्माके प्रति विश्वास पैदा किया । वे ईश्वर-विश्वासीके सम्पर्कसे आस्तिक हो गये । संत जार्जके जीवनकी यह एक महान् घटना कही जाती है ।—रा० श्री०

विश्वासकी शक्ति

साइमन नामक एक प्रेमी व्यक्तिने महात्मा ईसामसीहको भोजनके लिये अपने घर निमन्त्रित किया ।

एक नगर-महिलाने साइमनके घरमें प्रवेश किया । उसने महात्मा ईसाके चरण पकड़ लिये; धोकर उनपर तेल मलना आरम्भ किया । उसके नेत्रोंसे अश्रुकण झरने लगे । साइमन महिलाकी उपस्थितिसे आश्चर्य-चकित हो गया । मैगडलनके दुश्चरित्रसे नगरका बच्चा-बच्चा परिचित था । लोग उससे घृणा करते थे ।

साइमनने सोचा कि यदि ईसा भगवान्‌के दूत होंगे तो मैगडलनको पापिनी समझकर उसे अपने सामनेसे हटा देंगे।

'मुझे तुमसे कुछ कहना है साइमन !' महात्मा ईसाके शब्द थे। उनके चरणोंको मैगडलनके अश्रुकण श्रद्धापूर्वक धो रहे थे। ईसाके इतना कहते ही वातावरण-में अद्भुत शान्ति छा गयी।

'अवश्य कृपा कीजिये।' साइमनने आदर प्रकट किया।

एक महाजनसे दो व्यक्तियोंने क्रमशः पाँच सौ पेंस और पचास पेंसका ऋण लिया था। जब उनके पास ऋण भरनेके लिये कुछ भी नहीं रह गया, तब महाजनने दोनोंको ऋणमुक्त कर दिया। क्षमा प्रदान की। बताओ तो उनमेंसे कौन व्यक्ति उसे अधिक चाहेगा ?' ईसाका प्रश्न था।

'मेरा अनुमान है कि जिसपर उसने अधिक कृपा की वही महाजनको विशेषरूपसे चाहेगा।' साइमनका निवेदन था।

'तुमने ठीक कहा।' महात्मा ईसाने साइमनकी प्रशंसा की और मैगडलनकी ओर पहले-पहल दृष्टिपात किया।

'साइमन ! तुम देखते हो इस महिलाको। मैंने तुम्हारे घरमें प्रवेश किया, तुमने [illegible] पानी नहीं दिया, [illegible] मेरे चरण धोये और [illegible] सिरपर तेल [illegible] नहीं [illegible] मालिश की। [illegible] कहता हूँ कि इसके पाप, जो अनेक थे, [illegible] और पवित्र तथा निष्काम [illegible] क्षमा कर दिये गये। [illegible] ईसाने साइमनकी शङ्का-निवृत्ति की।

'तुम्हारे पाप क्षमा कर दिये [illegible] मैगडलनको आश्वासन दिया।

'इन्हें दूसरोंके पाप [illegible] हैं ?' उपस्थित भीड़ने शान्ति [illegible]।

मैगडलन रो रही थी। [illegible] प्रपात नयनोंसे प्रवाहित हो रहा था।

'तुम्हारा यह विश्वास कि [illegible] सेवासे पाप नष्ट हो जायँगे, [illegible] बड़ी शक्ति होती है। [illegible] परमात्मा मिल जाते हैं।' [illegible] कृपामृतसे परम पवित्र कर दिया। [illegible]

दीनताका वरण

संत फ्रांसिसके जीवनकी बात है। इटलीके अस्सीसाई नगरमें अपनी युवावस्थाके दिन उन्होंने राग-रंग और आमोद-प्रमोदमें बिताये। धनियोंके लड़कोंके साथ वे कपड़े पहनने और विलासपूर्ण ढंगसे रहनेमें होड़ लगाया करते थे। एक दिन उनके जीवनमें विचित्र परिवर्तन हुआ।

उन्होंने अपने रेशमी कपड़े फाड़ डाले और चीथड़े पहनकर वे घर गये।

'फ्रांसिस ! तुमने कैसा रूप बना लिया है ! इस पागलपनका अर्थ क्या है ?' [illegible]

'पिताजी ! [illegible] ही सकते हैं तो [illegible] इस जीवनसे [illegible] है। [illegible] का वरण करनेके लिये [illegible] पाणिग्रहण किया है। [illegible] फ्रांसिसका उत्तर था।

'मुझे [illegible] तुम्हारे [illegible]

हैं, धूलि और कीचड़ फेंकते हैं। समझदारीसे काम लो फ्रांसिस! हमलोग कहींके न रह जायँगे।' पिताने पुत्रको बड़े स्नेहसे देखा।

'पिताजी! आप गलत सोच रहे हैं। मेरा जीवन भगवान्‌के चिन्तनसे धन्य हो रहा है। दीनता-सुन्दरीकी शक्ति अपार है। उसका सहारा लेनेपर—हाथ पकड़नेपर भगवान्‌की कृपा मिलती ही है। हमलोगोंका सम्मान बढ़ गया दूसरोंकी दृष्टिमें। हमें ईश्वरद्वारा निर्मित प्रत्येक वस्तुसे प्रेम करना चाहिये। भगवान् सबके रक्षक हैं। उनकी शरणमें जानेपर जीवका कल्याण हो जाता है।' फ्रांसिसकी मीठी-मीठी बातोंने पिताको पूर्ण संतुष्ट कर दिया।

फ्रांसिस नगरमें घूम-घूमकर लोगोंको सादे जीवन और उच्च आचार-विचारका उपदेश देने लगे। भगवान्‌के राज्यमें प्रवेश करनेका साधन दैन्य ही है—इसका उन्हें आजीवन स्मरण था।—रा० श्री०

दरिद्रनारायणकी सेवा

यूरोपियन संत-साहित्यके इतिहासमें इटलीके प्रसिद्ध संत अस्सीसाईवाले फ्रांसिसका नाम अमर है। विरक्त जीवनसे पूर्व समयकी एक घटना है। वे नौजवान थे। राग-रंगमें उनकी बड़ी रुचि थी। कलाकारों और संगीतज्ञोंका वे बड़ा सम्मान करते थे तथा साथ-ही-साथ बारहवीं शताब्दीके इटलीके प्रसिद्ध धनी व्यापारी बरनरडोनके पुत्र होनेके नाते उदारता और दानशीलतामें भी वे सबसे आगे थे। कोई भिखारी उनके सामनेसे खाली हाथ नहीं जाने पाता था।

एक समय वे अपनी रेशमी कपड़ेकी दूकानपर बैठे हुए थे। उनके पिता दूकानके भीतर थे। फ्रांसिस एक धनी ग्राहकसे बात कर रहे थे कि अचानक दूकानके सामने उन्हें एक भिखारी दीख पड़ा। वह कुछ पानेके लोभसे खड़ा था। फ्रांसिस बातमें उलझ गये थे। सौदेकी बात हो जानेपर ग्राहक चला गया तब फ्रांसिसको भिखारीका स्मरण हो आया, पर वह वहाँ था ही नहीं।

'कितना भयानक पाप कर डाला मैंने!' वे भिखारीकी खोजमें निकल पड़े। दूकान खुली पड़ी रह गयी। लाखोंकी सम्पत्ति थी, पर इसकी उन्हें तनिक भी चिन्ता नहीं थी।

वे प्रत्येक दूकानदार और यात्रीसे उस भिखारीके सम्बन्धमें पूछते दौड़ रहे थे। उनका सारा शरीर पसीनेसे लथपथ था। लोगोंने समझा कि भिखारीने माल चुरा लिया है। फ्रांसिसके हृदयकी वेदना अद्भुत थी; उनके नयन तो भिखारीको ही खोज रहे थे और वे अपने आपको धिक्कार रहे थे कि अतिथि भिखारीके रूपमें दरवाजेसे तिरस्कृत होकर लौट गया। अचानक उनका मन प्रसन्नतासे नाच उठा। भिखारी थोड़ी ही दूरपर दीख पड़ा और वे दौड़कर उससे लिपट गये।

'भैया! मुझसे बड़ी भूल हो गयी। रुपये-पैसेका सौदा ही ऐसा है कि आदमी उसमें उलझकर अंधा हो जाता है।' फ्रांसिसने विवशता बतायी; अपने पासके सारे रुपये उसे दे दिये और कोट पहना दिया।

'आपका कल्याण हो।' भिखारीने आशीर्वाद दिया। फ्रांसिसने संतोषकी साँस ली दरिद्रनारायणको प्रसन्न देखकर।—रा० श्री०

अमर जीवनकी खोज

'हे देव ! अमर जीवन—ईश्वरीय जीवन प्राप्त करनेका मुझे उपाय बताइये । जगत्की वस्तुओंमें मुझे शान्ति नहीं दीखती ।' एक धनी युवकने नतमस्तक होकर महात्मा ईसाकी चरणधूलि ली । वे उस समय अपने शिष्योंके साथ गैल्लिलीमें भ्रमण कर रहे थे । शिष्य धनी युवककी जिज्ञासासे विस्मित थे ।

"वत्स ! तुमने मुझे 'देव' सम्बोधनसे स्मरण किया है । देव—परमदेव तो केवल परमात्मा ही हैं; मैं तो उनके कृपाराज्यका एक साधारण-सा सेवक हूँ । मेरे विचारसे अभी तुम्हें आचार-विचार और संयम तथा नैतिक बल-प्राप्तिकी ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये; परमात्मा प्रसन्न होंगे ।" उन्होंने युवकपर स्नेह-दृष्टि डाली । समस्त वातावरण उनकी पवित्र उपस्थितिसे धन्य हो गया ।

'मैंने इनका दृढ़ अभ्यास किया, पर अमर जीवनकी प्राप्तिका प्रकाश मुझे नहीं दीख पड़ा । मैंने बचपनसे ही इनकी ओर ध्यान दिया था ।' युवकने उद्विग्नता प्रकट की । ईसा उसकी सदाचारपरक वृत्ति और सत्कथनसे बहुत प्रसन्न थे ।

'बस, तुममें केवल एक बातकी कमी है । जाओ, अपनी सारी वस्तुएँ वेच दो और सम्पत्ति गरीबोंको दे दो । विश्वास रक्खो, तुम्हारे लिये स्वर्गका ऐश्वर्य सुरक्षित है, मेरे साथ चलो ।' [illegible]

धनी युवक [illegible] । [illegible] कुछ कहे ही बिना [illegible] । [illegible] सम्पत्ति थी और उसे [illegible] नहीं था ।

शिष्योंको उसकी [illegible] । महात्मा ईसा शान्त थे ।

'धनी (धनाभिमानी) [illegible] प्रवेश बहुत ही कठिन है । [illegible] लोकमेंसे निकल आये; पर धनी [illegible] धन और सांसारिक वस्तुओंमें ही [illegible] राज्यमें प्रवेश नहीं पा सकता । [illegible] धनाभिमानी और मानसिक [illegible] जीवन अत्यन्त बाधक है । [illegible] कभी कृपामय ईश्वरके पवित्र प्रेमका [illegible] सकता ।' महात्मा ईसाने शिष्योंको [illegible] ।

'ईश्वरीय प्रेम-प्राप्तिका उपाय क्या है ?' [illegible] का प्रश्न था ।

'परमात्माकी कृपासे ही [illegible] । [illegible] कृपा और निष्काम भक्तिसे ही [illegible] सकते हैं ।' ईसाने [illegible] ।

प्रभु-विश्वासी राजकन्या

करमान देशके राजा बड़े भक्त और ईश्वर-विश्वासी थे । उनके एक परम भक्तिमती सुन्दरी कन्या थी । राजाने निश्चय किया था कि मैं भगवान्पर परम विश्वास रखनेवाली अपनी इस कन्याको उसीके हाथोंमें सौंपूँगा, जो सच्चा त्यागी और अडिग प्रभुविश्वासी होगा । राजा खोज करते रहे, परंतु ऐसा पुरुष उन्हें नहीं मिला । लड़की बीस वर्षकी हो गयी । एक दिन राजाने एक [illegible] नहीं था और न [illegible] उसे भगवान्की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

पूछा—'तुम्हारा काम कैसे चलता है?' उसने कहा—'जैसे प्रभु चलाते हैं।'

उसकी बातोंसे राजाको निश्चय हो गया कि यह सच्चा ही प्रभुविश्वासी और वैराग्यवान् है। मैं अपनी धर्मशीला कन्याके लिये जैसा वर खोजता था, आज ठीक वैसा ही प्रभुने भेज दिया।

राजाने बहुत आग्रह करके और अपनी कन्याके त्याग-वैराग्यकी स्थिति बतलाकर उसे विवाहके लिये राजी किया। बड़ी सादगीसे विवाह हो गया।

राजकन्या अपने पतिके साथ जंगलमें एक पेड़के नीचे पहुँची। वहाँ जाकर उसने देखा—वृक्षके एक कोटरमें जलके सकोरेपर सूखी रोटीका टुकड़ा रक्खा है। राजकन्याने पूछा—'स्वामिन्! यह रोटी यहाँ कैसे रक्खी है?' नवयुवकने कहा—'आज रातको खानेके काममें आयेगी, इसलिये कल थोड़ी-सी रोटी बचाकर रख छोड़ी थी।'

राजकन्या रोने लगी और निराश होकर अपने नैहर जानेको तैयार हो गयी। इसपर नवयुवकने कहा—'मैं तो पहले ही जानता था कि तू राजमहलमें पली हुई मेरे-जैसे दरिद्रके साथ नहीं रह सकेगी।'

राजकन्याने कहा—'स्वामिन्! मैं दरिद्रताके दुःखसे उदास होकर नैहर नहीं जा रही हूँ। मुझे तो इसी बातपर रोना आ रहा है कि आपमें प्रभुके प्रति विश्वासकी इतनी कमी है कि आपने 'कल क्या खायेंगे' इस चिन्तासे रोटीका टुकड़ा बचा रक्खा। मैं अबतक इसीलिये कुआँरी रही थी कि मुझे कोई प्रभुका विश्वासी पति मिले। मेरे पिताने बड़ी खोज-बीनके बाद आपको चुना। मैंने समझा कि आज मेरी जीवनकी साध पूरी हुई; परंतु मुझे बड़ा खेद है कि आपको तो एक टुकड़े रोटी-जितना भी भगवान्पर विश्वास नहीं है।'

पत्नीकी बात सुनकर उसको अपने त्यागपर बड़ी लज्जा हुई, उसने बड़े संकोचसे कहा—'सचमुच मैंने बड़ा पाप किया; बता, इसका क्या प्रायश्चित्त करूँ?'

राजकन्याने कहा—'प्रायश्चित्त कुछ नहीं; या तो मुझे रखिये, या रोटीके टुकड़ेको रखिये।' नवयुवककी आँखें खुल गयीं और उसने रोटीका टुकड़ा फेंक दिया।

असहायके आश्रय

यूनानके बादशाह रोगी हो गये थे। हकीमोंकी चिकित्सा कोई लाभ नहीं कर रही थी। अन्तमें हकीमोंने मिलकर सलाह की। उन्होंने कुछ लक्षण बताये और कहा—'जिस मनुष्यमें ये लक्षण हों, उसका पित्ताशय मिले बिना बादशाहके रोगको दूर करनेवाली दवा नहीं बन सकती।'

राजसेवक इधर-उधर दौड़े और एक बालकको वे पकड़ ही लाये। बालक एक निर्धन परिवारका था। उसके और भी भाई थे। उसके माता-पिताने पर्याप्त धन लेकर अपने पुत्रको वधके लिये दे दिया था। बादशाहने काजीसे पूछा था कि क्या करना चाहिये तो उसने फतवा दे दिया—'मुल्कके शाहंशाहकी जान बचानेके लिये रिआयामें किन्हीं एक-दोकी जान लेनी हो तो वह गुनाह नहीं है।'

हकीमोंकी व्यवस्थाके अनुसार लड़केको बादशाहके सामने खड़ा किया गया। हकीम अपनी तैयारी करके बैठ गये। अब जल्लादने तलवार उठायी। इसी समय लड़केने आकाशकी ओर देखा और हँस पड़ा। बादशाहने संकेतसे जल्लादको रोककर पूछा—'लड़के! तू हँसा क्यों?'

लड़का बोला—'माँ-बाप जिस संतानकी रक्षाके लिये प्राण देते थे, उसी संतानको उन्होंने मारनेके लिये बेच दिया। काजी जो न्यायमूर्ति कहा जाता है, उसने एक निरपराधकी हत्याका फतवा दे दिया। बादशाह जो मुल्कका रक्षक है, अपनी निर्दोष प्रजाके एक बालककी

हत्या करवा रहा है। ऐसी दशामें असहाय मनुष्य किसका आश्रय ले ! मैं इस असहाय अवस्थामें पहुँच गया हूँ। अब मैं दीन-दुनियाके मालिककी ओर देखकर हँसा कि परमात्मा ! संसारकी लीला तो देख ली, अब तेरी लीला देखनी है। [illegible]

'मुझे माफ कर, बेटा ! [illegible] उठेगी।' [illegible] माँगी। —मु० सिं०

क्षणिक जीवन

महात्मा नूहको दीर्घायु मिली थी। पूरे एक हजार वर्ष तक वे जीवित रहे, अन्तमें उनका शरीर छूटा और वे स्वर्ग गये। वहाँ देवताओंने पूछा—'संसारमें इतनी बड़ी आयु तुम्हें कैसी प्रतीत हुई ?'

हजरत नूह बोले—'मुझे [illegible] मुझे तो ऐसा ही लगा [illegible] प्रवेश करके वहाँ रहे बिना दूसरे द्वारसे [illegible]'

—[illegible]

सत्यं शिवं सुन्दरम्

एथेनियन कवि एगोपनने अपने यहाँ एक बार एक विशाल भोजका आयोजन किया था। इस व्यक्तिको ग्रीक थियेटरमें प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था, उसी प्रसन्नताके उपलक्ष्यमें उसने अपने परम विद्वान् दार्शनिक मित्रोंको आमन्त्रित किया था। समागत मित्रोंने मनोरञ्जनके लिये वार्तालापका विषय रक्खा 'प्रेम' और उसपर सबने अपना मन्तव्य प्रकाशित करना आरम्भ किया।

फेडरसने कहा—'प्रेम देवताओंका भी दैवत तथा सबका अग्रणी है। यह उनमें सर्वाधिक शक्तिशाली है। यह वह वस्तु है, जो एक साधारण मनुष्यको वीरके रूपमें परिणत कर देती है; क्योंकि प्रेमी अपने प्रेमास्पदके सामने अपनेको कायरके रूपमें प्रदर्शित करनेमें लज्जाका अनुभव करता है। वह तो अपना शौर्य प्रदर्शितकर अपनेको शूरतम ही सिद्ध करना चाहता है। यदि मुझे एक ऐसी सेना दी जाय, जिसमें केवल प्रेमी-ही-प्रेमी रहे हों तो मैं निश्चय ही विश्व-विजय कर दूँ।'

पासनियस बोला—'बात बिल्कुल ठीक है, तथापि आपको पार्थिव प्रेम तथा दिव्य ईश्वरप्रेमका पार्थक्य तो स्वीकार करना ही होगा। सामान्य प्रेम—दम्पतियोंके सौन्दर्य-पर लुब्ध मनकी यह दशा होती है कि यौवनके अन्त होते न होते उसके पंख जल जाते हैं और [illegible] छूमंतर हो जाता है। [illegible] सनातन होता है और उसकी [illegible] ही रहती है।'

अब विनोदी कवि [illegible] प्रेमपर कुछ नवीन [illegible] उसने कहना आरम्भ किया [illegible] मादोंका एकत्र एक ही [illegible] स्वरूप गेंद जैसा गोल था, [illegible] तथा दो मुँह होते थे। [illegible] बड़ी तीव्र तथा भयंकर थी। [illegible] थी। ये देवताओंने [illegible]

इसी बीच ज़िपस ([illegible]) ने इनके दो [illegible] उनकी शक्ति आधी ही [illegible] विभक्त हुआ। ये दोनों [illegible] लिये आतुर रहते हैं। [illegible] शब्दसे पुकारते हैं।

[illegible]

होते हैं। अन्तमें सुकरातने अपने सिद्धान्तको प्रकाशित करते हुए कहा—'प्रेम' ईश्वरीय सौन्दर्यकी मूल है । प्रेमी प्रेमके द्वारा अमृतत्वकी ओर अग्रसर होता है । विद्या, गुण, यश, उत्साह, शौर्य, न्याय, विश्वास और श्रद्धा—ये सभी उस सौन्दर्यके ही भिन्न-भिन्न रूप हैं । यदि एक शब्दमें कहा जाय तो आत्मिक सौन्दर्य ही परम सत्य है। और सत्य वह मार्ग है, जो सीधे परमेश्वर तक पहुँचा देता है।

सुकरातके इस कथनका प्लेटोपर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह उसी दिनसे उसका शिष्य हो गया । यही प्लेटो आगे चलकर यूनानके सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकोंमें परिगणित हुआ।

—जा० श०

मुझे एक ही बार मरना है

जूलियस सीजरके विरुद्ध उसके शत्रु षड्यन्त्र करनेमें लगे थे । उसके शुभचिन्तकों तथा मित्रोंने सलाह दी—'आप अपने अङ्गरक्षक सिपाहियों तथा शस्त्रके बिना अकेले खाली हाथ घूमने अब न निकला करें ।'

सीजरने उत्तर दिया—'कोई अमर होकर संसारमें नहीं आता, सबको मरना ही पड़ता है । किंतु मुझे एक ही बार मरना है, मृत्युसे भयभीत रहनेवाले तो पल-पल मृत्युकी पीड़ा भोगते रहते हैं ।' —सु० सिं०

गर्व किसपर ?

अल्सिबाइडिस नामक एक सम्पन्न जमींदार था । उसे अपनी सम्पत्ति और जागीरका बड़ा गर्व था । एक दिन सुकरातके पास जाकर उसने अपने ऐश्वर्यका वर्णन प्रारम्भ किया । सुकरात उसकी बात कुछ देर चुपचाप सुनते रहे । थोड़ी देर बाद उन्होंने पृथ्वीका एक नक्शा मँगाया । नक्शा फैलाकर वे उस जमींदारसे बोले—'अपना यूनान देश इसमें आप देखते हैं ?'

'यह रहा यूनान ।' जमींदारने नक्शेपर अँगुली रक्खी ।

'और अपना एटिका प्रान्त ?' सुकरातने फिर पूछा ।

बड़ी कठिनाईसे कुछ देरमें जमींदार अपने छोटे-से प्रान्तको ढूँढ सका । परतु उससे फिर पूछा गया—'इसमें आपकी जागीरकी भूमि कहाँ है ?'

'श्रीमान् ! नक्शेमें इतनी छोटी जागीर कैसे बतायी जा सकती है ।' जमींदारने उत्तर दिया । अब सुकरातने कहा—'भाई ! इतने बड़े नक्शेमें जिस भूमिके लिये एक बिन्दु भी नहीं रक्खा जा सकता, उस नन्ही-सी भूमिपर तुम गर्व करते हो ? इस पूरे ब्रह्माण्डमें तुम्हारी भूमि और तुम कहाँ कितने हो, यह सोचो और विचार करो कि यह गर्व किसपर ? कितनी क्षुद्रता है यह !' —सु० सिं०

विषपान

'इसका सबसे बड़ा अपराध यही है कि यह नगरके देवी-देवताओंमें अविश्वास प्रकटकर नवयुवकोंको सत्य दिखानेके नामपर गलत रास्तेपर ले जाता है । यूनानकी संस्कृति और नागरिकताका यह सबसे बड़ा शत्रु है । इसे मृत्युदण्ड दिया जाय ।' मेलिटस और उसके साथियों—अनीटस और लीसनने अभियोग लगाया । एथेंसनिवासियोंकी बहुत बड़ी संख्या न्यायालयके बाहर निर्णयकी प्रतीक्षा कर रही थी ।

'नाटककार एरिस्टोफर्नीसने अपने क्लाउड नाटकमें सुकरातको स्वर्ग-पातालकी बात जाननेवाले और हवामें उड़नेवालेके रूपमें चित्रित कर यह सिद्ध कर दिया है कि यह जनताको असत्य और अनाचारका पाठ

वह असत्य बोलेगा तो तुम्हें आधा राज्य देना पड़ेगा।' प्रशियाके राजाका उत्तर था। वह चिन्तित था।

रातभर उसे नींद नहीं आयी, वह उपाय सोचता रहा, पर कोई बात उसके मनमें न बैठ सकी।

'मत्तियसके पास सुनहले रंगका एक मेमना है। मैं बड़ी-से-बड़ी घूस देकर गड़ेरियेसे मेमना माँग लूँगा। उसके गायब हो जानेपर वह राजाके सामने कोई कल्पित कथा कहकर प्राण बचायेगा, असत्य बोलनेके लिये विवश होगा।' उसे नींद आ गयी।

× × × ×

'मैं किसी भी मूल्यपर सुनहला मेमना आपको नहीं दे सकता। मैंने अपने राजाका नमक खाया है; मेमना आपको देकर मैं राजसिंहासनके सामने झूठ नहीं बोल सकता।' गड़ेरियेके इस उत्तरसे प्रशियानरेशकी आशाओंपर पानी पड़ गया। वह सवेरे-सवेरे उससे चरागाहपर मिलने गया था।

'मैं तुम्हें इतना धन दे दूँगा कि उससे तुम्हारा जीवन-निर्वाह हो जायगा। मेमना मुझे दो और अपने मालिकसे झूठ बोल दो कि उसे भेड़िया उठा ले गया।' प्रशियानरेशने फिर प्रयत्न किया। गड़ेरियाने उसका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया।—राजाने अपनी लड़की भेजी। उसे विश्वास था कि लड़कीके सौन्दर्यसे विमुग्ध होकर गड़ेरिया मेमना अवश्य दे देगा।

'मैं तुम्हें धनसे पूर्ण तृप्त कर दूँगी, तुम्हें किसी बातकी चिन्ता नहीं रहेगी, पर मेमना मुझे दे दो। मेरे पिताको इसकी बड़ी आवश्यकता है।' राजकन्याने मोहरोंकी थैली दिखायी और पीनेके लिये पेय प्रदान किया।

गड़ेरियाने कहा कि 'मैं अपने सत्यव्रतसे एक इंच भी पीछे नहीं हटूँगा; मुझे सारे संसारका साम्राज्य क्यों न मिले, पर मैं झूठ नहीं बोल सकता।'—राजकन्याकी प्रार्थनापर पेय पदार्थ-सेवनसे उसकी चेतना जाती रही। उसने अस्वस्थ दशामें मेमना राजकन्याको सौंप दिया। राजकुमारीको केवल मेमनेके सुनहले बालकी आवश्यकता थी, जिससे यह प्रमाणित हो सके कि गड़ेरियेने मेमना दे दिया था।—प्रशियानरेशकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वह यही सोचने लगा कि कब सवेरा हो और मैं मत्तियसके राजमहलमें जा पहुँचूँ।

× × × ×

गड़ेरियाने चेतना प्राप्त की। उसे अपनी करनीपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उसने सोचा कि मैं राजासे कह दूँगा कि मेमना भाग गया।

'पर यह असम्भव है। ऐसा कभी नहीं हो सकता। मेमनेके साथ-ही-साथ पूरे झुंडको भाग जाना चाहिये था।' उसकी अन्तरात्माने धिक्कारा कि यह झूठ है, ऐसा कभी नहीं कहना चाहिये। वह राजमहलकी ओर बढ़ता गया। उसके मनमें यह बात आयी कि मैं राजासे कह दूँगा कि मेमना कुएँमें गिर पड़ा और उसीमें डूबकर मर गया।

'यह ठीक नहीं है। ऐसा होता तो दूसरे भेड़ भी गिर पड़ते।' उसके मनने फटकारा कि झूठ बोलना महापाप है।

अचानक वह प्रसन्न हो उठा। उसने सोचा कि मैं राजाको समझा दूँगा कि मेमनेको भेड़िया खा गया। पर इस बातसे भी उसका मन संतुष्ट नहीं हुआ।

राजमहलमें प्रवेश करते ही गड़ेरिया हँस पड़ा। 'मैं एक शुभ समाचार सुनाना चाहता हूँ, नरेश!' गड़ेरियेने मत्तियस और उसके अतिथि प्रशियानरेश और उसकी कन्याको अभिवादन किया। प्रशियानरेश समझता था कि गड़ेरिया झूठ बोलेगा, पर उसके चेहरेपर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

'मैंने आपके मेमनेको बदलकर काले रंगका मेमना

ले लिया है। और महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि यह नया सौदा सुनहले मेमनेसे कहीं अधिक सुन्दर है।' गड़ेरिया प्रसन्न था। प्रशियानरेशका चेहरा उसके सत्यभाषणसे उतर गया। वह खिन्न था।

"मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुमने धन, सौन्दर्य और पेय—किसी भी कीमतपर असत्य भाषण नहीं किया। इन्हीं तीनोंसे अंधा होकर मनुष्य बड़े-से-बड़ा पाप कर डालता है। तुम्हारी सत्य-निष्ठाने मुझे प्रशियानरेशके आधे राज्यका अधिकार दिया है और यह आधा राज्य मैं तुम्हें सौंपता हूँ। तुम्हारे सत्यव्रतका यह पुरस्कार है।'

[illegible] गड़ेरियेके वचन हैं।

'और यह है [illegible] सुन्दरी राजकन्या [illegible] किया।

'यह राजकन्या मैं [illegible] हूँ असत्य-विजयके उपलक्ष्यमें।' [illegible] पूर्वक अपना कर्तव्य पूरा किया।

गड़ेरियेका सुन्दरी राजकुमारीसे [illegible] सत्यभाषणके प्रतापसे गड़ेरिया [illegible] अधिकारी घोषित किया गया। [illegible]

पिताके सत्यकी रक्षा

जापानके सामन्तराज सातोमी बड़ी कठिनाईमें पड़ गये थे। शत्रु-सेनाने उनके दुर्गको तीन महीनेसे घेर रक्खा था। यह ठीक था कि पर्वतपर बना और गहरी खाईसे घिरा दृढ़ दुर्ग शत्रुके प्रबल आक्रमणोंके सम्मुख भी मस्तक उठाये खड़ा था; किंतु दुर्गवासियोंका भोजन समाप्त हो रहा था। भूखों मरनेका अवसर आ गया था। अन्तमें सातोमीने घोषणा की—'शत्रुके सेनापतिका सिर जो काट लायेगा, उसे वह अपनी एकमात्र पुत्री ब्याह देगा।'

पहाड़ीपर शीतकालकी सूचना देनेवाले 'प्राम' पुष्प खिलने लगे। एक दिन शामसे ही हिमपात प्रारम्भ हो गया। सामन्तराज उस रात विशेष चिन्तित हो उठे। उनका प्यारा कुत्ता जात सुबूसा कहीं दीख नहीं रहा था। वह शिकारी जातिका ऊँचा, बलवान् और स्वामिभक्त जानवर पता नहीं कहाँ चला गया था। कहीं हिमपातमें बाहर रह गया तो बरफ उसे जमा ही देगी और शत्रुकी दृष्टिमें वह पड़ गया तो गोलीसे भून दिया जायगा। परंतु कुत्ता उस रात मिला नहीं। दूसरे दिन सवेरे भी नहीं मिला।

दूसरे दिन सामन्तराजने अपने सब मित्र और नायक एकत्र किये। उनमें [illegible] युद्धके विषयमें क्या करना चाहिये। [illegible] सातोमीका कुत्ता सुबूसा वहाँ आ पहुँचा। [illegible] मुखमें रक्तसे लथपथ एक [illegible] था। देखनेपर निश्चय हो गया कि [illegible] पतिका ही मस्तक है।

सामन्तराज सातोमीके दुर्गमें [illegible] ध्वनि गूँज उठी। उनके सैनिक दुर्गसे [illegible] शत्रु-सेनापर टूट पड़े। [illegible] भिन्न हो गयी। उनके कुछ [illegible] भाग गये।

सातोमीकी विजय हुई। [illegible] जिसके द्वारा यह सब [illegible] सातोमीको अपना वचन [illegible] सामुराईके वचनका मूल्य [illegible] समान [illegible] प्रतिज्ञा [illegible] उन्होंने प्रतिज्ञा [illegible] हो गया है। [illegible] प्रतिज्ञा की।'

इस ग्लानिका परिणाम यह हुआ कि कुत्तेके प्रति उनके मनमें घृणा और द्वेषके भाव प्रबल हो गये। वह स्वामिभक्त कुत्ता अब पास आता तो उसे वे तत्काल मारकर भगा देते। सामन्तराजके सेवक भी अपने स्वामीकी देखा-देखी कुत्तेको मारने तथा भगाने लगे। उसे भोजन देना एकदम बंद कर दिया गया। लोग चाहते थे कि भूख और अपमानसे पीड़ित होकर वह स्वयं कहीं भाग जाय।

सामन्तराज सातोमीकी एकमात्र संतान थी उनकी पुत्री। उस उदार राजकुमारीको कुत्तेके प्रति लोगोंके वर्तमान व्यवहारको देखकर बड़ा खेद हुआ। उसने सोचा—'मेरे पिता और पूरे राज्यको बचानेवाले इस उपकारी प्राणीकी रक्षा और सेवा हमारा कर्तव्य होना चाहिये। फिर पिताकी प्रतिज्ञाकी रक्षा करना संतानका धर्म है। मेरे पिताने प्रतिज्ञा कर दी और अब मेरे मोहके कारण इस उपकारी पशुका तिरस्कार करते हैं; ऐसी दशामें पिताके सत्यकी रक्षाके लिये इस कुत्तेका पालन मुझे करना चाहिये।'

राजकन्या जानती थी कि उसके विचारोंका कोई समर्थन नहीं करेगा। भय यह था कि उसके विचार प्रकट होनेपर लोग उस उपकारी कुत्तेकी हत्या ही न कर दें; इसलिये कुत्तेको साथ लेकर वह रात्रिमें दुर्गसे निकल गयी। सबेरे जब कुत्ता और राजकुमारी दुर्गमें नहीं मिले; तब कुहराम मच गया। सामन्तराज पुत्रीके वियोगमें व्याकुल हो उठे। चारों ओर सैनिक भेजे गये; किंतु कहीं राजकन्याका पता नहीं लगा।

राजकन्या वनके मार्गसे भटकती, नदी-नाले पार करती एक घने वनमें पहुँची। उसने एक पर्वतकी गुफाको घर बनाया। राजसुखमें पली वह देवी तपस्विनी बनी। कुत्ता अब छायाके समान उसके साथ लगा रहता था। दिनमें वह राजकन्याके साथ घूमता था वनोंमें और रात्रिमें उसकी चौकीदारी करता था।

राजकुमारी अब अपना निर्वाह करती थी भिक्षा माँगकर। उसका समय अब उपासनामें व्यतीत होता था और उसकी प्रार्थना थी तथागतके चरणोंमें 'प्रभो! इस स्वामिभक्त प्राणीको अपने चरणोंमें स्वीकार करो। जन्म-मृत्युके पाशसे इसे मुक्त करो।'

अपने लिये राजकुमारीको कोई कामना नहीं रह गयी थी। वह अपने साथ धर्मग्रन्थ ले आयी थी और उसीका पाठ किया करती थी। इस प्रकार दिन-पर-दिन बीतते चले गये। अचानक एक दिन सामन्तराज सातोमीका एक सैनिक आखेट करता हुआ उस वनमें पहुँच गया। उसने दूरसे जाते सुबूसा को देखा। अपने स्वामीके कुत्तेको देखते ही वह पहचान गया और पहचानते ही उसने बंदूक सीधी की—'इस दुष्ट कुत्तेके कारण ही राजकन्या कहीं चली गयी और हमारे स्वामी पुत्रीके शोकमें व्यथित रहते हैं।'

सैनिककी बंदूक तड़प उठी और कुत्ता भूमिपर लुढ़ककर छटपटाने लगा। एक सुकुमार कण्ठसे उसी समय चीत्कार निकली। सैनिक दौड़कर पास आया तो उसने देखा कि कुत्तेकी आड़में ही राजकुमारी प्रार्थना करने बैठी थी और बंदूककी गोली कुत्तेके साथ उन्हें भी समाप्त कर चुकी है।—सु० सिं०

आतिथ्यका सुफल

जापानके किसी नगरमें एक वृद्ध व्यक्ति रहता था। वह और उसकी पत्नी दोनों बड़े उदार थे। पशु-पक्षियोंके प्रति उनके हृदयमें बड़ा प्रेम था। दोनों-ने एक गौरैया पक्षी पाल रक्खा था। वह नित्यप्रति उड़कर उनके आँगनमें आया करता था और दाना चुगकर चला जाता था। उन दोनोंके कंधोंपर बैठकर वह मीठे स्वरसे चहचहाया करता था।

एक दिन वह बूढ़ी औरत अपने बगीचेमें थी कि

उसकी दुष्ट पड़ोसिनने कहा कि 'तुम अपने प्राणप्यारे गौरैयेको फिर कभी नहीं देख सकोगी। मैंने उसकी जीभ काट डाली है। वह मेरी धानकी खेती नष्ट कर दिया करता था।' द्वेषी पड़ोसिन हँसने लगी।

वृद्ध दम्पति इस घटनासे बहुत दुखी हुए। उन्होंने अपनी पड़ोसिनपर रोष प्रकट किये बिना ही जंगलमें गौरैयेकी खोजमें घूमना आरम्भ किया। वे भयभीत थे कि ऐसा न हो कि गौरैया भूखसे तड़प-तड़पकर प्राण दे दे। दैवयोगसे एक हरे-भरे खेतके निकट गौरैयेका घोंसला मिल गया। गौरैया अपने प्रेमदाताओंको देखकर आनन्दसे नाच उठा।

'आज मेरा सौभाग्य है कि मेरे प्रेमदाता अतिथि-रूपमें मेरे निवासस्थानपर उपस्थित हैं।' गौरैयेने अपनी पत्नीसे कहा और वे अपने बच्चोंसहित वृद्ध दम्पतिके स्वागत-सत्कारमें लग गये। दो-चार दिनोंतक आमोद-प्रमोद होता रहा।

वृद्ध दम्पतिके चलते समय गौरैयेने दो टोकरियाँ उनके सामने रख दीं और पूछा कि 'आप छोटी टोकरी साथ ले जायँगे या बड़ी।' दोनों वृद्ध [illegible] पासमें दोनोंके हृदियाँ, [illegible] थीं; पर गम्भीर [illegible] घर आकर उन्होंने देखा [illegible] अन्य वस्तुएँ [illegible]

बूढ़ी पड़ोसिनने [illegible] उसने झूठ-मूठ [illegible] बुद्धि बिगड़ जाती है और [illegible] है। गौरैया मुझे [illegible] उसे धोखा देनेके लिये [illegible] गौरैयेने बिना [illegible] रखकर प्रश्न किया, 'बड़ी [illegible]

'बड़ी।' बुढ़िया [illegible] लेकर चल पड़ी। गम्भीर [illegible] रख सकी। उसने यह [illegible] कीमती सामान और [illegible] दैवी प्रेरणासे उसमेंसे दो [illegible] उस स्थानपर उसे [illegible] सतानेवालोंको [illegible]

धर्मप्रचारके लिये जीवनदान

चीनसे भारत आनेवाले यात्री ह्युएन-सौंग केवल घुमक्कड़ यात्री नहीं थे। वे थे धर्मके जिज्ञासु। विद्याकी लालसा ही उन्हें दुर्गम हिमालयके इस पार ले आयी थी। भारतके सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय नालन्दाने उनका स्वागत किया। ह्युएन-सौंग नालन्दाके छात्र रहे और अध्ययन करके उसके अध्यापक भी रहे। भारतने विद्याका सम्मान करनेमें कोई भेदभाव सीखा ही नहीं।

ह्युएन-सौंग कई वर्ष भारतमें रहकर अपनी जन्मभूमि लौट रहे थे। उन्होंने चीनमें बौद्धधर्मकी व्यवस्थित शिक्षाके प्रचारका निश्चय किया था। बहुत-से धर्मग्रन्थ वे अपने साथ ले जा रहे थे। नालन्दाके कुछ [illegible] थे। [illegible] निश्चित [illegible] पार करने [illegible] समुद्रमें [illegible] स्थिति [illegible] रखने लगा।

[illegible]

बल धर्मग्रन्थोंकी रक्षामें होनेवाले धर्मप्रचारकी अपेक्षा इनका जीवन अधिक मूल्यवान् है !'

इस विद्यार्थीको शब्दोंमें उत्तर नहीं मिला। उसके साथी पलक झपकते नदीके अथाह जलमें कूदकर अदृश्य हो गये। सबसे अन्तमें कूदनेवाला वह स्वयं था।—सु० सिं०

मृतकके प्रति सहानुभूति

लगभग ढाई हजार वर्ष पहलेकी बात है। चीनके महान् तत्त्वविवेचक महात्मा कनफ्युसियसने घोड़ागाड़ीसे ची नगरमें प्रवेश ही किया था कि उस घरसे रोने-पीटनेकी आवाज आयी कि जिसमें कुछ ही दिनों पहले वे अतिथि थे। उन्हें यह बात समझनेमें देर न लगी कि किसी प्राणीकी मृत्यु हो गयी है।

उन्होंने बड़ी शान्तिसे उस घरमें प्रवेश किया और विलाप करनेवालेकी दशासे उनका हृदय विचलित हो उठा, नयनोंसे अश्रुवृष्टि होने लगी।

वे उस शोकपूर्ण स्थितिसे इतने प्रभावित हुए कि अपनी गाड़ीके घोड़ोंको उन्होंने मृतककी उत्तम गतिके लिये दान कर दिया।

'घरमें प्रवेश करते ही मेरा हृदय शोकसे इतना बोझल हो गया कि बिना रोये मैं रह नहीं सकता था। मृतकके प्रति रोने-पीटनेका मिथ्या प्रदर्शन दम्भके सिवा और कुछ भी नहीं है। यदि मेरे अश्रु दिखावेके लिये होते तो मुझे बड़ी घृणा होती अपने आपपर। मृतककी पारलौकिक शान्तिके लिये यदि हम चेष्टा नहीं करते या उसके लिये प्रेम अथवा आत्मीयता नहीं व्यक्त करते तो यह तो उसके प्रति अपने आपमें अपनत्वका अभाव है और यदि उसे मृतककी स्थितिमें देखकर भी ऐसा व्यवहार करते हैं जैसा जीवित प्राणीके प्रति किया जाता है तो यह भी कदापि उचित नहीं है; क्योंकि यह हमारी मूर्खता अथवा विवेकहीनताका द्योतक है।' महात्मा कनफ्युसियसके उद्गार थे उस अवसरपर।—रा० श्री०

सच्चा बलिदान

लगभग चौबीस सौ वर्ष पहलेकी बात है। खुतन देशमें नदीका जल सूख जानेसे घोर अकाल पड़ गया। प्रजा भूखों मरने लगी। खुतन-नरेश बहुत चिन्तित हो उठा। मन्त्रियोंकी सम्मतिसे वह राज्यमें ही निकटस्थ पहाड़ीपर निवास करनेवाले एक बौद्ध भिक्षुकी सेवामें उपस्थित हुआ।

'देव! मेरे राज्यमें अन्यायका प्राबल्य तो नहीं हो गया है? ऐसा तो नहीं है कि मेरा पुण्य-फल संसारके समस्त प्राणियोंको समानरूपसे नहीं मिल रहा है? मैंने आजतक प्रजाका कभी उत्पीड़न नहीं किया। जब मेरा कोई अपराध ही नहीं है, तब प्रजाको दुःखका मुख क्यों देखना पड़ रहा है? देव! ऐसा उपाय बताइये कि नदीमें जल फिर आ जाय।' खुतन-नरेशने चिन्ता प्रकट की।

श्रमणने नद-नागकी पूजाका आदेश दिया। राज्यकी जनताने नदीके तटपर जाकर धूम-धामसे पूजा की; राजा अपने प्रमुख अधिकारीवर्गके सहित उपस्थित था।

'मेरा पति (नाग) स्वर्गस्थ हो गया है। इसीलिये हमारे कार्यका क्रम बिगड़ गया है।' नागपत्नीने कमनीय

रमणी-वेषमें मध्य धारापर प्रकट होकर एक राज्यकार्य-कुशल व्यक्तिकी माँग की।

राजा उसकी इच्छा-पूर्तिका आश्वासन देकर राजधानीमें लौट आया।

× × × ×

'देवराज (राजाकी उपाधि)! आप इतने चिन्तित क्यों हैं? मेरा जीवन आजतक ठीक तरह प्रजाके हितमें नहीं लग सका। यद्यपि चित्तमें स्वदेशकी सेवाकी प्रवृत्ति सदा रही, फिर भी उसको कार्यरूपमें परिणत करनेका अभीतक अवसर ही नहीं आया था।' प्रधानमन्त्रीने नरेशकी चिन्ता कम की।

'पर प्रधानमन्त्री ही राज्यका दुर्ग होता है। वह समस्त देशकी अमूल्य सम्पत्ति है। उसका प्राण किसी भी मूल्यपर भी निछावर नहीं किया जा सकता।' राजा गम्भीर हो उठा।

'आप ठीक ही सोच रहे हैं, पर प्रजा और देशके हितके सामने साधारण मन्त्रीके जीवनका कुछ भी महत्त्व नहीं है। मन्त्री तो सहायकमात्र है। किंतु प्रजा मुख्य अङ्ग है राज्यका। यह सच्चा बलिदान है, महँगा नहीं है देवराज!' प्रधानमन्त्रीका उत्तर था।

उन्होंने [illegible]
उनके [illegible]
घोड़ेपर सवार हो गये। [illegible]
घोड़ेकी पीठपर बैठे हुए [illegible]
स्थानपर इतना [illegible]
अदृश्य हो सके। [illegible]
घोड़ेको प्रचालित किया। [illegible]
और प्रधानमन्त्री [illegible]
लोग तटपर खड़े होकर [illegible]
देरके बाद घोड़ा [illegible]
पीठपर चन्दनका एक [illegible]
था, उसमें [illegible]
सदा वृद्धि होती रहे, प्रजा [illegible]
समय राज्यपर शत्रुका आक्रमण [illegible]
अपने-आप बजने लगेगा।'—[illegible]
हो उठी।

कुतन-राज्यके प्रधानमन्त्री [illegible] उपस्थितका [illegible] राष्ट्रकी महान् सेवा [illegible] अकथनीय है।—[illegible]

संतकी एकान्तप्रियता

मिश्र देशके प्रसिद्ध संत एन्थानीने अठारह सौ वर्ष पहले जो नाम कमाया, वह विश्वके संतसाहित्यकी एक अमूल्य निधि है। वे पिसपिरकी पहाड़ीपर एकान्त स्थानमें निवास करते हुए भगवान्का चिन्तन किया करते थे।

एक समयकी बात है वे अलेक्जन्ड्रियामें आये हुए थे जनताको ईश्वर-चिन्तनके मार्गपर लानेके लिये। अपना कर्तव्य पूरा करके वे पहाड़ीकी ओर प्रस्थान करनेकी व्यवस्था करने लगे। इस समाचारसे लोग व्याकुल हो उठे। वे संतको अपने प्राणोंसे भी अधिक चाहते थे। एक [illegible] करनेके लिये भी [illegible] उनकी कुटीके [illegible] एकत्र हो गयी।

[illegible]

'भाई ! मछली जलसे बाहर भूमिपर आ जानेपर जलके अभावमें छटपटाकर तिलमिलाते प्राण छोड़ देती है । इसी प्रकार संत-महात्मा जनसमूहमें आनेपर अपने एकान्त मौनव्रतसे पतित—च्युत हो जाते हैं । जिस प्रकार जलकी ओर बड़े आवेगसे मछली दौड़ती है, उसी प्रकार हमलोग अपने पहाड़ी स्थानोंमें पहुँचकर शान्ति प्राप्त करते हैं ।' संतने विनम्रतापूर्वक अपना मत व्यक्तकर पहाड़ीकी ओर प्रस्थान किया ।—रा० श्री०

प्रार्थनाकी शक्ति

लगभग सोलह सौ वर्ष पहलेकी बात है । संत स्कालस्टिका प्रत्येक वर्ष अपने भाई संत बेनडिक्टसे मिलने जाया करती थी, दिनभर आध्यात्मिक विषयपर बात करके वह शामको अपने स्थानको लौट जाया करती थी; क्योंकि स्कालस्टिकाका यह नियम था कि वे रातको अपने मठमें ही निवास करती थीं और बेनडिक्ट भी केसिनीकी पहाड़ीपर स्थित अपने मठमें चले जाते थे । स्कालस्टिकाको केसिनी मठमें जानेकी आज्ञा नहीं थी । इससे वर्षमें एक दिन बेनडिक्ट भी मठसे कुछ दूर आ जाते थे बहिनसे मिलनेके लिये और बहिन स्कालस्टिका भी आ जाती थी । एक साल वह संत बेनडिक्टसे मिलने गयी थी । उसे ऐसा लगा कि यह उसकी अन्तिम भेंट है ।

'मेरी बड़ी इच्छा है कि आज आप अपने मठमें न जायँ । मैं सारी रात आपसे भगवान्‌के सम्बन्धमें बात करना चाहती हूँ ।' स्कालस्टिकाने संत बेनडिक्टसे प्रार्थना की । उसका हृदय भारी हो चला था और नयनोंमें अश्रुका प्रवाह था ।

'बहिन ! तुम ठीक कहती हो, पर मैं अपने नियमसे विवश हूँ । मेरे लिये मठसे बाहर रातमें रहना अत्यन्त कठिन है । दिनमें तो हमलोगोंने भगवान्‌की स्तुति और स्मरण तथा चिन्तनमें अपने समयका सदुपयोग किया ही है ।' संत बेनडिक्टने अपने साथियोंके साथ केसिनीकी पहाड़ीपर स्थित मठकी ओर प्रस्थान करना चाहा, जो स्कालस्टिकाके प्लोमबेरियोलावाले मठसे पाँच मीलकी दूरीपर था ।

भाईके दृढ़ निश्चयसे स्कालस्टिकाका गला भर आया । वह मनमें भगवान्‌का ध्यान करने लगी । सूर्यास्तका समय था; ज्यों-ज्यों अँधेरा बढ़ता जाता था—त्यों-त्यों उसकी उदासी भी बढ़ रही थी । अचानक आकाशमें बादल छा गये, बिजली चमकने लगी, पवनका वेग बढ़ गया और वृष्टि होने लगी ।

'बहिन ! ईश्वर क्षमा करें । तुमने यह क्या कर डाला' संत बेनडिक्ट मुसकराने लगे ।

'मैंने आपका दरवाजा खटखटाया, पर आपने मेरी पुकारकी उपेक्षा कर दी । मैंने भगवान्‌से प्रार्थना की; उन्होंने अपनी कृपासे मुझे निहाल कर दिया । अब तो आप रुकेंगे ही ।' स्कालस्टिका प्रसन्न थी ।

'प्रार्थनाकी शक्ति अमोघ है ।' बेनडिक्ट ठहर गये । उन्होंने रातमें अपनी बहिनसे भगवच्चर्चा-सम्बन्धी बात की । निस्संदेह यह उनकी अन्तिम भेंट थी ।—रा० श्री०

संतकी निर्भयता

परमात्माके भक्ति-साम्राज्यमें निवास करनेवाले संत सदा अभय होते हैं । वे किसीसे भी नहीं डरते । सोलह सौ वर्ष पहलेकी एक घटना है मिस्र देशके प्रसिद्ध संत हिलेरियोके पूर्वाश्रमकी । बचपनसे ही उनकी संतोंके चरणोंमें श्रद्धा थी । वे संत एन्टोनीकी प्रसिद्धिसे आकृष्ट होकर उनसे मरुस्थलमें मिलने गये थे ।

वे उनके समीप दो मासतक रह गये। घर लौटनेपर उन्हें अपने माता-पिताकी मृत्युका समाचार मिला। इस समय उनकी अवस्था केवल पंद्रह वर्षकी थी। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति सम्बन्धियों और गरीबोंको दे दी और स्वयं भगवान्‌का भजन करनेके लिये घरसे बाहर निकल पड़े।

उन्होंने मरुस्थलमें रहनेका निश्चय किया, जो समुद्र-तटसे थोड़ी दूरपर अवस्थित था तथा झाड़-झंखाड़ोंसे अमित भयानक दीख पड़ता था। मित्रोंने सावधान किया कि वह स्थान लूटपाट और मार-काटके लिये प्रसिद्ध है; दिन दहाड़े डाकूलोग सारी वस्तुएँ छीनकर मार डालते हैं।

'मुझे भगवान्‌का भरोसा है। संसारमें मैं किसीसे नहीं डरता। केवल मृत्युका भय लगता है।' हिलेरियोने मरुस्थलके लिये प्रस्थान किया।

'यदि आपसे इस स्थानमें [illegible] आप क्या करेंगे? [illegible] तो उनसे [illegible] अपरिचित व्यक्तियोंने [illegible]।

'फकीर और [illegible] डरते हैं।' संतका उत्तर था।

'पर वे आपको जानते [illegible] लोगोंने अपने वचन [illegible]।

'यह नितान्त सत्य है। यहाँ [illegible] नहीं डरता। मैं [illegible] हिलेरियोकी निर्भयताने [illegible] चकित कर दिया। वे [illegible] पर संतकी परीक्षा लेने आये थे।—[illegible]

सौन्दर्यकी पवित्रता

स्पेनके पेरु प्रान्तके लिमा नगरमें सोलहवीं शताब्दीमें संत रोजका जन्म हुआ था। वह असाधारण रूपवती थी। उसके मनमें यह धारणा परिपुष्ट हो गयी थी कि मेरा सौन्दर्य भगवान्‌के लिये है और जब वह भगवान्‌के लिये है—तब परम पवित्र है। सौन्दर्य सांसारिकोंकी दृष्टि पड़नेपर अपवित्र हो जाता है। वह इस दिशामें सदा सावधान रहती थी कि कहीं उसका शारीरिक सौन्दर्य दूसरोंके मनमें विकार उत्पन्न न कर दे। अपने निवास-स्थानसे बाहर निकलनेपर वह अपने मुखपर लाल मिर्चकी बुकनी पोत लिया करती थी; इससे मुख सूज जाता था और उसकी आकृति भद्दी दीख पड़ती थी।

'यह तो स्वर्गकी सुन्दरी है। कितने सुन्दर और चिकने हैं इसके हाथ! इसके बनानेवालेने अपनी सारी कला इसके सृजनमें [illegible] कर दी है।' [illegible] उद्गार थे संत रोजके प्रति। [illegible] जा रही थी। रोजके [illegible] चली गयी थी। [illegible] हैं। अस्तु।

रोज उसके इस कथनसे [illegible] सौन्दर्य दूसरेके मनमें [illegible] शरीरपर रहने देना नहीं है—[illegible] चली गयी। उसने अपने दोनों [illegible] खौलते चूनेके पानीमें [illegible] अपने शरीरसे अधिक सौन्दर्य [illegible] नष्ट हुई।—रा० श्री०

संतकी सेवा-वृत्ति

मिश्र देशके प्रसिद्ध संत सेरापियोकी त्याग-वृत्ति उच्च कोटिकी थी। चौथी शताब्दीके संत-साहित्यमें उनका नाम [illegible] प्रसिद्ध है। [illegible] देश पहुँचे थे [illegible]

[illegible] लिये उन्हें बेच दिया करते थे । कभी-कभी वे आवश्यकता पड़नेपर अपने-आपको भी निश्चित अवधि-के लिये बेचकर गरीबोंको आर्थिक सहायता देते थे ।

एक समय उनकी अपने घनिष्ठ मित्रसे भेंट हुई । वह उनको बिल्कुल फटेहाल देखकर आश्चर्यचकित हो गया ।

'भाई ! आपको नंगा और भूखा रहनेके लिये कौन विवश कर दिया करता है ?' मित्रने पूछा ।

'यह बात पूछनेकी नहीं, समझनेकी है । गरीब और असहाय लोगोंकी आवश्यकताको देखकर मैं अपने आपको नहीं सम्हाल पाता । मेरी धर्म-पुस्तकका आदेश है कि दीन-दुखियोंकी सेवाके लिये अपनी सारी वस्तुएँ बेच डालो । मैंने भगवान्‌की आज्ञाके पालनको ही अपने जीवनका उद्देश्य बनाया है ।' संतने मित्रका समाधान किया ।

'पर आपकी वह धर्म-पुस्तक कहाँ है ?' मित्रका प्रश्न था ।

'मैंने असहायोंकी आवश्यकताके लिये उसे भी बेच दिया है । जो पुस्तक परसेवाके लिये सारे सामान बेच देनेका आदेश देती है, समय पड़नेपर उसको भी बेचा जा सकता है । इससे दो लाभ हैं; पहला तो यह है कि जिसके हाथमें ऐसी दिव्य पुस्तक पड़ेगी, वह धन्य हो जायगा, उसकी त्याग-वृत्ति निखर उठेगी; और दूसरा यह कि पुस्तकके बदलेमें जो पैसे मिलेंगे, उनसे असहायों और दुखियों तथा अभावग्रस्त व्यक्तियोंकी ठीक-ठीक सेवा हो सकेगी ।' सेरापियोने सरलता और विनम्रतासे उत्तर दिया ।—रा० श्री०

संत प्रचारसे दूर भागते हैं

ऐसा प्रायः देखा जाता है और संतोंके जीवन-वृत्तान्तसे पता चलता है कि बड़े-बड़े संत विज्ञापन, प्रचार और प्रसिद्धिसे दूर भागते हैं, उन्हें ये काँटोंकी तरह चुभते हैं ।

पाँचवीं शताब्दीके प्रसिद्ध संत अरसेनियस प्रचार और प्रसिद्धिसे बहुत घबराते थे । वे नितान्त एकान्तसेवी थे । सदा अपनी गुफामें निवास करते हुए परमात्माका स्मरण किया करते थे ।

एक दिन सिकन्दरिया नगरके कुलपति थियोफिलसके [illegible] एक रोमकी महिला मेलनिया उनसे मिलने आयी । वह इटलीसे [illegible] केवल उनका दर्शन करनेके लिये ही आयी थी । संत अपनी गुफासे बाहर निकल रहे थे कि उसी महिलाने उनकी चरणधूलि अपने मस्तकपर चढ़ा ली ।

'स्त्रीको अपना घर छोड़कर अकेले बाहर नहीं जाना चाहिये । आप हमारे पास इसलिये आयी हैं कि आप रोममें पहुँचकर लोगोंसे यह कह सकें कि आपको मेरा दर्शन हुआ है । इस तरह आप लोगोंको मेरे पास आनेमें प्रेरणा देंगी । है न यही ध्येय ?' अरसेनियसके प्रश्नसे महिला लज्जित हो गयी ।

'आप मुझे सदा याद रखियेगा और भगवान्‌से मेरे कल्याणके लिये प्रार्थना कीजियेगा ।' महिलाने दीनता-पूर्वक निवेदन किया ।

'मैं तो यह प्रार्थना करूँगा कि मेरे मस्तकसे आपका स्मरण ही मिट जाय ।' संतका कथन था ।

महिलाको इस उत्तरसे बड़ा दुःख हुआ पर उसके सिकन्दरिया पहुँचनेपर थियोफिलसने सान्त्वना दी कि अरसेनियसका आशय शारीरिक स्मरणसे था; संत तो दूसरोंके आत्मकल्याणके लिये सदा भगवान्‌से प्रार्थना किया ही करते हैं । —रा० श्री०

गरजनेके बाद बरसना भी चाहिये

सुकरातकी पत्नी अंटीपी अत्यन्त कर्कशा थी। वह अकारण ही पतिसे झगड़ा किया करती थी। एक बार किसी बातपर असंतुष्ट होकर वह सुकरातको भली-बुरी सुनाने लगी। सुकरात चुपचाप उसके कठोर वचन सुनते रहे। कोई प्रत्युत्तर न मिलनेसे उसका क्रोध बढ़ता ही गया। अन्तमें उसने एक पानी भरा बर्तन उठाकर सुकरातके सिरपर उड़ेल दिया। सुकरात बोले—'बहुत गर्जनाके बाद कुछ वर्षा भी तो होनी ही चाहिये थी।'

सुकरातके एक मित्रने उनकी दुर्दशा देखकर कहा—'ऐसी कर्कशा नारी छड़ीसे ही ठीक करने योग्य है।'

सुकरात हँसकर बोले—'आप चाहते हैं कि हम दोनों झगड़ें और आप तमाशा देखें!' मित्र इस शान्त पुरुषके सम्मुख लज्जित हो गये।—सु० सिं०

कलाकी पूजा सर्वत्र होती है

क्रियों यूनानके एथेंस नगरका एक नवयुवक गुलाम था। उसके जीवन-कालमें राज्यका कानून था कि कोई गुलाम कलाकी उपासना नहीं कर सकता। ललित कलाओंको सीखनेका उसे अधिकार नहीं था। क्रियो बड़ा गरीब था; वह संगमरमरकी कलापूर्ण मूर्ति बनाकर जीविका चलाता था। कानून बन जानेपर वह क्लिश हो गया।

वह अपनी बहिनकी सम्मतिसे एक गुफामें रहने लगा। वह चोरी-चोरी संगमरमरकी मूर्ति बनाया करता था। एक समयकी बात है। एथेंसमें कला-प्रदर्शनी हुई। क्रियोंको पेरिक्लीजसे* पुरस्कार पानेकी आशा थी। उसने संगमरमरकी कई मूर्तियाँ भेज दीं, प्रदर्शनीमें स्वयं न जाकर अपनी बहिनको भेज दिया।

प्रदर्शनीमें दर्शकोंने क्रियोंकी मूर्तियाँ बहुत पसंद कीं। अन्य कलाकार इस बातसे जल उठे।

'ये किसकी मूर्तियाँ हैं?' उनमेंसे एकका प्रश्न था। क्रियोंकी बहिनके अधर निस्पन्द थे।

सुकरात, फिडियस आदिके साथ पेरिक्लीज भी आ पहुँचे। पर उनके पूछनेपर भी वह दास-कन्या मौन रही। पेरिक्लीजने तत्काल उसे कारागारमें डाल देनेका आदेश दिया, पर क्रियों आ पहुँचा। उसके पैरोंमें धूलि लिपटी थी, लंबे-लंबे बाल पीठपर लटक रहे थे। चिन्ता और भूखसे मन उदास था।

'महाशय! मेरी बहिनका कोई अपराध नहीं है। दोष तो मेरा है जो गुलाम होकर भी मैंने कलापूर्ण मूर्तियाँ बनायीं।' क्रियों पेरिक्लीजके पैरोंपर गिर पड़ा।

'इसे कारागारमें डाल देना चाहिये।' अन्य कलाकारोंने माँग की।

'नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। पर कानून कठोर है। नवयुवकके लिये कारागार उपयुक्त नहीं है, वह तो मेरी बगलमें बैठनेका अधिकारी है। [illegible] कला सबकी वस्तु है। उसे [illegible] नहीं है।' पेरिक्लीजने क्रियोंको अपनी बगलमें बैठा लिया और एस्पीसियाने क्रियोंके सिरपर मुकुट रख दिया। सच्ची कलाकी उपासनाने उसके हृदयके [illegible] एथेंस-निवासियोंका मन मुग्ध कर दिया।—रा० श्री०

---

* पेरिक्लीज एथेंसका सर्वश्रेष्ठ राज्याधिकारी था। एस्पीसिया उसकी [illegible] थी।

त्रल कुछ रुपयोंके कारण दास बना लिया गया है।' क बुढ़ियाने संतसे निवेदन किया। उसके नेत्रोंसे श्रुकी धारा प्रवाहित थी, सिर हिल रहा था, कपड़े फटे ौर मैले थे; ऐसा लगता था मानो साक्षात् दरिद्रता ही तके सेवाव्रतकी परीक्षा ले रही है।

'माँ! मेरे पास तो सोना-चाँदी कुछ भी नहीं है। स समय इस शरीरपर मेरा पूरा-पूरा अधिकार है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि [illegible] सकूँगा। माँ! मैं [illegible] तुम्हारे पुत्रका उद्धार करूँगा।' [illegible] आश्वासन दिया।

'बेटा! तुम भी तो मेरे ही बेटे हो। [illegible] भगवान् भला करें।' बुढ़ियाने आशीर्वाद [illegible] गयी।—रा० श्री०

समयका मूल्य

मनुष्यके जीवनका प्रत्येक क्षण अमूल्य है। समय सा धन है, जो चले जानेपर वापस नहीं आया करता। विवेकी पुरुष समय-बद्धताकी ओर सदा ध्यान रखते हैं।

जार्ज वाशिंगटन ठीक समयपर भोजन करते थे तथा ीक (निश्चित) समयपर सोते थे। उनके जीवन-ा प्रत्येक कार्य निर्धारित समयपर पूरा होता रहता था। वे चार बजेके लगभग भोजन किया करते थे। क दिन उन्होंने अमेरिकी कांग्रेसके नये सदस्योंको भोजके लिये निमन्त्रित किया। [illegible] हो गयी। राष्ट्रपति वाशिंगटन भोजन करने [illegible] सदस्योंको बड़ा आश्चर्य हुआ।

'भाई! इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? [illegible] रसोइया कभी यह नहीं देखता कि [illegible] अतिथि आ गये हैं या नहीं, वह तो पूर्वनिश्चित [illegible] भोजन सामने रख दिया करता है।' राष्ट्रपति [illegible] भोजन करनेमें व्यस्त हो गये।—रा० श्री०

भद्रमहिलाका स्वच्छन्द घूमना उचित नहीं

चार सौ वर्ष पहलेकी बात है। यूनानमें सरेनस ामके एक धनी व्यक्ति रहते थे। वे एक विशाल ज्यके अधिपति थे। सदा सगे-सम्बन्धियों और त्रोंसे घिरे रहते थे। विषय-भोगमें बड़े सुखसे ीवन बीतता था, पर एक समय सहसा उनके मन-वैराग्य उमड़ आया। जगत्की वस्तुओं और म्बन्धोंके प्रति उनकी रुचि घटने लगी। उन्होंने दूर शमें जाकर एकान्त-सेवन करनेका निश्चय किया; क तपस्वीकी तरह ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते ए परमात्माके निष्काम भजन और चिन्तनमें ही मयका सदुपयोग करना उन्हें अच्छा लगा। उनके राग्यपूर्ण जीवनमें सहज सरलताकी स्वच्छ निर्मल निर्झरिणी प्रवाहित हो उठी।

सरेनसने [illegible] में एक बगीचा खरीदा। [illegible] बगीचेको हरा-भरा कर दिया। [illegible] से निर्वाह करके वे संतरूपमें पूर्ण [illegible] भजनानन्द-सागरमें निमग्न हो गये। [illegible] स्थान [illegible] हो उठा। [illegible]

एक दिन [illegible] एक महिलाने बगीचेमें प्रवेश किया [illegible]

'तुमने यहाँ [illegible] तुमने [illegible]

कष्टमें भी क्रोध नहीं

इटलीके एक धर्मयाजक (पादरी) पर बड़े-बड़े कष्ट आये; परंतु उनके मनमें कभी ताव नहीं आया। लोग उन्हें गालियाँ बकते और वे हँसते रहते तथा उन्हें मीठा उत्तर देते। किसीने पूछा—'आपमें इतनी सहनशक्ति कहाँसे आ गयी ?' धर्मयाजकने कहा—'मैं ऊपरकी तरफ देखकर सोचता हूँ कि मैं तो वहाँ जाना चाहता हूँ, फिर यहाँके किसी व्यवहारसे अपना मन क्यों बिगाड़ूँ ? नीचे नजर करता हूँ तो देखता हूँ कि मुझे उठने-बैठने और सोनेके लिये [illegible] जितनी चाहिये। आसपास देखता हूँ तो [illegible] है कितने लोग मुझसे भी अधिक कष्ट भोग रहे हैं। बस, इन्हीं विचारोंके कारण मेरा [illegible] हो गया है और अब [illegible] नहीं होता।'

'न मे भक्तः प्रणश्यति'

'मुझे शरण दीजिये, मैं दुर्भाग्यकी मारी एक दीन-हीन अबला हूँ।' एक स्त्रीने फिलस्तीनके महान् संत मरटिनियनसकी गुफाके सामने जोर-जोरसे चिल्लाना आरम्भ किया। आधी रात बीत चुकी थी। ऐसे समयमें नगरसे दूर निर्जन पहाड़ीपर एक स्त्रीकी आवाज बड़ी आश्चर्यमयी थी। आकाशमें तारे चमक रहे थे, पर पृथ्वीपर घना अन्धकार था। संत अपनी गुफामें जाग रहे थे; वे उसकी पुकार सुनकर बाहर आये और गुफाके बाहर उसे ठहरनेका स्थान बताकर भीतर चले गये। स्त्रीका नाम 'जो' था।

दूसरे दिन प्रातःकाल उन्होंने उस रमणीको देखा; वह बड़ी रूपवती थी, उसका शरीर सोनेके आभूषणोंसे सजा था। उसने अपने धन और रूपसे संतको गिराना चाहा और अत्यन्त शिष्ट तरीकेसे घृणित प्रस्ताव उपस्थित किया; संतके मनपर भी उसकी कुवृत्तिका प्रभाव पड़ा। वे उसके जालमें गिरनेवाले ही थे कि अचानक गुफाके बाहर उन्हें कुछ लोगोंकी उपस्थितिका संकेत मिला; वे दर्शन करनेके लिये नगरसे पहाड़ीपर आये थे। संतने बाहर निकलकर उन्हें उपदेश दिया। स्त्री गुफाके बाहर आ गयी।

उपदेश समाप्तकर मरटिनियनसने गुफामें [illegible] किया। थोड़ी देरमें [illegible] रमणीने भीतर प्रवेश किया और [illegible] आगमें जलते देखकर [illegible] उठी। [illegible] काँप उठे।

'बहिन ! इसने [illegible] मैं इस जगत्‌की [illegible] सकता तो नरककी यातना किस प्रकार [illegible]' संतके वचनसे रमणीको अपने [illegible] हुआ; वह उनके पैरोंपर गिर पड़ी।

'उठो, बहिन ! भगवान्‌ने [illegible] वे अपने भक्तकी रक्षा करते हैं। [illegible] मिलन ही अचल [illegible]। [illegible] कर भेजकर बड़ा अनुग्रह किया। [illegible] धन, स्त्री और [illegible] और [illegible] सन्त मरटिनियनस [illegible] विचार [illegible] नगरसे [illegible] ।— [illegible]

गुरु-भक्ति

औरंगजेबकी आज्ञासे गुरु तेगबहादुरकी दिल्लीमें नृशंसतापूर्वक हत्या कर दी गयी। बादशाहको इतनेसे संतोष नहीं हुआ। उसने आज्ञा दी—'इस मृत देहका किसी प्रकारका संस्कार नहीं हो सकेगा। नगरमें चौराहेपर जहाँ वध किया गया है, वहीं पड़ा-पड़ा यह देह सड़ा करेगा। कोई उसे उठाने या छूनेका प्रयत्न करेगा तो उसे भी प्राणदण्ड दिया जायगा।' कुछ सैनिक नियुक्त कर दिये गये वहाँ, जिससे कोई उस देहको उठा न ले जाय।

गुरु गोविन्दसिंहजी उस समय सोलह वर्षके बालक थे। 'पिताके शरीरका अन्त्येष्टि-संस्कार चाहे जैसे हो, करना ही है।' इस निश्चयसे वे पंजाबसे दिल्ली जा रहे थे; किंतु क्रूर औरंगजेब उनके साथ कैसा व्यवहार करेगा, इसका कोई ठीक ठिकाना नहीं था। सभी लोगोंमें बड़ी चिन्ता व्याप्त थी। उपाय भी कुछ नहीं था; क्योंकि गुरु गोविन्दसिंहजी पिताका अन्तिम-संस्कार छोड़ देनेको प्रस्तुत हों, यह कहा भी कैसे जाय।

'आप यहीं गुप्तरूपसे ठहरें। हम दोनों गुरुदेवका शरीर यहीं ले आयेंगे। दिल्ली नगरमें जाना आपके लिये किसी प्रकार निरापद नहीं है।' एक निर्धन गाड़ीवाले सिखने अपने पुत्रके साथ दिल्ली जानेका निश्चय कर लिया और उसने नगरसे कई मील दूर ही गुरु गोविन्दसिंहको रुकनेका आग्रह किया। उन पिता-पुत्रके आग्रहको गुरुने स्वीकार किया।

वे पिता-पुत्र दिल्ली [illegible]। [illegible] गुरु तेगबहादुरके शरीरका [illegible]। [illegible] शरीरसे तीव्र दुर्गन्ध [illegible]। [illegible] सैनिक पर्याप्त दूर [illegible] आमोद-प्रमोदमें [illegible]। [illegible] छोड़ दिया था। कोई [illegible] दूसरी ओर करके, नाक दबाकर [illegible]

दोनों पिता-पुत्र जब वहाँ पहुँचे, [illegible] कहा—'हम दोनोंमेंसे एकको प्राणत्याग [illegible], क्योंकि यदि इस शवके स्थानपर दूसरा [illegible] कर नहीं रक्खा जायगा तो [illegible] पड़ते ही वे सावधान हो जायँगे। [illegible] सिखोंके एकमात्र आधार [illegible] निकल पड़ेंगे। तुम युवक हो। [illegible] है। गुरुके इस शरीरको उठाकर [illegible] जा सकते हो। इसलिये मुझे मरने दो।'

पुत्र कुछ कहे, इसके पहले [illegible] अपनी छातीमें मार ली और [illegible]। [illegible] पिताका शव वहाँ [illegible] तेगबहादुरका शरीर कंधेपर [illegible]। [illegible] निर्विघ्न नगरसे निकल गया; क्योंकि [illegible] एवं श्रद्धा होती है, वहाँ [illegible] भी पैर काँपते हैं।

सत्य निष्ठा

गुरु रामसिंह

'सत्य ही एकमात्र धर्म है। सत्यको पकड़े रहनेसे सभी धर्मके अङ्ग स्वतः सिद्ध हो जाते हैं। सत्य ही मुक्तिका साधन है।' यह प्रधान उपदेश था कूका [illegible] सम्प्रदायके संस्थापक गुरु [illegible] [illegible] हो गये। [illegible]

कूका [illegible] जा रहे थे। मार्गमें [illegible] अलग हो गया। उन्होंने [illegible] प्रसन्न किया। बहुतसे लोग घायल हुए, किंतु कसाई [illegible] है। किंतु [illegible] नहीं हो सके। परंतु उसी रातको कूका लोग कसाइयोंके घरमें छिपकर घुस गये और उन्होंने उनको मार डाला। फलतः सबेरेसे ही पुलिसने हिंदुओंकी धरपकड़ प्रारम्भ की। ऐसे अवसरोंपर प्रायः जैसा होता है, उस समय भी हुआ। अधिकांश निरपराध लोग पकड़े गये। उनके विरुद्ध झूठी गवाहियाँ पुलिसने तैयार कीं।

गुरु रामसिंहजीने जब यह समाचार सुना, तब वे बहुत दुःखी हुए। अपने शिष्योंके सामने वे बोले—'हिंदुओंने बहुत [illegible] कार्य किया है। उन्हें कसाइयोंसे शिकायत थी तो सरकारसे [illegible] करते। अब तो वे और भी पाप कर रहे हैं कि स्वयं छिप गये हैं और निरपराध लोग दण्ड भोग रहे हैं।'

उस समय गुरु रामसिंहजीकी मंडलीमें एक ऐसा उनका शिष्य भी था जो इस काण्डमें सम्मिलित था। उसने अपना अपराध गुरुके सम्मुख स्वीकार किया। गुरु रामसिंहजीने पूछा—'तुम्हारे साथ जो लोग थे, उनमें क्या और कोई भी मेरा शिष्य था?'

उसने कहा—'नहीं, उनमें और कोई कूका नहीं था।'

गुरु रामसिंह—'तब तुम्हें सरकारी अधिकारियोंके सम्मुख उपस्थित होकर अपना अपराध स्वीकार कर लेना चाहिये। तुम्हारे साथियोंमें कोई मेरा शिष्य होता तो उससे भी मैं यही करनेको कहता। परंतु तुम्हें किसी भी कष्टके भय या प्रलोभनमें पड़कर अपने साथियोंके साथ विश्वासघात नहीं करना चाहिये। उनका नाम बतलाना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है। यह उनका कर्तव्य है कि वे अपना अपराध स्वीकार करें।'

गुरुकी आज्ञा मानकर वह व्यक्ति सरकारी अधिकारियोंके सामने उपस्थित हुआ। उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। किंतु उससे किसी प्रकार उसके साथियोंका नाम नहीं पूछा जा सका। उसे अंग्रेजी न्यायने फाँसी दी; किंतु धर्मराजका न्याय उसे पुण्यात्माओंके लोक स्वर्गमें भेजेगा, यह भी क्या संदेह करनेकी बात है!

पंजाब-केसरीकी उदारता

पंजाबकेसरी महाराज रणजीतसिंह कहीं जा रहे थे। अकस्मात् एक ढेला आकर उनके लगा। महाराजको बड़ी [illegible] हुई। सैनिक दौड़े और एक बुढ़ियाको पकड़कर उनके सामने उपस्थित किया।

बुढ़िया डरके मारे काँप रही थी। उसने हाथ जोड़कर कहा—'सरकार! मेरा बच्चा तीन दिनोंसे भूखा था, खानेको कुछ नहीं मिला। मैंने पके बेलको देखकर ढेला मारा था। ढेला लग जाता तो बेल टूट पड़ता और उसे खिलाकर मैं बच्चेके प्राण बचा सकती, पर मेरे अभाग्यसे आप बीचमें आ गये। ढेला आपको लग गया। मैं निर्दोष हूँ, सरकार! मैंने ढेला आपको नहीं मारा था। क्षमा कीजिये।'

बुढ़ियाकी बात सुनकर महाराज रणजीतसिंहजीने अपने आदमियोंसे कहा—'बुढ़ियाको एक हजार रुपये और खानेका सामान देकर आदरपूर्वक घर भेज दो।'

लोगोंने कहा—'सरकार! यह क्या करते हैं। इसने आपको ढेला मारा, इसे तो कठोर दण्ड मिलना चाहिये।'

रणजीतसिंह बोले—'भाई! जब बिना प्राणोंका तथा बिना बुद्धिका वृक्ष ढेला मारनेपर सुन्दर फल देता है, तब मैं प्राण तथा बुद्धिवाला होकर इसे दण्ड कैसे दे सकता हूँ।'

पवित्र अन्न

गुरु-भक्ति

नामदेवकी समता-परीक्षा

एकनाथकी क्रोध-परीक्षा
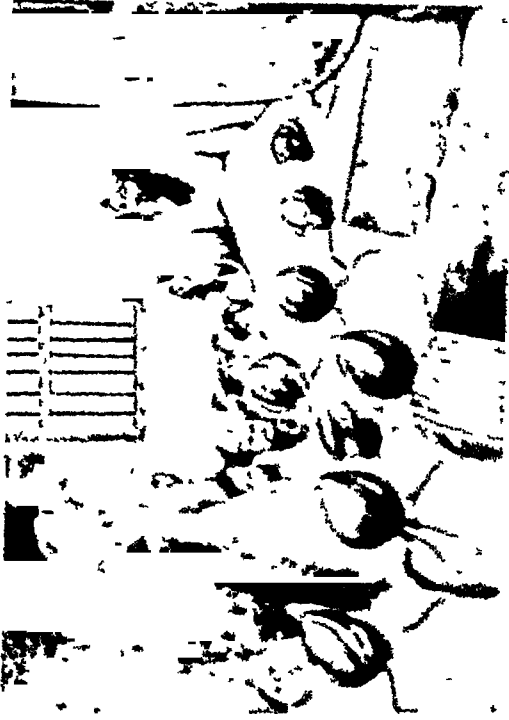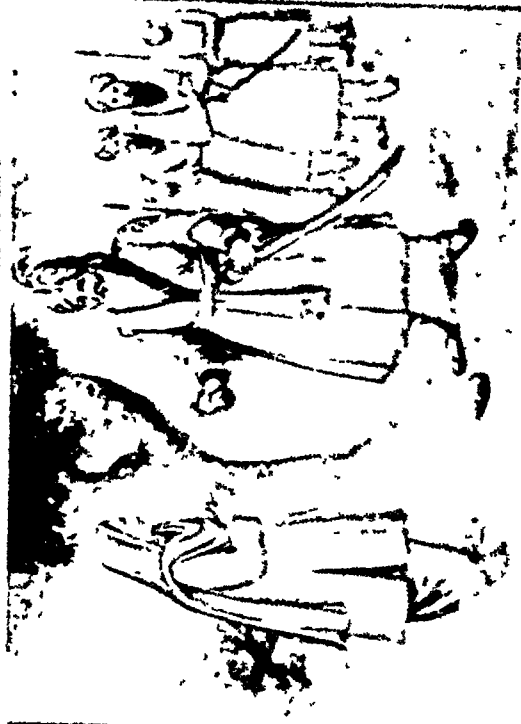
तुकारामका विश्वास
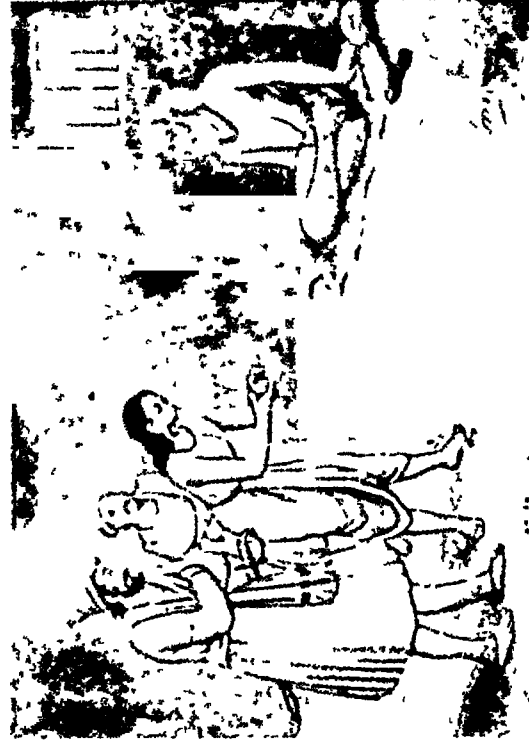
समर्थका पनवट्ठा

नामदेवकी समता-परीक्षा

'अरे नामू ! तेरी धोतीमें खून कैसे लग रहा है ?'

'यह तो माँ ! मैंने कुल्हाड़ीसे पगको छीलकर देखा था ।' माँने धोती उठाकर देखा—पैरमें एक जगहकी चमड़ी मांससहित छील दी गयी है । नामदेव तो ऐसे चल रहा था मानो उसको कुछ हुआ ही नहीं । नामदेवकी माँने फिर पूछा—

'नामू ! तू बड़ा मूर्ख है । कोई अपने पैरपर भी कुल्हाड़ी चलाया करता है ? पैर टूट जाय तो लँगड़ा होना पड़े । घाव पक जाय या सड़ जाय तो पैर कटवानेकी नौबत आवे ।'

'तब पेड़को भी कुल्हाड़ीसे चोट लगनी चाहिये । उस दिन तेरे कहनेसे मैं पलासके पेड़पर कुल्हाड़ी चलाकर उसकी [illegible] । [illegible] कि अपने पैरको [illegible] भी [illegible], [illegible] लगती है । पलासके पेड़को [illegible], [illegible] जाननेके लिये मैंने ऐसा [illegible] ।'

नामदेवकी माँको [illegible] कि [illegible] उस दिन काढ़ेके लिये पलासकी [illegible] था । नामदेवकी माँ रो पड़ी, उसने कहा—'बेटा नामू ! मालूम होता है तू महान् [illegible] होगा । पेड़ों और दूसरे जीव-जन्तुओंमें भी मनुष्यके ही [illegible] है । अपने चोट लगनेपर दुःख होता है, [illegible] भी होता है ।'

बड़ा होनेपर यही नामू प्रसिद्ध [illegible] हुए ।

एकनाथजीकी अक्रोध-परीक्षा

पैठणमें कुछ दुष्टोंने मिलकर घोषणा की कि 'जो कोई एकनाथ महाराजको क्रोध दिला देगा, उसे दो सौ रुपये इनाम दिया जायगा ।' एक ब्राह्मण युवकने बीड़ा उठाया । वह दूसरे दिन प्रातःकाल एकनाथजीके घर पहुँचा । उस समय एकनाथजी पूजा कर रहे थे । वह बिना हाथ-पैर धोये और बिना किसीसे पूछे-जाँचे सीधा पूजाघरमें जाकर उनकी गोदमें जा बैठा । उसने सोचा था—ऐसा करनेपर एकनाथजीको जरूर क्रोध होगा, परंतु उन्होंने हँसकर कहा—'भैया ! तुम्हें देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ । मिलते तो बहुत-से लोग हैं, परंतु तुम्हारा प्रेम तो विलक्षण है ।' वह देखता ही रह गया । उसने सोचा कि इनको क्रोध दिलाना तो बहुत कठिन है, पर उसे दो सौ रुपयेका लोभ था, इससे फिर दूसरी बार [illegible] । भोजनके समय उसका आसन एकनाथजीके [illegible] लगाया गया । भोजन परोसा गया । [illegible] एकनाथजीकी पत्नी गिरिजाबाई [illegible] । [illegible] झुककर ब्राह्मणकी [illegible], वह उचककर उनकी पीठपर [illegible] । एकनाथजीने पत्नीसे कहा—'देखना, [illegible] ।' गिरिजाबाई भी एकनाथजीकी [illegible] मुसकराते हुए कहा—[illegible] है, मुझे हरि (एकनाथजीके पुत्र [illegible] काम करनेका [illegible] । [illegible] और क्षमा माँगने लगा ।

तुकारामका विश्वास

[illegible] तनिक भी [illegible]।

[illegible] अपार अनुराग था। एक बार एक किसानने उन्हें अपने खेतकी रखवालीपर नियुक्त किया। कुछ लुटेरे आये और खेतको पशुओं तथा अपने हाथोंसे उजाड़ दिया। ध्यानमग्न संत तुकाराम कुछ न बोले। किसान आया और उन्हें खेत उजाड़नेका अपराधी ठहराया। पर आश्चर्य! जब तुकारामने उस खेतपर दृष्टि डाली तो वह खेत पूर्ववत् लहलहा उठा। इससे प्रसन्न होकर किसान उन्हें कुछ अनाज देने लगा, पर तुकारामने अस्वीकार कर दिया।

सेवा-भाव

समर्थका पनवट्टा

[illegible] वृद्ध हो गये थे। छत्रपति [illegible] कर दी थी। अनेक [illegible] नियुक्त कर दिये थे सेवामें। परंतु श्रीसमर्थ [illegible] ही सेवा लेते थे। श्रीसमर्थको [illegible] पानकी आवश्यकता होती थी। [illegible] उन्हें अभ्यास था। दाँत न [illegible] कूटकर उन्हें दिया जाता था।

[illegible] कुछ चूना अधिक हो गया। श्री-[illegible] उस पानको खानेसे। पान [illegible], उसे समर्थने तो कुछ कहा [illegible] बहुत दुःखी हो गया। 'ऐसा [illegible] न हो, इसका उपाय कौन-सा है?' [illegible]। अन्तमें उसे एक उपाय [illegible]। फिर समर्थके [illegible] नहीं हुआ।

[illegible] उस सेवकका वह उपाय दूसरे [illegible]। वह दूसरा सेवक तो छत्रपतिसे [illegible]। उसी समय [illegible] छत्रपतिकी सेवामें उपस्थित हुआ। छत्रपतिने उसकी बात सुनी और सुनते ही उनका चेहरा क्रोधके मारे तमतमा उठा। वे तुरंत श्रीसमर्थके आश्रमपर पहुँचे।

असमयमें छत्रपतिको आया देख समर्थने पूछा—'शिवा! इस समय कैसे आये?'

शिवाजीने मस्तक चरणोंपर रखकर प्रणाम किया। वे हाथ जोड़कर बोले—'सुना है, स्वयं ताम्बूल चबाकर सेवक वह उच्छिष्ट आपको देता है।'

जैसे कुछ जानते ही न हों, इस भोलेपनसे श्री-समर्थ बोले—'ऐं! ऐसा करता है वह? कहाँ है? बुलाओ तो।'

सेवक आया। छत्रपतिने ही उससे पूछा—'गुरुदेवको तुम्हीं ताम्बूल देते हो? कूटकर ताम्बूल देते हो न? जिस पनवट्टेमें ताम्बूल कूटते हो, वह पनवट्टा ले तो आओ।'

सेवक चला गया। कुछ देरमें हाथमें एक थाल लिये वह लौटा। उसका शरीर रक्तसे लथपथ हो रहा था।

चाकूसे अपना पूरा जबड़ा काटकर उसने थालमें रख दिया था । थाल धर दिया उसने छत्रपतिके सम्मुख ।

'यह पनबड़ा !' श्रीसमर्थने बड़े स्नेहसे देखा थालमें रखे [illegible] त्यागने [illegible] । [illegible] था । उनके नेत्रोंसे टपाटप [illegible]'

देशके लिये बलिदान

रूस और जापानका युद्ध चल रहा था । पिछले महासमरकी बात नहीं कही जा रही है । रूस था जारका साम्राज्यवादी रूस और जापान था एशियाकी विकासोन्मुख शक्ति । जारने कहा था—'रूसी टोपियाँ फेंक देंगे तो जापानी बौना पिस जायगा ।'

युद्धके मैदानमें सभीको कभी आगे बढ़ने और कभी पीछे हटनेका अवसर आता है । एशियन फौजोंके दबावसे जापानी सैनिकोंको एक पर्वतीय टीला खाली करके पीछे हटना पड़ा । दूसरी सब सामग्री तो हटा ली गयी; किंतु एक विशाल तोप पीछे छूट गयी ।

सारी सेना पीछे सुरक्षित हट गयी थी, निश्चिन्त थी; किंतु तोपचीको शान्ति नहीं थी । 'मेरी ही तोपसे कल शत्रु मेरे देशके सैनिकोंको भूनना प्रारम्भ करेगा ।' तोपचीको यह चिन्ता खाये जा रही थी । रूसी सैनिकोंके पास बड़ी तोपें नहीं थीं । यह पहिली बड़ी तोप उन्हें मिलनेवाली थी । तोपचीसे रहा नहीं गया । वह रात्रिके अन्धकारमें शिविरसे निकल पड़ा । वृक्षोंकी आड़ लेता, पेटके बल खिसकता पहाड़ीपर जा पहुँचा ।

तोपची तोपके पास पहुँच तो गया; किंतु करे क्या ! इतनी भारी तोप उन [illegible] निकाल, [illegible] सकती थी । [illegible] एक पुर्जा भी [illegible] शत्रु जाग जाय और उसे पकड़ ले । [illegible] सोचकर वह तोपकी भारी नलीमें घुस [illegible] । [illegible] पड़ रही थी, तोपकी नलीमें [illegible] तक जैसे फटी जा रही थी । [illegible] पड़ा था । उसकी पीड़ा अपार हो गयी थी ।

सवेरा हुआ । एशियन सैनिक [illegible] चारों ओरसे घूमकर देखा । [illegible] निश्चय करके गोला बारूद [illegible] । [illegible] गया और सामनेका कुछ [illegible] । [illegible] घुसे तोपचीके चिथड़े उड़ चुके थे ।

[illegible] तोपपर कोई जादू कर गये हैं । [illegible] गये हैं जो नलीसे [illegible] । [illegible] भागो जल्दी ।'

तोपको वहीं छोड़कर वे सब भाग गये दूर । [illegible] सेना फिर लौटी वहाँ और उसने [illegible] सम्मानमें वहाँ स्मारक बनाकर [illegible]

उदारता

इंगलैंडकी प्रसिद्ध संस्था 'रॉयल एकडेमी'की चित्र सजानेवाली समितिकी बैठक हो रही थी । एकडेमी हालमें सुसज्जित करनेके लिये देश-विदेशके चित्रकारोंने अपने श्रेष्ठतम चित्र भेजे थे । जितने चित्र सजाये जा सकते थे वे [illegible] । [illegible] भी लगानेको स्थान नहीं था । [illegible] चित्रकारका चित्र [illegible] बदलने [illegible] नहीं जाय ।'

इंग्लैंडके विख्यात चित्रकार टर्नर भी उस समितिके सदस्य थे, वे बोले—'माननीय सदस्योंको चित्र पसंद आयेगा तो उसे लगानेके स्थानका अभाव नहीं होगा ?'

'आप कहाँ लगायेंगे उसे ?' सदस्योंने पूछा। टर्नर उठे, उन्होंने स्वयं अपना एक चित्र उतारा और उस चित्रको वहाँ लगा दिया। टर्नरका चित्र उस चित्रसे बहुत उत्तम था; किंतु उन्होंने कहा—'नवीन कलाकारको प्रोत्साहन प्राप्त होना चाहिये।' —सु० सिं०

सार्वजनिक सेवाके लिये त्याग

वर्मामें स्वेबू गाँवके पास एक बड़ा बाँध बनाया गया था। आसपासके गाँवोंके किसानोंने उसे बनानेमें सहयोग किया था। वर्षा समाप्त हो जानेपर किसानोंके खेत बाँधके पानीसे सींचे जा सकेंगे, यही आशा थी। परंतु सभी आयोजनोंके साथ भय लगा रहता है। अचानक रातमें घोर वृष्टि हुई। नदीमें बाढ़ आ गयी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि नदीका जल किनारा तोड़कर बाँधमें प्रवेश कर जायगा और यदि बाँध टूट गया—यह सोचकर ही किसानोंके प्राण सूख गये—तो बाँसके टट्टरोंसे बने घर बाढ़के प्रवाहमें कितने क्षण टिकेंगे? मनुष्य और पशुओंका जो विनाश होगा, वह दृश्य सामने जान पड़ने लगा।

चौकीदारोंने लोगोंको सावधान करनेके लिये हवामें गोलियाँ छोड़ीं। गाँवके लोग बाँधकी देख-रेखमें जुट गये, मिट्टी, पत्थर, रेत बाँधके किनारे तेजीसे पड़ने लगा।

बाँध कहीं कमजोर तो नहीं है, यह देखनेका काम सौंपा गया माँग नामक व्यक्तिको। घूमते हुए माँगने देखा कि बाँधमें एक स्थानपर लंबा पतला छेद हो गया है और उसमेंसे नदीका जल भीतर आ रहा है। कुछ क्षणका भी समय मिला तो वह छेद इतना बड़ा हो जायगा कि उसे बंद करना शक्य नहीं होगा। दूसरा कोई उपाय तो था नहीं, माँग स्वयं उस छेदको अपने शरीरसे दबाकर खड़ा हो गया।

ऊपरसे वर्षा हो रही थी, शीतल वायु चल रही थी और जलमें जलके वेगको शरीरसे दबाकर माँग खड़ा था। उसका शरीर शीतसे अकड़ा जाता था, हड्डियोंमें भयंकर दर्द हो रहा था। अन्तमें वह वेदनासे मूर्छित हो गया। किंतु उस वीरका देह फिर भी जलके वेगको रोके बाँधसे चिपका रहा।

'माँग गया कहाँ ?' गाँवके दूसरे लोगोंने थोड़ी देरमें खोज की; क्योंकि बाँधके निरीक्षणके सम्बन्धमें उन्हें कोई सूचना माँगने दी नहीं थी। लोग स्वयं बाँध देखने निकले। बाँधसे चिपका माँगका चेतनाहीन शरीर उन्होंने देख लिया।

'माँग!' परंतु माँग तो मूर्छित था, उत्तर कौन देता। लोगोंने उसके देहको वहाँसे हटाया तो बाँधमें नदीका प्रवाह आने लगा। दूसरा मनुष्य उस छेदको दबाकर खड़ा हुआ। कुछ लोग मूर्छित माँगको गाँवमें उठा ले गये और दूसरे लोगोंने उस छेदको बंद किया।

माँगकी इस वीरता और त्यागकी कथा बर्मी माताएँ आज भी अपने बालकोंको सुनाया करती हैं। —सु० सिं०

सत्यकी शक्तिका अद्भुत चमत्कार

(लेखक—श्रीरघुनाथप्रसादजी पाठक)

स्काटलैंडके लोगोंने इंगलैंडके राजाके विरुद्ध विद्रोह किया। विद्रोहके असफल हो जानेपर विद्रोहियोंको बड़ी निर्दयतापूर्वक दण्डित किया गया। लोग कतारमें खड़े किये और गोलीसे उड़ा दिये जाते थे। एक बार

एक पंद्रहवर्षीय लड़का गोलीसे उड़ाये जानेके लिये कतारमें खड़ा किया गया। सेनापतिको उस बालकपर दया आयी। उसने कहा 'बच्चे! यदि तुम क्षमा माँग लो तो तुम मृत्यु-दण्डसे बच सकते हो।' लड़केने क्षमा माँगनेसे इनकार कर दिया। इसपर सेनापतिने लड़केसे कहा—'मैं तुम्हें चौबीस घंटेकी छुट्टी देता हूँ। तुम्हारा कोई प्रिय जन हो तो जाकर उससे मिल आओ।' लड़का अपनी अकेली माँसे मिलने घर चला गया। जाकर देखा कि माँ बेहोश पड़ी है। माँको होशमें ले आनेपर कहा, 'माँ! मैं आ गया हूँ।' अपने एकलौते बेटेका मुँह देखकर और यह सोचकर कि पुत्रकी जान बच गयी है, माँको अपार हर्ष हुआ। उसने बालकको गोदमें बिठाकर उसे जी भरकर प्यार किया। समय समाप्त होता जानकर बालक, [illegible] लगा। माँने पूछा, 'बेटा! कहाँ जाते हो?' [illegible] आँखोंमें आँसू आ गये। [illegible] दिया, 'माँ! मुझे चौबीस [illegible] मिली थी। मृत्युदण्ड पानेके लिये [illegible] जाता हूँ। [illegible] रक्षक है।' माँको कुछ [illegible] ही बालक घरसे निकल गया और [illegible] सेनापतिके पास पहुँच गया। सेनापतिको उस [illegible] लौटनेकी आशा न थी। बालककी [illegible] पर इतना प्रभाव पड़ा कि उसने [illegible] आज्ञा जारी कर दी।

वस्तुतः सत्यसे चरित्रमें [illegible], [illegible] विश्वास बढ़ता और कठोर-से-कठोर हृदयमें भी [illegible] और दयाका संचार हो जाता है।

सत्यवादितासे उन्नति

पोप पाइस नवमको एक दिन विचित्र पत्र मिला जिसमें स्याहीके अनेक धब्बे थे। बहुत-सी भूलें थीं। कागज अत्यन्त मैला था। उसे रोमके अड़ोस-पड़ोसके एक गाँवमें रहनेवाले बालकने भेजा था और मृत्यु-शय्यापर पड़ी हुई माँकी सेवा-शुश्रूषा और दवाके लिये सहायता माँगी थी। बालकने अत्यन्त असहाय स्थितिमें पत्र लिखा था; उसके पास एक पैसा भी नहीं था; जो कुछ था सो पहले ही समाप्त हो चुका था, उसे विश्वास था कि धर्मगुरु और ईश्वरके परम भक्त होनेके नाते पोप अवश्य सहायता करेंगे।

× × × ×

'मैं पोपसे मिलना चाहता हूँ।' बालकने पोपके निवास-स्थानपर पहुँचकर द्वारपालको पत्रोत्तर दिखाया था, जिसमें पोपने दूसरे दिन सवेरे मिलनेकी इच्छा प्रकट की थी।

पोप बड़े उदार थे। उन्होंने बालकको एक स्वर्ण-मुद्रा दी। उसकी ओर बड़े स्नेहसे [illegible] ही घर जाकर माँका यथाविधि उपचार करो।'

'पर यह तो केवल बीस ही [illegible] है। [illegible] काम न चलेगा।' बालकके नयनोंमें [illegible]।

'क्षमा करो, भाई! मुझे तुम्हारे [illegible] नहीं रहा।' पोपने एक मुद्रा [illegible] दी।

'पर यह तो मेरी आवश्यकतासे [illegible] है। [illegible] पास फुटकर सिक्के भी नहीं हैं; [illegible] अवश्य लौटा दूँगा।' बालकने पोपको [illegible] और चला गया।

× × × ×

दूसरे दिन सबेरे-सबेरे वह पोपके [illegible] वचनके अनुसार उपस्थित हुआ। [illegible] जा रहा था कि पोपने उसकी [illegible] प्रशंसा की। [illegible]

---

* [illegible]

विशेष सेवक भेजकर बालक और उसकी माँकी स्थितिका पता लगा लिया था। वे बालकको देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

'मैंने तुम्हारी शिक्षा और माताकी सेवा-शुश्रूषाकी पूरी-पूरी व्यवस्था कर दी है।' पोप पाइसने बालकको आश्वासन दिया।

उनकी कृपासे बालकने आगे चलकर बड़ा नाम कमाया।—रा० श्री०

सच्ची मित्रता

सिसलीके सिराक्यूज नगरके राजा ड्योनिसियसने सामान्य अपराधमें डेमन नामके एक युवकको प्राणदण्डकी आज्ञा दे दी। डेमनने प्रार्थना की—'मुझे एक वर्षका समय दिया जाय तो ग्रीस जाकर अपनी सम्पत्ति और परिवारका प्रबन्ध करके ठीक समयपर लौट आऊँगा।'

राजाने कहा—'तुम्हें केवल एक शर्तपर छोड़ा जा सकता है—कोई तुम्हारी जमानत ले और वचन दे कि तुम न लौटे तो तुम्हारे स्थानपर वह फाँसीपर चढ़ेगा।'

राजाके निर्णयको सुनकर डेमनका मित्र पीथियस आगे आया। उसने डेमनकी जमानत ली। पीथियस नजरबंद किया गया और डेमन छोड़ दिया गया। दिन बीतने लगे, वर्ष पूरा होनेको आया; किंतु डेमनके लौटनेका कोई समाचार नहीं मिला। पीथियसको फाँसीपर चढ़ानेका समय आ गया। लोगोंने कहा—'पीथियस कितना मूर्ख है। भला प्राणदण्ड पानेके लिये कोई स्वयं उपस्थित हो सकता है।'

उधर पीथियस प्रसन्न था। उसे विश्वास था कि उसका मित्र अवश्य समयपर लौटेगा। परंतु वह सोच रहा था—'कितना अच्छा हो कि समुद्रमें तूफान आवे, डेमनका जहाज मार्ग भटक जाय। डेमन समयपर न पहुँचे। मेरे मित्रके प्राण बच जायँ और उसके बदले राजा मुझे फाँसीपर चढ़ा दे।'

सचमुच डेमन निश्चित समयतक नहीं लौटा। पीथियसको प्राणदण्ड देनेकी आज्ञा हो गयी। उसे वध-स्थलपर पहुँचाया गया। परंतु उसी समय हाँफता-दौड़ता डेमन वधस्थलपर पहुँचा और दूरसे ही चिल्लाया—'मैं डेमन हूँ! मेरे मित्रको फाँसी मत दो! मैं आ गया!'

डेमन चला था समयसे ही; किंतु उसका जहाज समुद्री तूफानमें पड़ गया। किसी प्रकार किनारे पहुँच-कर डेमन, जो भी सवारी मिली उसीसे, दौड़ा। उसका अन्तिम घोड़ा दौड़नेके वेगके कारण गिरकर मर गया था। डेमन कई दिनोंसे भूखा था, उसके पैरोंमें दौड़नेसे छाले पड़ गये थे। उसके बाल बिखर रहे थे। उसे एक ही धुन थी कि समयपर पहुँचकर अपने मित्रके प्राण बचा ले।

राजा इन दोनों मित्रोंका यह परस्पर प्रेम देखकर चकित हो गया। उसने डेमनका प्राणदण्ड क्षमा कर दिया और प्रार्थना करके स्वयं भी उनका मित्र बन गया। दोसे तीन सच्चे मित्र हो गये।—सु० सिं०

दो मित्रोंका आदर्श प्रेम

एक देशमें दो आदमी दुर्भाग्यसे गुलाम बन गये थे। एकका नाम एन्टोनिओ था और दूसरेका नाम रोजर। दोनों एक ही जगह काम करते, खाते-पीते तथा उठते-बैठते थे। धीरे-धीरे उनमें परस्पर घना प्रेम हो गया। छुट्टीके समय दुःख-सुखकी बातें करनेसे उनको गुलामीका असह्य दुःख कुछ कम जान

पड़ता था ।

वे दोनों समुद्रके किनारे एक पर्वतके ऊपर रास्ता खोदनेका काम प्रतिदिन करते थे । एक दिन एन्टोनिओने एकदम काम छोड़ दिया और समुद्रकी ओर नजर करके एक लंबी साँस छोड़ी । वह अपने मित्रसे कहने लगा—'समुद्रके उस पार मेरी बहुत-सी प्यारी वस्तुएँ हैं । प्रतिक्षण मुझे ऐसा लगता है कि मानो मेरी स्त्री और लड़के समुद्रके किनारे आकर एक दृष्टिसे इस ओर देख रहे हैं और यह निश्चय करके कि मैं मर गया हूँ, रो रहे हैं । मेरी इच्छा होती है कि मैं तैरकर उनके पास पहुँच जाऊँ ।' एन्टोनिओ जभी उस जगह काम करने जाता, तभी समुद्रकी ओर दृष्टि डालते ही उसके मनमें ये विचार उत्पन्न होते थे । बादको एक दिन एक जहाजको जाते देखकर उसने रोजरसे कहा—'मित्र ! इतने दिनों बाद अब हमारे दु:खोंका अन्त आ गया है । देखो, वह एक जहाज लंगर डालकर खड़ा है । यहाँसे दो-तीन कोससे अधिक दूरीपर नहीं है । हम समुद्रमें कूद पड़ें तो तैरते-तैरते उस जहाज-तक पहुँच जा सकते हैं । यदि नहीं पहुँच सकेंगे और मर जायँगे तो इस दासत्वकी अपेक्षा वह मौत भी सौगुनी अच्छी होगी ।'

यह सुनकर रोजरने कहा—'तुम इस तरह अपने-को बचा सको तो इससे मैं बड़ा सुखी होऊँगा । तुम देशमें पहुँच जाओगे तो मुझे भी अधिक दिन दु:ख नहीं भोगना पड़ेगा । यदि तुम सही-सलामत इस दु:खसे छूटकर घर पहुँच जाओ तो मेरे घर जाकर मेरे माँ-बापकी खोज करना । बुढ़ापेके कारण तथा मेरे शोकसे शायद वे मर गये हों । पर देखना, यदि वे जीते हों तो उनसे कहना कि—' इतना कहते-कहते एन्टोनिओने उसे रोक दिया और वह बोला—'तुम ऐसा क्यों सोच रहे हो कि मैं तुमको इस अवस्थामें अकेला छोड़कर जाऊँगा ? ऐसा कभी नहीं हो सकता, तुम और मैं जुदा नहीं । [illegible] ही मरेंगे ।' एन्टोनिओकी बात सुनकर [illegible] 'तुम जो कहते हो [illegible] नहीं जानता, इसलिये [illegible] हूँ !' एन्टोनिओने कहा—'[illegible] मेरी कमर पकड़ लेना । [illegible] बिना किसी अड़चनके तुमको [illegible] जाऊँगा ।' रोजरने कहा—'एन्टोनि ! [illegible] आपत्ति नहीं, पर कदाचित् [illegible] कमर छोड़ दूँ या खींचतान करके तुमको [illegible] इसलिये ऐसा करना जरूरी नहीं है । [illegible] होना होगा, वह होगा । तुम [illegible] करो और व्यर्थ समय न गँवाओ । [illegible] भेंट कर लें ।'

इतना कहकर रोजरने आँसूभरी [illegible] आलिङ्गन किया । तब एन्टोनिओने कहा—'[illegible] यह रोनेका समय नहीं, बार-बार ऐसा [illegible] प्राप्त होगा ।'

एन्टोनिओने इतना कहकर [illegible] सुननेकी बाट न जोहते उसको [illegible] गिरा दिया और अपने भी उसके [illegible] रोजरने समुद्रमें गिरते ही घबराकर [illegible] दी, पर एन्टोनिओने उसको [illegible] मेहनतसे अपनी कमर पकड़ा [illegible] जहाजकी ओर जाने लगा ।

उस जहाजके [illegible] कूदते हुए देखा था, पर [illegible] गुलामोंकी [illegible] लिये नौका लेकर आ रहे हैं । [illegible] बोला—'मित्र एन्टोनि ! [illegible] जाओ । [illegible] किन्तु [illegible]

तुम मेरी आशा छोड़कर अपना ही बचाव करो। नहीं तो वे हम दोनोंको पकड़कर वापस ले जायँगे।'

इतना कहकर रोजरने एन्टोनिओकी कमर छोड़ दी। पर उत्तम प्रेमका प्रभाव देखिये! एन्टोनिओने उसको कमर छोड़कर पानीमें डूबते हुए देखा और तुरंत ही उसको पानीसे बाहर निकालनेके लिये डुबकी मारी। थोड़ी देरतक वे दोनों पानीके ऊपर दीख न पड़े। इससे नौकावाले आदमी,—यह निश्चय न करके कि किधर जायँ—रुक गये। जहाजके आदमी डेकसे इस अद्भुत घटनाको देख रहे थे। उनमेंसे कुछ खलासी भी एक नावको समुद्रमें डालकर उनकी खोज करने लगे। उन्होंने थोड़ी देरतक चारों ओर बेकार प्रयत्न किया। फिर देखा कि एन्टोनिओ एक हाथसे रोजरको मजबूतीसे पकड़े हुए है और दूसरे हाथसे नौकाकी ओर जानेके लिये बहुत मेहनत कर रहा है। खलासियोंने यह देखकर दयासे गद्गद होकर अपनेमें जितना बल था, उतने डाँड़ मारना शुरू किया। देखते-देखते वे वहाँ पहुँच गये और उन दोनोंको पकड़कर उन्होंने नावमें चढ़ा लिया।

उस समय एन्टोनिओ इतना थक गया था कि मिनटभर और देर लगती तो वे दोनों पानीमें डूब जाते। 'तुम मेरे मित्रको बचाओ'—कहते-कहते वह अचेत हो गया। रोजर भी तबतक अचेत था, परंतु उसने कुछ ही क्षणोंमें आँखें खोलीं और एन्टोनिओको अचेत-अवस्थामें पड़ा देखकर वह बहुत ही व्याकुल हो गया। एन्टोनिओके अचेतन शरीरका आलिङ्गन करके वह आँसू बहाते हुए कहने लगा—'मित्र! मैंने ही तुम्हारा वध किया है। तुमने मेरी गुलामी छुड़ाने और मेरे प्राण बचानेके लिये इतनी मेहनत की, पर मेरी ओरसे उसका यही बदला मिला। मैं बहुत ही नीच हूँ। नहीं तो, तुम्हें मरा देखकर मैं क्यों जी रहा हूँ? तुमको खोकर अब मेरे जीनेसे क्या लाभ?'

इस प्रकार शोकातुर होकर वह एकदम खड़ा हो गया और यदि खलासी उसे बलपूर्वक रोक न लेते तो वह समुद्रमें कूद पड़ा होता। फिर वह बहुत ही विलाप और पश्चात्ताप करके कहने लगा—'क्यों तुमलोग मुझे रोकते हो? मेरे ही कारण इसके प्राण गये हैं।' इतना कहकर वह एन्टोनिओके शरीरके ऊपर पड़कर कहने लगा—'एन्टोनि! मैं जरूर तुम्हारा साथी बनूँगा। प्यारे खलासियो! तुम्हें परमेश्वरकी शपथ है। तुम अब मुझको न रोको। मुझे अपने मित्रका साथी बनने दो।' पर इतनेमें ही एन्टोनिओने एक लंबी साँस ली। रोजर उसे देखकर आनन्दसे अधीर हो उठा और उच्च स्वरसे बोला—'मेरा मित्र जीवित है। मेरा मित्र जीवित है। जगदीश्वरकी कृपासे अब-तक इसके प्राण नहीं गये हैं।' खलासी उसको होशमें लानेके लिये बहुत प्रयत्न करने लगे। थोड़ी देरके बाद एन्टोनिओने आँखें खोलकर अपने मित्रकी ओर दृष्टि डालते हुए कहा—'रोजर! तुम्हारी प्राण-रक्षा हो गयी—इसके लिये जगदीश्वरको धन्यवाद दो।' उसके अमृत-जैसे वाक्य सुनकर रोजर इतना प्रसन्न हुआ कि उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी।

थोड़ी देरमें वह नाव जहाजपर पहुँच गयी। जहाजके सभी आदमी खलासियोंके मुँहसे सारी बातें सुनकर उनके ऊपर बहुत स्नेह दिखलाने लगे। वह जहाज माल्टाकी ओर जा रहा था। वहाँ पहुँचनेपर दोनों मित्रोंको किनारे उतार दिया गया और वहाँसे वे अपने-अपने घर गये और सुखसे रहने लगे।

सद्भावना

ट्वायिन्सकी पोलैंडका बहुत बड़ा देशभक्त था; अपने आत्मचिन्तन और दार्शनिक विचारोंके लिये भी वह बहुत प्रसिद्ध था। लोग उसका बड़ा सम्मान करते थे।

एक दिन बड़ी भयानक जलवृष्टि हो रही थी। ट्वायिन्सकी अपने घरसे बाहर गया हुआ था। रास्तेमें उसकी एक मित्रसे भेंट हुई जो उसे देखकर आश्चर्य-चकित हो गया। बात यह थी कि ट्वायिन्सकी एक कुत्तेको बड़े प्यारसे थपथपा रहा था और कुत्ता कीचड़से लथपथ होकर उसके शरीरकी ओर उछल-उछलकर कपड़ोंको गंदा कर रहा था। ट्वायिन्सकी बहुत प्रसन्न दीखता था।

'भाई! आपका कुत्तेके प्रति यह बर्ताव मुझे अत्यन्त आश्चर्यचकित कर रहा है। यह आपके कीमती कपड़ोंको कीचड़से गंदा कर रहा है और इसको हटानेके बदले आप प्यार दे रहे हैं।' [illegible] सुनकर ट्वायिन्सकी हँस पड़ा।

'कुत्ता मुझे पहले [illegible] है, [illegible] आत्मीयता प्रकट की है; [illegible] मेरे पैरोंसे लिपट-लिपटकर [illegible]। इसकी भावनाएँ सराहनीय हैं। [illegible] मोहसे इसे हटा दूँ तो इसकी [illegible] धक्का लगेगा और बेचारेका [illegible]।' ट्वायिन्सकीने अपने [illegible]।

'कीमती कपड़ोंका [illegible] ही नहीं है। प्रत्येक प्राणी [illegible], उसके साथ आत्मवत् [illegible] शुभ कार्य और सद्भावना [illegible]। वास्तवमें यही भागवत जीवन है।' [illegible] प्रेमसे देखा और [illegible]।—[illegible]

'स्वर्ग ही हाथसे निकल जायगा'

यूरोपके इतिहासमें मार्टिन लूथरका नाम स्वर्णाक्षरोंमें अङ्कित है। वे अपने समयके बहुत बड़े आध्यात्मिक नेता थे; उन्होंने मध्यकालीन यूरोपमें धार्मिक क्रान्ति की थी। यूरोपियन राजाओं और सामन्तोंकी दृष्टिमें वे बड़े सम्मानित व्यक्ति थे।

एक समयकी बात है। लूथर टाउगरकी रानीके साथ भोजन कर रहे थे। रानीने उनके कार्योंकी प्रशंसा की और कहा कि 'क्या [illegible] चालीस वर्षोंतक जीवित रहें।'

'महोदया! मैं [illegible] स्वर्ग ही निकल जायगा।' [illegible] महात्मा लूथरके [illegible]।—[illegible]

प्रार्थनाका प्रभाव

लूसाने तबाकू पीनेकी आदत छोड़नेका अमित प्रयत्न किया, पर वह सफल न हो सकी। चालीस सालकी अवस्थामें पहुँचनेपर उसका मन तंबाकू पीनेमें इतना आसक्त हो गया कि उसे अन्य कोई पदार्थ अच्छा ही नहीं लगता [illegible] भगवान्से [illegible]

न-किसी दिन वे मुझे अपनी कृपासे धन्य करेंगे ही। वह नित्य एकान्तमें बैठकर घंटों कहा करती थी— 'हे भगवान्! मैं अपनी कमजोरियोंपर आजतक विजय नहीं प्राप्त कर सकी; मैं बहुत दुखी और चिन्तित हूँ।'

एक दिन लूसा आग ताप रही थी कि अचानक उसने आवाज सुनी —'तंबाकू पीना बंद करो।' 'क्या मेरे व्यसनका अन्त हो जायगा?' लूसाके मुखसे शब्द निकल पड़े। वह चौंक उठी।

'लूसा तंबाकू पीना बंद करो। हुक्का अलग रख दो।' आवाज उसके कानोंके अत्यन्त निकट आ गयी।

लूसा उठ पड़ी। उसने हुक्का अंगीठीके निकट ही काठकी एक आलमारीपर रख दिया। उसने सदाके लिये तंबाकू पीनेका त्याग कर दिया। तंबाकू पीनेवालोंको देखकर या उसकी गन्धसे भी वह कभी तंबाकूकी ओर आकृष्ट नहीं हो सकी।—रा० श्री०

जीवन-व्रत

'आपको अवश्य जाना चाहिये; सिकन्दर उदार है; अभी कल ही उसने पोरस (पुरु) महाराजके साथ राजाका-सा बर्तावकर जो उदारता दिखायी है, उसके कारण भारतीय इतिहासमें वह अमर हो गया।' महात्मा मन्दनीसने कालानूस (कल्याण) को अपने दर्शनसे धन्य करनेकी प्रेरणा दी। दोनों उच्च कोटिके संत थे। तक्षशिलासे तीन मीलकी दूरीपर नदी-तटके एक नितान्त निर्जन वनमें एकान्त-सेवन करते थे। मृगचर्म और मिट्टीके करवा तथा भिक्षाद्वारा प्राप्त अन्न ही उनके जीवन-निर्वाहके साधन थे। उनका आचरण अत्यन्त तपोमय था। यूनानी शासक सिकन्दरकी बड़ी इच्छा थी उनके दर्शनकी।

'सिकन्दरका अलंकार महती सेना है; संतमण्डलीसे उसका क्या काम है? वह नदी, पहाड़ और पृथ्वीपर शासन करनेवाला है; हमारा मन और आत्मापर शासन है। यह कदापि उचित नहीं है कि मैं उसके साथ भारतसे बाहर जाऊँ।' कालानूस इस तरह निवेदन कर ही रहे थे कि सिकन्दरने घोड़ेसे उतरकर दोनों संतोंका अभिवादन किया। यूनानी विजेता कुशके आसनपर बैठ गया।

'मैं समझता हूँ कि मेरे साथ आपको वह शान्ति नहीं मिलेगी जो आप भरतखण्डके पवित्र पञ्चनद देशमें प्राप्त कर रहे हैं, पर आप ही बतायें कि सुकरात, प्लेटो और अरिस्टाटिल (अरस्तू) तथा पीथागोरसका देश यूनान किस प्रकार भारतीय ज्ञानामृत-सागरमें स्नान कर सकेगा? आप मेरे लिये नहीं तो यूनानके असंख्य प्राणियोंको ज्ञान देनेके लिये अवश्य चलें। एक विदेशी जगद्गुरु भारतसे दूसरी भिक्षा ही क्या माँग सकता है?' सिकन्दरने संतकी कृपादृष्टिकी याचना की और मन्दनीसके संकेतपर कालानूसने सिकन्दरके साथ जानेकी स्वीकृति दे दी।

× × × ×

'ज्वराक्रान्त होना हमारे जीवनकी पहली घटना है, सिकन्दर!' तिहत्तर सालकी अवस्थावाले संतने फारसके शिविरमें अपनी बीमारीका विवरण दिया। जलवायु अनुकूल न होनेसे वे रुग्ण थे।

'पर आपका जीवन-व्रत तो अमित भयंकर है। यह तो आपके देशके महात्माओंका हठ मात्र है कि रुग्ण होनेपर शरीर-त्याग कर दिया जाय।' सिकन्दर बड़े आश्चर्यमें था।

'यह हठ नहीं, जीवनकी कठोर वास्तविकता है। हमारे सदाचार और ब्रह्मचर्य-पालनमें इतना बल है कि रुग्णता क्या—मृत्युको भी एक बार लौट जाना पड़ता है।' भारतीय महात्मा कालानूसने चिता प्रज्वलित करनेका संकेत किया।

'यह शरीर अपवित्र है, इसमें पवित्रतम चिन्मय तत्त्व—आत्मा (परमात्मा) का वास अब मेरे लिये सह्य नहीं है। रोग पापसे आते हैं। मैं अपने पाप-शरीरको सजीव नहीं रख सकता।' [illegible] बैठ गये। [illegible] लिये। —रा० श्री०

आप बड़े डाकू हैं

जिस समय सिकन्दर महान्‌की सेनाएँ दिग्विजय करती हुई सारे विश्वको मैसीदोनियाके राजसिंहासन-के आधिपत्यमें लानेका प्रयत्न कर रही थीं, ठीक उसी समय एक नाविकने सिकन्दरको अपनी निर्भीकतासे आश्चर्यचकित कर दिया था।

नाविकका नाम धीमेदस था। वह अपनी एक लंबी-सी नावपर बैठकर समुद्र-यात्रियोंके जहाजोंपर छापा मारकर उनके सामान आदि लूट लिया करता था। एक दिन अचानक वह पकड़ लिया गया और अपराधीके रूपमें सिकन्दरके सामने लाया गया।

'तुम्हारा यह काम पापपूर्ण है। दूसरोंको चोरी-से लूट लेना अच्छा नहीं कहा जा सकता है। तुम किस तरह मेरे राज्यमें समुद्रकी शान्ति भङ्ग करनेका साहस करते हो। तुम्हें बड़ी-से-बड़ी सजा मिलनी चाहिये। तुम डाकू हो।' सिकन्दरने क्रोध प्रकट किया।

'आपको ऐसी बात कहते लज्जा नहीं आती है! मुझसे बड़े—[illegible] हैं। [illegible] एक छोटी-सी नावका अधिपति हूँ और [illegible] पालनेके लिये लोगोंको लूट लेता हूँ। [illegible] होती है। पर आप तो बड़े-बड़े [illegible] हैं; रात-दिन विशाल [illegible] मृत्युके घाट उतारकर [illegible] रहते हैं। बड़े-बड़े देशोंको लूट [illegible] महान् क्षति होती है आपके द्वारा। [illegible] अन्तर केवल इतना ही है कि मैं [illegible] तो आप बड़े डाकू हैं। यदि [illegible] तो मैं आपसे भी बड़ा डाकू हो सकता हूँ।'

धीमेदसने यों सिकन्दरकी [illegible] की। सिकन्दर महान् उसकी निर्भीकता [illegible] से बहुत प्रभावित हुआ। उसने [illegible] दिया और एक बड़े नगरका अधिपति [illegible]। डाकूने अपना डकैतीका पेशा छोड़ दिया। —[illegible]

[illegible]

सिकन्दरकी मातृभक्ति

कहते हैं कि सिकन्दर अपने मित्रोंको अत्यन्त प्यार करता था। पर उसकी मातृभक्ति इतनी प्रबल थी कि वह उनसे हजारगुना माताकी प्रतिष्ठा करता था। एक बारकी बात है कि जब सिकन्दर बाहर था, तब अंटीपेटर नामक उसके एक मित्रने सिकन्दरको लिखा—'आपकी माताके हस्तक्षेपसे राजकार्यका परिचालन बड़ा कठिन हो गया है। उनका स्वभाव आप जानते ही हैं, वे तो हमेशा [illegible] करती रहती हैं।'

सिकन्दरने इस पत्रको पढ़ा और [illegible] दिया—[illegible] चिट्ठियोंको [illegible] नहीं जानता।'

कलाकारकी शिष्टता

प्राचीन समयकी बात है। यूनान अपनी कला और दर्शनके लिये दूर-दूरके देशोंमें प्रसिद्ध था। यूनानके कारिन्थ प्रदेशमें पेरियंडर नामका एक राजा था जो बहुत संगीत-प्रेमी, साहित्य-मर्मज्ञ और कलाविद् था। उसकी राजसभामें एरियन नामक एक गायक रहता था जो वीणावादनमें बहुत ही कुशल था। वह समय-समयपर राजाका मन अपनी संगीत-माधुरीसे बहलाया करता था। अचानक उसने अन्य देशोंके भ्रमणकी बात सोची और वह सिसली चला गया। वहाँ थोड़े ही समयमें वह बहुत धनी हो गया और सम्मानित व्यक्तियोंकी श्रेणीमें आ गया, पर इतनी समृद्धि और प्राकृतिक सौन्दर्यकी गोदमें निवास करनेपर भी उसका मन सिसलीमें नहीं लगा। कारिन्थके सम्मान और सरस वातावरणमें उसे जो सुख मिला करता था, उसकी विदेशमें उसे गन्ध-तक नहीं मिली।

× × × ×

'यह तो असाधारण धनी है। देखो न, इसके पास सोनेके सिक्कों और आभूषणोंसे भरी कितनी पेटियाँ हैं।' जहाज चलानेवालोंने आश्चर्य प्रकट किया। जहाज अपनी प्रबल गतिसे अथाह सागरका वक्ष चीरकर कारिन्थकी ओर बढ़ रहा था। समीरके मन्द-मन्द संचारसे प्रसन्न होकर अपनी वीणापर एरियन नये संगीतकी स्वरलिपि कर रहा था। अपने मित्र पेरियंडरके मनोरञ्जनके लिये नयी ध्वनि निकाल रहा था तारोंसे। मल्लाहोंने उसे घेर लिया और प्राण लेनेकी धमकी दी। उनकी आँखोंमें नाच रही थीं धनकी पेटियाँ।

'यदि तुम मेरे प्राण ही लेना चाहते हो तो मेरी एक प्रार्थना है। मैं समझता हूँ कि तुम्हें धन चाहिये। ये पेटियाँ तुम्हारी हैं। मुझे स्वतन्त्रतापूर्वक एक गीत गा लेने दो और इस समुद्रमें अपने ढंगसे प्राण-विसर्जन करने दो।' एरियनका निवेदन था। वह बहुत बढ़िया वस्त्र धारणकर अपने स्थानपर बैठ गया। वीणाके तारोंपर उसकी अँगुलियाँ मृत्यु-गीतकी प्रतिलिपि कर रही थीं। मल्लाहोंने उसे अनुमति दे दी। एरियन झूम-झूमकर बड़ी मस्तीसे वीणा बजाने लगा—रवि-रश्मियोंकी अरुणिमासे सागरकी चंचल लहरोंमें नयी शक्ति आ गयी थी, उनकी प्रदीप्ति बढ़ गयी थी। एरियन वीणा-वादन समाप्त करते ही समुद्रमें कूद पड़ा। लहरोंने उसको अपनी गोदमें छिपा लिया और जहाज तेज गतिसे आगे बढ़ चला। धनलोलुप मल्लाह निश्चिन्त और प्रसन्न थे।

× × × ×

'तुमलोगोंको मेरे मित्र एरियनका पता अवश्य होगा। वह सिसलीमें तुमसे मिलने आता रहा होगा। उसके अभावमें मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है।' पेरियंडरने मल्लाहोंसे पूछा। कारिन्थ पहुँचनेपर राजसभामें उपस्थित होनेका उन्हें आदेश दिया गया था।

'एरियन बहुत स्वस्थ और समृद्ध है। वह धन कमाकर ही कारिन्थ लौटेगा।' मल्लाहोंने उत्तर दिया। 'यहाँ देखो, यह कौन है।' राजाने मल्लाहोंको सहसा स्तब्ध कर दिया। राजमहलके एक कमरेसे बाहर निकलकर एरियनने उनको विस्मयमें डाल दिया।

इस प्रकार तुमलोग धनके लोभसे दूसरोंके प्राण लिया करते हो। कारिन्थका राजन्याय तुम्हें क्षमा नहीं कर सकता। समुद्रकी लहरोंकी सहायतासे एरियन कारिन्थ आ पहुँचा। राजाने मल्लाहोंके लिये मृत्यु-दण्डकी आज्ञा दी।

'ऐसा अपराध फिर कभी नहीं करेंगे हम। क्षमा कीजिये।' मल्लाहोंने एरियनकी ओर बड़ी करुण दृष्टिसे देखा।

'मैं इतना कठोर नहीं हूँ जितना तुम समझ रहे हो।

पहले ही पक चुकी थी; वे फसल काटकर ले जानेका अवसर खोज ही रहे थे कि विहारकी ओरसे खेत कटना आरम्भ हो गया ।

चोर बलपूर्वक खेतमें आ गये और बालकोंको खदेड़ दिया, पर कुंग नहीं गया । वह गंभीर होकर कुछ सोचने लगा । चोरोंने विचार किया कि यह अकेला क्या कर लेगा । उन्होंने फसल काटकर अनेक बोझे बनाये और सिरपर लादकर चलनेवाले ही थे कि कुंगके सम्बोधनसे ठहर गये ।

'भाइयो ! आपलोगोंकी अवस्था आधीसे भी अधिक समाप्त हो गयी । आप क्यों इस प्रकारके पाप-कर्म करते हैं ? सचाईसे पैसा कमाकर जीवनका निर्वाह करनेसे स्वर्ग मिलता है; अगले जन्ममें सुख मिलता है । पाप कमानेसे तो कहीं अच्छा भूखों मर जाना है ।' कुंगने चेतावनी दी ।

चोरोंने बोझे पटक दिये और वे बालककी ओर देखने लगे ।

'आपलोगोंने पहले जन्ममें अशुभ कर्म किये । दया, दान, पुण्य, परोपकार और सेवा आदिसे बहुत दूर रहे । अशुभ कर्मोंके परिणामस्वरूप इस जीवनमें आप दरिद्र पैदा हुए । मुझे आपलोगोंकी दशापर बड़ी दया आ रही है और साथ-ही-साथ यह सोचकर दुःख हो रहा है कि आप अपना अगला जन्म भी दुःखमय बना रहे हैं; इस जन्ममें शुभ कर्म करनेकी बात तो दूर रही; आप चोरी करने लगे और इस कुकर्मके बदले आपको अगले जन्ममें अनेक भीषण संकटोंका सामना करना पड़ेगा ।' कुंग इतना कहकर विहारकी ओर चला गया, पर उसका मन व्यथित था ।

चोरोंके आगे जमीन घूमने लगी । उनके नेत्रोंमें अँधेरा छा गया । वे कुंगके सत्य कथनसे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने सदाके लिये चोरी छोड़ दी ।—रा० श्री०

सभ्यता

फ्रान्सका राजा हेनरी चतुर्थ एक दिन पेरिस नगरमें अपने अङ्गरक्षकों तथा उच्चाधिकारियोंके साथ कहीं जा रहा था । मार्गमें एक भिक्षुकने अपनी टोपी सिरसे उतारकर मस्तक झुकाकर उसे अभिवादन किया । हेनरीने भी अपनी टोपी उतारकर सिर झुकाकर भिक्षुकको अभिवादन किया । यह देखकर एक उच्चाधिकारीने कहा—'श्रीमान् ! एक भिक्षुकको आप इस प्रकार अभिवादन करें, यह क्या उचित है ?'

हेनरीने सरलतासे उत्तर दिया—'फ्रान्सका नरेश एक भिक्षुक-जितना भी सभ्य नहीं, यह मैं सिद्ध नहीं करना चाहता ।'—सु० सिं०

देशभक्ति

'इंगलैंड नैपोलियन बोनापार्टकी निरङ्कुशता नहीं सह सकता है । माना, फ्रेंच क्रान्तिकारियोंने समता, स्वतन्त्रता और बन्धुताका प्रकाश फैलाया, पर नैपोलियन-ने अपनी साम्राज्यवादी कुत्सित मनोवृत्तिसे उसे कलङ्कित कर दिया है ।' इंगलैंडके सामुद्रिक बेड़ेपर महावीर नेलशनने पैर रक्खे । नेलशनका प्रण था कि या तो इस सामुद्रिक युद्धमें नैपोलियन हारेगा या मैं मृत्युका वरण कर लूँगा । स्पेन और फ्रांसकी सेनाएँ दहल उठीं ।

समुद्रकी नीली-नीली उत्ताल तरङ्गोंके वक्ष चीरकर अंग्रेजी बेड़ा आगे बढ़ रहा था; 'इंगलैंड अपने प्रत्येक निवासीसे कर्तव्य-पालनकी आशा करता है ।'—यह उसकी पताकापर अङ्कित था ।

'हाय हार्डी ! शत्रुओंने मेरा काम तमाम कर

दिया ।' नेलशन शत्रुकी गोलीसे घायल होकर लुढ़क पड़ा । जहाजके कमान हार्डीने उसे निम्नकक्षमें रक्खा । 'धाँय-धाँय' चारों ओर गोलियाँ बरसने लगीं ।

'हमारे वीर क्या कर रहे हैं, हार्डी ? इंग्लैंडका मुख सदा उज्ज्वल रहेगा, उनसे कहो ।' नेलशन अन्तिम श्वासें ले रहा था ।

'शत्रुके पंद्रह जहाजोंने झंडे झुका दिये ।' हार्डीने युद्धकी गति-विधिपर प्रकाश डाला ।

'बहुत अच्छा हुआ । भगवान्‌की कृपा है, हार्डी ! [illegible] जहाजोंका [illegible] । [illegible] विजयी होगा ।' नेलशन अचेत हो गया था ।

अचानक उसकी आँखें [illegible] खुल गयीं । अङ्ग-अङ्गमें भयानक वेदना और पीड़ा थी ।

'मुझे विदा दो, हार्डी ! भगवान्‌की कृपासे मैंने अपना कर्तव्य पालन किया । मेरा काम पूरा हो गया ।' नेलशनके दो-तीन श्वास शेष थे । हार्डीने उसका हाथ चूमा और नयनोंमें अश्रुदान होने लगा ।

'ईश्वर ! धन्यवाद है !! मेरा काम पूरा हो गया ।' नेलशनके प्राण निकल गये ।—रा० श्री०

कर्तव्य-पालन

फ्रांसकी विशाल सेनाने स्पेनके जारगोजा नगरको घेर लिया । नागरिकोंने प्राणरक्षाका कोई उपाय न देखकर किलेमें एकत्र होना उचित समझा । आक्रमणकारियोंने किलेमें खाद्य पदार्थ जानेसे रोक दिया । लोग भूखों मरने लगे । अन्तमें उन्होंने सामूहिक मोर्चेकी व्यवस्था की । फ्रांसके सेनापति लफब्रोरके सैनिक बड़ी तत्परतासे गोली बरसा रहे थे । नागरिकोंका मुखिया था जोजडे पेलफाक्स मेलजी ।

यह नहीं कहा जा सकता था कि विजयी किस पक्षके लोग होंगे, पर फ्रांसके सैनिकोंमें विशेष उत्साह था । उन्हें आशा थी कि हमलोग विजयी होंगे ।

'मैं आ गयी, घबराओ नहीं, वीर ! सत्य हमारी ओर है ।' उसने सहसा बंदूक अपने हाथमें ली घायल सैनिकके हाथसे, जो शत्रुकी गोलीका निशाना बनकर अपना अन्तिम श्वास तोड़नेके लिये बंदूकपर गिर पड़ा था । फ्रांसकी सेनाको विश्वास हो गया था कि उसके प्राणान्तसे किलेपर अधिकार हो जायगा । वह द्वाररक्षक था ।

'यह कौन आ गयी । कितना भीषण युद्ध कर रही है । यह तो साक्षात् रणकी देवी ही है ।' फ्रांसका सेनापति बोल उठा ।

'मैं मृत्यु हूँ तुमलोगोंकी । तुम [illegible] मोह छोड़ दो । स्पेनका प्रत्येक व्यक्ति [illegible] प्राण न्यौछावर कर देगा ।' मेरिया आगस्टीनके शब्द थे । वह शत्रुओंपर धुआँधार गोली बरसा रही थी किलेके प्रधान दरवाजेसे । फ्रांसीसी सेना देखकर [illegible] पड़ गये ।

× × × ×

'तुम जारगोजाकी देवी हो, आगस्टीन ! शत्रु किलेपर अधिकार कर लेते यदि तुमने अपना [illegible] पालन न किया होता ।' जारगोजा [illegible] मेरियाके प्रति कृतज्ञता प्रकट की ।

'यह तो मेरा कर्तव्य था, [illegible] देशके अन्नजलसे [illegible] उपयोग ही क्या होता [illegible] अग्नि-विभीषिकामें स्वाहा हो जाय ।' [illegible] कन्याकी बातसे लोग प्रसन्न हो उठे ।

'देवी आगस्टीनकी जय !' [illegible] मेरियाका अभिनन्दन किया ।

स्पेनके [illegible] आगस्टीनका [illegible] है ।—रा० श्री०

आनन्दघनकी खीझ

मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ। मो सौं कहत मोल कौ लीन्हौ, तू जसुमति कब जायौ ॥

श्रीनन्दरानी अपने प्राङ्गणमें कुछ गुनगुन गाती कन्हाईके कलेऊकी सामग्री एकत्र करने जा रही थीं। बड़ा चञ्चल है उनका श्याम। वह दो घड़ी भी घरमें नहीं रहता। बालकोंके साथ दिन-भर घूमता रहता है। परंतु उससे क्षुधा सही नहीं जाती। अभी दौड़ा आयेगा और दो क्षण भी माखन मिलनेमें देर हुई तो मचल पड़ेगा। एक बार कहीं मोहन रूठ गया तो फिर उसे मना लेना सरल नहीं होता।

'मैया! मैया!' सहसा पुकारता दौड़ा आया कन्हाई। मैया चौंक पड़ी; आज उसके लालके स्वरमें उल्लास क्यों नहीं? क्यों रोता-सा स्वर है मोहनका।

'तुझे किसने मारा है?' मैया चाहती थी कि श्याम उसकी गोदमें आ जाय। किंतु कन्हैया उसके सामने आकर खड़ा हो गया। लगभग ढाई वर्षका कृष्णचन्द्र, बिखरी अलकें, भालपर नन्हा-सा गोरोचन तिलक, नेत्रोंमें कज्जल, वक्षपर छोटे मोतियोंकी माला, कटिमें पतली-सी कछनी, धूलि-धूसरित अङ्ग। आज इसके बड़े-बड़े लोचन भरे-भरे-से हैं।

'दाऊ बहुत बुरा है। मैया! वह कहता है कि तू यशोदाका पुत्र नहीं है। नन्दरानीने तुझे मटकीभर दही देकर खरीदा है।' मोहन द्वारकी ओर इस प्रकार देखा मानो दाऊ पी खड़ा हो द्वारके।

'मैया! वह मुझे बहुत चिढ़ाता है। कहता कि व्रजराज और व्रजरानी तो गोरे हैं, तू साँव क्यों है? बता तो कि तेरा पिता कौन है? ते माता ही कौन है?' नन्हा कन्हाई बहुत रुष्ट रहा है आज बड़े भाईपर।

'दाऊ अकेला ही चिढ़ाता तो कोई बात थी, उसने सब सखाओंको सिखा दिया है। ताली बजाकर मेरी हँसी उड़ाते हैं। मैं उ साथ खेलने नहीं जाऊँगा।' परंतु मैया तो बोलती नहीं, इससे श्याम उसपर भी रुष्ट हुआ- 'तूने तो मुझे ही मारना सीखा है, दाऊको डाँटती भी नहीं।'

'मेरे लाल!' मैयाने देखा कि अब उस नन्हा कृष्ण मचलनेवाला है तो गोदमें खींच लि उसे। 'बलराम तो जन्मसे ही धूर्त है। वह चुगली करता है। तू जानता है न कि व्रज देवता गायें हैं! उन गायोंकी शपथ! मैं माता हूँ और तू मेरा लाल है।'

आज्ञापालन

'सीडलीट्जका पता चला ?' प्रशियाके सम्राट् फ्रेडरिक महान् वंशी-वादनमें मस्त थे। रातकी कालिमा अपने पूरे उत्कर्षपर थी। वे अपने शिविरमें बैठकर सोच रहे थे युद्धकी गतिविधि।

'आज सेनापति किसी कठिन मोर्चेपर उलझ गये हैं। उनका कहना है कि पोमेरनिया (यूरोपका एक जनपद) के युद्धमें विजय प्राप्त करके ही रहेंगे। वे इस समय नहीं उपस्थित हो सकेंगे, सम्राट् !' दूतने अभिवादन किया।

'हमें इस जार्नडार्फ ग्राममें शिविरमें रहते बहुत दिन हो गये और हमारे रूसी शत्रु अभी रणभूमिमें डटे हैं; फिर भी सेनापतिने मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किस तरह किया ? मेरी आज्ञा न माननेका अर्थ है मृत्यु।' सम्राट्ने वंशी-वादन बंद कर दिया। रात बढ़ती जा रही थी; चारों ओर भयानक नीरवता थी।

'मुझे सीडलीट्जका सिर चाहिये।' सम्राट्का इतना कहना था कि चरके हाथसे मसाल नीचे गिर पड़ी; वह काँपने लगा। 'मेरी आज्ञाके उल्लङ्घनका मूल्य केवल सिर है।' फ्रेडरिककी आँखें लाल हो गयीं। चर शिविरके बाहर हो गया। रात साँय-साँय कर रही थी।

× × × ×

युद्ध अपनी चरम सीमापर था। रूसी सैनिक प्रशाके (जर्मनी) सैनिकोंका डटकर सामना कर रहे थे। सेनापति सीडलीट्ज एक क्षणके लिये भी असावधान नहीं थे। दूत आ पहुँचा। सेनापति आश्चर्यचकित हो गये फ्रेडरिककी आज्ञासे।

'सम्राट्से कहो कि [illegible]
सिर उनकी [illegible]
पर इस समय युद्ध[illegible]
सेवाके लिये है [illegible]
इस पवित्र कार्यसे [illegible]
कर सकती।' [illegible]
सेनाको आगे बढ़नेका [illegible]

× × ×

'इन विजयका [illegible]
सम्राट्ने शिविरमें [illegible]
किया।

'आपके [illegible]
आपकी [illegible]
स्वीकार कीजिये।' [illegible]

'इस विजयने [illegible]
मृत्युको [illegible]
जनता पुष्प-वृष्टि करेगी।' [illegible]
सीडलीट्जको गले [illegible]
सिहर उठे।

'मैंने तुमको [illegible]
तुमने देशके हितके लिये [illegible]
मेरी [illegible]
पर यूरोपके इतिहासमें [illegible]
[illegible]
सम्राट् प्रसन्न [illegible]
[illegible]

भ्रातृप्रेम

रूसो उस समय बालक था। रविवारके दिन पाठशालाकी छुट्टीमें उसे अपने चाचाके यहाँ गये बिना चैन नहीं पड़ती थी। उसके चाचाका एक [illegible]
[illegible]

समय फेजीका इधर ध्यान नहीं था। उसने उसी मशीन-पर पहिया घुमा दिया। फल यह हुआ कि रूसोकी अँगुलियाँ पिस गयीं, नाखून फट गये, रक्तका फव्वारा छूट पड़ा। वह चीख उठा।

फेजी चौंका। उसने झटपट पहियेको उलटा घुमाया। रूसोकी अँगुलियाँ निकलीं मशीनसे। डरा और घबराया फेजी दौड़कर रूसोके पास आया और अत्यन्त कातरतापूर्वक बोला—'भैया! चिल्लाओ मत! मेरे पिता सुन लेंगे तो मुझे बहुत पीटेंगे। जो होना था, वह तो हो ही गया।'

रूसो बालक था। उसकी पीड़ा असह्य थी; किंतु उसने बलपूर्वक मुख बंद कर लिया। फेजीके कंधे-पर उसने मस्तक रख दिया। केवल उसके नेत्रोंसे आँसूकी धारा चलती रही। दोनों बालक वहाँसे पानीके पास गये। बहुत देर धोनेपर रूसोकी अँगुलियों-से रक्त जाना बंद हुआ। एक कपड़ा फाड़कर फेजीने अँगुलियोंपर मिट्टीकी पट्टी बाँध दी।

'भैया! तुम्हारे घरके लोग क्या कहेंगे?' फेजी अभीतक अत्यन्त चिन्तित था।

'तुम कोई चिन्ता मत करो।' रूसोने उसे आश्वासन दिया।

'तुम्हारे हाथको क्या हुआ है?' स्वाभाविक था कि घरके लोग और दूसरे लोग भी हाथमें पट्टी बँधी देखकर रूसोसे पूछते।

'मेरी भूलसे चोट लग गयी, हाथ कुचल गया।' रूसोने सबको गोलमोल उत्तर दिया। पूरे चालीस वर्ष-तक किसीको इस घटनाका पता नहीं लगा। —सु० सिं०

उत्तम कुलाभिमान

इंग्लैंड-नरेश जेम्स द्वितीयका पौत्र प्रिन्स चार्ल्स युद्धमें जार्ज प्रथमके सेनापतिसे पराजित हो गया था और प्राण बचानेके लिये भाग गया था। उसे पकड़ने या मारकर उसका मस्तक लानेवालेको बहुत बड़ा पुरस्कार देनेकी घोषणा हुई थी। उस समय शाही सेनाके एक कप्तानने एक हाईलेंडर बालकसे पूछा—'तुमने इस मार्गसे प्रिन्स चार्ल्सको जाते देखा है?'

उस बारह वर्षके बालकने कहा—'देखा तो है; किंतु बताऊँगा नहीं।'

कप्तानने तलवारकी म्यानसे बालकको पूरे जोरसे मारा और गरज उठा—'तुझे बतलाना पड़ेगा।'

बालक चीख उठा; किंतु बोला—'मारकी चोटसे मैं चीखा अवश्य हूँ; किंतु स्मरण रखिये कि मेरा जन्म 'मेक्फर्सन' वंशमें हुआ है। विश्वासघात करके विपत्ति-में पड़े राजाके शत्रुको पकड़वा देनेका निन्दित काम मुझसे कदापि नहीं हो सकता।'

कप्तान बालककी तेजस्विता तथा निर्भयतासे इतना प्रसन्न हुआ कि उसने बालकको पुरस्कारस्वरूप एक चाँदीका क्रास दिया। इस क्रासको मेक्फर्सन वंश-के लोग आज भी सम्मानपूर्वक सुरक्षित रखते हैं। —सु० सिं०

अपनी प्रशंसासे अरुचि

एक बार लियेन्स नगरके विद्वानोंने एक लेखके लिये पुरस्कारकी घोषणा की। उस समय नेपोलियन युवक थे। पुरस्कार-प्रतियोगितामें उन्होंने भी लेख भेजा और उनका लेख ही प्रथम पुरस्कारके योग्य माना गया।

सम्राट् होनेपर नेपोलियनको यह बात भूल चुकी थी; किंतु उनके मन्त्री टेलीरान्तने एक विशेष व्यक्तिको भेजकर लियेन्ससे नेपोलियनके उस लेखकी मूल प्रति मँगायी। लेखको सम्राट्के आगे रखकर उसने हँसते हुए

पूछा—'सम्राट् इस लेखके लेखकको जानते हैं ?'

टेलीरान्तको आशा थी कि उसके इस कार्यसे सम्राट् उसपर प्रसन्न होंगे और वह पुरस्कार पायेगा; किंतु नेपोलियनने [illegible] लेखको उठाकर उसने [illegible] महोदय तो अपने सम्राट्‌ [illegible] —[illegible]

संयम मनुष्यको महान् बनाता है

अपने अध्ययनके दिनोंमें नेपोलियनको एक बार अक्सोनी नामक स्थानमें एक नाईके घर रहना पड़ा था। नेपोलियन बहुत सुन्दर युवक थे और उनकी आकृति सुकुमार थी। नाईकी स्त्री उनपर मुग्ध हो गयी और उन्हें अपनी ओर आकर्षित करनेके प्रयत्न करने लगी। किंतु नेपोलियनको तो अपनी पुस्तकोंसे अवकाश ही नहीं था। वह स्त्री जब उनसे हँसने-बोलनेका प्रयत्न करती, तभी उन्हें किसी पुस्तकको पढ़नेमें निमग्न पाती।

वही नेपोलियन जब देशके प्रधान सेनापति चुने जा चुके, तब फिर उस स्थानमें एक बार गये। नाईकी स्त्री दूकानपर बैठी थी। वे उसके सामने जा खड़े हुए और बोले—'तुम्हारे यहाँ एक बोनापार्ट नामका युवक रहता था, कुछ स्मरण है तुम्हें उसका ?'

नाईकी स्त्री हँसकर बोली—'[illegible] महोदय ! ऐसे नीरस व्यक्तिकी [illegible] चाहती। उसे न गाना [illegible] मुँह भर मीठी बात [illegible] पुस्तक, पुस्तक और पुस्तक—[illegible] कीड़ा था।'

नेपोलियन हँसे—'ठीक [illegible] ही मनुष्यको महान् बनाता है। [illegible] रसिकतामें उलझ गया होता तो [illegible] होकर आज तुम्हारे सामने [illegible]'

—[illegible]

मानवता

एकमेलके युद्धके बाद नेपोलियन आस्ट्रियाकी राजधानी वियना नगरके पास पहुँचे। उन्होंने संधिका झंडा लेकर एक दूत नगरमें भेजा; किंतु नगरके लोगोंने उस दूतको मार डाला। इस समाचारसे नेपोलियन क्रुद्ध हो उठे। उनकी अपार सेनाने चारों ओरसे नगरको घेर लिया। फ्रांसीसी तोपें आग उगलने लगीं। नगरके भवन ध्वस्त होने लगे।

सहसा नगरका द्वार खुला और एक दूत संधिका झंडा लिये निकला। नेपोलियनने दूतका सम्मान किया। उस दूतने कहा—'आपकी तोपें नगरके केन्द्रमें जहाँ गोले गिरा रही हैं, वहाँ समीप ही राजमहलमें हमारे सम्राट्की प्यारी पुत्री बीमार पड़ी है। कुछ और गोला-बारी हुई तो सम्राट् अपनी [illegible] चले जानेको विवश होंगे।'

नेपोलियनके सेनापतियोंने [illegible] विजयी होनेवाले हैं। [illegible] युद्धनीतिकी दृष्टिसे [illegible]

नेपोलियन बोले—'युद्धनीति [illegible] किंतु मानवता [illegible] दया की जाय।'

[illegible] सेना भी नेपोलियनकी [illegible]

सद्भाव

सम्राट् नेपोलियन युद्धमें पराजित हो गये थे। अंग्रेजोंने उन्हें बंदी बना लिया था। एक अंग्रेजी जहाजमें वे सेंट हेलेना द्वीप भेजे जा रहे थे। जहाजके छोटे कर्मचारी नाविक आदि फ्रान्सीसी भाषा बोल-समझ लेते थे। अनेक बार नेपोलियन उनसे दुभाषियेका काम लेते थे। एक बार एक नाविकसे उन्होंने कुछ देर बातें कीं और अन्तमें बोले—'कल तुम मेरे साथ भोजन करना।'

बेचारे नाविकके लिये यह अकल्पित बात थी। जहाजके ही कप्तान आदि उच्च कर्मचारी उसे भोजनके लिये अपनी मेजपर नहीं बैठने दे सकते थे, फिर फ्रान्सके सम्राट्के साथ भोजन करनेकी बात तो बहुत बड़ी थी। उसने कहा—'आपकी उदारताके लिये धन्यवाद! परंतु जहाजके अधिकारी ऐसा होने नहीं देंगे।'

नेपोलियनने कहा—'मैं स्वयं पूछता हूँ।'

नेपोलियनके पूछनेपर जहाजके कप्तानने कहा—'जब आप स्वयं उसके साथ भोजन करना चाहते हैं, तब इसमे कोई बाधा नही होगी।'

उस नाविकको नेपोलियनने अपने साथ भोजन कराया, इससे उसे कितनी प्रसन्नता हुई होगी, यह समझा जा सकता है।—सु० सिं०

अद्भुत साहस

नेपोलियन एल्बा छोड़कर जब पारिस्की ओर जा रहे थे, तब उनके एक सेनापति मरचेराने छः हजार सेना लेकर उनका मार्ग रोका। वह नेपोलियनको समाप्त कर देना चाहता था। नेपोलियनके साथ भी सेना थी और वह इतनी कम नहीं थी कि सरलतासे पराजित की जा सके; किंतु नेपोलियनने कहा—'मैं अपने ही देशवासियोंका रक्त नहीं बहाना चाहता।'

अपनी सेना छोड़कर नेपोलियन घोड़ेपर चढ़कर अकेले शत्रुसेनाकी ओर चल पड़े। लोग हक्के-बक्के देखते रहे; किंतु नेपोलियनने तो शत्रुसेनासे सौ हाथ दूर आकर घोड़ा भी छोड़ दिया और वे पैदल ही आगे बढ़े। इस बार वे केवल दस हाथ दूर रह गये शत्रुसेनासे।

शत्रुसेनापतिने नेपोलियनको लक्ष्य करके अपनी सेनाको गोली चलानेकी आज्ञा दी। एक अंगुली हिलती और फ्रांसका भाग्य बदल जाता; किंतु कोई अंगुली नहीं हिली। सेनापतिके आदेशपर सैनिकोंने ध्यान ही नहीं दिया। अब तो नेपोलियनने गम्भीर स्वरमें कहा—'सैनिको! तुममेंसे कोई अपने सम्राट्की हत्या करना चाहे तो अपनी इच्छा पूरी कर ले। मैं यहाँ खड़ा हूँ।'

कोई बोला नहीं। सैनिकोंने बंदूके झुका दीं और एक-एक करके उन्हें पृथ्वीपर गिराने लगे। पूरी सेना स्वयं निःशस्त्र हो गयी। सैनिक पुकार रहे थे—'सम्राट् नेपोलियनकी जय!'

नेपोलियनने एक बूढ़े सैनिककी दाढ़ी आदरपूर्वक हिलाकर कहा—'तुमने मुझे मारनेको बंदूक उठायी थी?' सैनिकके नेत्र भर आये। उसने अपनी बंदूक दिखा दी। बंदूकमें गोली थी ही नहीं, पूरी सेनाने बंदूकोंमें केवल शब्दमात्र करनेके लिये बारूद भर रक्खी थी।—सु० सिं०

भारको सम्मान दो

नेपोलियन महान् सम्राट् होनेके अनन्तर एक महिलाके साथ पेरिसमें घूमने निकले थे। वे एक पतले रास्तेमे जा रहे थे। महिला आगे थीं कुछ पैंड। सामनेसे एक मजदूर भारी भार लिये आ रहा था। महिलाको अपने उच्च कुल, धन और पदका गर्व था और इस समय तो वे बादशाहके साथ थीं। एक मजदूरके लिये वे कैसे मार्ग छोड़ देतीं। बीच मार्गसे वे ऐसे चली जा रही थीं जैसे मजदूरको उन्होंने [illegible] मार्गके एक ओर हट [illegible] महिलाको खींचा—'मैडम! [illegible] सम्मान दो।'

जिनके सिरपर भार है [illegible] हल्का। वे सम्माननीय हैं, [illegible] एक वाक्यमें समझा दी।—[illegible]

न्यूटनकी निरभिमानता

लन्दनके वेस्ट मिनिस्टरके विशाल मन्दिरमें आइजक न्यूटनकी समाधि है। वहाँ बहुत-से स्त्री-पुरुष और बच्चे उसकी समाधिके पास जाकर कुछ क्षण रुक जाते हैं, कुछ चिन्तन करते हैं; क्योंकि उसे बड़ा भारी प्रतिभाशाली और चिन्तनशील व्यक्ति समझते हैं और वह था भी ऐसा ही।

न्यूटनका जन्म १६४२ के २५ वीं दिसम्बरको हुआ था। दुनिया भरकी विपत्तियोंके बावजूद भी उसने केवल बाईस वर्षकी अवस्थामे ही (Binomeal theorem) बीजगणितके द्विपद सिद्धान्तका आविष्कार किया था। उसने प्रकृतिका गम्भीर अध्ययन किया और 'गुरुत्वाकर्षण' (The force of gravitation) आदि सिद्धान्तोंका आविष्कार किया। सूर्यकी किरणोंमें सात रंग क्यों हैं। सूर्य-चन्द्रमाकी क्षीणता और पूर्णताके कारण समुद्रमें ज्वार-भाटा क्यों होता है; ये सभी गुरुत्वाकर्षणसिद्धान्तके अन्तर्गत समझे जाते हैं। न्यूटनकी विद्या-बुद्धिपर सारे इंगलैंडको गर्व था और है। [illegible] स्वयं अपनी विद्या-बुद्धिका कोई गर्व न था, [illegible] अहंकार न था।

न्यूटनको एक दिन एक [illegible] बड़ी भारी प्रशंसा की और उसकी [illegible] कण्ठसे सराहना की।

न्यूटनने कहा—'अरे! (तुम [illegible] हो)—मैं तो इस [illegible] विशाल समुद्रके किनारे बैठा हुआ [illegible] चुनता रहा।' अर्थात् [illegible] मैंने प्रवेश ही नहीं किया*। [illegible]

"Alas! I am only like a ch[illegible] pebbles on the shore of the [illegible] truth." I. N.

(F. J. Gould's Youth's [illegible])

—[illegible]

---

* अपने यहाँ महाराज भर्तृहरिकी उक्ति भी ऐसी ही है—

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं तदा [illegible]

यदा किंचित्किंचिद् बुधजनसकाशादवगतं तदा मूर्खोऽस्मीति [illegible]

एक अन्य मुसलिम कविका भी यही कुछ कहना है—

'जाना था कि इल्मसे कुछ जानेंगे [illegible]

गरीबोंकी उपेक्षा पूरे समाजके लिये घातक है

स्काटलैंडके एक नगरमें विपत्तिकी मारी एक दरिद्र स्त्री आयी। उसके पास न रहनेको स्थान था और न भोजनको अन्न। वह बुढ़िया हो चुकी थी, इससे मजदूरी करनेमें भी असमर्थ थी। उसने घर-घर भटककर शरण चाही कि अस्तबलके ही एक कोनेमें उसे कोई आश्रय दे दे; किंतु किसीने उसकी दुर्दशा देखकर भी दया नहीं की। उसे नगरके बाहर एक खुले स्थानमें पड़े रहना पड़ा। भूख और सर्दीके मारे वह बीमार हो गयी। भला दरिद्रकी चिकित्सा कौन करता, बीमारी बढ़ती गयी और अन्तमें वह छूत फैलनेवाली बीमारीमें बदल गयी।

वह दरिद्र वृद्धा तो मर गयी, किंतु उसके शरीरमें रोगके जो कीटाणु उत्पन्न हुए थे, उन्होंने पूरे नगरमें वह रोग फैला दिया। ऐसा घर कोई कदाचित् ही बचा हो जिसमें उस रोगसे उस समय कोई मरा न हो। नगरमें हाहाकार मच गया।

अंग्रेज विद्वान् कार्लाइलने इस घटनाके सम्बन्धमें लिखा है—'इन धनवानोंने तो जीवनमें उस दरिद्र नारीको अपनी बहिन स्वीकार नहीं किया था; किंतु उसकी मृत्युके पश्चात् उन्हें स्वीकार करना पड़ा कि सचमुच वह उनकी भगिनी थी; क्योंकि उसके सुख एवं स्वास्थ्यमें ही पूरे नगरका सुख और स्वास्थ्य संनिहित था।'—सु० सिं०

लोभका बुरा परिणाम

विचित्र बाँसुरीवाला

जर्मनीके बर्न्सवीक प्रदेशमें प्रमुख नगर है नोवर। इसके पास ही हैमेलिन नामका एक शहर है। इसकी एक ओर तो हैमेल नामकी छोटी नदी है, पर दक्षिणकी ओर बेसर नदी बहुत बड़ी है। पहले यह और भी गहरी तथा चौड़ी थी। यह नगर अपनी किलेबंदीके लिये प्रसिद्ध रहा है। आजसे प्रायः ६०० वर्ष पूर्व सन् १३७६ की २२ जुलाईको वहाँ एक बड़ी विचित्र घटना घटी थी। वहाँ चूहे इतने अधिक बढ़ गये थे कि लोग उनसे बेतरह तंग आ गये थे। बिल्ली और कुत्तेतक उनसे परेशान हो रहे थे और उनकी कोई चिकित्सा सफल नहीं हो रही थी।

अन्तमें वे लोग टाउनहालमें एकत्र हुए और एक स्वरसे बोले—'हमलोगोंका मेयर (प्रशासक) किसी कामका व्यक्ति नहीं है। हमारी विपत्तिका इसे कोई ध्यान नहीं है। अतएव इसे बंद करके कहीं भेज देना चाहिये अथवा नदीमें डुबो देना चाहिये।' उनके इस प्रस्तावको सुनकर प्रशासक तथा कारपोरेशन (सभा) का कलेजा काँप उठा। पर भगवत्कृपासे उसी क्षण एक विचित्र वेषधारी बाँसुरी बजानेवाला व्यक्ति वहाँ आया। उसे देखते ही प्रशासकने बड़ी व्याकुलतासे उसका स्वागत किया। बजानेवालेने कुशल-प्रश्नके द्वारा सब कुछ जानकर कहा—'मैं आपकी इस विपत्तिको तत्क्षण दूर करनेमें समर्थ हूँ; क्योंकि पृथ्वीपरके सारे जीवोंको मैं आकृष्ट कर सकता हूँ। अभी हालमें ही टाराटरीके राजाको मैंने मच्छरोंके कष्टसे मुक्त किया है। साथ ही एशियामें (भारत) निजामका चमगादड़ोंसे पिंड छुड़ाया है। पर पहले यह तो बतलाइये कि इसके बदले आपलोग मुझे देंगे क्या? क्या एक सहस्र (गिल्डर) मुद्राएँ आप मुझे दे सकते हैं?' इसपर मेयर तथा कारपोरेशनके लोग चिल्ला उठे—'एक सहस्र क्या हमलोग पचास सहस्र मुद्रा दे देंगे। आप चूहोंको भगाइये।'

बेचारे वंशीवालेने अपनी बाँसुरी उठायी। पहले तो वह तनिक मुसकराया, फिर अपनी बाँसुरीको उसने अपने ओठोंपर लगाया और धीरे-धीरे शहरकी गलियोंमें चलना आरम्भ किया। वह जैसे-जैसे बाँसुरी बजाते हुए चलता था, पीछेसे चूहोंकी पक्तियाँ उसका अनुगमन करती थीं। अन्तमें धीरे-धीरे नगरके सारे चूहे उसके पीछे लग गये और वह वेसर नदीमें प्रवेश कर गया। सारे चूहे नदीमें डूबकर नष्ट हो गये, पर एक चूहा उनमें बड़ा हृष्ट-पुष्ट था, वह किसी प्रकार तैरकर पार कर गया। सभी लोग इस तमाशेको देख रहे थे। ज्यों ही यह विपत्ति किनारे लगी, प्रशासकने लोगोंसे चिल्लाकर कहा—'अरे दौड़ो, जाओ, चूहोंके सारे बिलोंको अब बंद कर दो और उनके रहनेके स्थानोंको तोड़-फोड़ दो।' तबतक बाँसुरीवालेने वहाँ पहुँचकर पूर्व प्रतिश्रुत एक हजार मुद्राएँ माँगीं।

'एक हजार गिल्डर ?' मेयरकी आँखें लाल हो उठीं। 'मित्र ! हमलोगोंको धोखा नहीं दिया जा सकता। चूहे तो हमारी आँखोंके सामने ही नदीमें लय हो गये। अब उनका पुनः आना असम्भव है। हजार गिल्डरकी बात तो हमारी मजाक मात्र था। आओ, पचास मुद्राएँ जलपानके लिये तुम्हें दे दें।'

बाँसुरीवाला बोला—'देखो, खेल मत करो। मैं क्षण भर भी नहीं रुकूँगा; क्योंकि दोपहरके भोजनके समय मैंने खलीफासे बगदाद पहुँचनेकी प्रतिज्ञा की है। उस बेचारेको बिच्छुओंने परेशान कर रक्खा है और जो तुम यह सोच रहे हो कि मैं अब तुम्हारा बुरा ही क्या कर लूँगा तो मैं दूसरे प्रकारकी बाँसुरी भी बजाना जानता हूँ। याद रक्खो, इस लोभका बहुत बुरा परिणाम होगा। वचन देकर यों मुकर जाओगे तो तुम्हें बुरी तरह रोना पड़ेगा।'

इसपर प्रशासक बड़ा लाल-पीला हुआ। उसने कहा—'देखो, तुम-जैसे अशिष्ट तथा तुच्छ व्यक्तिका तिरस्कार हम [illegible] नहीं। [illegible] अपनी बाँसुरी बजाकर [illegible] बाँसुरी बजाते [illegible] नहीं बिगड़ता।'

बाँसुरीवालेने फिर एक [illegible] फिर बाँसुरी बजायी। [illegible] बालिकाएँ उसके पीछे हो [illegible] सब देख रहा था। न तो [illegible] न हिलने-डुलनेकी। बाँसुरी[illegible] रहा था और सभी बालक उसके [illegible] नदीके किनारेसे होकर [illegible] मुड़ा। अब मेयर प्रसन्न[illegible] समझा—चलो, यह [illegible] न सकेगा। पर आश्चर्य ! ज्यों ही [illegible] पहुँचा, उसमें एक दरवाजा [illegible] वाला उन बच्चोंके साथ उसमें [illegible] सबके अंदर घुसते ही वह दरवाजा [illegible] गया। केवल एक लँगड़ा लड़का [illegible] गया था, उनके साथ न जा सका।

हैमेलिनके लोगोंके [illegible] उन्होंने लाख मिन्नतें मानी। [illegible] था। यह कथा बच्चोंको [illegible] खुदी वर्तमान है। कहते हैं कि [illegible] भिन्न स्वभावके परदेशी [illegible] है। उनका कहना है कि [illegible] कारागृहसे निकले थे, [illegible] नगरके निवासी थे। [illegible] वे नहीं जानते, [illegible] हो ही जाता है कि वे [illegible] इनके [illegible] उससे [illegible]

([illegible])

उसकी मानवता धन्य हो गयी

पिछली शताब्दीकी बात है। एक फ्रेंच व्यापारी जिसका नाम लबट था, दैवयोगसे बीमार पड़ गया और आडर नदीके तटपर एक रमणीय स्थानमें रहने लगा।

एक दिन सबेरे-सबेरे उसने देखा कि नदीके दूसरे किनारेपर एक सवार अपने घोड़ेसे उलझ रहा था। कभी वह लगाम ढीली करता था तो कभी कड़ी करते ही घोड़ा दोनों अगेवाले पैर उठाकर खड़ा होनेका यत्न करता था। सवारका जीवन खतरेमें था। अचानक वह घोड़ेद्वारा उछाल दिया गया और नदीकी मध्यधारामें डूबने लगा। बूढ़े व्यापारीसे यह दृश्य नहीं देखा गया। डूबते नवयुवककी प्राण-रक्षाके लिये वह नदीमें कूद पड़ा। यह मानवताकी पुकार थी। उसे अपने कीमती वस्त्रोंका कोई ध्यान नहीं था। यद्यपि वृद्ध व्यापारी अच्छा तैराक था तथापि डूबते हुए युवकको बचाना उस समय आसान काम नहीं था। उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट और भारी था।

'ऐसा कदापि नहीं हो सकता कि मेरे रहते एक असहाय मानवके प्राण चले जायँ।' बूढ़ेने फिर हाथ-पैर मारे और उसे किनारेतक लानेमें सफल हो गया।

'पवित्र मानवता! मै तुम्हारा कितना ऋणी हूँ। मैंने तुम्हारे नामपर अपने पुत्रके ही प्राण बचा लिये।' वह आश्चर्यचकित हो उठा। उसका हृदय प्राणिमात्रके लिये करुणा और दयासे पिघल गया। वृद्ध लबटने अपने नौजवान बेटेको छातीसे लगा लिया।—रा० श्री०

प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरेका सेवक है

अफ्रीकामें कमेराका हब्शी राजा बहुत अभिमानी था, वह ऐश्वर्यके उन्मादमें सदा मग्न रहता था। लोग उससे बहुत डरते थे और उसकी छोटी-से-छोटी इच्छाकी भी पूर्ति करनेमें दत्तचित्त रहते थे।

एक दिन वह अपनी राजसभामें बैठकर डींग हाँक रहा था कि सब लोग मेरे सेवक हैं। उस समय एक वृद्ध हब्शीने, जो बड़ा बुद्धिमान् और कार्यकुशल था, उसके कथनका विरोध किया। उसका नाम बोकबार था।

'प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरेका सेवक है।' वृद्धके इस कथनसे राजा सिरसे पैरतक जल उठा।

'इसका आशय यह है कि मैं तुम्हारा सेवक हूँ। मुझे विवश कर दो अपनी सेवा करनेको। मैं तुम्हें सौ गायें पुरस्कारस्वरूप प्रदान करूँगा। यदि तुम शामतक मुझे अपना सेवक नहीं सिद्ध कर सकोगे तो मैं तुम्हें मार डालूँगा और लोगोंको समझा दूँगा कि मै तुम्हारा मालिक हूँ।' कमेरानरेशने बोकबारको धमकी दी।

'बहुत ठीक' बोकबारने प्रणाम किया। वृद्ध होनेके नाते चलनेके लिये वह अपने पास एक छड़ी रखता था। ज्यों ही वह राज-सभासे बाहर निकल रहा था त्यों ही एक भिखारी आ पहुँचा।

'मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं इस भिखारीको कुछ खानेके लिये दूँ।' बोकबारने राजासे निवेदन किया।

दोनों हाथमें भोजनकी सामग्री लेकर वह बुढ़ापेके कारण राजाके निकट ही थर-थर काँपने लगा। बगलसे छड़ी जमीनपर गिर पड़ी और उसके कपड़ेमें उलझ गयी तथा वह बझकर गिरनेवाला ही था कि उसने राजासे छड़ी उठा देनेकी प्रार्थना की। राजाने बिना सोचे-समझे छड़ी उठा दी। बोकबार ठठाकर हँस पड़ा।

'आपने देखा कि सज्जन लोग एक दूसरेके सेवक होते हैं। मैंने भिखारीकी सेवा की और आप मेरी सेवा कर रहे हैं। मुझे गायोंकी आवश्यकता नहीं है। आप उन्हें इस दीन भिखारीको दे दीजिये।' बोकबारने अपने कथनकी सत्यता प्रमाणित की।

राजाने प्रसन्न होकर बोकबारको अपना मन्त्री बना लिया।—रा० श्री०

परिश्रम गौरवकी वस्तु है

अमेरिकामें स्वातन्त्र्य-संग्रामके समय एक किलेबन्दी हो रही थी। कुछ सैनिकोंके द्वारा एक नायक उस कामको करा रहा था। सैनिक किलेकी दीवारपर एक भारी लकड़ी चढ़ानेका प्रयत्न कर रहे थे; किंतु सफल नहीं हो रहे थे। नायक उन्हें आज्ञा तो दे रहा था और प्रोत्साहित भी कर रहा था; किंतु स्वयं लकड़ी उठानेमें हाथ नहीं लगाता था।

उधरसे घोड़ेपर बैठे एक सज्जन निकले। उन्होंने नायकसे कहा—'आप भी लकड़ी उठानेमें लग जायँ तो लकड़ी ऊपर चढ़ जाय।'

नायकने उत्तर दिया—'मैं इस टुकड़ीका नायक हूँ।'

'आप मुझे क्षमा करें।' वे सज्जन घोड़ेपरसे उतर पड़े। अपना कोट उन्होंने उतार दिया, टोपी अलग रख दी और कमीजकी बाँहें [illegible] जुट गये। उनके परिश्रम [illegible] हुआ कि लकड़ी ऊपर चढ़ गयी।

'धन्यवाद महोदय!' नायकने उन सज्जनको [illegible] चढ़ जानेपर कहा।

अपना कोट पहिनते हुए वे बोले—[illegible] की तो कोई बात नहीं। [illegible] आवश्यकता हो तो अपने प्रधान सेनापतिके [illegible] भेज दिया करें, जिससे मैं [illegible] जाया करूँ, क्योंकि मुझे पता है कि [illegible] हीनताकी नहीं, गौरवकी वस्तु है।'

'प्रधान सेनापति!' बेचारा नायक [illegible] रह गया। परंतु प्रधान सेनापति [illegible] शीघ्रतापूर्वक वहाँसे आगे निकल गये।—[illegible]

क्षमाशीलता

अब्राहम लिंकन अमेरिकाके राष्ट्रपति थे। उनके शासनकालमें अमेरिका बहुत समृद्ध और समुन्नत था। पर कमी केवल इस बातकी थी कि उन्हें किसीको मृत्यु-दण्ड देनेमें बड़ा संकोच होता था। वे कहा करते थे कि किसीको मृत्यु-दण्ड देना कितना कठिन है, लेखनीमें इतनी शक्ति है कि उसकी एक चाल अपराधीको प्राण दे सकती है।

अमेरिकन सेनाकी एक टुकड़ीमें एक नवयुवक काम करता था। उसका काम पहरा देनेका था। किसी समय सेनामें ही उसका एक मित्र बीमार पड़ा। नवयुवकको उसकी देखभालके साथ-ही-साथ अपना काम भी पूरा करना पड़ता था। बीमार आदमीकी सेवा-शुश्रूषाके कारण वह थककर अपनी जगहपर सो गया। शत्रुका आक्रमण होनेवाला था; ऐसे समयमें उसका सो जाना कदापि उचित नहीं था। सैनिकोंने [illegible] दण्ड दिया। अब्राहम लिंकनको [illegible] था कि उसे क्षमाकर प्राणदान दे दें। वे [illegible] मिलने गये।

× × × ×

'भाई! तुम्हें सेनाने [illegible] मानो। तुम्हारे इस [illegible] थकावट और सोनेके [illegible] सेनामें फिर भेज रहा हूँ, [illegible] संकटमें पड़ गया हूँ कि तुम [illegible] सकोगे या नहीं।' [illegible] आश्वासन दिया।

[illegible] मैं अपने जीवनकी [illegible] का [illegible]।

'नहीं भाई। यह तो बहुत अधिक है। इसे तुम, केवल तुम चुका सकते हो, मैं तुम्हें चाहता हूँ, विलियम स्काट!' राष्ट्रपति लिंकनने बात स्पष्ट की।

लिंकनने कहा कि तुम सेनामें जाकर अपने कर्तव्यका पूर्णरूपसे पालन करो। जब मरने लगो, तब यह समझ सको कि मेरे वचनके अनुसार तुमने आजीवन आचरण कर अपनी शेष आयु सार्थक की। इस तरह देय धन (बिल) की भरपाई हो जायगी। राष्ट्रपतिने उसे क्षमा कर दिया।

× × × ×

'आपने मुझे एक वीर सैनिककी तरह युद्धस्थलमें प्राण देनेका सुनहला अवसर दिया। आपकी क्षमाशीलता धन्य है।' विलियम स्काटने मरते समय लिंकनको पत्र लिखा था। एक वीरकी तरह अपने देशके सम्मानके लिये लड़कर युद्धमें जीवन-लीला समाप्त की।—रा० श्री०

श्रमका फल

अब्राहम लिंकनका बचपन अत्यन्त दुःखमय था। उन्होंने अत्यन्त साधारण और गरीब परिवारमें जन्म लिया था। कभी नाव चलाकर तो कभी लकड़ी काटकर वे जीविका चलाते थे। उन्हें महापुरुषोंका जीवन-चरित पढ़नेमें बड़ा आनन्द आता था, पर अर्थाभावमें पुस्तक खरीदकर पढ़ना उनके लिये कठिन था।

वे अमेरिकाके प्रथम राष्ट्रपति जार्ज वाशिंगटनके जीवनसे बहुत प्रभावित थे। एक समय उन्हें पता चला कि एक पड़ोसीके पास जार्ज वाशिंगटनका जीवन-चरित है; वे प्रसन्नतासे नाच उठे, पर मनमें भय था कि पड़ोसी पुस्तक देगा या नहीं। पड़ोसीने पुस्तक दे दी। अब्राहमने शीघ्र ही लौटा देनेका वादा किया था।

अब्राहम लिंकनने पुस्तक समाप्त नहीं की थी कि एक दिन अचानक बड़े जोरकी जलवृष्टि हुई। अब्राहम लिंकन झोंपड़ीमें रहते थे; पुस्तक वर्षासे भीगकर खराब हो गयी। अब्राहमके मनमें बड़ा दुःख हुआ, पर वे निराश नहीं हुए।

× × × ×

'मुझसे एक बहुत बड़ा अपराध हो गया है।' सोलह सालकी अवस्थावाले असहाय बालक अब्राहमकी बातसे पड़ोसी आश्चर्यचकित हो गया। वह बालककी सरलता और निष्कपटतासे बहुत प्रसन्न हुआ।

अब्राहमने कहा कि मैं पुस्तक लौटा नहीं सकूँगा। यद्यपि वह जलवृष्टिसे भीगकर खराब हो गयी है तो भी मैं आपको नयी पुस्तक दूँगा।

'तुम नयी किस तरह दे सकोगे? घरपर एक पैसेका भी ठिकाना नहीं है और बात ऐसी करते हो?' पड़ोसीने झिड़की दी।

'मुझे अपने श्रमपर विश्वास है। मैं आपके खेतमें मजदूरी कर पुस्तकके दूने दामका काम कर दूँगा।' अब्राहम लिंकन आशान्वित थे। पड़ोसीको उनका प्रस्ताव ठीक लगा।

अब्राहम लिंकनने मजदूरीके द्वारा पुस्तकके दामकी भरपाई कर दी और जार्ज वाशिंगटनकी जीवनी उन्हींकी सम्पत्ति हो गयी। अपने श्रमसे उन्होंने अपने पुस्तकालयकी पहली पुस्तक प्राप्त की। —रा० श्री०

अन्त भला तो सब भला

एथेन्समें सोलन नामका एक बड़ा भारी विद्वान् रहता था। उसे देशाटनका बड़ा शौक था। एक बार वह घूमता-घामता लीडिया देशके राजा कारूँके दरबारमें पहुँचा। कारूँ अत्यन्त धनी था। उसे अपनी अतुल सम्पत्तिका बड़ा गर्व था। उसने सोलनको अपनी अपरिमित अर्थराशि दिखलाकर यह कहलाना चाहा कि

'फारूँसे बढ़कर संसारमें और कोई सुखी नहीं है ।' पर ज्ञानी सोलनके चित्तपर उसके वैभवका कोई प्रभाव न पड़ा । उसने केवल यही उत्तर दिया कि 'संसारमें सुखी वही कहा जा सकता है, जिसका अन्त सुखमय हो।' इसपर फारूँने बिना किसी विशेष सत्कारके सोलनको अपने यहाँसे विदा कर दिया ।

कालान्तरमें फारूँने पारसके राजा साइरसपर आक्रमण किया । वहाँ [illegible] गया । साइरसने उसे [illegible] समय उसे सोलनकी [illegible] 'हाय ! सोलन ! [illegible] साइरसने इसका तात्पर्य पूछा [illegible] बातें सुना दीं । [illegible] और उसने फारूँको जीवन-दान [illegible] उसका आदर-सत्कार भी किया ।—[illegible]

उद्यमका जादू

इटलीके क्रेसिन नामक किसानने अपने उद्योगके बदौलत इतनी अच्छी पैदावार की कि लोगोंको अत्यन्त आश्चर्य होने लगा । उन्होंने सोचा—निश्चय ही यह कोई जादू करता होगा ।

उन्होंने न्यायालयमें इसकी अपील की । न्यायाधीशने वादीका बयान सुननेके बाद प्रतिवादी किसान क्रेसिनसे पूछा—'इसपर तुम्हारा क्या कहना है ?'

क्रेसिनने अपनी एक हृष्ट-पुष्ट लड़की, अपने खेतीके औजार, बैल आदिको अदालतके समक्ष खड़ाकर कहा—'मैं खेत जोत और खाद डाल उसे अच्छा तैयार करता हूँ । मेरी लड़की बीज बोती और पानी आदि देकर खेतकी अच्छी देख-रेख करती है । इसी तरह मेरे औजार भी टूटे-फूटे न होकर अच्छे काम लायक हैं । और मेरे बैल देखिये । [illegible] इन्हें खूब खिलाता-पिलाता, [illegible] हूँ । इसीलिये ये हमारे [illegible] और बेजोड़ हैं । मेरे [illegible] जिस जादूका असर [illegible] दावा करनेवाले चाहें तो इस [illegible] तब उन्हें मेरे इस [illegible] ।'

ये बातें सुनकर न्यायाधीशने कहा—[illegible] अनेक अपराधी मेरे सामने आये, [illegible] गये अभियोगोंके निराकरणार्थ [illegible] भी उपस्थित नहीं किये । [illegible] की जाय थोड़ी है ।'

यह कहकर न्यायाधीशने क्रेसिनको [illegible]

([illegible])

न्यायका सम्मान

इंगलैंडका चतुर्थ हेनरीका ज्येष्ठपुत्र, जो आगे हेनरी पञ्चम नामसे प्रसिद्ध हुआ, बड़ा ही शूरवीर और राजकाजमें भी अत्यन्त दक्ष था । किंतु बचपनमें राज्यारूढ़ होनेके पूर्व वह बड़ा ही उजड्ड और मुँहफट था । वह उचक्कोंकी संगति कर नीच-मूर्खतापूर्ण काम भी करता था ।

एक बार उसके एक मित्रको किसी अपराधपर मुख्य न्यायाधीशने [illegible] उपस्थित था । [illegible] न्यायाधीशसे [illegible] देनेके लिये उसे हुक्म [illegible] दुर्व्यवहार [illegible] जिस [illegible]

यह मेरा मित्र है, इसलिये रास्तेके साधारण चोरकी तरह इसके साथ कभी बर्ताव न करें।'

न्यायाधीशने उत्तर दिया—'मैं यहाँ प्रिंस आफ वेल्सको बिल्कुल नहीं पहचानता। 'न्यायके काममें पक्षपात नहीं करूँगा' यह मैंने शपथ ली है। इसलिये जो बात न्याय दीखेगी, उसे बिना किये न रहूँगा।'

राजपुत्र आगबबूला हो उठा। आपेसे बाहर हो वह अपने मित्र उस कैदीको छुड़ानेका यत्न करने लगा। न्यायाधीशने पुनः साफ चेतावनी दी—'इसमें हाथ डालनेका आपको अधिकार नहीं। व्यर्थ ही अदालतमें दंगा मत कीजिये।' राजपुत्रके तलवेकी आग ब्रह्माण्डमें पहुँच गयी और उसने भरी अदालतमें न्यायाधीशके गालपर थप्पड़ जमा दी।

न्यायाधीशने राजपुत्र और उसके मित्रको तत्काल जेलमें भेजनेका आदेश दिया। उन्होंने कहा—'इसने न्यायाधीशका अपमान किया है। इसलिये यह दण्ड है।' न्यायाधीशने राजपुत्रको सम्बोधन करके कहा—'आगे आपको ही राज्यारूढ़ होना है। यदि स्वयं आप अपने राज्यके कानूनोंकी इस तरह अवज्ञा करेंगे तो प्रजा आपका आदेश क्या मानेगी।'

राजपुत्रके हृदयमें तत्काल प्रकाश हुआ। वह बड़ा लज्जित हुआ। सिर नवाकर न्यायाधीशको मुजरा किया और जेलकी ओर चल पड़ा।

राजा हेनरी चतुर्थको पता चलनेपर उसने कहा—'सचमुच मैं धन्य हूँ; जिसके राज्यमें न्यायका निष्पक्ष स्थापन करनेवाला ऐसा न्यायाधीश है।'

स्वयं हेनरी पञ्चम बननेपर राजपुत्रने न्यायाधीशसे कहा—'आपके साथ मैंने जैसा बर्ताव किया, यदि मुझे ऐसा ही पुत्र हुआ तो उसकी आँखोंमें आँजन डालनेवाला आप-जैसा ही न्यायाधीश मुझे सौभाग्यसे मिले, यही मैं चाहता हूँ।' —गो० न० बै०(नीतिबोध)

स्वावलम्बनका फल

स्काटलैंडके एक सरदार सर राबर्ट इन्नेसपर एक समय बड़ा संकट आ गया और वह बड़ी विपत्तिमें पड़ गया। अन्य लोगोंकी तरह उसने न तो अपने इष्ट-मित्रोंपर बोझ डाला और न सरकारसे मदद माँगी। उसे कोई काम भी न आता था। पर अपने श्रमपर स्वावलम्बी रहनेकी उसे दृढ़ निष्ठा थी। फलतः उसने पल्टनमें सिपाहीगिरीका काम स्वीकार कर लिया।

एक दिन वह छावनीपर निगरानी कर रहा था कि एक व्यक्ति, जो उसे जानता था, यों ही किसी कामके लिये पल्टनके कर्नलके पास आया। कर्नल किसी अन्यसे बातें कर रहे थे, तबतक वह इस पहरेदारसे बातचीत करता खड़ा रहा। उसे स्पष्ट हो गया कि यह पहरेदार साधारण व्यक्ति नहीं, राबर्ट इन्नेस है।

कर्नलसे मिलनेपर उसने कहा—'सचमुच आप बड़भागी हैं। आपके यहाँ कितने ही राजा नौकरी करते होंगे। यही राबर्ट इन्नेसको देखिये न! कितना बड़ा सरदार है।'

कर्नलने दूसरे पहरेदारको भेजकर राबर्टको बुलाया और कहा—'क्या आप राबर्ट इन्नेस हैं। यदि हाँ तो, यह हलका काम क्यों करते हैं?'

'हाँ, यह सच है। मेरे पास एक पाई भी न बचनेके कारण मैंने सोचा कि दूसरेका मरा अन्न खानेकी अपेक्षा अपनी पदवी आदिको दो दिनके लिये भूलकर अपने श्रमपर निर्वाह करना श्रेष्ठ है। इसीलिये यह नौकरी स्वीकार की।'

कर्नलको विश्वास हो गया और वे उसके धैर्य तथा श्रमनिष्ठापर खिल उठे। उन्होंने राबर्टको उस दिन

छुट्टी दे दी और अपने यहाँ भोजनको बुलाया। एक साथ भोजन करनेके बाद वे अपनी पोशाकमें-से एक पोशाक उसे देने लगे।

रावर्टने कहा—'धन्यवाद! पर मुझे इसकी जरूरत नहीं है। सिपाहीगिरी करनेसे पहलेके कुछ कपड़े अभी मेरे पास पड़े हैं।'

कर्नल उत्तरोत्तर उसने [illegible] चले और उसने गवर्नरसे एक [illegible] दी तथा अन्तमें उसके साथ [illegible] ब्याह दी।—गो० न० दे० ([illegible])

निर्माता और विजेता

किसी ग्राममें एक विद्वान् स्त्री-पुरुष तथा उनके दो बच्चे रहते थे। बड़ा लड़का शान्त स्वभावका, पठनशील और विचारप्रिय था। छोटा बालक केवल विनोदी, चञ्चल स्वभावका तथा खेल-कूदप्रिय था।

एक दिन संध्या-समय नित्यकी तरह बड़ा लड़का अपने माँ-बापके पास बैठा हुआ कोई इतिहासकी पुस्तक पढ़ रहा था। इधर छोटा बालक एक कार्डका मकान बनानेमें लगा था। वह उसके गिरनेके भयसे श्वास भी नहीं लेता था। इतनेमें ही बड़े लड़केने पुस्तक अलग रख दी और अपने पितासे पूछा—'पिताजी! कुछ वीर तो साम्राज्य-विजेता कहे जाते हैं और कुछ साम्राज्य-संस्थापक कहे जाते हैं। क्या इन दोनों भिन्न शब्दोंके भाव भिन्न-भिन्न हैं?'

पिता अभी कुछ उत्तर देनेकी बात [illegible] कि तबतक छोटे बालकने कार्डका दूसरा [illegible] लिया और प्रसन्नतासे उछल पड़ा। [illegible]—'मैंने यह तैयार कर लिया।'

बड़ा भाई उसके [illegible] इशारेसे उसके सारे घरको गिराके निर्माण [illegible] इतना श्रम और समयका व्यय हुआ [illegible] कर डाला।

पिताने कहा—'मेरे पुत्र! बस, तुम्हारा [illegible] 'निर्माता' और तुम 'विजेता' हुए।'—[illegible]

स्वावलम्बी विद्यार्थी

ग्रीसमें किलेन्थिस नामक एक युवक एथेंसके तत्त्ववेत्ता जीनोकी पाठशालामें पढ़ता था। किलेन्थिस बहुत ही गरीब था। उसके बदनपर पूरा कपड़ा नहीं था। पर पाठशालामें प्रतिदिन जो फीस देनी पड़ती थी, उसे किलेन्थिस रोज नियमसे दे देता था। पढ़नेमें वह इतना तेज था कि दूसरे सब विद्यार्थी उससे ईर्ष्या करते। कुछ लोगोंने यह संदेह किया कि 'किलेन्थिस जो दैनिक फीसके पैसे देता है, सो जरूर कहींसे चुराकर लाता होगा; क्योंकि उसके पास तो फटे चिथड़ेके सिवा और कुछ है ही नहीं।' और उन्होंने आखिर उसे चोर बनाकर पकड़वा दिया। [illegible] किलेन्थिसने निर्भयताके साथ [illegible] बिल्कुल निर्दोष हूँ, मुझपर झूठा [illegible] लगाया गया है। मैं अपने इस [illegible] गवाहियाँ पेश करना [illegible] हूँ।'

गवाह बुलाये गये। [illegible] कहा कि 'यह युवक [illegible] पानी [illegible] है और [illegible] के लिये [illegible]।' [illegible] [illegible] हूँ। [illegible]

नहीं है। यह युवक प्रतिदिन मेरे घरपर आटा पीस जाता है और बदलेमें अपनी मजदूरीके पैसे ले जाता है।'

इस प्रकार शारीरिक परिश्रम करके क्लिएन्थिस कुछ आने प्रतिदिन कमाता और उसीसे अपना निर्वाह करता तथा पाठशालाकी फीस भी भरता। क्लिएन्थिसकी इस नेक कमाईकी बात सुनकर हाकिम बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे इतनी सहायता देनी चाही कि जिससे उसको पढ़नेके लिये मजदूरी करनी न पड़े; परंतु उसने सहायत लेना स्वीकार नहीं किया और कहा कि 'मैं स्वयं परिश्र करके ही पढ़ना चाहता हूँ। किन्हींसे दान लेनेव मुझे आवश्यकता नहीं है।'

उसके गुरु जीनो महाशयने भी उस स्वावलम्ब युवककी बातका समर्थन किया और उसके सहायता न लेनेपर प्रसन्नता प्रकट की।

आदर्श दण्ड

फ्रेडरिककी सेनामें एक मनुष्य कभी लेफ्टेनेंट कर्नल-के पदपर रहा था। काम न होनेसे उसे अलग कर दिया गया। वह बार-बार फ्रेडरिकके पास आता और उसी पदके लिये उसपर दबाव डालता। फ्रेडरिकने बार-बार उसे समझाया—'भैया! अभी कोई जगह खाली नहीं है।' परंतु उसने एक भी नहीं सुनी। आखिर फ्रेडरिकने हैरान होकर उसे बड़ी कड़ाईके साथ वहाँ आनेके लिये मने कर दिया। कुछ समय बाद किसीने फ्रेडरिकके सम्बन्ध-में एक बड़ी कड़ी कविता लिखी। शान्तस्वभाव होने-पर भी फ्रेडरिक इस अपमानको न सह सका। उसने मुनादी करवा दी कि इस कविताके लेखकको पकड़कर जो मेरे सामने हाजिर करेगा उसे पचास सोनेकी मोहरें इनाम दी जायँगी। दूसरे दिन फ्रेडरिकने देखा वही आदमी सामने हाजिर है। फ्रेडरिकने क्रोध और आश्चर्यमें भरकर पूछा, 'तू फिर यहाँ कैसे फूट निकला?' उसने कहा—'सरकार! आपके विरुद्ध जो कड़ी कविता लिखी गयी थी, उसके लेखकको पकड़ा देनेवालेको आपने पचास सोनेकी मोहरें देनेकी मुनादी करवायी है न?'

'हाँ हाँ, तो इसमें क्या?' फ्रेडरिकने शान्तभावसे पूछा।

'तब तो सरकार! वह इनाम मुझे दिये बिना आपका छुटकारा नहीं।' उसने कहा।

'क्यों?' फ्रेडरिकने संकोचसे पूछा।

'इसलिये सरकार! कि उस कविताका लिखनेवाल यही आपका सेवक है। आप सरकार! मुझे भले ह दण्ड दें, परंतु क्या मेरे भूखों मरते हुए स्त्री-बच्चोंव अपनी घोषणाके अनुसार इनाम नहीं देंगे मेरे कृपाल स्वामी!'

फ्रेडरिक एकदम लाल-पीला हो उठा। तुरंत ही एव कागजके टुकड़ेपर कुछ लिखकर उसे देते हुए फ्रेडरिक कहा—'ले इस परवानेको लेकर स्पाण्डो किलेके कमाण्डर के पास चला जा। वहाँ दूसरोंके साथ कैद करनेक मैंने तुझको दण्ड दिया है।'

'जैसी मर्जी सरकारकी! परंतु उस इनामको भूलियेगा।'

'अच्छा सुन! कमाण्डरको परवाना देकर उस ताकीद कर देना कि भोजन करनेसे पहले परवाना प नहीं। यह मेरी आज्ञा है।' गरीब बेचारा क्या करता फ्रेडरिककी आज्ञाके अनुसार उसने स्पाण्डोके किलेप जाकर परवाना वहाँके कमाण्डरको दिया और कह दिय कि भोजनके बाद परवाना पढ़नेकी आज्ञा है।'

दोनों खानेको बैठे। वह बेचारा क्या खाता। उसक तो कलेजा काँप रहा था कि जाने परवानेमें क्या लिख है! किसी तरह भोजन समाप्त हुआ, तब कमाण्डर

अपी थी। इस जमीनमें लोगोंने कुछ झाड़े बनाये और उन्हींके द्वारा सरकारी खजानेमें कुछ धन ज्यादा आया। आमदनी बढ़नेका यही गुप्त रहस्य है।'

'नदियाँ सूख गयीं, जल दूर चला गया और लगान बढ़ा।' मन्त्रीकी चिन्ताने सम्राट्के दिलपर भी चिन्ताका चेप लगा दिया। कुछ देरतक इन्हीं शब्दोंको वह रटता रहा।

'नदीका जल सूखना भी तो एक ईश्वरीय कोप है। इस कोपको सिर लेकर लगानकी मौज उड़ानेवाली बादशाही कबतक टिकी रह सकती है? यह अन्यायका पैसा है। मेरे खजानेमें ऐसी एक कौड़ी भी नहीं आनी चाहिये।' सम्राट्ने अपनी आज्ञा सुना दी। आय-मन्त्रीकी चिन्ता अकारण नहीं थी, सम्राट्को इसका अनुभव हुआ।

'इन गरीब प्रजाका लगान लौटा दो और मेरी ओरसे उनसे कहला दो कि वे रात-दिन गङ्गा-यमुनाको भरी-पूरी रखनेके लिये ही भगवान्से प्रार्थना करें। लगानकी बढ़ती नहीं, परंतु यह न्यायकी वृत्ति ही इस साम्राज्यकी मूल भित्ति है।' सम्राट्ने जाते-जाते यह कहा। धन्य!

ईश्वरके विधानपर विश्वास

एक अंग्रेज अफसर अपनी नवविवाहिता पत्नीके साथ जहाजमें सवार होकर समुद्र-यात्रा कर रहा था। रास्तेमें जोरसे तूफान आया। मुसाफिर घबरा उठे, पर वह अंग्रेज जरा भी नहीं घबराया। उसकी नयी पत्नी भी व्याकुल हो गयी थी। उसने पूछा—'आप निश्चिन्त कैसे बैठे हैं?' पत्नीकी बात सुनकर पतिने म्यानसे तलवार खींचकर धीरेसे पत्नीके सिरपर रख दी और हँसकर पूछा कि 'तुम डरती हो या नहीं?' पत्नीने कहा—'मेरी बातका जवाब न देकर यह क्या खेल कर रहे हैं? आपके हाथमें तलवार हो और मैं डरूँ, यह कैसी बात? आप क्या मेरे वैरी हैं, आप तो मुझको प्राणोंसे भी अधिक चाहते हैं।' इसपर अफसरने कहा—'साध्वी! जैसे मेरे हाथमें तलवार है वैसे ही भगवान्के हाथमें यह तूफान है। जैसे तुम मुझे अपना सुहृद् समझकर नहीं डरती, वैसे ही मैं भी भगवान्को अपना परम सुहृद् समझकर नहीं डरता। भगवान्का अपने जीवोंपर अगाध प्रेम है, वे वही करेंगे जो वास्तवमें हमारे लिये कल्याणकारी होगा। फिर डर किस बातका?'

दीपक जलाकर देखो तो

युद्धके समय एक सैनिकका अनुभव

युद्धके समय अपरिचित देशोंमें मैं एक अनाथ शिशुकी तरह अकेले रह रहा था। फिर भी मैं सदा सुखी और स्वस्थ रहा एवं मैंने नित्य अपनेको सुरक्षित पाया।

कुछ दिनों पूर्व, मानो मेरी श्रद्धाको कसौटीपर कसनेके लिये, ठीक मेरे मुँहपर अचानक एक फोड़ा निकल आया। अपने काममें मुझे सदा भरे समाजके सामने रहना पड़ता था। मैं डरा, घबराया और किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया। सबने सलाह दी कि डाक्टरको अवश्य दिखाना चाहिये। मेरा कोई परिचित डाक्टर नहीं था। एक डाक्टरने, जो हमारे पुस्तकालय और पुस्तकोंकी दूकानके संरक्षक भी थे, इस बढ़ते हुए सूजनभरे फसादको देखा। उन्होंने दूसरे दिन तड़के ही इसे चीर देनेका निश्चय कर लिया।

मैंने अपने किवाड़ बंद कर लिये, अपने रहनेके कमरेमें चला गया और प्रभुको पुकारा। मैंने सच्ची प्रार्थना की। उस प्रार्थनामें मेरे हृदय और आत्माका अभूतपूर्व संयोग था। अपने एकान्त घरमें, प्रभुके साथ निश्छल हृदयसे घटों बातें करते-करते थककर मैं सो गया। या तो मैं स्वप्न देख रहा था, अथवा कोई मुझसे कह रहा था—'दीपक जलाकर दर्पणमें देखो तो।' सुननेके साथ ही मैंने अद्भुत शान्ति, चेतनता और सुखका अनुभव किया। एक स्वप्नके व्यापारकी तरह मैं जाग पड़ा। मेरा हाथ ठीक दीपकतक गया और मैंने उसे [illegible] दिया। जब मैंने दर्पणमें देखा तो मेरा चेहरा [illegible] स्वच्छ और बिल्कुल [illegible] दिया। [illegible] और रोग छूमन्तर हो गया था।

फिर तो मैंने अपने प्रार्थना-[illegible] देखकर भगवान्‌को न जाने कितना धन्यवाद दिया। प्रातःकाल जब डाक्टर साहब आये, तब उनको [illegible] आँखोंपर विश्वास ही नहीं होता था। मेरे दूसरे मित्रोंकी भी यही दशा थी।

दया

अमेरिका संयुक्तराज्यके एक प्रेसीडेंट एक बार राजसभामें जा रहे थे। रास्तेमें उन्होंने एक सूअरको कीचड़में धँसे देखा। सूअर कीचड़से निकलनेके लिये जीतोड़ प्रयत्न कर रहा था, पर वह जितना ही प्रयत्न करता उतना ही अधिक कीचड़में धँसा जाता। सूअरकी यह दयनीय दशा देखकर प्रेसीडेंट साहेबसे नहीं रहा गया। वे अपनी उसी पोशाकसहित कीचड़में कूद पड़े और सूअरको खींचकर बाहर निकाल लाये। समय हो गया था, इसलिये वे उन्हीं कीचड़भरे कपड़ोंको पहने राजसभामें गये। सभाके सदस्य उन्हें इस दशामें देखकर अचरजमें पड़ गये। लोगोंके पूछनेपर उन्होंने सारा हाल सुनाया। तब लोग उनकी दयालुताकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। इसपर प्रेसीडेंट साहबने कहा—'[illegible] ही मेरी तारीफ कर रहे हैं। मुझे सूअरपर [illegible] आयी थी, उसे बुरी तरह कीचड़में फँसे देखकर मुझे दुःख हो गया और मैंने अपने दुःखको मिटानेके लिये ही उसे बाहर निकाला। इसमें मैंने सूअरकी कोई भलाई नहीं की, अपनी ही भलाई की, क्योंकि उसे बाहर निकालते ही मेरा दुःख दूर हो गया।'

असलमें प्राणिमात्रके दुःखसे दुःखी होकर उनके दुःखसे छुड़ानेकी चेष्टा ही तो सच्ची दया है।

अद्भुत त्याग

अठारहवीं शताब्दीके इटली देशके प्रसिद्ध संत अल्फान्सस लिग्योरी अपने पूर्वाश्रममें वकीलका काम करते थे।

एक समयकी बात है। वे न्यायालयमें बहस कर रहे थे। उनकी बहसकी शैलीसे प्रभावित होकर न्यायालय अपना निर्णय उनके पक्षमें देना चाहता था। विरोधी पक्षके वकीलने केवल इतना ही कहा कि अल्फान्सस महोदयको अपनी बहसपर एक बार फिर विचार कर लेना चाहिये। अल्फान्ससको अचानक स्मरण हो आया कि एक ऐसी नकारात्मक बातकी उन्होंने उपेक्षा कर दी है, जिससे [illegible] पक्षका लाभ हो सकता था, पर [illegible] दिखाया कि यह ऐसी बात नहीं है जिससे [illegible] अन्तर आवे और उन्होंने [illegible] प्रदान की।

पर उन्हें तो [illegible] त्यागके सामने हार [illegible]।

'[illegible]! मैं [illegible] हूँ।' मैं

तुम्हें समझ गया और तुमसे भर पाया।' कहते हुए अन्सासस न्यायालयके बाहर हो गये। उन्होंने वकालत छोड़ दी; वे अभी नौजवान थे पर उन्होंने जीविकाके मिथ्या साधनको तिलाञ्जलि देकर आत्माकी खोज आरम्भ की परमात्माके प्रेम-राज्यमें प्रवेश करनेके लिये।

—रा० श्री०

दयालु बादशाह

जर्मनसम्राट् द्वितीय जोसेफ बहुत दयालु हृदयके पुरुष थे। वे अक्सर साधारण कपड़े पहनकर प्रजाकी हालत जाननेके लिये अकेले ही निकल पड़ते। एक बार वे इसी प्रकार गलियोंमें घूम रहे थे कि एक गरीब लड़का उनके सामने आया और बोला, 'महाशय! कृपा करके मुझे कुछ पैसे दीजिये।' लड़का सम्राट्को पहचानता नहीं था; परंतु सम्राट्के दयालु चेहरेको देखकर उसको साहस हो गया और उसने पैसोंकी याचना की। लड़केका करुणाभरा मुँह देखकर बादशाहको दया आ गयी। उन्होंने कहा—'बच्चे! तेरा चेहरा देखनेपर ऐसा लगता है कि तूने थोड़े ही दिनोंसे भीख माँगनी शुरू की है।'

बच्चेने कहा—'महाशय! मैंने कभी भीख नहीं माँगी। हमारी स्थिति जब बहुत बिगड़ गयी, तब आज मैं पहले पहल माँगने निकला हूँ। कुछ दिन हुए मेरे पिताजी मर गये। हम दो भाई हैं। हमारे पास कुछ भी नहीं है, जिससे हम अपना पेट भर सकें और न कोई मदद ही करनेवाला है। एक माँ है जो सख्त बीमार है और बेहाल खटियापर पड़ी है।' यों कहते-कहते लड़केका गला भर आया।

सम्राट्ने पूछा—तेरी माँकी दवा कौन करता है?

लड़केने कहा—सरकार! दवा कौन करता? हमारे पास दवाके लिये पैसा कहाँ है? इस दुःखसे ही तो मैं आज लाचार होकर भीख माँगने निकला हूँ।

लड़केकी बात सुनकर सम्राट् जोसेफका हृदय करुणासे भर गया। उन्होंने बालकसे घरका पता पूछकर उसके हाथमें कुछ रुपये देते हुए कहा—'जा, जल्दी डाक्टरको ले जाकर माँको दिखला। राहमें कहीं देर न करना भला।' बच्चा खुशी होकर डाक्टरको बुलाने दौड़ा।

इधर बादशाह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते उसके घर पहुँचे; उन्हें मालूम हो गया कि उसकी माँकी हालत बहुत खराब है। उन्होंने देखा, वह खटियापर पड़ी है और उसका एक छोटा बच्चा पास बैठा रो रहा है। बादशाहने अपनेको डाक्टर बतलाकर उससे बीमारीका हाल और कारण पूछा। बादशाहके शब्दोंमें बड़ी मिठास थी और उनमें स्नेह भरा था। यह देखकर उस स्त्रीने कहा—'महाशय! मेरे रोगका कारण तो असलमें हमारी यह बुरी हालत है। कुछ दिन पहले मेरे पतिका देहान्त हो गया। जो कुछ पूँजी थी, सब महाजनोंमें डूब गयी। बच्चे अभी बहुत छोटे हैं, मेरे पास ऐसा कोई साधन नहीं, जिससे मैं उनका पेट भर सकूँ। मुझे अपने मरनेकी चिन्ता नहीं है, पर पीछे मेरे अनाथ बच्चोंका क्या होगा। इसी विचारसे मेरा जी जला करता है। मुझे बहुत दुखी देखकर बड़ा लड़का आज मेरी दवाके लिये कहीं पैसेका प्रबन्ध करने गया है।'

गरीब माँ-बेटोंकी दुर्दशा देखकर बादशाहने आँसू-भरी आँखोंसे कहा—'बहिन! घबराओ मत। भगवान्की कृपासे तुम जल्दी ही अच्छी हो जाओगी और तुम्हें पैसे भी मिलेंगे। मुझे एक कागजका टुकड़ा दो तो मैं तुम्हारे रोगकी दवा लिख दूँ।'

घरमें और कागज तो था नहीं, उसने लड़केके पढ़नेकी पोथीका पिछला पन्ना फाड़ दिया।

बादशाहने उसपर कुछ लिखकर उसे रोगिणीको दे दिया और कहा—'मैंने इसमें दवा लिख दी है, इसीसे तुम्हारी सारी बीमारी मिट जायगी।' इतना कहकर वे वहाँसे चले गये।

कुछ देरके बाद लड़का डाक्टरको लेकर आया। लड़केने आते ही खुशीके साथ कहा—'माँ! तू घबरा मत, मुझे रुपये भी मिल गये हैं और मैं डाक्टरको भी ले आया हूँ।' लड़केको प्रसन्न देखकर माँको बड़ी प्रसन्नता हुई और उसकी आँखोंसे हर्षके आँसू निकल पड़े। उसने बच्चेका मुँह चूमकर कहा—'बेटा! प्रभु तुझे लंबी जिंदगी दें। 'अभी एक डाक्टर आया था, वह कागजपर कोई दवा लिख गया है। डाक्टर बड़ा ही दयालु था बेटा!'

उसकी बात सुनकर लड़केके साथ आये हुए डाक्टरने कागज लेकर पढ़ा और उसमें स्वयं सम्राट् जोसेफके हस्ताक्षर देखकर आश्चर्यसे कहा—'अब तेरा सारा संकट गया ही समझ। मेरे पहले जो डाक्टर आया था, वह कोई मामूली डाक्टर नहीं था। [illegible] दवा लिख गया है, [illegible] है। उस दवाने तुझे बड़ा [illegible]। [illegible] स्वयं जर्मनीका बादशाह दूसरा [illegible] और इस कागजपर यह हुक्म लिखा गया है कि तुझे [illegible] बहुत बड़ी रकममें [illegible]।'

यह सुनकर उस स्त्री [illegible] कृतज्ञतासे भर गया। वे [illegible] भी बोल नहीं सके। जब [illegible] वाणीसे प्रभुसे जोसेफ बादशाहके [illegible] और दीर्घ जीवनके लिये प्रार्थना करने लगे। [illegible] आशीर्वाद देने लगा।

डाक्टरने भी दवा दी और [illegible] हो गयी। सब सुखसे रहने लगे। [illegible] और बच्चेका मातृ-स्नेह—जिसने [illegible] माँगने निकला—[illegible] आदर्श हो गया।

परोपकार और सचाईका फल

दोब्रीवेकी पढ़ाई समाप्त हो गयी। उसका जन्म-दिवस आया। जन्म-दिनके उपलक्ष्यमें उसके यहाँ बहुत कीमती सौगातका ढेर लग गया। उसके पिताने कहा—'बेटा! तुम्हारी पढ़ाई हो गयी, अब तुम्हें संसारमें जाकर धन कमाना चाहिये। अबतक तुम बहुत अच्छे साहसी, बुद्धिमान् और परिश्रमी विद्यार्थी रहे। इतना बड़ा धन तुम्हारे पास हो गया है। मुझे तुम्हारी योग्यतापर विश्वास है। जाओ और संसारमें फलो-फूलो।'

दोब्रीवे प्रसन्न हो उठा। वह अपने माता-पिताको प्रणाम करके अपने सुन्दर जहाजकी ओर चल दिया।

उसका जहाज समुद्रकी छातीपर लहरोंको चीरता हुआ चला जा रहा था। रास्तेमें एक तुर्की जहाज दिखलायी दिया। उसके समीप आनेपर लोगोंका कराहना और चिल्लाना सुनायी दिया। [illegible] कप्तानसे पूछा—'[illegible]! तुम्हारे [illegible] रहे हैं! कौन भूखे हैं या बीमार!'

तुर्क कप्तानने उत्तर दिया—'[illegible] इन्हें गुलाम बनाकर हम बेचनेके लिये [illegible]।'

दोब्रीवेने कहा—'[illegible] सौदा कर सकें।'

तुर्क कप्तानने [illegible] व्यापारिक [illegible] है, [illegible] बदलनेके लिये तैयार [illegible] लेकर [illegible] उनके [illegible] और [illegible] लोगोंको [illegible]।

उसके साथवाली एक बुढ़ियाका पता उसे न लग सका। उनका घर बहुत दूर था और रास्ता मालूम न था। लड़कीने बतलाया कि 'मैं रूसके जारकी पुत्री हूँ और बुढ़िया मेरी दासी है। मेरा घर लौटना कठिन है, इसलिये मैं विदेशमें ही रहकर अपनी रोटी कमाना चाहती हूँ।'

दोब्रीवे बोल उठा—'सुन्दरी! यदि तुम मुझसे ब्याह करो तो तुम्हें किसी बातकी चिन्ता न होगी।'

लड़की उसके स्वभाव और रूप-रंगसे उसपर मुग्ध थी, राजी हो गयी।

जब जहाज उसके घरके सामने बंदरगाहपर लगा तो दोब्रीवेका पिता उससे मिलने आया। उसके बेटेने कहा—'पिताजी! मैंने आपके धनका कितना अच्छा उपयोग किया। देखिये, इतने दुखी आदमियोंको मैंने सुखी बनाया और एक इतनी सुन्दर दुलहिन ले आया जिसके सामने सैकड़ों जहाजोंकी कीमत नहींके बराबर है।'

यह सुनते ही उसके बापका प्रसन्न चेहरा बदल गया। वह बिगड़कर अपने बेटेको बहुत बुरा-भला कहने लगा।

कुछ दिनोंके बाद यह समझकर कि लड़का अब कुछ होशियार हो गया, दोब्रीवेके पिताने दूसरा व्यापारी जहाज तैयार करके उसके साथ उसे विदा किया।

जहाज जैसे ही दूसरे बंदरगाहपर लगा, दोब्रीवे देखता क्या है कि कुछ सिपाही गरीब आदमियोंको कैद कर रहे हैं और उनके बाल-बच्चे उन्हें देखकर बिलख रहे हैं। पता लगानेपर मालूम हुआ कि उनपर राज्यकी ओरसे कोई टैक्स लगाया गया है जिसे वे अदा नहीं कर सकते, इसलिये कैद किये जा रहे हैं। दोब्रीवेने अपने सारे जहाजका सामान बेचकर टैक्स चुका दिया और उन गरीब आदमियोंको कैदसे छुड़ा दिया।

घर वापस लौटनेपर उसका बाप इतना बिगड़ा कि उसने दोब्रीवे, उसकी स्त्री और बुढ़ियाको अपने घरसे निकाल बाहर किया। परंतु अड़ोस-पड़ोसके लोगोंने उसे किसी प्रकार समझा-बुझाकर शान्त किया'।

तीसरी बार उसके बापने दोब्रीवेसे कहा कि 'अपनी स्त्रीको देखो, अबकी बार तुमने यदि पहले-जैसी मूर्खता की तो याद रखना कि यह आखिरी मौका भी तुमने खो दिया और अब इसको भूखों मरना पड़ेगा।'

इस बार दोब्रीवे जहाजपर सवार हुआ। वह बहुत दूर देशमें एक बंदरगाहपर पहुँचा। वहाँ उतरते ही उसने देखा कि एक राजसी पोशाक पहने हुए कोई पुरुष सामने टहल रहा है और उसकी ओर बड़े ध्यानसे देख रहा है। पास जानेपर उस आदमीने कहा कि 'आपने जो अँगूठी पहनी है वह मेरी लड़कीकी अँगूठीसे मिलती-जुलती है, आपने इसे कहाँ पाया? यह अँगूठी रूसके जारकी लड़कीकी है। किनारे चलिये और अपनी कहानी सुनाइये।'

दोब्रीवेकी बातें सुनकर जार और उसके मन्त्रीको विश्वास हो गया कि जारकी खोयी गयी लड़की दोब्रीवेकी स्त्री है, जार प्रसन्न हो उठा, उसने दोब्रीवेसे कहा कि 'तुम्हें आधा राज्य दिया जायगा।' उसने उसे लड़कीको और दोब्रीवेके माता-पिताको लाने भेज दिया। साथमें भेंटके साथ अपने मन्त्रीको भी भेज दिया।

इस बार दोब्रीवेके बापने उससे कुछ न कहा। उसके घरके सब लोग प्रसन्नतापूर्वक जहाजपर सवार होकर रूसके लिये चल दिये।

जारका मन्त्री बड़ा डाही था। उसने रास्तेमें मौका पाकर दोब्रीवेको जहाजसे ढकेल दिया। जहाज तेज जा रहा था। दोब्रीवे समुद्रमें किनारे पहुँचनेके लिये जोरसे हाथ-पैर चलाने लगा। भाग्यसे एक पानीकी लहर आयी और उसने उसे समुद्रके किनारे जा लगाया।

परंतु वहाँ पहुँचनेपर उसने देखा कि वह एक बीरान चट्टान है। दो-तीन दिनोंतक उसने किसी तरह अपने प्राण बचाये। चौथे दिन एक मछुआ अपनी नौका लिये उस रास्तेसे आ निकला। दोमीवेने उससे अपनी सारी कथा कह सुनायी। वह मछुआ इस शर्तपर उसे रूसके बंदरगाहपर पहुँचानेके लिये राजी हुआ कि 'दोमीवेको जो कुछ वहाँ मिलेगा उसका आधा हिस्सा वह उसको देगा।'

मछुएकी नौका उस पार समुद्रके किनारे लगी। दोमीवे राजमहलमें पहुँचा। जारके आनन्दका ठिकाना न रहा। दोमीवेने उससे प्रार्थना की कि 'मन्त्रीका अपराध क्षमा किया जाय।' दोमीवेकी उदारता देखकर जारने अपना सारा राज्य उसे दे दिया और अपना शेष जीवन शान्तिपूर्वक एकान्तमें भगवान्‌के भजनमें बिताया।

जिस दिन दोमीवेके सिरपर राजमुकुट रक्खा गया, उस दिन एक बूढ़ा मछुआ [illegible] हुआ। उसने कहा—'महाराज! [illegible] धन मुझे देनेका वचन दिया है।'

दोमीवे चाहता तो [illegible] दरबारसे बाहर निकलवा देता। [illegible] लिया और कहा—'हाँ, [illegible] नक्शा देखकर हम आधा-आधा बाँट लें और [illegible] चलकर खजाना भी बाँटें।'

अकस्मात् उस बूढ़ेके [illegible] और वह सफेद पोशाकमें [illegible]—

'दोमीवे! जो दयालु है [illegible] फलता है।' और अन्तर्धान हो गया।

देवदूतके इस वाक्यको [illegible] शान्तिके साथ अपने देशका शासन किया। [illegible] राज्यमें प्रजा सुख और चैनकी [illegible]।

जीवन-दर्शन

एमरसन अमेरिकाके महान् दार्शनिक और विचारक थे। वे अपने समयके बहुत बड़े तत्त्वज्ञ थे। उनका सम्पूर्ण जीवन अन्तरात्मा—परमात्माके चरणोंपर समर्पित था। वे कहा करते थे कि परमात्मासे ही सम्बन्ध रखना चाहिये। उनके चिन्तनसे जीवन अमृतमय हो उठता है। संसारकी वस्तुएँ नश्वर और क्षणभङ्गुर हैं। इनका विश्वास नहीं करना चाहिये।

एक दिन वे एकान्तमें बैठकर भगवान्‌का चिन्तन कर रहे थे कि अचानक एक मित्रने उनकी परीक्षा ली। मित्रने अपने-आपको विशेष चिन्तासे संतप्त प्रकट किया।

'कुछ कहोगे भी कि क्या बात है। तुम्हारी चिन्ताका कारण मैं भी तो जानूँ।' एमरसन अपने मित्रकी ओर देखने लगे।

'भाई! कुछ मत पूछो। [illegible] ही होना था। क्या आप जानते नहीं हैं कि [illegible] रातको ही सम्पूर्ण संसार [illegible]। प्रलय उपस्थित है।' मित्र [illegible]।

एमरसनके मनमें [illegible] समाचारसे बहुत प्रसन्न दीख पड़े।

'मित्र! अपने [illegible] बढ़कर शुभ समाचार दूसरा [illegible] इस संसारके बिना भी मनुष्य [illegible] रह सकता है। [illegible] क्षणभङ्गुर जीवनसे [illegible] का अनुभव करेगा।' [illegible] के निश्चिन्त थे। [illegible] स्पष्ट हो गया। [illegible]

मृत्युकी खोज

'टन्-टन्-टन्' गिर्जाघरकी घंटी बजते ही तीनों मित्रोंने अचानक आमोद-प्रमोदसे मन फेर लिया। फ्लैंडरस जनपदमें किसी व्यक्तिकी मृत्युकी सूचना दी घण्टी-नादने और वे राग-रंग भूलकर शरीरकी नश्वरतापर विचार करने लगे।

'भाई! हमलोगोंने आजतक रंगरेलियोंमें अपने अमूल्य जीवनका दुरुपयोग किया। समय बड़ी निर्ममतासे बीतता जा रहा है। हमलोगोंको भी किसी-न-किसी दिन इसी तरह मरना पड़ेगा। हमें मृत्युकी खोजमें लग जाना चाहिये। मनुष्यशरीर अत्यन्त दुर्लभ है।' एक मित्रका प्रस्ताव था और तीनों मृत्युकी खोजमें निकल पड़े। वे उस गाँवकी ओर चले जिसमें असंख्य प्राणी महामारी आदिसे काल-के गालमें समा रहे थे।

'हम मृत्युकी खोज कर रहे हैं। उसने हमारे अनेक बन्धु-बान्धवोंका नाश किया है। अनेक शिशुओं-को पितृहीन कर दिया है। असंख्य युवतियोंको वैधव्य प्रदान किया है।' उन्होंने एक बूढ़े व्यक्तिसे पूछा जो उन्हें गाँवमें प्रवेश करते ही दीख पड़ा। उसके शरीरपर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं, कमर झुकी हुई थी और सिर हिल रहा था।

'मृत्युकी खोज बहुत ही कठिन है। तुम उसके पीछे पड़कर अपनी जान क्यों दे रहे हो। वह बड़ी स्वार्थी, कठोर और भयंकर है। यदि तुम उसे देखना ही चाहते हो तो मैंने उसको पेड़के नीचे छोड़ दिया है। सावधान! है वह बड़ी विकराल।' बूढ़ेने थोड़ी दूरपर स्थित एक जंगली पेड़की ओर संकेत किया। वे दौड़ पड़े।

'हमलोग कितने भाग्यवान् हैं। देखो न, बूढ़ेने हमें कितना धोखा दिया। इस पेड़के नीचे तो अपार स्वर्ण-राशि है जिससे हमलोग कई वर्षोंतक आमोद-प्रमोदसे जीवन बिता सकते हैं।' सबसे छोटे मित्रने प्रस्ताव किया कि रात होते ही इसे घर ले चलना चाहिये; दिनमें कोई देख लेगा तो प्राण चले जायँगे। तीनोंकी सम्मतिसे सबसे छोटेको ही भोजनकी सामग्री लाने-के लिये बाजार जाना पड़ा।

× × × ×

'हम दोनों अकेले ही इस धनको आपसमें बाँट लें तो हमारा जीवन विशेषरूपसे सुखमय हो जायगा।' दोनोंने राय की और छोटेके आते ही उसे कटारसे मार डालनेका निश्चय किया।

इधर छोटे मित्रके मनमें भी धनका लोभ पैदा हुआ। उसने भोज्य और पेय पदार्थमें विष मिला दिया था उन दोनोंकी जीवन-लीला समाप्त कर देनेके लिये।

छोटे मित्रका बाजारसे लौटना था कि धनके लोभ-से अंधे होकर दोनोंने उसका प्राणान्त कर डाला। पीठमें कटार भोंककर और भोज्य और पेय पदार्थोंको ग्रहण कर आनन्दसे आमोद मनाने लगे। धीरे-धीरे विषका प्रभाव बढ़ता गया और थोड़ी देरमें उन दोनोंने भी सदा-के लिये आँखें मूँद लीं। चले थे तीनों मृत्युका नाश करने और नष्ट हो गये स्वयं।

'मृत्युका दर्शन जंगली वृक्षके नीचे होगा।'—बूढ़ेकी यह बात वातावरणमें परिव्याप्त थी।—रा० श्री०

लड़का गाता रहा

व्हाइटहेवनमें वेलिंग्टन नामक एक कोयलेकी खान थी। उसके निकट ही दो-तीन झोंपड़ियाँ थीं। एक झोंपड़ीमें अपनी माँ और दो बहिनोंके साथ एक दशवर्षीय लड़का रहता था।

एक दिन अचानक बड़ी दीवार गिर पड़ी और उसके नीचे पूरा-का-पूरा परिवार दब गया। मजदूर और खानमें काम करनेवाले लोग घटना-स्थलपर पहुँच गये। गिरी दीवारके नीचे एक मधुर ध्वनि ऊपर उठती-सी सुनायी पड़ी।

'गाते रहो, राबर्ट फार्ल्टन! गाते रहो!' मजदूरोंने विनष्ट दीवार तथा अन्य सामानोंको हटाना आरम्भ किया और थोड़ी देरमें [illegible]

फार्ल्टनकी माँ और एक बच्चे [illegible] चुकी थी। दूसरी बच्चियोंको थोड़ी चोट [illegible] उन्होंने प्रसन्न रखने तथा मजदूरोंको प्रोत्साहित करने के लिये ही मधुर गीतमें [illegible] बड़ी तन्मयतासे गाना गाया। [illegible] प्राणोंकी रक्षा की।—रा॰ श्री॰

महल नहीं, धर्मशाला

महाराज जीमूतकेतुके ऐश्वर्यका पार नहीं था। उन्होंने देवराज इन्द्रकी उपासना करके कल्पवृक्ष प्राप्त किया था। उनका राजभवन इतना भव्य था कि देवता भी उसे देखकर मुग्ध हो उठते थे। एक धार्मिक नरेश सांसारिक वैभवमें ही आसक्त रहे और मनुष्य-जीवन व्यर्थ व्यतीत कर दे, यह योग्य कार्य नहीं है। धर्मका सच्चा फल तो भोगोंसे विरक्ति तथा मोक्षकी प्राप्ति ही है। भगवान् दत्तात्रेयको दया आ गयी राजा जीमूतकेतुपर। वे मलिन वस्त्र पहिने, केश बिखराये, धूलिधूसर अवधूत वेशमें आये और राजभवनमें राजाके पलंगपर ही जा विराजे।

राजसेवक डरे; किंतु आगत आगन्तुक जो कि एक पागल जान पड़ता था, उसके मुखका तेज कुछ ऐसा था कि कोई सेवक उसे रोकने या हटानेका साहस नहीं कर सका। अपनी शय्यापर एक उन्मत्त भिखारीको बैठे देखकर राजा जीमूतकेतु क्रोधसे लाल हो उठे। वे उसके पास आकर बोले—'तू कौन है! यहाँ राजभवनमें क्यों घुस आया! निकल यहाँसे!'

अवधूत दत्तात्रेय बड़ी निश्चिन्ततासे बोले—'भाई! अप्रसन्न क्यों होते हो? यह तो धर्मशाला है। [illegible] इसमें ठहरो, मैं भी ठहरता हूँ।'

'यह मेरा राजभवन है, धर्मशाला नहीं। [illegible] चलो, बाहर जाओ!' राजाने डाँटा।

अवधूत—'तो इसमें [illegible] तुम्हीं हो?'

राजा—'कैसा पागल है, मुझे तो [illegible] पचास वर्ष हुए।'

अवधूत—'उससे पहले इसमें कौन था?'

राजा—'मेरे पूज्य पिता।'

अवधूत—'वे कहाँ गये? कब लौटेंगे?'

राजा—'उनका शरीरान्त हो गया। [illegible] नहीं लौटेंगे।'

अवधूतने इसी प्रकार कई [illegible] बताया कि कितने पूर्वज [illegible] इस भवनमें रहते थे। [illegible] आदमी! जहाँ मनुष्य आकर कुछ [illegible] जाय, फिर न लौटे वह धर्मशाला नहीं, तो [illegible]

दानका फल

गरमीके दिन थे, धूप तेज थी, पृथ्वी जल रही थी। महाराज भोजके राजकवि किसी आवश्यक कार्यको सम्पन्न करके नगरकी ओर लौट रहे थे। मार्गमें उन्होंने देखा कि एक बुढ़िया [illegible] पड़ रहा है। [illegible] बार-बार [illegible]

किंतु अपनी दुर्बलताके कारण भाग नहीं पाता। कविके सुकुमार हृदयसे यह देखा नहीं गया। आज वे भी पैदल ही थे। परंतु उस पुरुषके पास जाकर उन्होंने अपने जूते उतार दिये और बोले—'भाई! तुम इन्हें पहिन लो।'

कभी नंगे पैर चलनेका अभ्यास नहीं, कोमल चरण और संतप्त भूमि—कविको तो लगा कि वे मार्गमें ही मूर्छित होकर गिर पड़ेंगे। उनके पैरोंमें शीघ्र ही छाले पड़ गये। परंतु वे प्रसन्न थे एक दुःखी प्राणीकी सेवा करके। इसी समय राजाके हाथीको महावत उधरसे ले आ रहा था। राजकविको पहिचानता तो वह था ही, उसने उन्हें हाथीकी पीठपर बैठा लिया। संयोग ऐसा हुआ कि राजा भोज नगरमें निकले थे उस दोपहरीमें ही। नगरमें प्रवेश करते ही कवि और नरेशकी भेंट हो गयी। नरेशने हँसीमें ही पूछा—'आपको यह हाथी कहाँ मिल गया?' कविने उत्तर दिया—

उपानहं मया दत्तं जीर्णं कर्णविवर्जितम्।
तत्पुण्येन गजारूढो न दत्तं वैहि तद्गतम्॥

'राजन्! मैंने अपना पुराना, कर्णरहित (फटा) जूता दान कर दिया, इस पुण्यसे इस समय हाथीपर बैठा हूँ। जिस द्रव्यका दान नहीं हुआ, वह तो व्यर्थ नष्ट हुआ।'

उदार नरेशने वह हाथी कविको ही दे दिया।

एकान्त कहीं नहीं

दक्षिण भारतके प्रतिष्ठित संत स्वामी वादिराजजीके अनेकों शिष्य थे; किंतु स्वामीजी अपने अन्त्यज शिष्य कनकदासपर अधिक स्नेह रखते थे। उच्चवर्णके शिष्योंको यह बात खटकती थी। 'कनकदास सच्चा भक्त है' यह गुरुदेवकी बात शिष्योंके हृदयमें बैठती नहीं थी।

स्वामी वादिराजजीने एक दिन अपने सभी शिष्योंको एक-एक केला देकर कहा—'आज एकादशी है। लोगोंके सामने फल खानेसे भी आदर्शके प्रति समाजमें अश्रद्धा बढ़ती है। इसलिये जहाँ कोई न देखे, ऐसे स्थानमें जाकर इसे खा लो।'

थोड़ी देरमें सब शिष्य केले खाकर गुरुके समीप आ गये। केवल कनकदासके हाथमें केला ज्यों-का-त्यों रक्खा था। गुरुने पूछा—'क्यों कनकदास! तुम्हें कहीं एकान्त नहीं मिला?'

कनकदासने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—'भगवन्! वासुदेव प्रभु तो सर्वत्र हैं, फिर एकान्त कहीं कैसे मिलेगा।'

उदार स्वामी

गुजरातके धोलनगरके नरेश वीरधवल एक दिन भोजन करके पलंगपर लेटे थे और उनका सेवक राजाके पैर दबा रहा था। राजाने नेत्र बंद कर लिये थे। उन्हें निद्रित समझकर सेवकने उनके पैरकी अँगुलीसे रत्नजटित अँगूठी निकालकर मुखमें छिपा ली।

नरेशने अँगूठीकी कोई चर्चा नहीं की। उन्होंने वैसी ही दूसरी अँगूठी पहिन ली। दूसरे दिन पैर दबाते समय सेवकने फिर अँगूठी निकाली तो राजा बोले—'अब यह अँगूठी तो रहने दो। कल जो अँगूठी तुमने ली है, वह तो मैं तुम्हें दे चुका।'

सेवक राजाके पैरोंपर गिर पड़ा। उदार नरेश बोले—'डरो मत! दोष मेरा ही है। थोड़े वेतनसे तुम्हारी आवश्यकता पूरी नहीं होती, इसलिये तुम चोरी करनेपर विवश हुए हो। मुझे तुम्हारी आवश्यकताको पहले समझ लेना चाहिये था। आजसे तुम्हारा वेतन दुगुना किया गया।'

महल नहीं, धर्मशाला

दानका फल

गिपर्योंमें दुगन्ध

डाइन खा गयी

धनका परिणाम

रुपया मिला कि भजन छूटा
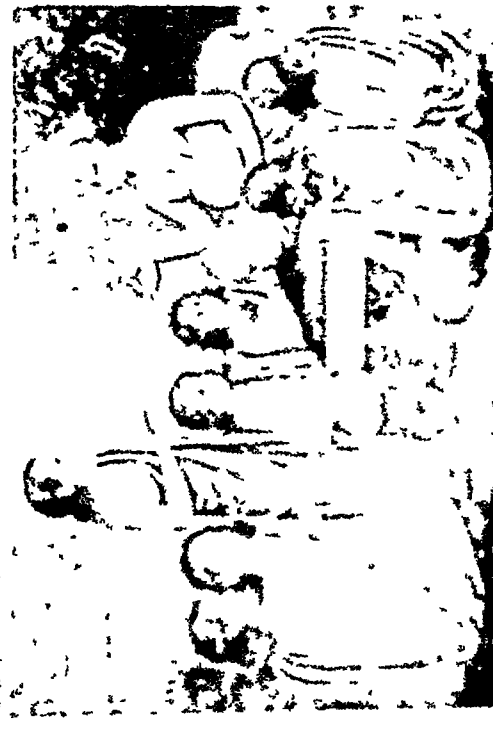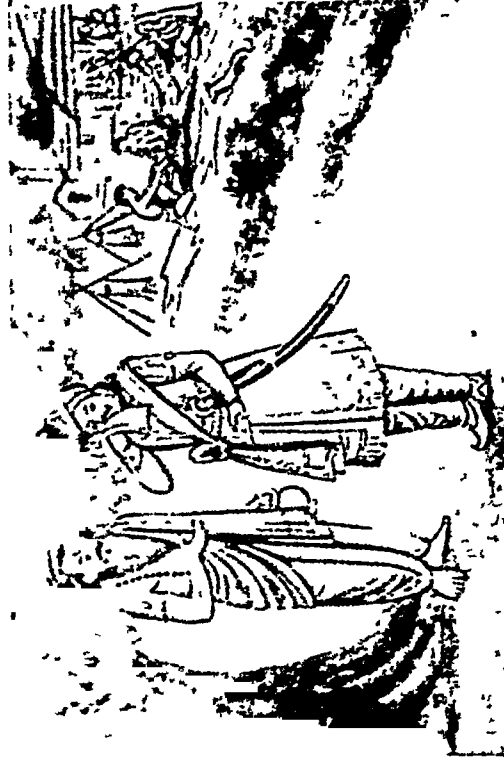
विषयोंमें दुर्गन्ध

कोई भक्त राजा एक महात्माकी पर्णकुटीपर जाया करते थे। उन्होंने एक बार महात्माको अपने महलमें पधारनेके लिये कहा, पर महात्माने यह कहकर टाल दिया कि 'मुझे तुम्हारे महलमें बड़ी दुर्गन्ध आती है, इसलिये मैं नहीं जाता।' राजाको बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने मन-ही-मन सोचा—'महलमें तो इत्र-फुलेल छिड़का रहता है, वहाँ दुर्गन्धका क्या काम। महात्माजी कैसे कहते हैं पता नहीं।' राजाने सकोचमें फिर कुछ नहीं कहा। एक दिन महात्माजी राजाको साथ लेकर घूमने निकले। घूमते-घामते चमारोंकी बस्तीमें पहुँच गये और वहाँ एक पीपलकी छायामें खड़े हो गये। चमारोंके घरोंमें कहीं चमड़ा कमाया जा रहा था, कहीं सूख रहा था तो कहीं ताजा चमड़ा तैयार किया जा रहा था। हर घरमें चमड़ा था और उसमेंसे बड़ी दुर्गन्ध आ रही थी। हवा भी इधरकी ही थी। दुर्गन्धके मारे राजाकी नाक फटने लगी। उन्होंने महात्मासे कहा—'भगवन्! दुर्गन्धके मारे खड़ा नहीं रहा जाता—जल्दी चलिये।' [illegible] दुर्गन्ध आती है! [illegible] पुरुष, स्त्रियाँ और [illegible] हैं, कोई [illegible] तो दुर्गन्ध नहीं आती, [illegible] राजाने कहा—'भगवन्! [illegible] धंधेमें रहते-रहते इनकी [illegible] नाक ही ऐसी हो गयी है कि इन्हें [illegible] नहीं आती। पर मैं तो [illegible] जल्दी चलिये—अब तो एक [illegible] जाता।' महात्माने हँसकर कहा—[illegible] तुम्हारे राजमहलका भी है। [illegible] तुम्हें उनमें दुर्गन्ध नहीं आती—तुम्हारा [illegible] गया है। पर मुझको तो [illegible] आती है। इसीसे मैं तुम्हारे घर नहीं [illegible]।'

राजाने रहस्य समझ लिया। [illegible] को साथ लिये [illegible] चल दिये।

रुपया मिला और भजन छूटा

एक धनवान् सेठकी कोठीके नीचे ही एक मोची बैठा करता था। वह जूते बनाता जाता था और भजन गाता जाता था। सेठ उदार थे, धर्मात्मा थे, भगवद्-भक्त थे। वैसे तो अपने कार्य-व्यापारमें व्यस्त होनेके कारण मोचीकी ओर उनका ध्यान काहेको जाता; किंतु वे एक बार बीमार पड़ गये। रोग-शय्यापर पड़े-पड़े मोचीके द्वारा गाये जाते भजन उन्हें बड़े प्रिय लगे। उन भजनोंको सुनकर मन भगवान्‌में लगा रहा। चित्त शरीरके रोगका चिन्तन न करके दूसरी ओर लगा रहे तो रोगके कष्टका बोध ही नहीं होता। सेठजीको भी मोचीके भजनोंके कारण कष्ट नहीं हुआ। इससे प्रसन्न होकर उन्होंने मोचीको बुलाया और उसे पचास रुपये दिये।

रुपये लेकर मोची गया और [illegible] बंद हो गया। दूसरे दिन [illegible] पास पहुँचा। सेठजीने पूछा—[illegible] क्यों बंद कर दिया?'

मोची बोला—[illegible] हैं। [illegible] और भजन छूटा। [illegible] करूँगा। [illegible] नहीं आती। मैं [illegible] लिये बहुत है।'

धनका परिणाम—हिंसा

दो सगे भाई थे, ब्राह्मण थे और दरिद्र थे। बहुत कम पढ़े-लिखे थे दोनों। कंगालीसे ऊबकर दोनों साथ ही घरसे निकले और समुद्र-किनारेकी एक बस्तीमें पहुँचे। वहाँ मछुओंके घर ही अधिक थे। बड़ी ऊँची पगड़ी, भव्य तिलक और पोथियोंकी बड़ी-बड़ी गठरी थी दोनों भाइयोंके पास। दोनोंने अपनेको ज्योतिषी प्रसिद्ध कर रखा था। मन्त्र-तन्त्र, झाड़-फूँक सभी करते थे वे। दोनोंने उन अपढ़-सीधे, श्रद्धालु मछुओंको भरपूर ठगा। कुछ दिनोंमें ही उनके पास पर्याप्त धन हो गया। दोनों जब घर लौटने लगे, तब उनके पास उनके कमाये धनके रूपमें सोनेकी मोहरोंसे भरी थैली थी।

बड़ी विचित्र दशा थी। मोहरोंकी थैलीको बारी-बारीसे वे अपने पास रखते थे। परंतु जिसके पास थैली रहती थी, उसीके मनमें विचार आता था—'मैं यदि अपने भाईको मार डालूँ तो पूरा धन मेरा हो जाय।'

दोनों सगे भाई थे। दोनोंमें प्रगाढ़ प्रेम था। इसलिये दोमेंसे किसीने अपने पापपूर्ण विचारको कार्यरूप नहीं दिया। उलटे घरके समीप पहुँचकर जिसके पास थैली नहीं थी, उसने दूसरेसे कहा—'भैया! क्षमा करना। जब-जब यह थैली मेरे पास आयी, तब-तब मेरे मनमें तुम्हें मार देनेकी इच्छा हुई। इसलिये यह धन तुम्हीं रक्खो।'

दूसरे भाईने कहा—'मेरी भी यही दशा है। थैली मेरे पास है, इसलिये इस समय भी मेरे मनमें यही विचार उठ रहे थे। हम दोनों ही भ्रातृत्वका नाश करनेवाले इस धनका त्याग कर दें, यही उत्तम होगा।'

घरके समीप ही एक गड्ढा था, जिसमें घरका कूड़ा-कचरा डाला जाता था। दोनोंने वह थैली उसीमें फेंक दी। यह भी चिन्ता नहीं की कि उसे ढक दिया जाय। वे उसे फेंककर घर चले गये। परंतु उनकी बहिन थोड़ी देरमें ही फल तथा शाकके छिलके उस गड्ढेमें डालने आयी। थैली लुढ़की पड़ी थी। मोहरें कुछ बाहर गिरी दीख रही थीं। उस नारीने उस धनको उठाकर वस्त्रोंमें छिपाना प्रारम्भ किया, जिससे रात्रिमें अपने पतिके पास उसे भेज सके।

'आप कूड़ेके गड्ढेमें क्या कर रही हैं?' दो भाइयोंमेंसे एककी स्त्री किसी कामसे घरसे बाहर निकली और अपनी ननदको कूड़ेके गड्ढेमें कुछ करते देख उसके पास पहुँचकर पूछने लगी। ननदने समझा कि भाभीने मोहरें देख ली हैं। हाथमें फल काटनेकी छुरी थी ही, उसे उसने भाभीके पेटमें भोंक दिया।

छुरी लगनेसे एक चीत्कार की घायल स्त्रीने। उस चीत्कारको सुनकर उसका पति दौड़ आया। बहिन घबराकर भागने लगी तो उसकी बगलमें दबी थैली नीचे गिर पड़ी। अब बहिनको और कुछ नहीं सूझा, उसने वह छुरी अपने पेटमें भी मार ली।

'भैया! पापसे कमाये इस धनने फेंक देनेपर भी इतना अनर्थ किया।' दूसरा भाई भी दौड़ आया था। जो पहले आया था, वह सिर पकड़कर बैठ गया था वहीं। —सु० सिं०

डाइन खा गयी

दो भाई राजपूत जवान ऊँटपर चढ़कर कमाईके लिये परदेश जा रहे थे। उन्हें दूरसे ही एक साधु दौड़ता सामने आता दिखायी दिया। पास आते-आते उसने कहा—'भाइयो! आगे मत जाना, बड़ी भयावनी डाइन बैठी है। पास जाओगे तो खा ही जायगी।' राजपूत सवारोंने साधुसे ठहरनेको कहकर उससे इसका

स्पष्टीकरण कराना चाहा, पर वह तो दौड़ता ही चला गया। ठहरा नहीं।

उसके चले जानेपर राजपूत भाइयोंने विचार किया कि 'साधु निहत्था है, डर गया है। हमारी जवान उम्र है, शरीरमें काफी बल है, बंदूक-तलवार हमारे पास हैं। डाइन हमारा क्या कर लेगी। फिर, टलना तो कायरोंका काम है। हम तो बहादुर राजपूत हैं।' यों विचारकर वे आगे चल दिये। कुछ दूर जानेपर उन्हें एक जगह सोनेकी मोहरोंकी थैलियाँ पड़ी दिखायी दीं। वे ठहर गये, ऊँटसे उतरकर देखा तो सचमुच सोनेकी मोहरें हैं और गिननेपर पूरी दस हजार मोहरें हुईं। उन्होंने कहा—'बड़ा चालाक था वह साधु। वह जरूर कोई सवारी लाने गया है। हमलोगोंको डाइनका डर दिखाकर वह चाहता था कि ये उधर न जायँ तो सवारी लाकर मैं मोहरोंको ले जाऊँ। बड़ा अच्छा हुआ जो हमलोग उसके धोखेमे नहीं आये और निडर होकर यहाँतक पहुँच गये।' दोनों बहुत प्रसन्न थे। अब कहीं परदेश जानेकी आवश्यकता रही ही नहीं। बिना ही कुछ किये तकदीर खुल गयी। सोचा—दिनभरके भूखे हैं—कुछ खा-पी लें तो फिर घर लौटें। बड़े भाईने कहा—'गाँव ज्यादा दूर नहीं है, जाकर खानेके लिये हलवा-पूरी ले आओ तो खा लें।' छोटा भाई हलवा-पूरी लाने चला गया।

इधर दस हजार मोहरें देखकर बड़े भाईका मन ललचाया। विचार आया—'हाय! इनका आधा हिस्सा हो जायगा। दसकी जगह पाँच हजार ही मुझे मिलेंगी। क्या मुझे सब नहीं मिल सकतीं।' लोभ पापका बाप है। लोभने बुद्धि बिगाड़ दी। तत्काल निश्चय कर लिया। मिल क्यों नहीं सकतीं। अब तो अवश्य ये दसों हजार मोहरें मेरी ही होंगी। बंदूक भरकर रख लूँ। वह मिठाई लेकर लौटता ही होगा। बस, सामने आते ही गोली दाग दूँगा। वह मर ही जायगा। [illegible] हैं नहीं। [illegible] गोड़कर [illegible] दूँगा। बस, [illegible] हो ही जायँगी। [illegible] हूँजेने [illegible] गया। [illegible] बंदूक तैयार कर ली गयी।

उधर छोटे भाईके मनमें भी [illegible] दस हजार मोहरें पूरी [illegible] भी बुद्धि बिगड़ी। उसने निश्चय [illegible] और उसका चूर्ण [illegible] 'मैं जाकर कहूँगा—भैया! [illegible] अभी पका हूँ, पीछे [illegible] खाते ही काम तमाम हो जायगा। [illegible] सारी मोहरें मेरी हो जायँगी, [illegible] गाड़कर घर चला जाऊँगा।'

इसने यही किया। [illegible] पहुँचा कि दनादन दो-तीन गोलियाँ [illegible] पड़ा। प्राण-पखेरू [illegible] उड़ गये। [illegible] भाईके आनन्दका पार नहीं रहा। [illegible] करके सफल होता है, तब [illegible] प्रमत्त हो जाता है। [illegible] गया, मनमें आया कि [illegible] लाश गाड़नेका काम करूँगा।'

हलवा खाया। उसने [illegible] ही चक्कर आने लगे और [illegible] वहीं ढेर होकर गिर पड़ा। [illegible] है—'इस अर्थ [illegible] चाहिये। इसके [illegible] हिंसा, असत्य, [illegible] बुद्धि, वैर, [illegible] स्वार्थ। बड़े [illegible] [illegible] जाते हैं और [illegible]

[illegible] —प्रेमको भूलकर एक दूसरेका प्राण [illegible] उतारू हो जाते हैं।' यही यहाँ भी हुआ। राजपूत भाइयोंको धनरूपी डाइनने बात-की-बातमें खा लिया !

यह वत्सलता !

[illegible] मजदूरबस्तीकी गलियोंमें गरीबोंकी बस्ती थी। उसमें मजदूरों और श्रमिकोंके लिये छोटे-छोटे मकान बने हुए थे। दिनभर कारखानोंमें मजदूरी कर वे रातको इन्हीं गंदी गलियोंमें विश्राम करते थे।

एक दिन यह निश्चय किया गया कि छुट्टी मनाने तथा मनबहलावके लिये छोटे-छोटे बच्चोंको देहाती क्षेत्रमें भेजा जाय। इस निश्चयके अनुसार बच्चोंको गाड़ीमें बैठा लिया गया। बच्चोंके गरीब माता-पिता गाड़ी छूटनेके समय उन्हें देखने आये थे। प्लेटफार्मपर बड़ी भीड़ थी; गरीबोंकी भीड़ ऐसी लगती थी मानो दरिद्रताने चलता-फिरता रूप धारण कर लिया हो।

बच्चोंके लिये खाने-पीनेके सामान गाड़ीमें रक्खे जा रहे थे। बिस्तरे बिछाये जा रहे थे। माँ-बाप अपने-अपने बच्चोंको जलपान आदिके लिये पैसे दे रहे थे। सब-के-सब प्रसन्न थे। अचानक उन महिलाओंमेंसे किसी एककी दृष्टि छोटी-सी कोमल बच्चीपर पड़ी जो उदास थी, जिसके चेहरेपर दरिद्रताकी रेखाएँ अङ्कित थीं और आँखोंमें दुःखके काले-काले बादल थे। बच्ची देखनेमें बड़ी प्यारी लगती थी। वह महिला उस बच्चीके पास गयी जो गाड़ीमें एक किनारेपर दुबकी-सी बैठी हुई थी।

'बेटी ! तुम्हारे माँ-बाप कहाँ हैं ? वे यहाँतक पहुँचाने क्यों न आ सके ? तुम्हारे बहन-भाई आदि कहाँ हैं ?' महिलाने अपने हृदयकी वत्सलता—ममता उँड़ेल दी। बच्चीकी आँखोंमें अश्रुकण थे, वह कुछ न बोल सकी। उसके पास जलपान आदिके लिये पैसे भी नहीं थे। पता लगानेपर महिलाको यह बात विदित हो सकी कि उसका पिता मर चुका है। परिवारमें केवल माँ है जो मजदूरी करके पेट पालती है; वह इसलिये उसे पहुँचाने नहीं आ सकी कि भय था कहीं मजदूरीके पैसे न कट जायँ। महिलाका हृदय भर आया। वह करुणाका वेग समेटकर लोगोंके देखते-देखते किसी ओर चली गयी।

थोड़ी देरमें गाड़ीने सीटी दी। वह खुलनेवाली ही थी कि महिला प्लेटफार्मपर आ पहुँची।

'जल्दी कीजिये।' गार्डने सावधान किया।

महिलाने बच्चीको मिठाईकी एक टिकिया दी और उसके हाथमें कुछ पैसे रखकर स्नेहभरी दृष्टिसे देखा। बच्चीका कुम्हलाया चेहरा खिल उठा; उसके लाल-लाल ओठोंकी लालिमा बढ़ गयी।

कौन जानता था कि छोटी बच्चीकी मुसकराहटके लिये उस गरीब महिलाने-जिसके शरीरका अलंकार काली ओढ़नी और शालके सिवा और कुछ भी नहीं था, अपनी शाल बेच दी होगी।

गाड़ी चल पड़ी और महिला वत्सलताकी सजीव मूर्ति-सी प्लेटफार्मपर खड़ी होकर खिड़कीसे झाँकती बच्चीको ही देखती रही।—रा० श्री०

वह अपने प्राणपर खेल गयी

इडिथ कवेल एक अंग्रेज परिचारिका थी। वह प्रथम महायुद्धके समय घायलोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेके लिये बेलजियम गयी हुई थी। वह शत्रु-मित्र सबकी समान रूपसे सेवा करती थी। पट्टी बाँधते समय इस बातका उसे तनिक भी विचार नहीं रहता था कि वह शत्रु-सैनिकका उपचार कर रही है या अपने पक्षके वीरोंकी सेवा कर रही है

उसे इस बातसे घृणा अवश्य थी कि जर्मन सैनिक बेलजियमके नागरिकोंको अपने देशके विरुद्ध काम करनेके लिये विवश करें। जर्मन विजेताओंद्वारा नागरिकोंको दास बनाया जाना उसके लिये सर्वथा असह्य था। ऐसी स्थितिमें वह संत्रस्त लोगोंको अपने शिविरमें शरण देती थी और उन्हें हालैंड या फ्रान्स भाग जानेके लिये प्रोत्साहन और सहायता देती थी।

एक दिन जर्मन सैनिकोंने उसको ऐसा करते देख लिया। वह बंदी बना ली गयी। दोनों ओरकी सेनाओंमें हाहाकार मच गया। उसके मृत्यु-दण्डकी घोषणा की गयी। अनेक देशोंके [illegible] सैनिकताके नाते [illegible] न्यायालयने उनके [illegible] कर दी।

× × × ×

'मुझे तुम लोग [illegible] गनमें जर्मन-सैनिकोंसे [illegible]

'मृत्युके उपरान्त'—उत्तर [illegible] आपको एक [illegible]

'ईश्वर और [illegible] मनुष्यके लिये पर्याप्त नहीं है। [illegible] नहीं है कि अपने देशकी [illegible] देशके नागरिकोंको [illegible] प्रति मेरे मनमें घृणा और [illegible]

परिचारिका [illegible] पिस्तौलने उसके जीवनका [illegible] फवेलने पवित्र परिचारिका—[illegible] स्वरूप स्वर्गकी यात्रा की। —[illegible]

मनुष्यका गर्व व्यर्थ है

इंगलैंडके इंजिनियरोंने वर्षों सरतोड़ परिश्रम किया था। सैकड़ों मजदूर लंबे समयतक काम करते रहे थे। प्रसिद्ध जलयान टिटैनिक जिस दिन जलमें उतारा गया, स्वयं इंगलैंडके बादशाह वहाँ उपस्थित थे। इतना विशाल, इतना भव्य और इतना सुदृढ़ जलयान कि विश्वमें किसीने कल्पना न की हो। एक पूरे नगर जितना विस्तृत था वह। उसमें विश्राम, भोजन आदिके स्थान तो थे ही, उद्यान थे, क्रीडांगन थे। फुटबॉलका मैदान था। ऐसी कोई सुविधा उसने अप्राप्य नहीं थी जो इंगलैंडके नागरिकको पृथ्वीपर किसी नगरमें मिल सकती थी। निर्माताओंने [illegible] घोषणा की थी—'टिटैनिकको कोई [illegible] सकता। टिटैनिक अभेद्य है।'

विशेषज्ञोंने इस घोषणाका समर्थन किया [illegible] इंगलैंडका मस्तक गर्वसे [illegible] जलमें उतरा और [illegible] इंगलैंडके [illegible] उसीमें थे। [illegible] सदस्य, [illegible] उनके परिवार [illegible]

[illegible]

[illegible] था । [illegible] कि [illegible] क्या कुछ [illegible] है । [illegible] टिटैनिक—उसके यात्री अपने [illegible] निमग्न थे । बेतारके तारसे सूचना दी—'[illegible] रहना चाहिये ।'

[illegible] 'रिव्यू आफ रिव्यूज़' के स्वामी मि० स्टेड भी उसी यानमें थे । सूचना पाकर वे तुरंत कप्तानके पास गये । कप्तान हँसा—'व्यर्थकी बात ! आप निश्चिन्त रहें । हमारा टिटैनिक अजेय है । उसकी लौह-दीवारें अभेद्य हैं ।'

परंतु पूरे दस मिनट भी नहीं बीते थे इस बातको जब कि टिटैनिक फट गया था समुद्रमें बहते हुए एक विशाल हिमपर्वतसे टकराकर । उसमें समुद्रका जल वेगपूर्वक प्रवेश कर रहा था । यात्री जीवनकी आशा छोड़ चुके थे और कप्तान बेतारके तारपर बार-बार संदेश भेज रहा था—'टिटैनिक डूब रहा है । हमारी शीघ्र सहायता कीजिये ।'

मनुष्यकी विद्या-बुद्धिके गर्वका प्रतीक टिटैनिक अपने महामहिम यात्रियोंके साथ डूब गया सागरके अतल जलमें ।—सु० सिं०

अच्छी फसल

जर्मनीकी सेनाके कोई उच्चाधिकारी किसी युद्धके समय अपने शिविरसे कुछ सैनिकोंके साथ घोड़ोंके लिये घास एकत्र करने निकले । समीपमें एक गाँवके किसानसे उन्होंने पूछा—'चलकर बताओ कि इस गाँवमें किस खेतमें अच्छी फसल है ।'

विवश होकर किसान उन सैनिकोंके साथ चल पड़ा । [illegible] रहे थे । बहुत उत्तम फसल थी । सैनिक चाहते थे कि उन खेतोंकी फसल काट लें; किंतु किसान बार-बार कहता जाता था—'कुछ और आगे चलिये, बहुत उत्तम फसल आपको बताऊँगा ।'

धीरे-धीरे सैनिकोंको किसान लगभग गाँवकी सीमाके किनारे ले गया । वहाँ उसने एक खेत बतलाया । सैनिकोंने उस खेतमें फसल काटकर गट्ठे बाँधे और घोड़ोंपर रख लिये । सैनिक अधिकारीने रुष्ट होकर किसानको डाँटा—'व्यर्थ तू हमें इतनी दूर क्यों ले आया ? इससे अच्छी फसल तो पासके खेतोंमें ही थी ।'

किसानने कहा—'मैं जानता था कि आपलोग खेतके स्वामीको फसलका मूल्य देनेवाले तो हैं नहीं । मैं किसी दूसरेका खेत आपलोगोंको बताकर उसकी हानि कैसे कराता । यह मेरा अपना खेत है और यह तो आप भी मानेंगे ही कि मेरे लिये तो इसीकी फसल सबसे अच्छी फसल है ।'

सैनिक अधिकारी लज्जित हो गया । उसने किसान-को फसलके मूल्यके साथ पुरस्कार देकर सम्मानित किया । —रा० श्री०

महान् वैज्ञानिककी विनम्रता

अल्बर्ट आइंस्टीनने हमारे जगत्का चित्र ही बदल दिया । परमाणु युग, वह चाहे हमारे वृद्धि या विनाश जिस किसीका भी हेतु क्यों न हो, उसके पिता आइंस्टीन ही हैं । उन दिनों जब वे परमाणु-बम-सम्बन्धी अनुसंधानमें व्यस्त थे, प्रायः व्यंग करते हुए कहते—'यदि मेरी थ्योरी, मेरा सिद्धान्त ठीक सिद्ध हुआ तब तो जर्मनी मुझे महान् जर्मनवासी कहकर अभिनन्दन करेगा और फ्रांसवाले कहेंगे कि आइंस्टीन विश्वका महान् नागरिक है । पर यदि यह मिथ्या सिद्ध हुआ तो ये ही फ्रांसवाले मुझे जर्मनवासी कहने लगेंगे और जर्मनवाले मुझे यहूदी कहेंगे ।'

१९५२ के नवंबरमें इसराइलके अध्यक्ष डाक्टर

चैम चेज़मेनकी मृत्युपर इमगहड मण्डलने आईन्स्टीनसे अध्यक्षता स्वीकार करनेकी प्रार्थना की। पर उन्होंने यह कहकर उनके प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया कि 'यद्यपि मैं आपके इस प्रस्तावका बड़ा आभारी हूँ, पर मैं इस [illegible] नहीं मानता।'

[illegible]

प्रेमका झरना

संत बोनीफेसके जीवनकी एक सरस कथा है। उनका पालन-पोषण देवनके पहाड़ी वातावरणमें हुआ था। बचपनसे ही वे एकान्तमें निवास कर भगवान्‌के प्रेमामृतका रसास्वादन किया करते थे। उनके पिताने बोनीफेसको पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी थी कि वे आजीवन भगवान्‌का भजन करते रहें तथा दीन-दुखियों और असहायोंकी सेवामें लगे रहें। उनका जीवन पूर्ण भागवत था।

एक समयकी बात है। वे भगवान्‌की मधुर भक्तिका प्रचार करनेके लिये जर्मनीके किसी देहाती क्षेत्रमें जा रहे थे। दैवयोगसे काले वन (ब्लैक फॉरेस्ट) में पहुँच गये। वे थकावट और प्याससे परिश्रान्त थे। सारा शरीर शिथिल हो गया था। पानीके लिये व्याकुल थे, पर उस निर्जन वनमें पानी मिलना कठिन ही था।

'माँ! थोड़ा-सा दूध मुझे भी दे दो, नहीं तो प्राण निकल जायँगे।' संतने एक महिलासे निवेदन किया, जो थोड़ी दूरपर गाय दुह रही थी। बोनीफेसको देखकर उसके हृदयमें दयाके घन उमड़ आये। [illegible] और उन्हें [illegible]।

बोनीफेस [illegible] पहले कुछ दूर गये [illegible] पहुँचते ही [illegible] भगवान्‌की कृपासे [illegible] निर्झरिणी [illegible] शान्त की।

[illegible] उठी और घड़ा लेकर [illegible]।

'माँ! तुम्हारे [illegible] दया है। तुम इस [illegible] पर स्मरण रखो कि [illegible] घृणा करनेवाले [illegible] जल सूख जायगा।'

उसका नाम [illegible] तटपर [illegible]

बुद्धिमानोंका परिचय

चीनके एक बादशाहके शासन-कालमें प्रजाको अनेक प्रकारके कर देने पड़ते थे। बाहरसे आनेवाली वस्तुओं पर बड़ा शुल्क देना पड़ता था। बादशाहने इस सम्बन्धमें शिकायत करनेवाला किसीने साहस नहीं किया। [illegible]

नगरमेंसे सामग्री बाहर करना चाहिये ।

'इसमें कोई बात नहीं है । बाहरके नगरमें प्रवेश ही नहीं कर सकते ।' एक बुद्धिमान् सभासदस्यने अपना मतप्रदर्शन किया ।

बादशाहके कारण पूछनेपर उसने कहा कि 'उन-पर अधिकाधिक कर लग जायगा और वे प्रवेश करनेमें असमर्थ हो जायँगे ।'

बादशाहने उसके कथनका मर्म समझ लिया और उसकी बुद्धिमानीकी बड़ी प्रशंसा की । उसने प्रजापर लगाया हुआ आधा कर छोड़ दिया । —रा० श्री०

प्रार्थनाका फल

जार्ज मूलरका प्रार्थनामें अटल विश्वास था । अपने जीवनमें उन्हें किसी भी दिन निराश नहीं होना पड़ा । एक समयकी बात है । वे जहाजमें कनाडा जा रहे थे । अचानक चारों ओर घना कोहरा छा गया । जहाज किसी तरह आगे ही नहीं बढ़ पाता था । कप्तान निराश हो गया । उसे जहाज रोक देना पड़ा । चौबीस घंटे बीत गये, पर आकाश साफ नहीं हो सका ।

'कप्तान ! मुझे शनिवारको तीसरे पहर क्यूबेक पहुँचना ही है ।' मूलरने अपना कार्यक्रम सूचित किया ।

'यह असम्भव है ।' कप्तानने विवशता प्रकट की ।

'ठीक है, यदि आपका जहाज मुझे नहीं पहुँचा सकता तो परमात्मा कोई दूसरा रास्ता निकालेंगे ही । मैंने पिछले सत्तावन सालोंमें किसी भी दिन अपना कार्यक्रम नहीं तोड़ा है । चलिये, हमलोग भगवान्से प्रार्थना करें ।' मूलरने निवेदन किया ।

कप्तान सोचने लगा कि न जाने किस पागलसे पाला पड़ गया है । पता नहीं है कि किस पागलखानेसे आ गया है ।

'मूलर महोदय ! क्या आप देखते हैं कि कितना घना कोहरा है ?' कप्तानने उनका प्रस्ताव टाल दिया ।

'मेरा ध्यान कोहरेके घनत्वपर नहीं है; मैं तो चिन्मय परमात्माकी शक्तिमत्ताका चिन्तन कर रहा हूँ; उनकी शक्ति और कृपासे मेरे जीवनकी प्रत्येक परिस्थिति नियन्त्रित है ।' ऐसा कहकर मूलरने विनत होकर भगवान्से प्रार्थना की; प्रार्थना समाप्त करनेपर उन्होंने कप्तानको प्रार्थना करनेसे रोक दिया ।

'भाई ! आपको प्रार्थना करनेकी आवश्यकता नहीं है और न तो आपका इसमें विश्वास ही है । कप्तान ! मैं अपने ईश्वरको अच्छी तरह जानता हूँ । मेरे जीवनमें एक दिन भी ऐसा नहीं है जिस दिन उनकी कृपाका मुझे साक्षात्कार न हुआ हो । उठो, दरवाजा खोलो । कोहरा उड़ गया है ।' मूलरने विश्वास दिलाया ।

कोहरा निःसंदेह उड़ गया था । जार्ज मूलर ठीक समयपर क्यूबेक पहुँच गये । उन्हें प्रार्थनाका पूरा-पूरा फल मिल गया —रा० श्री०

सच्चा साहसी

'तुमलोगोंको किला छोड़नेके पहले सारे नगरको जलाकर नष्ट कर देना चाहिये । तुम्हारी संख्या दो सौ है; तुम्हें किसी बातका भय नहीं होना चाहिये ।' अल-सीबिदके सेनापतिने शेष सैनिकोंको आगे बढ़नेका आदेश दिया । कवलाके किलेमें केवल दो सौ सैनिक रह गये । कवला एजियन सागरका एक बंदरगाह है ।

नागरिकोंने इस बातका समाचार पाते ही अपने घरके दरवाजे बंद कर लिये । वे विवश और निराश्रित

कार्डीगनका आदेश है। हम सभी बारूदमें अपने [illegible] सेनापतिके आदेशका पालन करेंगे।' कार्डीगनके सामन्तने अपनी टुकड़ीको आगे बढ़नेका आदेश दिया।

'बढ़े चलो! देशके स्वाभिमानकी रक्षाका प्रश्न है। पीछे हट गये तो दुनियामें महारानी विक्टोरियाका नाम कलङ्कित हो उठेगा। [illegible] हमारी कायरी करनीपर यूरोप और इंग्लैंडके निवासी लज्जासे नतमस्तक हो जायँगे।' सामन्त आगे बढ़नेवाली टुकड़ीको प्रोत्साहित कर रहा था। रूसी सैनिक बड़ी निर्दयतासे गोली बरसा रहे थे। इंगलैंडके वीर सैनिक बालकलावाकी खाईमें—मृत्युकी घाटीमें आज्ञापालनकी पवित्र बलिवेदीपर आत्मयज्ञ कर रहे थे। लुसन यह सुनकर आश्चर्यचकित हो गया कि सामन्त बच गया।

'कारडीजनका सामन्त वीर आत्मा है।' लुसनके अधर उसकी प्रशंसामें स्पन्दित थे। उसकी आज्ञाके परिणामस्वरूप मृत्युकी घाटीमें पाँच सौ वीर सैनिकोंने प्राण निछावर कर दिये। —रा० श्री०

ईश्वर रक्षक है

एक आचार्य संत एक वृक्षके नीचे अकेले सो रहे थे। [illegible] एक विरोधी वहाँ पहुँचा और उसने ललकारा—'अरे, उठ और देख कि अब तेरी रक्षा करनेवाला यहाँ कौन है।'

आचार्य उठे। निर्भीक स्वरमें उन्होंने उत्तर दिया 'मेरा प्रभु मेरा रक्षक है' और झपटकर विरोधीके हाथकी तलवार उन्होंने छीन ली। अब उन्होंने पूछा—'अब तू बता कि तेरी रक्षा करनेवाला कौन है?'

विरोधी काँप गया। सूखे मुख वह बोला—'अब यहाँ मेरी रक्षा करनेवाला तो कोई नहीं है।'

आचार्यने तलवार फेंक दी और उससे कहा—'अपनी तलवार उठा ले और आजसे दया करनेकी मुझसे शिक्षा ले।'

वह लज्जित हो गया और आचार्यके चरणोंपर गिर पड़ा। वह उसी दिनसे उनका अनुयायी बन गया।

—सु० सिं०

दयालु स्वामीके दिये दुःखका भी स्वागत

हकीम लुकमान बचपनमें गुलाम थे। एक दिन उनके मालिकने एक ककड़ी खानी चाही। मुँहमें लगाते ही जान पड़ा कि ककड़ी अत्यन्त कड़वी है। मालिकने ककड़ी लुकमानकी ओर बढ़ा दी—'ले, इसे तू खा ले!' लुकमानने ककड़ी ले ली और बिना मुँह सिकोड़े वे उसे खा गये।

लुकमानके मालिकने समझा था कि इतनी कड़वी ककड़ी कोई खा नहीं सकता। लुकमान इसे फेंक देगा। परंतु जब लुकमानने पूरी ककड़ी खा ली तो वह आश्चर्यचकित होकर पूछने लगा—'तू इतनी कड़वी ककड़ी कैसे खा सका?'

लुकमान बोले—'मेरे उदार स्वामी! आप मुझे प्रतिदिन स्वादिष्ट पदार्थ प्रेमपूर्वक देते हैं। आपके द्वारा प्राप्त अनेक प्रकारके सुख मैं भोगता हूँ। ऐसी अवस्थामें एक दिन आपके हाथसे कड़वी ककड़ी मुझे मिली तो उसे मैं क्यों आनन्दपूर्वक नहीं खाऊँ?'

वह व्यक्ति समझदार था, दयालु था और धर्मात्मा था। उसने लुकमानका आदर किया। वह बोला—'तुमने मुझे उपदेश किया है कि जो परमात्मा हमें अनेक प्रकारके सुख देता है, उसीके हाथसे यदि कभी दुःख भी आवे तो उस दुःखको प्रसन्नतापूर्वक भोग लेना चाहिये। आजसे तुम गुलाम नहीं रहे।'

—सु० सिं०

ईश्वरके साथ

संत खैयास अपने शिष्यके साथ वनमें जा रहे थे। नमाजका समय हुआ और झरनेके पानीसे 'वजू' करके दोनोंने चद्दर बिछायी, नमाज पढ़ने खड़े हुए। इतनेमें पास ही कहींसे सिंहने गर्जना की। शिष्यके तो प्राण सूख गये। वह भागकर पासके वृक्षपर चढ़ गया और वहाँ भी थर-थर काँप रहा था।

सिंह आया और चला गया। खैयासकी ओर उसने देखातक नहीं और खैयासको ही कहाँ फुरसत थी कि सिंहकी ओर देखते। वे नमाज पढ़ रहे थे, चुपचाप नमाज पढ़ते रहे। सिंहके चले जानेपर शिष्य भी पेड़से उतरा और उसने भी नमाज पढ़ी। [illegible]

नमाज पूरी हुई। दोनों [illegible] पकड़ा। अचानक एक [illegible] बैठकर काटा। [illegible] पाससे चला गया, तब [illegible] तक नहीं और अब [illegible] चीख रहे हैं!'

खैयास बोले—'भाई! [illegible] था और इस समय मनुष्यके ([illegible]) [illegible]

—[illegible]

भगवान् सब अच्छा ही करते हैं

घटना मिश्रदेशकी है। वहाँके एक भगवद्भक्त गृहस्थकी झोपड़ी वनके समीप थी। उसके घरमें उसकी पत्नीके अतिरिक्त तीन प्राणी और थे। एक बैल था, जो बोझा ढोनेके काम आता था। वही उस परिवारकी आजीविकाका साधन था; क्योंकि उसीकी पीठपर लादकर सामग्री बेचने वह व्यक्ति जाता था। एक कुत्ता था जो उस जंगली प्रदेशमें रात्रिको चौकीदारी करके उस परिवारकी रक्षा करता था। एक तोता था और वह उस संतानहीन पति-पत्नीको बहुत प्यारा था। वह तोता रात्रिके अन्तिम प्रहरमें उस गृहस्थको सदा जगा दिया करता था।—'उठो! भगवान्का भजन करो।'

एक रात्रि वनसे निकलकर सिंह आया और उसने गृहस्थके बैलको मार दिया। बेचारा कुत्ता सिंहके भयसे ही भागकर घरमें छिप गया था। गृहस्थ सवेरे उठा। मरे हुए बैलको उसने देखा और बोला—'अच्छा हुआ, भगवान् जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं। यह उनका विधान है, इसलिये अच्छा ही है।'

पतिकी बात सुनकर पत्नी झल्लायी, परंतु कुछ बोली नहीं। [illegible] दिन किसी प्रकार तोता [illegible] घरके कुत्तेने ही उसे मार दिया। [illegible] बोला—'अच्छा हुआ। प्रभु जो करते हैं, [illegible] करते हैं।'

पत्नीने इस बार [illegible] कि कुछ बोलेका उसने [illegible] ही देरमें किसीने [illegible] उनका कुत्ता [illegible] पड़ा है। पुरुष फिर बोला—'[illegible] करते हैं, यह [illegible]

इस बार [illegible] [illegible]

[illegible]

[illegible]

हुई थी; किंतु दोनोंको जीवनक्रम तो चलाना ही था। किसी तरह और रात्रि कटी। दोनों सो गये। सबेरे उठे तो देखते हैं कि पूरे गाँवमें लाशों-की-लाशें बिछी हैं। रात्रिमें डाकुओंने आक्रमण किया था। एक व्यक्ति भी जीवित उन्होंने नहीं छोड़ा। झोपड़ियोंके फूटे बर्तन-तक वे उठा ले गये थे। इस झोपड़ीको सुनसान समझकर वे छोड़ गये थे; क्योंकि जंगलके पासके गाँवमें जिस झोंपड़ीमें कुत्ता न हो, उसमें किसीके रहनेकी सम्भावना नहीं की जा सकती।

पुरुष अपनी पत्नीसे बोला—'साध्वी! यदि कुत्ता होता तो हम मारे जाते और बाहर बैल बँधा दीखता तो भी मारे जाते। तोता सबेरे हमें जगा देता तो भी डाकू आहट पाकर आ धमकते। तीनों जानवरोंकी मृत्यु-का विधान दयामय प्रभुने किया था और हमारे मङ्गलके लिये किया था। आज हम इसीलिये जीवित बचे हैं कि वे जानवर हमारे यहाँ नहीं थे।'—सु० सिं०

सब अवस्थामें भगवत्कृपाका अनुभव

संत हसनान हैरी एक बार नगरकी गलीसे जा रहे थे। किसी मकानकी दासीने बिना नीचे देखे एक थाल चूल्हेकी राख फेंकी। सब-की-सब राख हैरीपर पड़ी। संत हैरीने अपना सिर तथा कपड़े झाड़े और हाथ जोड़कर बोले—'दयामय प्रभु! तुझे धन्यवाद!'

एक व्यक्ति संतके साथ चल रहा था। उसने पूछा—'इसमें परमात्माको धन्यवाद देनेकी क्या बात हो गयी?'

हैरी बोले—'मैं तो अग्निमें जलाया जाने योग्य था; किंतु प्रभुने दया करके राखसे ही निर्वाह कर दिया, इसीसे मैं उस परमोदार स्वामीको धन्यवाद दे रहा हूँ।'

—शि० दु०

दो मार्ग

'उसके समान कोई मूर्ख नहीं, जो अत्यन्त दुर्बल होकर भी अमित बल-सम्पन्नसे विरोध करता है।' संतकी यह वाणी सुनकर मस्जिदसे अपने नौकरोंके साथ जाता हुआ राजकुमार समीप आ गया और संत जुन्नुनसे इस कथनका तात्पर्य पूछ बैठा। संतने बताया—'मनुष्य अत्यन्त दुर्बल ही नहीं, सर्वथा असहाय है, किंतु वह सर्वशक्तिसम्पन्न परमेश्वरका विरोधी बनता है। यह उसकी महान् मूर्खताके अतिरिक्त और क्या है!'

राजकुमार उदास हो गया, पर बिना कुछ बोले वहाँसे चला गया। कुछ दिन बाद वह पुनः संत जुन्नुनके पास आया और अत्यन्त कातर वाणीमें उसने पूछा—'महात्मन्! प्रभु-प्राप्तिका मार्ग क्या है?'

भगवान्‌को पानेके दो रास्ते हैं—संतने बताया। 'एक साधारण और दूसरा असाधारण। यदि तुम साधारण मार्गसे उसतक पहुँचना चाहते हो, तो संसारके समस्त पाप और इन्द्रियोंकी प्रवृत्तियोंका त्याग करो और यदि असाधारण मार्गका अनुसरण करना चाहते हो तो अन्तःकरणको विषय-शून्य अत्यन्त निर्मल बनाकर उसे ईश्वरमें लगा दो। ईश्वरके अतिरिक्त और सब कुछ भूल जाओ।'

राजकुमारने असाधारण मार्गका अनुसरण किया। वह राजकुमारोंका वेश छोड़कर फकीर बन गया और पहुँचा हुआ प्रसिद्ध संत हुआ। —शि० दु०

सच्चा साधु

एक साधुने हजरत इब्राहीमसे पूछा—'सच्चे साधुका लक्षण क्या है ?' साधुने उत्तर दिया—'मिला तो खा लिया, न मिला तो संतोष कर लिया ।' हजरत इब्राहीमने कहा—'ऐसा तो हमारा कुत्ता करता है ।'

साधुने पूछा—'कृपा करके आप ही साधुका लक्षण बता दें ।' इब्राहीमने बताया—'मिला तो बाँटकर खाया और न मिला तो प्रभुकी कृपा मानकर प्रसन्न हो गया कि दयामयने उसे तपस्याका सुअवसर प्रदान किया ।'

—सु० सिं०

सच्चे भक्तका अनुभव

शाह मुहम्मद सैयद सच्चे भक्त संत थे । इनके पास कोई भी सांसारिक वस्तु नहीं रहती थी । यहाँतक कि लंगोटी भी ये नहीं पहनते—नंगे रहते थे । शाहजहाँ इन्हें बहुत मानता था । दाराशिकोह तो इनका प्रधान भक्त ही था । ये प्रायः सदा एक गीत गाया करते थे, जिसका भाव है—'मैं सच्चे संत भक्त फुरकानका शिष्य हूँ । मैं पुजारी भी हूँ, हिंदू भी और मुसल्मान भी । काबाके मस्जिदमें और हिंदुओंके मन्दिरमें लोग एक ही परमात्माकी उपासना करते हैं । एक जगह वही प्रभु काले पत्थरका रूप धारण करते हैं, जिनकी काबामें पूजा होती है और दूसरी जगह (हिंदू-मन्दिरमें) मूर्तिका रूप धारण करते हैं ।'

औरंगजेब दाराका घोर शत्रु था । वह सैयद साहबसे भी चिढ़ता था । उसने उन्हें पकड़ मँगवाया और उन्हें धर्मद्रोही घोषितकर मुल्लाओंके हाथमें निर्णय सौंपा । निर्दय धर्मान्ध मुल्लाओंने धर्मके नामपर उन्हें शूलीकी आज्ञा दे दी, पर सैयद साहबको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई । वे शूलीका नाम सुनकर आनन्दसे उछल पड़े । शूलीके काठपर चढ़ते समय वे बोल उठे—'अहा ! आजका दिन मेरे लिये बडे सौभाग्यका है । जो शरीर आत्माके साथ प्रियतम परमात्माके मिलनेमें बाधक था, आज इसी शूलीकी कृपासे वह छूट जायगा ।' वे गाने लगे —'मेरे दोस्त ! आज तू शूलीके रूपमें आया । तू किसी भी रूपमें क्यों न आवे, मैं तुझे पहचानता हूँ ।'

—ला० श०

फकीरी क्यों ?

इब्राहीमसे एक दिन किसीने पूछा—'आप तो राजा थे । सारे समस्त वैभव आपके चरणोंमें सिर झुकाते थे । फिर आपने सबको ठोकर मारकर फकीरी क्यों ले ली ?'

हजरत इब्राहीमने बड़ी गम्भीरतासे उत्तर दिया—'भाई ! मुझे राज्यसुख अमित सुख दे रहा था, किंतु एक दिन मैंने सपनेमें देखा कि मेरे महलके स्थानमें भयानक श्मशान धधक रहा था । उक्त श्मशानमें केवल मैं था । माता-पिता, भाई-बहिन और पत्नी-पुत्र कोई भी वहाँ नहीं थे । ' अत्यन्त विस्तृत एवं भयानक पथ था । वहाँ एक तेजस्वी न्यायाधीश थे । उनके सामने मेरे निर्दोष होनेका युक्तिपूर्ण दिया हुआ प्रमाण सर्वथा अनुपयुक्त सिद्ध हो रहा था । मैं विवश, असहाय और निरुपाय था । इसी कारण सब कुछ छोड़कर मैंने फकीरी ले ली ।' —शि० दु०

अस्थिर दृष्टि

एक संतके यहाँ एक दासी तीस वर्षसे रहती थी, पर उन्होंने उसका मुँह कभी नहीं देखा था। एक दिन उन्होंने दासीसे कहा—'बहिन! भीतर जाकर उस दासीको बुला देना।' दासीने विनम्रतासे कहा—'तीस वर्षसे मैं आपके समीप रह रही हूँ, तब भी आप मुझे नहीं पहचानते। वह दासी तो मैं ही हूँ।' संतने उत्तर दिया, 'तीस वर्षसे भगवान्‌के अतिरिक्त मैंने स्थिरदृष्टिसे किसीको देखा ही नहीं, इसी कारण तुम्हें भी नहीं पहचानता।'

—शि० दु०

निष्कपट स्वीकृति

बसराके साधु तपस्वी मलिक दिनार थे। वे अत्यन्त सरल एवं पवित्र हृदयके महात्मा थे। एक दिन एक स्त्रीने उनको 'कपटी' कहकर पुकारा। अत्यन्त आदरसे विनयपूर्वक तुरंत उन्होंने कहा—'बहिन! इतने दिनोंमें मेरा सच्चा नाम लेकर पुकारनेवाली केवल तुम ही मिल सकी हो। तुमने मुझे ठीक पहचाना।'—शि० दु०

सुरक्षार्थ

एक सौदागर था नेशापुरमें। उसके यहाँ एक दासी थी अत्यन्त सुन्दरी। उसका एक ऋणी गाँव छोड़कर चला गया। सौदागरको तकाजेके लिये जाना था; किंतु उस रूपवती युवती दासीको कहाँ रक्खे, यह प्रश्न था। नगरमें उसकी दृष्टिमें एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं था, जिसके यहाँ वह उसे रख जाता। अन्तमें उसे संत अबु उस्मान हीरीका स्मरण आया। वह उनके पास गया और दासीको अपने पास रख लेनेकी प्रार्थना की। पहले तो उन्होंने अस्वीकार किया, किंतु बहुत प्रार्थना करनेपर मान गये। दासी उस्मानके यहाँ आकर रहने लगी। दैवयोगसे एक दिन उस्मानकी दृष्टि दासीपर पड़ी। उसका सौन्दर्य देखकर वे मुग्ध हो गये। उनका चित्त अस्थिर रहने लगा। प्रयत्न करनेपर भी उनका मन स्थिर नहीं होता, वे अशान्त रहने लगे। रह-रहकर उनका मन उस सौन्दर्यमयी पुत्तलिकाकी स्मृतिमें लग जाता। निदानतः वे धर्माचार्य अबु हाफिजके पास पहुँचे और अपनी सम्पूर्ण व्यथा-कथा उन्हें सुनायी। हाफिजने कहा—आप संत यूसुफके पास जायँ। तलाश करते हुए वे यूसुफके नगरमें पहुँचे। उन्हें देखकर लोगोंने कहा—'आप फकीर हैं, आपका चरित्र निर्मल है। आश्चर्य है, आप सर्वथा चरित्रहीन और विधर्मी यूसुफके पास जाना चाहते हैं। उसके पास जानेसे अपयशके अतिरिक्त और कुछ हाथ नहीं आ सकेगा।'

निराश होकर अबु उस्मान पुनः नेशापुर लौट आये। अबु हाफिजने सारा समाचार सुनकर पुनः समझा-बुझाकर उन्हें महात्मा यूसुफके पास भेजा। अबकी बार उन्होंने यूसुफकी और अधिक निन्दा सुनी। पर अबकी बार उन्होंने संतसे मिलनेका निश्चय कर लिया था।

पूछते हुए वे यूसुफकी झोपड़ीके समीप पहुँचे। उन्होंने देखा झोपड़ीके द्वारपर एक तेजस्वी वृद्ध पुरुष बैठा है और उसके पास बोतल और प्याला पड़ा है। उस्मानने उन्हें सलाम किया और उनके चरणोंमें बैठ गये। यूसुफने उन्हें बहुत अच्छे उपदेश दिये। भगवान्‌की भक्ति, उनका प्रेम तथा जीवनका उपयोग आदि अत्यन्त मूल्यवान् बातें बतलायीं। जिससे उस्मान बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने विनयपूर्वक निवेदन किया—'आपकी विद्या-बुद्धि, ज्ञान-वैराग्य, तप-

तेज आदि सभी अद्भुत हैं; किंतु आप अपने पास बोतल और प्याला लिये लोगोंपर बुरा प्रभाव क्यों डालते हैं? इससे आपकी बड़ी निन्दा होती है।'

यूसुफने कहा—'मेरे पास पानीके लिये कोई बर्तन नहीं है। इसलिये बोतल साफ करके इसमें पानी भर लिया है। पानी पीनेके लिये यह प्याला रख लिया है।'

उस्मानने विनयपूर्वक निवेदन किया—'पर बदनामी तो इसीसे होती है। लोग व्यर्थ ही भाँति-भाँतिके आक्षेप करते हैं। आप इसे फेंक क्यों नहीं देते?'

यूसुफने [illegible]—'[illegible] बोतल और [illegible] हैं। [illegible] निन्दित प्रसिद्ध होनेसे, [illegible] कोई नहीं आता। मैं निश्चिन्त होकर [illegible] लगा रहता हूँ। यदि मैं [illegible] पास भी कोई [illegible] अपनी [illegible] जितने लोग हैं, [illegible]।'

उस्मान समझ गये। वे [illegible] गिर पड़े और बड़ी देरतक रोते रहे।—[illegible]

विवशता

बात है तेरह सौ वर्षसे भी अधिककी। रत्नोंका व्यापार करनेवाला एक जौहरी था। व्यवसायकी दृष्टिसे वह प्रख्यात रोम नगरमें गया और वहाँके मन्त्रीसे मिला। मन्त्रीने उसका स्वागत किया। मन्त्रीके अनुरोधसे जौहरी घोड़ेपर सवार होकर भ्रमणार्थ नगरके बाहर गया। कुछ दूर जानेपर सघन वन मिला। वहाँ उसने देखा मणि-मुक्ताओं एवं मूल्यवान् रत्नोंसे सजा हुआ एक मण्डप है और मण्डपके आगे सुसज्जित सैनिकदल चारों ओर घूमकर प्रदक्षिणा कर रहा है। प्रदक्षिणाके बाद सैनिकदलने रोमन भाषामें कुछ कहा और वह एक ओर चला गया। इसके अनन्तर उज्ज्वल परिधान पहने वृद्धोंका समूह आया। उसने भी वैसा ही किया। इसके बाद चार सौ पण्डित आये। उन्होंने भी मण्डपकी प्रदक्षिणा की और कुछ बोलकर चले गये। इसके अनन्तर दो सौ रूपवती युवतियाँ मणि-मुक्ताओंसे भरे थाल लिये आयीं और वे भी प्रदक्षिणाकर कुछ बोलकर चली गयीं। इसके बाद मुख्य मन्त्रीके साथ सम्राट्ने प्रवेश किया और वे भी उसी प्रकार वापस चले गये।

जौहरी चकित था। वह कुछ भी नहीं समझ पा रहा था कि यह क्या हो रहा है। [illegible] मन्त्रीसे पूछा। मन्त्रीने [illegible]—[illegible] सीमा नहीं। किंतु उनके एक ही पुत्र था। [illegible] जवानीमें चल बसा। यहाँ उसकी कब्र है। [illegible] सम्राट् अपने सैनिकों तथा [illegible] बालकके मृत्यु-दिवसपर आते हैं और जो कुछ करते हैं, वह तुमने देखा ही है। सैनिकोंने [illegible]—'हे राजकुमार! [illegible] कोई भी [illegible] उसका पता लगाकर हम तुम्हें [illegible] आते, पर मृत्युपर [illegible] सर्वथा विवश थे, इसी कारण तुम्हारी [illegible]।'

वृद्धसमुदायने कहा था—'[illegible]! [illegible] आशीर्वादमें इतनी शक्ति होती [illegible] होने हम नहीं देख सकते, पर [illegible] आशीर्वाद एक नहीं [illegible]।'

पण्डितोंने [illegible]—[illegible] [illegible] हम तुम्हें [illegible] नहीं दे [illegible] कोई वश नहीं।'

[illegible] दुःखी होकर कहा —'[illegible] ! [illegible] और [illegible] मेरे [illegible] अपनी बलि दे देती, पर [illegible] शक्तिमें अपना कोई वश नहीं। [illegible] कोई मूल्य नहीं।'

[illegible] कहा था —'प्राणप्रिय पुत्र ! अमित [illegible] मौक्तिक, [illegible] समुदाय, ज्ञान-[illegible] विद्वत्-समुदाय और रूप-लावण्य-यौवन-[illegible] —जगत्की सभी वस्तु तो मैं यहीं [illegible], किंतु जो कुछ हो गया है, उसे मिटानेकी सामर्थ्य तेरे इस पितामें ही नहीं, विश्वकी सम्पूर्ण शक्तिमें भी नहीं है। वह शक्ति अद्भुत है।'

मन्त्रीकी इन बातोंको सुनकर जौहरीका हृदय अशान्त हो गया। संसार उन्हें जैसे काटने दौड़ रहा था। व्यवसाय आदिका सारा काम छोड़कर वे बसरा भागे और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि 'जबतक मेरे काम-क्रोधादि विकार सर्वथा नहीं मिट जायँगे, तबतक मैं जगत्के किसी कार्यमें सम्मिलित नहीं होऊँगा। न कभी हँसूँगा और न मौज-शौक कर सकूँगा।' उसी समयसे वे प्रभु-स्मरणमें लग गये। —शि० दु०

संत-स्वभाव

एक संत कपड़े सीकर अपना निर्वाह करते थे। एक ऐसा व्यक्ति उस नगरमें था जो बहुत कपड़े सिलवाता था और उनसे ही सिलवाता था; किंतु सदा सिलाईके स्थानमें खोटे सिक्के ही देता था। संत चुपचाप उसके सिक्के ले लेते थे। एक बार वे संत कहीं बाहर गये थे। उनकी दूकानपर उनका सेवक था। वह व्यक्ति सिलाई देने आया। सेवकने सिक्का देखा और लौटा दिया—'यह खोटा है महोदय! दूसरा दीजिये।'

संत लौटे तो सेवकने कहा—'अमुक व्यक्ति खोटे सिक्के देकर मुझे ठगने आया था।'

संत बोले—'तुमने सिक्का ले क्यों नहीं लिया। वह तो सदा मुझे खोटे सिक्के ही देता है और उन्हें लेकर मैं भूमिमें गाड़ देता हूँ। मैं नहीं लूँ तो कोई दूसरा व्यक्ति ठगा जायगा।' —सु० सिं०

सहनशीलता

'सहनशीलता किसे कहते हैं?' किसीने हुसेन मंसूरसे प्रश्न किया।

उन्होंने उत्तर दिया—'हाथ-पैर काटकर, शरीरको शूलीपर टाँग दिया जाय, फिर भी जिसके मुँहसे उफ् तक नहीं निकले, उसे सहनशील समझना चाहिये।'

इतिहास साक्षी है, जीवनके अन्तिम कालमें इन्होंने इसी प्रकारकी सहनशीलताका परिचय दिया था। मंसूरकी शूली प्रसिद्ध है। —शि० दु०

सुहृद्

एक दिन संत इब्राहिमने रास्तेमें एक मूर्च्छित शराबीको देखा। उसका शरीर धूलमें सन गया था, मुँहसे थूक गिरती हुई थी और उसपर मक्खियाँ भिन-भिना रही थीं। उन्होंने बड़े प्यारसे उसे गोदमें उठाकर पानीसे उसका मुँह धोया और बोले—'भाई! जिस मुँहसे भगवान्का पवित्र नाम लेना चाहिये, उसे तू इतना गंदा रखता है?' होश आनेपर जब उस व्यक्तिको यह समाचार विदित हुआ, तब उसके मनमें बहुत पश्चात्ताप हुआ और उसने सदाके लिये शराब छोड़ दी। दो-एक दिन बाद संतने ईश्वरीय वाणी सुनी—'अरे

क्रोधहीनताका प्रमाण

एक बार एक मुसलमान गृहस्थके घर एक अतिथि आये। उन्होंने पशमीनाके काले कपड़े पहने थे। गृहस्थने अतिथिसे पूछा—'तुमने काले कपड़े क्यों पहन रखे हैं?'

'मेरे काम, क्रोधादि विकारोंकी मृत्यु हो गयी है। उन्हींके शोकमें मैंने काले वस्त्र धारण कर लिये हैं।' अतिथिने उत्तर दिया।

गृहस्थने उस अतिथिको घरसे बाहर निकाल देनेका आदेश दिया। नौकरने तत्काल आज्ञा-पालन की।

थोड़ी देर बाद उन्होंने उस अतिथिको वापस बुलाया और उसके आते ही फिर निकाल देनेकी आज्ञा दी। इस प्रकार गृहस्थने उस अतिथिको सत्तर बार बुलाया और प्रत्येक बार उसे अपमानित करके नौकरसे बाहर निकलवा दिया। किंतु अतिथिकी आकृतिपर तनिक भी क्रोध या विरक्तिका भाव परिलक्षित नहीं हुआ।

अन्तमें गृहस्थने आगे बढ़कर अतिथिका माथा सूँघा और बड़े ही विनयसे कहा—सचमुच आप काले (काले वस्त्र) पहननेके अधिकारी हैं, क्योंकि सत्तर बार अपमानके साथ घरसे बाहर निकाल देनेपर भी आपके मनोभावमें परिवर्तन नहीं हुआ। आप सच्चे विनयी तथा क्षमाशील भक्त हैं, मैंने आपको क्रोध दिलानेके प्रयत्न करनेमें कोई कसर नहीं रक्खी, पर आखिर मैं ही हारा।

अतिथि बोले—बस करो, बस करो; अधिक प्रशंसा मत करो। मुझसे अधिक स्वभावसे ही क्षमाशील और धर्मात्मा तो बेचारे कुत्ते होते हैं जो हजारों बार बुलाने और दुत्कारते रहनेपर भी बराबर आते-जाते रहते हैं। यह तो कुत्तोंका धर्म है। इसमें प्रशंसाकी कौन-सी बात है।

यों कहकर अतिथि अपने प्रशंसकोंका मुँह पकड़ लिया। —शि० दु०

साधुता

संत [illegible] नाम प्रसिद्ध है। एक बार एक आदमीकी रुपयोंकी थैली चोरी चली गयी। भ्रमवश उसने इन्हें पकड़ लिया।

आपने पूछा—'थैलीमें कुल कितने रुपये थे?'

'एक हजार' उसने बताया।

आपने अपनी ओरसे एक हजार रुपये उसे दे दिये। कुछ समय बाद असली चोर पकड़ा गया, रुपयेका स्वामी घबराया और एक हजार रुपये ले जाकर उनके चरणोंपर रखकर भ्रमके लिये उसने क्षमा-याचना की।

आपने बड़ी नम्रतासे उत्तर दिया—'दी हुई वस्तु मैं वापस नहीं लेता।'

आपके साधुतापूर्ण उज्ज्वल व्यक्तित्वपर वह मुग्ध हो गया और अपने पूर्वकृत्यपर पश्चात्ताप करने लगा। —शि० दु०

सहिष्णुता

अबु उस्मान हयरी नामक एक संत हो गये हैं। एक दिनकी बात है। रास्तेमें एक आदमीने कोयलेकी टोकरी इनके ऊपर उँडेल दी। आपके परिचित सज्जन क्रोधित हो उसे डाँटने लगे। आपने उन लोगोंको रोकते हुए कहा—'बन्धुओ! यह तो धन्यवादका पात्र है। मेरे-जैसे प्राणीपर तो प्रज्वलित अङ्गारोंकी वृष्टि होनी

चाहिये, यह बेचारा तो ठंडा कोयला ही फेंक रहा है। इसने तो मुझपर उपकार ही किया है।' कोयला फेंकनेवाला [illegible] आगमें जलने लगा।—शि० दु०

संतका सद्व्यवहार

हजरत अलीका एक सेवक उनसे झगड़कर भाग गया था। एक दिन जब कूफा शहरमें अली सबेरेकी नमाज पढ़ रहे थे, वह छिपकर मस्जिदमें घुस आया। सभी लोग नमाज पढ़नेमें तल्लीन थे। अवसर पाकर उस नौकरने तलवारका एक भरपूर प्रहार अलीपर किया और भाग खड़ा हुआ।

लोगोंने शीघ्रतापूर्वक नमाज पूरी की। हजरत अलीको भारी चोट लगी थी। कुछ लोग उनकी सेवामें लग गये और कुछ उस हत्यारेको पकड़ने दौड़े। घावमें से अधिक रक्त निकल [illegible] लगा। उनके लिये लोगोंने [illegible]। [illegible] देरमें दूसरे लोग दौड़कर उस अपराधीको पकड़ [illegible] थे। वे उसे अली साहबके सामने ले आये।

हजरत अलीने कहा—'[illegible] मारनेवालेको दो। वह दौड़ते-दौड़ते थक गया है, हाँफ रहा है और पसीनेसे लथपथ है। [illegible] प्यासा होगा।'

लोगोंने उसे शरबत पिलाया और अलीने उसे [illegible] कर दिया।—सु० सिं०

क्रोध असुर है

एक संत एक बार अपने एक अनुयायीके समीप बैठे थे। अचानक एक दुष्ट मनुष्य वहाँ आया और वह उस व्यक्तिको दुर्वचन कहने लगा, जिसके समीप वे संत साहब बैठे थे। उस सत्पुरुषने कुछ देर तो उसके कठोर वचन सहे; किंतु अन्तमें उसे भी क्रोध आ गया और वह भी उत्तर देने लगा। यह देखकर संत उठ खड़े हुए।

वह व्यक्ति बोला—'जबतक यह दुष्ट मुझे गालियाँ दे रहा था, तबतक तो आप बैठे रहे और जब मैं उत्तर दे रहा हूँ तो आप उठकर क्यों जा रहे हैं?'

संत बोले—'जबतक तुम मौन थे, [illegible] देवता तुम्हारी ओरसे उत्तर देते थे; किंतु जब तुम बोलने लगे तो तुम्हारे भीतर [illegible] आ बैठा। क्रोध तो असुर है और [illegible] छोड़ ही देना चाहिये, इसलिये मैं जा रहा हूँ।'

क्या यह तुझे शोभा देगा?

प्रसिद्ध बादशाह हारून-अल्-रशीदके एक लड़केने एक दिन आकर अपने पितासे कहा कि 'अमुक सेनापतिके लड़केने मुझको माँकी गाली दी है।' हारूनने अपने मन्त्रियोंसे पूछा कि 'इस मामलेमें क्या करना उचित है?' किसीने कहा 'उसे तुरंत मार डालना चाहिये।' किसीने कहा [illegible] चाहिये।' किसीने कहा [illegible] दे देना चाहिये।' [illegible] बेटा! तू यदि [illegible] अच्छी बात है। [illegible]

जो पुरुष शान्त रहकर सहन कर सकता है, वही सच्चा वीर है। परंतु यदि तुममें ऐसी शक्ति न हो तो तू भी उसे वही गाली दे सकता है; परंतु यह क्या तुझे शोभा देगा?'

दायें हाथका दिया बायाँ हाथ भी न जान पाये

स्वर्गके देवदूतोंने भगवान्से एक दिन प्रश्न किया—'प्रभो! क्या संसारमें ऐसी भी कोई वस्तु है जो चट्टानोंसे अधिक कठोर हो?'

भगवान्ने उत्तर दिया कि 'हाँ, लोहा चट्टानोंसे अधिक कठोर है, क्योंकि यह उन्हें तोड़ डालता है।'

'और क्या ऐसी भी कोई वस्तु है जो लोहेसे भी कठोर और मजबूत हो?' देवदूतोंने पुनः पूछा।

'हाँ, अग्नि! क्योंकि वह उसे पिघला देता है।' भगवान्ने उत्तर दिया।

'और अग्निसे कठोर क्या है?' देवदूतोंका पुनः प्रश्न हुआ।

'पानी, जो अग्निको बुझा डालता है।' उत्तर रहा प्रभुका।

'और पानीको भी मात करनेवाली चीज क्या है?' देवदूतोंका प्रश्न बढ़ता ही गया।

'हवा जो जलके प्रवाहको तरङ्गके रूपमें परिणत कर डालता है, उसके उत्पत्तिस्थान मेघोंको भी जब चाहे एकत्र या तितर-बितर कर सकता है।'

'और क्या प्रभो! अब भी कोई चीज ऐसी है जो इनकी अपेक्षा भी अधिक बलवान् हो।'

'हाँ, हाँ, वह दयालु हृदय, जो इतनी गुप्त रीतिसे दान देता है, इतना छिपाकर देता है कि जिसका बायाँ हाथ भी नहीं जान पाता कि दाहिना हाथ क्या कर रहा है?' (फिर दूसरे तो जान ही क्या पायेंगे?—) (Yes, the kind heart that gives alms is secret, not letting the left hand know what the right hand is doing.) वह इस वायुकी अपेक्षा भी बलवत्तर है। सबसे बलवान् है, सबसे महान् है।—जा० श०

अच्छा पैसा ही अच्छे काममें लगता है

एक ईश्वरविश्वासी, त्यागी महात्मा थे; वे किसीसे भीख नहीं माँगते, टोपी सीकर अपना गुजारा करते। एक टोपीकी कीमत सिर्फ दो पैसे लेते। इनमेंसे जो सबसे पहले मिलता, उसे एक पैसा दे देते। बचे हुए एक पैसेसे पेट भरते। इस प्रकार जबतक दोनों पैसे खर्च नहीं होते, तबतक नयी टोपी नहीं सीते। भजनमें ही लगे रहते।

इनके एक धनी शिष्य था, उसके पास धर्मादेकी निकाली हुई कुछ रकम थी। उसने एक दिन पूछा, 'भगवन्! मैं किसको दान करूँ?' महात्माने कहा, 'जिसे सुपात्र समझो, उसीको दान करो।' शिष्यने रास्तेमें एक गरीब अंधेको देखा और उसे सुपात्र समझकर एक सोनेकी मोहर दे दी। दूसरे दिन उसी रास्तेसे शिष्य फिर निकला। पहले दिनवाला अंधा एक दूसरे अंधेसे कह रहा था कि 'कल एक आदमीने मुझको एक सोनेकी मोहर दी थी, मैंने उससे खूब शराब पी और रातको अमुक वेश्याके यहाँ जाकर आनन्द लूटा।'

शिष्यको यह सुनकर बड़ा खेद हुआ। उसने महात्माके पास आकर सारा हाल कहा। महात्मा उसके हाथमें एक पैसा देकर बोले—'जा, जो सबसे पहले मिले उसीको पैसा दे देना।' यह पैसा टोपी सीकर कमाया हुआ था।

शिष्य पैसा लेकर निकला, उसे एक मनुष्य मिला; उसने उसको पैसा दे दिया और उसके पीछे-पीछे चलना शुरू किया। वह मनुष्य एक निर्जन स्थानमें गया और उसने अपने कपड़ोंमें छिपाये हुए एक मरे पक्षीको निकालकर फेंक दिया। शिष्यने उससे पूछा कि 'तुमने मरे पक्षीको कपड़ेमें क्यों छिपाया था और अब क्यों निकालकर फेंक दिया?' उसने कहा—'आज सात दिनसे मेरे कुटुम्बको दाना-पानी नहीं मिला। भीख माँगना मुझे पसंद नहीं, आज इस जगह मरे पक्षीको पड़ा देख मैंने लाचार होकर अपनी और परिवारकी भूख मिटानेके लिये उठा लिया था और इसे लेकर मैं घर जा रहा था। आपने मुझे बिना ही माँगे पैसा दे दिया, इसलिये अब मुझे इन मरे [illegible] नहीं [illegible]। अतएव जहाँसे उठाया था, वहीं [illegible]।'

शिष्यको उसकी बात सुनकर बड़ा [illegible] हुआ। उसने महात्माके पास जाकर सब [illegible]। [illegible] बोले—'यह स्पष्ट है कि तुमने [illegible] मिलकर अन्यायपूर्वक धन [illegible] धनका दान दुराचारी [illegible] उससे सुरापान और वेश्यागमन [illegible]। [illegible] कमाये हुए एक पैसेने एक कुटुम्बको [illegible] बचा लिया। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। [illegible] पैसा ही अच्छे काममें लगता है।'

धनके दुरुपयोगका परिणाम

बहुत दिनोंकी बात है। बगदादमें हसन नामका एक व्यक्ति रहता था। वह खलीफाके यहाँ नौकर था। उसने नौकरीसे बहुत धन कमाया और सोने-चाँदीकी प्यास बढ़ती देखकर वह बड़ी दीनता और सादगीसे जीवन बिताने लगा। धीरे-धीरे उसकी लालच बढ़ने लगी। उसने अपनी सारी कमाई जमीनमें गाड़ दी।

'फातिमा! तुम बाजारमें लोगोंसे कह दो कि खलीफाने मुझे कारागारमें डाल दिया है। यह सुनकर लोग तुम्हारे प्रति सहानुभूति प्रकट करेंगे और भोजन तथा जीवन-निर्वाहके लिये रुपये-पैसे देंगे। रही मेरी बात सो मैं रातमें घर आया करूँगा।' हसनने अपनी पत्नीको समझाया। इस प्रकार धन कमानेका एक और उपाय उसे सूझ पड़ा। लोभ तो सदा बढ़ता ही जाता है। हसनको इस उपायसे भी संतोष न हुआ। उसने अपने सम्बन्धियोंको भी धोखा देना आरम्भ किया। ज्यों-ज्यों धन बढ़ता गया, त्यों-त्यों उसकी कृपणताके पंख निकलने लगे और बात यहाँतक आ पहुँची कि खलीफाके महलसे वह [illegible] रत्न लाने लगा।

'इन रत्नोंको स्वर्ण-मुद्राओंमें [illegible] बगदादसे दूर भाग चलेंगे। [illegible]।' हसनने फातिमासे कहा।

× × ×

'बाजारमें तुम्हारी पत्नीने [illegible] रत्न बेचना चाहा। यह बात [illegible] तुम्हारे पास खाने-पीनेके लिये [illegible], [illegible] उसका दुरुपयोग तो किया ही, [illegible] सम्बन्धियों और मुझको धोखा दिया। [illegible] अपराधका दण्ड यह है कि [illegible], सम्बन्धियोंको ठगनेके [illegible] पीटा जाय और [illegible] दोनोंको [illegible] निर्णय सुनाया। पर [illegible] उन्होंने आदेश दिया कि [illegible] धनको अपने [illegible]। [illegible]

[illegible] कि 'कोई व्यक्ति [illegible] न दे ।'

[illegible] बहुत प्रसन्न थे । उन्होंने [illegible] । दो-एक दिनके बाद [illegible] लगे । उनकी समझमें धनके [illegible] आ गया । राजाके न्यायालयमें उपस्थित होकर दोनोंने सारी सम्पत्ति रख दी । राजाने बाजारवालों तथा सम्बन्धियोंमें उसका समवितरण कर दिया ।

हसन-दम्पति अपनी कमाईपर निर्भर होकर सरलता, निष्कपटता और सचाईसे जीवन बिताने लगे । उन्हें इस बातका ज्ञान हो गया कि धन एकत्र करनेमें नहीं, उसके सदुपयोगमें महान् लाभ है । —रा० श्री०

दरिद्र कौन है ?

एक पुरानी बात है । एक संतके पास एक धनवान् हजारोंकी थैली लेकर उसे स्वीकार करनेकी प्रार्थना की । संतने उत्तर दिया—

'अत्यन्त निर्धन और दरिद्रका धन मैं स्वीकार नहीं करता ।'

'पर मैं तो धनवान् हूँ । लाखों रुपये मेरे पास हैं ।' कुण्ठित धनवान्ने उत्तर दिया ।

'और भी धनकी कामना तुम्हें है या नहीं ?' संतने प्रश्न किया ।

'अवश्य है ।' धनवान्ने संतके सम्मुख मिथ्या-भाषण नहीं किया ।

'जिन्हें धनकी कामना है, उन्हें रात-दिन धन-संचयकी चिन्ता रहती है । धनके लिये नाना प्रकारके अपकर्म करने पड़ते हैं । उनके-जैसा कोई दरिद्र नहीं ।'

धनवान् धनसहित वापस लौट गया । —शि० दु०

स्वावलम्बीका बल

प्राचीन अरबनिवासियोंमें हातिमताईका नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है । वह अपनी असीम दानृत्व-शक्ति किंवा उदार दानशीलताके लिये बड़ा विख्यात था ।

एक दिन उसके मित्रोंने उससे पूछा, 'हातिम ! क्या तुम किसी ऐसे व्यक्तिको भी जानते हो जो तुम्हारी अपेक्षा भी अधिक श्रेष्ठ रहा हो ?'

'हाँ' हातिमने उत्तर दिया ।

'वह कौन था ?' मित्रोंने पूछा ।

हातिमने कहा—'एक दिन मैंने बहुत बड़ा भोज दिया था और उसमें हजारों आदमियोंको निमन्त्रित किया । उसी दिन कुछ समय बाद कुछ अन्य मुसाफिरोंके साथ मैं स्वयं भी जंगलकी ओर घूमने निकल गया । वहीं मैंने एक लकड़हारेको देखा, जिसने एक बोझा काँटे काट रखा था । मैंने उससे पूछा—'भाई ! तुम हातिमके भोजमें आज क्यों नहीं सम्मिलित होने चले गये, जो यहाँ इतना श्रम कर रहे हो ?' उसने उत्तर दिया 'जो अपने जीविकोपार्जनमें स्वयं समर्थ हैं, उन्हें हातिमकी दानशीलता या भोजकी कोई अपेक्षा नहीं है ।' हातिमने बतलाया, 'मित्रो ! मैं उस लकड़हारेको अपनी अपेक्षा सर्वथा श्रेष्ठ मानता हूँ; क्योंकि मेरी दृष्टिमें उन दानियोंकी अपेक्षा जो दूसरोंका धन लेकर दान देते हैं या उन व्यक्तियोंकी अपेक्षा जो दूसरोंके भोजके लिये सदा मुँह ताकते रहते हैं, स्वयं परिश्रम कर उसमें अपना पोषण करनेवाला व्यक्ति अतिशय श्रेष्ठ है ।'

हातिमके मित्र इसे सुनकर लज्जित हो गये । —जा० श०

नित्य अभिन्न

(उमा-महेश्वर)

सदा शिवानां परिभूषणायै सदा शिवानां परिभूषणाय।
शिवान्वितायै च शिवान्विताय नमः शिवायै च नमः शिवाय॥

यह भी एक कथा ही है; किंतु ऐसी कथा नहीं, जो हुई और समाप्त हो गयी। घटना नहीं—सत्य है यह और सत्य शाश्वत होता है।

सृष्टि थी नहीं। प्रलय था—ऐसा भी नहीं कह सकते। प्रलय तो सृष्टिकी अपेक्षासे होता है। एक अनिर्वचनीय स्थिति थी। एक सच्चिदानन्दघन सत्ता और वह सत्ता सत्‌के साथ चित् है तथा आनन्दरूप भी है तो यह स्वतःसिद्ध है कि शक्ति-शक्तिमान् समन्वित हैं। शक्ति-शक्तिमान् जहाँ नित्य अभिन्न हैं। जहाँ आनन्द अनुभूति-स्वरूप है।

हमारी यह सृष्टि व्यक्त हुई। सृष्टिका संकल्प और संचालन एक अनिर्वचनीय शक्तिने प्रारम्भ किया। वही शक्ति-शक्तिमान्, वही नित्य अभिन्न सच्चिदानन्दघन। परंतु जगत्‌के जीव कहते हैं—'वे हमारे पिता-माता हैं।' इस स्वीकृतिमें जीवोंकी सार्थकता है।

सृष्टि चल रही है। सृष्टिका संहार और पालन दोनों चल रहा है। चला रहा है वही नित्य अभिन्न परम तत्त्व एवं प्राणिमात्रके प्राण। इस जगत्‌के प्राणी कहते हैं—'वे हमारे प्राण हैं, आश्रय हैं।' इस स्वीकृतिमें हमारा मङ्गल है।

समय आता है—ब्रह्माण्डका यह खिलौना किसी अचिन्त्यके उद्दाम नृत्यमें चूर-चूर हो उठता है। किसीकी नेत्रज्वाला इस पिण्डको भस्मसात् बना देती है। प्रलयाब्धिमें यह बुद्बुदा विलीन हो जाता है। अपने-आपमें स्थित हो जाता है वह महाकाल और उससे नित्य अभिन्न है उसकी क्रियाशक्ति महाकाली। मानव कहते हैं कि 'वे मुक्तिप्रदाता हैं।' इस स्वीकृतिमें मानवकी मुक्ति निहित है। वह मृत्युसे परित्राण पा लेता है उन परम तत्त्वके स्मरणसे।

जगत्‌की यह नित्य-कथा जिनके लिये है, जगत्‌के उन आदिदम्पति उमा-महेश्वरके चरणोंमें बार-बार प्रणिपात।

'जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥'

सद्भावना-रक्षा

अद्भुत डाकू था वह । फकीरोंके वेशमें रहता, हाथमें उसके तसबीह रहती । वह डाका डालता, पर अधिकांश धन गरीबोंमें बाँट देता । इतना ही नहीं, प्रत्येक शुक्रवारको वह नमाज पढ़ता था । उसके दलके प्रत्येक सदस्यको शुक्रवारकी नमाज आवश्यक थी । आज्ञोल्लङ्घन करनेवाला दलसे पृथक् कर दिया जाता था ।

एक बार व्यापारियोंका समुदाय उसी पथसे जा रहा था, जिधर डाकुओंका यह दल रहता था । डाकुओंने लूटना शुरू कर दिया । एक व्यापारी अपने धनको लेकर छिपानेके लिये भागता हुआ, उस तंबूमें जा पहुँचा, जहाँ डाकुओंका सरदार फकीरके वेशमें तसबीह लिये बैठा था । व्यापारीने कहा—'मैं बड़ी विपत्तिमें पड़ गया हूँ । सारा धन डाकू लूट रहे हैं । कृपापूर्वक आप इसे अपने पास रख लें । बादमें मैं इसे ले जाऊँगा ।' सरदारने कहा—'उस कोनेमें रख दो ।' धनकी थैली रखकर व्यापारी चला गया ।

कुछ देर बाद जब डाकू समस्त व्यापारियोंको लूटकर चले गये, तब वह व्यापारी अपना धन लेनेके लिये उस तंबूमें आया । किंतु तंबूके भीतर उसने जो कुछ देखा, उससे उसका शरीर काँपने लगा । आकृति-पर स्वेद-कण झलकने लगे । वहाँ डाकू लूटके धनको बाँट रहे थे । व्यापारी डाकूके ही पास धन रखनेकी अपनी भूलपर मन-ही-मन पछता रहा था । वह धीरेसे वहाँसे जाने लगा । सरदारने पूछा—'क्यों [illegible] आया था ?'

व्यापारीने काँपते हुए कहा—'मैं अपनी थैली वापस लेने आया था, पर मुझसे [illegible], मैं अभी यहाँसे जा रहा हूँ ।'

'रुको ।' सरदारने उत्तरमें कहा—'अपनी थैली लेते जाओ । वह उसी जगह पड़ी है ।'

व्यापारीको विश्वास नहीं हो रहा था । उसने [illegible] नेत्रोंसे देखा, सचमुच उसकी थैली ज्यों-की-त्यों [illegible] हुई थी । उसने थैली उठा ली और प्रसन्नतापूर्वक चला गया ।

'यह क्या किया आपने !' डाकुओंने सरदारसे पूछा—'इस प्रकार हाथका माल वापस करना कहाँ तक उचित है !'

'तुमलोग ठीक कहते हो ।' सरदारने हँसते हुए, शान्त-स्वरमें उत्तर दिया । 'किंतु वह [illegible] ईश्वरका भक्त, फकीर, सच्चा और [illegible] कर धन मेरे पास रख गया था । [illegible] करनेवाले इस वेशके प्रति जो सद्भावना है, उसकी रक्षा करना मेरा परम कर्तव्य है । [illegible] स्वभाव आजीवन बना रहे ।'

डाकुओंका वही सरदार आगे चलकर [illegible] नामक प्रसिद्ध महात्मा हुआ ।—शि॰ दु॰

तल्लीनता

नशापुरमें एक व्यापारी था । वह धन कमानेमें निरन्तर लगा रहता था । अच्छे और बुरे कर्मसे उसे कुछ लेना-देना नहीं था । उसे तो केवल धन चाहिये और वह चाहे किसी भी मार्गसे आये । एक बारकी बात है । उसे रुपया गिनते-गिनते बहुत देर हो गयी । भोजनका समय नहीं [illegible], [illegible] लिये पड़ा हो था । [illegible] अनेकी [illegible] दी । [illegible] उसके [illegible] बहुत [illegible], [illegible] ध्यान इधर नहीं [illegible] । [illegible]

उचित भाग मान लिया जाता था। वह जल भी केवल उसके प्रधान लोगोंके हिस्से पड़ता था।

जब पहले दिन जल बाँटा जाने लगा, तब प्रथम माप काब-इब्न-मम्माहको दिया जाने लगा। वह उसे लेना ही चाहता था कि उसकी दृष्टि नामीर जातिके एक आदमीपर पड़ी जो बड़ा ध्यान लगाये उसकी ओर सतृष्ण दृष्टिसे देख रहा था। उसने जल बाँटनेवालेको कहा, 'भइया! मेरा हिस्सा कृपया इस व्यक्तिको दे दो।' उस व्यक्तिने जल पी लिया और काब-इब्न-मम्माहको बिना जलके ही रह जाना पड़ा।

दूसरे दिन पुनः जलका विभाजन आरम्भ हुआ और उस नामीर जातिका वह पुरुष पुन. बड़े ध्यानसे उधर देखने लगा। 'काब' ने पुनः अपना जल उस व्यक्तिके लिये दिला दिया।

पर अब जब प्यासों मरने लगा, तब काबको इतनी भी शक्ति न रह गयी थी कि वह किसी प्रकार ऊँटपर बैठ सके। वह मरुस्थलमें ही लेट गया। उसने देखा कि अब कोई यहाँ ठहरता है तो सभी मर जायँगे, [illegible] किसीने उसकी सहायताका साहस नहीं किया और मांसलोभी हिंस्र जन्तुओंके भयसे उसके ऊपर कुछ बालू डालकर चलते बने।

वस्तुत. काब करुणाका आदर्श था, जिसने अपनी जान दे दी। पर दया-कातरताका तिरस्कार करनेका साहस वह न कर सका। —[illegible]

अतिथिकी योग्यता नहीं देखनी चाहिये

महात्मा इब्राहीमका नियम था कि किसी अतिथिको भोजन कराये बिना भोजन नहीं करते थे। एक दिन उनके यहाँ कोई अतिथि नहीं आया। इसलिये वे स्वयं किसी निर्धन मनुष्यको ढूँढ़ने निकले। मार्गमें उन्हें एक अत्यन्त वृद्ध तथा दुर्बल मनुष्य मिला। उसे भोजनका निमन्त्रण देकर बड़े आदरपूर्वक वे घर ले आये। हाथ-पैर धुलवाकर भोजन करने बैठाया।

अतिथिने भोजन सम्मुख आते ही ग्रास उठाया। उसने न तो भोजन मिलनेके लिये ईश्वरको धन्यवाद दिया, न ईश्वरकी बन्दगी की। इब्राहीमको इस व्यवहारसे क्षोभ हुआ। उन्होंने अतिथिसे इसका कारण पूछा। अतिथिने कहा—'मैं तुम्हारे धर्मको माननेवाला नहीं हूँ। मैं अग्निपूजक (पारसी) हूँ। अग्निसे मैंने [illegible] कर लिया है।'

'काफिर कहींका! घर निकल मेरे यहाँसे!' इब्राहीमको इतना क्रोध आया कि उन्होंने बूढ़ेको धक्का देकर उसी समय घरसे निकाल दिया।

'इब्राहीम! जिसे इतनी उमरतक मैं प्रतिदिन भोजन देता रहा हूँ, उसे तुम एक समय भी नहीं खिला सके! उलटे तुमने निमन्त्रण देकर, घर [illegible] तिरस्कार किया!' इस आकाशवाणीको जो उस समय हुई, इब्राहीमने सुना। अपने गर्व तथा [illegible] दुःख हुआ।—सु॰ सि॰

उचित न्याय

बाबरका पिता उमरशेख समरकंदका राजा था। वह अपनी न्यायप्रियताके लिये बड़ा प्रसिद्ध था। एक बार चीनी यात्रियोंका एक समुदाय पूर्वसे पश्चिमकी ओर जा रहा था। [illegible] से पड़ [illegible] गया। [illegible]

[illegible] पड़ गयी थी। [illegible] वहीं निवासित हो [illegible] और उनके [illegible] बैठा दिया, ताकि उनकी अरक्षित सम्पत्तिमेंसे कोई कुछ ले न ले। उसने उनके घरवालोंको सूचना दी और पूरे एक वर्षतक, जबतक वे लोग आकर अपनी-अपनी सम्पत्ति ले नहीं गये, तबतक उसने वहाँका पहरा नहीं हटाया।

—जा० श०

उपासनामें तन्मयता चाहिये

बादशाह अकबर [illegible] बाहर निकले थे। [illegible] एकान्तो [illegible] बिना किसी [illegible] और [illegible] प्रजाकी दशाका स्वयं निरीक्षण करने वे निकलते थे। उस दिन नमाजका समय होनेपर बादशाहने [illegible] 'जायेनमाज' बिछा दिया, [illegible] इधर-उधर स्वच्छ भूमि [illegible]।

बादशाह नमाज पढ़ रहे थे। सामने जो एकान्त [illegible], वे [illegible] और [illegible] गये। इतनेमें एक स्त्री आयी और बादशाहके 'जायेनमाज'पर पैर रखती [illegible]। बादशाहको क्रोध तो बहुत आया; किंतु वे नमाज पढ़ रहे थे, इसलिये बोले नहीं।

थोड़ी ही देरमें वह स्त्री उधरसे ही लौटी। बादशाह नमाज पूरी कर चुके थे। उन्होंने उस नारीसे पूछा—'तू इधर कहाँ गयी थी?'

स्त्रीने कहा—'मेरे स्वामी परदेश गये हैं। समाचार मिला था कि वे आ रहे हैं। मैं उन्हें देखने गयी थी; किंतु समाचार ठीक नहीं निकला।'

बादशाहने उसे डाँटा—'मूर्ख स्त्री! तुझे जाते समय दीखा नहीं कि मैं नमाज पढ़ रहा हूँ। तू मेरे 'जायेनमाज' (नमाज पढ़ते समय नीचे बिछी चद्दर)को कुचलती चली गयी।'

उस स्त्रीने उत्तर दिया—'जहाँपनाह! मेरा चित्त तो एक सांसारिक पुरुषमें लगा था, इसलिये मैं आपको और आपके 'जायेनमाज'को देख नहीं सकी; किंतु आप तो उस समय विश्वके स्वामीकी प्रार्थनामें चित्त लगाये हुए थे, आपने मुझे इधरसे जाते देख कैसे लिया?'

बादशाहने सिर नीचा करके उस स्त्रीको क्षमा कर दिया।

—सु० सिं०

उत्तमताका कारण

बादशाह अकबर बहुत उत्सुक था अपने महीनाचार्य [illegible] स्वामी श्रीहरिदासजीका संगीत सुननेके लिये। परंतु वे परम [illegible] छोड़कर दिल्ली [illegible], इसलिये [illegible] नहीं। यह भी [illegible] नहीं था कि वृन्दावनमें भी बादशाहके [illegible] वे गाते। तानसेनने एक मार्ग निकाला। बादशाह साधारण वेशमें वृन्दावन पहुँचे और स्वामी हरिदासजीकी कुटियाके बाहर छिपकर बैठ गये। तानसेन कुटियामें गये और प्रणाम करके गुरुदेवको अपना संगीत सुनाने लगे, जान-बूझकर तानसेनने स्वरमें भूल कर दी। शिष्यकी भूल सुधारनेके लिये गुरुने उससे वीणा ले ली और स्वयं गाकर बजाने लगे। बादशाहकी इच्छा इस प्रकार पूर्ण हुई।

दिल्ली लौटकर बादशाहने तानसेनसे फिर वही राग सुनना चाहा और तानसेनने सुनाया भी; किंतु उसे

सुनकर बादशाह बोले—'तानसेन ! तुम उतना उत्तम क्यों नहीं गा सकते ? स्वामी हरिदासजीके स्वरका तो सौन्दर्य ही कुछ और था ।'

नम्रतापूर्वक तानसेनने कहा—'जहाँपनाह ठीक फरमा रहे हैं, लेकिन मेरे [illegible] कोई [illegible] नहीं है । मेरे गुरुदेवके स्वरकी [illegible] है । मैं केवल हिंदुस्तानके बादशाहके लिये गाता हूँ और वे गाते हैं सारी दुनियाके मालिक ईश्वरके लिये ।'—[illegible]

आजसे मैं ही तुम्हारा पुत्र और तुम मेरी माँ

कहते हैं कि बादशाह अकबरके खजांचीकी स्त्रीका रूप बड़ा ही अपूर्व था । एक बार कहीं उसे देखकर बादशाह महामोहमें पड़ गया और लाखों रुपये व्यय करके भी उसकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करने लगा । पर 'विचित्रं विधिचेष्टितम्' । भर्तृहरिने बड़ा ही सुन्दर कहा था—मैं जिसकी चिन्तामें सतत व्याकुल हूँ वह मुझे बिल्कुल नहीं चाहती । पर यह बात नहीं कि वह सर्वथा संसारसे उपरत है अथवा वह किसीको चाहती ही न हो । नहीं-नहीं; वह तो बुरी तरहसे एक ऐसे आदमीपर आसक्त है, जो उसे न चाहकर किसी दूसरी नायिकाको चाहता है और वह नायिका भी उसे न चाहकर किसी कारणविशेषसे मुझपर प्रसन्न है ।[1] ओह ! मुझको, इस विडम्बनाके मूल कामदेवको तथा तत्तत् स्त्री-पुरुषोंको बार-बार धिक्कार है ।

> यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
>
> साप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः ।
>
> अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या
>
> धिक् तां च तं च मदनं च इमां च मां च ॥
>
> (नीतिशतक २)

हाँ तो, भर्तृहरिके शब्दोंमें [illegible] स्त्रीको भी यही दैव [illegible] दिखलाया । वह बादशाहसे तो घृणासे नाक-भौं सिकोड़ने लगी, पर [illegible] खानखानापर आसक्त हुई । [illegible] थे । वह इनसे सीधे प्रकार तो [illegible], पर एक दिन मौका पाकर उनसे निवेदन किया—'[illegible] ! मैं आप ही जैसा सुन्दर एक पुत्र चाहती हूँ ।' [illegible]खानाजीको फिर वह एकान्त स्थानमें ले गयी । [illegible] भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण किया और [illegible] ही उससे बोले—'देवि ! कौन जाने हमारे-जैसा पुत्र तुम्हें हो-न-हो, इसलिये लो आजसे मैं ही तुम्हारा पुत्र और तुम मेरी सच्ची माँ' और यों कहकर उसके स्तनोंसे [illegible] लग गये । भगवान्की कृपासे उसमें भी [illegible] और उसके स्तनोंसे दूध [illegible] । तबसे [illegible] उसे सदा ही अपनी माता माना । कहते हैं [illegible] भी अपने ग्रन्थोंमें खानखानाजीने [illegible] किया है, वहाँ उसी [illegible] है, अपनी [illegible] नहीं । [illegible] चित्त सर्वथा पवित्र हो गया और [illegible] जानकर सन्मार्गस्थ हो गया ।—[illegible]

१. कहा जाता है कि भर्तृहरिको किसी महात्माने एक अमर फल दिया । भर्तृहरिने [illegible] रानी बनी रहे तभी मेरा जीना सार्थक होगा । अतएव उसने वह फल रानीको दे दिया । ([illegible] थी) रानीने देखा कि 'यदि मेरे जीते यह दारोगा मर गया तो [illegible] दारोगाको ही दे दिया । इधर दारोगा एक वेश्यापर अनुरक्त था, उसने वह फल [illegible] मैं अधिक जीती हूँ तो केवल पाप ही संचय करूँगी, [illegible] देना चाहिये । उसने लाकर वही फल राजाको दे दिया । राजा उस फलको देखकर [illegible] सर्वथा चकित रह गया । निर्विण्ण होकर उसने यह श्लोक कहा तथा [illegible] महाराज विक्रमादित्यने, जो उसका छोटा भाई था, [illegible] ।

न्यायकी मर्यादा

दिल्लीका बादशाह गयासुद्दीन बाणसे निशाना मारनेका अभ्यास कर रहा था। अचानक एक बाण लक्ष्यसे भटक गया और एक बालकको लगा। बेचारा बालक बाण लगनेसे वहीं ढेर हो गया। बालककी माता दिल्लीके प्रधान काजी सिराजुद्दीनके पास रोती हुई गयी। काजीने उसे दूसरे दिन न्यायालयमें उपस्थित होनेको कह दिया।

न्यायनिष्ठ काजीने बादशाहके पास संदेश भेज दिया कि उनके विरुद्ध हत्याका अभियोग है, अतः वे न्यायालयमें उपस्थित रहें। सुल्तान गयासुद्दीन साधारण वेशमें अदालतमें उपस्थित हुए। काजीने उनका कोई सम्मान नहीं किया। उलटे उन्हें साधारण अपराधीकी भाँति खड़े रहनेको कहा गया। सुल्तान शान्त खड़े रहे। उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया। बालककी मातासे माफी माँगी और उसे बहुत-सा धन देनेका वचन दिया। बालककी मातासे राजीनामा लिखवाकर सुल्तानने काजीको दिया।

यह सब हो जानेपर काजी न्यायासनसे उठे और आगे आकर उन्होंने [illegible] किया। बादशाहने अपने [illegible] कर दिखाते हुए कहा—[illegible] आपने न्यायका सम्मान [illegible]। अच्छा हुआ कि आपने [illegible]। यदि मैं देखता कि आप [illegible] हो रहे हैं तो यह तलवार आपका [illegible]।'

काजी सिराजुद्दीनने [illegible] सनके पास रक्खा बेंत उठाया। [illegible] अच्छा हुआ कि आपने [illegible] और अपराध स्वीकार कर लिया। [illegible] हीला-हवाला करते तो [illegible] उधेड़ देता।'

सुल्तान इससे संतुष्ट हुए। [illegible] 'मेरे राज्यमें ऐसे न्यायाधीश हैं जो [illegible] हैं कि न्याय सबके लिये समान है, [illegible] अधिक कोई श्रेष्ठ नहीं, इसके लिये मैं [illegible] आभार मानता हूँ।' —[illegible]

शरणागत-रक्षा

बादशाह अलाउद्दीनके दरबारमें एक मंगोल-सरदार था। बादशाह उसकी शूरता तथा ईमानदारीसे बहुत संतुष्ट थे; किंतु निरङ्कुश लोगोंकी समीपता प्रायः भयप्रद होती है। वह सरदार बादशाहका मुँहलगा हो गया था। एक दिन उससे कोई साधारण भूल हो गयी; किंतु बादशाह इतने अप्रसन्न हो गये कि उन्होंने उस सरदारको प्राणदण्डकी आज्ञा दे दी। सरदार किसी प्रकार दिल्लीसे बचकर निकल भागा। परंतु बादशाहके अपराधीको शरण देकर विपत्ति कौन मोल ले? अनेक स्थानोंपर भटकनेपर भी [illegible] नहीं दिया। [illegible] वहाँ उस समय [illegible] उस यवन-सरदारको [illegible] की रक्षा राजपूतका [illegible] सुखपूर्वक निवास करें।'

इधर दिल्ली [illegible] [illegible] [illegible]

न्याय पाना हो । रस्सी खींचने ही महलमें घंटा बजने लगता था ।

एक समय शामको ही एक स्त्रीने घंटेकी रस्सी खींची । बादशाह उसी समय झरोखेपर आये । वह एक निर्धन नारी थी और बुरी तरह रो रही थी । पूछनेपर उसने बताया कि वह राजमहलके पास ही एक बगीचेके मालीकी स्त्री है । किसीने राजमहलसे बाण चलाया, जो उसके पतिकी छातीमें लगा । उसका पति तुरंत बाण लगनेसे मर गया ।

बादशाहने उसे सबेरे दरबारमें आनेका हुक्म दिया । राजमहलमें पूछनेपर पता लग गया कि बादशाहकी प्राणप्रिया बेगम मुमताज-महल चमगादड़ोंपर निशाना लगा रही थीं । उनका ही एक बाण भटककर दूर गया था । बादशाह गम्भीर हो गये । उस रात उन्हें तनिक भी नींद नहीं आयी ।

दूसरे दिन [illegible] नहीं [illegible] ।'

[illegible] — [illegible] ! [illegible] अन्याय नहीं [illegible] । [illegible] है, तुम [illegible] !'

[illegible] पकड़ा [illegible] अपना [illegible] कर दिया । [illegible] पड़ी । [illegible] झुक गयी थी ।—सु० सिं०

अपरिग्रह

संत अफ़रायतका जीवन अत्यन्त सरल था, वे बड़ी पवित्रतासे रहते थे । अपनी जन्म-भूमि फारसका परित्याग कर वे सीरिया चले आये थे । नगरके बाहर सदा एक छोटी-सी गुफामें निवास कर वे भगवान्‌का चिन्तन किया करते थे । वे सूर्यास्तके बाद केवल एक छोटी-सी रोटी खा लेते थे और चटाईपर सोते थे । उनका पहनावा केवल एक मोटा-सा कपड़ा था ।

एक दिन वे अपनी गुफाके बाहर बैठे हुए थे कि अन्थेमियस उनसे मिलने आया । वह कुछ दिनोंतक फारसमें राजदूत था । संतको भेंट देनेके लिये अपने साथ फारससे एक सुन्दर वस्त्र लाया था ।

'यह आपके देशकी बनी हुई वस्तु है । इसे स्वीकार ग्रहण कीजिये ।' [illegible]

[illegible] साथिभाज [illegible] उसने अपने [illegible]

[illegible] राजदूतने [illegible]

[illegible]

कर्तव्यनिष्ठा

[illegible] अकबरको [illegible] पदाधिकारीके [illegible] । [illegible] वे उन्मत्त हो [illegible] उस पदाधिकारीके [illegible] । परंतु उस अधिकारीका [illegible] कि उसे भरा [illegible] नहीं था । शाहने [illegible] । नहीं तो, [illegible] ।'

[illegible] नम्रतापूर्वक कहा—'मैं अपना [illegible] । आप मेरे देशके स्वामी हैं, [illegible] सकता; किंतु जबतक मैं [illegible] नहीं जा सकते । मेरा वध करके [illegible] जा सकते हैं । लेकिन श्रीमान् ! मैं अपने स्वामीकी मर्यादाकी रक्षाके साथ आपकी भी रक्षाके लिये खड़ा हूँ । आप मुझे मारकर भीतर चले गये तो मेरे स्वामीकी बेगमें हथियार उठा लेंगी । एक पर-पुरुष उनका अनादर करे तो वे यह नहीं देखेंगी कि वह शाह खुद हैं या और कोई ।'

शाह अन्नासका नशा अपने प्राण-भयकी बात सुनते ही ठंढा पड़ गया । वे लौट गये । दूसरे दिन दरबारमें उस पदाधिकारीने प्रार्थना की—'मेरे द्वारपालने जो बेअदबी की, उसे माफ करें । मैंने उसे आजसे अपने यहाँसे निकाल दिया है ।'

शाह प्रसन्न होकर बोले—'चलो अच्छा हुआ, अब मुझे तुमसे उस कर्तव्यनिष्ठ सेवकको माँगना नहीं पड़ेगा । मैं उसे अपने अङ्गरक्षक सैनिकोंका सरदार बना रहा हूँ । उसे बुलाओ ।'—सु० सिं०

नीति

[illegible] बादशाह नौशेरवाँ एक बार कहीं [illegible] थे । भोजन बनने लगा तो पता लगा कि नमक नहीं है । एक सेवक पासके मकानसे नमक [illegible] । बादशाहने इसे देख लिया । सेवकको बुलाकर [illegible]—'नमकका मूल्य दे आये हो ?'

सेवकने कहा—'थोड़ेसे नमकका मूल्य देनेकी क्या आवश्यकता है ।'

बादशाहने उसे झिड़कते हुए कहा—'ऐसी भूल फिर कभी मत करना । पहिले नमकका मूल्य देकर आओ । बादशाह यदि प्रजाके किसी बागसे बिना मूल्य दिये एक फल ले ले तो उसके कर्मचारी बागको उजाड़ ही कर देंगे । वे शायद बागके पेड़ कटवाकर लकड़ियाँ भी जला डालें ।'

सभी समय, सब देशोंके उच्चाधिकारियोंके लिये यह प्रशस्त आदर्श है । —सु० सिं०

अपूर्व स्वामि-भक्ति

[illegible] पृथ्वीराज युद्धभूमिमें पड़े थे । [illegible] कि अपने स्थानसे वे [illegible] सकते थे, न [illegible] उठ सकते थे । [illegible] थे । [illegible] अपने शरीरका [illegible] था । उनके सैनिक [illegible] थे । युद्ध-भूमिमें केवल [illegible] क्रन्दन बच रहा था । सैकड़ों, सहस्रों गीध उतर आये थे युद्ध-भूमिमें । वे मृत या मृतप्राय सैनिकोंको नोच-नोचकर अपना पेट भरनेमें लगे थे ।

गीधोंका एक समुदाय पृथ्वीराजकी ओर बढ़ा आ रहा था । पृथ्वीराजसे थोड़ी ही दूरपर उनके अङ्गरक्षक

सामन्त संयमराय पड़े थे । संयमराय मूर्छित नहीं थे; किंतु इतने घायल थे कि उठना तो दूर, हिलना भी उनके लिये असम्भव था । पृथ्वीराजकी ओर उन्होंने गीधोंको बढ़ते देखा । उस वीरने सोचा—'जिसकी रक्षाका भार मुझपर था, मेरे देखते दूर गीध उसे नोचें तो मुझे धिक्कार है ।' संयमरायने बगलमें पड़ी तलवार उठा ली और अपने शरीरका मांस टुकड़े-टुकड़े काटकर [illegible] और [illegible] । [illegible] लगे ।

पृथ्वीराजके [illegible] थे [illegible], पहुँचे, [illegible] पहुँच चुके थे । [illegible] मरी; किंतु [illegible] करनेमें असमर्थ हो गए ।

अतिथिके लिये उत्सर्ग

मेवाड़के गौरव हिंदूकुल-सूर्य महाराणा प्रताप अरावलीके वनोंमें उन दिनों भटक रहे थे । उनको अकेले ही वन-वन भटकना पड़ता तो भी एक बात थी; किंतु साथ थीं महारानी, अबोध राजकुमार और छोटी-सी राजकुमारी । अकबर-जैसे प्रतापी शत्रुकी सेना पीछे पड़ी थी । कभी गुफामें, कभी वनमें, कभी किसी नालेमें रात्रि काटनी पड़ती थी । वनके कन्द-फल भी अलभ्य थे । घासके बीजोंकी रोटी भी कई-कई दिनपर मिल पाती थी । बच्चे सूखकर कंकाल हो रहे थे ।

विपत्तिके इन्हीं दिनोंमें एक बार महाराणाको परिवार-के साथ लगातार कई दिनोंतक उपवास करना पड़ा । बड़ी कठिनाईसे एक दिन घासकी रोटी बनी और वह भी केवल एक । महाराणा तथा रानीको तो जल पीकर समय बिता देना था; किंतु बच्चे कैसे रहें ! राजकुमार सर्वथा अबोध था । उसे तो कुछ-न-कुछ भोजन देना ही चाहिये । राजकुमारी भी अभी बालिका थी । आधी-आधी रोटी दोनों बच्चोंको उनकी माताने दे दी । राजकुमारने अपना भाग तत्काल खा लिया । परंतु राजकुमारी छोटी बच्ची होनेपर भी परिस्थिति समझती थी । छोटा भाई कुछ घंटे बाद भूखसे रोयेगा तो उसे क्या दिया जायगा, इसलिये [illegible] भी थी । उसने अपनी [illegible] सुरक्षित रख दी, [illegible] मिला नहीं था ।

संयोगवश वहाँ [illegible] पास आ पहुँचे । [illegible] पैर धोनेको जल दिया । [illegible] देखने लगे । आज [illegible] जल पीनेको [illegible] किंतु उनकी पुत्रीने [illegible] अपने भागकी [illegible] अतिथिके सम्मुख [illegible] ग्रहण करें । [illegible] आज कुछ नहीं है ।'

अतिथिने [illegible] गया; किंतु वह [illegible] भूखसे वह दुर्बल हो [illegible] अन्तिम [illegible] अपनी [illegible] उत्सर्ग कर दिया था ।

शौर्यका सम्मान

दक्षिण भारतका बहुत छोटा-सा राज्य था [illegible] । उसका शासक कोई वीर पुरुष नहीं था, एक [illegible] [illegible]

[illegible] थी। किंतु [illegible] सैनिका [illegible] किंतु [illegible] छत्रपतिने [illegible] ! बोल उठे।

[illegible] पर बड़ा [illegible] रहा। [illegible] निश्चित थी; किंतु [illegible] होकर भी सम्मानपूर्वक ही [illegible], यद्यपि अपने [illegible] नहीं दी। उन्होंने शिवाजीसे कहा—[illegible] होनेके कारण [illegible] परिहास करने [illegible] है ! छत्रपति ! तुम महाराज हो, तुम्हारा [illegible] बड़ा है और बल्लारी छोटा राज्य है। तुम [illegible] हो, थोड़ी देर पहिले मैं भी स्वतन्त्र थी, मैंने स्वतन्त्रता-के लिये [illegible] किया है, क्या हुआ जो तुमसे [illegible] कम होनेके कारण मैं पराजित हुई। परंतु तुम्हें मेरा अपमान तो नहीं करना चाहिये। तुम्हारे लोगोंका यह आदरदानका अभिनय अपमान नहीं तो और है क्या ! मैं शत्रु हूँ तुम्हारी, तुम मुझे मृत्युदण्ड दो।'

छत्रपति सिंहासनसे उठे, उन्होंने हाथ जोड़े—'आप परतन्त्र नहीं हैं। बल्लारी स्वतन्त्र था, स्वतन्त्र है। मैं आपका शत्रु नहीं हूँ, पुत्र हूँ। अपनी तेजस्विनी माता जीजाबाईकी मृत्युके बाद मैं मातृहीन हो गया हूँ। मुझे आपमें अपनी माताकी वही तेजोमयी मूर्तिके दर्शन होते हैं। आप यदि शिवाके अपराध क्षमा कर सकें तो उसे अपना पुत्र स्वीकार कर लें।'

मलबाईके नेत्र भर आये। वे गद्गद कण्ठसे बोलीं—'छत्रपति ! सचमुच तुम छत्रपति हो। हिंदू-धर्मके तुम रक्षक हो और भारतके गौरव हो। बल्लारीकी शक्ति तुम्हारी सदा सहायक रहेगी।'

महाराष्ट्र और बल्लारीके सैनिक भी जब आवेशमें छत्रपति शिवाजी महाराजकी जय बोल रहे थे, स्वयं छत्रपतिने उद्घोष किया—'माता मलबाईकी जय !'

मैं आपका पुत्र हूँ

[illegible] नगरमें घूमते थे और [illegible] पूछते थे। 'जिस राजाके राज्यमें [illegible] है, वह नरेश नरकगामी होता है।' [illegible] आदर्श बना लिया था।

[illegible], [illegible], विशाल लोचन, [illegible] देखकर एक नारी उनपर मुग्ध हो [illegible]। [illegible] अतः वह नारी [illegible], उसने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'मैं [illegible] हूँ।'

'आपको क्या कष्ट है देवि !' महाराजने पूछा।

नारीने छलपूर्वक उत्तर दिया—'श्रीमान् मेरा कष्ट दूर करनेका वचन दें तो प्रार्थना करूँ।'

सरल हृदय महाराजने कह दिया—'मुझसे सम्भव होगा तो आपका कष्ट अवश्य दूर करूँगा।'

नारीने अब विचित्र भंगीसे कहा—'मैं संतानहीन हूँ। मुझे आप-जैसा पुत्र चाहिये।'

छत्रसाल दो क्षणको स्तब्ध हो गये, किंतु शीघ्र ही उन्होंने उस नारीके चरणोंमें मस्तक झुकाते हुए कहा—'आपको मेरे समान पुत्र चाहिये, अतः माता ! यह छत्रसाल ही आपका पुत्र है।' छत्रसालने उसे राजमाताकी भाँति स्वीकार किया।

स्वामिभक्तिका आदर्श

अतिथि-सत्कार

चन्द्राकी मरणचन्द्रिका

अरुणोदयका समय था। चन्द्रावती अपनी हवेलीसे बाहर निकली, उसके कटिदेशमें मिट्टीका नवीन कलश ऐसा लगता था मानो भगवान् मोहिनीने अमृत-कुम्भ रख लिया हो। उसका समस्त शरीर इंगुरके रंगके समान था, उसने लाल रंगका घाघरा पहना था और झीनी-झीनी ओढ़नी भी लाल ही थी; ऐसा लगता था मानो साक्षात् ऊषा सूर्यको अर्घ्य देनेके लिये निकल पड़ी हो। पवन मन्द-मन्द गतिशील था।

'बाई सौभाग्यवती हों', पहरेपर बैठे दरवानने अभिवादन किया।

'देखो, निकल आयी हमारी चन्द्रारानी' साथी सखियोंने दरवाजेपर ही स्वागत किया। उनके हाथमें कलश थे, चन्द्रावती उन्हें प्राणोंसे भी अधिक चाहती थी, वे नित्य सवेरे और शामको उसके साथ बावलीसे पानी लाने जाया करती थीं।

बावली हवेलीसे पाव कोस दूर थी। राजस्थानमें पानी आसानीसे नहीं मिलता है। चन्द्रावतीके पिता एक साधारण भूमिपति थे। हवेलीसे थोड़ी दूरपर एक छोटी-सी बस्ती थी। उसमें उनके सैनिक तथा परिचारक आदि रहते थे। वे एक छोटी-सी सेनाके अधिपति थे। उनके आश्रितोंकी कन्याएँ सदा चन्द्रावतीका मन बहलाया करती थी। बावलीसे पानी लाना उनका नित्यका काम था।

× × ×

इधर चन्द्रावती सखियोंके साथ बावलीकी ओर बढ़ रही थी, उधर धूप चढ़ती जा रही थी। उसने देखा— बावलीके उस पार बहुत-से तम्बू और खेमे लगे हुए थे। उनके आस-पास अगणित हाथी-घोड़े और ऊँट बँधे हुए थे। खेमोंपर हरे झंडे लहरा रहे थे, जिनपर चाँद अङ्कित था। चन्द्राने देखा नाटे और ठिगने [illegible] [illegible] सैनिकोंको, [illegible]

[illegible]

[illegible]

'पर [illegible] इन्होंने [illegible] हम्मीर और राणा [illegible] [illegible] जोहरव्रत [illegible] [illegible]

'राजस्थानका [illegible] और हमारे [illegible] रहते [illegible] धरतीकी ओर [illegible] [illegible] सखीने चन्द्रावतीकी [illegible] [illegible] और चन्द्रावती [illegible] [illegible] मुसकराने लगी।

[illegible]

[illegible]

[illegible] दो ।'

[illegible]

[illegible] तथा [illegible] है ।'

[illegible]

[illegible] मानो [illegible] क्षुधित [illegible]

[illegible] मानो [illegible]

[illegible] शपथ है, [illegible] अश्रु- [illegible] उसके लिये [illegible]

[illegible] करना [illegible]

'मुझे मृत्यु अपने अङ्कमें भरकर यमराजको प्रणाम करना चाहती है । कौमुदी ! तुम्हें मेरे पातिव्रतकी शपथ है, मेरे प्रियतम प्राणेश्वरसे कहना कि चन्द्रा स्वर्गमें ही मिल सकेगी ।' चन्द्राके ये अन्तिम शब्द थे और कौमुदी हवेलीकी ओर उड़ चली ।

बावलीका जल शान्त था । वातावरण गम्भीर था । चन्द्रावती स्थिर थी ।

× × ×

'पिताजी ! हम ऐसा कभी न होने देंगे । बुगरा पठानको दिल्ली जीवित भेजनेसे हमारे पूर्वजोंकी तलवारें आत्मग्लानिमें डूब जायँगी । चन्द्रावतीका स्पर्श करनेवाला जीता रहे, यह असम्भव है ।' चन्द्रावतीके भाईने घोड़ेको एड़ लगायी और वह हाडा रावके हाथीकी बगलमें आ गया, नौजवान राजपूतके कटिदेशमें लटकती तलवार रणकी चुनौती दे रही थी । उसने घूमकर पीछे देखा; अगणित घोड़े ओर ऊँट बढ़ते चले आ रहे थे; उनके सवारोंको देखकर राजपूतका सीना फूल गया ।

'बेटा ! गिनतीमें हमारे ये ऊँट, घोड़े, हाथी और सवार तथा अस्त्र-शस्त्र मुगलोंके सामने कुछ भी नहीं हैं, रणमें हम आधी घड़ी भी उनका सामना नहीं कर सकते हैं । इस समय दण्ड नहीं, दाम-नीतिकी आवश्यकता है ।' वृद्धने पुत्रको बड़े प्रेमसे देखा और नेत्रोंसे विवशता टपक पड़ी ।

'पर म्लेच्छको उत्कोच देकर चन्द्राको लौटाना हमारे लिये लज्जा और अपमानकी बात है । चन्द्रा जलकर राख हो जायगी, पर हवेलीमें पैर नहीं रक्खेगी ।' राजपूतने वृद्ध पिताको सावधान किया तथा चन्द्रावतीके पतिको देखा, मानो जानना चाहता था कि वह ठीक ही कह रहा है ।

'मुगलोंका भाग्य-सूर्य इस समय मध्याह्नमें है । कान्धारसे बंगालतककी भूमि उनके अधीन है ।' वृद्धने गम्भीर साँस ली ।

'और आप चाहते हैं कि राजस्थान भी कलंकित हो जाय। ऐसा नहीं होगा पिताजी।' युवकने घोड़ेकी चाल बढ़ायी।

'मेरा सामूहिक रणमें विश्वास है, यदि हम फूट-फूट लड़ते रहेंगे तो कहींके न रहेंगे कुमार! हमारी साम-दाम-नीतिसे राजस्थान कलंकित नहीं, विजयी होगा। जिसे तुम उत्कोच समझते हो वह रणकी चुनौती है।' वृद्धने अपनी सफेद मूँछोंपर अँगुली फेरी। राजपूतोंने मुगल-खेमोंको देखा। वे वापसी-तत्पर थे। तीसरे पहरका सूर्य ढल रहा था और जाड़ेकी बालुकामयी हवा वेगवती हो उठी।

× × ×

'मुझे धन नहीं चाहिये, मैं पृथ्वी और विशाल सेनाका भोग नहीं चाहता, चन्द्रावती मेरी है और सदा मेरी रहेगी।' बुगल पठानने वृद्ध राजपूतके कथनकी उपेक्षा की, हाडा रावके नेत्र लाल हो गये, वे हाथ मलने लगे।

'पिताजी! आप निश्चिन्त रहें, चन्द्रावती भूखों मर जायगी, पर मुगलके घरकी रोटी नहीं तोड़ेगी।' चन्द्रावतीने हाडा रावके चरणकी धूलि मस्तकपर चढ़ायी।

'मैं चन्द्रावतीके लिये राजस्थानका कण-कण राजपूतों और मुगलोंके खूनसे लाल कर दूँगा।' बुगल पठानके इस कथनसे राजपूत युवककी त्योरी चढ़ गयी, चन्द्रावतीके भाईने म्यानसे तलवार खींच ली।

'प्रिय! [illegible] हैं उनसे [illegible] दे दूँगी, पर [illegible] आत्मसमर्पण [illegible] गरज उठी।

'मैं चन्द्रावतीके [illegible] मिला दूँगा। [illegible] पठानने चन्द्रावतीके [illegible]।

'प्राणेश्वर! [illegible] शरण लेती हूँ, [illegible] सकेगा, मैं उसे [illegible] चन्द्रावतीने अपने पतिकी प्रदक्षिणा की।

× × ×

'अब तो प्राण [illegible] पानी चाहिये।' [illegible] हृदय कायर हो गया। [illegible] बावलीकी ओर [illegible] और देखते [illegible] आशा [illegible] हो गया। [illegible]

[illegible] और पतिने बावलीकी [illegible] उनका आत्मसम्मान [illegible] लालिमाने [illegible] सूर्य अस्त हो गया। [illegible] निस्तब्ध हो उठी [illegible]

लाजवंतीका सतीत्व-लालित्य

युद्ध समाप्त हुआ। एक-एक करके सभी राजपूत कट मरे! परंतु किसीने दीनतायुक्त पराधीनता स्वीकार न की। दूसरी ओर किलेसे धुएँका पहाड़ उठ रहा था! एक तड़ाकेके शब्दके साथ आग भड़क उठी और आसमानसे बातें करने लगी। राजपूत-ललनाओंने [illegible] जौहर [illegible]

अकबर अपनी क्रूरतापर पछता रहा था। इतनेमें कई मुसल्मान सिपाहियोंने एक शस्त्रास्त्रधारी तेजस्वी तरुणको अकबरके सामने पेश किया। उसकी मुश्कें कसी हुई थीं। चेहरेपर बाँकेपनके चिह्न थे। बड़ा अल्हड़ जवान था। आँखें रक्तके समान लाल हो रही थीं। इतना होनेपर भी मुखाकृतिमें बड़ी सुकुमारता थी उसके। अकबरने कहा—'तू कौन है? ऐसी बीभत्स स्थितिमें क्यों यहाँ आया है?'

युवक—'मैं पुरुष नहीं हूँ। स्त्री हूँ। अपने स्वामीके शवकी खोजमें यहाँ आयी हूँ।'

'तेरा नाम क्या है?'

'मेरा नाम लाजवंती है।'

'तू कहाँ रहती है?'

'मेरा घर डूँगरपुर है।'

'चित्तौड़ और डूँगरपुरके बीच कितना फासला है? तू यहाँ क्यों और कैसे आयी?'

'फासला बहुत है। मैंने सुना कि चितौड़में जौहर होनेवाला है। राजपूत वीर और वीराङ्गनाएँ दोनों धर्मकी वेदीपर बलिदान होनेकी तैयारियाँ कर रहे हैं। इस शुभ समाचारको सुनकर मेरा स्वामी तो पहले ही चला आया था। मुझे पीछेसे पता चला। मेरी तीव्र इच्छा थी कि भाग्यवती राजपूतनियोंके समान मुझे भी सतीत्वकी चितापर जलनेका सौभाग्य प्राप्त हो। किंतु मेरे आनेसे पहले ही यहाँ सब कुछ समाप्त हो चुका। अतएव मैं स्वामीके शवको खोजनेके लिये रणभूमिमें चली आयी और तेरे क्रूर सिपाहियोंने मुझे पकड़ लिया।'

अकबर विस्मययुक्त हो मनमें कहने लगा, 'ओहो! मुझे सब जहाँपनाह और खुदावंद कहते हैं, पर यह लड़की कितनी निडर है, जो कहती है तेरे क्रूर सिपाहियोंने मुझे पकड़ लिया। सचमुच राजपूत-रमणी बड़ी निडर होती है। शाबाश।'

'तूने कैसे समझ लिया कि तेरा स्वामी युद्धमें काम आ गया। सम्भव है वह भाग गया हो।'

(हँसती हुई) 'अकबर! तू राजपूतोंके धर्मको नहीं जानता। राजपूत रणभूमिसे कभी भागते नहीं। यह तेरी भूल है। मैं जानती हूँ मेरा स्वामी धर्मसे कभी डिग नहीं सकता।'

'तेरी उसके साथ कब शादी हुई थी?'

'शादी नहीं। अभी सगाई हुई थी। विवाह होनेही वाला था कि तूने चितौड़पर चढ़ाई कर दी।'

अकबरने विशेष विस्मययुक्त होकर कहा—'नेक-बख्त! जब शादी नहीं हुई तब वह तेरा शौहर (स्वामी) कैसे हो गया? तू घर लौट जा। किसी औरके साथ तेरी शादी हो जायगी?'

वह क्रोधसे आँखें लाल करके बोली—'अकबर! क्या तुझे ईश्वरने इसीलिये सामर्थ्य दी है कि किसी सती रमणीके विषयमें ऐसे अपमानजनक वाक्य अपने मुँहसे निकालनेका दुःसाहस करे?'

बादशाह उसके तेजसे डर गया, उसने कहा—'नहीं बेटी! मैं तेरी बेइज्जती करना नहीं चाहता! इतनी लाशोंमें तेरे मँगतेरेकी लाशका मिलना मुश्किल है। अगर तुझमें हिम्मत है तो जा ढूँढ़ ले और तेरे जीमें आवे सो कर।'

अकबरकी आज्ञा पाकर लाजवंतीने अपने स्वामीका शव ढूँढ़ निकाला और डेरेमेंसे लकड़ियाँ लाकर एकत्र कीं तथा शवको उसपर लिटा दिया। पाँच बार परिक्रमा करके चकमकसे आग जलायी। जब आग जलने लगी, तब देवीके समान स्वामीको गोदमें बैठा लिया और चुपचाप शान्तभावसे सबके देखते-देखते जलकर भस्म हो गयी। सिपाही आश्चर्यचकित हो अपनी भाषामें अनेक प्रकारके गीत गाकर राजपूत सतीके सहज पति-प्रेमकी प्रशंसा करने लगे।

अभिमानकी चिकित्सा

(मन्दाकिनीका मोह-भङ्ग)

राजकुमारी मन्दाकिनी प्रथम तो पिताकी एकमात्र संतान अत्यन्त दुलारी और दूसरे विख्यात सुन्दरी। उसमें सौन्दर्यके साथ सदाचार-प्रतिभा आदि और सद्गुण थे। परंतु इन सब सद्गुणों तथा पिताके स्नेहने उसे अभिमानिनी बना दिया था। उसका अहंकार इतना बढ़ गया था कि किसी दूसरेको वह अपने सामने कुछ समझती ही नहीं थी। अनेक राजकुमारोंने उससे विवाह करना चाहा, किंतु किसीको वह अपने योग्य माने तब तो।

प्रत्येक बातकी एक सीमा होती है। कन्याकी अवस्था बढ़ती जा रही थी। महाराजको लोक-निन्दाका भय था। लोग कानाफूसी करने भी लगे थे; किंतु राजकन्या थी अपने अहंकारमें। वह किसी राजकुमारको वरण करनेको प्रस्तुत ही नहीं होती थी। अन्तमें महाराजने पड़ोसके युवक राजा रंगमोहनसे कुछ मन्त्रणा करके घोषणा कर दी—'राजकुमारीके आगामी जन्म-दिन प्रातःकाल जो पुरुष नगरद्वारमें पहिले प्रवेश करेगा, उसके साथ राजकुमारीका विवाह कर दिया जायगा, फिर वह कोई भी हो।'

राजकुमारीका जन्मदिन आया। प्रातःकाल नगर-द्वारमें सबसे पहिले प्रविष्ट होनेवाले पुरुषको राजसेवक पकड़ लाये। वह था फटे-चिथड़े लपेटे एक भिक्षुक। परंतु वह युवक था, सुन्दर था और पूरा अलमस्त था। उसके मुखपर सदा प्रसन्नता खेलती रहती थी। महाराजने राजपुरोहितको बुलवाया और बिना किसी धूम-धामके उन्होंने उसी दिन उस भिक्षुकके साथ राजकन्याका विवाह कर दिया। राजकुमारी चिल्लायी, मचली और रोते-रोते उसने अपने सुन्दर नेत्र लाल बना लिये; किंतु आज उसके पिता निष्ठुर बन गये थे। उन्होंने पुत्रीके रोने-चिल्लानेपर ध्यान ही नहीं दिया। भिक्षुकको केवल पाँच स्वर्णमुद्रा देकर उन्होंने कहा—'तू अपनी पत्नीको लेकर मेरे राज्यसे शीघ्र निकल जा। स्मरण रख कि यदि फिर तू या तेरी पत्नी मेरे राज्यमें आयी तो प्राणदण्ड दिया जायगा।'

'चलो मन्दाकिनी!' भिक्षुकने राजकन्याका हाथ पकड़ा और चल पड़ा। रोती-बिलखती राजकुमारी उसके साथ जानेको विवश थी। परंतु भिखारी ज्यों-का-त्यों प्रसन्न था। वह पत्नीके रोनेपर ध्यान दिये बिना गीत गाता जाता था।

राजकन्याको पैदल ही पिताके राज्यसे बाहर जाना पड़ा। भिखारी उससे मधुर भाषामें बोलता था, उसे प्रसन्न करनेका प्रयत्न करता था। पर्याप्त दूर जानेपर जंगलमें नदी-किनारे एक फूसकी झोपड़ीमें दोनों पहुँचे। भिखारीने कहा—'अब यही तुम्हारा घर है। तुम्हें स्वयं अब जंगलके पत्ते और लकड़ियाँ लानी पड़ेंगी। कन्द-मूल जो कुछ मिलेगा, उसे उबालकर खाना पड़ेगा। पासके गाँवमें लकड़ियाँ बेचने जाना होगा। मैं भी जितना बन सकेगा, तुम्हारी सहायता करूँगा।'

राजकन्याके लिये यह जीवन कितना दुःखद था, यह आप अनुमान कर सकते हैं; किंतु विवशता सब करा लेती है। एक ही सुख उसे था कि भिखारी उसके साथ बहुत प्रेमपूर्ण व्यवहार करता था। कुछ दिनों बाद भिखारीने वह झोपड़ी छोड़ दी। मन्दाकिनीको लेकर वह एक गाँवमें आया। वहाँ वे दोनों एक खंडहर-प्राय घरमें रहने लगे। भिखारी कहींसे कुछ पैसे ले आया और उससे उसने मिट्टीके बर्तन खरीदे। पत्नीसे उसने कहा—'इन बर्तनोंको बाजारमें ले जाकर बेच आओ।'

किसी समय जो राजकन्या थी, उसके लिये सिरपर बर्तन उठाकर बाजारमें जाना बड़ा कठिन जान पड़ा; किंतु जाना पड़ा उसे। भिखारीने उसे स्पष्ट कह दिया कि यदि उसकी आज्ञाका पालन न करना हो तो वह मन्दाकिनीको छोड़कर चला जायगा। बेचारी मन्दाकिनी बर्तन सिरपर उठाकर बाजार गयी। उसे बर्तन बेचना तो आता नहीं था, दूसरोंसे नम्र व्यवहार करना भी नहीं आता था। बाजारमें बर्तन रखकर वह उनके पास खड़ी रही। भूमिमें बैठना उसे बहुत बुरा लगा।

एक युवक घुड़सवार बाजारमें आया। उसने मन्दाकिनीसे बर्तनोंके दाम पूछे। मन्दाकिनीने रूखे स्वरमें दाम बताये तो घुड़सवार लौट पड़ा। मोड़ते समय उसका घोड़ा भड़क उठा। फलतः घोड़ेके पैरोंकी ठोकरसे सब बर्तन फूट गये। घुड़सवारने इधर ध्यान ही नहीं दिया। वह चला गया। मन्दाकिनी रोती हुई घर लौटी। भिखारी क्रुद्ध होगा, इस भयसे उसके प्राण काँप रहे थे।

भिखारी आया। रोते-रोते मन्दाकिनीके नेत्र फूल उठे थे। भिखारी कुछ बोला नहीं। परंतु दूसरे दिन उसने कहा—'मन्दाकिनी! तुझे कोई काम आता नहीं। मिट्टीके बर्तन फूट गये। अब हम दोनोंका कैसे निर्वाह होगा? एक उपाय है—नगरमें चलें। राजा रंगमोहनकी पाकशालामें तुम्हें कोई नौकरी दिलवानेका प्रयत्न करें। तुम्हें काम मिल जाय तो तुम्हारी ओरसे निश्चिन्त होकर मैं भी कहीं काम ढूँढ़ूँ। कुछ धन एकत्र हो जानेपर कोई व्यापार कर लूँगा और तब तुम्हें भी अपने पास बुला लूँगा।'

राजा रंगमोहनका नाम सुनकर मन्दाकिनीने दीर्घ श्वास ली। एक समय इस नरेशने उससे विवाह करनेका प्रस्ताव किया था। आज वह राजरानी होती; किंतु हाय रे गर्व! उसी राजभवनमें दासी बनने वह जा रही है। जानेके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं। मन्दाकिनी नगरमें गयी और राजाकी पाकशालामें उसे नौकरी मिल गयी। भिखारी उससे विदा होकर कहीं चला गया।

मन्दाकिनीका गर्व नष्ट हो गया था। उसका स्वभाव बदल गया था। अब वह अत्यन्त विनम्र, परिश्रमी और सावधान सेविका बन गयी थी। रसोई-घरकी अध्यक्षा रम्भाकुमारी उसके कार्यसे अत्यन्त संतुष्ट थीं।

वसन्त पञ्चमी आयी। राजा रंगमोहनका यह जन्म-दिन था। सभी सेवकोंको इस दिन नरेश अपने हाथसे पुरस्कृत करते थे। दूसरी सेविकाओंके साथ मन्दाकिनीको भी राजसभामें जाना पड़ा। जब सब सेवक पुरस्कृत हो चुके और सब सेविकाएँ भी पुरस्कार पा चुकीं, तब उसे पुकारा गया। वह हाथ जोड़े, मस्तक झुकाये राजसिंहासनके सामने खड़ी हो गयी। नरेशने कहा—'मन्दाकिनी! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम्हें तो मैं अपनी रानी बनाना चाहता हूँ।'

मन्दाकिनी चौंक पड़ी; वह बोली—'महाराज! आपको ऐसी अधर्मपूर्ण बात नहीं करनी चाहिये। मैं पत्नी हूँ। क्या हुआ जो मेरा पति भिक्षुक है। मेरा तो वही सर्वस्व है। उसे छोड़कर मैं दूसरे पुरुषकी कामना नहीं करती। वही मेरा स्वामी है। आपकी मुझपर बहुत कृपा है तो इतना अनुग्रह करें कि मेरे पतिका पता लगवाकर उसे बुला दें। मैं पाकशालामें सेवा करके प्रसन्न हूँ।'

महाराज रंगमोहन भीतर चले गये और थोड़ी देरमें वह भिखारी राजमहलसे निकला। मन्दाकिनी उसे देखते ही दौड़कर उसके पैरोंपर गिर पड़ी। भिखारी मुसकराया—'मन्दाकिनी! मुझे ध्यानसे देखो तो। तुम्हें मुझमें और रंगमोहनमें कुछ सादृश्य नहीं मिलता?'

भेद खुल गया था। भिखारीके वेशमें उसका पाणि-ग्रहण करनेवाले स्वयं राजा रंगमोहन थे और वह थी उनकी महारानी। राजाने कहा—'मन्दाकिनी! क्षमा करना, तुम्हारे अभिमानकी दूसरी कोई औषध मुझे मिलती ही नहीं थी।'—सु० सिं०

सच्ची पतिव्रता

जयदेव-पत्नी

परम भक्त श्रीजयदेवजीकी पतिव्रता पत्नीका राजभवनमें बड़ा सम्मान था। राजभवनकी महिलाएँ उनके घर आकर उनके सत्सङ्गका लाभ उठाया करती थीं। एक दिन बातों-बातोंमें ही रानीसे पद्मावतीने कहा—'जो स्त्री पतिके मर जानेपर उसकी देहके साथ सती होती हैं, वे नीची श्रेणीकी सती हैं। सच्ची पतिव्रता तो पतिकी मृत्युका सवाद पाते ही प्राण त्याग देती है। पतिकी मृत्युका समाचार पाकर उसके प्राण क्षणभर भी शरीरमें टिक नहीं सकते।'

रानीको यह बात ठीक नहीं लगी। उनके मनमें ईर्ष्या जाग उठी। पद्मावतीजीकी परीक्षा करनेका उन्होंने निश्चय कर लिया। एक समय नरेश आखेटमें गये थे। जयदेवजीको भी वे साथ ले गये थे। अवसरका लाभ उठाकर रानीने मुख उदास बनाकर पद्मावतीजीके पास जाकर कहा—'पण्डितजीको वनमें सिंह खा गया।'

रानीसे यह बात सुनते ही पद्मावती 'श्रीकृष्ण, श्रीकृष्ण' कहकर धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ी और उनका शरीर निष्प्राण हो गया। रानीके तो होश उड़ गये। उनके दुःखका पार नहीं था। महाराजके साथ जयदेवजी नगरमें लौटे। उन्हें समाचार दिया गया। जयदेवजीको पत्नीकी मृत्युका दुःख नहीं था, दुःख उन्हें हुआ रानीके शोककी बात सुनकर। उन्होंने कहलाया—'रानी माँसे कहो, वे घबरायें नहीं। मेरी मृत्युके सवादसे पद्मावतीके प्राण निकले हैं तो अब मेरे जीवित लौटनेपर उसके प्राणोंको लौटना भी पड़ेगा।'

जयदेवजीने भगवान्‌से प्रार्थना की और पद्मावतीकी देहके पास कीर्तन प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे पद्मावतीके शरीरमें चेतना लौटी और वे उठ बैठीं। —सु० सिं०

अच्छे पुरुष साधारण व्यक्तिकी बातोंका भी ध्यान करके कर्त्तव्यपालन करते हैं

गजनीसे ईरानको एक सड़क जाती है। इस रास्तेपर पहले लुटेरोंका भयंकर अड्डा था और इस मार्गसे कोई भी व्यापारी निरापद नहीं निकल पाता था। एक बार इन लुटेरोंने एक कारवाँ लूटा और खुरासानके एक युवकको मार डाला। अब उसकी माता रोती-पीटती सुलतान महमूदके दरबारमें पहुँची। बादशाहने सारी बातें सुनकर कहा—'वह स्थान यहाँसे बहुत दूर है और वहाँकी बातोंको देखना मेरे लिये बड़ा कठिन है।'

बुढ़ियाने कहा—'ऐसा देश, जहाँ तुम शान्ति नहीं रख सकते, अपने पास क्यों रखते हो?' महमूद इससे बड़ा प्रभावित हुआ और वह लुटेरोंका दमन करनेके लिये तुरंत तैयार हो गया तथा यात्रियोंकी रक्षाके लिये उसने उस सड़कपर उचित व्यवस्था कर दी।

नावेरकी सीख

नावेर नामक एक अरब सज्जनके पास एक बढ़िया घोड़ा था। दाहर नामक एक मनुष्यने कई ऊँट देकर बदलेमें घोड़ा लेना चाहा, परंतु नावेरको वह घोड़ा बहुत प्यारा था, इससे उसने देनेसे इनकार कर दिया। दाहरके मन घोड़ा बहुत चढ़ गया था, इससे उसने घोड़ा हथियानेकी दूसरी तरकीब सोची। एक दिन [illegible]

उसी घोड़ेपर सवार होकर कहीं बाहर जानेको था। इस बातका पता पाकर दाहरने चालाकीसे अपना चेहरा बदला और फटे-चिथड़े पहनकर वह उसी रास्तेमें एक ओर बैठकर बुरी तरह खाँसने लगा। नावेर उधरसे निकला तो उसे खाँसते हुए गरीबको देखकर दया आ गयी। उसने अगले गाँवतक पहुँचा देनेके लिये उसे घोड़ेपर चढ़ा लिया और स्वयं उतरकर पैदल चलने लगा। घोड़ेपर सवार होते ही दाहरने चाबुक मारकर घोड़ेको जोरसे भगा दिया और कहा कि 'तुमने मुझको सीधे हाथ घोड़ा नहीं दिया तो मैंने चतुराईसे ले लिया।' नावेरने पुकारकर उससे कहा—'भगवान्‌की इच्छासे तुमने मेरा प्यारा घोड़ा ले लिया है तो जाओ, इसकी खूब सार-सँभाल रखना, पर खबरदार! अपनी इस धोखेबाजीकी बात किसीसे मत कह देना। नहीं तो दीन-दुखी और गरीब-अपाहिजोंपर दया करते लोग हिचकने लगेंगे और इससे बहुत-से गरीबोंको सहायतासे वञ्चित होना पड़ेगा।'

नावेरकी इस बातसे वह बहुत शरमाया और उसने उसी क्षण लौटकर घोड़ा वापस कर दिया और उससे सदाके लिये मित्रता कर ली।

प्रेमकी शिक्षा

(प्रेषक—सेठ श्रीहरकिशनजी)

शम्स तबरेज जब हिन्दुस्तान आये, तब हिन्दूकुशके पास उनको एक महात्मा मिले। महात्माने उनको आत्म-स्वरूपका उपदेश किया। तदनन्तर शम्स पंजाब गये और उस समयके प्रख्यात मौलाना रूमके यहाँ ठहरे। मौलानाके पास बड़े-बड़े लोग आते थे। उन्हें वे सुनहरी स्याहीसे लिखी हुई कुरान पढ़कर उपदेश किया करते थे। शम्सको यह अच्छा नहीं लगा। उनको लगा कि मौलाना अपने कीमती समयको वृथा खो रहे हैं। एक दिन उपदेश करनेके बाद मौलानाने कुरानकी पुस्तकको रेशमी कपड़ेमें बाँधकर चौकीपर रक्खा था कि शम्सने उसे उठाकर पासके हौजमें डाल दिया। इतनी कीमती पुस्तकके यों फेंके जानेसे मौलाना साहेब शम्स-पर बहुत क्रुद्ध हुए और उन्हें डाँटने-फटकारने लगे। तब शम्सने कुण्डमें हाथ डालकर पुस्तकको निकाल दिया। मौलानाने देखा कि पुस्तकका कपड़ा पानीमें पड़नेपर भी भीगा नहीं था। वह जैसा-का-तैसा सूखा ही था। मौलानाको बड़ा आश्चर्य हुआ। वे शम्सके पैरों पड़े और पूछने लगे कि 'यह शक्ति आपको कैसे प्राप्त हुई? आपने कहाँसे यह सीखी? आजसे आप मेरे गुरु और मैं आपका शिष्य। मुझे बतलाइये कि मैं क्या करूँ और कैसे आगे बढ़ूँ?' शम्सने कहा कि 'प्रथम तुम जितना जानते हो और जितना तुमने पढ़ा है, वह सब भूल जाओ। फिर प्रेम कैसे करना चाहिये यह सीखो।' मौलानासे तो यह सब हुआ नहीं। पर उस समयके लाहौरके नवाबका लड़का बदरुद्दीन (जो पीछेसे नाना या शाहकलंदरके नामसे प्रख्यात हुआ) शम्सकी आज्ञा लेकर प्रेम सीखनेके लिये निकल पड़ा।

वह घूमते-फिरते आगरा पहुँचा। वहाँ जब राजमहलके नीचेसे जा रहा था, तब उसने शाहजादीको खिड़कीमें खड़ी देखा। उसको देखकर वह वहीं खड़ा रह गया। तीन दिन बीत गये पर वह भूखा-प्यासा खिड़कीके सामने खड़ा ही रहा। शेख सादी उसी राहसे जा रहे थे। उन्होंने उसको देखकर पूछा तो पता चला कि वह शाहजादीके साथ शादी करना चाहता है। बादशाहके कानोंतक बात पहुँची। उन्होंने प्रधानोंसे सलाह करके यह तय किया कि यदि उसका शाहजादीपर सच्चा प्रेम

है तो वह किलेकी छतपरसे नीचे कूदकर दिखा दे, फिर उसके साथ शादी कर दी जायगी। बदरुद्दीनको तो प्रेम सीखना था। वह तुरंत मान गया और किलेके ऊपर जाकर नीचे कूद पड़ा। शेख सादीने पहलेसे ही नीचे उसको बचानेके लिये नरम झोली डलवा रक्खी थी। वह झोलीपर गिरा और बच गया। बादशाह उसकी हिम्मत देखकर खुश हो गया और अपनी लड़कीकी शादी उसके साथ करनेको तैयार हो गया; परंतु बदरुद्दीनको शादी तो करनी नहीं थी, उसको तो प्रेम करना—प्रेमके लिये त्याग करना—सीखना था। उसको लगा कि अब वह उत्तीर्ण हो गया। उसको प्रेम करना आ गया और वह चल पड़ा। वह शम्सके पास गया। शम्सने देखा कि इसको प्रेम करना आ गया है। तब इन्होंने कहा कि 'जैसे उस लड़कीमें मन लगाया था, वैसे ही मनको अन्तर्मुखी करके परमात्मामें लगा दे तो तेरा कल्याण हो जायगा।'

निन्दाकी प्रशंसा

बहुत पहले काशीमें एक प्रजावत्सल, धर्मात्मा राजा रहता था। एक दिन एक देवदूतने राजासे आकर निवेदन किया—'महाराज! आपके लिये स्वर्गमें स्वर्णिम प्रासाद बने तैयार हैं। उनमें आप बड़े सुखपूर्वक निवास कर सकेंगे।' राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। साथ ही परलोककी ओरसे वह सर्वथा निश्चिन्त-सा हो गया। अपनी धार्मिकताका उसे स्वाभाविक गर्व तो हुआ ही।

थोड़े ही दिनोंके बाद वहाँ उपवनमें एक तपस्वी महात्मा आये। राजाके मनमें भी उनके दर्शनकी लालसा हुई। वह बड़े प्रेमसे उन महात्माके पास गया और कुछ फल-फूल उनके सामने रक्खा। पर तपस्वी उस समय ध्यानमग्न थे। उन्हें राजाके आने-जानेका कोई पता न चला। अतएव कोई बात-चीत अथवा आदर-मानका उपक्रम नहीं किया। राजाको इससे कुछ अपमानका अनुभव हुआ। दुर्दैववशात् उसे क्रोध आ गया और समीप ही पड़ी हुई घोड़ेके लीदको तपस्वीके सिरपर रखकर वह चलता बना।

कुछ दिन यों ही बीत गये। एक रात देवदूत राजाके पास पुनः आया और बोला, 'राजन्! तुम्हारे स्वर्णके प्रासादमें केवल लीद-ही-लीद भरा पड़ा है। उसमें तिल रखनेको भी अब स्थान नहीं रहा है।'—अब राजा बड़ी चिन्तामें पड़ा। वह समझ गया कि यह साधुके सिरपर लीद रखनेका ही दुष्परिणाम उपस्थित हुआ है। मन्त्रियोंने सलाह दी 'यदि आपकी सर्वत्र किसी प्रकार घोर मिथ्या निन्दा हो सके तो वे प्रासाद लीदसे खाली हो जायँ।'

दूसरे दिन राजाने अपने गुप्तचरोंसे अपनी मिथ्या दुष्क्रियाओंका प्रचार कराया। बस क्या था, उसकी सर्वत्र निन्दा होने लगी। उसकी सभीने निन्दा कर डाली पर एक लोहार ऐसा बच रहा जिसने इन बातोंपर तनिक भी ध्यान नहीं दिया।

कुछ दिनों बाद देवदूत फिर आया और कहने लगा—'महाराज! वह लीद तो बिल्कुल खाली हो गयी, बस एक कोनेमें थोड़ी-सी बच रही है। आपकी निन्दा करनेवालोंने सारी लीद खा डाली। अब अगर लोहार यदि आपकी निन्दा कर डाले तो वह रही-सही भी समाप्त हो जाय।' इतना कहकर देवदूत तो चला गया और राजा इसका उपाय ढूँढने लगा। अन्तमें वह स्वयं वेष बदलकर लोहारके पास पहुँचा और अपनी निन्दा करने-करानेकी चेष्टामें लगा। लोहार थोड़ी देर तक तो राजाकी बातें सुनता रहा। फिर उसने बड़ी नम्रतासे कहा—'महाराज! मुझे क्यों बहका रहे हैं,

वह लीद तो आपको ही खानी होगी। मैं तो आपकी निन्दा कर उसे खानेसे बाज आया।'

परनिन्दा करनेवाला जिसकी निन्दा करता है उसके पापोंको ले लेता है।—जा० श०

धर्मो रक्षति रक्षितः

किसी शहरमें एक बड़ा धर्मात्मा राजा राज्य करता था। उसके दानधर्मका प्रवाह कभी बंद नहीं होता था। एक दिन उसके यहाँ एक साधु आया। उसने राजासे कहा, 'राजन्! मुझे कुछ दो।' राजा बोला—'कहिये, क्या दूँ?' साधुने कहा—'या तो बारह वर्षके लिये अपना राजपाट दे दो या अपना धर्म दे दो।' साधुकी बात सुनकर राजा पहले तो कुछ चिन्तामें पड़ गया, फिर सोच-विचारकर उसने कहा—'महाराज! मैंने राजपाट सब आपको दिया। आप सम्हाल लीजिये।' इतना कहकर वह वहाँसे अकेले चल पड़ा।

चलते-चलते मार्गमें एक बगीचा आया। वहीं एक कुआँ और प्याऊ भी था। बड़ा रम्य स्थान था। राजा वहीं विश्राम करनेके विचारसे ठहर गया। अगल-बगल देखनेपर उसे एक जीन कसा हुआ सुन्दर घोड़ा दीखा। वहाँ एक सुन्दरी स्त्री बैठी हुई रो रही थी। राजाको स्वभावतः दया आयी। उसने उस स्त्रीसे रोनेका कारण पूछा। स्त्री बोली—'महाराज! मैं एक राजकुमारी हूँ। मेरे पिता, भ्राता सबको शत्रुओंने मार डाला है। मैं किसी प्रकार जान बचाकर यहाँ भाग आयी हूँ। अब आप ही दैवके द्वारा भेजे मेरे आश्रयदाता हैं। अतः मुझे शरण दें।' राजाने कहा—'ठीक है, घोड़ेपर चढ़कर चलो।' वह बोली—'नहीं महाराज! तुम्हीं घोड़ेपर चलो, तुम्हारे सामने मेरा घोड़ेपर चलना ठीक नहीं है।' चलते-चलते दोनों एक दूसरे राजाके नगरमें पहुँचे। स्त्रीने कहा—'तुम शहरमें जाकर कोई बढ़िया मकान भाड़ेपर ठीक करो। तबतक मैं यहीं बैठती हूँ।' राजाने कहा—'भाई! मेरे पास अधेला भी नहीं है, फिर मकानकी बात किस मुँहसे करूँगा।' स्त्रीने कहा—'महाराज! रुपयों-पैसोंकी आवश्यकता हो तो मेरे पाससे ले जाओ।' और उसने निकालकर दस मोहरें राजाको थमा दीं। राजा भी मकान ठीक कर आया और राजकुमारीको लेकर उसी मकानमें रहने लगा। राजा बाहरसे घोड़े और उस स्त्री आदिके लिये भोजन-सामग्री ले आया। राजकुमारीने भोजन तैयार किया और राजासे भोजन करनेको कहा। राजाने कहा, 'अरे! आप भोजन करो।' उसने कहा, 'नहीं महाराज! पहले आप भोजन कर लें तो पीछे मैं करूँगी।' राजाने भोजन किया। स्त्रीने भी किया।

दूसरे दिन उस स्त्रीने कहा—'राजन्! आपको कष्ट अधिक होता है, एक नौकर रख लो।' राजा बोला—'भाई! मेरे पास एक अधेला भी नहीं है और तुम तो राजाओंकी-सी बात कर रही हो।' स्त्रीने कहा—'राजन्! आप असमंजसमें न पड़िये, मैं स्त्री न हुई होती तो स्वयं इन कामोंको कर लाती, आपको कहने भी न जाती। रुपये-पैसोंकी आपको जब भी आवश्यकता पड़े आप हमसे निस्सङ्कोच माँग लिया कीजिये।' राजा गया और एक नौकर ले आया।

कुछ दिनोंके बाद उस स्त्रीने कहा—'राजन्! मन बहलानेके लिये कभी-कभी यहाँके राजाकी कचहरीमें चले जाया करो और वहाँकी कुछ बातें सुन लिया करो।' अब राजा रोज कचहरी जाने लगा। राजा यह समझकर कि यह मेरे मन्त्रियोंमेंसे किसीका सम्बन्धी होगा, उससे कुछ न पूछता। इधर मन्त्रीलोग उसकी आकृति राजाके समान देखकर राज-सम्बन्धी जानकर कुछ न बोलते। कुछ दिन यों ही बीत गये। एक दिन राजा और मन्त्रीवर्गने

आपसमें आखिर उस राजाके सम्बन्धमें बात-चीत की । वह किसीका कोई होता तो था ही नहीं । लोगोंको बड़ा कौतूहल हुआ । दूसरे दिन राजाने उससे परिचय माँगा । उसने अपनी सारी बात बता दी । उसकी धर्मप्रियता देख राजाने उसका बड़ा स्वागत किया और अपना मुकुट उसके सिरपर रख उसकी पगड़ी अपने सिरपर रख ली, अपने सिंहासनपर बैठाया और मैत्रीकी प्रतिज्ञा की । दूसरे दिन उसे निमन्त्रण दिया । राजाने सारी घटना उस स्त्रीसे कहा । उसने कहा—'ठीक है, आप इसके बदले राजाको सारे परिकर, परिषद् तथा नगरको भी न्यौता दे आइये ।' वह पहले तो हिचकिचाया पर उसके प्रभाव तथा आग्रहको देखकर राजासे जाकर बोला—'भाई साहब ! आपको और आपकी सारी फौज-पल्टनको और तमाम शहरको मेरे यहाँ कल निमन्त्रण है ।' राजा बोला—'कहीं भाँग पी ली है क्या ? खैर बोले जाओ मनमानी, मित्र ही तो हो ।' शामको उसने एक सिपाही भेजकर पता चलाया तो वहाँ कुछ नहीं था । राजाने कहा, 'भाई ! उसने कहीं भाँग-फाँग पी ली होगी ।' इधर इसको भी चैन न थी । उस स्त्रीसे कहने लगा—'भाई ! तूने मेरी अच्छी फजीहत की । प्रातः राजा न जाने मुझे क्या करेगा !' स्त्रीने कहा—'महाराज ! चिन्ता न करें, यदि आपको धैर्य न हो तो उस बगीचेमें देख आयें, जहाँने मुझे लिवा लाये थे ।' राजाने घोड़ेपर चढ़कर जा देखा तो वहाँ सम्पूर्ण देववर्ग ही कार्यमें तत्पर था । अनन्त, दिव्य ऐश्वर्य भरा था । वह तो आश्चर्यमें डूब गया । प्रातःकाल राजासहित सम्पूर्ण नगरको उसने भोजन कराया । इस आश्चर्यको देखकर सभी लोग आश्चर्यमें डूब गये । भोजनोपरान्त सारा देववर्ग अन्तर्धान हो गया ।

अब उस स्त्रीने कहा—'राजन् ! तुमने उस साधुको कितने दिनोंके लिये राज्य दिया था । जरा कागज तो देखो ।' राजाने देखा, समय पूरा हो चुका था । स्त्री बोली तो तुम अब अपने घरको जाओ । राजाने कहा—'देवि ! तुम्हें छोड़कर तो मैं एक डग भी न जाऊँगा ।' स्त्री बोली—'राजन् ! तुम मुझे क्या समझ रहे हो ? मैं कोई तुम्हारी स्त्री नहीं हूँ । मैं तो तुम्हारा धर्म हूँ । जब तुमने मुझे नहीं छोड़ा तो मैंने भी तुम्हें नहीं छोड़ना चाहा और तुम्हारी स्त्री बनकर तुम्हारे साथ रहकर किसी प्रकारका तुम्हें क्लेश नहीं होने दिया । पर अब तुम्हारी जैसी इच्छा ।' —जा० दा०

उचित गौरव

एक भंगिन शौचालय स्वच्छ करके जब चलने लगी तब किसी भले आदमीने कुतूहलवश पूछा—'तुम्हें यह काम करनेमें घृणा नहीं लगती ? तुम इतनी दुर्गन्ध सह कैसे लेती हो ?'

भंगिनने धीरेसे उत्तर दिया—'हमारे बड़े लोगोंने बताया है कि सृष्टिकर्ताने हमें मनुष्यमात्रकी माताका पद दिया है । अपनी संतानका मल स्वच्छ करनेमें माताको कभी घृणा लगी है या दुर्गन्ध आयी है ?' —सु० सिं०

है और नहीं

किसी नरेशने मन्त्रीसे चार वस्तुएँ माँगीं—१—है और है, २—है और नहीं है, ३—नहीं है पर है, ४—नहीं है, नहीं है ।

मन्त्री बुद्धिमान् थे । उन्होंने दूसरे दिन राजाके सामने चार व्यक्ति उपस्थित किये—१—धर्मात्मा सेठ, २—वेश्या, ३—साधु और ४—दरिद्र ।

राजाने पूछा कि 'ये लोग क्यों लाये गये हैं?'

मन्त्री—'आपने चार वस्तुएँ मँगायी थीं, वे सामने हैं। उनमें पहिली वस्तु 'है और है' ये सेठजी। इनके पास यहाँ सम्पत्ति है, सुख है और ये धर्मात्मा हैं, पुण्य-कर्म करते हैं इससे परलोकमें भी इन्हें अपने पुण्यके फलसे सुख मिलेगा। दूसरी वस्तु 'है और नहीं है' यह वेश्या। इसके पास भी धन है, सुख है; किंतु वह सब पापसे उपार्जित होनेके कारण परलोकमें इसे कष्ट-ही-कष्ट भोगना है। तीसरी वस्तु 'नहीं है पर है' ये साधु महाराज। यहाँ तो इनके पास कुछ है नहीं, यहाँ इनका ज[illegible] व्रत-उपवासादिमें ही बीतता है; किंतु इनके पास पु[illegible] अपार सम्पत्ति है जो परलोकमें इन्हें असीम सुख दे[illegible] चौथी वस्तु 'नहीं है, नहीं है' यह व्याध। यहाँ[illegible] कंगाल है और प्राणियोंको मारकर पेट भरता है[illegible] इस पापसे परलोकमे इसकी और अधोगति होनी है[illegible]

राजा तथा सभी सभासद् मन्त्रीकी इस व्या[illegible] संतुष्ट हो गये।—सु० सिं०

वस्तुका मूल्य उसके उपयोगमें है

एक साधुने एक नरेशका कोषागार देखनेकी इच्छा प्रकट की। श्रद्धालु नरेश साधुको लेकर कोषागारमें पहुँचे। हीरे, मोती, नीलम, पन्ने आदिका पर्याप्त बड़ा संग्रह देखकर साधुने पूछा—'इन पत्थरोंसे आपको कितनी आय होती है?'

नरेश बोले—'इनसे आय नहीं होती। उलटे इनको सुरक्षित रखनेके लिये बराबर व्यय करते रहना पड़ता है। पहरेदार रखने पड़ते हैं; क्योंकि ये बहुमूल्य रत्न हैं।'

साधुने कहा—'आप मेरे साथ चलें। इनसे बहुत भारी और अत्यन्त बहुमूल्य पत्थर मैं आपको दिखलाता हूँ।'

साधु नरेशको ले गये एक झोंपड़ीमें। उसमे[illegible] विधवा रहती थी। उसके घरमें एक आटेकी पत्[illegible] चक्की थी। दूसरोंके अन्न पीसकर वह अपना पेट [illegible] थी। साधुने चक्कीके पत्थरोंकी ओर संकेत [illegible] कहा—'राजन्! तुम्हारे उन उपयोगहीन पत्थरो[illegible] पत्थर अत्यन्त बहुमूल्य हैं; क्योंकि इस विधवाके ये जीविकाके आधार हैं। ये उपयोगी हैं।'

राजाने मस्तक झुका लिया। वस्तुका मूल्य सौन्दर्य एवं संग्रहमें नहीं, उसकी उपयोगितामें है बात उसने समझ ली या नहीं, कहा नहीं जा स[illegible]

—सु[illegible]

अमरफल

पिताने अपने नन्हे-से पुत्रको कुछ पैसे देकर बाजार भेजा फल लानेके लिये। बच्चेने रास्तेमें देखा, कुछ लोग, जिनके बदनपर चिथड़े भी पूरे नहीं हैं, भूखके मारे छटपटा रहे हैं। उसने पैसे उनको दे दिये। उन्होंने उन पैसोंसे उसी समय उदरपूर्तिके लिये सामान खरीद लिया। बालकको इससे बड़ी खुशी हुई। वह मन-ही-मन फूलता हुआ खाली हाथ घर लौट आया। पिताने पूछा—'बेटा! फल नहीं लाये?' बालकने उत्तर दिया—'आपके लिये अमरफल लाया हूँ पिताजी!' पिताने पूछा—'वह कौन-सा?' उसने कहा—'[illegible] जी! मैंने देखा—कुछ अपनेही-जैसे आदमियोंको मरते हुए, मुझसे रहा नहीं गया। मैंने वे स[illegible] उनको दे दिये। उनकी आजभरकी भूख मिट [illegible] हमलोग फल खाते, दो-चार क्षणोंके लिये हमा[illegible] मीठे हो जाते; परंतु इसका फल तो अमर है न[illegible] जी!' पिता भी बड़े धार्मिक थे। पुत्रकी बात [illegible] उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

यही बालक आगे चलकर संत रंगदास हुए।

आँख और कानमें भेद

एक संतके पास तीन मनुष्य शिष्य बननेके लिये गये। संतने उनसे पूछा—'बताओ, आँख और कानमें कितना अन्तर है?' इसपर पहलेने कहा—'महाराज! पाँच अंगुलका अन्तर है।' दूसरेने कहा—'महाराज! जगत्में आँखका देखा हुआ कानके सुने हुएसे अधिक प्रमाणित माना जाता है। यही आँख और कानका भेद है।' तीसरा बोला—'महाराज! आँख और कानमें और भी भेद है। आँखसे कानकी विशेषता है। आँख लौकिक पदार्थोंको ही दिखलाती है; परंतु कान परमार्थ-तत्त्वको भी जतानेवाला है। यह विशेष अन्तर है।' संतने पहलेको शिष्यरूपसे स्वीकार नहीं किया। दूसरेको उपासनाका और तीसरेको ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया।

तैरना जानते हो या नहीं?

एक नवशिक्षित शहरी बाबू नदीमें नावपर जा रहे थे। उन्होंने आकाशकी ओर ताककर केवटसे कहा—'भैया! तुम नक्षत्रविद्या जानते हो?' केवट बोला—'बाबूजी! मैं तो नाम भी नहीं जानता।' इसपर बाबूने हँसकर कहा—'तब तो तुम्हारा चौथाई जीवन व्यर्थ ही गया।' कुछ देर बाद बाबूने फिर पूछा—'भाई! तुम गणित पढ़े हो?' केवटने कहा—'बाबू! मैं तो नहीं पढ़ा।' बाबू बोले—'तब तो तुम्हारा आधा जीवन मुफ्तमें गया।' केवट बेचारा चुप रहा। थोड़ी देर बाद नदीके दोनों ओर पेड़ोंकी पंक्तियोंको देखकर बाबू बोले—'तो भैया! तुम वृक्ष-विज्ञान-शास्त्र तो जानते ही होगे?' केवट बोला—'बाबूजी! मैं तो कोई शासतर-वासतर नहीं जानता—नाव खेकर किसी तरह पेट भरता हूँ।' बाबूजी हँसकर बोले—'तब तो भैया तुम्हारे जीवनका तीन चौथाई हिस्सा बेकाम ही बीता।' यों बातचीत चल रही थी कि अकस्मात् जोरोंकी आँधी आ गयी। नाव डगमगाने लगी। देखते-ही-देखते नावमें पानी भर गया। केवटने नदीमें कूदकर तैरते हुए पूछा—'बाबूजी! आप तैरना जानते हैं या नहीं?' बाबूने कहा—'तैरना जानता तो मैं भी कूद न पड़ता। भैया! बता! अब क्या होगा?' केवट बोला—'बाबूजी! अब तो सिवा डूबनेके और कोई उपाय नहीं है। आपने सारी विद्याएँ पढ़ीं, पर तैरना नहीं जाना तब सभी कुछ व्यर्थ है। अब तो भगवान्को याद कीजिये।' भवसागरसे तरनेकी भजनरूपी विद्या ही सच्ची विद्या है। इसे न पढ़कर जो केवल लौकिक विद्याओंके पण्डित बनकर अभिमान करते हैं, उन्हें तो डूबना ही पड़ता है।

बुढ़ियाकी झोंपड़ी

किसी राजाने एक जगह अपना महल बनवाया। उसके बगलमें एक गरीब बुढ़ियाकी झोंपड़ी थी। झोंपड़ीका धुआँ महलमें जाता था, इसलिये राजाने बुढ़ियाको अपनी झोंपड़ी वहाँसे हटा लेनेकी आज्ञा दी। राजाके सिपाहियोंने बुढ़ियासे झोंपड़ी हटा लेनेको कहा, पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया। तब वे लोग उसे डाँट-डपटकर राजाके पास ले गये। राजाने पूछा—'बुढ़िया! तू झोंपड़ी हटा क्यों नहीं लेती? मेरा हुक्म क्यों अमान्य करती है?' बुढ़ियाने कहा—'महाराज! आपका हुक्म तो सिर माथेपर; पर आप क्षमा करें, मैं एक बात आपसे पूछती हूँ। महाराज! मैं तो आपका इतना बड़ा महल

और बाग-बगीचा सब देख सकती हूँ, पर आपकी आँखोंमें मेरी यह टूटी झोंपड़ी क्यों खटकती है ! आप समर्थ हैं; गरीबकी झोंपड़ी उजड़वा सकते हैं; पर ऐसा करनेपर क्या आपके न्यायमें कलङ्क नहीं लगेगा ?'

बुढ़ियाकी बात सुनकर राजा लज्जित हो गये और बुढ़ियाको धन देकर उसे आदरपूर्वक लौटा दिया।

नियम टूटने मत दो

एक विद्वान् पुरुष ग्रन्थरचना करनेमें लगे थे। एक निर्धन विद्यार्थीकी सहायता करनेकी इच्छासे उन्होंने उसे अपना लेखक बना रक्खा था। विद्यार्थी दूर रहता था। प्रतिदिन पैदल चलकर आता था। वे दो घंटे बोलते जाते थे और वह विद्यार्थी लिखता जाता था। एक दिन उन्होंने उस विद्यार्थीसे कहा—'कल कुछ रात रहते ही आ जाना। ग्रन्थ लिखवाकर मुझे बाहर जाना है।'

बेचारे विद्यार्थीको पर्याप्त रात रहते उठना पड़ा। अँधेरेमें ही चलकर वह उनके पास आया। परंतु केवल एक पंक्ति लिखवाकर वे बोले—'आजका काम हो गया। अब जा सकते हो।'

विद्यार्थी झुँझलाया। वह कुछ बोला नहीं; किंतु उसके मुखका भाव देखकर वे बोले—'असंतुष्ट मत हो। आज तुमको ऐसी शिक्षा मिली है, जिसपर यदि चलोगे तो जीवनमें सफलता प्राप्त करोगे। वह शिक्षा यह है कि जो नियम बनाओ, उसे टूटने मत दो। चाहे जैसी स्थिति आवे, नियमका नित्य निर्वाह करो।'

—सु० सिं०

नियम-पालनका लाभ

एक गाँवमें एक साधु आये। उन्हें पता लगा कि गाँवमें एक ऐसा व्यक्ति है जो किसी प्रकारके आचार-विचार, व्रत-नियमको मानता ही नहीं। साधुने उसे बुलवाया और समझाया—'जीवनमें कोई एक नियम अवश्य होना चाहिये। तुम कोई एक नियम बना लो—ऐसा नियम जो तुम्हें सबसे सुगम जान पड़े।'

वह व्यक्ति बोला—'मुझसे कोई नियम-पालन नहीं हो सकता; किंतु आप कहते ही हैं तो यह नियम बना लेता हूँ कि अपने घरके पास रहनेवाले कुम्हारका मुख देखकर ही भोजन करूँगा।'

साधुने स्वीकार कर लिया। साधु तो चले गये और उसका नियम भी चलता रहा; किंतु एक दिन उसे किसी कामसे कुछ रात्रि रहते ही घरसे दूर जाना पड़ा। जब वह लौटा तो दो पहर बीत चुका था। कुम्हार गाँवसे दूर मिट्टी खोदने चला गया था बर्तन बनानेके लिये। परंतु उसे अपना नियम-पालन करना था। वह कुम्हारकी खोजमें चल पड़ा; क्योंकि उसे भूख लगी थी और उस कुम्हारका मुख देखे बिना उसे भोजन करना नहीं था।

उस दिन मिट्टी खोदते समय कुम्हारको अशर्फियोंसे भरा घड़ा मिला। उस घड़ेकी अशर्फियोंको वह गधेकी बोरीमें भर रहा था, रात्रिमें ले जानेके लिये, इतनेमें यह व्यक्ति पहुँचा। कुछ दूरसे ही कुम्हारका मुख देखकर यह लौटने लगा। कुम्हारको लगा कि इसने उसे अशर्फी भरते देख लिया है। दूसरोंसे यह न बता दे, इस भयसे कुम्हारने उसे पुकारा और घड़ेका आधा धन उसे दे दिया।

एक साधारण नियमके पालनसे इतना लाभ हुआ, यह देखकर उसी दिनसे वह व्रतादि सभी धार्मिक नियमोंका पालन करने लगा।—सु० सिं०

सफलताके लिये श्रद्धाके साथ श्रम भी चाहिये

एक ग्रामीण बैलगाड़ी लिये कहीं जा रहा था। एक नालेके कीचड़में उसकी गाड़ीके पहिये धँस गये। ग्रामीण बैलगाड़ीसे उतर पड़ा और पासकी भूमिपर बैठकर हनुमानचालीसाका पाठ करने लगा। वह एक पाठ करता और फिर प्रार्थना करता—'हनुमान्‌जी! मेरी गाड़ी कीचड़से निकाल दीजिये!' फिर पाठ करता और फिर प्रार्थना करता।

ग्रामीणकी श्रद्धा सच्ची थी। उसका पाठ-प्रार्थनाका क्रम पर्याप्त समय तक चलता रहा। अन्तमें हनुमान्‌जीने दर्शन दिया उसे। वे बोले—'भले आदमी! देखना आलसी और निरुद्योगीकी सहायता नहीं किया करते। मैं इस प्रकार लोगोंके छकड़े निकाला करूँ तो संसारके लोग उद्योगहीन हो जायँ। दैवी-सहायता पानेके लिये श्रद्धाके साथ श्रम भी चाहिये। तू बैलोंको ललकार और कीचड़में उतरकर पूरी शक्तिसे पहियोंको ठेल। तब मेरा बल तुझमें प्रवेश करके तेरी सहायता करेगा।'

—सु० सिं०

धनका गर्व उचित नहीं

कोई धनवान् पुरुष अपने मित्रके साथ कहीं जा रहे थे। मार्गमें एक विपत्तिमें पड़े कंगालको देखकर मित्रका हाथ दबाकर वे व्यंगपूर्वक हँस पड़े। समीपसे ही कोई विद्वान् पुरुष जा रहे थे। धनीका यह व्यवहार उन्हें अनुचित प्रतीत हुआ। वे बोले—

आपद्गतं हससि किं द्रविणान्धमूढ
लक्ष्मीः स्थिरा न भवतीह किमत्र चित्रम्।
किं त्वं न पश्यसि घटाञ्जलयन्त्रचक्रे
रिक्ता भवन्ति भरिता भरिताश्च रिक्ताः॥

'अरे! धनके मदसे अंधे बने मूर्ख! आपत्तिमें पड़े व्यक्तिको देखकर हँसता है, किंतु लक्ष्मी कहीं स्थिर नहीं रहती, अतः इसमें (किसीके कंगाल होनेमें) विचित्र बात क्या है। क्या तू रहँटकी ओर नहीं देखता कि उसमें लगी भरी डोलियाँ खाली होती जाती हैं और खाली हुई फिर भरती हैं।'

यह बात सुनकर वह धनवान् लज्जित हो गया।

—सु० सिं०

फलनेका मौका देना चाहिये

किसी वस्तुको रखने या हटा देनेके सम्बन्धमें बहुत सोच-समझकर निर्णय करनेसे बड़े-से-बड़ा लाभ होते देखा गया है।

बहुत पहलेकी बात है। एक व्यक्तिने अपने अंगूरके बगीचेमें एक अजीरका पेड़ लगा रक्खा था। बहुत दिनोंसे उसमें फल नहीं लगे थे।

× × × ×

'यह पेड़ निरर्थक सिद्ध हुआ। इसने इतनी जमीन व्यर्थ घेर रक्खी है। तीन साल हो गये, पर इस ठूँठमें एक फल भी नहीं लगा। इसे काट डालो।' बगीचेके मालिकने मालीको आदेश दिया।

'मालिक! एक सालका और मौका दीजिये। मैं इसके चारों ओर थाला बनाऊँगा। पानी और खाद दूँगा। हो सकता है कि हमारी एक सालकी प्रतीक्षा फलवती हो जाय और इस ठूँठमें नये प्राण लहरा उठें।' मालीने मालिकसे प्रार्थना की। उसने विश्वास दिलाया कि यदि इसमें फल नहीं लगेंगे तो काट डालूँगा।

'तुम ठीक कहते हो, माली! प्रतीक्षासे भी सफलता मिलती है।' मालिकने आदेश बदल दिया। उसे पूर्ण आशा थी और सचमुच अगले साल फल लग गये।

—[illegible]

नित्य-दम्पति

(श्रीराधा-कृष्ण-परिणय)

नित्य आनन्दघन, नित्यनिकुञ्जविहारी श्रीनन्दनन्दन धरापर आविर्भूत हुए और उनके साथ ही पधारीं व्रजधरापर उनकी महाभावरूपा आनन्दशक्ति श्रीराधा। भगवान्‌के आनन्दस्वरूपका नाम आह्लादिनी शक्ति है, इसका सार नित्य प्रेम है, प्रेमका सारसर्वस्व महाभाव है और महाभावरूपा हैं श्रीराधाजी। ये भगवान् श्रीकृष्णसे नित्य अभिन्न परंतु नित्य लीलाविहारकी दिव्य मूर्ति हैं। माता कीर्तिकी वे प्राणप्रिय पुत्री, बाबा वृषभानुकी कुमारी, बृहत्सानु (बरसाने) की श्रीव्रजधरापर आयी थीं जगत्‌को विशुद्ध प्रेमका आदर्श देने। उनके हृदयधन श्रीयशोदानन्दन चाहे जितने रूप लें, चाहे जितने कार्य करें; किंतु वे प्रेमसारसर्वस्व महाभावस्वरूपा—वे तो केवल भावमयी हैं। प्रेम कहते किसे हैं—बाह्य रूपसे जगत्‌को उन्हें यही सिखलाना था।

नित्यकौमार्य—श्रीराधाने व्रजधरापर नित्यकौमार्य रूप स्वीकार किया। वे चिरकुमारिका रहीं लोकदृष्टिमें। श्रीनन्दनन्दन केवल ग्यारह वर्ष कुछ मासकी वयमें व्रजसे चले गये और गये सो गये। व्रज लौटनेका अवसर ही कहाँ मिला उन्हें। चिरविरहिणी, श्रीकृष्णप्राणा श्रीराधा—उन नित्य आह्लादमयीने यह वियोगिनी मूर्ति न स्वीकार की होती—महाभावकी परम भूमि, प्रेमकी चरम-मूर्ति विश्वमानसमें अदृश्य ही रह जाती।

समाजकी दृष्टिमें श्रीराधा नित्यकुमारी रहीं; किंतु श्रुतियोंके संरक्षकको मर्यादाकी रक्षा तो करनी ही थी। श्यामसुन्दरकी वे अभिन्न सहचरी, वे शास्त्रदृष्टिसे धरापर उनसे अभिन्न न हों, यह कैसे हो सकता था। नन्द-नन्दनने उनका विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया और उस पाणिग्रहणके पुरोहित,-साक्षी थे स्वयं जगत्स्रष्टा लोकपितामह।

श्रीराधा लोकदृष्टिसे नन्दनन्दनसे कुछ बड़ी थीं। वनमें व्रजेश्वर नन्दरायजी अपने कुमारके साथ गये थे, सम्भवतः गायोंका निरीक्षण करना था उन्हें। श्रीवृषभानुजी भी पहुँचे थे इसी कार्यसे और वन तथा गौओंके अव-लोकनका कुतूहल लिये उनकी लाड़िली भी उनके साथ आयी थीं। सघन मेघोंसे सहसा आकाश आच्छादित हो गया, लगता था कि शीघ्र ही वर्षा होगी। श्री-व्रजेश्वरको लगा कि बच्चोंको घर चले जाना चाहिये। उन्होंने कीर्तिकुमारीको पुचकारा—'बेटी! तू घर चली जा। देख, वर्षा आनेवाली है। कन्हाईको अपने साथ ले जा। मैं तेरे बाबाके साथ थोड़ी देरमें लौटता हूँ।'

व्रजेश्वरका अनुरोध संकोचमयी वृषभानुनन्दिनीने स्वीकार कर लिया। मोहनको साथ लेकर लौटीं; किंतु एकान्तमें उन दोनोंका नित्यस्वरूप छिपा कैसे रह सकता है। नन्दनन्दनका बालरूप अदृश्य हो गया और वे नित्य-किशोर-रूपमें प्रकट हो गये। कीर्ति-कुमारीकी मूर्ति भी अब किशोरी-मूर्ति हो चुकी थी। इसी समय गगनसे अपने उज्ज्वल हंसपर बैठे ब्रह्माजी उतरे। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'श्रुतिकी मर्यादा आज सौभाग्यभूषित हो जाय और इस सेवकको भी सुअवसर प्राप्त हो। व्रजधरापर आप दोनोंका सविधि परिणय करानेकी अनुमति मिले मुझे।'

मन्दस्मितसे दोनोंने एक-दूसरेकी ओर देखा। पुष्पित लताएँ झुक उठीं। जिनका संकल्प कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंकी सृष्टि करता है, उनके लिये—उनके विवाहके लिये योगमायाको सामग्री प्रस्तुत करनेमें कितने क्षण लगते थे। अग्नि प्रज्वलित करके ब्रह्माजीने मन्त्रपाठ किया। अग्निकी सात प्रदक्षिणा करायीं। पाणिग्रहण, सिंदूरदान आदि संस्कार सविधि सम्पन्न हुए। नित्य-दम्पति एक आसनपर आसीन हुए। धन्य हो गये सृष्टिकर्ताके आठों लोचन। वे हाथ जोड़े अपलक देख रहे थे इस अनुपम सौन्दर्य-राशिको। वर-वधू-वेशमें यह युगलमूर्ति····।

सच्चा अध्ययन

एक विद्वान् ब्राह्मण एक धर्मात्मा नरेशके यहाँ पहुँचे। उनका सत्कार हुआ। ब्राह्मणने कहा—'राजन्! आपकी इच्छा हो तो मैं आपको श्रीमद्भागवत श्रवण कराऊँ।'

नरेशने उनकी ओर देखा और बोले—'आप कुछ दिन और श्रीमद्भागवतका अध्ययन करके आवें।'

बहुत बुरा लगा ब्राह्मणको। वे उठकर चले आये। परंतु उन्होंने श्रीमद्भागवतका अध्ययन छोड़ा नहीं। पूरा ग्रन्थ कण्ठस्थ करके वे फिर नरेशके पास गये। किंतु उन्हें फिर वही उत्तर मिला—'आप कुछ दिन और श्रीमद्भागवतका अध्ययन करें।'

एक बार, दो बार, तीन बार—ब्राह्मणको यही उत्तर राजा देते रहे, जब भी वे उनके यहाँ गये। अन्तमें वे निराश हो गये। अचानक श्रीमद्भागवत-का पाठ करते समय वैराग्यबोधक श्लोकोंपर उनका ध्यान गया। उनके चित्तने कहा—'छि.! मैं एक तुच्छ नरेशके यहाँ बार-बार लोभवश जाता हूँ और साक्षात् श्रीकृष्ण-स्वरूप अनन्त दयामय श्रीमद्भागवत मेरे सामने हैं, उनकी शरण मैं नहीं लेता।' ब्राह्मण तो अब श्रीमद्भागवतके पाठमें ही तन्मय हो गये।

बहुत दिन बीत गये और ब्राह्मण नहीं आये तब राजाने उन्हें बुलानेको दूत भेजा; किंतु अब निःस्पृह ब्राह्मण उनके यहाँ क्यों जाने लगे थे। अन्तमें राजा स्वयं उनकी झोंपड़ीमें पधारे। उन्होंने कहा—'भगवन्! आप मुझे क्षमा करें। श्रीमद्भागवतका ठीक अध्ययन आपने अब किया है। वैराग्य और भगवद्भक्ति न आयी तो भागवत पढ़नेसे लाभ क्या। आप पाठ करें, अब यहीं आपके चरणोंमें बैठकर मैं आपके श्रीमुखसे श्रीमद्भागवत श्रवण करूँगा।' —सु० सिं०

कर्मफल

मार्गमें एक घायल सर्प तड़फड़ा रहा था। सहस्रों चींटियाँ उससे चिपटी थीं। पाससे एक सत्पुरुष शिष्यके साथ जा रहे थे। सर्पकी दयनीय दशा देखकर शिष्यने कहा—'कितना दुखी है यह प्राणी।'

गुरु बोले—'कर्मफल तो सबको भोगना ही पड़ता है।'

शिष्य—'इस सर्पने ऐसा क्या पाप किया कि सर्प-योनिमें भी उसे यह कष्ट।'

गुरु—'तुम्हें स्मरण नहीं कि कुछ वर्ष पूर्व इस सरोवरके किनारेसे हमलोग जा रहे थे तो तुमने एक मछुएको मछली मारनेसे रोका था।'

शिष्य—'वह दुष्ट मेरे रोकनेपर मेरा ही उपहास करने लगा था।'

गुरु—'आज वही सर्प है और उसने जिन मछलियों-को मारा था, उन्हें अपना बदला लेनेका अवसर मिला है। वे चींटियाँ होकर उत्पन्न हुई हैं।'

लक्ष्मीका वास कहाँ है ?

एक सेठ रात्रिमें सो रहे थे। स्वप्नमें उन्होंने देखा कि लक्ष्मीजी कह रही हैं—'सेठ! अब तेरा पुण्य समाप्त हो गया है, इसलिये तेरे घरसे मैं थोड़े दिनोंमें चली जाऊँगी। तुझे मुझसे जो माँगना हो, वह माँग ले।'

सेठने कहा—'कल सबेरे अपने कुटुम्बके लोगोंसे सलाह करके जो माँगना होगा, माँग लूँगा।'

सवेरा हुआ। सेठने स्वप्नकी बात कही। परिवारके लोगोंमेंसे किसीने हीरा-मोती आदि माँगनेको कहा, किसीने स्वर्णराशि माँगनेकी सलाह दी, कोई अन्न माँगनेके पक्षमें था और कोई वाहन या भवन। सबमें अन्तमें सेठकी छोटी बहू बोली—'पिताजी! जब लक्ष्मीजीको जाना ही है तो ये वस्तुएँ मिलनेपर भी टिकेंगी कैसे। आप इन्हें माँगेंगे, तो भी ये मिलेंगी नहीं। आप तो माँगिये कि कुटुम्बमें प्रेम बना रहे। कुटुम्बमें सब लोगोंमें परस्पर प्रीति रहेगी तो विपत्तिके दिन भी सरलतासे कट जायँगे।'

सेठको छोटी बहूकी बात पसंद आयी। दूसरी रात्रिमें स्वप्नमें उन्हें फिर लक्ष्मीजीके दर्शन हुए। सेठने प्रार्थना की—'देवि! आप जाना ही चाहती हैं तो प्रसन्नतासे जायँ; किंतु यह वरदान दें कि हमारे कुटुम्बियोंमें परस्पर प्रेम बना रहे।'

लक्ष्मीजी बोलीं—'सेठ! ऐसा वरदान तुमने माँगा कि मुझे बाँध ही लिया। जिस परिवारके सदस्योंमें परस्पर प्रीति है, वहाँसे मैं जा कैसे सकती हूँ।'

गुरवो यत्र पूज्यन्ते यत्राह्वानं सुसंस्कृतम्।
अदन्तकलहो यत्र तत्र शक्र वसाम्यहम्॥

देवी लक्ष्मीने इन्द्रसे कहा है—'इन्द्र! जिस घरमें गुरुजनोंका सत्कार होता है, दूसरोंके साथ जहाँ सभ्यतापूर्वक बात की जाती है और जहाँ मुखसे बोलकर कोई कलह नहीं करता (दूसरेके प्रति मनमें क्रोध आनेपर भी जहाँ लोग चुप ही रह जाते हैं) मैं वहीं रहती हूँ।'

—सु० सिं०

ऋण चुकाना ही पड़ता है

एक व्यापारीको व्यापारमें घाटा लगा। इतना बड़ा घाटा लगा था कि उसकी सब सम्पत्ति लेनदारोंका रुपया चुकानेमें समाप्त हो गयी। अब आजीविकाके लिये फिर व्यापार करनेको उसे ऋण लेना आवश्यक हो गया; किंतु कोई ऋण देनेको उद्यत नहीं था, विवश होकर वह राजा भोजके पास गया और उसने एक बड़ी रकम ऋणके रूपमें माँगी।

राजाने पूछा—'तुम यह ऋण चुका कैसे सकोगे?'

व्यापारीने उत्तर दिया—'जितना इस जीवनमें चुका सकूँगा, चुका दूँगा; जो शेष रहेगा उसे जन्मान्तरमें चुकाऊँगा।'

राजाने दो क्षण सोचकर व्यापारीको ऋण देनेकी आज्ञा दे दी। कोषाध्यक्षने व्यापारीसे ऋणपत्र लिखवाकर धन दे दिया। व्यापारी वहाँसे धन लेकर चला। मार्गमें सायंकाल हो जानेके कारण वह एक तेलीके घर रात्रि व्यतीत करने रुक गया। पासमें धन होनेसे उसकी रक्षाकी चिन्तामें उसे रातमें नींद नहीं आयी। पशु-भाषा समझनेवाले उस व्यापारीने रात्रिमें तेलीके बैलोंको परस्पर बातें करते सुना। एक बैल कह रहा था—'भाई! इस तेलीसे पहिले जन्ममें मैंने जो ऋण लिया था। वह अब लगभग समाप्त हो चुका है। कल घानीमें दो-तीन चक्कर कर देनेसे मैं ऋणमुक्त हो जाऊँगा और इससे इस पशु योनिसे छूट जाऊँगा।'

दूसरा बैल बोला—'भाई! तुम्हारे लिये तो सचमुच यह प्रसन्नताकी बात है; किंतु मुझपर तो अभी इसका एक सहस्र रुपया ऋण है। एक मार्ग मेरे लिये है। यदि यह तेली राजा भोजके बैलसे मेरे दौड़नेकी प्रतियोगिता ठहरावे और एक सहस्रकी शर्त रक्खे तो मैं जीत जाऊँगा। इसे एक सहस्र मिल जायँगे और मैं पशुयोनिसे छूट जाऊँगा।'

व्यापारीने प्रातःकाल प्रस्थान करनेमें कुछ देर कर

दी। सचमुच तेलीकी घानीके दो-तीन चक्कर करके पहिला बैल अचानक गिर पड़ा और मर गया । अब व्यापारीने तेलीसे रातकी सब बात बता दी और उसे राजा भोजके पास जानेको कहा । तेलीके बैलसे अपने बैलकी दौड़-प्रतियोगिता राजाने सहस्र रुपयेकी शर्तपर स्वीकार कर ली । दौड़में तेलीका बैल जीत गया; किंतु तेलीको जैसे ही एक सहस्र रुपये मिले, उसका वह बैल भी मर गया ।

अब व्यापारी राजाके कोषाध्यक्षके पास पहुँचा । उसने ऋणमें जो धन लिया था, उसे लौटाकर ऋणपत्र फाड़ देनेको कहा । पूछनेपर उसने बताया—'इस जीवनमें मैं पूरा ऋण चुका सकूँगा, ऐसी आशा मुझे नहीं और दूसरे जीवनमें ऋण चुकानेका भय मैं लेना नहीं चाहता । इससे तो अच्छा है कि मैं मजदूरी करके अपना निर्वाह कर लूँगा ।' —सु० सि०

अपनी करनी अपने सिर

दो यात्री कहीं जा रहे थे । मार्गमें ही सूर्यास्त हो गया । रात्रि-विश्रामके लिये वे पासके गाँवमें पहुँचे । वहाँके पटेलके द्वारपर जाकर उन्होंने आश्रय माँगा । उन्हें आश्रय मिल गया । दोनों व्यापारी थे, अपना माल बेचकर लौट रहे थे । उनके पास रुपयोंकी थैली थी और इसीसे रात्रिमें यात्रा करना ठीक न समझकर वे पटेलके यहाँ ठहर गये थे । पटेलने उनकी थैलीको देख लिया था । उसकी नीयत बिगड़ चुकी थी । यात्रियोंका उसने स्वागत-सत्कार किया और उन्हें शयन करनेके लिये पलंग देकर वह अपने मकानके भीतर सोने चला गया ।

पटेलने मकानके भीतर दो गुंडोंको बुलाकर उनसे चुपचाप बात की—'मेरे द्वारपर दो आदमी सो रहे हैं, उन्हें रात्रिमें मार दो ।' पुरस्कारके लोभसे गुंडोंने पटेलकी बात स्वीकार कर ली ।

पटेलके दो पुत्र रात्रिमें खेतपर सोनेके लिये गये थे । परंतु कुछ रात्रि बीतनेपर वहाँ पटेलके नौकर पहुँच गये, इसलिये वे दोनों घर लौट आये । देर अधिक हो चुकी थी । घरके भीतर जानेकी अपेक्षा उन दोनोंने द्वार-पर ही सो रहना ठीक समझा । पलंगपर अपरिचित लोगोंको पड़े देखकर उन दोनोंने डाँटकर उन्हें उठ जानेको कहा । बेचारे यात्री चुपचाप उठे और पशुशालामें जाकर सो गये । पलंगपर पटेलके दोनों पुत्रोंने लंबी तानी ।

रात्रिमें गुंडे आये । उन्होंने पलंगपर सोये दो व्यक्तियों-को देखा और तलवारके एक-एक झटकेसे उनके सिर धड़से अलग कर दिये और वहाँसे चलते बने ।

पशुशालामें सोये दोनों यात्रियोंने सबेरे प्रस्थान करने-की तैयारी की तो उन्हें पटेलके बरामदेमें रक्त दिखायी पड़ा । उनके पुकारनेपर पटेल साहब घरसे निकले । अब क्या हो सकता था । उनका पाप उन्हींके सिर पड़ा था । दो पुत्रोंकी हत्या उनके पापसे हो चुकी थी और अब उनका भी जेल गये बिना छुटकारा नहीं था ।

—सु० सि०

अद्भुत पराक्रम

'गाड़ी आनेमें केवल आधा घंटा रह गया है । लकड़ीके पुलपर गाड़ी गिर पड़ेगी और अगणित प्राणियोंके प्राण चले जायँगे बेटी !' बुढ़ियाने लड़कीसे कहा । वह अभी-अभी धड़ाकेकी आवाज सुनकर पुल देखने गयी थी जो भयंकर हिमपातसे टूट गया था । लड़की [illegible] रोकनेका उपाय सोचने लगी । वह बुढ़िया [illegible] एक निर्जन घाटीमें झोपड़ी बनाकर रहती थी । दूर-दूर तक चारों ओर उजाड़ था । [illegible] उस [illegible]

दूर थी। बूढ़ी स्त्रीने साहससे काम लिया। आधी रातकी भयावनी नीरवतामें भी वह चारपाईसे उठ बैठी। रेलगाड़ी आनेका समय निकट देखकर उसका हृदय काँप रहा था।

उसने सोचा कि प्रकाशके द्वारा ड्राइवरको सूचना दी जा सकती है। जोर-जोरसे चिल्लानेपर चलती गाड़ीमें ड्राइवर कुछ भी नहीं सुन सकेगा, पर प्रकाश देखकर गाड़ी रोक सकता है। बुढ़ियाने मोमबत्तीकी ओर देखा; वह आधीसे अधिक जल चुकी थी; उसके प्रकाशका भयंकर आँधी और जलवृष्टिके समय कुछ भरोसा भी नहीं किया जा सकता था। घरमें शीतनिवारणके लिये जलायी गयी आग ठंडी हो गयी थी और लकड़ियाँ जल चुकी थीं। घरमें गरीबीके कारण कोई दूसरा सामान नहीं रह गया था जिसे जलाकर वह प्रकाश करे और ड्राइवरको सावधान करे।

अचानक बुढ़ियाकी दृष्टि चारपाईकी सिरई-पाटी और गोड़ोंपर गयी; उसने शीघ्र ही अपनी लड़कीकी सहायतासे उनको चीर डाला और रेलकी लाइनपर रख दिया। दियासलाईसे उसने आग जलायी; रेलगाड़ी सीटी देती आ पहुँची। थोड़ी दूरपर प्रकाशपुञ्ज देखकर ड्राइवरने भयकी आशङ्कासे चाल धीमी कर दी। गाड़ी घटनास्थलपर आ पहुँची; ड्राइवरने टूटा पुल देखा और उसके निकट ही उस बुढ़ियाको देखा जिसने एक लकड़ीके टुकड़ेमें अपनी लाल ओढ़नीका एक टुकड़ा फाड़कर लटका रक्खा था सूचना देनेके लिये और उसकी छोटी लड़की बगलमें खड़ी होकर जलती लकड़ी हाथमें लेकर प्रकाश दिखा रही थी।

गाड़ी रुक गयी और बुढ़ियाके अद्भुत पराक्रम और सत्कर्मसे सैकड़ों प्राणियोंके प्राण बच गये। —रा० श्री०

गांधीजीके तनपर एक लंगोटी ही क्यों ?

सन् १९१६ की बात है। लखनऊमें कांग्रेसका महाधिवेशन था। गांधीजी उसमें सम्मिलित होने आये थे। वहाँ राजकुमार शुक्लद्वारा किसानोंकी कष्ट-कहानी सुनकर उन्हें देखने वे चम्पारन पहुँचे। साथमें कस्तूरबा भी थीं। एक दिनकी बात है कस्तूरबा भीतिहरवा गाँवमें गयीं। वहाँ किसान औरतोंके कपड़े बहुत गंदे थे। कस्तूरबाने गाँवकी औरतोंकी एक सभा की और उन्हें समझाया कि 'गन्दगीसे तरह-तरहकी बीमारियाँ होती हैं और कपड़ा धोनेमें कोई ज्यादा खर्च भी नहीं पड़ता, अतः उन्हें साफ रहना चाहिये।'

इसपर एक गरीब किसानकी औरत, जिसके कपड़े बहुत गंदे थे, कस्तूरबाको अपनी झोंपड़ीमें ले गयी और अपनी झोंपड़ीको दिखलाकर बोली—'माताजी! देखो, मेरे घरमें कुछ नहीं है। बस, मेरी देहपर यह एक ही धोती है; आप ही बतलाइये, मैं क्या पहनकर धोती साफ करूँ? आप गांधीजीसे कहकर मुझे एक धोती दिलवा दें तो फिर मैं रोज स्नान करूँ और कपड़े साफ रक्खूँ।'

कस्तूरबाने गांधीजीको उसकी स्थिति बतलायी। गांधीजीपर इसका विचित्र प्रभाव पड़ा। उन्होंने सोचा, 'इसकी तरह तो देशमें लाखों बहनें होंगी। जब इन सभीको तन ढकनेके कपड़े नहीं हैं, तो फिर मैं क्यों कुर्ता, धोती और चादर पहनने लगा? जब मेरी लाखों बहनोंको गरीबीके कारण तन ढकनेको कपड़े नहीं मिलते तो मुझे इतने कपड़े पहननेका क्या हक है?'

बस, उसी दिनसे उन्होंने केवल लंगोटी पहनकर तन ढकनेकी प्रतिज्ञा कर ली। जा० ग०

(बापूकी कहानियाँ, भाग २)

काल करे सो आज कर

कोई स्त्री अपने पिताके घरसे लौटी थी। अपने पतिसे वह कह रही थी—'मेरा भाई विरक्त हो गया है। वह अगली दीवालीपर दीक्षा लेकर साधु होनेवाला है। अभीसे उसने तैयारी प्रारम्भ कर दी है। वह अपनी सम्पत्तिकी उचित व्यवस्था करनेमें लगा है।'

पत्नीकी बात सुनकर पुरुष मुसकराया। स्त्रीने पूछा—'तुम हँसे क्यों? हँसनेकी क्या बात थी?'

पुरुष बोला—'और तो सब ठीक है; किंतु तुम्हारे भाईका वैराग्य मुझे अद्भुत लगा। वैराग्य हो गया और दीक्षा लेनेकी अभी तिथि निश्चित हुई है! और वह सम्पत्तिकी उचित व्यवस्थामें भी लगा है। भौतिक सम्पत्तिमें सम्पत्ति-बुद्धि और इस उत्तम काममें भी दूरकी योजना। इस प्रकार तैयारी करके त्याग नहीं हुआ करता, त्याग तो सहज होता है।'

स्त्रीको बुरा लगा। वह बोली—'ऐसे ज्ञानी हो तो तुम्हीं क्यों कुछ कर नहीं दिखाते।'

'मैं तो तुम्हारी अनुमतिकी ही प्रतीक्षामें था।' पुरुषने वस्त्र उतार दिये और एक धोती मात्र पहिने घरसे निकल पड़ा। स्त्रीने समझा कि यह परिहास है, थोड़ी देरमें उसका पति लौट आयेगा; परंतु वह तो लौटनेके लिये गया ही नहीं था। —सु० सिं०

ग्रीजेलने अपने पिताको फाँसीसे कैसे बचाया ?

ब्रिटेनमें तब जेम्स द्वितीयका शासन था। वह अपने अत्याचार एवं अन्यायके लिये काफी बदनाम रहा है। उसके समयमें जिसे फाँसीकी सजा सुनायी जाती थी, उससे उसके परिवारके किसी व्यक्तिको नहीं मिलने दिया जाता था। कौंकरेलको फाँसीकी सजा सुनायी गयी थी। ग्रीजेल उसीकी लड़की थी। उसने लड़केका रूप धारणकर जेल-अधिकारियोंकी आँखोंमें धूल झोंक अपने पितासे मुलाकात की और उससे पता लगाया कि उसके बचनेका एकमात्र उपाय जेम्सका क्षमा-दान है।

पर जबतक कोई लंदन जाकर महाराज जेम्ससे मिलकर क्षमा-पत्र ले आये तबतक तो कौंकरेलको फाँसी ही हो जाती। फिर भी ग्रीजेलने धैर्य नहीं छोड़ा, उसने अपने भाईको प्रार्थना-पत्र देकर लंदन विदा किया। उन दिनों फोन-तार तो क्या, रेलगाड़ियाँ भी न थीं। उधर उसका भाई लौटा भी नहीं, इधर फाँसीका दिन एकदम निकट आ गया। अब उसके पिताकी फाँसी रोकी कैसे जाय। ग्रीजेलने निश्चय किया कि डाकियेके हाथसे फाँसीका फरमान लेकर फाड़ दिया जाय।

नियत दिन आ पहुँचा। ग्रीजेलने अपना वेष पुरुषका बनाया और वह डाकियेके मार्गमें खड़ी हो गयी। वह घोड़ेपर सवार थी और हाथमें एक भरी पिस्तौल भी लिये थी। डाकिया आया। ग्रीजेलने डपटकर उसे रोका और सारी डाक माँगी। डाकियेके हाथमें भी पिस्तौल थी। उसने उसे ग्रीजेलपर चला दिया। एक-एक कर उसने धायँ-धायँ कई गोलियाँ दाग दीं। ग्रीजेल सामने खड़ी हँस रही थी। गोलीसे उसको कुछ न हुआ।*

अब डाकिया डर गया। ग्रीजेलने उसके हाथसे डाकका थैला छीन लिया। थोड़ी दूर जाकर उसने

* डाकिया रातको जहाँ सरायमें विश्राम करता था, ग्रीजेल पहले वहाँ पहुँची और [illegible] प्रयत्नमें लगी थी। डाकियाका थैला वहीं रखा था, [illegible] उसके अगल-बगलमें कई और [illegible] थे। उसने जब देखा कि वहाँ उसका प्रयत्न सफल न होगा तो उसने [illegible] वहीं डाकियेकी पिस्तौलमेंसे सारी गोलियाँ निकालकर उनके स्थानपर झूठी गोलियाँ भर दीं और [illegible] दिन रास्तेमें फरमान लेनेको खड़ी हो गयी थी। डाकियेको दूसरा कोई पता तो था नहीं। इसलिये झूठी गोलियाँ दाग कर वह मुँह ताकता रह गया।

पैला लेकर और पिताकी फाँसीका फरमान निकालकर थैलेको वहीं फेंक दिया। डाकिया यह सब देख रहा था। उसने ग्रीजेलके चले जानेपर थैला उठा लिया और चलता बना।

फरमान न मिलनेसे कॉकरेलको फाँसी न हो सकी और अवधि आगे बढ़ गयी। इधर जेम्स उसके भाईकी करुण प्रार्थनापर पिघल गये और वह उनसे क्षमादानका पत्र लेकर पहुँच गया। इस प्रकार ग्रीजेलने अपार धैर्य, बुद्धिकौशल तथा साहसके सहारे अपने पिताकी जान बचा ली। —जा० श०

उदारता और परदुःखकातरता

स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० श्रीविद्याधरजी गौड़ श्रुति-स्मृति-प्रतिपादित सनातन वैदिक धर्मके परम अनुयायी थे। कई ऐसे अवसर आये, जिनमें धार्मिक मर्यादाकी किंचित् अवहेलना करनेसे उन्हें प्रचुर मान-धन मिल सकता था; परंतु उन्होंने उसे ठुकरा दिया।

इनके पास बहुतसे लोगोंके मकान वर्षोंसे रेहन और बन्धक पड़े थे। जब इनकी मृत्युका समय आया, तब मकानदारोंने आपके शरणागत होकर ऋण चुकानेमें अपनी असमर्थता प्रकट की। इन्होंने उनके दुःखसे कातर होकर बिना कुछ भी कहे यह कह दिया कि आपकी जो इच्छा हो सो दे जाइये। इस प्रकार कुछ ले-देकर उनको चिन्तामुक्त कर दिया।

आप कहा करते थे, 'इस शरीरसे यदि किसीकी भलाई नहीं की जा सकी, तो बुराई क्यों की जाय।'

श्रमकी महत्ता

'मेरे बच्चो! मेरे पास जो कुछ भी तुम्हें देनेके लिये है उसे मैं तुम दोनोंको बराबर-बराबर देता हूँ। मेरी सारी सम्पत्ति इन खेतोंमें ही है, इनमें पर्याप्त अन्न पैदाकर तुमलोग अपने परिवारका पालन-पोषण कर सकते हो। साथ-ही-साथ यह भी स्मरण रखना चाहिये कि इन्हीं खेतोंमें मैंने अपनी पूँजी भी छिपाकर रख दी है। आवश्यकता पड़नेपर उसका उपयोग कर सकते हो।' किसानने मृत्यु-शय्यापर अन्तिम साँस ली।

पिताके मरते ही दोनों लड़कोंने खेतोंमें छिपाकर गाड़ी गयी पूँजीपर विचार किया। उन्होंने खेत खोद डाले। एक इंच भी जमीन खोदनेमें कहीं खाली नहीं रह गयी। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ कि पिताजीने जीवनमें कभी भूलकर भी असत्य भाषण नहीं किया और मरते समय तो किसी भी स्थितिमें झूठ बोल ही नहीं सकते थे। खेतमें गड़ा धन न मिलनेपर उन्हें कुछ भी क्षोभ नहीं हुआ; उन्होंने संतोषपूर्वक बीज बो दिये और फसल पकनेपर खेतमें अकूत अन्न हुआ। उतना अन्न गाँवमें किसी व्यक्तिके खेतमें नहीं पैदा हुआ था।

'हमलोगोंने पिताजीके कहनेका आशय ही नहीं समझा था। उन्होंने चलते समय खेतको अच्छी तरह कमानेकी संत्-शिक्षा दी थी और उन्हींके आशीर्वादसे हमलोगोंने इतना अन्न प्राप्त किया।' दोनों लड़कोंने स्वर्गीय आत्माके प्रति श्रद्धाञ्जलि प्रकट की।

'समुन्नतिका-मार्ग श्रम है' किसानके लड़कोंने इसे अपने जीवनमें चरितार्थ किया। —रा० श्री०

कर्तव्यपालनका महत्त्व

मद्रास-प्रान्तमें एक रेलका पायंटमैन था। एक दिन वह पायंट पकड़े खड़ा था। दोनों ओरसे दो गाड़ियाँ पूरी तेजीके साथ आ रही थीं। इसी समय भयानक काला सर्प आकर उसके पैरमें लिपट गया। सर्पको देखकर पायंटमैन डरा। उसने सोचा—'मैं साँपके हटानेके लिये पायंट छोड़ देता हूँ तो गाड़ियाँ लड़ जाती हैं और हजारों नर-नारियोंके प्राण जाते हैं। नहीं छोड़ता तो साँपके काटनेसे मेरे प्राण जाते हैं।' भगवान्‌ने उसे सद्‌बुद्धि दी। क्षणभरमें ही उसने निश्चय कर लिया कि सर्प चाहे मुझे डँस ले, पर मैं पायंट छोड़कर हजारों नर-नारियोंकी मृत्युका कारण नहीं बनूँगा। वह अपने कर्तव्यपर दृढ़ रहा और वहाँसे जरा भी नहीं हिला। जिन भगवान्‌ने उसे सद्‌बुद्धि दी, उन्होंने ही उसे बचाया। गाड़ियोंकी भारी आवाजसे डरकर साँप उसका पैर छोड़कर भाग गया। पायंटमैनकी कर्तव्य-निष्ठासे हजारों मनुष्योंके प्राण बच गये। जब अधिकारियोंको यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने पायंटमैनको पुरस्कार देकर सम्मानित किया।

नेक कमाईकी बरकत

प्राचीन कालमें किसी शहरमें एक राजा रहता था। वहीं पासके ही वनमें एक ब्राह्मण भी रहता था। उस ब्राह्मणकी एक कन्या थी, जो विवाहके योग्य हो गयी थी। स्त्रीकी सलाहसे ब्राह्मण उस कन्याके विवाहके लिये उसी राजाके पास धन माँगने पहुँचा। राजाने उसे दस हजार रुपये दिये। ब्राह्मणने कहा—'महाराज! यह तो बहुत थोड़ा है।' राजाने दस हजार पुनः दिलवाये। ब्राह्मण इसपर भी कहता रहा—'महाराज! यह तो बहुत ही कम है।' अन्तमें राजा अपना समूचा राज्य ही ब्राह्मणको देने लगा। पर ब्राह्मण पूर्ववत् यही कहता रहा कि 'महाराज! यह तो बहुत कम है।'

लाचार होकर राजाने पूछा—'तो मुझे आप क्या देनेको कह रहे हैं।' ब्राह्मणने कहा—'आपने अपने परिश्रमद्वारा जो शुद्ध धन उपार्जित किया हो, वह चाहे बहुत थोड़ा ही हो, वही बहुत है—मुझे वही दीजिये।'

राजा थोड़ी देरतक सोच-विचार करता रहा। फिर उसने कहा—'मैं प्रातःकाल ऐसा धन आपको दे सकूँगा।' तदनन्तर दस बजे रातको वह अपना वेश-भूषा बदलकर शहरमें घूमने लगा। उसने देखा कि सब लोग तो चैनकी नींद सो रहे हैं, पर एक लोहार अपना काम अभीतक करता जा रहा है। राजा उसके पास गया और बोला—'भाई! मैं बड़ा गरीब आदमी हूँ, यदि तुम्हारे पास कोई काम हो तो देनेकी दया करो।' लोहारने कहा—'मेरे पास यही इतना काम है। यदि तुम इसे प्रातःकालतक कर डालो तो मैं तुम्हें चार पैसे दूँ।' राजाने उस कामको तथा उसके एक आध और कामको कर डाला। लोहारने उसे चार पैसे दिये और उनको उसने राजधानीमें आकर ब्राह्मणको दे दिया। ब्राह्मण भी उसका सारा राज-पाट छोड़कर चार पैसे ही लेकर घर चला गया। जब स्त्रीने पूछा कि [illegible] पास क्या मिला तो उसने चार पैसे दिखलाये। [illegible] झुँझला गयी और उसके चारों पैसे [illegible] फेंक दिये।

दूसरे दिन उस आँगनमें चार वृक्ष उग आये, जिनमें केवल रत्नके ही फल लगे थे। उन्होंने उनसे कन्याका विवाह किया और वह [illegible] सबसे बड़ा [illegible]

---

१. अकृत्वा परसंतापमगत्वा खलमन्दिरम्।
अनुल्लङ्घ्य सतां मार्गं यत् स्वल्पमपि तद्बहु॥
(महा० उद्योग० विदुरप्रजागर ३४)

हो गया। यह समाचार सुनकर सारा नगर दंग रह गया। राजा भी सुनकर देखने आया। ब्राह्मणने उस वृक्षको उखाड़कर राजाको वे चार पैसे दिखला दिये और बतलाया कि इसीसे मैंने तुम्हारे राज-पाटको छोड़कर तुम्हारी यह ईमानदारी तथा श्रमकी कमाई माँगी थी। नेकीकी कमाई पहले भले ही थोड़ी दीखे पर पीछे वह मनुष्यको सभी प्रकारसे सुखी और सम्पन्न बना देती है।—जा० श०

सच्ची नीयत

एक रातकी बात है। एक चोर किसी घरमें सेंध लगा रहा था। घरके मालिकने एक कुत्ता पाल रक्खा था। चोरको देखते ही वह जोर-जोरसे भूँकने लगा। चोरने उसको चुप करनेके लिये एक रोटीका टुकड़ा फेंक दिया।

'मुझे तुम इस घूससे चुप नहीं कर सकते। यदि मैं भूँकना बंद करूँगा तो अपने मालिकके प्रति अकृतज्ञ सिद्ध होऊँगा और दूसरी बात यह है कि यदि इस समय भूँककर अपने मालिकको नहीं जगा देता हूँ तो तुम सारी वस्तुएँ ढो ले जाओगे, मेरा मालिक किस प्रकार मेरा भरण-पोषण कर सकेगा।' कुत्ता भूँकता रहा। चोरकी दाल नहीं गल सकी और कुत्तेकी ईमानदारीने मालिकके धनकी रक्षा की।—रा० श्री०

पारमार्थिक प्रेम बेचनेकी वस्तु नहीं

एक गृहस्थ त्यागी, महात्मा थे। एक बार एक सज्जन दो हजार सोनेकी मोहरें लेकर उनके पास आये और कहने लगे—'मेरे पिताजी आपके मित्र थे, उन्होंने धर्मपूर्वक अर्थोपार्जन किया था। मैं उसीमेंसे कुछ मोहरोंकी थैली लेकर आपकी सेवामें आया हूँ, इन्हें स्वीकार कर लीजिये।' इतना कहकर वे थैली छोड़कर चले गये। महात्मा उस समय मौन थे, कुछ बोले नहीं। पीछेसे महात्माने अपने पुत्रको बुलाकर कहा—'बेटा! मोहरोंकी थैली अमुक सज्जनको वापस दे आओ। उनसे कहना—तुम्हारे पिताके साथ मेरा पारमार्थिक-ईश्वरको लेकर प्रेमका सम्बन्ध था, सांसारिक विषयको लेकर नहीं।' पुत्रने कहा—'पिताजी! आपका हृदय क्या पत्थरका बना है? आप जानते हैं, अपना कुटुम्ब बड़ा है और घरमें कोई धन गड़ा नहीं है। बिना माँगे इस भले आदमीने मोहरें दी हैं तो इन्हें अपने कुटुम्बियोंपर दया करके ही आपको स्वीकार कर लेना चाहिये।'

महात्मा बोले—'बेटा! क्या तेरी ऐसी इच्छा है कि मेरे कुटुम्बके लोग धन लेकर मौज करें और मैं अपने ईश्वरीय प्रेमको बेचकर बदलेमें सोनेकी मोहरें खरीदकर दयालु ईश्वरका अपराध करूँ?'

सहायता लेनेमें संकोच

एक घुड़सवार कहीं जा रहा था। उसके हाथसे चाबुक गिर पड़ा। उसके साथ उस समय बहुत-से मुसाफिर पैदल चल रहे थे; परंतु उसने किसीसे चाबुक उठाकर दे देनेके लिये नहीं कहा। खुद घोड़ेसे उतरा और चाबुक उठाकर फिर सवार हो गया। यह देखकर साथ चलनेवाले मुसाफिरोंने कहा—'भाई साहब!

आपने इतनी तकलीफ क्यों की? चाबुक हमीं लोग उठाकर दे देते, इतने-से कामके लिये आप क्यों उतरे?'

घुड़सवारने कहा—'भाइयो! आपका कहना तो बहुत ही सज्जनताका है, परंतु मैं आपसे ऐसी मदद क्योंकर ले सकता हूँ। प्रभुकी यही आज्ञा है कि जिससे उपकार प्राप्त हो, बदलेमें जहाँतक हो सके, उसका उपकार करना चाहिये। उपकारके बदलेमें प्रत्युपकार करनेकी स्थिति हो, तभी उपकारका भार सिर उठाना चाहिये। मैं आपको पहचानता नहीं, न तो आप ही मुझको जानते हैं। राहमें अचानक हमलोगोंका साथ हो गया है, फिर कब मिलना होगा, इसका कुछ भी पता नहीं है। ऐसी हालतमें मैं उपकारका भार कैसे उठाऊँ?'

यह सुनकर मुसाफिरोंने कहा—'अरे भाई साहब! इसमें उपकार क्या है? आप-जैसे भले आदमीके हाथसे चाबुक गिर पड़ा, उसे उठाकर हमने दे दिया। हमें इसमें मेहनत ही क्या हुई?'

घुड़सवारने कहा—'चाहे छोटी-सी बात या [illegible] ही काम क्यों न हो, मैं लेता तो [illegible] मदद ही न! छोटे-छोटे कामोंमें मदद लेते-लेते ही बड़े कामोंमें भी मदद लेनेकी आदत पड़ जाती है और [illegible] मनुष्य अपने स्वावलम्बी स्वभावको खोकर पराधीन बन जाता है। आत्मामें एक तरहकी मुर्दनी आ जाती है और फिर छोटी-छोटी बातोंमें दूसरोंका मुँह ताकनेकी बान पड़ जाती है। यही मनमें रहता है, मेरा यह काम कोई दूसरा कर दे, मुझे हाथ-पैर कुछ भी न हिलाने पड़ें। इसलिये जबतक कोई विपत्ति न आवे या आत्माकी उन्नतिके लिये आवश्यक न हो, तबतक केवल आरामके लिये किसीसे किसी तरहकी भी मदद नहीं लेनी चाहिये। जिनको मददकी जरूरत न हो, वे जब मदद लेने लगते हैं, तब जिनको जरूरत होती है, उन्हें मदद मिलनी मुश्किल हो जाती है।'

ग्रामीणकी ईमानदारी

एक धनी व्यापारी मुसाफिरीमें रात बितानेके लिये किसी छोटे गाँवमें एक गरीबकी झोंपड़ीमें ठहरा। वहाँसे जाते समय वह अपनी सोनेकी मोहरोंकी थैली वहीं भूल गया। तीन महीने बाद वही व्यापारी फिर उसी रास्ते जा रहा था। दैवसयोगसे उसी गाँवमें रात हुई और वह उसी गरीबके घर जाकर ठहरा। मोहरोंकी थैली रास्तेमें कहाँ गिरी थी, इसका उसे कुछ भी पता नहीं था। इसलिये उसने उस थैलीकी तो आशा ही छोड़ दी थी। झोंपड़ीमें आकर ठहरते ही झोंपड़ीके स्वामीने [illegible] ही आकर कहा—'सेठजी! आपकी एक [illegible] थैली यहाँ रह गयी थी, उसे लीजिये। आपका [illegible] पता न जाननेके कारण मैं अबतक थैली नहीं [illegible] सका। मैंने उसे अबतक धरोहरके रूपमें [illegible] था।' बूढ़े-दरिद्र ग्रामीणकी ईमानदारीपर व्यापारी [illegible] हो गया और वह इतना [illegible] हुआ कि [illegible] गाते-गाते थकता ही नहीं [illegible] करके उसके लड़केको अपने साथ [illegible]।

लोभका फल

एक किसानके बगीचेमें अंगूरका पेड़ था। उसमें प्रत्येक वर्ष बड़े मीठे-मीठे अंगूर फलते थे। किसान बड़ा परिश्रमी, संतोषी और सत्यवादी था। उसने सोचा कि बगीचा तो [illegible] मेरे जमींदारकी है; [illegible]

दिखने योग्य नहीं रहूँगा। ऐसा सोचकर उसने प्रतिवर्ष मुनिरातिके घर कुछ मीठे-मीठे अंगूर भेजना आरम्भ किया।

जमींदारने सोचा कि अंगूरका पेड़ मेरी जमीनमें है इसलिये उसपर मेरा पूरा-पूरा अधिकार है। मैं उसे अपने बगीचेमें लगा सकता हूँ। लोभके अन्धकारमें उसे सत्कर्तव्यका ज्ञान नहीं रह गया। उसने अपने नौकरोंको आदेश दिया कि पेड़ उखाड़कर मेरे बगीचेमें लगा दो।

नौकरोंने मालिककी आज्ञाका पालन किया। बेचारा किसान असहाय था, वह सिवा पछतानेके और कर ही क्या सकता था! पेड़ जमींदारके बगीचेमें लगा दिया गया, पर फल देनेकी बात तो दूर रही, कुछ ही दिनोंमें वह सूखकर ठूँठ हो गया और लोभके कीड़ेने उसकी उपादेयताको जड़से उखाड़ दिया।—रा० श्री० (ईशपकी कथा)

श्रीचैतन्यका महान् त्याग

श्रीचैतन्य महाप्रभु उन दिनों नवद्वीपमें निमाईके नामसे ही जाने जाते थे। उनकी अवस्था केवल सोलह वर्षकी थी। व्याकरणकी शिक्षा समाप्त करके उन्होंने न्यायशास्त्रका महान् अध्ययन किया और उसपर एक ग्रन्थ भी लिख रहे थे। उनके सहपाठी पं० श्रीरघुनाथजी उन्हीं दिनों न्यायपर अपना 'दीधिति' नामक ग्रन्थ लिख रहे थे, जो इस विषयका प्रख्यात ग्रन्थ माना जाता है।

पं० श्रीरघुनाथजीको पता लगा कि निमाई भी न्यायपर कोई ग्रन्थ लिख रहे हैं। उन्होंने उस ग्रन्थको देखनेकी इच्छा प्रकट की। दूसरे दिन निमाई अपना ग्रन्थ साथ ले आये और पाठशालाके मार्गमें जब दोनों साथी नौकापर बैठे तब वहीं निमाई अपना ग्रन्थ सुनाने लगे। उस ग्रन्थको सुननेसे रघुनाथ पण्डितको बड़ा दुःख हुआ। उनके नेत्रोंसे आँसूकी बूँदें टपकने लगीं।

पढ़ते-पढ़ते निमाईने बीचमें सिर उठाया और रघुनाथको रोते देखा तो आश्चर्यसे बोले—'भैया! तुम रो क्यों रहे हो?'

रघुनाथने सरल भावसे कहा—'मैं इस अभिलाषासे एक ग्रन्थ लिख रहा था कि वह न्यायशास्त्रका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाय; किंतु मेरी आशा नष्ट हो गयी। तुम्हारे इस ग्रन्थके सम्मुख मेरे ग्रन्थको पूछेगा कौन?'

'बस, इतनी-सी बातके लिये आप इतने संतप्त हो रहे हैं!' निमाई तो बालकोंके समान खुलकर हँस पड़े। 'बहुत बुरी है यह पुस्तक, जिसने मेरे मित्रको इतना कष्ट दिया!' रघुनाथ कुछ समझें, इससे पूर्व तो निमाईने अपने ग्रन्थको उठाकर गङ्गाजीमें बहा दिया। उसके पन्ने भगवती भागीरथीकी लहरोंपर बिखरकर तैरने लगे।

रघुनाथके मुखसे दो क्षण तो एक शब्द भी नहीं निकला और फिर वे निमाईके पैरोंपर गिरनेको झुक पड़े; किंतु निमाईकी विशाल भुजाओंने उन्हें रोककर हृदयसे लगा लिया था।

साधुके लिये स्त्री-दर्शन ही सबसे बड़ा पाप

श्रीचैतन्य महाप्रभु संन्यास लेकर जब श्रीजगन्नाथपुरीमें रहने लगे थे, तब वहाँ महाप्रभुके अनेक भक्त भी बंगालसे आकर रहते थे। महाप्रभुके उन भक्तोंमें बहुतसे अत्यन्त विरक्त भक्त थे। उन गृहत्यागी साधु भक्तोंमें ही एक थे छोटे हरिदासजी। ये सङ्गीतज्ञ थे और अपने मधुर कीर्तनसे महाप्रभुको प्रसन्न करते थे;

इसलिये इनको कीर्तनिया हरिदास भी लोग कहते थे ।

पुरीमें महाप्रभुके अनेक गृहस्थ भक्त भी थे । श्रीजगन्नाथजीके मन्दिरमें हिसाब-किताब लिखनेका काम करनेवाले श्रीशिखि माहिती, उनके छोटे भाई मुरारि और उनकी विधवा बहिन माधवी—ये तीनों ही परम भक्त थे । महाप्रभुके चरणोंमें इनका अनुराग था । इनमें भी शिखि माहिती और माधवी देवीको तो महाप्रभु भगवत्कृपा-प्राप्त भागवतोंमें गिनते थे ।

महाप्रभुको पुरीके भक्तगण कभी-कभी अपने यहाँ भिक्षाके लिये आमन्त्रित करते थे । एक दिन जब भगवानाचार्यके यहाँ महाप्रभु भिक्षाके लिये पधारे, तब भिक्षामें सुगन्धित सुन्दर चावल बने देखकर उन्होंने पूछा—'आपने ये उत्तम चावल कहाँसे मँगाये हैं ?'

भगवानाचार्यने कहा—'प्रभो ! माधवी देवीके यहाँसे ये आये हैं ?'

महाप्रभु—'माधवीके यहाँ चावल लेने कौन गया था ?'

भगवानाचार्य—'छोटे हरिदास ।'

यह सुनकर महाप्रभु चुप हो गये । भिक्षा ग्रहण करनेका जैसे उनमें उत्साह रहा ही नहीं । भगवत्प्रसाद समझकर कुछ ग्रास मुखमें डालकर महाप्रभु उठ गये । अपने स्थानपर आकर उन्होंने आदेश दिया—'आजसे छोटा हरिदास मेरे यहाँ कभी नहीं आ पावेगा । उसने कभी यहाँ भूलसे भी पैर रक्खा तो मैं बहुत असंतुष्ट होऊँगा ।'

महाप्रभुके सेवक तो स्तब्ध रह गये । समाचार पाकर छोटे हरिदास बहुत दुःखी हुए; किंतु महाप्रभुने किसी प्रकार उन्हें अपने पास आनेकी अनुमति नहीं दी । सभी भक्तोंने प्रार्थना की, श्रीपरमानन्दपुरीजीने भी महाप्रभुसे कहा—'हरिदासको क्षमा कर दीजिये !' परंतु महाप्रभुने बहुत रुक्ष-भंगी बना ली थी । वे पुरी छोड़कर अलालनाथ जाकर रहनेको प्रस्तुत हो गये । छोटे हरिदासने अन्न-जल त्याग दिया; परंतु उनके अनशनका भी महाप्रभुपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा ।

अन्तमें दुखी होकर छोटे हरिदास पुरीसे पैदल चलकर प्रयाग आये और वहाँ उन्होंने गङ्गा-यमुनाके संगममें देहत्याग कर दिया । यह समाचार जब महाप्रभुको मिला तब उन्होंने कहा—'साधु होकर स्त्रियोंसे बातचीत करे, उनको चरण छूने दे, यह तो महापाप है । हरिदासने अपने पापके उपयुक्त ही प्रायश्चित्त किया है ।' महाप्रभुने ही एक बार सार्वभौम भट्टाचार्यसे कहा है—

निष्किञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुखस्य
पारं परं जिगमिषोर्भवसागरस्य ।
संदर्शनं विषयिणामथ योषितां च
हा हन्त ! हन्त ! विषभक्षणतोऽप्यसाधु ।'

सच्चा गीता-पाठ

श्रीचैतन्य महाप्रभु जगन्नाथपुरीसे दक्षिण भारतकी यात्रा करने निकले थे । उन्होंने एक स्थानपर देखा कि सरोवरके किनारे एक ब्राह्मण स्नान करके बैठा है और गीताका पाठ कर रहा है । वह पाठ करनेमें इतना तल्लीन है कि उसे सम्भवतः अपने शरीरका भी पता नहीं है । उसका कण्ठ गद्गद हो रहा है, शरीर रोमाञ्चित हो रहा है और नेत्रोंसे आँसूकी धारा बह रही है ।

महाप्रभु चुपचाप जाकर उस ब्राह्मणके पीछे खड़े हो गये और जबतक पाठ समाप्त हुआ, शान्त खड़े रहे । पाठ समाप्त करके जब ब्राह्मणने पुस्तक बंद की, महाप्रभुने सम्मुख आकर पूछा—'ब्रह्मदेवता ! लगता है कि आप संस्कृत नहीं जानते; क्योंकि श्लोकोंका उच्चारण शुद्ध नहीं हो रहा था । परंतु गीताका ऐसा कौन-सा अर्थ आप समझते हैं कि जिसके आनन्दमें आप इतने विभोर हो रहे थे ?'

अपने सम्मुख एक तेजोमय भव्य महापुरुषको देखकर ब्राह्मणने भूमिमें लेटकर दण्डवत् प्रणाम किया। वह दोनों हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक बोला—'भगवन्! मैं संस्कृत क्या जानूँ और गीताजीके अर्थका मुझे क्या पता। मुझे पाठ करना आता नहीं। मैं तो जब इस ग्रन्थको पढ़ने बैठता हूँ, तब मुझे लगता है कि कुरुक्षेत्रके मैदानमें दोनों ओर बड़ी भारी सेना सजी खड़ी है। दोनों सेनाओंके बीचमें एक रथ खड़ा है चार घोड़ोंवाला। रथके भीतर अर्जुन दोनों हाथ जोड़े बैठे हैं और रथके आगे घोड़ोंकी रास पकड़े भगवान् श्रीकृष्ण बैठे हैं। भगवान् मुख पीछे घुमाकर अर्जुनसे कुछ कह रहे हैं, मुझे यह स्पष्ट दीखता है। भगवान् और अर्जुनकी ओर देख-देखकर मुझे प्रेमसे रुलाई आ रही है।'

'भैया! तुम्हींने गीताका सच्चा अर्थ जाना है और गीताका ठीक पाठ करना तुम्हें ही आता है।' यह कहकर महाप्रभुने उस ब्राह्मणको अपने हाथोंसे उठाकर हृदयसे लगा लिया।

नामनिष्ठा और क्षमा

भक्त हरिदास हरिनामके मतवाले थे। ये जन्मसे मुसल्मान थे, पर इनको भगवान्का नाम लिये बिना चैन नहीं पड़ता था। फुलिया गाँवमें गोराई काजी नामक एक कट्टर मुसलमान था। उसने हरिदासकी शिकायत मुलुकपतिसे की और कहा—'इस काफिरको ऐसी सजा देनी चाहिये जिससे सब डर जायँ और आगेसे कोई भी ऐसा नापाक काम करनेकी हिम्मत न करे। इसे सीधी चालसे नहीं मारना चाहिये। इसकी पीठपर बेंत मारते हुए इसे बाईस बाजारोंमें घुमाया जाय और बेंत मारते-मारते इसको इतनी पीड़ा हो कि उसीसे यह तड़प-तड़पकर मर जाय।' मुलुकपतिने आदेश दे दिया।

बेंत मारनेवाले जल्लादोंने भक्त हरिदासजीको बाँध लिया और उनकी पीठपर बेंत मारते-मारते उन्हें बाजारोंमें घुमाने लगे। पर हरिदासजीके मुँहसे हरिनामकी ध्वनि बंद नहीं हुई। जल्लाद कहते—'हरिनाम बंद करो।' हरिदासजी कहते—'भैया! मुझे एक बेंत मारो, पर तुम हरिनाम लेते रहो; इसी बहाने तुम्हारे मुँहसे हरिका नाम तो निकलेगा।' बेंतोंकी मारसे हरिदासकी चमड़ी उधड़ गयी। खूनकी धारा बहने लगी। पर निर्दयी जल्लादोंके हाथ बंद नहीं हुए। इधर हरिदासकी नाम-धुन भी बंद नहीं हुई।

अन्तमें हरिदासजी बेहोश होकर जमीनपर गिर पड़े। जल्लादोंने उन्हें मरा समझकर गङ्गाजीमें बहा दिया। गङ्गाजीके शीतल जल-स्पर्शसे उन्हें चेतना प्राप्त हो गयी और वे बहते-बहते फुलिया गाँवके समीप घाटपर आ पहुँचे। लोगोंने बड़ा हर्ष प्रकट किया। मुलुकपतिको भी अपने कृत्यपर पश्चात्ताप हुआ। पर लोगोंमें मुलुकपतिके विरुद्ध बड़ा जोश आ गया। इसपर हरिदासजीने कहा—'इसमें इनका क्या अपराध था। मनुष्य अपने कर्मोंका ही फल भोगता है। दूसरे तो उसमें निमित्त बनते हैं। फिर यहाँ तो इनको निमित्त बनाकर मेरे भगवान्ने मेरी परीक्षा ली है। नाममें मेरी रुचि है या मैं ढोंग ही करता हूँ, यह जानना चाहा है। मैं तो कुछ था नहीं, उन्हींकी कृपाशक्तिने मुझे अपनी चेतनाके अन्तिम श्वासतक नामकीर्तनमें दृढ़ रक्खा। इनका कोई अपराध हो तो भगवान् इनको क्षमा करें।'

संतकी वाणी सुनकर सभी गद्गद होकर धन्य-धन्य पुकार उठे। मुलुकपति तथा गोराई काजीपर भी बड़ा प्रभाव पड़ा और वे भी नामकीर्तनके प्रेमी बन गये तथा हरिनाम लेने लगे।

श्रीचैतन्यका त्याग

नामनिष्ठा और क्षमा

सच्चा गीता पाठ

साधुके लिये स्त्री-दर्शन ही बड़ा पाप

कैयटकी निःस्पृहता

पति-पत्नी दोनों निःस्पृह

दूसरोंकी तृप्तिमें तृप्ति

सच्ची शोभा
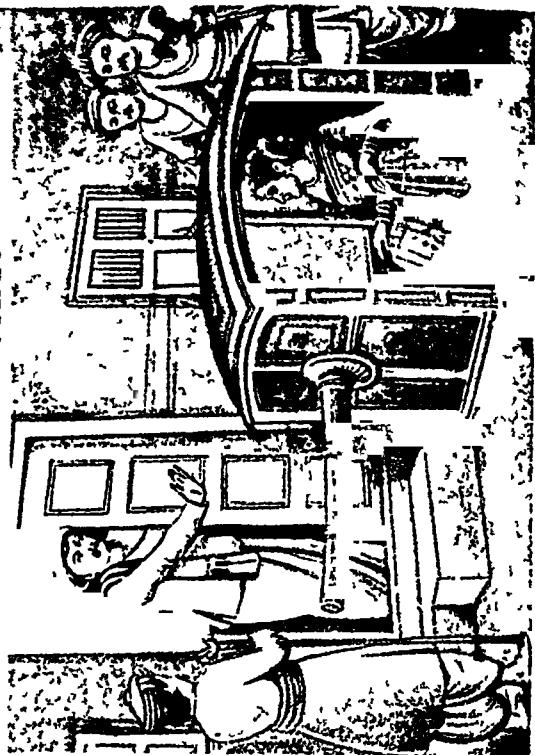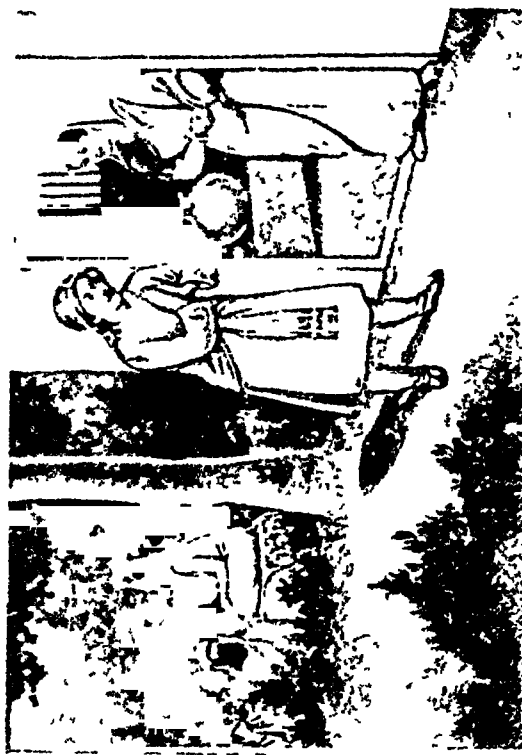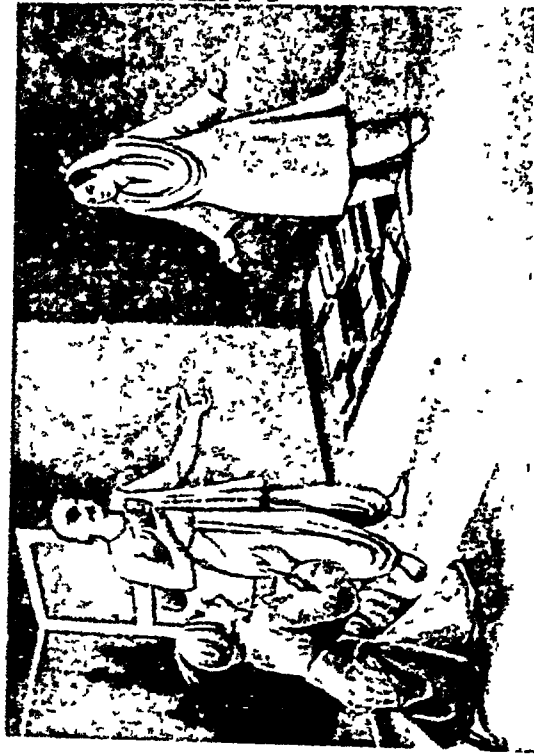
कैयटकी निःस्पृहता

महाभाष्यतिलकके कर्ता संस्कृतके प्रकाण्ड विद्वान् कैयटजी नगरसे दूर एक झोंपड़ीमें निवास करते थे। उनके घरमें सम्पत्तिके नामपर एक चटाई और एक कमण्डलु मात्र थे। उन्हें तो अपने संध्या, पूजन, अध्ययन और ग्रन्थ-लेखनसे इतना भी अवकाश नहीं था कि पत्नीसे पूछ सकें कि घरमें कुछ है भी या नहीं। बेचारी ब्राह्मणी वनसे मूँज काट लाती, उनकी रस्सियाँ बनाकर बेचती और उससे जो कुछ मिलता उससे घरका काम चलाती। उसके पतिदेवने उसे मना कर दिया था कि किसीका कुछ भी दान वह न ले। पतिकी सेवा, उनके और अपने भोजनकी व्यवस्था तथा घरके सारे काम उसे करने थे और वह यह सब करके भी परम संतुष्ट थी।

काश्मीरके नरेशको लोगोंने यह समाचार दिया। काशीसे आये हुए कुछ ब्राह्मणोंने कहा—'एक महान् विद्वान् आपके राज्यमें इतना कष्ट पाते हैं, आप कुछ तो ध्यान दें।'

नरेश स्वयं कैयटजीकी कुटियापर पधारे। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—'भगवन्! आप विद्वान् हैं और जानते हैं कि जिस राजाके राज्यमें विद्वान् ब्राह्मण कष्ट पाते हैं, वह पापका भागी होता है, अतः मुझपर कृपा करें।'

कैयटजीने कमण्डलु उठाया और चटाई लपेटकर बगलमें दबायी। पत्नीसे वे बोले—'अपने रहनेसे महाराजको पाप लगता है तो चलो और कहीं चलें। तुम मेरी पुस्तकें उठा तो लो।'

नरेश चरणोंपर गिर पड़े और हाथ जोड़कर बोले—'मेरा अपराध क्षमा किया जाय। मैं तो यह चाहता था कि मुझे कुछ सेवा करनेकी आज्ञा प्राप्त हो।'

कैयटजीने कमण्डलु-चटाई रख दिया। राजासे वे बोले—'तुम सेवा करना चाहते हो तो यही सेवा करो कि फिर यहाँ मत आओ और न अपने किसी कर्मचारीको यहाँ भेजो। न मुझे कभी किसी चीज—धन, जमीन आदिका प्रलोभन ही दो। मेरे अध्ययनमें विघ्न न पड़े, यही मेरी सबसे बड़ी सेवा है।'

पति-पत्नी दोनों निःस्पृह

बात अठारहवीं शताब्दीकी है। पण्डित श्रीरामनाथ तर्कसिद्धान्तने अध्ययन समाप्त करके बंगालके विद्याकेन्द्र नवद्वीप नगरके बाहर अपनी कुटिया बना ली थी और पत्नीके साथ त्यागमय ऋषि-जीवन स्वीकार किया था। उनके यहाँ अध्ययनके लिये छात्रोंका एक समुदाय सदा टिका रहता था। पण्डितजीने वहाँके अन्य विद्वानोंके समान राजासे कोई वृत्ति ली नहीं थी और वे किसीसे कुछ माँगते भी नहीं थे। एक दिन जब वे विद्यार्थियोंको पढ़ाने जा रहे थे, उनकी पत्नीने कहा—'घरमें एक मुट्ठी चावलमात्र है, भोजन क्या बनेगा?' पण्डितजीने केवल पत्नीकी ओर देख लिया, कोई उत्तर दिये बिना ही कुटियासे बाहर वे अपने छात्रोंके बीच ग्रन्थ लेकर बैठ गये।

भोजनके समय जब वे भीतर आये, तब उन्हें सामने थोड़े-से चावल तथा उबाली हुई कुछ पत्तियाँ मिलीं। उन्होंने पत्नीसे पूछा—'भद्रे! यह स्वादिष्ट शाक किस वस्तुका है?'

पत्नीने कहा—'मेरे पूछनेपर आपकी दृष्टि इमलीके वृक्षकी ओर गयी थी। मैंने उसीके पत्तोंका यह शाक बनाया है।'

पण्डितजीने निश्चिन्ततासे कहा—'[illegible]

... इतना साविष्ट होता है, तब तो हमलोगोंको भोजनके विषयमें कोई चिन्ता ही नहीं रही।'

इस समय कृष्णनगरके राजा थे महाराज शिवचन्द्र। उन्होंने पण्डित श्रीरामनाथ तर्कसिद्धान्तकी विद्वत्ताकी प्रशंसा सुनी और उनकी आर्थिक स्थितिकी बात भी सुनी। महाराजने बहुत प्रयत्न किया कि पण्डितजी उनके नगरमें आकर रहें; किंतु निःस्पृह ब्राह्मणने इसे स्वीकार नहीं किया। इससे स्वयं महाराज एक दिन उनकी पाठशालामें पहुँचे। उन्होंने प्रणाम करके पूछा—'पण्डितजी! आपको किसी विषयमें अनुपपत्ति तो नहीं?'

तर्कसिद्धान्तजी बोले—'महाराज! मैंने चारु-चिन्तामणि ग्रन्थकी रचना की है। मुझे तो उसमें कोई अनुपपत्ति जान नहीं पड़ी। आपको कहीं कोई अनुपपत्ति या असङ्गति मिली है?'

महाराजने हँसकर कहा—'मैं आपसे तर्कशास्त्रकी बात नहीं पूछ रहा हूँ। मैं पूछता हूँ कि घरका निर्वाह करनेमें आपको किसी बातका अभाव तो नहीं?'

पण्डितजीने सीधा उत्तर दिया—'घरकी बात तो घरवाली जाने।'

पण्डितजीकी आज्ञा लेकर महाराज कुटियामें गये। उन्होंने ब्राह्मणीको प्रणाम करके अपना परिचय दिया और पूछा—'माताजी! आपके घरमे कोई अभाव हो तो आज्ञा करें, मैं उसकी पूर्तिकी व्यवस्था कर दूँ।'

ब्राह्मणी भी तो त्यागी निःस्पृह तर्कसिद्धान्तकी पत्नी थीं। वे बोलीं—'राजन्! मेरी कुटियामें कोई अभाव नहीं है। मेरे पहननेका वस्त्र अभी इतना नहीं फटा कि जो उपयोगमें न आ सके, जलका मटका अभी तनिक भी फूटा नहीं है और फिर मेरे हाथमें चूड़ियाँ बनी हैं, तबतक मुझे अभाव क्या।'

राजा शिवचन्द्रने उस देवीको भूमिमें मस्तक रखकर प्रणाम किया।

दूसरोंकी तृप्तिमें तृप्ति

कलकत्तेके सुप्रसिद्ध विद्वान् श्रीविश्वनाथ तर्कभूषण बीमार पड़े थे। चिकित्सकने उनकी परिचर्या करनेवालोंको आदेश दिया—'रोगीको एक बूँद भी जल नहीं देना चाहिये। पानी देते ही उसकी दशा चिन्ताजनक हो जायगी।'

श्रीतर्कभूषणजीको बहुत तीव्र प्यास लगी थी। उन्होंने घरके लोगोंसे कहा—'अबतक मैंने ग्रन्थोंमें पढ़ा है तथा स्वयं दूसरोंको उपदेश किया है कि समस्त प्राणियोंमें एक ही आत्मा है, आज मुझे इसका अपरोक्षानुभव करना है। ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देकर यहाँ बुलाओ और उन्हें मेरे सामने शरबत, तरबूजका रस तथा हरे नारियलका पानी पिलाओ।'

घरके लोगोंने यह व्यवस्था कर दी। ब्राह्मण शरबत या नारियलका पानी पी रहे थे और तर्कभूषणजी अनुभव कर रहे थे—'मैं पी रहा हूँ।' सचमुच उनकी रोगजन्य तृषा इस अनुभवसे शान्त हो गयी।

सच्ची शोभा

श्रीराम शास्त्री अपनी न्यायप्रियताके लिये महाराष्ट्र-इतिहासमें अमर हो गये हैं। वे पेशवा माधवरावजीके गुरु थे, मन्त्री थे और राज्यके प्रधान न्यायाधीश भी थे। इतना सब होकर भी अपनी रहन-सहनमें वे केवल एक ब्राह्मण थे। एक साधारण घरमें रहते थे, जिसमें नहीं थी कोई तड़क-भड़क, और नहीं था कोई वैभव।

किसी पर्वके समय श्रीराम शास्त्रीजीकी पत्नी राजभवनमें पधारीं । रानी तो अपने गुरुकी पत्नीको देखते ही चकित हो गयीं । राजगुरुकी पत्नी और उनके शरीरपर सोना तो दूर, कोई चाँदीतकका आभूषण नहीं । पहननेकी साड़ी भी बहुत साधारण । रानीको लगा कि इसमें तो राजकुलकी निन्दा है । जिस गुरुके घर पेशवा प्रतिदिन नियमपूर्वक प्रणाम करने जायँ, उस गुरुकी पत्नी इस प्रकार दरिद्र-वेशमें रहें तो लोग पेशवाको ही कृपण बतलायेंगे ।

रानीने गुरुपत्नीको बहुमूल्य वस्त्र पहिनाये, रत्नजटित सोनेके आभूषणोंसे अलंकृत किया । जब उनके विदा होनेका समय आया, तब पालकीमें बैठाकर उन्हें विदा किया । पालकी राम शास्त्रीके द्वारपर पहुँची । कहारोंने द्वार खटखटाया । द्वार खुला और झट बंद हो गया । अपनी स्त्रीको इस वेशमें राम शास्त्रीजीने देख लिया था । कहारोंने फिर पुकारा—'शास्त्रीजी ! आपकी धर्मपत्नी आयी हैं, द्वार खोलें ।'

शास्त्रीजीने कहा—'बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंमें सजी ये कोई और देवी हैं । मेरी ब्राह्मणी ऐसे वस्त्र और गहने नहीं पहन सकती । तुमलोग भूलसे इस द्वारपर आये हो ।'

शास्त्रीजीकी पत्नी अपने पतिदेवके स्वभावको जानती थीं । उन्होंने कहारोंको लौट चलनेको कहा । राजभवन जाकर उन्होंने वे वस्त्र और आभूषण उतार दिये । अपनी साड़ी पहन ली । रानीको उन्होंने बता दिया—'इन वस्त्र और आभूषणोंने तो मेरे लिये मेरे घरका ही द्वार बंद करा दिया है ।'

पैदल ही घर लौटीं वे देवी । द्वार खुला हुआ था । शास्त्रीजीने घरमें आ जानेपर उनसे कहा—'बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण या तो राजपुरुषोंको शोभा देते हैं या मूर्ख उनके द्वारा अपनी अज्ञता छिपानेका प्रयत्न करते हैं । सत्पुरुषोंका आभूषण तो सादगी ही है ।' यही सच्ची शोभा है ।

जुए या सट्टेमें मनुष्य विवेकहीन हो जाता है

एक सुन्दर स्वच्छ जलपूर्ण सरोवर था; किंतु दुष्ट प्रकृतिके लोगोंने उसके समीप अपने अड्डे बना लिये थे । सरोवरके एक कोनेपर वेश्याओंने डेरा बनाया था । दूसरे कोनेपर मदिरा बेची जा रही थी । तीसरे कोनेपर मांस पकाकर मांस बेचनेकी दूकान थी और चौथे कोनेपर जुआरियोंका जमघट पासे लिये बैठा था ।

उन दुष्ट लोगोंके दूत सीधे, सम्पन्न मनुष्योंको अपनी बातोंमें उलझाकर घूमनेके बहाने उस सरोवरके किनारे ले आया करते थे । एक दिन इसी प्रकार एक धनी, सदाचारी व्यक्तिको एक दुष्ट वहाँ ले आया । उसने अपनी लच्छेदार बातोंका प्रभाव उस धनी व्यक्तिपर जमा लिया था ।

सरोवरके किनारे वेश्याओंका निवास देखकर धनी व्यक्तिने कहा—'यह बहुत निन्दित स्थान है । अच्छे व्यक्तिको यहाँ नहीं ठहरना चाहिये ।'

दुष्ट पुरुष मुसकराया और बोला—'हमलोग दूसरी ओर चलें ।'

दूसरी ओर मदिराकी दूकानके पास पहुँचते ही धनी व्यक्तिने नाकमें कपड़ा लगा लिया और वे शीघ्रतासे आगे बढ़ गये । यही बात मांसकी दूकानपर पहुँचनेपर भी हुई; किंतु जब वे जुएके अड्डेके पास पहुँचे, तब उस दुष्ट पुरुषने कहा—'हमलोग थक गये हैं । यहाँ थोड़ी देर बैठें । बैठकर खेल देखनेमें तो कोई दोष है नहीं ।'

संकोचवश वे सज्जन पुरुष वहाँ बैठ गये । बैठनेपर सबने आग्रह प्रारम्भ कर दिया उनसे एक बार खेलनेका । पासे बलात् उन्हें पकड़ा दिये । जुआ खेलना प्रारम्भ किया उन्होंने और [illegible] । उस दुष्ट पुरुषने धीरेसे कहा—'[illegible] तो मस्तिष्कमें स्फूर्ति आ जाती है । [illegible]

फलोंके रससे बनी सुराका एक प्याला यहीं ला दूँ।'

एक-दो बार उसने आग्रह किया और अनुमति मिल गयी। कथाका विस्तार अनावश्यक है—सुराके साथ अनिवार्य होनेके कारण मांस भी मँगाना पड़ा और जब मदिराने अपना प्रभाव जमाया, वेश्याओंके निवासकी ओर जानेके लिये दूसरेके द्वारा प्रेरणा मिले यह आवश्यक नहीं रह गया। द्यूतने वे सब पाप करा लिये, जिनसे अत्यधिक घृणा थी। जब धन नष्ट हो गया इस दुर्व्यसनमें पड़कर, चोरी करने लगा वही व्यक्ति जो कभी सज्जन था। निर्लज्ज हो गया वह। अपने मान-सम्मानकी बात ही भूल गया।

यह दृष्टान्त है जिसे एक सत्पुरुषके प्रवचनमें मैंने सुना है। घटना सत्य है या नहीं, मुझे पता नहीं; किंतु द्यूतके व्यसनमें पड़कर धर्मराज युधिष्ठिरने अपना सर्वस्व खो दिया, महारानी द्रौपदीतकको दावपर लगाकर हार गये, यह तो सर्वविदित है। राजा नल भी जुएके नशेमें सर्वस्व हार गये थे। वह घटना दे देना अच्छा है।

× × ×

निषध नरेश नलने दमयन्तीसे विवाह कर लिया था। दमयन्तीसे विवाह तो इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम भी करना चाहते थे; किंतु जब उन्हें निश्चय हो गया कि दमयन्तीका नलके प्रति दृढ़ अनुराग है, तब उन्होंने इस विवाहकी अनुमति दे दी और नलको बहुतसे वरदान भी दिये; किंतु कलियुगको इस घटनामें देवताओंका अपमान प्रतीत हुआ। उसने राजा नलसे बदला लेनेका निश्चय किया। वह नलके पास पहुँचा और अवसर पाकर उनके शरीरमें प्रविष्ट हो गया।

धर्मात्मा राजा नलकी जुआ खेलनेमें प्रवृत्ति ही कलियुगके प्रवेशसे हुई। उनके छोटे भाई पुष्करने उनसे जुआ खेलनेको कहा और वे प्रस्तुत हो गये। दोनों भाई दमयन्तीके सामने ही पासे फेंकने लगे। नलने रत्नोंके ढेर, स्वर्णराशि, घोड़े-हाथी आदि जो कुछ दावपर लगाये, उसे पुष्करने जीत लिया। आसपास जो नलके शुभचिन्तक मित्र थे, उन्होंने राजा नलको रोकनेका बहुत प्रयत्न किया; किंतु जुआरी तो जुएके नशेमें विचारहीन हो जाता है। नलने किसीकी बातपर कोई ध्यान नहीं दिया।

'राजा नल बराबर हारते जा रहे हैं, यह समाचार नगरमें फैल गया। प्रतिष्ठित नागरिक एवं मन्त्रीगण एकत्र होकर वहाँ आये। समाचार पाकर रानी दमयन्तीने प्रार्थना की—'महाराज! मन्त्रीगण एवं प्रजाजन आपका दर्शन करना चाहते हैं। कृपा करके उनकी बात तो सुन लीजिये।' परंतु शोकसे व्याकुल, रोती हुई रानीकी प्रार्थनापर भी नलने ध्यान नहीं दिया। बार-बार रानीने प्रार्थना की; किंतु उसे कोई उत्तर नहीं मिला।

जुआरी तथा सटोरियेकी दुराशा बड़ी घातक होती है—'अबकी बार अवश्य जीतूँगा! केवल एक दाव और' किंतु यह 'एक दाव और' तब जाकर समाप्त होता है जब शरीरके वस्त्र भी हारे जा चुके होते हैं'। यही बात नलके साथ हुई। जुआ तब समाप्त हुआ जब नल अपना समस्त राज्य और शरीरपरके वस्त्र तथा आभूषण भी हार चुके। केवल एक धोती पहिनकर रानी दमयन्तीके साथ उन्हें राजभवनसे उसी समय निकल जाना पड़ा! —सु० सिं०

विवेकहीनता

प्राचीन समयकी बात है। एक धनी व्यक्तिने एक हब्शीको नौकर रक्खा। उसने अपने जीवनमें हब्शी कभी पहले नहीं देखा था। नौकरके शरीरका रंग नितान्त काला था। धनी व्यक्तिने सोचा कि यह कभी स्नान नहीं करता है; शरीरपर मैल जम जानेसे इसका रंग काला हो गया है।

उसने बिना सोचे-समझे अपने दूसरे नौकरोंको आदेश दिया कि इसे अच्छी तरह रगड़-रगड़कर साबुनसे नहलाना चाहिये और तबतक रगड़ते रहना चाहिये जबतक इसका शरीर स्वच्छ और श्वेत न हो जाय ।

नौकरोंने मालिककी आज्ञाका पालन किया । विलम्ब-तक साबुन रगड़ते रहनेपर भी उसके शरीरका रंग नहीं बदल सका । इस नहलानेका दुष्परिणाम यह हुआ कि हब्शीको सर्दी हो गयी और [illegible] अपने मालिककी विवेकहीनताका शिकार हो गया ।

मनुष्यके जीवनमें सत्-असत्के निर्णयका बड़ा महत्त्व है । यदि मालिकने सद्विवेकसे काम लिया होता तो हब्शीकी जान नहीं जाती ।—[illegible]

मनका पाप

एक संत थे । विचित्र जीवन था उनका । वे हरेकसे अपनेको अधम समझते और हरेकको अपनेसे उत्तम । घूमते-फिरते एक दिन वे नदीके तीरपर जा पहुँचे । सुनसान एकान्त स्थान था परम रमणीय । उन्होंने दूरसे देखा—नदीके तटपर स्वच्छ सुकोमल बालूपर एक प्रौढ़ उम्रका मनुष्य बैठा है, बहुत उल्लासमें है वह । पास ही पंद्रह-सोलह सालकी एक सुन्दरी युवती बैठी है । उसके हाथमे काँचका एक गिलास है । गिलासमें जल-जैसा कोई द्रव पदार्थ है । दोनों हँस-हँसकर बातें कर रहे हैं—बेधड़क । इस दृश्यको देखकर संत मन-ही-मन सोचने लगे—'इस प्रकार निर्जन स्थानमें परस्पर हँसी-मजाक करनेवाले ये स्त्री-पुरुष जरूर कोई पाप-चर्चा ही करते होंगे और गिलासमें जरूर शराब होगी । व्यभिचार और शराबका तो चोलीदामनका सम्बन्ध है । तो क्या मैं इनसे भी अधम हूँ ! मैं तो कभी किसी स्त्रीसे एकान्तमें मिलतातक नहीं । न मैंने कभी शराब ही पी है !'

संत इस तरह विचार कर ही रहे थे कि उन्हें नदीकी भीषण तरङ्गोंके थपेड़ोंसे घायल एक छोटी-सी नाव डूबती दिखलायी दी । नाव उलट चुकी थी । यात्री पानीमें इधर-उधर हाथ मार रहे थे । सबकी जान खतरेमें थी । संत हाय ! हाय ! पुकार उठे । इसी बीचमें बिजलीकी तरह वह मनुष्य दौड़कर नदीमें कूद पड़ा और बड़ी बहादुरीके साथ बात-की-बातमें नौ मनुष्योंको बचाकर निकाल लाया । इतनेमें संत भी उसके पास जा पहुँचे । इस तरह—अपने प्राणोंकी परवा न कर दूसरोंके प्राण बचानेके लिये मौतके मुँहमें कूद पड़ना और सफलताके साथ बाहर निकल आना—देखकर संत-का मन बहुत कुछ बदल गया था । वे [illegible] उसके मुखकी ओर चकित-से होकर ताकने लगे । उसने मुसकराकर कहा—'महात्माजी ! भगवान्‌ने इस नगण्यको निमित्त बनाकर नौ प्राणियोंको तो बचा लिया है, एक अभी रह गया है, उसे आप बचाइये ।' संत तैरना नहीं जानते थे, उनकी कूदनेकी हिम्मत नहीं हुई । कोई जवाब भी नहीं बन पड़ा ।

तब उसने कहा—'महात्माजी ! अपनेको नीचा और दूसरोंको ऊँचा माननेका आपका भाव तो बहुत ही सुन्दर है, परंतु असलमें अभीतक दूसरोंको ऊँचा देखनेका यथार्थ भाव आपमें पैदा नहीं हो पाया है । नीचा मानकर ऊँचा मानना—अपनेमें यह अभिमान उत्पन्न करता है कि मैं अपनेसे नीचोंको भी ऊँचा मानता हूँ । जिस दिन आप दूसरोंको वस्तुतः ऊँचा देख सकेंगे, उस दिन आप यथार्थमें ऊँचा मान भी सकेंगे । भगवान् यदि मूर्खके रूपमें आपके सामने आवें और आप उन्हें पहचान लें तो फिर मूर्खका-सा बर्ताव करते हुए भी आप उनको मूर्ख ही मानेंगे ? जो [illegible] श्रीभगवान्‌को पहचानता है, वह किसीको नीचा नहीं मान सकता । दूसरी एक बात यह है कि [illegible]

आपके मनमें पूर्वके अनुभव किये हुए पाप-संस्कारोंका पूर्णतया नाश नहीं हुआ है। अपने ही मनके दोष दूसरोंपर आरोपित होते हैं। व्यभिचारीको सारा जगत् व्यभिचारी और चोरको सब चोर दीखते हैं। आपने अपनी भावनासे ही हमलोगोंपर दोषकी कल्पना कर ली। देखिये—यह जो लड़की बैठी है मेरी बेटी है। इसके हाथमें जो गिलास है, वह इसी नदीके निर्मल जलसे भरा है। यह बहुत दिनों बाद आज ही ससुरालसे लौटकर आयी है। इसका मन देखकर हमलोग नदी-किनारे आ गये थे। बहुत दिनों बाद मिलनेके कारण दोनोंके मनमें बड़ा आनन्द था, इसीसे हमलोग हँसते हुए बातें कर रहे थे। फिर बाप-बेटीमें संकोच भी कैसा? असलमें मैं तो भगवान्‌की प्रेरणासे आपके भावकी परीक्षाके लिये ही यहाँ आया था।'

उसकी ये बातें सुनकर संतका बचा-खुचा अभिमान और पापके सारे संस्कार नष्ट हो गये। संतने समझा—'मेरे प्रभुने ही दया करके इनके द्वारा मुझको यह उपदेश दिलवाया है।' संत उसके चरणोंपर गिर पड़े। इतनेमें वह डूबा हुआ एक आदमी भी भगवान्‌की कृपा-शक्तिसे नदीमेंसे निकल आया।

तबसे संतको किसीमें भी दोष नहीं दीखते थे। वे किसीको भी अपनेसे नीचा नहीं मानते और किसीसे भी अपनेको ऊँचा नहीं देखते थे।

अन्नदोष

एक महात्मा राजगुरु थे। वे प्रायः राजमहलमें राजाको उपदेश करने जाया करते। एक दिन वे राजमहलमें गये। वहीं भोजन किया। दोपहरके समय अकेले लेटे हुए थे। पास ही राजाका एक मूल्यवान् मोतियोंका हार खूँटीपर टँगा था। हारकी तरफ महात्माकी नजर गयी और मनमें लोभ आ गया। महात्माजीने हार उतारकर झोलीमें डाल लिया। वे समयपर अपनी कुटियापर लौट आये। इधर हार न मिलनेपर खोज शुरू हुई। नौकरोंसे पूछ-ताछ होने लगी। महात्माजीपर तो संदेहका कोई कारण ही नहीं था। पर नौकरोंसे हारका पता भी कैसे लगता! वे बेचारे तो बिल्कुल अनजान थे। पूरे चौबीस घंटे बीत गये। तब महात्माजीका मनोविकार दूर हुआ। उन्हें अपने कृत्यपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। वे तुरंत राजदरबारमें पहुँचे और राजाके सामने हार रखकर बोले—'कल इस हारको मैं चुराकर ले गया था, मेरी बुद्धि मारी गयी, मनमें लोभ आ गया। आज जब अपनी भूल मालूम हुई तो दौड़ा आया हूँ। मुझे सबसे अधिक दुःख इस बातका है कि चोर तो मैं था और यहाँ बेचारे निर्दोष नौकरोंपर बुरी तरह बीती होगी।'

राजाने हँसकर कहा—'महाराजजी! आप हार ले जायँ यह तो असम्भव बात है। मालूम होता है जिसने हार लिया, वह आपके पास पहुँचा होगा और आप सहज ही दयालु है, अतः उसे बचानेके लिये आप इस अपराधको अपने ऊपर ले रहे है।'

महात्माजीने बहुत समझाकर कहा—'राजन्! मैं झूठ नहीं बोलता। सचमुच हार मैं ही ले गया था। पर मेरी निःस्पृह—निर्लोभ वृत्तिमें यह पाप कैसे आया, मैं कुछ निर्णय नहीं कर सका। आज सबेरेसे मुझे दस्त हो रहे हैं। अभी पाँचवीं बार होकर आया हूँ। मेरा ऐसा अनुमान है कि कल मैंने तुम्हारे यहाँ भोजन किया था, उससे मेरे निर्मल मनपर बुरा असर पड़ा है और आज जब दस्त होनेसे उस अन्नका अधिकांश भाग मेरे अंदरसे निकल गया है, तब मेरा मनोविकार मिटा है। तुम पता लगाकर बताओ—वह अन्न कैसा था और कहाँसे आया था?'

राजाने पता लगाया। भण्डारीने बतलाया कि 'एक

चोरने बढ़िया चावलोंकी चोरी की थी। चोरको अदालतसे सजा हो गयी; परंतु फरियादी अपना माल लेनेके लिये हाजिर नहीं हुआ। इसलिये वह माल राजमें जप्त हो गया और वहाँसे राजमहलमें लाया गया। चावल बहुत ही बढ़िया थे। अतएव महात्माजीके लिये कल उन्हीं चावलोंकी खीर बनायी गयी थी।'

महात्माजीने कहा—'इसीलिये शास्त्रने राज्यान्नका निषेध किया है। जैसे शारीरिक रोगोंके सूक्ष्म परमाणु फैलकर रोगका विस्तार करते हैं, इसी प्रकार सूक्ष्म मानसिक परमाणु भी अपना प्रभाव फैलाते हैं। चोरीके परमाणु चावलोंमें थे। उसीसे मेरा मन चञ्चल हुआ और भगवान्‌की कृपासे अतिसार हो जानेके कारण आज जब उनका अधिकांश भाग मलद्वारसे निकल गया, तब मेरी बुद्धि शुद्ध हुई। आहारशुद्धिकी इसीलिये आवश्यकता है।'

विजयोन्मादके क्षणोंमें

मध्यकालीन यूरोपकी कथा है। अपने सेनापतिकी वीरतासे एक राजाने युद्धमें विजय प्राप्त की। उसने राजधानीमें सेनापतिका धूमधामसे स्वागत करनेका विचार किया।

'सेनापतिके राजधानीमें प्रवेश करते ही उसका जय-जयकार किया जाय। चार श्वेत घोड़ोंसे जुते रथपर बैठकर वह युद्धस्थलसे राजमहलतक आये और उसके रथके पीछे-पीछे युद्ध-बंदी दौड़ते रहें तथा उनके हाथमें हथकड़ी और पैरोंमें बेड़ी हों।' राजाने स्वागतकी योजनापर प्रकाश डाला।

सेनापति बहुत प्रसन्न हुआ इस स्वागत-समाचारसे। राजाकी स्वागत-योजनाके अनुसार सेनापतिने चार सफेद घोड़ोंके रथपर आसीन होकर नगरमें प्रवेश किया। उसकी जयध्वनिसे धरती और आकाश पूर्ण थे।

सेनापतिने प्रत्यक्ष-सा देखा कि एक सुन्दर सजे-सजाये रथमें एक दास बैठा हुआ था और उसके रथने सेनापतिके रथके समानान्तर ही राजधानीमें प्रवेश किया। इससे उसे यह संकेत मिला कि छोटे-से-छोटा साधारण दास भी उसके समान गौरवपूर्ण पद पा सकता है। इसलिये नश्वर संसारके थोड़ेसे भागपर विजय करके प्रसन्न नहीं होना चाहिये। यह क्षणभङ्गुर है; इसमें आसक्त नहीं रहना चाहिये।

जिस समय लोग उसका जयकार कर रहे थे, उस समय सेनापतिको लगा कि एक दास उसे घूँसा मार रहा है। सेनापति दासके इस व्यवहारसे बड़ा क्षुब्ध था; उसका विजय-मद उतर गया। उसका अभिमान नष्ट हो गया। दासका यह कार्य संकेत कर रहा था कि मिथ्या अभिमान वास्तविक उन्नतिमें बाधक है।

सबसे आश्चर्यकी बात तो यह थी कि जिस समय धूम-धामसे उसका स्वागत होना चाहिये था उस समय लोग जोर-जोरसे उसकी निन्दा कर रहे थे। अनेक प्रकारकी गाली दे रहे थे। इससे उसे अपने दोषोंका ज्ञान होने लगा और अपनी सभी स्थितिका पता चल गया।

उसे ज्ञान हो गया कि मनुष्यको विजयका गर्व नहीं होना चाहिये। सब प्राणी मैत्री प्रेम करनेके अधिकारी हैं तथा अपने दोष ही उसके सच्चे शत्रु हैं; उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये। इससे जीवनमें सत्यका प्रकाश उतरता है। —रा० श्री०

कृतज्ञताका मूल्य

एक राजाके पास दो शिकारी कुत्ते थे। वे एक दूसरेसे थोड़ी दूरपर रक्खे गये। उनमें प्रायः लड़ाई हुआ करती थी। राजाने अपने सम्मतिदातासे पूछा कि क्या उपाय है जिससे दोनों मित्रकी तरह एक साथ रहने लगें। उसने कहा कि आप इन्हें जंगलमें ले जाइये। जब कोई भेड़िया दीख पड़े तो इनमेंसे एकको उसपर छोड़ दीजिये। जब एक कुत्ता लड़ते-लड़ते थकने लगे तब उसकी सहायताके लिये दूसरेको छोड़ दीजियेगा; दोनों मिलकर भेड़ियेको समाप्त कर देंगे और एक दूसरेके कृतज्ञ हो जायँगे।

बादशाहने ऐसा ही किया। भेड़िया आया, पर दोनों कुत्तोंने उसे समाप्त कर दिया। पहले कुत्तेने दूसरे कुत्तेका बड़ा आभार माना; क्योंकि उसकी कृपासे प्राण-रक्षा हुई थी। दोनों कुत्ते साथ-साथ रहने लगे और एक दूसरेके मित्र हो गये।—जा० श०

संसर्गसे गुण-दोष

एक राजा घोड़ेपर चढ़ा वनमें अकेले जा रहा था। जब वह डाकू भीलोंकी झोंपड़ीके पाससे निकला, तब एक भीलके द्वारपर पिंजड़ेमें बंद तोता पुकार उठा—'दौड़ो! पकड़ो! मार डालो इसे! इसका घोड़ा छीन लो! इसके गहने छीन लो!'

राजाने समझ लिया कि वह डाकुओंकी बस्तीमें आ गया है। उसने घोड़ेको पूरे वेगसे दौड़ा दिया। डाकू दौड़े सही; किंतु राजाका उत्तम घोड़ा दूर निकल गया कुछ ही क्षणमें। हताश होकर उन्होंने पीछा करना छोड़ दिया।

आगे राजाको मुनियोंका आश्रम मिला। एक कुटीके सामने पिंजड़ेमें बैठा तोता उन्हें देखते ही बोला—'आइये राजन्! आपका स्वागत है! अरे! अतिथि पधारे हैं! अर्घ्य लाओ! आसन लाओ!'

कुटीमेंसे मुनि बाहर आ गये। उन्होंने राजाका स्वागत किया। राजाने पूछा—'एक ही जातिके पक्षियोंमें स्वभावमें इतना अन्तर क्यों?'

मुनिके बदले तोता ही बोला—'राजन्! हम दोनों एक ही माता-पिताकी संतान हैं; किंतु उसे डाकू ले गये और मुझे ये मुनि ले आये। वह हिंसक भीलोंकी बातें सुनता है और मैं मुनियोंके वचन सुनता हूँ। आपने स्वयं देख ही लिया कि किस प्रकार सङ्गके कारण प्राणियोंमें गुण या दोष आ जाते हैं।'—सु० सिं०

दुर्जन-सङ्गका फल

कोई राजा वनमें आखेटके लिये गया था। थककर वह एक वृक्षके नीचे रुक गया। वृक्षकी डालपर एक कौआ बैठा था। संयोगवश एक हंस भी उड़ता आया और उसी डालपर बैठ गया। कौएने स्वभाववश बीट कर दी जो राजाके सिरपर गिरी। इससे क्रोधमें आकर राजाने धनुषपर बाण चढ़ाया और कौएको लक्ष्य करके बाण छोड़ दिया। धूर्त कौआ तो उड़ गया; किंतु बाण हंसको लगा और वह लड़खड़ाकर नीचे गिर पड़ा।

राजाने आश्चर्यसे कहा—'अरे! इस वनमें क्या सफेद कौए होते हैं?'

मरते हंसने उत्तर दिया—'राजन्! मैं कौआ नहीं हूँ। मैं तो मान-सरोवरवासी हंस हूँ; किंतु कुछ क्षण कौएके समीप बैठनेका यह दारुण फल मुझे प्राप्त हुआ है।'—सु० सिं०

सच्चे आदमीकी खोज

एक बादशाह (सुल्तान) को सच्चे आदमीकी बड़ी खोज थी । अन्य कर्मचारी राज्य-कर वसूल करके खा जाया करते थे । बादशाहका मन्त्री बड़ा योग्य व्यक्ति था ।

'आप सारे राज्यमें ढिंढोरा पिटवा दीजिये कि आपको राज्य-कर वसूल करनेवाले एक योग्य अधिकारीकी आवश्यकता है । जब भेंटके लिये लोग आयें, तब उनसे आप नाचनेके लिये कहियेगा ।' बुद्धिमान् मन्त्री (सम्मतिदाता) ने बादशाहसे निवेदन किया ।

× × × ×

सारे राज्यमें यह बात बिजलीकी तरह फैल गयी कि बादशाहको योग्य कर्मचारीकी आवश्यकता है । आवेदक निश्चित समयपर राजमहलके सामने एकत्र हो गये । बादशाह जिस कमरेमें भेंटके लिये बैठा हुआ था उसमें जानेका रास्ता एक गलियारेसे था, जिसमें इतना अँधेरा था कि हाथ पसारे भी नहीं सूझता था । लोग राज-सिंहासनके सामने एकत्र हो गये ।

बादशाहने उनमेंसे प्रत्येकको बारी-बारी नाचनेके लिये कहा । लोग झेंप गये और बिना नाचे ही, वे सब, एक व्यक्तिको छोड़कर बाहर चले आये । जो आदमी सिंहासनके सामने खड़ा था वह नाचने लगा ।

'यह व्यक्ति सच्चा है ।' मन्त्रीने बादशाहसे बताया । मन्त्रीने कहा कि 'मैंने अन्धकारपूर्ण गलियारेमें सोनेके बहुत-से सिक्के बोरेमें भरकर रखवा दिये थे । जो बेईमान थे उन्होंने अपनी जेबें मोहरोंसे भर ली थीं । यदि वे नाचते तो उनकी चोरीका रहस्य प्रकट हो जाता ।'

बादशाहको सच्चा आदमी मिल गया । —[illegible]

परिवर्तनशीलके लिये सुख-दुःख क्या मानना

एक सम्पन्न घरके लड़केको डाकुओंने पकड़ लिया और अरबके एक निर्दय व्यक्तिके हाथ बेच दिया । निष्ठुर अरब उस लड़केसे बहुत अधिक परिश्रम लेता था और फिर भी उसे झिड़कता और पीटता रहता था । पेट भर भोजन भी उस लड़केको नहीं मिलता था । एक व्यापारी घूमता हुआ उस नगरमें पहुँचा । वह लड़केको पहिचानता था । उसने लड़केसे पूछा— 'आजकल तुम्हें बहुत क्लेश है ?'

लड़का बोला—'जो पहले नहीं थी और आगे भी नहीं रहेगी, उस परिवर्तनशील अवस्थाके लिये क्लेश क्या मानना ।'

वर्ष बीतते गये । अरब वृद्ध हुआ, मर गया । अरबकी स्त्री और अबोध बालक निराधार हो गये । उनका वह गुलाम अब युवक हो गया था । मरते समय अरबने उसे अपने दासत्वसे मुक्त कर दिया था । वही अब स्वयं उपार्जन करके अरबकी पत्नी और पुत्रका भरण-पोषण करता था । वह व्यापारी फिर उस नगरमें आया और युवकसे उसने पूछा—'अब क्या दशा है ?'

युवक बोला—'जो पहले नहीं थी और आगे भी नहीं रहेगी । उस परिवर्तनशील अवस्थाके लिये सुख क्या मानना और दुःख भी क्यों मानना ।'

युवक उन्नति करता गया । वह अपने कबीलेका सरदार हुआ और धीरे-धीरे उस प्रदेशका राजा हो गया । व्यापारी फिर उस नगरमें आया तो उसने मिलना चाहा, किंतु मिल ना नहीं सका । मिलनेपर उसने कहा—'भगवन् ! आपके इस वैभवके लिये धन्यवाद ।'

राजाने शान्त स्थिर स्वरमें कहा—'भाई ! जो पहले नहीं थी और आगे भी नहीं रहेगी, उस परिवर्तनशील अवस्थाके लिये उल्लास क्या और [illegible] ।'

—[illegible]

टूनलालको कौन मार सकता है

एक महात्मा एक स्कूलके आगे रहा करते थे। एक दिन स्कूलके लड़कोंने उनको तंग करनेकी सोची। बस, एक लड़का आकर उनको गुदगुदाने लगा। महात्मा कभी 'हीं हीं हीं हीं' करते, कभी 'ऊँ हूँ ऊँ हूँ' करते और कुछ गुनगुनाने लगते। एक दिन एक आदमी एक हँड़िया रसगुल्ला लेकर उनके पास आया और उसने कहा—'मेरा भतीजा बीमार है। बाबा! आप उसे ठीक कर दीजिये।' पहले तो वह जिस तरफ हँड़िया करता उस ओरसे वे मुँह फेर लेते। बादमें उन्होंने हँड़ियामेसे एक रसगुल्ला लेकर हँड़िया फोड़ दी और कहने लगे—'मेरे टूनलालको कौन मार सकता है!' घर आकर उस आदमीने देखा कि लड़का बिल्कुल स्वस्थ होनेकी ओर बढ़ रहा है। उस बीमार लड़केका नाम टूनलाल था। उसे महात्माजी बिल्कुल नहीं जानते थे।

कुत्ता श्रेष्ठ है या मनुष्य

कोई महात्मा बैठे थे। उनके पास एक कुत्ता आकर बैठ गया। तब किसी असभ्य मनुष्यने महात्मासे पूछा—'तुम दोनोंमें श्रेष्ठ कौन है?' महात्माने कहा, 'यदि मैं प्रभुकी सेवाके लिये सत्कर्म करता हूँ तब तो मैं श्रेष्ठ हूँ और यदि मैं भोग-विलासमें जीवन बिताता हूँ तो मेरे-जैसे सैकड़ों मनुष्योंसे यह कुत्ता श्रेष्ठ है।'

संतकी विचित्र असहिष्णुता

एक संत नौकामें बैठकर नदी पार कर रहे थे। संध्याका समय था। आखिरी नाव थी, इससे उसमें बहुत भीड़ थी। संत एक किनारे अपनी मस्तीमें बैठे थे। दो-तीन मनचले आदमियोंने संतका मजाक उड़ाना शुरू किया। संत अपनी मौजमें थे, उनका इधर ध्यान ही नहीं था। उन लोगोंने संतका ध्यान खींचनेके लिये उनके समीप जाकर पहले तो शोर मचाना और गालियाँ बकना आरम्भ किया। जब इसपर भी संतकी दृष्टि नासिकाके अग्रभागसे न हटी, तब वे संतको धीरे-धीरे ढकेलने लगे। पास ही कुछ भले आदमी बैठे थे। उन्होंने उन बदमाशोंको डाँटा और संतसे कहा—'महाराज! इतनी सहनशीलता अच्छी नहीं है, आपके शरीरमें काफी बल है, आप इन बदमाशोंको जरा-सा डाँट देंगे तो ये अभी सीधे हो जायँगे।' अब संतकी दृष्टि उधर गयी। उन्होंने कहा—'भैया! सहनशीलता कहाँ है, मैं तो असहिष्णु हूँ, सहनेकी शक्ति तो अभी मुझमें आयी ही नहीं है। हाँ, मैं इसका प्रतीकार अपने ढंगसे कर रहा था। मैं भगवान्से प्रार्थना करता था कि 'वे कृपा कर इनकी बुद्धिको सुधार दें, जिससे इनका हृदय निर्मल हो जाय।' संतकी और उन भले आदमियोंकी बात सुनकर बदमाशोंके क्रोधका पारा बहुत ऊपर चढ़ गया। वे संतको उठाकर नदीमें फेंकनेको तैयार हो गये। इतनेमें ही आकाशवाणी हुई—'हे संतशिरोमणि! ये बदमाश तुम्हें नदीके अथाह जलमें डालकर डुबो देना चाहते हैं, तुम कहो तो इनको अभी भस्म कर दिया जाय।' आकाशवाणी सुनकर बदमाशोंके होश हवा हो गये और संत रोने लगे। संतको रोते हुए देखकर बदमाशोंने निश्चित समझ लिया कि अब यह हमलोगोंको भस्म करनेके लिये कहनेवाले हैं। वे काँपने लगे। इसी बीचमें संतने

कहा—'ऐसा न करें स्वामी! मुझ तुच्छ जीवके लिये इन कई जीवोंके प्राण न लिये जायँ। प्रभो! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि मेरे मनमें इनके विनाशकी नहीं, परंतु इनके सुधारकी सच्ची आकाङ्क्षा है तो आप इनको भस्म न करके इनके मनमें बसे हुए कुविचारों और कुभावनाओंको, इनके दोषों और दुर्गुणोंको तथा इनके पापों और तापोंको भस्म करके, इन्हें निर्द्वन्द्व और सुखी बना दीजिये।' भगवान्‌ने कहा—'संतशिरोमणि! ऐसा ही होगा। तुम्हारा भाव बहुत ऊँचा है। तुम हमको अत्यन्त प्यारे हो। तुम्हें धन्य है।'

बस, वे डाकू परम साधु बन गये और उनके चरणोंपर गिर पड़े।

गरीब चोरसे सहानुभूति

एक भक्त थे, कोई उनका कपड़ा चुरा ले गया। कुछ दिनों बाद उन्होंने उसको बाजारमें बेचते देखा। दूकानदार कह रहा था कि 'कपड़ा तुम्हारा है या चोरीका, इसका क्या पता। हाँ, कोई सज्जन पहचानकर बता दें कि तुम्हारा ही है तो मैं खरीद लूँगा।' भक्त पास ही खड़े थे और उनसे दूकानदारका परिचय भी था। उन्होंने कहा—'मैं जानता हूँ, तुम दाम दे दो।' दूकानदारने कपड़ा खरीदकर कीमत चुका दी। इसपर भक्तके एक साथीने उनसे पूछा कि 'आपने ऐसा क्यों किया?' इसपर भक्त बोले कि 'वह बेचारा बहुत गरीब है, गरीबीसे तंग आकर उसे ऐसा करना पड़ा है। गरीबको तो हर तरहसे सहायता ही करनी चाहिये; इस अवस्थामें उसको चोर बतलाकर फँसाना और [illegible] पाप है।' इस बातका चोरपर बड़ा प्रभाव पड़ा [illegible] भक्तकी कुटियापर जाकर रोने लगा। उस दिनसे वह भी भक्त बन गया।

संत-स्वभाव

श्रीविश्वनाथपुरी वाराणसीमें एक साधु गङ्गास्नान कर रहे थे। सहसा उनकी दृष्टि प्रवाहमें बहते एक बिच्छूपर पड़ी। साधुने दया करके उसे हाथपर उठा लिया। बिच्छू तो बिच्छू ही ठहरा, उसकी पीठपरसे पानी नीचे गिरा और उसने अपना भयंकर डंक चला दिया। हाथमें डंक लगनेसे हाथ काँप उठा और बिच्छू फिर पानीमें गिर पड़ा।

साधुके हाथमें भयानक पीड़ा प्रारम्भ हो गयी थी; किंतु उन्होंने आगे झुककर फिर उस बिच्छूको हाथपर उठा लिया और जलसे बाहर आने लगे। बिच्छूने फिर डंक मारा, हाथ फिर काँपा और बिच्छू फिर हाथसे जलमें गिर पड़ा। साधु उसे उठाने फिर जलमें आगे बढ़े।

आस-पास और भी लोग स्नान कर रहे थे। [illegible] बार-बार बिच्छूको उठाते थे और बार-बार [illegible] डंक मारता था। लोग इस दृश्यको और [illegible] गये। किसीने कहा—'यह दुष्ट प्राणी तो [illegible] देने योग्य है। अपनी दुष्टतासे ही [illegible] आप इसे बचानेका निरर्थक प्रयत्न क्यों करते [illegible] मरने दीजिये इसे।'

साधुने बिच्छूको हाथपर उठाते हुए [illegible] क्षुद्र प्राणी अपना डंक [illegible] तो मनुष्य होकर मैं अपना [illegible] छोड़ दूँ। पशुताने यदि [illegible] मानवता अवश्य इससे पशुताका [illegible]

पशुताने [illegible]

गुरु श्रेष्ठ हैं, भगवान् हैं, यह तो संदेहसे परे है । साधुकी दयाको विजय पाना ही था । बिच्छूने इस बार अपना डंक सीधा कर दिया । वह ऐसा शान्त हो गया जैसे डंक चलाना उसे आता ही न हो ।—सु० सिं०

दूसरोंके दोष मत देखो

वे नागा साधु थे । एक नागा साधुके समान ही उनमें तितिक्षा थी, तपस्या थी, त्याग था और था अक्खड़पना । साधु तो रमते-राम ठहरे, जहाँ मन लगा; वहीं धूनी भी लग गयी । वे नागा महात्मा घूमते हुए श्रावस्ती नगरीमें पहुँचे । एक नीमका छायादार सघन वृक्ष उन्हें अच्छा लगा । वृक्षके चारों ओर चबूतरा था । साधुने वहीं धूनी लगा ली ।

जहाँ साधुकी धूनी लगी थी, उसके सम्मुख ही नगरकी एक वेश्याकी अट्टालिका थी । उसके भवनमें पुरुष तो आते-जाते ही रहते थे । साधुको पता नहीं क्या सूझी, जब वेश्याके घरमें कोई पुरुष जाता, तब वे एक कंकड़ अपनी धूनीके एक ओर रख देते । उनके कंकड़ोंकी ढेरी पहले ही दिन भूमिसे ऊँची दीखने लगी । कुछ दिनोंमें तो वह अच्छी बड़ी राशि हो गयी ।

एक दिन जब वह वेश्या अपने भवनसे बाहर निकली तब साधुने उसे समीप बुलाकर कहा—'पापिनी ! देख अपने कुकर्मका यह पहाड़ ! अरी दुष्टे ! तूने इतने पुरुषोंको भ्रष्ट किया है, जितने इस ढेरमें कंकड़ हैं । अनन्त-अनन्त वर्षोंतक तू नरकमें सड़ेगी ।'

वेश्या भयसे काँपने लगी । उसके नेत्रोंसे आँसूकी धारा चलने लगी । साधुके सामने पृथ्वीपर सिर रखकर गिड़गिड़ाती हुई बोली—'मुझ पापिनीके उद्धारका उपाय बतावें प्रभु !'

साधु क्रोधपूर्वक बोले—'तेरा उद्धार तो हो ही नहीं सकता । यहाँसे अभी चली जा । तेरा मुख देखनेके कारण मुझे आज उपवास करके प्रायश्चित्त करना पड़ेगा ।'

वेश्या भयके मारे वहाँसे चुपचाप अपने भवनमें चली गयी । पश्चात्तापकी अग्निमें उसका हृदय जल रहा था । अपने पलंगपर मुखके बल पड़ी वह हिचकियाँ ले रही थी—'भगवान् ! परमात्मा ! मुझ अधम नारीको तो तेरा नाम भी लेनेका अधिकार नहीं । तू पतितपावन है, मुझपर दया कर !'

उस पश्चात्तापकी घड़ीमें ही उसके प्राण प्रयाण कर गये और जो पापहारी श्रीहरिका स्मरण करते हुए देह-त्याग करेगा, उसको भगवद्धाम प्राप्त होगा, यह तो कहनेकी बात ही नहीं है ।

उधर वे साधु घृणापूर्वक सोच रहे थे—'कितनी पापिनी है यह नारी । आयी थी उद्धारका उपाय पूछने, भला ऐसोंका भी कहीं उद्धार हुआ करता है ।'

उसी समय साधुकी आयु भी पूरी हो रही थी । उन्होंने देखा कि हाथमें पाश लिये, दण्ड उठाये बड़े-बड़े दाँतोंवाले भयंकर यमदूत उनके पास आ खड़े हुए हैं । साधुने डाँटकर पूछा—'तुम सब क्यों आये हो ! कौन हो तुम ?'

यमदूतोंने कहा—'हम तो धर्मराजके दूत हैं । आपको लेने आये हैं । अब यमपुरी पधारिये ।'

साधुने कहा—'तुमसे भूल हुई दीखती है । किसी औरको लेने तुम्हें भेजा गया है । मैं तो बचपनसे साधु हो गया और अबतक मैंने तपस्या ही की है । मुझे लेने धर्मराज तुम्हें कैसे भेज सकते हैं । हो सकता है कि तुम इस मकानमें रहनेवाली वेश्याको लेने भेजे गये हो ।'

यमदूत बोले—'हमलोग भूल नहीं किया करते । वह वेश्या तो वैकुण्ठ पहुँच चुकी । आपको अब यम

पुरी चलना है । आपने बहुत तपस्या की हैं; किंतु बहुत पाप भी किया है । वेश्याके पापकी गणना करते हुए आप निरन्तर पाप-चिन्तन ही तो किया करते थे और इस मृत्युकालमें भी तो आप पाप-चिन्तन ही कर रहे थे । अब आपके पाप-पुण्यके भोगका निर्णय धर्मराज करेंगे ।'

साधुके बचनेकी बात अब नहीं थी । यमदूतोंके पाशमें बँधा प्राणी यमपुरी जानेको विवश होता ही है । —सु० शि०

सबसे बड़ा दान अभयदान

किसी राजाके चार रानियाँ थीं । एक दिन प्रसन्न होकर राजाने उन्हें एक-एक वरदान माँगनेको कहा । रानियोंने कह दिया—'दूसरे किसी समय वे वरदान माँग लेंगी ।'

रानियाँ धर्मज्ञा थीं । कुछ काल बाद राजाके यहाँ कोई अपराधी पकड़ा गया और उसे प्राणदण्डकी आज्ञा हुई । बड़ी रानीने सोचा कि 'इस मरणासन्न मनुष्यको एक दिनका जीवनदान देकर उसे उत्तम भोगोंसे संतुष्ट करना चाहिये ।' उन्होंने राजासे प्रार्थना की—'मेरे वरदानमें आप इस अपराधीको एक दिनका जीवन-दान दें और उसका एक दिनका आतिथ्य मुझे करने दें ।'

रानीकी प्रार्थना स्वीकार हो गयी । अपराधीको वे राजभवन ले गयीं और उसे बहुत उत्तम भोजन उन्होंने दिया । परंतु दूसरे दिन मृत्यु निश्चित है, इस भयके कारण उस मनुष्यको भोजन प्रिय कैसे लगता ? दूसरे दिन दूसरी रानीने यही प्रार्थना की और उन्होंने उस अपराधीको उत्तम भोजनके साथ उत्तम वस्त्र भी दिये । तीसरे दिन तीसरी रानीने भी वही प्रार्थना की और भोजन-वस्त्रके साथ अपराधीके मनोरञ्जनके लिये उन्होंने नृत्य-संगीतकी भी व्यवस्था कर दी । पर उस मनुष्यको यह कुछ भी अच्छा नहीं लगा । उसने कुछ खाया-पीया नहीं।

चौथे दिन छोटी रानीने प्रार्थना की—'मैं वरदानमें चाहती हूँ कि इस अपराधीको क्षमा कर दिया जाय ।' उनकी प्रार्थना स्वीकार हो गयी तो उन्होंने अपराधीको केवल रूखी मोटी रोटियाँ और दाल खिलाकर बिदा कर दिया । उसने आज वे रूखी रोटी बड़े स्वाद तथा आनन्दसे पेटभर खायी ।

रानियोंमें विवाद उठा कि सबसे अधिक सेवा उस मनुष्यकी किसने की । परस्पर जब निर्णय नहीं हो सका, तब बात राजाके यहाँ पहुँची । राजाने अपराधीको बुलाकर पूछा तो वह बोला—'राजन् ! जबतक मुझे मृत्यु सामने दीखती थी, तबतक भोजन, वस्त्र या नृत्य-समारोहमें मुझे क्या सुख मिलना था । मुझे तो सबसे स्वादिष्ट लगीं छोटी रानीमाताकी रूखी रोटियाँ; क्योंकि तब मुझे मृत्युसे अभय मिल चुका था ।' इसलिये कहा गया है—

न गोप्रदानं न महीप्रदानं
न चान्नदानं न सुवर्णदानम् ।
यथा वदन्तीह बुधाः प्रधानं
सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम् ॥

बुद्धिमान् लोग समस्त दानोंमें अभयदानको जितना प्रधान (महत्त्वपूर्ण) बतलाते हैं, उतना महत्त्वपूर्ण गोदान, पृथ्वीदान, अन्नदान या सुवर्णदानको नहीं बतलाते । —सु० शि०

अपने प्रति अन्याय

एक साधुकी गाय किसीने चुरा ली। जब लोग गाय ढूँढ़ने लगे, तब साधु बोले—'गाय ले जाते समय मैंने चोरको देखा; किंतु उस समय मैं जप कर रहा था, बोल नहीं सकता था ।'

'कितना दुष्ट है वह !' लोग चोरकी निन्दा करने लगे ।

साधुने उन्हें रोका—'मैंने उसे क्षमा कर दिया है ;

अन्य सब भी क्षमा कर दें।'

'ऐसा दुष्ट भी क्या क्षमा करनेयोग्य होता है। उसे तो दण्ड मिलना चाहिये।' दूसरे लोग बहुत उत्तेजित थे।

साधु बोले—'उसने मेरे प्रति तो कोई अन्याय किया नहीं, मैं क्यों क्रोध करूँ और दण्ड दिलाऊँ। गाय मेरे प्रारब्धमें अब नहीं होगी, इसलिये चली गयी। उसने तो अपने प्रति ही अन्याय किया है; क्योंकि उसने चोरीका पाप किया, जिसका दण्ड उसे अब या जन्मान्तरमें अवश्य भोगना पड़ेगा।'

सबसे अपवित्र है क्रोध

कहा जाता है कि भगवान् विश्वनाथकी पुरी काशीकी बात है। गङ्गा-स्नान करके एक संन्यासी घाटसे ऊपर जा रहे थे। भीड़ तो काशीमें रहती ही है, बचनेका प्रयत्न करते हुए भी एक चाण्डाल बच नहीं सका, उसका वस्त्र उन संन्यासीजीसे छू गया। अब तो संन्यासीको क्रोध आया। उन्होंने एक छोटा पत्थर उठाकर मारा चाण्डालको और डाँटा—'अंधा हो गया है, देखकर नहीं चलता; अब मुझे फिर स्नान करना पड़ेगा।'

चाण्डालने हाथ जोड़कर कहा—'अपराध हो गया, क्षमा करें। रही स्नान करनेकी बात सो आप स्नान करें या न करें, मुझे तो अवश्य स्नान करना पड़ेगा।'

संन्यासीने आश्चर्यसे पूछा—'तुझे क्यों स्नान करना पड़ेगा?'

चाण्डाल बोला—'सबसे अपवित्र महाचाण्डाल तो क्रोध है और उसने आपमें प्रवेश करके मुझे छू दिया है। मुझे पवित्र होना है उसके स्पर्शसे।' संन्यासीजीने लज्जासे सिर नीचा कर लिया।

निष्पाप हो वह पत्थर मारे

महात्मा ईसामसीहके सम्मुख एक नारी पकड़कर ले आयी गयी थी। नगरके लोगोंकी भीड़ उसे घेरे हुए थी। लोग अत्यन्त उत्तेजित थे। वे चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे थे कि उसे मार देना चाहिये। उस नारीपर दुराचरणका आरोप था और अपना अपराध वह अस्वीकार कर दे, ऐसी परिस्थिति नहीं थी। उसके हाथ पीछेकी ओर बँधे थे। उसने अपना मुख झुका रक्खा था।

ईसाने एक बार उस नारीकी ओर देखा और एक बार उत्तेजित भीड़की ओर। उन्होंने ठंडे स्वरमें कहा—'इसने पाप किया है, यह बात जब यह स्वयं अस्वीकार नहीं करती है तो अविश्वास करनेका कोई कारण ही नहीं। यह पापिनी तो है।'

'इसे दण्ड मिलना चाहिये—प्राणदण्ड!' भीड़से लोग चिल्लाये।

'अच्छी बात! आपलोग जैसा चाहते हैं, वैसा ही करें! इसे सब लोग पाँच-पाँच पत्थर मारें।' ईसाने उसी शान्त कण्ठसे निर्णय दे दिया।

बेचारी नारी काँप उठी। उसे दयालु कहे जानेवाले इस साधुसे ही एक आशा थी और उसका यह निर्णय! उधर भीड़के लोगोंने पत्थर उठा लिये। परंतु इसी समय ईसाका उच्चस्वर गूँजा—'सावधान मित्रो! पहला पत्थर इसे वह मारे जो सर्वथा निष्पाप हो। स्वयं पापी होकर जो पत्थर मारेगा, उसे भी यही दण्ड भोगना होगा।'

उत्तेजित भीड़में उठे हाथ नीचे झुक गये। लोगोंका चिल्लाना बंद हो गया। नारीने अश्रुपूर्ण नेत्र उठाकर ईसाकी ओर देखा; किंतु ईसा भीड़को सम्बोधित कर रहे थे—'मारो! बन्धुओ, पत्थर मारो! यह पापिनी

नारी तुम्हारे सामने है, निष्पाप पुरुष इसे पहला पत्थर मारे।'

भीड़के लोग धीरे-धीरे खिसकने लगे। थोड़ी देरमें तो वहाँ ईसा अकेले बच रहे थे। उन्होंने आगे बढ़कर उस नारीके बँधे हाथ खोल दिये और बोले—'देवि! तुम चाहे जहाँ जानेको अब स्वतन्त्र हो। परमात्मा दयासागर हैं। बच्चोंका ऐसा कोई अपराध नहीं हो सकता, जिसको उनका पिता क्षमा माँगनेपर क्षमा न कर दे। उस परम पितासे तुम क्षमा माँगो।'

भीड़की उत्तेजना उस नारीको मार सकती थी; किंतु ईसाकी दयाने उसकी पापप्रवृत्तिको दग्ध कर दिया। वह नारी पश्चात्तापकी ज्वालामें शुद्ध हो चुकी थी।

ऋण लेकर भूलना नहीं चाहिये

नेपोलियन बोनापार्ट बचपनमें बहुत निर्धन थे; किंतु अपने साहस और उद्योगसे वे फ्रांसके सम्राट् हुए। सम्राट् होनेके पश्चात् वे एक दिन घूमते हुए उस ओर पहुँचे जहाँ बचपनमें उन्होंने शिक्षा पायी थी। सहसा उन्हें कुछ स्मरण आया और अकेले ही एक छोटे घरके आगे वे जा खड़े हुए। उस घरकी एक बुढ़ियाको उन्होंने बुलाकर कहा—'बूढ़ी माँ! बहुत पहले इस स्कूलमें एक बोनापार्ट नामका लड़का पढ़ता था, तुम्हें उसका कुछ स्मरण है?'

बुढ़िया बोली—'हाँ, हाँ, मुझे स्मरण है। बड़ा अच्छा लड़का था वह।'

नेपोलियन—'वह तुमसे फल, मेवा, रोटी आदि खाने-पीनेकी चीजें लिया करता था। उसने तुम्हारा सब दाम दे दिया या कुछ उधार उसपर रह गया?'

बुढ़िया—'वह उधार रखनेवाला लड़का नहीं था। वह तो अपने साथियोंमें किसीके पास पैसा न हो तो अपने पाससे उनके पैसे भी चुका देता था।'

नेपोलियन—'तुम बहुत बूढ़ी हो गयी हो, इससे सब बातें तुम्हें स्मरण नहीं। अपने पैसे देकर तुम भूल जाओ, यह तो ठीक है; किंतु ऋण लेकर भूलना तो ठीक नहीं। उस लड़केपर तुम्हारे कुछ पैसे अवश्य उधार हैं। वह आज अपना ऋण चुकाने आया है। यह थैली लो और बहुत दिनोंका अपना ऋण इन रुपयोंसे चुका लो।'

सच्चा वीर

उस समय फ्रांस और ऑस्ट्रियामें युद्ध चल रहा था। लॅटूर आवर्न फ्रांसकी ग्रेनेडियर सेनाका सैनिक था। वह छुट्टी लेकर अपने घर गया था। छुट्टी समाप्त होनेपर जब वह लौटने लगा, तब मार्गमें पता लगा कि ऑस्ट्रियाकी एक सैनिक टुकड़ी पहाड़ी मार्गसे शीघ्रतापूर्वक फ्रांसके एक छोटेसे पर्वतीय दुर्गकी ओर बढ़ी आ रही है। उस सैनिकने निश्चय किया—'मैं शत्रुसे पहले पहुँचकर दुर्ग-रक्षकोंको सावधान कर दूँगा और वहाँसे एक सैनिक भेज दूँगा संदेश लेकर, जिससे समयपर सहायताके लिये सेना आ जाय।'

वह दौड़ता हुआ किसी प्रकार उस पहाड़ी किलेमें पहुँचा; किंतु वहाँ पहुँचकर उसने जो कुछ देखा, उससे बहुत दुःख हुआ। दुर्गका द्वार खुला हुआ था। दुर्गके रक्षक शत्रुके आक्रमणका समाचार पाकर भाग गये थे। वे इतनी उतावलीमें भागे थे कि अपनी बंदूकें भी साथ नहीं ले गये थे। आवर्नने झटपट अपना कर्तव्य निश्चित किया। उसने दुर्गका द्वार बंद कर दिया। फिर खोज करके उसने सब बंदूकें एकत्र कीं। [illegible] कारतूससे चलनेवाली बंदूकें उस समय नहीं थीं। [illegible] सब बंदूकें भरीं और उन्हें स्थान-स्थानपर [illegible] दिया। प्रत्येक बंदूकके पास उसने बारूद और गोली भी रक्खी। यह सब करके वह शत्रुकी प्रतीक्षा करने लगा।

ऑस्ट्रियन सैनिक दुर्गपर अचानक आक्रमण करना चाहते थे। रात्रिके अन्धकारमें वे जैसे ही आगे बढ़े, किलेके ऊपरसे एक बंदूकका धड़ाका हुआ और उनका एक सैनिक लुढ़क गया। उस समय वे पीछे हट गये। सबेरा होनेपर उनके सेनानायकने व्यूह बनाकर किलेपर आक्रमण किया; किंतु किलेसे आती गोलियोंने उस सेनाके अनेक सैनिकोंको भून दिया। गोलियाँ कभी एक ओरसे, कभी दूसरी ओरसे, इस प्रकार किलेकी बहुत-सी खिड़कियोंसे आ रही थीं। किला ऊँचाईपर था। उसपर सीधे चढ़ जाना अत्यन्त कठिन था। दिनभर संग्राम चलता रहा; किंतु ऑस्ट्रियन सैनिक आगे नहीं बढ़ सके। उनके बहुतसे सैनिक मरे तथा घायल हुए।

उधर आवर्न दिनभरमें थककर चूर हो गया था। वह समझता था कि कल वह इसी प्रकार किलेको नहीं बचा सकेगा। भागे हुए सैनिकोंने फ्रांसीसी सेनाको सावधान कर दिया होगा, यह भी वह अनुमान करता था। उसने संध्या-समय पुकारकर ऑस्ट्रियन सेनाके नायकसे कहा—'यदि दुर्गवासियोंको फ्रांसके झंडे तथा हथियारोंको लेकर निकल जानेका वचन दो तो मैं कल सवेरे किला तुम्हें सौंप दूँगा।'

सेनानायकने आवर्नकी माँग स्वीकार कर ली। प्रातःकाल ऑस्ट्रियन सैनिक दो पंक्तियोंमें इस प्रकार खड़े हो गये कि उनके मध्यसे एक-एक करके दुर्गके सैनिक जा सकें। किलेका द्वार खुला। हाथमें फ्रांसका झंडा लिये कंधोंपर ढेरों बंदूकें लादे आवर्न निकला। ऑस्ट्रियन सेनानायकने पूछा—'दूसरे सैनिक तुम्हारे पीछे आ रहे हैं?'

आवर्न हँसकर बोला—'मैं ही सैनिक हूँ, मैं ही दुर्गपाल हूँ और मैं ही पूरी सेना हूँ।' उसके इस शौर्यसे ऑस्ट्रियन सेनानायक इतना प्रभावित हुआ कि उसने बंदूकें ले जानेको उसे अपना एक मजदूर दिया तथा एक प्रशसापत्र लिखकर उसे दिया। इस घटनाका समाचार जब नेपोलियनको मिला तो उसने आवर्नको फ्रांसके महान् ग्रेनेडियरकी उपाधि दी। आवर्नकी मृत्यु होनेपर भी उसका नाम सैनिक-सूचीसे पृथक् न किया जाय, यह आदेश दिया गया। उसकी मृत्युके पश्चात् भी सैनिकोंकी उपस्थिति लेते समय सैनिक अधिकारी पहले उसका नाम लेकर पुकारता था और एक सैनिक नियमितरूपसे उठकर उत्तर देता था—'वे युद्धभूमिमें अनन्त यशकी शय्यापर सो रहे हैं।'

सम्मान पदमें है या मनुष्यतामें

सिकन्दरने किसी कारणसे अपनी सेनाके एक सेनापतिसे रुष्ट होकर उसे पदच्युत करके सूबेदार बना दिया। कुछ समय बीतनेपर उस सूबेदारको सिकन्दरके सम्मुख उपस्थित होना पड़ा। सिकन्दरने पूछा—'मैं तुमको पहलेके समान प्रसन्न देखता हूँ, बात क्या है?'

सूबेदार बोला—'श्रीमान्! मैं तो पहलेकी अपेक्षा भी सुखी हूँ। पहले तो सैनिक और सेनाके छोटे अधिकारी मुझसे डरते थे, मुझसे मिलनेमें संकोच करते थे; किंतु अब वे मुझसे स्नेह करते हैं। वे मेरा भरपूर सम्मान करते हैं। प्रत्येक बातमें मुझसे सम्मति लेते हैं। उनकी सेवा करनेका अवसर तो मुझे अब मिला है।'

सिकन्दरने फिर पूछा—'पदच्युत होनेमें तुम्हें अपमान नहीं प्रतीत होता?'

सूबेदारने कहा—'सम्मान पदमें है या मानवतामें! उच्च पद पाकर कोई प्रमाद करे, दूसरोंको सतावे, घूस आदि ले और गर्वमें चूर बने तो वह निन्दाके योग्य ही है। वह तो बहुत तुच्छ है। सम्मान तो है दूसरोंकी सेवा करनेमें, कर्तव्यनिष्ठ रहकर सबसे नम्र व्यवहार करनेमें और ईमानदारीमें। भले वह व्यक्ति सैनिक हो या उससे भी छोटा गाँवका चौकीदार।'

सिकन्दरने कहा—'मेरी भूलपर ध्यान मत देना। तुम फिर सेनापति बनाये गये।'

निष्पाप हो, वह पत्थर मारे

ऋण लेकर भूलना नहीं

गुरुद्रोहका परिणाम

सहनशीलता

क्षमा

पवित्र बलिदान
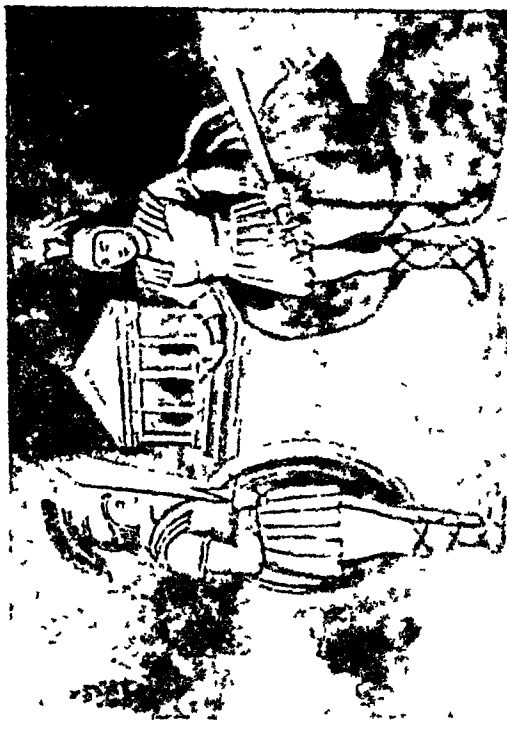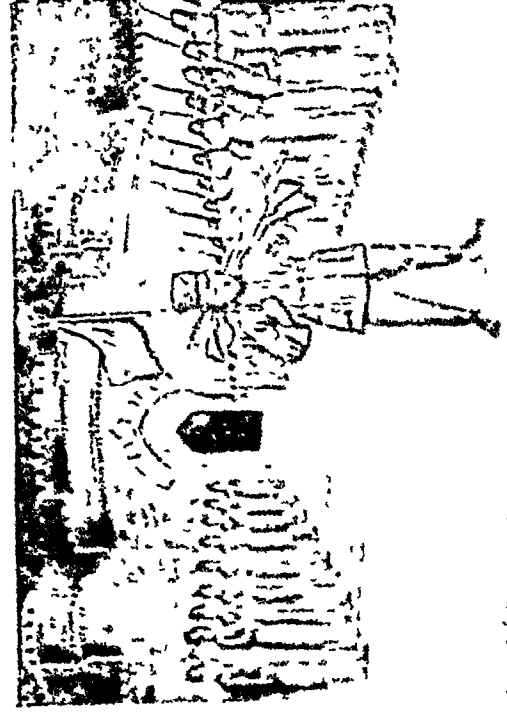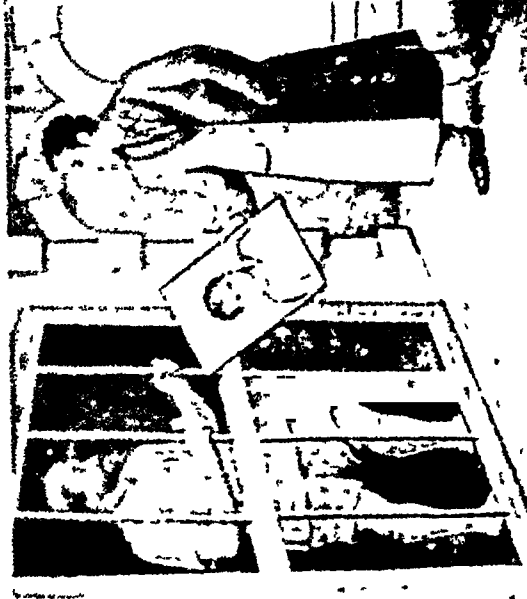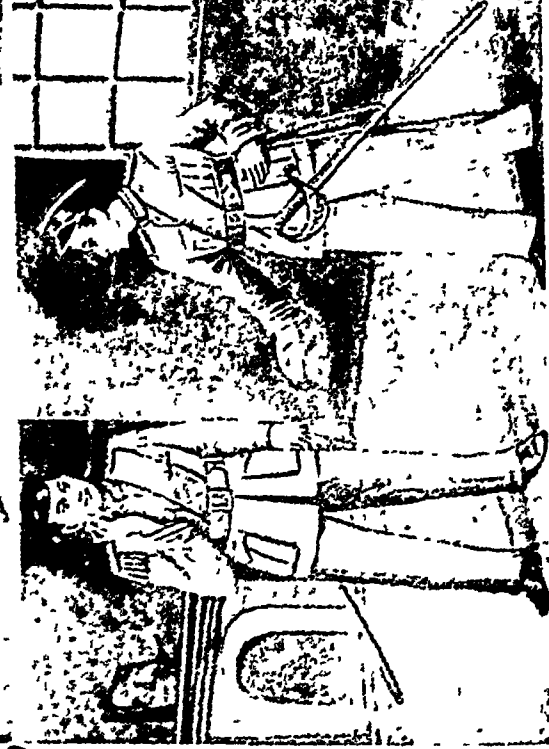
कुसङ्गका दुष्परिणाम

रोमका एक चित्रकार ऐसे व्यक्तिका चित्र बनाना चाहता था, जिसके मुखसे भोलेपन, सरलता और दीनताके भाव स्पष्ट प्रकट होते हों । वर्षोंके परिश्रमके पश्चात् उसे एक ऐसा बालक मिला । चित्रकारने बालकको बैठाकर उसका चित्र बनाया । उस चित्रकी इतनी प्रतियाँ बिकीं कि चित्रकार मालामाल हो गया ।

दस-पंद्रह वर्ष पीछे चित्रकारके मनमें एक दुष्टताके भाव प्रकट करनेवाले चित्रको बनानेकी इच्छा हुई । वह ऐसे व्यक्तिका चित्र बनाना चाहता था जिसके मुखसे धूर्तता, क्रूरता और स्वार्थलिप्सा फूटी पड़ती हो । स्पष्ट था कि ऐसे व्यक्ति उसे कारागारमें ही मिल सकते थे । वह कारागारमें पहुँचा और उसे एक कैदी मिल भी गया ।

'मैं तुम्हारा चित्र बनाना चाहता हूँ ।' चित्रकारने बताया ।

'मेरा चित्र ! क्यों ?' कैदी कुछ डर गया ।

चित्रकारने अपना पहला चित्र [illegible] और उसने अपना विचार सूचित किया । पहले चित्रको देखकर कैदी फूट-फूटकर रोने लगा । उसने [illegible]— 'यह चित्र मेरा ही है ।'

'तुम इस दशामें कैसे पहुँच गये ?' [illegible] चित्रकारने पूछा ।

'कुसङ्गमें पड़कर ।' कैदीके पश्चात्तापके अश्रु रुकते ही नहीं थे ।

सहनशीलता

चीनके बादशाहका मन्त्री शाहचांग बहुत थक गया था । उस दिन उसे सवेरे ही बादशाहके सम्मुख एक रिपोर्ट रखनी थी । आधी राततक जागते हुए वह अपने सहायकसे रिपोर्ट लिखवाता रहा । रिपोर्ट पूरी करके वह उठा और अपने शयनकक्षकी ओर जाने लगा । इसी समय उसका सहायक भी उठा, किंतु सहायककी असावधानीसे लैम्पको धक्का लग गया । लैम्प गिर पड़ा । सब कागज तेलमें भीग गये और उनमें आग लग गयी । सहायकका तो मुख ही सूख गया 'काटो तो खून नहीं ।'

मन्त्री महोदय लौट पड़े । उन्होंने धीरेसे कहा— 'यह संयोगकी बात है, तुम्हारा कोई अपराध तो है नहीं । बैठो, हम दोनों फिरसे उस रिपोर्टको तैयार कर लेंगे ।' अपने आसनपर वे बैठ गये और उन्होंने सम्हालकर रिपोर्ट लिखवाना आरम्भ कर दिया ।

क्षमा

एक दिन एक घमंडी युवकने इंगलैंडकी महारानी एलिजाबेथके आदरभाजन तथा प्रख्यात शूर सर वॉल्टर रैलेको द्वन्द्वयुद्धकी चुनौती दी । उस समय यूरोपमें द्वन्द्व-युद्धकी चुनौतीको अस्वीकार करना अत्यन्त कायरताका चिह्न माना जाता था । सर रैले तलवार चलानेमे अत्यन्त निपुण थे; किंतु उन्होंने उस युवककी चुनौती अस्वीकार कर दी । इसने उस [illegible] घृणापूर्वक सर रैलेके मुखपर थूक दिया ।

बिना किसी उत्तेजनाके रैले बोले—'[illegible] से अपने मुखपर पड़े इस थूकको मैं [illegible] पोंछ सकता हूँ, यदि इतनी ही [illegible] पाप भी पोंछा जा सकता तो [illegible] तुम्हारे साथ [illegible] पड़ता ।'

पवित्र बलिदान

[illegible] [illegible] [illegible] अटलके प्रकाश-गृहकी घटना है । प्रकाश-गृहमें लालटेन जलानेवाला अचानक बीमार पड़ गया । बड़ी अँधेरी रात थी । उसकी पत्नीने लालटेनको जला दिया । लालटेन जलाकर वह लौटी ही थी कि उसने देखा कि पति मरणासन्न हैं । वह बड़ी चिन्तित हो गयी । इतनेमें उसके सात सालके लड़के और दस सालकी लड़कीने सूचना दी कि लालटेन घूम नहीं रही है । प्रकाश-गृहकी लालटेन रातभर घूमकर समुद्रकी उत्ताल तरङ्गोंपर चारों ओर अपना प्रकाश फैलाती थी । यदि वह एक ही दिशाको प्रकाशित करती तो जहाजोंके टकराने और डूबनेकी आशंका हो जाती थी ।

पत्नीने पतिको मरणशय्यापर छोड़ दिया और बच्चोंको साथ लेकर वह लालटेन ठीक करने चली गयी । लालटेन ठीक नहीं हो सकी ।

'बच्चो ! तुमलोग रातभर इस लालटेनको घुमाते रहो । समुद्रमें चारों ओर घना अन्धकार छाया हुआ है; बड़े जोरका तूफान आ रहा है ।' यह आदेश देकर वह पतिके पास चली आयी ।

दोनों बच्चे नौ बजे रातसे सात बजे सबेरेतक लालटेन घुमाते रहे । इस प्रकार उन्होंने अनेक जहाजोंको प्रकाश दिया और असंख्य प्राणोंकी रक्षा की, पर उनके पिताके प्राण तो चले ही गये । माँ मृत पतिके पास रो रही थी, पर इस पवित्र बलिदानके लिये उसके मनमें निराशाकी एक रेखा भी न थी । अपने बच्चोंके सत्कर्तव्य-पालनसे वह बड़ी प्रसन्न थी ।—रा० श्री०

वैष्णवकी नम्रता

एक वैष्णव वृन्दावन जा रहा था । रास्तेमें एक जगह संध्या हो गयी । उसने गाँवमें ठहरना चाहा, पर वह सिवा वैष्णवके और किसीके घर ठहरना नहीं चाहता था । उसे पता लगा—सामनेके गाँवमें सभी वैष्णव रहते हैं । उसे बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने गाँवमें जाकर एक गृहस्थसे पूछा—'भाई ! मैं वैष्णव हूँ । सुना है इस गाँवमें सभी वैष्णव हैं । मैं रातभर ठहरना चाहता हूँ ।' गृहस्थने कहा—'महाराज ! मैं तो नराधम हूँ, मेरे सिवा इस गाँवमें और सभी वैष्णव हैं । हाँ, आप कृपा करके मुझे आतिथ्य करनेका सुअवसर दें तो मैं अपनेको धन्य समझूँगा ।' उसने सोचा, मुझे तो वैष्णवके घर ठहरना है । इसलिये वह आगे बढ़ गया । दूसरे दरवाजेपर जाकर पूछा, तो उसने भी अपने यहाँ ठहरनेके लिये तो बहुत नम्रताके साथ प्रार्थना की; पर कहा यही कि 'महाराज ! मैं तो अत्यन्त नीच हूँ । मुझे छोड़कर यहाँ अन्य सभी वैष्णव हैं ।' वह गाँवभरमें भटका; परंतु किसीने भी अपनेको वैष्णव नहीं बताया, वरं सभीने नम्रतापूर्वक अपनेको अत्यन्त दीन-हीन बतलाया । गाँवभरकी ऐसी विनय देखकर उसकी भ्रान्ति दूर हुई । उसने समझा 'वैष्णवताका अभिमान करनेसे ही कोई वैष्णव नहीं होता । वैष्णव तो वही है जो भगवान् विष्णुकी भाँति अत्यन्त विनम्र है ।' उसकी अन्तर्दृष्टि खुल गयी और उसने अपनेको सबसे नीचा समझकर एक वैष्णवके घरमें निवास किया ।

संतकी सहनशीलता

एक महात्मा जंगलमें कुटिया बनाकर एकान्तमें रहते थे। उनके अक्रोध, क्षमा, शान्ति, निर्मोहिता आदि गुणोंकी ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। मनुष्य पर-गुण-असहिष्णु होता है। उनकी शान्ति भंग करके क्रोध दिलाया जाय—इसकी होड़ लगी। दो मनुष्योंने इसका बीड़ा लिया। वे महात्माकी कुटियापर गये। एकने कहा—'महाराज! जरा गाँजेकी चिलम तो लाइये।' महात्मा बोले—'भाई! मैं गाँजा नहीं पीता।' उसने फिर कहा—'अच्छा तो तमाखू लाओ।' महात्माने कहा—'मैंने कभी तमाखूका व्यवहार नहीं किया।' उसने कहा—'तब बाबा बनकर जंगलमें क्यों बैठा है? धूर्त कहींका।' इतनेमें पूर्व योजनाके अनुसार बहुत-से लोग वहाँ जमा हो गये। उस आदमीने सबको सुनाकर फिर कहा—'पूरा ठग है, चार बार तो जेलकी हवा खा चुका है।' उसके दूसरे साथीने कहा—'अरे भाई! मैं खूब जानता हूँ, मैं साथ ही तो था। जेलमें इसने मुझको डंडोंसे मारा था, ये देखो उसके निशान। रातको रामजनियोंके साथ रहता है, दिनमें बड़ा संत बन जाता है।' यों वे दोनों एक-से-एक बढ़कर—झूठे आरोप लगाने लगे, कैसे ही महात्माको क्रोध आ जाय, अन्तमें महात्माके माता-पिताको, उनके साधनको तथा वेशको भी गाली बकने लगे। बकते-बकते सारा भण्डार खाली हो गया। वे चुप हो गये। तब महात्माने हँसकर कहा—'एक भक्तने शक्करकी पुड़िया दी है, इसे जरा पानीमें डालकर पी लो। (शक्करकी पुड़िया आगे रखकर कहा) भैया! थक गये होओगे।'

वह मनुष्य महात्माके चरणोंपर पड़ गया और बोला—'मुझे क्षमा कीजिये महाराज! मैंने आपका बड़ा अपराध किया है। हमलोगोंके इतना करनेपर भी महाराज! आपको क्रोध कैसे नहीं आया?'

महात्मा बोले—भैया! जिसके पास जो माल होता है, वह उसीको दिखाता है। यह तो ग्राहककी इच्छा है कि उसे ले या न ले। तुम्हारे पास जो माल था, तुमने वही दिखाया, इसमें तुम्हारा क्या दोष है। परंतु मुझे तुम्हारा यह माल पसंद नहीं है।

दोनों लज्जित हो गये। तब महात्माने फिर कहा—'दूसरा आदमी गलती करे और हम अपने अंदर आग जला दें, यह तो उचित नहीं है। मेरे गुरुजीने मुझे यह सिखाया है कि क्रोध करना और अपने बदनपर छुरी मारना बराबर है। ईर्ष्या करना और जहर पीना बराबर है। दूसरोंकी दी हुई गालियाँ और दुष्ट व्यवहार हमारा कोई नुकसान नहीं कर सकते।'

यह सुनकर सब लोग बहुत प्रभावित हुए और महात्मा-को प्रणाम करके चले गये।

'बोलै नहीं तो गुस्सा मरै'

एक घरमें स्त्री-पुरुष दो ही आदमी थे और दोनों आपसमें नित्य ही लड़ा करते थे। एक दिन उस स्त्रीने अपनी पड़ोसिनके पास जाकर कहा—'बहिन! मेरे स्वामीका मिजाज बहुत चिड़चिड़ा है, वे जब-तब मुझसे लड़ते ही रहते हैं और इस तरह हमारी बनी रसोई बेकार चली जाती है।' पड़ोसिनने कहा—'अरे! इसमें कौन-सी बात है? मेरे पास एक ऐसी अचूक दवा है कि जब तुम्हारे पति तुमसे लड़ें, तब तुम इसको अपने मुँहमें भर रक्खा करो; बस, वे तुरंत चुप हो जायँगे।' पड़ोसिनने शीशी भरकर दवा दे दी। उस स्त्रीने इसको दो-तीन बार पतिके क्रोधके समय प्रयोग किया और उसे बड़ी सफलता मिली। तब तो उसने दौड़ी-दौड़ी जाकर पड़ोसिनसे कहा—'बहिन! तुम्हारी दवा तो बड़ी कीमिया है! इसमें क्या-क्या चीजें पड़ी हैं, [illegible]

दो तो, मैं भी मन रक्खूँ।' पड़ोसिनने हँसकर कहा—'बहिन! तुमने मन उसके सिवा और कुछ भी नहीं था। कल मैं तुम्हारे मौनने किया। मुँहमें पानी भरा रहनेसे तुम बदलेमें बोल नहीं सकीं और तुम्हें शान्त पाकर उनका क्रोध भी जाता रहा। बस, 'एक मौन सब दुख हरै, बोलै नहीं तो गुस्सा मरै।'

क्रोधमें मनुष्य हितैषीको भी मार डालता है

किसी नरेशको पक्षी पालनेका शौक था। अपने पाले पक्षियोंमें एक चकोर उन्हें इतना प्रिय था कि उसे वे अपने हाथपर बैठाये रहते और कहीं जाते तो साथ ही ले जाते थे।

एक बार राजा वनमें आखेट करने गये थे। उनका घोड़ा दूसरे साथियोंसे आगे निकल गया। राजा वनमें भटक गये। उन्हें बहुत प्यास लगी थी। घूमते हुए उन्होंने देखा कि एक चट्टानकी संधिसे बूँद-बूँद करके पानी टपक रहा है। राजाने वहाँ एक प्याला जेबसे निकालकर रख दिया। कुछ देरमें प्याला भर गया। राजाने पानी पीनेको उठाया। इसी समय उनके कंधेपर बैठा चकोर उड़ा और उसने पंख मारकर प्याला लुढ़का दिया। राजाको बहुत क्रोध आया; किंतु उन्होंने प्याला फिर रख दिया भरनेके लिये। बड़ी देरमें प्याला फिर भरा, पर जब वे पीने चले तब चकोरने फिर पंख मारकर उसे गिरा दिया। क्रोधके मारे राजाने चकोरको पकड़ लिया और गर्दन मरोड़कर मार डाला उसे।

अब चकोरको नीचे फेंककर उन्होंने सिर उठाया तो सहसा उनकी दृष्टि चट्टानकी संधिपर पड़ी। वहाँ एक मरा सर्प दबा था और उसके शरीरमेंसे वह जल टपक रहा था। राजा काँप उठे—'हाय! जल पीकर मैं मर न जाऊँ इसलिये इस पक्षीने दो बार जल गिराया और मैंने क्रोधमें उसीको मार दिया।' इसीसे कहा गया है—

क्रोधोत्पत्तौ हि क्रोधस्य फलं गृह्णाति मूढधीः।
स शोचति तु किं पश्चात् पक्षीघातकभूपवत्॥

'जो मूर्ख मनुष्य क्रोधके उत्पन्न होनेपर उसे दबा नहीं पाता, वह उस क्रोधका फल भोगता है। पक्षीको मारनेवाले राजाके समान पीछे पश्चात्ताप करनेसे क्या लाभ?'—सु० सिं०

अक्रोध

एक सज्जन पुरुषके सम्बन्धमें प्रख्यात था कि उन्हें क्रोध आता ही नहीं है। कुछ लोगोंको किसी संयमीको संयम-च्युत करनेमें आनन्द आता है। ऐसे ही कुछ लोगोंने उनके सेवकसे कहा—'तुम यदि अपने स्वामीको उत्तेजित कर सको तो तुम्हें पुरस्कार दिया जायगा।'

सेवक जानता था कि उसके स्वामीको अपने पलंगका बिछौना सिकुड़ा हुआ तनिक भी अच्छा नहीं लगता। उसने रातमें उनका बिछौना सम्हाला ही नहीं। प्रातःकाल उन्होंने सेवकसे कहा—'कल बिछौना ठीक नहीं बिछा था।' सेवकने बहाना कर दिया—'मैं उसे ठीक करना भूल गया।'

कोई भूल हो तो सुधरे; किंतु जब जानबूझकर कोई भूल करना चाहे तो भूल सुधरे कैसे। बिछौना दूसरे दिन भी ठीक नहीं बिछा और तीसरे दिन भी ठीक नहीं बिछा। उस दिन सबेरे उठनेपर वे सेवकसे बोले—'लगता है कि तुम बिछौना ठीक करनेके कामसे ऊब गये हो और चाहते हो कि मेरा यह स्वभाव छूट जाय। कोई बात नहीं, मुझे अब सिकुड़े बिछौनेपर ही सो रहनेकी आदत पड़ती जा रही है।'

ब्रह्मज्ञानका अधिकारी

एक साधकने किसी महात्माके पास जाकर उनसे प्रार्थना की कि 'मुझे आत्मसाक्षात्कारका उपाय बताइये।' महात्माने एक मन्त्र बताकर कहा कि 'एकान्तमें रहकर एक सालतक इस मन्त्रका जाप करो; जिस दिन वर्ष पूरा हो, उस दिन नहाकर मेरे पास आना।' साधकने वैसा ही किया। वर्ष पूरा होनेके दिन महात्माजीने वहाँ झाड़ू देनेवाली भंगिनसे कह दिया कि 'जब वह नहा-धोकर मेरे पास आने लगे, तब उसके पास जाकर झाड़ूसे गर्दा उड़ा देना।' भंगिनने वैसा ही किया। साधकको क्रोध आ गया और वह भंगिनको मारने दौड़ा। भंगिन भाग गयी। वह फिरसे नहाकर महात्माजीके पास आया। महात्माजीने कहा—'भैया! अभी तो तुम साँपकी तरह काटने दौड़ते हो। सालभर और बैठकर मन्त्र-जप करो, तब आना।' साधकको बात कुछ बुरी तो लगी, पर वह गुरुकी आज्ञा समझकर चला गया और मन्त्रजप करने लगा।

दूसरा वर्ष जिस दिन पूरा होता था, उस दिन महात्माजीने उसी भंगिनसे कहा कि 'आज जब वह आने लगे, तब उसके पैरसे जरा झाड़ू छुआ देना।' उसने कहा, 'मुझे मारेगा तो?' महात्माजी बोले, 'आज मारेगा नहीं, बककर ही रह जायगा।' भंगिनने जाकर झाड़ू छुआ दिया। साधकने झल्लाकर दस-पाँच कठोर शब्द सुनाये और फिर नहाकर वह महात्माजीके पास आया। महात्माजीने कहा—'भाई! काटते तो नहीं, पर अभी साँपकी तरह फुफकार तो मारते ही हो। ऐसी अवस्थामें आत्मसाक्षात्कार कैसे होगा। जाओ, एक वर्ष और जप करो। इस बार साधकको अपनी भूल दिखायी दी और मनमें बड़ी लज्जा हुई। उसने इसको महात्माजीकी कृपा समझा और वह मन-ही-मन उनकी प्रशंसा करता हुआ अपने स्थानपर आ गया।

उसने सालभर फिर मन्त्र-जप किया। तीसरा वर्ष पूरा होनेके दिन महात्माजीने भंगिनसे कहा कि 'आज वह आने लगे तब कूड़ेकी टोकरी उसपर उँड़ेल देना। अब वह खीझेगा भी नहीं।' भंगिनने वैसा ही किया। साधकका चित्त निर्मल हो चुका था। उसे क्रोध तो आया ही नहीं। उसके मनमें उलटे भंगिनके प्रति कृतज्ञताकी भावना जाग्रत् हो गयी। उसने हाथ जोड़कर भंगिनसे कहा—'माता! तुम्हारा मुझपर बड़ा ही उपकार है, जो तुम मेरे अंदरके एक बड़े भारी दोषको दूर करनेके लिये तीन सालसे बराबर प्रयत्न कर रही हो। तुम्हारी कृपासे आज मेरे मनमें जरा भी दुर्भाव नहीं आया। इससे मुझे पूरी आशा है कि मेरे गुरु महाराज आज मुझको अवश्य उपदेश करेंगे।' इतना कहकर वह स्नान करके महात्माजीके पास जाकर उनके चरणोंपर गिर पड़ा। महात्माजीने उठाकर उसको हृदयसे लगा लिया। मस्तकपर हाथ फिराया और ब्रह्मके स्वरूपका उपदेश किया। शुद्ध अन्तःकरणमें तुरंत ही उपदेशके अनुसार धारणा हो गयी। अज्ञान मिट गया। ज्ञान तो था ही, आवरण दूर होनेसे उसकी अनुभूति हो गयी और साधक निहाल हो गया।

सोनेका दान

एक धनी सेठने सोनेसे तुलादान किया। गरीबोंको खूब सोना बाँटा गया। उसी गाँवमें एक संत रहते थे। सेठने उनको भी बुलाया। वे बार-बार आग्रह करनेपर आ गये। सेठने कहा—'आज मैंने सोना बाँटा है, आप भी कुछ ले लें तो [illegible] हो।' संतने कहा—'नहीं! तुमने बहुत अच्छा काम

दिया, परंतु मुझको लेनेकी आवश्यकता नहीं है।' धनीने फिर भी हठ किया। संतने समझा कि इसके मनमें भयंकर अहंकार है। संतने तुलसीके पत्तेपर राम-नाम लिखकर कहा—'भाई! मैं कभी किसीसे दान नहीं लेता। मेरा मालिक मुझे इतना खाने-पहननेको देता है कि मुझे और किसीसे लेनेकी जरूरत ही नहीं होती। परंतु तुम इतना आग्रह करते हो तो इस पत्तेके बराबर सोना तौल दो।' सेठने इसको व्यंग समझा और कहा—'आप दिल्लगी क्यों कर रहे हैं, आपकी कृपासे मेरे घरमें सोनेका खजाना भरा है, मैं तो आपको गरीब जानकर ही देना चाहता हूँ।' संतने कहा—'भाई! देना हो तो तुलसीके पत्तेके बराबर सोना तौल दो।' सेठने झुँझलाकर तराजू मँगवाया और उसके एक पलड़ेपर पत्ता रखकर वह दूसरेपर सोना रखने लगा। कई मन सोना चढ़ गया; परंतु तुलसीके पत्तेवाला पलड़ा तो नीचे ही रहा। सेठ आश्चर्यमें डूब गया। उसने संतके चरण पकड़ लिये और कहा—'महाराज! मेरे अहंकारका नाश करके आपने बड़ी ही कृपा की। सच्चे धनी तो आप ही हैं।' संतने कहा—'भाई! इसमें मेरा क्या है। यह तो नामकी महिमा है। नामकी तुलना जगत्में किसी भी वस्तुसे नहीं हो सकती। भगवान्ने ही दया करके तुम्हें अपने नामका महत्त्व दिखलाया है। अब तुम भगवान्का नाम जपा करो; तुम्हारा जीवन सफल हो जायगा।'

किसी भी हालतमें निर्दोष नहीं

पहलेके समयकी बात है। किसी देशके एक छोटे-से गाँवमें एक व्यक्ति रहता था। उसके पास एक गधा था। वह उसे बेचना चाहता था। अपने लड़केको साथ लेकर वह निकटस्थ बाजारमें गधा बेचनेके लिये चल पड़ा। पिता गधेके पीठपर था और लड़का पैदल चल रहा था।

ये कुछ दूर गये थे कि तीन व्यक्ति मिले। उनमेंसे एकने कहा कि 'यह कैसा बाप है, अपने तो सवार है गधेकी पीठपर और लड़का पैदल चल रहा है कँकरीले रास्तेपर।' पिता गधेपरसे उतर पड़ा और लड़का बैठ गया।

कुछ दूर गये थे कि दो महिलाएँ मिलीं। 'कैसा पुत्र है। बूढ़े बापको पैदल ले जा रहा है और स्वयं सवारीपर विराजमान है।' उनमेंसे एकने व्यंग किया।

पिताने पुत्रसे कहा कि 'सबको समान रूपसे प्रसन्न रखना बहुत कठिन है। चलो, हम दोनों ही पैदल चलें।' दोनों पैदल चल पड़े।

आगे बढ़नेपर कुछ लोगोंने कहा कि 'कितने मूर्ख हैं दोनों। साथमें हृष्ट-पुष्ट सवारी होनेपर भी दोनों पैदल जा रहे हैं।' पिता-पुत्र दोनों गधेपर सवार हो गये। पर दो-चार कदम आगे बढ़नेपर किसीने कहा कि 'कितने निर्दय हैं दोनों; इतने भारी संडे-मुसंडे बेचारे दुबले-पतले गधेपर लदे जा रहे हैं।' दोनों तत्काल उतर पड़े और सोचा कि गधेको कंधेपर रखकर ले चलना चाहिये। बाजार थोड़ी ही दूर रह गया था। उन्होंने पेड़की एक डाली तोड़ी और उसके सहारे गधेको रस्सीसे बाँधकर कंधेपर लटका लिया।

बाजारमें प्रवेश करते ही लोग कहकहा मारकर हँस पड़े।

'देखो न, कितने मूर्ख हैं दोनों; कहाँ तो इन्हें गधेकी पीठपर सवार होकर आना चाहिये और कहाँ ये उसे स्वयं अपने कंधे पर ढो रहे हैं।' लोगोंने मजाक उड़ाया।

बूढ़े व्यक्तिकी समझमें सारी बात आ गयी।

हमलोगोंने सबको प्रसन्न करना चाहा, इसलिये किसीको भी प्रसन्न न कर सके। सबसे अच्छी बात यह है कि जगत्के लोगोंकी आलोचनापर ध्यान न दे; क्योंकि जगत् तो एक-न-एक दोष निकालेगा ही। जगत्की दृष्टिमें कोई किसी भी हालतमें निर्दोष नहीं है। [illegible] सुने सबकी, पर करे वही जो मनको ठीक लगे। जिस कार्यके लिये आत्मा सत्प्रेरणा प्रदान करे वही [illegible] कर्तव्य है। पिताने पुत्रको सीख दी।*

सभी परमात्माकी संतान हैं

एक बार एक फकीर अपने एक युवक सेवकके साथ कहीं जा रहे थे। रास्तेमें सेवकने एक चिड़िया देखी। उस पक्षीके साथ एक बच्चा भी था। वह सेवकको बहुत सुन्दर लगा। उसने उसे पकड़ लिया। दोनों माँ-बेटे छटपटाने लगे। इसे देख फकीर तुरंत सेवकके पास गये और बोले—'खबरदार! इस पक्षीके बच्चेको तुरंत इसकी माँको सौंप दो। ईश्वर समस्त जीवोंका—प्राणिमात्रका पिता है। वह प्रेममय—[illegible] है। सभी प्राणी परमात्माके बालक हैं। इसलिये उसकी संतानको कष्ट देना तो उसके साथ [illegible] करना है। भला पुत्रवत्सल पिता अपने पुत्रके कष्टको कैसे सहन करेगा! अतएव भगवान्के प्रिय बननेवालों अथवा [illegible] चाहनेवालोंको तन-मनसे उनकी संतानको भी प्रसन्न करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।'

मांस सस्ता या महँगा ?

एक नरेशने अपने दरबारमें सामन्तोंसे पूछा—'मांस सस्ता है या महँगा?'

सामन्तोंने उत्तर दिया—'सस्ता है।'

सामन्तोंकी बात सुनकर राजकुमारने कहा—'पिताजी! मांस महँगा है।'

नरेशने पुत्रसे कहा—'तुम अभी बालक हो, अनुभवहीन हो। सामन्तगण अनुभवी हैं। बात उनकी ही ठीक है।'

राजकुमार बोला—'यदि आप कुछ दिन राजसभामें न आयें तो मैं इस बातको सिद्ध कर दूँगा कि किसकी बात ठीक है।'

राजकुमारकी बात राजाने मान ली। दो-एक दिन बाद राजकुमार एक सामन्तके घर पहुँचे और बोले—'पिताजी बीमार हैं। राजवैद्य कहते हैं कि किसी शूर सामन्तके हृदयका मांस चाहिये। कृपा करके आप अपने हृदयका दो तोला मांस दे दें। जो भी मूल्य चाहें, आपको दिया जायगा।'

सामन्तने राजकुमारको एक बड़ी रकम भेंट की और कहा—'आप मुझपर दया करें। किसी दूसरे सामन्तके पास पधारें।'

राजकुमार क्रमशः सभी सामन्तोंके पास गये। सबने उन्हें भारी भेंट देकर दूसरेके यहाँ जानेको कहा। राजकुमारने भेंटमें प्राप्त वह विशाल धनराशि लाकर पिताके सम्मुख रख दी। सब बातें बता दीं [illegible]। दूसरे दिन राजसभामें राजा आये। सामन्तोंसे उन्होंने फिर पूछा—'मांस सस्ता है या महँगा?'

सामन्तोंने तथ्य समझ लिया। उन्होंने मस्तक झुका लिया। राजकुमार बोले—

* ऐसी ही एक कथा शिव-पार्वती और नन्दी बैलके सम्बन्धमें सुनी जाती है।

स्वमांसं दुर्लभं लोके लक्षेणापि न लभ्यते ।
अल्पमूल्येन लभ्येत पलं परशरीरजम् ॥

'सामन्तो ! अपना मांस संसारमें दुर्लभ है । कोई लाख रुपयेमें भी अपने शरीरका मांस देना नहीं चाहता । परंतु दूसरेके शरीरका मांस तो थोड़े मूल्यमें ही मिलता है ।'

अपने शरीरके समान ही दूसरोंको भी उनका शरीर प्रिय है और उनके लिये उनका मांस वैसा ही बहुमूल्य है जैसे अपने लिये अपना मांस। इससे किसी प्राणीकी हिंसा नहीं करनी चाहिये, यह राजकुमारका तात्पर्य अब सामन्तोंकी समझमें आया ।

—सु० सिं०

अभी बहुत दिन हैं

एक श्रेष्ठ नारी थी । माता-पिता भगवद्भक्त थे, उन्होंने पुत्रीको उत्तम शिक्षा दी थी । विवाह हो जानेपर पतिगृह आकर उसने सोचा—'स्त्रीको पतिकी सेवा करनी चाहिये और सच्ची सेवा तो है जीवको मृत्युके मुखमेंसे बचा देना । भगवान्‌के भजनमें लगकर ही प्राणी मृत्युके फंदेसे छूट सकता है ।' यह विचार करके वह पतिको समय-समयपर भजन करनेको कहा करती थी।

पतिदेव थे सांसारिक व्यापार-निपुण । वे पत्नीकी बात सुनकर कह देते थे—'अभी क्या शीघ्रता है । अभी तो बहुत दिन हैं । भजन-पूजनका भी समय होता है । जरा ये अमुक कार्य पूरे कर लेने दो, फिर तो भजन-ही-भजन करना है ।'

एक बार पति महोदय बीमार पड़े । वैद्यजी आये, नाड़ी देखी और दवा दे गये । पत्नीने दवा लेकर रख दी । जब दवा लेनेका समय हो गया तब पतिने पत्नीसे दवा माँगी । स्त्रीने कहा—'अभी क्या शीघ्रता है ? अभी तो बहुत दिन पड़े हैं । दवा फिर ले लीजियेगा ।'

पतिदेव झल्लाये—'तब दवा क्या मरनेके बाद खानेको है ?'

पत्नीने दवा देते हुए कहा—'दवा तो अभी खानेकी है; किंतु आपने सम्भवतः भगवान्‌का भजन मरनेके पश्चात् करनेकी वस्तु माना है; क्योंकि मृत्यु कब आयेगी, यह तो किसीको पता नहीं ।'

पुरुषको अपनी भूलका पता लगा और भूल जब समझमें आ जाय तो वह दूर होकर रहती है, यदि पुरुष सत्पुरुष है ।—सु० सिं०

अपने अनुभवके विना दूसरेके कष्टका ज्ञान नहीं होता

एक राजकुमारकी शिक्षा पूरी हो चुकी थी । महाराज स्वयं अपने मन्त्रियोंके साथ गुरुगृहसे अपने कुमारको ले जाने । समावर्तन संस्कार सम्पन्न हुआ और राजकुमारने आचार्यके चरणोंमें प्रणाम किया । आचार्य बोले—'वत्स ! मेरी छड़ी तो लाओ ।'

राजकुमारने छड़ी लाकर दी । आचार्यने उस सुकुमार राजकुमारको दो छड़ी कसकर जमा दीं । उसकी पीठपर छड़ीके चिह्न उभड़ आये । रक्त छलछला उठा । अब आचार्यने आशीर्वाद दिया—'वत्स ! तुम्हारा मङ्गल हो । अब पिताके साथ जाओ ।'

विनम्र राजकुमार कुछ नहीं बोला; किंतु राजासे रहा नहीं गया । वे बोले—'अपराध क्षमा करें ! निरपराधको ताड़ना देनेका कारण जाननेकी इच्छा है ।'

आचार्यने शान्तिसे कहा—'इसकी शिक्षामें इतना अभाव रह गया था, दण्डकी तो कोई बात ही नहीं ।

यह इतना नम्र और सावधान है कि इसे ताड़ना देनेका अवसर ही नहीं आया। परंतु इसे शासक बनना है, दूसरोंको दण्ड देना है। उस [illegible] इसे [illegible] चाहिये कि दण्डकी वेदना कैसी होती है।'—[illegible]

अन्यायका कुफल

एक व्यापारीके दो पुत्र थे। एकका नाम था— धर्मबुद्धि, दूसरेका दुष्टबुद्धि। वे दोनों एक बार व्यापार करने विदेश गये और वहाँसे दो हजार अशर्फियाँ कमा लाये। अपने नगरमें आकर सुरक्षाके लिये उन्हें किसी वृक्षके नीचे गाड़ दिया और केवल सौ अशर्फियोंको बाँटकर काम चलाने लगे।

एक बार दुष्टबुद्धि चुपके उस वृक्षके नीचेसे सारी अशर्फियाँ निकाल लाया और बुरे कामोंमें उसने उनको खर्च कर डाला। एक महीना बीत जानेपर वह धर्मबुद्धिके पास गया और बोला—'आर्य! चलो, अशर्फियोंको हम लोग बाँट लें; क्योंकि मेरे यहाँ खर्च अधिक है।' उसकी बात मानकर जब धर्मबुद्धि उस स्थानपर गया और जमीन खोदी तो वहाँ कुछ भी न मिला। जब उस गड्ढेमें कुछ न दीखा, तब दुष्टबुद्धिने धर्मबुद्धिसे कहा— 'माळूम होता है तुम्हीं सब अशर्फियाँ निकालकर ले गये हो, अतः मेरे हिस्सेकी आधी अशर्फियाँ अब तुम्हें देनी पड़ेंगी।' उसने कहा—'नहीं भाई! मैं तो नहीं ले गया; तुम्हीं ले गये होगे।' इस प्रकार दोनोंमें झगड़ा होने लगा। इसी बीच दुष्टबुद्धि अपना सिर फोड़कर राजाके यहाँ पहुँचा और उन दोनोंने अपना-अपना पक्ष राजाको सुनाया। उन दोनोंकी बातें सुनकर राजा किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सका।

राजपुरुषोंने दिनभर उन्हें वहीं [illegible]। [illegible] दुष्टबुद्धिने कहा कि 'यह वृक्ष ही इसका [illegible] है और कहता है कि यह धर्मबुद्धि सारी अशर्फियाँ ले गया है।' इसपर अधिकारी बड़े विस्मित हुए और बोले कि '[illegible] काल हमलोग चलकर वृक्षसे पूछेंगे।' इसके [illegible] जमानत देकर दोनों भाई भी घर गये।

इधर दुष्टबुद्धिने अपनी सारी स्थिति अपने [illegible] समझायी और उसे पर्याप्त धन देकर अपनी ओर [illegible] लिया और कहा कि तुम 'वृक्षके कोटरमें छिपकर [illegible]।' वह रातमें ही जाकर उस वृक्षके कोटरमें बैठ गया। प्रातःकाल दोनों भाई व्यवहाराधिकारियोंके साथ उस स्थानपर गये। वहाँ उन्होंने पूछा कि 'अशर्फियोंको कौन ले गया है?' कोटरस्थ पिताने कहा—'[illegible]'। इस असम्भव आश्चर्यकर घटनाको देख-सुनकर [illegible] अधिकारियोंने सोचा कि अवश्य ही दुष्टबुद्धिने [illegible] किसीको छिपा रक्खा है। उन लोगोंने कोटरमें [illegible] लगा दी। जब उसमेंसे निकलकर उसका [illegible] लगा, तब पृथ्वीपर गिरकर वह मर गया। [illegible] राजपुरुषोंने सारा रहस्य जान लिया और [illegible] पाँच सौ अशर्फियाँ दिला दीं। धर्मबुद्धिका [illegible] किया और दुष्टबुद्धिके हाथ-पैर [illegible] निर्वासित कर दिया।—[illegible] ([illegible])

आसक्तिका अन्तर

एक नरेशकी श्रद्धा हो गयी एक महात्मापर। नरेशने संतकी सेवाका महत्त्व सुना था। वे राजा थे, अतः अपने ढंगसे वे सेवा करनेमें लग गये। अपने राजभवनके समान भवन उन्होंने महात्माके [illegible], अपने उद्यान-जैसा उद्यान [illegible] दिया। [illegible] जैसी सवारियाँ, [illegible]

भोगमें । एक क्षणके लिये भगवान्‌को भुला नहीं सके, परंतु भोजन, वस्त्र, घर द्वार आदि सब सुख-सामग्री उन्होंने त्याग दी थी, [illegible] उनके पास थी ।

एक दिन नरेश महात्माके साथ घूमने निकले । उन्होंने पूछा—'भगवन् ! अब आपमें और मुझमें अन्तर क्या रहा है ?'

संतने समझ लिया कि राजा बाहरी त्यागको महत्त्व देकर यह प्रश्न कर रहा है; किंतु प्रश्नका उत्तर न देकर बोले—'तनिक आगे चलो, फिर बताऊँगा ।'

'भगवन् ! कितनी दूर चलेंगे ! अब लौटना चाहिये। हमलोग नगरसे दूर निकल आये हैं ।' राजाने प्रार्थना की; क्योंकि महात्मा तो चले ही जा रहे थे। वे रुकनेका नाम ही नहीं लेते थे और राजा थक चुके थे । उन्हें स्मरण आ रहा था आजका राज्यकार्य, जिसमें विलम्ब करना हानिकर लगता था ।

संतने कहा—'अब लौटकर ही क्या करना है ? मेरी इच्छा तो लौटनेकी है नहीं । चलो, वनमें चलें । वहाँ भगवान्‌का भजन करेंगे । सुख तो बहुत दिन भोग चुके ।'

राजाने घबराकर हाथ जोड़े—'भगवन् ! मेरे स्त्री है, पुत्र हैं और राज्यकी भी मैंने कोई व्यवस्था नहीं की है । वनमें रहने-जैसा साहस भी अभी मुझमें नहीं है । मैं इस प्रकार कैसे चल सकता हूँ !'

संत हँसे—'राजन् ! मुझमें और तुममें यही अन्तर है । बाहरसे एक-जैसा व्यवहार रहते हुए भी हृदयका अन्तर ही मुख्य अन्तर होता है । भोगोंमें जो आसक्त है, वह वनमें रहकर भी संसारी है और जो उनमें आसक्त नहीं, वह घरमें रहकर भी विरक्त ही है । अच्छा, अब तुम राजधानी पधारो !'—सु० सिं०

अशर्फियोंसे घृणा

एक दिन एक सिंधी सज्जन किसी कामनासे संत मथुरादासजीको खोजता हुआ उनके पास आया और अशर्फियोंकी थैली सामने रखकर अपनी कामना-पूर्तिके लिये प्रार्थना करने लगा । संतने उसे समझाया, पर वह जब नहीं माना, तब संतजीने पूछा—'अच्छा, एक बातका उत्तर दो कि यदि तुम्हारी लड़कीकी शादी हो, बारात दरवाजेपर पहुँचनेवाली हो, उस समय यदि कोई तुम्हारी रसोईमें, जिसको तुमने लिपवा-पुतवाकर साफ रक्खा हो, अंदर चूल्हेमें जाकर टट्टी कर दे तो तुम क्या करोगे ?'

सिंधीने कहा—'महाराज ! डंडे मार-मारकर हड्डी-पसली तोड़ दूँगा ।'

संत बोले—'भैया ! इसी प्रकार हम अपने हृदयको साफ करके भगवान्‌की बाट देख रहे हैं, वे मिलनेवाले हैं । इसीसे हम सब कुछ छोड़कर निर्जन गङ्गातटपर एकान्तमें उनकी पूजाके लिये चौका लगाकर बैठे हैं । तू यह अशर्फियोंकी थैलीरूप उसमें टट्टी करना चाहता है, बता तेरे साथ क्या बर्ताव करना चाहिये । तुझे शर्म नहीं आती ।'

सिंधी समझ गया और प्रणाम करके वहाँसे चुपचाप चलता बना ।

त्याग या बुद्धिमानी

एक वैराग्यवान् संतका दर्शन करने वहाँके नरेश पधारे । साधु कौपीन लगाये भूमिमें ही अलमस्त पड़े थे । नरेशने पृथ्वीपर मस्तक रखकर साधुके चरणोंमें प्रणाम किया और दोनों हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक खड़े हो गये । साधु बोले—'राजन् ! आप मेरे-जैसे कंगालका इतना सम्मान क्यों करते हैं ?'

राजाने उत्तर दिया—'भगवन् ! आप त्यागी हैं और त्यागी पुरुष ही समाजमें सबसे अधिक आदरके योग्य हैं ।'

साधु तो झटपट खड़े हो गये, हाथ जोड़कर उन्होंने

राजाको प्रणाम किया और बोले—'राजन्! क्षमा करें । त्यागीका ही सम्मान योग्य है तो मुझे आपका सम्मान करना चाहिये था । सबसे बड़े त्यागी तो आप ही हैं ।'

राजाने पूछा—'भगवन्! मैं कैसे त्यागी हो गया?'

साधु बोले—'जो थोड़े लाभका त्याग बड़े लाभके लिये करे वह त्यागी है या जो बड़े लाभका त्याग करके छोटी वस्तुमें संतोष कर ले वह त्यागी कहा जायगा?'

राजा—'भगवन्! जो बड़े लाभके लिये छोटे लाभका त्याग करे वह बुद्धिमान् है; किंतु त्यागी नहीं है । जो बड़े लाभका त्याग करके अल्पमें संतुष्ट है, वही त्यागी है ।'

'तो राजन्! मैं केवल बुद्धिमान् हूँ और तुम त्यागी हो ।' साधुने समझाया—'क्योंकि मैंने तो अल्प कालतक रहनेवाले, दुःखसे भरे सांसारिक भोगोंका त्याग करके, अनन्त आनन्दकी प्राप्तिके लिये किया है; किंतु तुम उस अनन्त आनन्दस्वरूप परमात्माको त्यागकर उनके घृणास्पद, क्लेशपूर्ण तुच्छ भोगोंसे ही [illegible] संतुष्ट हो ।' —सु० सिं०

गर्व किसपर ?

बादशाह संतके पास उपदेश लेने पहुँचे थे । संतने पूछा—'तू रेगिस्तानमें भटक जाय, प्यासके मारे मर रहा हो और उस वक्त सड़े नालेका एक प्याला पानी लेकर कोई तेरे पास आकर कहे—'इस प्यालेभर पानीका मूल्य तेरा आधा राज्य है।'

'मैं तुरंत वह पानी ले लूँगा ।' बादशाहने झटसे उत्तर दिया । साधुने फिर पूछा—'वह सड़ा पानी पेटमें पहुँचकर रोग उत्पन्न कर दे । तू पीड़ासे छटपटाने लगे । मरणासन्न हो जाय और तब एक हकीम पहुँचकर कहे—'अपना बाकी आधा राज्य दे दो तो तुम्हें ठीक कर सकता हूँ ।'

बादशाह बोले—'इसमें पूछनेकी कोई बात ही नहीं। मैं उसे बाकी आधा राज्य दे दूँगा । जीवन ही नहीं रहेगा तो राज्य किस काम आयेगा ।'

संतने समझाया—'तब तू बादशाहतपर घमंड किस-पर करता है! एक प्याले सड़े पानी और उससे उत्पन्न विकारको दूर करनेके मूल्यमें जो दिया जा सके, उस राज्यपर तेरा गर्व है!' —सु० सिं०

अनधिकारी राजा

एक भिक्षुक अचानक राजा हो गया था । उस देशके संतानहीन नरेशने घोषणा की थी कि उनकी मृत्युके पश्चात् जो पहिला व्यक्ति नगरद्वारमें प्रवेश करे, उसे सिंहासन दे दिया जाय । भाग्यवश नगरद्वारमें प्रवेश करनेवाला पहिला व्यक्ति वह भिखारी था । मन्त्रियोंने उसे राजतिलक कर दिया ।

भिक्षुक क्या जाने राजप्रबन्ध । राजसेवक स्वच्छन्द व्यवहार करने लगे । अधीनस्थ सामन्तोंने कर देना बंद कर दिया । प्रजा उत्पीड़ित होने लगी राजसेवकोंद्वारा । मन्त्री मनमानी करने लगे । नरेश कुछ करता भी तो अनुभवहीन होनेके कारण परिणाम उलटा निकलता । उसके विरुद्ध राज्यमें असंतोष बढ़ता जाता था । [illegible] वह अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा था ।

घूमते हुए उसका एक पुराना मित्र उस नगरमें आया । राजासे उसने मिलनेकी इच्छा प्रकट की । एकान्तमें राजा उससे मिला । मित्रने कहा—'आपके सौभाग्यपर मैं बधाई देने आया हूँ ।'

राजाने कहा—'मेरे दुर्भाग्यपर रोओ और भगवान्से प्रार्थना करो कि मैं इस स्थितिसे शीघ्र छूट सकूँ । जब मैं भिक्षुक था तो भिक्षामें जो भी रूखी-सूखी रोटी मिलती थी उसे खाकर निश्चिन्त रहता था । परंतु अब तो अनेक चिन्ताओंके कारण मैं सदा दुःखी रहता हूँ । मुझे ठीक निद्रातक नहीं आती ।'—सु० सिं०

सुकुमार वीर

महाभारतके युद्धका नवाँ दिन था। आज पितामह भीष्म पूरी उत्तेजनामें थे। उनका धनुष आज प्रलयकी वर्षा कर रहा था। पाण्डवदलमें क्षण-क्षणपर रथ, अश्व, गज और पैदल कट-कटकर गिर रहे थे। हाहाकार मच गया था पाण्डवदलमें। बड़े-बड़े विख्यात महारथी भी व्याकुल हो रहे थे। व्यूह छिन्न-भिन्न हो चुका था। सैनिकोंको भागनेको स्थान नहीं मिल रहा था। श्रीकृष्णचन्द्रने यह अवस्था देखकर अर्जुनको उत्साहित किया। पितामहपर बाण-वर्षा करनेकी इच्छा अर्जुनमें नहीं थी; किंतु अपने परम सखा श्रीकृष्णकी प्रेरणासे वे युद्धके लिये उद्यत हुए। वासुदेवने उनका रथ पितामहके सम्मुख पहुँचाया। पाण्डव-सेनाने देखा कि अर्जुन अब पितामहसे युद्ध करेंगे तो उसे कुछ आश्वासन मिला।

अपने सम्मुख अर्जुनके नन्दिघोष रथको देखकर भीष्मका उत्साह और द्विगुणित हो उठा। उनके धनुषकी प्रत्यञ्चाका घोष बढ़ गया और बढ़ गयी उनकी बाण-वृष्टि। अर्जुनने दो बार उनका धनुष काट दिया; किंतु इससे पितामहका उत्साह शिथिल नहीं हुआ। उनके पैने बाण कवच फोड़कर अर्जुन और श्रीकृष्णके शरीरको विद्ध करते जा रहे थे। दोनोंके शरीरोंसे रक्तके झरने बह रहे थे।

श्रीकृष्णचन्द्रने देखा कि उनका सखा अर्जुन मन लगाकर युद्ध नहीं कर रहा है। उन जनार्दनको अपने जनोंका प्रमाद सह्य नहीं है। आज अर्जुन पितामहके प्रति पूज्य भाव होनेके कारण युद्धभूमिमें क्षत्रियके उपयुक्त कर्तव्यके प्रति जागरूकताका परिचय नहीं दे रहे थे। वे शिथिल हो रहे थे कर्तव्यके प्रति! मधुसूदन यह सह नहीं सके। उन्होंने घोड़ोंकी रश्मि छोड़ दी और चाबुक ही लिये दौड़ पड़े भीष्मकी ओर।

रक्त और लोथोंसे पटी युद्धभूमि, स्थान-स्थानपर पड़े बाण, छत्र, खण्डित धनुष और उनमें दौड़ते जा रहे थे कमललोचन वासुदेव! उनके चरण रक्तसे सन गये थे। उनके शरीरसे रक्त प्रवाहित हो रहा था। उनके नेत्र अरुण हो उठे थे। उनके अधर फड़क रहे थे। उनके उठे हाथमें चाबुककी रस्सी घूम रही थी। दौड़े जा रहे थे वे भीष्मकी ओर।

युद्धके प्रारम्भमें ही दुर्योधनने आचार्य द्रोण तथा अपने सभी महारथियोंको आदेश दिया था—'भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि' 'आप सब लोग केवल भीष्मकी सावधानीसे रक्षा करें।'

वहाँ द्रोणाचार्य थे, अश्वत्थामा थे, शल्य थे, दुःशासनके साथ दुर्योधन था अपने सभी भाइयोंके सङ्ग और उसके पक्षके सभी महारथी थे; किंतु सब हाथ उठाकर स्त्रियोंकी भाँति चिल्ला रहे थे—'भीष्म मारे गये। भीष्म अब मारे गये।'

श्रीकृष्ण—सौकुमार्यकी मूर्ति श्रीकृष्ण और उनके पास कोई शस्त्र नहीं। वे चक्र नहीं, केवल चाबुक लेकर दौड़ रहे थे। परंतु जिसका संकल्प कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंको पलमें ध्वस्त कर देता है, उसके हाथमें चक्र हो या चाबुक, कौरव-पक्षमें ऐसा मूर्ख कोई नहीं था जो आशा करे कि रोषमें भरे मधुसूदनके सम्मुख वह आधे पल रुक सकेगा। कराल काल भी जहाँ काँप उठे, वहाँ मरने कौन कूदे। धरी रही राजाज्ञा, भूल गया शौर्य, पूरा कौरवदल हाथ उठाये पुकार रहा था—'भीष्म मारे गये! अब मारे गये भीष्म!'

भीष्म तो अपने रथमें बैठे स्तुति कर रहे थे—'पधारो मधुसूदन! अपने हाथों मारकर भीष्मको आज कृतार्थ कर दो माधव!' परंतु अर्जुन कूद पड़े अपने रथसे। दौड़कर पीछेसे उन्होंने अपने सखाके चरण पकड़ लिये और कहा—'मुझे क्षमा करो वासुदेव! मैं अब प्रमाद नहीं करूँगा। तुम अपनी प्रतिज्ञा मत तोड़ो।'

किससे माँगूँ ?

बादशाहकी सवारी निकली थी। मार्गके समीप वृक्षके नीचे एक अलमस्त फकीर लेटे थे अपनी मस्तीमें। बादशाह धार्मिक थे, श्रद्धालु थे, फकीरपर दृष्टि गयी, सवारी छोड़कर उतर पड़े और पैदल अकेले फकीरके पास पहुँचे। प्रणाम करके बोले—'आपको कुछ आवश्यकता हो तो माँग लीजिये।'

फकीरने कहा—'तू अच्छा आया। ये मक्खियाँ मुझे तंग कर रही हैं। इन्हें [illegible]।'

बादशाह बोले—'मक्खियाँ तो [illegible]; किंतु आप चलें तो ऐसा स्थान [illegible] मक्खियाँ···· ।'

बीचमें ही फकीर बोले—'बस, बस! [illegible] काम कर। मैं किससे माँगूँ, तुझ [illegible] जिसका अधिकार नहीं, उससे ?'

सच्चा त्याग और क्षमा

उत्तर प्रदेशमें राजघाटके पास किसी गाँवमें एक विद्वान् पण्डितजी रहते थे। घरमें उनकी विदुषी पत्नी थी। पण्डितजी एक बार बीमार पड़े। एक दिन वे मरणासन्न हो गये। उनको घोर संनिपात था, चेतना नहीं थी। बोली बंद थी। विदुषी पत्नीने चाहा कि 'मरणके पहले इनको संन्यास ग्रहण कर लेना चाहिये। ब्राह्मणके लिये यही शास्त्रविधान है।' भाग्यसे एक वृद्ध संन्यासी रास्तेसे चले जा रहे थे। ब्राह्मणीने उनको बुलाया और सारी परिस्थिति समझाकर पतिको उनसे संन्यासकी दीक्षा दिलवा दी। विरक्त संन्यासी चले गये।

प्रारब्धकी बात, पण्डितजी अच्छे हो गये। ब्राह्मणी उनकी सब सेवा करती पर उनका स्पर्श नहीं करती। पण्डितजीको यह नयी बात मालूम हुई। उन्होंने एक दिन स्पर्श न करनेका कारण पूछा। उसने कहा—'महाराज! आप संन्यासी हो गये।' और फिर उसने वे सारी बातें सुना दीं कि कैसे संन्यासी हुए थे। पण्डितजी बोले—'फिर, संन्यासीको घरमें नहीं रहना चाहिये।' धर्मशीला विदुषी पत्नीने कहा—'महाराज! उचित तो यही है।' उसी क्षण पण्डितजी काषाय वस्त्र धारणकर घरसे निकल गये।

× × ×

वर्षों बाद हरद्वारमें कुम्भका मेला था। [illegible] गाँवसे भी लोग कुम्भस्नानके लिये गये थे। [illegible] जीकी पत्नी भी थी। पण्डितजी संन्यास लेकर [illegible] रहने लगे थे। सच्चे त्यागी थे। विद्वान् [illegible]। [illegible] सियोंमें उनके त्याग और पाण्डित्यकी [illegible]। [illegible] बड़े संन्यासी उनसे पढ़ने लगे। [illegible] उनके दर्शन बिना लौटनेमें यात्राको निष्फल [illegible]। गाँवके लोगोंके साथ पण्डितजीकी पत्नी भी [illegible] गयी। उसे पता नहीं था, ये मेरे पूर्वाश्रमके [illegible]। वह वहाँ जाकर बैठी। स्वामीजीकी दृष्टि [illegible] गयी। उन्होंने पहचान लिया और कहा—'[illegible] गयी!' विदुषी ब्राह्मणीने कहा—'[illegible] आपको मेरा स्मरण है!' स्वामीजीको [illegible] कोड़ा लगा। पर उन्हें इससे बड़ी [illegible]। [illegible] वे अपनी भूलको पकड़ सके। [illegible] किसीको आँख उठाकर न देखने[illegible] रहनेका प्रण कर लिया और [illegible]।

× × ×

एक सन्त वे [illegible] कर रहे थे। [illegible] यह देखनेके लिये कि [illegible]

[illegible] कुल्हाड़ीसे घायल कर दिये। महात्माजी [illegible] बैठे रहे। पीछेसे [illegible]। कुछ लड़कोंने जा देखा और वे [illegible] जमींदारको खबर देने गये। वह जमींदार [illegible] बड़ा भक्त था। मुसलमान छोकरे भाग गये। जमींदार आये, उन्होंने उन छोकरोंको पकड़वाकर बुलाया। उसने कहा—'इन्हें खूब मार मारो।' यह सुनते ही महात्माजी खड़े हो गये और हाथ ऊपर उठाकर मारनेसे मने कर दिया। जमींदार चुप हो रहे। लड़कोंको इशारेसे विदा कर दिया। तबसे जीवनभर उनका वह हाथ उठा ही रहा।

साधुवेष बनाकर धोखा देना बड़ा पाप है

एक राजाको कोढ़की बीमारी हो गयी थी। वैद्योंने बताया कि मानसरोवरसे हंस पकड़वाकर मँगाये जायँ और उनके पित्तसे दवा बने तो निश्चय ही राजाका रोग नष्ट हो जाय। राजाके आदेशसे व्याध भेजे गये। व्याधोंको देखते ही हंस उड़ गये। तब व्याधोंने एक षड्यन्त्र रचा। उन्होंने गेरुआ वस्त्र पहन लिये, नकली जटा लगा ली, कमण्डलु ले लिये, भस्मके त्रिपुण्ड्र लगा लिये, गलेमें माला पहन ली। उनके इस संन्यासी वेषको देखकर हंस नहीं उड़े। व्याध हंसोंको पकड़कर राजाके पास ले आये। राजाने जब व्याधोंके द्वारा हंसोंके पकड़े जानेका तरीका सुना, तब उसके मनमें विचार आया कि हंसोंने संन्यासी वेषका विश्वास करके व्याधोंका भय नहीं किया। वे बड़े सरल हैं। इस प्रकार धोखा देकर उन्हें पकड़ना और मारना सर्वथा अनुचित है। बड़ा पाप है। यह सोचकर राजाने उनको छोड़ दिया। इस पुण्यके कारण राजा एक दूसरे वैद्यकी निर्दोष दवासे रोगमुक्त हो गया। व्याधोंने भी सोचा कि जब कपटी साधुके वेषसे वनके पशु-पक्षीतक विश्वास कर लेते हैं, तब असली साधु होनेपर तो सभी विश्वास करेंगे। इससे वे भी पक्षीवधका नृशंस काम छोड़कर असली त्यागी बन गये।

दयासे बादशाही

एक व्यक्ति शिकारके लिये जंगलमें गया। वहाँ उसने एक हरिनीको देखा। उसके साथ छोटा बच्चा था। शिकारी दौड़ा, हरिनी तो डरकर जंगलमें छिप गयी। बच्चा पकड़ा गया। शिकारी बच्चेको लेकर चला तब हरिनी भी निकल आयी और बच्चेके स्नेहवश वह भी पीछे-पीछे चलने लगी। शिकारीने कुछ दूर आनेके बाद पीछेकी ओर मुड़कर देखा। हरिनीकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी और वह पीछे-पीछे चली आ रही थी। शिकारी अपने गाँवके समीप आ गया। तब भी हरिनी उसी प्रकार रोती चली आ रही थी। उसको दया आ गयी। उसने बच्चेको छोड़ दिया। बच्चा छूटते ही छलाँग मारकर माँके पास पहुँचा। हरिनी मूक आशीर्वाद देती हुई बच्चेको लेकर लौट गयी। रातको शिकारीने स्वप्नमें देखा—कोई कह रहा है, 'इस दयाके फलस्वरूप तुम्हें बादशाही मिलेगी।' वही आगे चलकर गजनीका बादशाह हुआ।

प्राणी-सेवासे ब्रह्मानन्दकी प्राप्ति

एक महात्मा बड़ी सुन्दर वेदान्तकी कथा कहा करते। बहुत-से लोग सुनने जाते। उनमें एक गरीब राजपूत भी था, जो आश्रमके समीप एक कुएँके पास खोमचा लगाकर उबाले हुए चने-मटर बेचा करता था। वह बड़े

ध्यानसे कथा सुनता। उसने एक दिन महात्माजीसे कहा—'महाराज! मैं इतने दिनोंसे मन लगाकर कथा सुनता हूँ; मैंने अन्वय-व्यतिरेकके द्वारा आत्माके स्वरूप-को भी समझ लिया है। परंतु मुझे जो आत्मानन्द प्राप्त होना चाहिये, वह नहीं हो रहा है। इसका क्या कारण है।' महात्माने कहा—'कोई प्रतिबन्ध होगा, उसके हटनेपर आत्मानन्दकी प्राप्ति होगी।' खोमचेवाला चुप हो गया।

एक दिन वह कुएँके पास छायामें खोमचा लगाये बैठा था। गरमीके दिन थे। कड़ाकेकी धूप थी। गरम लू चल रही थी। दोपहरका समय था। इतनेमें एक चमार लकड़ियोंका बोझा उठाये वहाँ आया। वह पसीनेसे तर था। उसकी आँखें लाल हो रही थीं। बहुत थका था। कुएँके पास आते ही वह व्याकुल होकर गिर पड़ा और बेहोश हो गया। खोमचेवाले राजपूतने तुरंत उठकर, उसको उठाकर छायामें सुलाया। कुछ देर अपनी चद्दरसे हवा की, फिर सत्तू बनाकर थोड़ा-थोड़ा उसके मुँहमें डालना शुरू किया। यों करते-करते एक घंटा बीत गया। तब उसने आँखें खोलीं। खोमचेवालेने बड़े प्यारसे उसे दो मुट्ठी चने खिलाये और फिर ठंडा पानी पिलाया। वह बिल्कुल अच्छा हो गया। उसके रोम-रोमसे आशीर्वाद निकल रही थी। उसने कृतज्ञताभरी आँखोंसे राजपूतकी ओर देखा और अपना रास्ता पकड़ा।

इसी समय राजपूतको आत्मानन्दकी प्राप्ति हो गयी। मानो उसका हृदय ब्रह्मानन्दमय हो गया। उसने महात्माके पास जाकर अपनी स्थिति वर्णन किया। महात्माने कहा—'तुमने निष्कामभावसे एक प्राणीकी सेवा की, इससे तुम्हारा प्रतिबन्ध कट गया। मनुष्य-मात्रको सर्वभूतहितैषी होना चाहिये।'

मेहनतकी कमाई और उचित वितरणसे प्रसन्नता

एक राजा जंगलके रास्ते कहीं जा रहा था। उसने देखा एक खेतमें एक जवान आदमी हल जोत रहा है और मस्तीमें झूमता हुआ ऊँचे स्वरसे कुछ गा रहा है। वह बड़ा ही प्रसन्न था। राजा वहाँ खड़ा होकर उसका गाना सुनने लगा। फिर राजाने उससे पूछा कि 'भाई! तुम बहुत प्रसन्न मालूम होते हो। बताओ—तुम औसत प्रतिदिन कितना कमाते हो?' उसने हँसते हुए कहा—'मैं खुद मेहनत करके आठ आने रोज कमाता हूँ और उनको चार हिस्सोंमें बाँट देता हूँ। मैं न इससे अधिक कमाना चाहता हूँ और न खर्च करना। मुझे चिन्ता क्यों होगी।' राजाने पूछा—'चार हिस्सोंमें कैसे बाँटते हो?' किसानने कहा—'माँ-बापने मुझको पाला था, उनका ऋण मेरे सिरपर है, अतः दो आना उनको देकर ऋण उतारता हूँ। बच्चे बड़े होनेपर मेरी सेवा करेंगे, इसलिये दो आने रोज उनके पालनमें लगाता हूँ, यह मानो कर्ज देता हूँ। मैं किसान हूँ, जानता हूँ कि आदमी जो बोता है, वही फसल पकनेपर पाता है। इसीसे दान देनेपर ही किसीको कुछ मिल सकता है, यह सोचकर चौथे हिस्सेके दो आने मैं रोज दान करता हूँ और शेष बचे हुए दो आनेमें अपना पेट भरता हूँ।'

कहानीके द्वारा वैराग्य

एक दासी नित्यप्रति महारानीकी सेज बिछाया करती। एक दिन उसने खूब ही सजाकर सेज बिछायी। गरमीके दिन थे। खुली खिड़कियोंसे सुहानी ठंडी हवा आ रही थी। दासी थकी हुई थी, वह [illegible]

[illegible] । लेटते ही बेचारीको नींद आ गयी । [illegible] महारानी आयीं, उसने अपने ही [illegible] दासीको अपनी [illegible] क्रोधसे आगबबूला हो गयी और दासीको जगाया । दासी बेचारी डरके मारे काँपने लगी । महारानीने उसे कोड़े लगाने शुरू किये । दो-चार कोड़े [illegible] वह उदास रही और रोती रही । फिर उसका मुख प्रसन्न हो गया और वह हँसने लगी । महारानीको बड़ा आश्चर्य हुआ; उसने प्रसन्नताका और हँसनेका कारण पूछा । तब दासीने कहा—'महारानीजी ! [illegible] हो, मुझे इस बातपर हँसी आ गयी कि मैं एक दिन थोड़ी-सी देरके लिये इस पलंगपर सो गयी, जिससे मुझपर इतने बेभाव कोड़े पड़ रहे हैं । ये महारानी रोज इसपर सोती हैं, इनपर पता नहीं कितने कोड़े पड़ेंगे । तब भी ये समझ नहीं रही हैं और अपने भविष्यपर ध्यान न देकर मुझे मार रही हैं । आपकी इस बेसमझीपर मुझे हँसी आयी ।'

एक नाईने किसी राजा साहबके तेल मलते-मलते यह कहानी कही और इसीसे उनको वैराग्य हो गया और वे राज छोड़कर घरसे निकल पड़े ।

महत्त्व किसमें ?

किसी नरेशके मनमें तीन प्रश्न आये—१. प्रत्येक कार्यके करनेका महत्त्वपूर्ण समय कौन-सा ? २. महत्त्वका काम कौन-सा ? ३. सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति कौन ?

नरेशने अपने मन्त्रियोंसे पूछा, राजसभाके विद्वानोंसे पूछा; किंतु उन्हें किसीके उत्तरसे संतोष नहीं हुआ । वे अन्तमें नगरके बाहर वनमें कुटिया बनाकर रहनेवाले एक साधुके समीप गये । संत उस समय फावड़ा लेकर फूलोंकी क्यारीकी मिट्टी खोद रहे थे । राजाने साधुको प्रणाम करके अपने प्रश्न उन्हें सुनाये; परंतु साधुने कोई उत्तर नहीं दिया । वे चुपचाप अपने काममें लगे रहे ।

राजाने सोचा कि साधु वृद्ध हैं, थक गये हैं, वे [illegible] बैठें तो मेरे प्रश्नोंका उत्तर दे सकेंगे । यह विचार करके उन्होंने साधुके हाथसे फावड़ा ले लिया और स्वयं मिट्टी खोदने लगे । जब साधु फावड़ा देकर अलग बैठ गये, तब नरेशने उनसे अपने प्रश्नोंका उत्तर देनेकी प्रार्थना की । साधु बोले—'वहाँ कोई व्यक्ति दौड़ता आ रहा है । पहले हमलोग देखें कि वह क्या चाहता है ।'

सचमुच एक मनुष्य दौड़ता आ रहा था । वह अत्यन्त [illegible] था । उसके शरीरपर शस्त्रोंके घाव थे और उनसे रक्त बह रहा था । समीप पहुँचनेसे पहले ही वह भूमिपर गिर पड़ा और मूर्छित हो गया । साधुके साथ राजा भी दौड़कर उसके पास गये । जल लाकर उन्होंने उसके घाव धोये । अपनी पगड़ी फाड़कर उसके घावोंपर पट्टी बाँधी । इतनेमें उस व्यक्तिकी मूर्छा दूर हुई, राजाको अपनी शुश्रूषामें लगे देखकर उसने उनके पैर पकड़ लिये और रोकर बोला—'मेरा अपराध क्षमा करें ।'

नरेशने आश्चर्यपूर्वक कहा—'भाई ! मैं तो तुम्हें पहचानता तक नहीं ।'

उस व्यक्तिने बताया—'आपने मुझे कभी देखा नहीं है; किंतु एक युद्धमें मेरा भाई आपके हाथों मारा गया है । मैं तभीसे आपको मारकर भाईका बदला लेनेका अवसर ढूँढ़ रहा था । आज आपको वनकी ओर आते देखकर मैं छिपकर आपको मार डालने आया था । परंतु आपके सैनिकोंने मुझे देख लिया । वे मुझपर एक साथ टूट पड़े । उनसे किसी प्रकार प्राण बचाकर मैं यहाँ आया । महाराज ! आज मुझे पता लगा कि आप कितने दयालु हैं । आपने अपनी पगड़ी फाड़कर मुझ-जैसे शत्रुके घाव बाँधे और मेरी सेवा की । आप मेरे अपराध क्षमा करें । अब मैं आजीवन आपका सेवक बना रहूँगा ।'

उस व्यक्तिको नगरमें भेजनेका प्रबन्ध करके राजाने साधुसे अपने प्रश्नोंका उत्तर पूछा तो साधु बोले—'राजन् ! आपको उत्तर तो मिल गया। सबसे महत्त्वपूर्ण समय वह था, जब आप मेरी फूलोंकी क्यारी खोद रहे थे; क्योंकि यदि आप उस समय क्यारी न खोदकर लौट जाते तो यह व्यक्ति आपपर आक्रमण कर देता। सबसे महत्त्वपूर्ण काम था इस व्यक्तिकी सेवा करना; क्योंकि यदि सेवा करके आप इसका जीवन न बचा लेते तो यह शत्रुता चित्तमें लेकर मरता और पता नहीं इसकी तथा आपकी शत्रुता कितने जन्मोंतक चलती रहती। और सबसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति मैं हूँ, जिसके द्वारा [illegible] पाकर तुम लौटोगे।'

नरेशने मस्तक झुकाया। साधु बोले—'[illegible] न समझे हो तो फिर समझ लो कि सबसे महत्त्वपूर्ण समय 'वर्तमान समय' है, उसका उत्तमसे उत्तम उपयोग करो। सबसे महत्त्वपूर्ण वह काम है जो वर्तमानमें तुम्हारे सामने है। उसे पूरी सावधानीसे सम्पन्न करो। सबसे महत्त्व-पूर्ण व्यक्ति वह है जो वर्तमानमें तुम्हारे सम्मुख है। उसके साथ सम्यक् रीतिसे व्यवहार करो।'—[illegible]

संसारका स्वरूप

एक युवक बचपनसे एक महात्माके पास आया-जाया करता था। सत्संगके प्रभावसे भजनमें भी उसका चित्त लगता था। महात्माने देखा कि वह अधिकारी है, केवल मोहवश परिवारमें आसक्त हो रहा है। उन्होंने उसे समझाया—'बेटा ! माता-पिताकी सेवा और पत्नीका पालन-पोषण तो कर्तव्य है। उसे धर्म समझकर करना चाहिये। परंतु मोहवश उनमें आसक्त होना उचित नहीं। भगवान् ही अपने हैं। संसारमें दूसरा कोई किसीका नहीं है।'

युवकने कहा—'भगवन् ! आपकी यह बात मेरी समझमें नहीं आती। मेरे माता-पिता मुझे इतना स्नेह करते हैं कि एक दिन घर न जाऊँ तो उनकी भूख-प्यास तथा नींद सब बंद हो जाती है। मेरी पतिव्रता पत्नीकी तो मैं क्या कहूँ। मेरे बिना तीनमेंसे कोई जीवित नहीं रह सकता।'

महात्माने उसे परीक्षा करके देखनेको कहा और युक्ति बतलायी। उस दिन घर जाकर वह सीधा पलंगपर लेट गया। किसीकी बातका कुछ उत्तर नहीं दिया उसने। थोड़ी देरमें हाथ-पैर कड़े करके प्राणवायु मस्तक-में चढ़ाकर वह निश्चेष्ट हो गया। घरमें रोना-पीटना मच गया उसे मृत समझकर। पास-पड़ोसके लोग एकत्र हो गये।

इसी समय महात्माजी पधारे। उन्होंने कहा—'मैं इसे जीवित कर सकता हूँ। एक कटोरी पानी चाहिये।'

घरके लोग तो साधुके चरणोंमें लोटने लगे। कटोरी-का पानी लेकर महात्माजीने कुछ मन्त्र पढ़े और युवकके चारों ओर घुमाया। अब वे बोले—'इस जलको कोई पी जाय। जल पीनेवाला मर जायगा और युवक जीवित हो जायगा।'

मरे कौन ! सब एक दूसरेका मुख देखने लगे। पड़ोसी, मित्र आदि धीरे-धीरे खिसक गये। साधुने युवकके पिताकी ओर देखा तो वे बोले—'मैं प्रसन्नता-से जल पी लेता; किंतु अभी कुछ आवश्यक कार्य रह गये हैं। उन्हें निपटा न दूँ तो [illegible] होगा। मेरी स्त्री……।'

परंतु बुढ़िया बीचमें ही बोल उठी—'बूढ़े ! तू मेरे बिना रह सकेगा ! और [illegible] बहू कितनी छोटी है। [illegible] सकती है !'

'देवि ! तुम तो [illegible] हो। [illegible]

मुझ [illegible] नहीं जायेगी।' साधुने युवककी पत्नी-की ओर देखा।

युवक-पत्नीने उत्तर दिया—'भगवन्! मैं न रही तो [illegible] होकर भी ये बहुत दुखी होंगे और मेरे माता-पिता तो मेरी मृत्युका समाचार पाते ही मर जायँगे। उनके और कोई सन्तान नहीं है। [illegible] दिन मैं उनके पास रहकर जाऊँगी तो उनको कुछ तो धैर्य रहेगा।'

'तब मैं पी लूँ यह पानी?' साधुने पूछा।

अब तो सभी एक साथ बोल उठे—'आप धन्य हैं। महात्माओंका तो जीवन ही परोपकारके लिये होता है। आप कृपा करें। आप तो मुक्तात्मा हैं। आपके लिये तो जीवन-मरण एक-से हैं।'

युवकको अब और कुछ देखना-सुनना नहीं था। उसने प्राणायाम समाप्त कर दिया। और बोल उठा—'भगवन्! आप पानी पियें, यह आवश्यक नहीं है। मुझे आपने सचमुच आज जीवन दे दिया है—प्रबुद्ध जीवन।' —सु० सिं०

अभीसे अभ्यास होना अच्छा

एक सेठजीने अन्नसत्र खोल रखा था। दानकी भावना तो कम थी, मुख्य भावना तो थी कि समाज उन्हें दानवीर समझे, उनकी प्रशंसा करे। उनके प्रशंसक लोग कम थे भी नहीं। सेठजी गल्लेका थोक व्यापार करते थे। अन्नके कोठारोंमें वर्षके अन्तमें जो घुना-सड़ा अन्न बिकनेसे बच रहता था, वह अन्नसत्रके लिये दे दिया जाता था। प्रायः सड़ी ज्वारकी रोटी ही सेठजीके अन्न-क्षेत्रमें भूखोंको प्राप्त होती थी।

सेठजीके पुत्रका विवाह हुआ। पुत्रवधू घर आयी। वह सुशील, धर्मज्ञ और विचारशीला थी। अपने श्वशुर-का अन्नसत्र देखकर उसे दुःख हुआ। भोजन बनानेका भार उसने स्वयं उठाया। पहिले ही दिन अन्न-क्षेत्रसे सड़ी ज्वारका आटा मँगाकर उसने एक रोटी बनायी। सेठजी भोजन करने बैठे थे। दूसरे भोजनके साथ उनकी थालीमें वह रोटी भी पुत्रवधूने परोस दी। काली, मोटी रोटी देखकर सेठजीने कुतूहलवश पहिला ग्रास उसीका मुखमें डाला और थू-थू करके थूकते हुए बोले—'बेटी! घरमें आटा तो बहुत है। तूने रोटी बनानेके लिये यह सड़ी ज्वारका आटा कहाँसे मँगाया? क्या सूझी तुझे?'

पुत्रवधू बोली—'पिताजी! आपके अन्न-क्षेत्रमें इसी आटेकी रोटी भूखोंको दी जाती है। परलोकमें तो वही मिलता है जो यहाँ दिया जाता है। वहाँ केवल इसी आटेकी रोटीपर आपको रहना है। इसलिये मैंने सोचा कि अभीसे इसे खानेका अभ्यास आपको हो जाय धीरे-धीरे तो वहाँ कष्ट कम होगा।'

कहना नहीं होगा कि अन्न-क्षेत्रका सड़ा आटा उसी दिन फेंकवा दिया गया और वहाँ अच्छे आटेका प्रबन्ध हुआ।—सु० सिं०

स्वयं पालन करनेवाला ही उपदेश देनेका अधिकारी है

एक ब्राह्मणने अपने आठ वर्षके पुत्रको एक महात्माके पास ले जाकर उनसे कहा—'महाराजजी! यह लड़का रोज बहुत पैसेका गुड़ खा जाता है और न दें तो लड़ाई-झगड़ा करता है। इसका आप कोई उपाय बताइये।' महात्माने कहा—'एक पखवाड़ेके बाद इसको मेरे पास लाना, तब उपाय बताऊँगा।' ब्राह्मण पंद्रह दिनोंके बाद बालकको लेकर फिर महात्माके पास पहुँचा। महात्माने बच्चेका हाथ पकड़कर बड़े मीठे शब्दोंमें कहा—'बेटा!

देख, अब कभी गुड़ न खाना भला, और लड़ना भी मत !' इसके बाद उसकी पीठपर थपकी देकर तथा बड़े प्यारसे उसके साथ बातचीत करके महात्माने उनको विदा किया । उसी दिनसे बालकने गुड़ खाना और लड़ना बिल्कुल छोड़ दिया ।

कुछ दिनोंके बाद ब्राह्मणने महात्माके पास जाकर इसकी सूचना दी और बड़े आग्रहसे पूछा—'महाराज-जी ! आपके एक बारके उपदेशने इतना जादूका काम किया कि कुछ कहा नहीं जाता; फिर आपने उसी दिन उपदेश न देकर पंद्रह दिनोंके बाद क्यों बुलाया ! महाराजजी ! आप उचित समझें तो इसका रहस्य बताने-की कृपा करें ।' महात्माने हँसकर कहा—'भाई ! जो मनुष्य स्वयं संयम-नियमका पालन नहीं करता, वह दूसरोंको संयम-नियमके उपदेश देनेका अधिकार नहीं रखता । उसके उपदेशमें बल ही नहीं रहता । मैं इस बच्चेकी तरह गुड़के लिये रोता और लड़ता तो नहीं था, परंतु मैं भोजनके साथ प्रतिदिन गुड़ खाया करता था । इस आदतके छोड़ देनेपर मनमें कितनी खटपट होती है, इस बातकी मैंने स्वयं एक पखवाड़ेतक परीक्षा की और जब मेरा गुड़ न खानेका अभ्यास दृढ़ हो गया, तब मैंने यह समझा कि अब मैं दूसरोंको उपदेश करने तथा दृढ़तापूर्वक तुम्हारे लड़केको गुड़ न खानेके लिये कहने-का अधिकारी हो गया हूँ ।'

महात्माकी बात सुनकर ब्राह्मण लज्जित हो गया और उसने भी उस दिनसे गुड़ खाना छोड़ दिया । दृढ़ता, त्याग, संयम और तदनुकूल आचरण—ये चारों जहाँ एकत्र होते हैं, वहीं सफलता होती है ।

पुरुष या स्त्री ?

एक साधु नगरसे बाहर कुटियामें रहते थे । परंतु भिक्षा माँगने तो उन्हें नगरमें आना ही पड़ता था । मार्गमें एक वेश्याका घर पड़ता था । वेश्या उन्हें अपनी ओर आकर्षित करनेका प्रयत्न करके हार चुकी थी । इससे प्रायः वह प्रतिदिन उनसे पूछती—'तुम पुरुष हो या स्त्री ?'

साधु उत्तर दे देते—'एक दिन इसका उत्तर दूँगा ।'

वेश्याने इसका कुछ और अर्थ समझ लिया था । वह प्रतिदिन उनके नगरमे आनेका मार्ग देखती रहती थी । सदा उसे यही उत्तर मिलता था । सहसा एक दिन एक व्यक्तिने आकर समाचार दिया वेश्याको—'महात्माजी तुम्हें कुटियापर बुला रहे हैं ।'

वेश्या वहाँ पहुँची । साधु बीमार थे, भूमिपर पड़े थे और अब उनके जीवनके कुछ क्षण ही शेष थे । उन्होंने वेश्यासे कहा—'मैंने तुम्हें तुम्हारे प्रश्नका उत्तर देनेका वचन दिया था, वह उत्तर आज दे रहा हूँ—मैं पुरुष हूँ ।'

वेश्या बोली—'यह उत्तर तो आप कभी दे सकते थे ।'

साधुने कहा—'केवल पुरुषका शरीर मिलनेसे कोई पुरुष नहीं हो जाता । जो संसारके विषयोंमें आसक्त है, वह मायाके परतन्त्र है । परतन्त्र और मायाके अधीन है तो स्त्री ही है । पुरुष एक ही है—परमात्मा । उससे एकात्मता प्राप्त करनेपर ही पुरुषत्व प्राप्त होता है । जीवन जबतक है, कोई नहीं कह सकता कि कब माया उसे नचा लेगी । परंतु अब मैं जा रहा हूँ । अब मैं यह कह सकता हूँ कि माया मेरा कुछ नहीं कर सकी । अब मैं समझता हूँ कि मैं पुरुष हूँ ।'—सु० सिं०

मेरा भी अनुकरण करनेवाले हैं

एक बहिरा मनुष्य नियमपूर्वक कथा सुनने आया करता था। जब कथावाचकोंने देखा कि वह बहिरा है और कथाका एक शब्द नहीं सुन पाता, तब उन्होंने उसके कानके पास मुख ले जाकर पुकारकर पूछा—'आपको तो कथा सुनायी पड़ती नहीं, फिर आप प्रतिदिन यहाँ क्यों आते हैं?'

बहिरा मनुष्य बोला—'यहाँ भगवान्‌की कथा होती है। मैं उसे सुन पाऊँ या नहीं, अन्यत्र बैठनेसे यहाँके पवित्र वातावरणमें बैठनेका लाभ तो मुझे होता ही है। परंतु मुख्य बात तो यह है कि मेरा भी अनुकरण करनेवाले कुछ लोग हैं। मेरे बच्चे और सेवक, मेरे घरके दूसरे सदस्य मेरे आचरणसे ही प्रेरणा प्राप्त करते हैं। मैं कथामें इसीलिये नियमपूर्वक आता हूँ कि इससे उनके चित्तमें भगवत्कथाके प्रति रुचि, श्रद्धा, महत्त्वबुद्धि तथा उत्कण्ठा हो। तथा मैं आकर बैठता हूँ, इससे कथाके शब्दोंसे मेरे अङ्गोंका स्पर्श तो होता ही है।'—सु० सिं०

ईश्वर श्रद्धासे जाना जाता है

एक ब्राह्मणके दो पुत्र थे। दोनोंके विधिपूर्वक यज्ञोपवीतादि सभी संस्कार हुए थे। उनमें ब्राह्मणका बड़ा पुत्र तो यज्ञोपवीत संस्कारके पश्चात् गायत्रीजपमें लग गया। उसने अध्ययन बहुत कम किया; क्योंकि पिताकी मृत्युके पश्चात् घरका भार उसीपर आ पड़ा। परंतु ब्राह्मणका छोटा पुत्र प्रतिभाशाली था। वह अध्ययनके लिये काशी गया और वहाँ उसने कई वर्षतक अध्ययन किया। वेदोंका वेदाङ्गके साथ अध्ययन करके वह एक प्रतिष्ठित विद्वान् बन गया।

काशीमें एक बाहरके विद्वान् पधारे। काशीनरेशके सम्मुख काशीके विद्वानोंसे उनका शास्त्रार्थ हुआ। वह ब्राह्मणकुमार भी उस शास्त्रार्थमें था। बाहरसे आया विद्वान् नाना तर्कोंसे प्रमाणित कर रहा था—'ईश्वर नामकी कोई सत्ता नहीं है।' काशीके विद्वानोंको उसका खण्डन करके ईश्वरकी सत्ता सिद्ध करना था। उस बाहरके विद्वान्‌से सर्वप्रथम शास्त्रार्थ ब्राह्मणकुमारको ही करना पड़ा, जिसमें ब्राह्मणकुमार हार गया। दुःखी होकर तथा पराजयके अपमानसे लज्जित होकर वह उस सभासे तुरंत उठ गया और काशी छोड़कर घर लौट आया।

बड़े भाईने छोटे भाईको उदास देखकर पूछा—'तुम इतने दुखी क्यों हो?'

छोटे भाईने अपने पराजयकी बात बतलायी। बड़े भाई बोले—'इसमें दुखी होनेकी क्या बात है। जिसमें प्रतिभा अधिक है, वह कम प्रतिभावालेको अपने तर्कसे पराजित कर ही सकता है। परंतु जैसे कोई किसीको अखाड़ेमें पटक दे, इसीलिये पटकनेवालेकी बात सत्य नहीं मानी जाती, वैसे ही तर्कके द्वारा सत्यका निर्णय नहीं होता।'

छोटा भाई रोकर बोला—'भैया! मुझे पराजयका इतना दुःख नहीं है। मुझे दुःख तो इस बातका है कि स्वयं मुझे ईश्वरकी सत्तामें संदेह हो गया है। मैंने वेद, शास्त्र, पुराण आदि सब पढ़े हैं; किंतु मेरे मनका संतोष नहीं हो रहा है।'

बड़े भाईने छोटे भाईको झिड़क दिया—'सब शास्त्र-पुराण पढ़कर भी तू मूर्ख ही रहा। जो सत्य है, वह न तर्कसे जाना जाता और न पोथे पढ़नेसे। वह तो सत्य है, इसलिये उसे प्रत्यक्ष उपलब्ध किया जा सकता है। उसपर तथा उसे पानेके साधनपर श्रद्धा करके लग जानेसे

वह उपलब्ध हो जाता है । यज्ञोपवीत संस्कारके समय आचार्यने गायत्रीके सम्बन्धमें जो कुछ कहा था, उसे तू भूल गया ? गायत्रीका जप क्यों नहीं करता ?'

छोटे भाईने बड़े भाईके चरण पकड़ लिये—'मेरे गुरु आप ही हैं । मैं अब जप ही करूँगा ।'

श्रद्धाके साथ संयमपूर्वक साधन करनेका और जहाँ ये दोनों हैं, साध्य अनुपलब्ध कैसे रह सकता है !

—सु॰ सिं॰

वेषसे साधु साधु नहीं, गुणोंसे साधु साधु है

एक साधु प्रातःकाल शौचादिसे निवृत्त होकर नदी-किनारे एक धोबीके कपड़े धोनेके पत्थरपर खड़े-खड़े ध्यान करने लगे । इतनेमें धोबी गधेपर कपड़े लादे वहाँ आया । उसने कपड़े उतारे और प्रतीक्षा करने लगा कि उसके पत्थरसे साधु हटें तो वह अपना काम प्रारम्भ करे । कुछ देर प्रतीक्षा करनेपर भी जब साधु हटे नहीं तब उसने प्रार्थना की—'महात्माजी ! आप पत्थरसे उतरकर किनारे खड़े हों तो मैं अपने काममें लगूँ । मुझे देर हो रही है ।'

साधुने धोबीकी बातपर कोई ध्यान नहीं दिया । धोबी कुछ देर और रुका रहा, उसने फिर प्रार्थना की और अन्तमें उकताहटके कारण उसने धीरेसे साधुका हाथ पकड़कर उन्हें पत्थरसे उतारनेकी चेष्टा की । एक धोबीके हाथ पकड़नेसे साधुको अपना अपमान जान पड़ा । उन्होंने उसे धक्का दे दिया ।

धोबीकी श्रद्धा साधुका क्रोध देखकर समाप्त हो गयी । उसने भी साधुको धक्का देकर पत्थरसे हटा दिया । अब तो साधु महाराज भिड़ गये धोबीसे । दोनोंमें गुत्थमगुत्था होने लगी । धोबी था बलवान् । उसने साधुको उठाकर पटक दिया और उनके ऊपर चढ़ बैठा ।

नीचे दबे साधु प्रार्थना करने लगे—'मेरे आराध्यदेव ! मैं इतनी श्रद्धा-भक्तिसे आपकी पूजा-आराधना तथा ध्यान करता हूँ, फिर भी आप मुझे इस धोबीसे छुड़ाते क्यों नहीं ?'

साधुने उसी समय आकाशवाणी सुनी—'तुम्हारी बात ठीक है, हम छुड़ाना भी चाहते हैं; किंतु यही समझमें नहीं आता कि तुम दोनोंमें साधु कौन है और धोबी कौन है ।'

इस आकाशवाणीको सुनकर साधुका गर्व नष्ट हो गया । धोबीसे उन्होंने क्षमा माँगी और उसी दिनसे सत्य, क्षमा, दया आदि साधुताके गुणोंको अपनाकर वे सच्चे साधु बन गये । —सु॰ सिं॰

मैं किसीका कल्याण करूँ और उसे जान भी न पाऊँ

एक साधु थे । उनका जीवन इतना पवित्र तथा सदाचारपूर्ण था कि दिव्य आत्माएँ तथा देवदूत उनके दर्शनके लिये प्रायः आते रहते थे । साधु मुँहसे तो अधिक मोहक शब्दोंका प्रयोग नहीं करते थे, किंतु उनके कर्तव्य और उनकी सारी चेष्टाएँ पर-कल्याणके लिये ही होती थीं ।

एक दिन एक देवदूतने उनके सम्बन्धमें भगवान्से प्रार्थना की, 'प्रभो ! इसे कोई चमत्कारपूर्ण सिद्धि दी जाय ।'

भगवान्ने कहा, 'ठीक तो है, तुम जैसा चाहो वैसा ही होगा । पूछो, इसे मैं कौन-सी चमत्कारी शक्ति प्रदान करूँ ?'

देवदूतने साधुसे कहा—'क्या तुम्हें रोगियोंको रोगमुक्त करनेकी शक्ति दे दी जाय ?'

साधुने इसे अस्वीकार कर दिया और इसी प्रकार वे देवदूतके सभी अन्य प्रस्तावोंको भी अस्वीकार करते गये ।

'[illegible] है कि तुम्हें कोई [illegible] सिद्धि दी ही जाय।' देवदूतने कहा।

[illegible] कहा कि मैं जिसके पाससे गुजरूँ, [illegible], उसको बिना पता लगे ही उसका परम श्रेय—कल्याण हो जाय, साथ ही मैं भी इसे न जान पाऊँ कि मुझसे किसका कब कल्याण हुआ।'

देवदूतने उसकी छायामें ही यह अद्भुत शक्ति दिला दी। वह जिस दुखी या रोगग्रस्त चर, अचर प्राणियोंपर पड़ जाती, उसके सारे त्रयताप नष्ट हो जाते और वह परम सुखी हो जाता। पर न तो कोई उसे धन्यवाद दे पाता और न समझ ही पाता कि उसका यह कल्याण कैसे हो गया, यह श्रेय उसे कैसे मिला!

—जा॰ श॰

अनन्य निष्ठा

एक भक्तहृदय कहीं यात्रा करने निकले थे। रास्तेमें एक गुफाके सम्मुख उन्होंने बहुत बड़ी भीड़ देखी। पता लगा कि गुफामें ऐसे संत रहते हैं जो वर्षमें केवल एक दिन बाहर निकलते हैं। वे जिसे स्पर्श कर देते हैं, उसके सब रोग दूर हो जाते हैं। आज उनके बाहर निकलनेका दिन है। रोगियोंकी भीड़ यहाँ रोगमुक्त होनेकी आशामें एकत्र है।

भक्तहृदय वहीं रुक गये। निश्चित समयपर संत गुफासे निकले। क्रमशः उन्होंने जिसका स्पर्श किया, वह तत्काल रोगमुक्त हो गया। जब सब रोगी लौट रहे थे स्वस्थ होकर तब भक्तने संतकी चद्दरका कोना पकड़ लिया और बोले—'आपने औरोंके शारीरिक रोगोंको दूर किया है, मेरे मनके रोगोंको भी दूर कीजिये।'

संत जैसे हड़बड़ा उठे और कहने लगे—'छोड़ जल्दी मुझे। परमात्मा देख रहा है कि तूने उसका पल्ला छोड़कर दूसरेका पल्ला पकड़ा है।'

अपनी चद्दर छुड़ाकर वे शीघ्रतासे गुफामें चले गये।

सच्चा साधु—भिखारी

एक साधुने ईश्वरप्राप्तिकी साधनाके लिये कठिन तप करते हुए ७० वर्ष एकान्त गुफामें बिताये और प्रभुसे प्रार्थना की कि 'प्रभो! मुझे अपने आदर्शके समान ही ऐसा कोई उत्तम महापुरुष बतलाइये, जिसका अनुकरण करके मैं अपने साधनपथमें आगे बढ़ सकूँ।'

साधुने जिस दिन ऐसा चिन्तन किया, उसी दिन स्वर्गसे एक देवदूतने आकर उससे कहा—'यदि तेरी इच्छा सद्गुण और पवित्रतामें सबका मुकुटमणि बननेकी हो तो उस सच्चे भिखारीका अनुकरण कर जो कविता गाता हुआ इधर-उधर भटकता और भीख माँगता फिरता है।' देवदूतकी बात सुनकर तपस्वी साधु मनमें जल उठा, परंतु देवदूतका वचन समझकर क्रोधके आवेशमें ही उस भिखारीकी खोजमें चल दिया और उसे खोजकर बोला कि 'भाई! तूने ऐसे कौन-से सत्कर्म किये हैं, जिनके कारण ईश्वर तुझपर इतने अधिक प्रसन्न हैं!'

उसने तपस्वी साधुको नमस्कार करके कहा—'पवित्र महात्मा! मुझसे दिल्लगी न कीजिये। मैंने न तो कोई सत्कर्म किया, न कोई तपस्या की और न कभी प्रार्थना ही की। मैं तो कविता गा-गाकर लोगोंका मनोरञ्जन करता हूँ और ऐसा करते जो रूखा-सूखा टुकड़ा मिल जाता है, उसीको खाकर संतोष मानता हूँ।' तपस्वी साधुने फिर आग्रहपूर्वक कहा—'नहीं, नहीं, तूने कोई सत्कार्य अवश्य किया है।' भिखारीने नम्रतासे कहा, 'महाराज! मैंने कोई सत्कार्य किया हो, ऐसा मेरी जानमें तो नहीं है।'

इसपर साधुने उससे फिर पूछा, 'अच्छा बता, तू भिखारी कैसे बना ? क्या तूने फिजूलखर्चीमें पैसे उड़ा दिये, अथवा किसी दुर्व्यसनके कारण तेरी ऐसी हालत हो गयी ।'

भिखारी कहने लगा—'महाराज ! न मैंने फिजूल-खर्चीमें पैसे उड़ाये और न किसी व्यसनके कारण ही मैं भिखारी बना । एक दिनकी बात है, मैंने देखा एक गरीब स्त्री घबरायी हुई-सी इधर-उधर दौड़ रही है, उसका चेहरा उतरा हुआ है । पता लगानेपर मालूम हुआ कि उसके पति और पुत्र कर्जके बदलेमें गुलाम बनाकर बेच दिये गये हैं । बहुत खूबसूरत होनेके कारण कुछ लोग उसपर भी अपना कब्जा करना चाहते हैं । यह जानकर मैं उसे ढाढ़स देकर अपने घर ले आया और उसकी उनके अत्याचारसे रक्षा की । फिर मैंने अपनी सारी सम्पत्ति साहूकारोंको देकर उसके पति-पुत्रोंको गुलामीसे छुड़ाया और उनको उसके [illegible] दिया । इस प्रकार मेरी सारी सम्पत्ति चली जानेसे मैं दरिद्र हो गया और आजीविकाका कोई साधन न रहनेसे मैं अब गा-गाकर लोगोंको रिझाता हूँ और इससे जो कुछ मिल जाता है उसीको लेकर आनन्द मनाता हूँ । पर इससे क्या हुआ ! ऐसा काम क्या और लोग नहीं करते ?'

भिखारीकी कथा सुनते ही तपस्वी साधुकी आँखोंसे मोती-जैसे आँसू झरने लगे और वह उस भिखारीको हृदयसे लगाकर कहने लगा—'मैंने अपनी जिंदगीमें तेरे-जैसा कोई काम नहीं किया । तू सचमुच [illegible] साधु है ।'

भगवान्पर मनुष्य-जितना भी विश्वास नहीं ?

एक भजनानन्दी साधु घूमते हुए आये और एक मन्दिरमें ठहर गये । मन्दिरके पुजारीने उनसे कहा—'आप यहाँ जितने भी दिन रुकना चाहें, प्रसन्नतापूर्वक रहें; किंतु यहाँ भोजनकी कोई व्यवस्था नहीं है । भोजनकी कोई व्यवस्था आप कर लें ।'

साधु बोले—'तुम्हारे पड़ोसीने कहा है कि मुझे दो रोटियाँ प्रतिदिन वह दे दिया करेगा ।'

पुजारी—'तब ठीक है । तब तो आप निश्चिन्त रहें, वह सच्चा आदमी है ।'

साधुने यह सुनकर आसन उठाया—'भाई ! यह स्थान मेरे रहनेयोग्य नहीं है और न तुम देवसेवा करने-योग्य हो । भगवान् विश्वम्भर हैं, अपने जनोंके भरण-पोषणकी उन्होंने प्रतिज्ञा कर रखी है; किंतु उन सर्व-समर्थ भगवान्पर तो तुम्हें मनुष्य-जितना भी विश्वास नहीं ।'

—सु० सि०

सच्ची श्रद्धा

नगरका नाम और ठीक समय स्मरण नहीं है । वर्षा-ऋतु बीती जा रही थी; किंतु वर्षा नहीं हुई थी । किसानोंके खेत सूखे पड़े थे । चारेके अभावमें पशु मरणासन्न हो रहे थे । जब कोई मानव-प्रयत्न सफल नहीं होता, तब मनुष्य उस त्रिभुवनके स्वामीकी ओर देखता है । गाँवके सब लोग गिरजाघरमें एकत्र हुए वर्षाके लिये प्रार्थना करने । एक छोटा बालक भी आया था, किंतु वह आया था अपना छोटा-सा छाता लेकर । किसीने उससे पूछा—'तुमने क्या [illegible] है कि छाता लाया है ?'

बालक बोला—'वर्षा होगी तो [illegible] पड़ेगा, इसलिये मैं छाता लाया हूँ कि भीगना न पड़े ।'

प्रार्थना की जाती और वर्षा नहीं होती, [illegible] ही उस [illegible] इतना सरल विश्वास है, [illegible]

सच्ची श्रद्धा

हककी रोटी

कामना कष्टदायिनी

सच्चा भाव

आतिथ्यधर्म

भारतवासियोंके समान ही अरब भी अतिथिका सम्मान करनेमें अपना गौरव मानते हैं। अतिथिका स्वागत-सत्कार वहाँ कर्तव्य समझा जाता है।

अरबलोगोंकी शूरता प्रसिद्ध है और अपने शत्रुको तो वे क्षमा करना जानते ही नहीं। एक व्यक्तिने एक अरबके पुत्रको मार दिया था। वह अरब अपने पुत्र-घातीके खूनका प्यासा हो रहा था और सदा उसकी खोजमें रहता था। संयोग ऐसा बना कि वही व्यक्ति किसी यात्रामें निकला। मार्गमें ही उसे लू लग गयी। ज्वरकी पीड़ासे व्याकुल किसी प्रकार गिरता-पड़ता वह जो सबसे पास तम्बू मिला, वहाँतक पहुँचा। तम्बूके दरवाजेतक पहुँचते-पहुँचते तो वह गिर पड़ा और बेहोश हो गया।

तम्बूके मालिकने अपने दरवाजेपर गिरे बेहोश अतिथिको उठाकर भीतर लिटा लिया। [illegible] उसकी सेवा-में लग गया। रात-दिन जागकर [illegible] प्रकार उसने बीमारकी सेवा की। रोगीकी मूर्छा दूर हुई, [illegible] स्वस्थ होनेमें कई दिन लगे। उस तम्बूके [illegible] उसकी सेवा-सत्कारमें कहीं कोई कमी नहीं होने दी।

रोगी जब स्वस्थ हो गया, [illegible] इस योग्य हो गया कि लम्बी यात्रा कर सके, तब उस अरबने कहा—'तुम मेरा सबसे बलवान् ऊँट [illegible] जितनी शीघ्रतासे जा सको, यहाँसे दूर [illegible]। मेरा आतिथ्य-सत्कार पूरा हो गया। [illegible] कर्तव्य ठीक पूरा किया है। परंतु तुमने [illegible] हत्या की है, तुमसे पुत्रका बदला लेना [illegible] कर्तव्य है। मैं ठीक दो घंटे बाद अपने दूसरे [illegible] पालनके लिये तुम्हारा पीछा करनेवाला हूँ।'

अस्तेय

साधु इब्राहीम आदम घूमते-घामते किसी धनवान्के बगीचेमें जा पहुँचे। उस धनी व्यक्तिने उन्हें कोई साधारण मजदूर समझकर कहा—'तुझे यदि कुछ काम चाहिये तो बगीचेके मालीका काम कर। मुझे एक मालीकी आवश्यकता है।'

इब्राहीमको एकान्त बगीचा भजनके उपयुक्त जान पड़ा। उन्होंने उस व्यक्तिकी बात स्वीकार कर ली। बगीचेका काम करते हुए उन्हें कुछ दिन बीत गये। एक दिन बगीचेका स्वामी कुछ मित्रोंके साथ अपने बगीचेमें आया। उसने इब्राहीमको कुछ आम लानेकी आज्ञा दी। इब्राहीम कुछ पके आम तोड़कर ले आये; किंतु वे सभी खट्टे निकले। [illegible] असंतुष्ट होकर कहा—'तुझे इतने दिन यहाँ [illegible] गये और यह भी पता नहीं कि किस वृक्षके [illegible] हैं तथा किसके मीठे!'

साधु इब्राहीमने तनिक हँसकर कहा—[illegible] बगीचेकी रक्षाके लिये नियुक्त किया है। [illegible] अधिकार तो दिया नहीं है। [illegible] मैं आपके बगीचेका फल कैसे [illegible] बिना खट्टे-मीठेका पता कैसे [illegible]!'

वह व्यक्ति तो [illegible] रह गया।

कामना कष्टदायिनी

[illegible] जा रहे थे। [illegible] भूखे थे और [illegible] थे। इब्राहीमकी [illegible] हुई। उन्होंने एक फल [illegible] पास [illegible] थीं; किंतु [illegible] था। इब्राहीमने उसे [illegible]—'इब्राहीम अच्छे आये।'

[illegible] इब्राहीमको [illegible]। [illegible] पूछा—'आप मुझे कैसे पहचानते हैं?'

पुरुष—'एक भगवत्प्राप्त व्यक्तिसे कुछ छिपा नहीं रहता।'

इब्राहीम—'आपको भगवत्प्राप्ति हुई है तो भगवान्से प्रार्थना क्यों नहीं करते कि इन मक्खियोंको आपसे दूर कर दे।'

पुरुष—'इब्राहीम! तुम्हें भी तो भगवत्प्राप्ति हुई है। तुम क्यों प्रार्थना नहीं करते कि तुम्हारे मनमें अनार खानेकी कामना न हो। मक्खियाँ तो शरीरको ही कष्ट देती हैं; किंतु कामनाएँ तो हृदयको पीड़ित करती हैं।'

सच्चा भाव

एक दिन [illegible] पर्वतकी चोटीपर बैठा प्रार्थना कर रहा था—'ऐ खुदा! यदि तू इधर पधारे, यदि तू मेरे [illegible] तो मैं तेरी सेवा करूँगा। मैं तेरे [illegible], तेरे सिरके बालोंसे जुएँ निकालूँगा, तेरे [illegible] मालिश करके तुझे स्नान कराऊँगा। मैं अपने [illegible] न्योछावर कर दूँगा। [illegible]। तू सोना चाहेगा तो [illegible]। तू बीमार पड़ेगा तो तेरी [illegible]। मेरे पास आ, मेरे अच्छे खुदा! मैं तेरा [illegible]।'

हजरत मूसा उधरसे कहीं जा रहे थे। उन्होंने उस गड़रियेसे पूछा—'ओ मूर्ख! तू किससे बातें कर रहा है? किस [illegible] सेवा करना चाहता है?'

गड़रियेने कहा—'मैं खुदासे बातें कर रहा था और उन्हींकी सेवा करना चाहता हूँ।'

मूसाने उसे डाँटा—'अरे बेवकूफ! तू तो गुनाह कर रहा है। खुदाके कहीं बाल हैं और वह सर्वशक्तिमान् कहीं बीमार पड़ता है! वह तो अशरीरी, अजन्मा, सर्वव्यापक है। उसे मनुष्योंके समान सेवा-चाकरीकी क्या आवश्यकता? ऐसी बेवकूफी फिर मत करना।'

बेचारा गड़रिया चुप हो गया। मूसा-जैसे तेजस्वी फकीरसे वह क्षमा माँगनेके अतिरिक्त कर क्या सकता था। परंतु उस दिन मूसा स्वयं जब प्रार्थना करने लगे, आकाशवाणी हुई—'मूसा! मैंने तुम्हें मनुष्योंका चित्त मुझमें लगानेको भेजा है या उन्हें मुझसे दूर करनेको? उस गड़रियेका चित्त मुझमें लगा था, तुमने उसे मना करके अपराध किया है। तुम्हें इतना भी पता नहीं कि सच्चा भाव ही सच्ची उपासना है।'

भगवान्की कृपापर विश्वास

[illegible] ने एक बार व्रत किया। [illegible] उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया। व्रत समाप्त होनेपर उठे और अपनी कुटियासे बाहर आये। वहाँ पृथ्वीपर [illegible]

धनी व्यक्ति—'तब तुमने दोनों रोटियाँ कुत्तेको क्यों दे दीं ?'

रखवाला—'महोदय ! तुम बड़े विचित्र आदमी हो । यहाँ कोई कुत्ता पहिलेसे नहीं था । यह कुत्ता यहाँ पहिले कभी आया नहीं है । यह भूखा कुत्ता यहाँ ठीक उस समय आया, जब रोटियाँ आयीं । मुझे ऐसा लगा कि आज वे रोटियाँ इसीके लिये आयी हैं । जिसकी वस्तु थी, उसे मैंने दे दिया । इसमें मैंने क्या [illegible] एक दिन भूखे रहनेसे मेरी कोई हानि नहीं होगी ।'

उस धनी मनुष्यका मस्तक झुक गया । उसके [illegible] अपनी उदारताका अभिमान था, वह [illegible] हो गया । —सु० सिं०

भगवान्‌का भरोसा

पहले समयकी बात है । एक धनी नवयुवक राजपथपर टहल रहा था । उसने रोने और सिसकनेकी आवाज सुनी और वह एक घरके सामने ठहर गया ।

'पिताजी ! हमलोगोंको कबतक इस तरह भूखों मरना होगा । चलिये न, बाजारमें भीख माँगकर हमलोग जीवनका निर्वाह करें ।' लड़कीने सिसकी भरकर कहा ।

'बेटी ! यह सच है कि हमलोगोंका सारा धन चला गया । हमारे पास एक पैसा भी नहीं रह गया है । दरिद्रताके रूपमें हमारे घरपर भगवान्‌की कृपाका अवतरण हुआ है । भगवान्‌पर भरोसा रखना चाहिये; वे हमारी आवश्यकताएँ पूरी करेंगे ।' पिताने अपनी तीनों लड़कियोंको समझाया ।

बाहर खिड़कीके पास खड़ा होकर धनी नवयुवक उनकी बातें सुन रहा था । वह घर गया । उसके खजानेमें सोनेके तीन बड़े-बड़े छड़ थे । रातमें उसने एक छड़ खिड़कीके रास्तेसे गरीब आदमीके घरमें फेंक दिया । पिता और लड़कियोंने भगवान्‌को धन्यवाद दिया कि उनकी प्रार्थनाएँ सुन ली गयीं । दूसरे दिन रातको उसने दूसरा छड़ छोड़ दिया । तीसरी रातको तीसरा छड़ फेंकनेवाला ही था कि उस अनाथ और गरीब व्यक्तिने देख लिया । वह नवयुवकके चरणपर गिर पड़ा इस अयाचित सहायताके लिये ।

'भाई ! तुम यह क्या कर रहे हो ? मुझे ये छड़ भगवान्‌की कृपासे ही मिले हैं । भगवान्‌को ही धन्यवाद देना चाहिये । यदि मुझे तुम्हारे द्वारा उन्होंने पहली रातको न भेजा होता तो मैं इसे किस तरह प्रदान करता ।' (सन्त) निकोलसने गरीब [illegible] प्रेमालिङ्गन किया । निकोलसके [illegible] भगवान्‌पर उनका विश्वास उत्तरोत्तर दृढ होता गया ।—[illegible]

विश्वासका फल

एक सच्चा भक्त था, पर था बहुत ही सीधा । उसे छल-कपटका पता नहीं था । वह हृदयसे चाहता था कि मुझे शीघ्र भगवान्‌के दर्शन हों । दर्शनके लिये वह दिन-रात छटपटाता रहता और जो मिलता, उसीसे उपाय पूछता । एक ठगको उसकी इस स्थितिका पता लग गया । वह साधुका वेष बनाकर आया और उससे बोला—'मैं तुम्हें आज ही भगवान्‌के दर्शन कराऊँगा । तुम अपना सारा सामान बेचकर मेरे साथ [illegible] चलो ।' भक्त निष्कपट, सरल हृदयका था और दर्शनकी चाहसे व्याकुल था । उसको बड़ी खुशी हुई और [illegible] उसी समय जो कुछ भी उसके पास था, [illegible] सारा सामान बेच दिया और [illegible]

नीच गुरु

एक सुन्दरी बालविधवाके घरपर उसका गुरु आया। विधवा देवीने श्रद्धा-भक्तिके साथ गुरुको भोजनादि कराया। तदनन्तर वह उसके सामने धर्मोपदेश पानेके लिये बैठ गयी। गुरुके मनमें उसके रूप-यौवनको देखकर पाप आ गया और उसने उसको अपने कपटजालमें फँसानेके लिये भाँति-भाँतिकी युक्तियोंसे आत्मनिवेदनका महत्त्व बतलाकर यह समझाना चाहा कि जब वह उसकी शिष्या है तो आत्मनिवेदन करके अपनी देहके द्वारा उसे गुरुकी सेवा करनी चाहिये। गुरु खूब पढ़ा-लिखा था, इससे उसने बहुत-से तर्कोंके द्वारा शास्त्रोंके प्रमाण दे-देकर यह सिद्ध किया कि यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो गुरु-कृपा नहीं होगी और गुरु-कृपा न होनेसे नरकोंकी प्राप्ति होगी।

विधवा देवी बड़ी बुद्धिमती, विचारशीला और अपने सतीधर्मकी रक्षामें तत्पर थी। वह गुरुके नीच अभिप्रायको समझ गयी। उसने बड़ी नम्रताके साथ कहा—'गुरुजी! आपकी कृपासे मैं इतना तो जान गयी हूँ कि गुरुकी सेवा करना शिष्याका परम धर्म है, परंतु भाग्यहीनताके कारण मुझे सेवाका कोई अनुभव नहीं है। इसीसे मैं सच्चिदानन्द गुरुके चरणकमलोंको हृदयमें विराजित करके अपने चक्षु-कर्णादि इन्द्रियोंसे उनकी सेवा करती हूँ। आँखोंसे उनके स्वरूपके दर्शन, कानोंसे उनके उपदेशामृतका पान आदि करती हूँ। सिर्फ दो नीच इन्द्रियोंको, जिनसे मल-मूत्र बहा करता है, मैंने सेवामें नहीं लगाया; क्योंकि गुरुकी सेवामें उन्हीं चीजोंको लगाना चाहिये जो पवित्र हों। मल-मूत्रके गड्ढेमें मैं गुरुको कैसे बिठाऊँ। इसीसे उन गंदे अङ्गोंको कपड़ोंसे ढके रखती हूँ कि कहीं पवित्र गुरु-सेवामें बाधा न आ जाय। इतनेपर भी यदि गुरु-कृपा न हो तो क्या उपाय है। पर सच्चे गुरु ऐसा क्यों करने लगे? जो गुरु मल-मूत्रकी चाह करते हैं, जो गुरु भक्तिरूपी सुधा पाकर भी मूत्रागारकी ओर ललचायी आँखोंसे देखते हैं, जो गुरु शिष्याके हृदयकी ओर दयादृष्टिसे न देखकर नरकके मुख्यद्वार—नरक बहानेवाली दुर्गन्धयुक्त नालियोंकी ओर ताकते हैं, ऐसे गुरुके प्रति आत्मनिवेदन न करके उसके मुँहपर तो कालिख ही पोतनी चाहिये और जूतोंसे उसका सत्कार करना चाहिये।' गुरुजी चुपचाप चल दिये!

रूप नादमें देख लो

किसी गाँवमें एक गरीब विधवा ब्राह्मणी रहती थी। तरुणी थी। सुन्दर रूप था। घरमें और कोई न था। गाँवका जमींदार दुराचारी था। उसने ब्राह्मणीके रूपकी तारीफ सुनी। वह उसके घर आया। ब्राह्मणी तो उसे देखते ही काँप गयी। उसी समय भगवान्‌की कृपासे उसे एक युक्ति सूझी। उसने दूर हटते हुए हँसकर कहा—'सरकार! मुझे छूना नहीं। मैं मासिक धर्मसे हूँ। चार दिन बाद आप पधारियेगा।' जमींदार संतुष्ट होकर लौट गया।

ब्राह्मणीने जमालगोटा मँगवाया और उसे खा लिया। उसे दस्त होने लगे दिन-रातमें सैकड़ों बार। उसने मकानके चौकमें एक मिट्टीका नाद रख ली और वह उसीमें टट्टी फिरने लगी। सैकड़ों दस्त होनेसे उसका शरीर घुल गया। आँखें धँस गयीं। सुन्दर [illegible] गयी। बदन काला पड़ गया। शरीर काँपने लगा, उठने-बैठनेकी ताकत नहीं रही, देह सूख गयी। उसका सारा रूपान्तर हो गया और वह [illegible]

चार दिन बाद जमींदार आया। [illegible] ब्राह्मणीका पता पूछा। [illegible]

सतीत्वकी रक्षा

(लेखक—श्रीब्रह्मानन्दजी 'बन्धु')

गत महासमरमें बर्मापर जापानका अधिकार हो चुका था और ब्रिटिश-सेना फिरसे उसपर आधिपत्य जमा रही थी। सेनाके सिपाही बहुधा मदान्ध होते हैं, ऐसा ही एक गढ़वाली सैनिक (जिसने स्वयं मुझे यह घटना नितान्त श्रद्धापूर्वक अपने मुँहसे सुनायी थी एवं जिसका नाम मैं यहाँ प्रकट करना अनुचित समझता हूँ) एक अन्धकारमयी रजनीमें एक अन्य बूढ़े सिपाहीको साथ लेकर विजित प्रान्तान्तर्गत समीपके एक ग्राममें अपनी कामलिप्सा शान्त करने घुसा।

दोनों सैनिक राइफलोंसे लैस थे। गाँवमें घुसकर उन्होंने देखा कि एक छोटा-सा मकान है, जिसके आगे एक वृद्ध बैठा हुआ है, मकानकी देहलीपर एक नवयुवती सुन्दर महिला बैठी है, जो कि सिगार पी रही थी, मदान्ध सैनिकने इसी बहिनके साथ अपना मुँह काला करनेका निश्चय किया।

दोनों सैनिक मकानके द्वारपर जा पहुँचे और ज्यों ही नवयुवक सिपाही कमरेमें प्रविष्ट होना ही चाहता था कि वह बहिन वीरतापूर्वक उठी और लोहेका एक हथियार, जिसे 'दाव' बोलते हैं तथा जिससे ऊँटवाले वृक्ष काटा करते हैं, उठाकर कामान्ध सैनिकपर आक्रमण करनेके लिये उद्यत हो गयी। सिपाहीको ऐसा प्रतीत हुआ कि ज्यों ही वह मकानके द्वारकी देहलीपर पैर रक्खेगा, त्यों ही उसका सिर धड़से अलग होकर भूमिपर नाचनेके लिये अवश्य बाधित होगा! अतएव वह ठिठक गया और एक कदम पीछे हट गया।

उसने दस रुपयेका एक नोट अपनी जेबसे निकाला और उस बहिनको दिखलाया; किंतु उत्तरमें वही शब्द फिर उसकी ओर दोनों [illegible] पकड़ा हुआ घूमता हुआ [illegible] नष्ट हो गया।

पीछे खड़ा हुआ दूसरा बूढ़ा सिपाही [illegible] लेता हुआ कड़ककर बोला, ... [illegible] क्या है? राइफल तो तेरे पास है। [illegible] फिर साहस किया और सभी [illegible] बंदूक तानकर उसे भयभीत करना [illegible] प्रत्युत्तरमें वही शब्द फिर [illegible] सैनिक चाहता है, गोली [illegible] उसका सिर धड़से पृथक् कर [illegible] वही दृश्य रहा और [illegible] सम्मुख निर्लज्ज कामको पराजित [illegible] सिपाही अपना-सा मुँह लेकर [illegible]

यह एक अक्षरशः सच्ची घटना है, [illegible] वर्ष हुए, जब मैंने इसे सुना था। [illegible] सदैव प्रेरणा मिलती रहती है [illegible] जाना नहीं चाहता, [illegible] ग्रहण करें।

जिस हृदयमें सतीत्व [illegible] है, उसे बहुरूपा [illegible] विचलित नहीं कर सकते। [illegible] वृत्ति होनी ही [illegible]।

मैं [illegible] चरणोंमें नमस्कार [illegible]।

[illegible]

शास्त्रीजीपर कृपा

एक शास्त्रीजी थे। भक्त थे। वे नावपर गोकुलसे मथुराको चले। साथ कुछ बच्चे और स्त्रियाँ भी थीं। नौका उल्टे प्रवाहकी ओर खींची जा रही थी। इतनेमें ही आकाशमें काली घटा उठी, बादल गरजने लगे और यमुनाजीके तटोंपर मोर शोर मचाने लगे। देखते-ही-देखते जोरसे हवा चलने लगी और घनघोर वर्षा होने लगी। नाव ठहरा दी गयी। मल्लाहोंने कहा—'तुमलोग सामने बरसानेके पुराने श्रीराधाजीके मन्दिरमें धीरे-धीरे पैदल चले आओ। हम नाव लेकर वहीं तैयार रहेंगे।' शास्त्रीजीकी कमरमें चार सौके नोट थे, कुछ रुपये और पैसे थे। उन्होंने रक्षाकी दृष्टिसे कसकर कमर बाँध ली और नावसे उतरकर चलने लगे। मन्दिर वहाँसे एक मीलकी दूरीपर था। नोट भीग न जाय, इसलिये वे मन्दिरकी ओर तेजीसे चलने लगे।

किनारेका रास्ता बीहड़ था। चारों ओर जल भर जानेसे पगडंडियाँ दिखायी नहीं देती थीं। इसलिये बिना ही मार्गके वे पानीमें छप्-छप् करते आगे बढ़े जा रहे थे। मनमें रह-रहकर श्रीकृष्णकी बाललीलाओंकी स्मृति होने लगी। धीरे-धीरे मन तल्लीन हो गया। वे मार्ग भूलकर कहीं-के-कहीं निकल गये। मन्दिरकी बात याद नहीं रही।

सामने एक बड़ा टीला था, वे सहज ही उसपर चढ़ गये। थकान जाती रही। इतनेमें बादलोंकी गड़गड़ाहटके साथ जोरसे बिजली चमकी, उनकी आँखें बंद हो गयीं। वे वहीं रुक गये। कुछ क्षणोंके बाद आँखें खुलनेपर उन्होंने देखा—वर्षा कम हो गयी है और नीचे मैदानमें अत्यन्त सुन्दर तथा हृष्ट-पुष्ट गौएँ हरी घास चर रही हैं। उनके मनमें आया—'इन्हीं गौओंको हमारे प्यारे गोपाल चराया करते थे, वे अब भी यहीं कहीं होंगे।' वे इन्हीं विचारोंमें थे कि हठात् उनके मनमें नीचे उतरनेकी आयी, मानो कोई अज्ञात शक्ति उन्हें प्रेरित कर रही हो।

नीचे उतरते ही उन्होंने देखा—सामने थोड़ी ही दूरपर सात या आठ वर्षका, केवल लगोटी पहने, हाथमे छोटी-सी लकुटी लिये, वर्षाके जलमें स्नान किया हुआ, श्याम-वर्ण, मन्द-मन्द मुसकराता हुआ गोपबालक उनकी ओर देखता हुआ अंगुलीके इशारेसे उन्हे अपनी ओर बुला रहा है। शास्त्रीजीने समझा—कोई गरीब ग्वालेका लड़का है, इसे दो-चार पैसे दे देने चाहिये। परतु पैसा निकालनेमे बड़ी अड़चन थी; क्योंकि पैसे नोट और रुपयोंके साथ ही कमरमे बँधे थे तथा यहाँ एकान्त था। वे कुछ दूर तो बालककी ओर आगे बढ़े, फिर सहसा उनके पैर रुक गये।

वह बालक मुसकराता हुआ बोला—'पण्डितजी! देखो, तुम्हारी रुपयेकी गाँठ पूरी तो है? दो चार पैसे लेनेवाले व्रजमे बहुत मिलेंगे, उन्हें दे देना। मैं तो इन गौओंके दूधसे ही प्रसन्न रहता हूँ।'

बालककी अमृतभरी वाणीसे शास्त्रीजी विमुग्ध हो गये। वे निर्निमेष नेत्रोंसे बालककी ओर देखने लगे। साथ ही उन्हें आश्चर्य हुआ कि बालकको मेरी कमरमें बँधे रुपयोंका तथा मेरे मनकी बातका पता कैसे लग गया। फिर वह बालक बोला—'देखो! वह सामने मन्दिर दिखायी पड़ रहा है, तुम्हारी नाव वहाँ पहुँच गयी है। तुम इधर कहाँ जा रहे हो। मथुराजीकी सड़क यहाँसे दूर है और यह जगह भयानक है। तुम तुरंत यहाँसे चले जाओ।

शास्त्रीजी तो बेसुध-से थे। इतनेमें वह बालक हँसता हुआ मुड़कर जाने लगा। शास्त्रीजी मन्त्र-मुग्धकी तरह उसके पीछे-पीछे चले। पीछे-आगे देख बालकने कहा—'जाओ, जाओ, इधर तुम्हारा क्या काम है? जाओ, अभी घूमो।' इतना कहकर बालक उन गौओंके साथ अन्तर्धान हो गया। शास्त्रीजी होशमें आये। उन्होंने बहुत खोजा, पर बालक और गौओंका पता नहीं लगा। वे हताश होकर मन्दिरपर पहुँचे। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ—मानो किसीने उनका सर्वस्व हरण कर लिया हो।

पुलिस कप्तान साहबकी गणेश-भक्ति

एक पुलिसके सीनियर सुपरिंटेंडेंट अंग्रेज सज्जन थे । एक बार उनपर कोई संकट आया । एक ब्राह्मण चपरासीने उनसे कहा—'सरकार ! गणेशजी सिद्धिदाता और सब संकटोंका नाश करनेवाले हैं । आप गणेशजीकी मूर्ति मँगवाकर उसकी पूजा कीजिये और जब किसी नये कामका आरम्भ करना हो या कहीं जाना हो तो गणेशजीका ध्यान कर लिया कीजिये ।' साहबने वैसा ही किया । [illegible] । फिर तो वे गणेशजीकी एक सुन्दर [illegible] मूर्ति जेबमें ही रखने लगे । जब कहीं जाने [illegible] करते मूर्ति निकालकर हाथ जोड़कर प्रार्थना कर लेते ।

उन्होंने बताया था कि गणेशजीकी कृपासे वे कभी असफल नहीं हुए ।

बाँधकी रक्षा

एक अंग्रेज अफसर एक जगह बाँध बँधवाने आया । जिस दिन बाँधके पूरा होनेमें एक दिन बच रहा था, उसी दिन रातको बड़े जोरसे वर्षा आयी । अफसरने देखा कि बाँध टूट जायगा । अधीर होकर उसने अपने एक हिंदू नौकरसे उपाय पूछा ।

नौकरने कहा—'सरकार ! एक उपाय तो है ।'

अफसरने आतुरतासे पूछा—'बताओ फिर जल्दी !'

नौकर—'सरकार ! आप सच्चे मनसे सामनेवाले मन्दिरमें जाकर प्रार्थना कीजिये; बाँधकी रक्षा हो जायगी ।' अफसरने वैसे ही किया ।

आधी राततक वर्षा होती रही । अफसरका धैर्य छूटने लगा । वह उसी समय बाँधको देखने चल पड़ा । वहाँ जाकर उसने देखा—'बाँधपर एक विचित्र प्रकाश फैला हुआ है । दो अत्यन्त सुन्दर [illegible]—एक गौर और एक श्याम रंगका पुरुष तथा एक [illegible] स्त्री, तीन व्यक्ति वहाँ खड़े हैं, जहाँ बाँध टूटनेवाला है—इस प्रकार मानो बाँधकी रक्षा कर रहे हों । [illegible] आश्चर्य है कि इतनी वर्षा होनेपर भी पानी [illegible] अंगुल कम ही है ।'

अफसरने आकर एक [illegible] दिये । वह मन्दिर सीताराम [illegible] चला था । अफसरने अपने [illegible] जीर्णोद्धार किया ।

धर्मके नामपर हिंसा

एक राजा एक बार यज्ञ करने जा रहे थे । यज्ञमें बलि देनेके लिये एक बकरा उन्होंने मँगवाया । बकरा पकड़कर लाया गया तो वह चिल्ला रहा था । यह देखकर राजाने अपनी सभाके एक विद्वान्से पूछा—'यह बकरा क्या कहता है ?'

पण्डित—'यह आपसे कुछ प्रार्थना कर रहा है ।'

राजा—'कैसी प्रार्थना ?'

पण्डित—'यह कहता है कि स्वर्गके उत्तम भोगोंकी मुझे तृष्णा नहीं है । स्वर्गका उत्तम भोग दिलानेके लिये मैंने आपसे कोई प्रार्थना [illegible] । [illegible] चरकर ही संतुष्ट हूँ । इसलिये मुझे [illegible] आपने पकड़ मँगाया, यह उचित नहीं है । [illegible] यज्ञमें बलि देनेसे प्राणी [illegible] अपने माता, पिता, पुत्र तथा कुटुम्बियोंकी [illegible] यह क्यों नहीं करते ?'

पण्डितजीकी बात सुनकर [illegible] पशु-बलि अनुचित है । [illegible]

आर्यकन्याकी आराध्या

सृष्टिकी सम्पूर्ण पवित्रताकी साकार प्रतिमा निर्दिष्ट करना हो तो कोई भी बिना संकोचके किसी आर्यकुमारीका नाम ले सकता है। मृदुता, सरलता और पवित्रताका वह एकीभाव और उसकी भी आदर्शभूता श्रीजनकनन्दिनी। मर्यादा-पुरुषोत्तमने अवतार धारण किया था धर्मकी मर्यादा स्थापित करनेके लिये। मानव-कर्तव्यके महान् आदर्शोंकी स्थापना करनी थी उन्हें। उनकी पराशक्ति, उनसे नित्य अभिन्न श्रीमैथिली उनके इस महान् कार्यकी पूरिका बनीं। उन्होंने नारीके दिव्य आदर्शको मूर्त किया जगत्में।

आर्यकन्या किसकी आराधना करे? स्त्रीका उपास्य तो पति है या पति जिसकी आराधनाकी अनुमति दे वह; किंतु कुमारी यदि आराधना करनी चाहे, यदि उसे आराधनाकी आवश्यकता हो और आवश्यकता तो है ही; क्योंकि आराधना-हीन जीवन तो शास्त्रकी दृष्टिमें जीवन ही नहीं, फिर आकाङ्क्षा न हो ऐसा हृदय गिने-चुने ज्ञानियोंका ही तो हो सकता है, किसी बालिकाके मनमें आकाङ्क्षा हो तो वह किस देवताकी शरण ले? इसका उत्तर सोचना नहीं पड़ता। आर्य-कन्याकी आराध्या हैं भगवती उमा। हिंदू-बालिका उन गौरीकी ही उपासना करती है।

श्रीजनकनन्दिनी तो आयी ही थीं धरापर नारियोंका पथ-प्रदर्शन करने। बालिकाओंको मार्ग दिखाया उन्होंने। उनका गौरी-पूजन; किंतु गौरी-पूजन करने चली थीं वे कोई विशेष संकल्प लेकर नहीं। माताने आदेश दिया था पूजनका और सखियोंके साथ आकर उन्होंने पूजन किया।

'निज अनुरूप सुभग बर माँगा।'

परंतु पूजनका फल तत्काल प्रत्यक्ष हो गया। पुष्प-वाटिकामें ही श्रीकौसल्यानन्दवर्धन रघुनाथजी-के दर्शन हो गये। अपनी निधिको नेत्रोंने देखते ही पहचान लिया और आकाङ्क्षा उद्दीप्त हो उठी। आकाङ्क्षाकी पूर्तिके लिये भी शास्त्रीय मार्ग आराधना ही है और आर्यकन्या तो आराधना भी करेगी तो सतियोंकी आराध्या भगवती पार्वतीकी ही। अतः श्रीजनकनन्दिनी पुनः भगवतीके मन्दिरमें पधारीं। उन्होंने गणेश और स्वामिकार्तिककी जननी उन शम्भुप्रियासे प्रार्थना की। वे प्रार्थना करेंगी और देवी प्रसन्न नहीं होंगी—

विनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी॥

ब्राह्मणीके द्वारा जीवरक्षा

(लेखक—श्री[illegible])

भावनगर राज्यके खेडियार माताके मन्दिरमें चण्डी-पाठका अनुष्ठान चल रहा था। इसी बीचमें एक दिन चैत्र कृष्ण पञ्चमीको महाराज श्रीभावसिंहजी महाराजका जन्मदिन था। अतएव खेडियार माताकी विशेष पूजाके लिये महाराजके हजूरी खेडियार मन्दिरमें आये। पूजाकी सामग्री, भोग तथा बलिदानके लिये एक बकरा वे साथ लाये थे। उनके साथ प्रबन्धके लिये थानेदार तथा कुछ सिपाही भी थे।

अनुष्ठानके आचार्य भट्ट जयराम पुरुषोत्तमकी धर्म-पत्नी श्रीमती कस्तूरीबाई वहाँ थीं। उन्होंने जब सुना कि माताजीके भोगके लिये बकरेकी बलि दी जायगी, तब उनको बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने सोचा—'क्या माताजी बकरेकी हिंसाके भोगसे प्रसन्न होंगी? नहीं नहीं, ऐसा नहीं होगा। मैं ब्राह्मणकी बाला यहाँ बैठी हूँ। मेरा मस्तक चाहे उतर जाय, मैं बकरेकी बलि नहीं होने दूँगी।' यह दृढ़ विचार करके कस्तूरीबाई माताजीके द्वारके पास जाकर बैठ गयीं।

हजूरीजी पूजन-सामग्रीके साथ पधारे। बकरेको स्नान करवाकर देवीजीके सामने खड़ा किया गया। थानेदार साथ थे। ब्राह्मणीके पूछनेपर हजूरीने बताया कि 'महाराज साहबके जन्मदिनके अवसरपर देवीजीकी पूजाके लिये बकरेकी बलि दी जायगी।' ब्राह्मणीने कहा—'जबतक मैं यहाँ बैठी हूँ [illegible] नहीं हो सकता। [illegible] होनी हो तो बकरेके बदले इस [illegible] पर दीजिये।' उन्होंने वहीं [illegible] बतलाया।

हजूरी तथा थानेदारने [illegible]। महाराज साहबके नाराज होनेका डर [illegible]। हमलोग वहाँ जाकर क्या उत्तर देंगे—यों [illegible] भी व्यक्त की; परंतु ब्राह्मणी अपने [illegible] नहीं हिलीं। वे बोलीं—"[illegible] कह दीजिये कि 'एक ब्राह्मणी [illegible] नहीं करने दिया।' फिर महाराज बहादुर [illegible] देंगे सो मुझे स्वीकार होगा।"

ब्राह्मणीके प्रभावसे हजूरीने [illegible] दिया। बकरेके कानके पाससे [illegible] देवीजीके तिलक कर दिया। [illegible]।

हजूरीने देवीजीका पूजन [illegible] लगाया और [illegible] गये। बकरेका बलिदान न करनेकी [illegible] सुनायी। सुनकर [illegible] उसी दिनसे [illegible] बंद कर दिया गया।

गोपाल पुत्ररूपमें

बंगालमें किसी गाँवमें एक सोलह वर्षकी युवती रहती थी। जिस साल उसका विवाह हुआ उसी [illegible] [illegible]

एक दिन वह अकेली बैठी रो रही थी। इसी समय उसको ऐसा लगा मानो कोई कह रहा है कि तुम दक्षिणेश्वरमें रहनेवाले महात्माके पास जाओ। इस अन्तःप्रेरणासे वह महात्माके पास जाकर फूट-फूटकर रोने लगी। तब महात्माने पूछा—'बेटी! तुम रो क्यों रही हो?'

युवतीने उत्तर दिया—'महाराज! मेरे कोई नहीं है।'

महात्मा—'बेटी! तुम इतनी झूठ क्यों बोल रही हो! तुम्हारे-जैसी झूठी तो मैंने आजतक कभी देखी ही नहीं।'

यह सुनते ही बेचारी युवती सकपका गयी। तब महात्माने कहा—'बेटी! तुमने यह कैसे कहा कि मेरे कोई नहीं है। क्या भगवान् भी मर गये हैं। वे तो सबके अपने हैं। सबके परम आत्मीय हैं। जिसके कोई नहीं होता वे तो उसके होते ही हैं। तुम उनका चाहे जिस रूपमें भजन कर सकती हो। भजन करोगी तो सदा उनको अपने पास पाओगी। तुम चाहो तो उन्हें अपना बेटा बना लो।'

युवतीने बहुत सोचकर भगवान्‌को अपना पुत्र बना लिया।

अब वह प्रतिदिन भगवान्‌के लिये भोजन बनाती और थालमें परसकर अपने गोपालको बुलाती। उसे अनुभव होता मानो गोपाल रोज आकर मैयाका दिया भोजन बड़े चावसे खाता है। इस प्रकार तीस साल बीत गये। अब वह युवती बूढ़ी हो गयी।

एक बार वह रामकृष्ण परमहंसके दर्शन करने गयी। गोपाल देर होनेसे भूखा न रह जाय, इसलिये उसने अपने गोपालके लिये थोड़ी-सी दाल और चावल साथ ले लिये। सोचा, खिचड़ी बनाकर खिला दूँगी गोपालको।

जब वह परमहंसजीके यहाँ पहुँची, तब उसने देखा कि बहुत बड़े-बड़े आदमी उनके चारों ओर बैठे हैं। यह देखकर वह वापस जाने लगी। इसी समय स्वयं परमहंसजी अपने आसनसे उछले और उसको बुला लाये तथा कहने लगे कि 'माता! तुम मेरे लिये खिचड़ी बनाओ। मुझे बड़ी भूख लगी है।' बेचारी वृद्धा कृतार्थ हो गयी। परमहंसजी उसे चौकेमें ले गये और कहने लगे—'माता! जल्दी बनाओ।'

खिचड़ी तैयार हो गयी तो उसने एक पत्तलमें उसे परसा; किंतु परमहंसजीको बुलानेमें उसे संकोच होने लगा। परमहंसजी वृद्धाके मनकी बात जान गये और स्वयं ही आकर खिचड़ी खाने लगे। थोड़ी देर बाद वृद्धाने देखा कि परमहसके स्थानपर उसका गोपाल प्यारा बैठा है। वह ज्यों ही पकड़ने दौड़ी कि वह भाग गया।

तबसे वह पागल-सी रहने लगी। कभी कहती 'उसने खाकर हाथ नहीं धोये, कभी कहती कि वह इत्र-की शीशी चुरा लाया।' ऐसी दशा होनेके बादकी एक चमत्कारपूर्ण घटना यह है—

लोगोंमें बात फैल गयी थी कि बुढ़ियाको भगवान्‌के दर्शन होते हैं। अतः एक बार कुछ लोगोंने उससे भगवान्‌के दर्शन करानेके लिये प्रार्थना की। उसने भगवान्‌से कहा। किंतु उन्होंने ऐसा भाव प्रकट किया मानो वे दर्शन देना नहीं चाहते तथापि वृद्धाकी बातका आदर करनेके लिये वे एक क्षणके लिये वृद्धाके सामनेसे अदृश्य हो गये और कहींसे एक इत्रकी शीशी ले आये। वृद्धा यह देखकर बोली कि 'यह इत्र तू कहाँसे चुरा लाया?' यह सुनते ही गोपालने शीशी फोड़ दी। लोगोंको दर्शन तो नहीं हुए; किंतु सभीको शीशी फूटनेका शब्द सुनायी पड़ा तथा इत्रकी सुगन्ध चारों ओर फैल गयी।

उस वृद्धाकी दशा—जबतक वह जीवित रही—ऐसी ही रही।

भगवान्‌के दर्शन

एक महात्मा थे। एक बार एक आदमी उनके पीछे पड़ गया कि 'मुझे भगवान्‌के दर्शन करा दो।' उन्होंने कहा—'मुझे ही नहीं हुए तो मैं तुम्हें कहाँसे करा दूँ।' अन्तमें उन्होंने कहा कि 'जाड़ेके दिनोंमें, पासके जंगलमें केवल एक वस्त्र पहनकर किसी पेड़के नीचे बैठ जाना।' उसने स्वीकार कर लिया।

उसने उनके कथनानुसार काम किया। रातके तीन पहर बीत गये। किंतु कुछ नहीं हुआ, यह देखकर उसे बड़ा क्रोध आया।

थोड़ी देर बाद श्रीकृष्ण एक छोटे-से बच्चेका रूप बनाकर आये और उससे बातें करने लगे।

श्रीकृष्ण—'तुम यहाँ क्यों बैठे हो?'

सज्जन—'एक ब्राह्मणके चक्करमें पड़कर बैठा हूँ।'

श्रीकृष्ण—'तुम्हारे पास कोई कम्बल नहीं है?'

सज्जन—'तुमसे क्या मतलब। तुम मुझे यह सब पूछकर क्यों तंग करते हो?'

श्रीकृष्ण—'मैं तो यों ही [illegible] गाय चराता हूँ। [illegible] तुम किस ब्राह्मणके चक्करमें पड़ गये।'

सज्जन—'तुम मुझे तंग मत करो [illegible]।'

श्रीकृष्ण—'तुम चोर तो नहीं हो।'

सज्जन—'कह दिया न, तुमसे [illegible]। [illegible] जाओ यहाँसे।'

श्रीकृष्ण—'अच्छा मैं जाता हूँ।' [illegible] जाने लगे। इतनेमें कुछ सुन्दर-सुन्दर [illegible] और श्रीकृष्ण चले गये।

थोड़ी देर बाद उसके मनमें आया कि [illegible] है। इतनेमें उसे मुरलीकी आवाज सुनायी दी। [illegible] तरफ दौड़ा; किंतु फिर उन्हें न पा सका।

सेवा-कुञ्जमें दर्शन

वृन्दावनमें सेवाकुञ्ज नामक एक स्थान है। यह प्रचलित है कि रातको वहाँ दिव्य रास होता है। इसीलिये रातको वहाँ कोई नहीं रहता।

एक बार एक पंजाबी महात्माके मनमें आया कि 'चाहे कुछ भी हो मैं तो रास देखकर ही रहूँगा।' बस रातको वे वहाँ दीवालपर चढ़कर देखने लगे, किंतु उन्हें कुछ दिखायी न दिया। दूसरे दिन भी ऐसा ही हुआ। अन्तमें तीसरे दिन उन्होंने निश्चय किया कि यदि आज दर्शन न होंगे तो मैं यहीं प्राण त्याग दूँगा। उस दिन भी तीन पहर रात बीत गयी।

इसी समय उनको ऐसा मालूम पड़ा कि मानो करोड़ों चन्द्रमा एक ही साथ उदय होकर अपनी शीतल सुनहली चाँदनी छिटका रहे हों। उसके कुछ देर पश्चात् यह दीखा कि 'सुन्दर-सुन्दर [illegible]। [illegible] श्रीराधाकृष्ण [illegible]। [illegible] कहा—'आज तो मुझे यहाँ मनुष्यकी [illegible]।'

श्रीकृष्णने कहा—'नहीं, [illegible] है, कहो तो बुलाऊँ?'

[illegible] रहे थे। [illegible] अंदर चले गये।

[illegible]

[illegible]

[illegible] रहे। [illegible] दर्शन थे।

प्रभुकी वस्तु

एक भक्तके एक ही पुत्र था और वह बड़ा ही सुन्दर, सुशील, धर्मात्मा तथा उसे अत्यन्त प्रिय था। एक दिन अकस्मात् वह मर गया। इसपर वह प्रसन्न हुआ और उसने भगवान्का उपकार माना। लोगोंने उसके इस विचित्र व्यवहारपर आश्चर्य प्रकट करते हुए उससे पूछा—'पागल! तुम्हारा एकलौता बेटा मर गया है और तुम हँस रहे हो। इसका क्या कारण है?' उसने कहा—'मालिकके बगीचेमें खिला हुआ बहुत सुन्दर पुष्प माली अपने मालिकको देकर प्रसन्न होना है या रोता है? मेरा तो कुछ है ही नहीं, सब कुछ प्रभुका ही है। कुछ समयके लिये उनकी एक चीज मेरी सँभालमें थी, इससे मेरा कर्तव्य था—मैं उसकी जी-जानसे देख-रेख करूँ, अब समय पूरा होनेपर प्रभुने उसे वापस ले लिया, इससे मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है और मैं उसका उपकार इसलिये मानता हूँ कि मैंने उनकी वस्तुको न मालूम कितनी बार अपनी मान लिया था—न जाने कितनी बार मेरे मनमें बेईमानी आयी थी। उसकी देख-रेखमें भी मुझसे बहुत-सी त्रुटियाँ हुई थीं, परंतु प्रभुने मेरी इन भूलोंकी ओर कुछ भी ध्यान न देकर मुझे कोई उलाहना नहीं दिया। इतनी बड़ी कृपाके लिये मैं उनका उपकार मानता हूँ तो इसमें कौन-सी आश्चर्यकी बात है?'

देवीजीके दर्शन

एक महात्मा थे। वे एकान्तमें देवीजीकी पूजा करते थे। एक दिन जब वे पूजा कर रहे थे उनके मनमें आया कि माता मुझे दर्शन दें। उसी समय उनको दिखायी पड़ा कि एक बिल्ली साड़ी पहनकर पिछले दो पैरोंसे चल रही है। एक बार तो उनको डर लगा फिर उन्होंने मातासे प्रार्थना की कि 'माँ! अपने पुत्रको इस प्रकार मत डराओ।' उसी समय बिल्ली देवीके रूपमें प्रकट हो गयी और उनका चढ़ाया हुआ नैवेद्य देवीजी-ने ग्रहण कर लिया।

भक्तकी रक्षा

एक भक्त ब्राह्मणदम्पति थे। उनके मनमें सदा यह इच्छा बनी रहती थी कि 'हम कहाँ जायँ जिससे हमें भगवान्के दर्शन हो जायँ।'

अन्तमें उन्होंने वृन्दावन जानेका निश्चय किया और वे चल पड़े। गोवर्द्धनके पास शाम हो गयी। वे वहाँ ठहरनेका विचार करके पासकी एक बस्तीमें चले गये।

उसी समय स्त्रीको दिखायी पड़ा कि गोवर्द्धन पर्वत-पर श्रीकृष्ण और श्रीराधा बैठे हैं और यहाँ ठहरनेको मने कर रहे हैं। स्त्री अपने पतिके साथ वहाँसे चली गयी।

वास्तवमें वह डोमोंकी बस्ती थी। डोमोंने यह सोचा था कि 'इनको मारकर इनका धन ले लेंगे।'

वहाँसे जानेपर उनको स्वप्न हुआ कि 'वह डोमोंकी बस्ती थी। उनका विचार तुमलोगोंको मारनेका था। इसलिये हमने तुमको मना किया था।'

भगवान् सबकी रक्षा करते ही हैं।

अंधा हो गया

एक महात्मा थे । वे एक बार किसी किलेके सामने बैठे थे । उस समय मुगलराज्य था । एक सिपाहीने उनको भगा दिया, पर वे फिर आकर बैठ गये । इस तरह तीन बार हुआ । तब अफसरने उनको तोपके मुँह उड़ा देनेकी आज्ञा दी । [illegible] महात्मा बैठे [illegible] । तब [illegible] तोप छोड़नेकी आज्ञा दी । [illegible] तभी अंधा हो गया और [illegible]

वात्सल्य

एक महिला थी । उसका नाम था कान्हबाई । वह श्रीकृष्णके बाल-रूपकी भक्ति करती थी । कहा जाता है कि जब वह श्रीकृष्णको पालनेमें झुलाती, तब वे स्वयं मूर्तिमान् हो जाते और वह उनको जिस प्रकार एक छोटे बालकको झुलाया जाता है वैसे ही झुलाने लगती । होते-होते श्रीकृष्ण उसको बिल्कुल माताकी तरह आनन्द देने लगे । वे अब हर समय उसके सामने प्रकट रहते । वे कभी उसको खानेके लिये कुछ बनानेके लिये कहते, कभी और कुछ काम करनेके लिये कहते रहते तथा वह भक्तिमती महिला सदा उनकी इच्छाके अनुरूप कार्य करती रहती ।

एक बार वह भगवान्‌को शयन कराके किसी उत्सवमें चली गयी । किसी कारणवश रात्रिको न लौट सकी । अधिक रात्रि बीतनेपर कान्हबाई [illegible] अन्यान्य सज्जनोंमेंसे भी [illegible] लगा—मानो कोई बालक रोता हुआ [illegible] 'मैया ! मुझे डर लग रहा है !' [illegible] कहा कि 'मेरा बच्चा रो रहा है !' [illegible] घबरायी हुई-सी वहाँसे उठकर [illegible] जाकर भगवान्‌को थपथपाकर—[illegible]

जब उसका अन्तकाल [illegible] कहा—'मैया ! अब तू कौने [illegible] ।' [illegible] उसकी आत्माके साथ [illegible] उड़ गये ।

इस तरह अपने [illegible] अपने वशमें कर लिया ।

वात्सल्यवती वृद्धा

एक भक्तिमती वृद्धा श्रीराधाके बालरूपका ध्यान कर रही थी । ध्यानमें श्रीराधाने काजल न लगवानेका हठ पकड़ लिया । वह भाँति-भाँतिसे उसको फुसला रही थी । वह कह रही थी कि 'तू काजल लगाये बिना कन्हैयाके खेलने जायगी तो वह तेरी हँसी उड़ायेगा ।' यह कहकर वह काजल लगानेकी कोशिश करने लगी । इससे काजल फैल गया और श्रीराधाकी आँखोंमें जल भर आया । यह देखकर [illegible] उसकी आँखें [illegible] श्रीराधाके [illegible] यह देखकर [illegible] देखकर [illegible] प्रणाम करने लगी । [illegible]

कुष्ठीके रूपमें भगवान्

पटना शहरमें कोई ब्राह्मण रहते थे । उनका नियम था—प्रतिदिन एक ब्राह्मणको भोजन कराके तब स्वयं भोजन करते ।

एक दिन इसी तरह वे किसी ब्राह्मणकी खोजमें थे कि एक व्यक्तिने, जिसके हाथ-पैरोंमें गलित कुष्ठ हो रहा था, कहा कि 'मैं ब्राह्मण हूँ ।' उसके ऐसा कहने-पर उन्होंने उसको अपने घर चलनेके लिये आग्रह किया और उनको लाकर उसी आसनपर आदरपूर्वक बैठाया, जिसपर वे प्रतिदिन ब्राह्मण-अतिथिको बैठाया करते थे तथा उनके चरणको उसी परातमें धोया । पर गलित कुष्ठ होनेके कारण उस परातका जल पीब तथा खूनके रूपमें बदल गया । उनका यह नियम था कि वे प्रति-दिन ब्राह्मणका चरणोदक पान किया करते थे । इसी नियमके अनुसार उन्हें आज भी पान करना था । वे आँखें बंद करके चरणोदकको हाथमें लेकर भगवान्‌का स्मरण करते हुए पी गये ।

कहते हैं कि उसके पान करते ही वे समाधिस्थ हो गये । वे गृहस्थ लगातार सोलह दिनोंतक इसी दशामें रहे । सतरहवें दिन उनका शरीर शान्त हो गया ।

उस ब्राह्मणीने लोगोंको यह बताया—'वे ब्राह्मण, जो भोजन करने आये थे, स्वयं भगवान् थे । मैं उनके दर्शनकी अधिकारिणी नहीं थी, पर सदा पतिदेवके अतिथि-सेवा-कार्यमें सहयोग देती थी, इसीलिये भगवान्‌ने मुझे भी दर्शन दे दिये ।'

शिव-पार्वतीकी कृपा

एक अयाची-वृत्तिके महात्मा काशी गये । सुबहसे शाम हो गयी, पर न तो उन्होंने किसीसे कुछ माँगा और न कुछ खाया । सन्ध्याको एक वृद्ध उनके पास आये और उनको कुछ खानेको दिया, तब उन्होंने खाया । इस तरह वे वृद्ध रोज आकर उनको खिला देते । एक दिन एक वृद्धा भी वृद्धको ढूँढ़ती हुई वहाँ आयी । अब उसने आकर वृद्धके साथ भोजन बनाकर उनको दिया । उसी दिन रातको उनको स्वप्न आया कि तुम्हारे मनमे यह दृढ़ विश्वास था कि 'काशीमें भगवान् शिव-पार्वतीके दर्शन हो ही जायँगे । इसीलिये हम-लोग वृद्ध-वृद्धा बनकर आये थे ।' यह स्वप्न देखकर महात्मा भाव-विह्वल होकर फूट-फूटकर रोने लगे ।

अन्त मति सो गति

सौराष्ट्रमें पानगढ़ नामक छोटेसे गाँवमें बेचर भक्त नामक एक सरल हृदय परम भक्त रहते थे । इनके घर एक बार एक साधु आये । उन्हें द्वारकाजी जाना था । जाते समय वे कपड़ेमें लपेटी हुई एक छोटी-सी पुस्तक बेचरजीको यह कहकर दे गये कि, 'तुम इसको अपने पास रखना, मैं द्वारकासे लौटकर ले लूँगा ।'

बहुत दिन हो गये; महात्माजी लौटे नहीं, तब बेचर भक्तने विचार किया कि महात्माजी आये नहीं, देखें इसमे क्या है । भक्तजीने कपड़ा खोलकर पुस्तक देखी तो उसमें एक छोटा-सा साँपका बच्चा दिखलायी दिया । उन्होंने उसे सँडासीसे पकड़कर दूर फेंक दिया पर थोड़ी ही देरमें वह फिर आकर पुस्तकपर बैठ गया । इसपर भक्तजीके मनमें आया कि इसमें कोई रहस्य अवश्य होना चाहिये । उन्होंने पुस्तकका जिल्द तोड़कर देखा तो उसमें पाँच रुपये थे । भक्तजीने रुपये निकाल-कर पुस्तकसे अलग रख दिये, तो क्या देखते हैं कि

सर्पका बच्चा तुरंत पुस्तकसे हटकर रुपयोंपर आ बैठा। इससे बेचर भक्तके मनमें यह संदेह हुआ कि कदाचित् उन साधुजीका देहान्त हो गया हो और रुपयोंमें वासना रहनेके कारण अन्तकालमें रुपयोंमें मन रहा हो तथा इसीसे वे सर्प हो गये हों। तब भक्तजीने हाथमें जल लेकर संकल्प किया कि '[illegible] ! [illegible] इन रुपयोंमें वासना रही हो तो इन पाँच रुपयोंके [illegible] अपनी ओरसे और मिलाकर मैं [illegible] दूँगा।' यों कहकर उन्होंने जल [illegible] दिया। सर्पका बच्चा जल छोड़ते ही तुरंत [illegible]।

विवाहमें भी त्याग

श्रीगोंदवलेकर महाराजकी पहली पत्नीका देहान्त हो चुका था। दो-चार माहके बाद उनकी माँने उन्हें दूसरी शादी करनेपर मजबूर किया। मातृभक्तिके कारण महाराज ना नहीं कह सके; परंतु उन्होंने माँसे एक शर्त मंजूर करा ली कि वे स्वयं अपनी दूसरी पत्नीको पसंद करेंगे। शर्तपर ही क्यों न हो, किंतु महाराज विवाह करनेको राजी तो हो गये। घरके सब लोग इससे प्रसन्न थे।

घरमें विवाहकी बातचीत चलने लगी। गाँवके और दूसरे गाँवोंके लोग अपनी-अपनी विवाहयोग्य कन्याओंको लेकर महाराजके पसंदके लिये गोंदावले आने लगे; परंतु महाराजने सभीपर अस्वीकृतिकी मुहर लगाना शुरू कर दिया। लोगोंको [illegible] कि महाराज शादी करेंगे या नहीं।

महाराजकी चिन्ता तो [illegible] ही थी। [illegible] थे। आटपाडी गाँवके निवासी [illegible] नामक गरीब ब्राह्मण अपनी [illegible] चिन्तामें रात-दिन डूबा रहता है, [illegible] दयार्द्र हो गये। वे आटपाडी गये और [illegible] उन्होंने कहा कि 'मैं एक [illegible] हूँ, [illegible] अपनी कन्याका विवाह मेरे साथ कर [illegible] हैं?' रोटीके एक टुकड़ेको तरसनेवाला [illegible] पा गया। ब्राह्मणने अपनी कन्याका [illegible] कर दिया।

भगवन्नामसे रोगनाश

(१)

कुछ वर्ष पूर्वकी घटना है। एक सेठजी गाँजा पीनेकी आदतसे लाचार थे। वे एक बार एक संन्यासीके पास गये और भगवत्-मार्गमें लगनेकी तदबीर पूछने लगे। जब स्वामीजीको गाँजाकी बात मालूम हुई, तब उन्होंने सेठजीसे बाततक भी न की और उन्हें बिदा कर दिया। दूसरे दिन सेठजी आकर रोने लगे। स्वामीजीने कहा—'तुम रातको सोनेके पूर्व दस हजार भगवन्नाम ले लिया करो।'

आश्चर्य ! थोड़े ही दिनोंमें उनकी यह बुरी आदत बिल्कुल छूट गयी।

(२)

डाक्टरोंने एक विद्वान् [illegible] यक्ष्मा घोषित कर दिया। [illegible] आतङ्कसे [illegible] जानने। सभी प्रमुख [illegible] उन सबकी चिकित्सा [illegible]

एक दिन [illegible] ऐसी ही दूर [illegible] पड़े। [illegible]

... जोर-जोरसे 'सीताराम सीताराम' गा रहे ..., इन सज्जनने भी पूरी शक्ति लगाकर 'सीताराम ...' कहना शुरू किया। अब वे 'सीताराम' ... मग्न हो गये। पता लगनेपर घरवाले उन्हें ... घर लाये, पर उन्होंने 'सीताराम' कहना नहीं ...।

... ही दिनों बाद उनकी हालत सुधरने लगी ... वे बिल्कुल ठीक हो गये। तदनन्तर उन्होंने इस ... के अतिरिक्त किसी भी डाक्टर-वैद्यकी औषधको ... वे जहर कहते थे, कभी न लेनेकी ही शपथ कर ली।

(३)

एक आदमीके सिरमें भयानक पीड़ा थी। वह दर्दके मारे कराह रहा था। उसको एक दूसरे मित्रने राम-राम कहकर कराहनेकी सम्मति दी। पता नहीं उसने क्या किया? पर एक दूसरे सज्जनने उसे ध्यानमें रख लिया, क्योंकि उन्हें भी सिर-दर्द होता था। अब जब उन्हें सिर-दर्द होता, तब वे रामनामका प्रयोग आरम्भ कर देते। उन्हें तत्काल लाभ होने लगा। अन्तमें इस रोगने उनका पिण्ड ही छोड़ दिया।—जा० श०

रामनामसे शराबकी आदत भी छूटी

एक मुंशीजी थे। वे थे तो बड़े अच्छे ओहदेपर, पर थे पुराने पियक्कड़। शराबसे जो हानि होती है वह तो ... है। सारा धन और माल साफ होने लगा। एक दिन काशीके प्रसिद्ध योगी महात्मा श्रीश्यामाचरण लाहिड़ीसे इनकी मुलाकात हुई। उन्होंने बतलाया, 'भाई! रामनाम कहा करो, और कोई रास्ता नहीं है।' मुंशीजीने वैसा ही किया। फिर क्या था, सदाके लिये बोतलसे छुट्टी मिल गयी।

भगवत्प्राप्तिके लिये कैसी व्याकुलता अपेक्षित

एक शिष्यने अपने गुरुसे पूछा—'भगवन्! भगवत्प्राप्तिके लिये किस प्रकारकी व्याकुलता होनी चाहिये?' गुरु मौन रहे। शिष्य भी उनका रुख देखकर शान्त रह गया। दूसरे दिन स्नानके समय गुरु-शिष्यने एक ही साथ नदीमें गोता लगाया। गुरुने शिष्यको पकड़कर ... जोरसे पानीमें दबाया। वह बड़े जोरसे छटपटाया और किसी प्रकार तड़प-कूद मचा बाहर निकल आया। स्वस्थ होनेपर गुरुने पूछा—'पानीसे निकलनेके लिये कितनी आतुरता थी तुम्हारे मनमें।'

शिष्य बोला—'बस, एक क्षण और पानीमें रह जाता तो मर ही गया था।'

गुरुने कहा—'बस, जिस क्षण संसाररूपी जलसे बाहर निकलकर अपने परम प्रियतम प्रभुसे मिलनेके लिये यों ही व्याकुल हो उठोगे, उसी क्षण तुम्हारी व्याकुलता उचित रूपमें व्यक्त होगी और वह प्रभुको प्राप्त करा सकेगी।'

लक्ष्य और साधना

एक मुमुक्षुने अपने गुरुदेवसे पूछा—'प्रभो! मैं कौन-सी साधना करूँ?'

'तुम बड़े जोरसे दौड़ो। दौड़नेके पहले यह निश्चित कर लो कि मैं भगवान्‌के लिये दौड़ रहा हूँ। बस, यही तुम्हारे लिये साधना है।' गुरुने बतलाया।

'तो क्या बैठकर करनेकी कोई साधना नहीं है।' शिष्यने पुनः पूछा।

'है क्यों नहीं। बैठो और निश्चय रक्खो कि तुम

भगवान्के लिये बैठे हो।' गुरुने उत्तर दिया।

'भगवन्! कुछ जप नहीं करें?' शिष्यने पुनः प्रश्न किया।

'किसी भी नामका जप करो, सोचो मैं भगवान्के लिये कर रहा हूँ।' गुरुने समझाया।

'तब क्या क्रियाका कोई महत्त्व नहीं? केवल भाव ही साधना है।' शिष्यने फिर पूछा।

गुरुने कहा—'भैया! [illegible] क्रियासे भाव और [illegible] होते हैं। [illegible] दृष्टि लक्ष्यपर रहनी चाहिये। [illegible] करोगे, वही साधना होगी। [illegible] तो वे सबको सर्वत्र सर्वदा [illegible] ही कौन जिसे भगवान् नहीं [illegible] ठीक रक्खा जाय तो साधना [illegible]

भगवान् सदा साथ हैं

एक महात्मा थे। उन्होंने स्वयं ही यह घटना अपने एक मित्रको सुनायी थी। वे बोले—'मेरी आदत है कि मैं तीन बजे उठकर ही शौच-स्नान कर लेता हूँ और भजन करने बैठ जाता हूँ। एक बार मैं वृन्दावनके समीप ठहरा हुआ था। वर्षाके दिन थे, यमुनाजी बहुत बढ़ी हुई थीं। मैं तीन बजे उठा; शौचके लिये चल पड़ा। घोर अंधकार था और मूसलधार वृष्टि हो रही थी। आगे जानेपर मुझे भय लगने लगा। मैंने भगवान्को स्मरण किया। तुरंत ही मुझे ऐसा लगा कि मानो मेरे भीतर ही कोई अत्यन्त मधुर स्वरमें बिलकुल स्पष्ट मुझे कह रहा हो—'डरते क्यों हो भाई! मैं तो सदा ही तुम्हारे साथ रहता हूँ; जो मेरा आश्रय पकड़ लेता है, उसके साथ ही मैं निरन्तर रहता हूँ।' बस, यह सुनते ही मेरा भय सदाके लिये भाग गया। अब मैं कहीं भी रहूँ—मुझे ऐसा लगता है कि भगवान् मेरे साथ हैं। हाँ, उनके प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होते।'

उन महात्माको एक बड़ा विचित्र अनुभव बचपनमें भी हुआ था।

× × ×

एक महात्मा थे। सर्वत्र घूमा करते थे। [illegible] जगह टिककर नहीं रहते थे। हाँ, उनके [illegible] सदा बनी रहती थी—'कहाँ जाऊँ [illegible] प्रत्यक्ष दर्शन हो जायँ।' [illegible] वर्ष बीत गये पर भगवान्के दर्शन नहीं हुए। [illegible] उनके मनमें आया—'चलो, [illegible] हो ही जायँगे।' इसी विचारसे वे [illegible] परिक्रमा करने लगे। एक दिन वे [illegible] पेड़की छायामें विश्राम कर रहे थे। [illegible] 'श्रीराधाकृष्ण एक [illegible] रहे हैं।' देखते ही [illegible] किंतु इतनेमें ही न जाने [illegible] महात्माजीके बिल्कुल पास [illegible] ध्यान आये [illegible] कर [illegible] अन्तर्हित हो चुके थे। [illegible] रोने लगे।—[illegible]

सरयूजीसे रास्ता

श्रीअवधमें सरयूके किनारे एक महात्मा थे। वे एक ऊँचे मचानपर रहते थे। वे किसीसे बोलते नहीं थे।

जब उनको भगवान्के दर्शन करनेकी मनमें [illegible] तब वे सरयूजीसे [illegible] [illegible] दर्शन करके फिर [illegible] जाते हैं।—[illegible]

बिहारीजी गवाह

वृन्दावनके पास एक ब्राह्मण रहता था। एक समय ऐसा आया कि उसके सभी घरवालोंकी मृत्यु हो गयी। केवल वही अकेला बच रहा।

उसने उन सबका श्राद्ध आदि करना चाहा और इनके लिये अपना मकान गिरवीं रखकर एक सेठसे पाँच सौ रुपये उधार लिये।

ब्राह्मण धीरे-धीरे रुपये सेठको लौटाता रहा, पर सेठके मनमें बेईमानी आ गयी। ब्राह्मणने धीरे-धीरे प्रायः सब रुपये लौटा दिये। दस-बीस रुपये बच रहे। सेठने उन रुपयोंको उसके खातेमें जमा नहीं किया। वहीके दूसरे पन्नेपर लिख रक्खा और पूरे रुपयोंकी ब्राह्मणपर नालिश कर दी।

ब्राह्मण एक दिन मन्दिरमें बैठा था कि उसी समय कोर्टका चपरासी नोटिस लेकर आया। नोटिस देखकर ब्राह्मण रोने लगा। उसने कहा कि 'मैंने सेठके करीब-करीब सारे रुपये चुका दिये। फिर मुझपर नालिश क्यों की गयी।'

चपरासीने पूछा—'तुम्हारा कोई गवाह भी है?'

उसने कहा—'और कौन गवाह होता, हाँ, मेरे बिहारीजी सब जानते हैं, वे जरूर गवाह हैं!'

चपरासीने कहा—'रोओ मत, मैं कोशिश करूँगा।'

चपरासीने जाकर जज साहबसे सारी बातें कहीं। जज साहबने समझा—'कोई बिहारी नामक मनुष्य होगा।' उन्होंने बिहारीके नामसे गवाही देनेके लिये एक नोटिस जारी कर दिया और चपरासीको दे आनेके लिये कहा।

चपरासीने आकर ब्राह्मणसे कहा—'मैं गवाहको नोटिस दे दूँ, बताओ वह कहाँ रहता है?'

ब्राह्मणने कहा—'भैया! तुम मन्दिरकी दीवालपर सटा दो।' चपरासी नोटिस सटाकर चला गया।

जिस दिन मुकदमेकी तारीख थी उस दिनकी पहली रात्रिको ब्राह्मण रातभर मन्दिरमें बैठा रोता रहा। सूर्योदयके समय उसको कुछ नींद-सी आ गयी। तब उसको ऐसा मालूम पड़ा मानो श्रीबिहारीजी कह रहे हैं—'घबरा मत, मैं तेरी गवाही दूँगा।' अब तो वह निश्चिन्त हो गया।

वह अदालतमें गया। वहाँ जब जजने बिहारी गवाहको बुलानेकी आज्ञा दी, तब तीसरी आवाजपर—'हाजिर है!' कहकर एक सुन्दर युवक कटघरेके पास आकर खड़ा हो गया और जजकी तरफ देखने लगा। जजने ज्यों ही उसको देखा, उनके हाथसे कलम गिर गयी और वे पंद्रह मिनटतक वैसे ही बैठे रहे। उनकी पलक नहीं पड़ी। न शरीर ही हिला। कुछ बोल भी नहीं पाये। पंद्रह मिनट बाद जब होश आया, तब उन्होंने बिहारी गवाहसे सारी बातें पूछीं। बिहारी गवाहका केवल मुँह खुला था, बाकी अपने सारे शरीरको वह एक कम्बलसे ढके हुए था। उसने कहा—'मैंने देखा है—इस ब्राह्मणने सारे रुपये चुका दिये हैं। थोड़ेसे रुपये बाकी होंगे। मैं सदा इसके साथ जाया करता था।' यह कहकर उसने एक-एक करके सारी बातें बतानी शुरू कर दीं। उसने कहा—'रुपये सेठने इसके खातेमें जमा नहीं किये हैं। बहीके दूसरे पन्नेमें एक दूसरे नामसे जमा है। मैं बहीका वह पन्ना बता सकता हूँ।' तब जज उसको साथ लेकर सेठकी दूकानपर पहुँचे। वहाँ जानेपर बिहारी गवाहने सब बताना शुरू किया। वह जो-जो बोलता गया, जज वही देखते गये और अन्तमें जिस पन्नेमें जिस नामसे रुपये जमा थे, वह पन्ना मिल गया। जजने सारी रकम बिहारीके बतानेके अनुसार जमा पायी। इसके बाद ज्यों ही जजने आँख उठाकर देखा तो वहाँ कोई नहीं था। कचहरीमें जाकर जजने कड़ा फैसला लिखा और वहीं बैठे-बैठे स्तीफा लिखकर संन्यास ग्रहण कर लिया। —कु० रा०

पहले ललिताजीके दर्शन कीजिये

एक महात्मा वृन्दावनके पास वनमें बैठे थे। उनके मनमें आया कि सारी उम्र ऐसे ही बीत गयी, न भगवान्‌के दर्शन हुए, न उनके किसी सखाके ही हुए।

इसी समय काली घटा छा गयी और बड़े जोरसे पानी बरसने लगा। किंतु वे महात्मा वहाँसे उठे नहीं। दो घंटेतक लगातार मूसलधार पानी बरसता रहा, अब उनको ठंड लगने लगी।

इसी समय उनको दिखायी दिया कि साड़ी पहने एक छोटी-सी सुकुमार लड़की पानीपर छप-छप करती आ रही है।

लड़की—'महाराज! आप यहाँ क्यों बैठे है।'

महात्मा—'ऐसे ही।'

लड़की—'क्या आपको अभी किसीके दर्शन नहीं हुए।'

महात्माको उसकी बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह लड़की कौन है [illegible] जान गयी। वे उसकी ओर देखने लगे, [illegible] तब लड़कीने कहा—'अच्छा, अब आप [illegible] दर्शन करिये।' इतना कहकर वह [illegible] गयी। महात्माजी बड़े प्रसन्न हुए।

एक बार उनके चेचक निकल आयी। [illegible] वे वृन्दावनसे दो सौ मील दूर थे। उनके [illegible] करनेपर एक सज्जन टैक्सी करके उनको [illegible] ले आये।

ज्यों ही उनसे कहा गया कि वृन्दावन [illegible], उनको भगवान्‌के दर्शन हो गये और वे [illegible] छोड़कर चले गये।—कु० प०

मेरे तो बहिन-बहनोई दोनों हैं

जनकपुरमें एक विधवा ब्राह्मणी रहती थी। उसके एक छोटा लड़का था।

एक बार वह कुछ लोगोंके साथ चित्रकूट जा रही थी। रास्तेमें विधवाका लड़का अकेला एक जंगलमें चला गया। वह मिल नहीं रहा था; किंतु विधवाके मनमें यह दृढ़ विश्वास था कि 'रामजी अपने सालेको कहीं खोने नहीं देंगे।' (जनकपुरकी होनेके कारण वह अपनेको श्रीरामलल्लाजीकी सास मानती थी।)

इधर लड़का जंगलमें घूम रहा था कि उसको एक तेजस्विनी स्त्री मिली। उसने बड़े प्यारसे उससे पूछा—'भैया! तुम मेरे साथ चलोगे?'

लड़केने कहा—'तू कौन है?'

स्त्री—'मैं तेरी बहिन हूँ।'

इसी समय एक सुन्दर तरुण पुरुष [illegible] उसने कहा—'यह अपने घर नहीं [illegible], मैं [illegible] अभी इसकी माँके पास पहुँचा आता हूँ।'

उधर विधवा और उसके साथी [illegible] भूल गये थे। चलते-चलते उनको [illegible] ही मिली। उसने उनको [illegible] फिर एक पुरुष मिला। [illegible] वे लोग आगे बढ़े। वहाँ [illegible] लड़का मिल गया। [illegible] उससे पूछा गया तब उसने [illegible] थी कि तेरे कोई नहीं है। [illegible] है।' उसने सारा [illegible] गद्गद हो गयी।—कु० [illegible]

विश्वास करके लड़की यमुनाजीमें पार हो गयी

एक लड़की थी । एक दिन उसने एक पण्डितजीको कथा कहते हुए सुना कि 'भगवान्‌का एक नाम लेनेसे मनुष्य दुस्तर भवसागरसे पार हो जाते हैं ।' उसे इन वचनोंपर दृढ़ विश्वास हो गया ।

एक दिन वह यमुनाके उस पार दही बेचने गयी । वहाँसे लौटते समय देर हो गयी । इसलिये माझीने उसे पार नहीं उतारा ।

इसी समय लड़कीके मनमें आया कि जब एक नामसे दुस्तर भवसागरसे पार हुआ जाता है, तब यमुनाको पार करना क्या मुश्किल है । बस, वह विश्वासके साथ 'राधेकृष्ण-राधेकृष्ण' करती हुई यमुनाजीमें उतर गयी । उसने देखा कि उसकी साड़ी भी नहीं भीग रही है और वह चली जा रही है । तब तो और स्त्रियाँ भी उसीके साथ 'राधेकृष्ण-राधेकृष्ण' कहकर पार आ गयीं ।

जब कथावाचक पण्डितजीको इस बातका पता लगा तब वे लड़कीके पास आये और कहने लगे 'क्या तुम मुझको भी इसी तरह पार कर सकती हो ।' 'हाँ' लड़कीने कहा ।

वे उसके साथ आये । यमुनामें उतरे, पर भीगनेके डरसे कपड़े सिकोड़ने लगे तथा डूबनेके भयसे आगे बढ़नेसे रुकने लगे । लड़कीने यह देखकर कहा—'महाराज ! कपड़े सिकोड़ोगे या पार जाओगे ?' पण्डितजीको विश्वास नहीं हुआ । इससे वे पार तो नहीं जा सके, पर उनको झलक-सी पड़ी कि दो सुन्दर हाथ आगे-आगे जा रहे हैं और वह उनके पीछे-पीछे चली जा रही है ।

हिंसाका कुफल

(लेखक—श्रीलीलाधरजी पाण्डेय)

कुछ समय पूर्व बलरामपुरमें झारखंडी नामक शिव-मन्दिरके निकट बाबा जानकीदासजी रहते थे । वैराग्य एवं सदाचारमय जीवन ही उनका आदर्श था ।

शिवमन्दिरके निकट पश्चिमकी ओर एक बृहत् सरोवर अब भी वर्तमान है । उसमें 'सुखी मीन जहँ नीर अगाधा' की भाँति स्वच्छन्द रूपमें असंख्य मछलियाँ निवास करती थीं । मछलियोंके ऊपर बाबाकी करुणाकी छत्रछाया थी । फलस्वरूप किसीको भी तालाबकी मछलियोंको मारनेका साहस नहीं होता था, यद्यपि तालाबके किनारे मांसाहारियोंकी ही बस्ती थी । बाबाके अहिंसा-व्रतके फलस्वरूप मछलियोंको न मारनेकी घोषणा नगरभरमें व्याप्त थी ।

एक बारकी बात है कि उस नगरमें एक मुसलमान दारोगा स्थानान्तरित होकर आया । बाबाकी घोषणा उसके कानोंमें भी पड़ गयी । कट्टर यवन बाबाकी इस घोषणासे जल उठा और उसने तालाबमें मछली मारनेका पक्का निश्चय कर लिया । क्रोधसे जलता हुआ वह बाबाकी हस्ती देखनेपर उतारू हो गया । फलतः उसने अपने सालेको मछली मारनेके लिये तालाबपर भेजा । किंतु 'जाको राखे साइयाँ मारि सके ना कोय' मध्याह्न-तक खोज करते रहनेपर भी एक मछली भी उसके हाथ न आ सकी । बाबाजीने सुना कि दारोगाजीका साला तालाबमें मछलियोंका शिकार कर रहा है, तो वे अविलम्ब उसके पास जाकर बोले—'बेटा ! मैं किसीको भी इस तालाबकी मछलियोंको नहीं मारने देता हूँ । अपनी बंसी निकालकर चले जाओ । बेचारी गरीब मछलियोंको न मारो ।'

बाबाकी बात सुनकर वह सरोष चला गया और घर पहुँचकर सारा समाचार दारोगासे कहा ।

उसके कथनपर दारोगा क्रोधसे तिलमिला उठा । दूसरे ही दिन अन्य साधनों और कर्मचारियोंके साथ मछलियोंका शिकार करनेके लिये उसने अपने मालेको यह कहकर भेजा कि 'तुम चलो, काम शुरू करो, हम अभी आते हैं ।' उसने पहुँचते ही मछलियोंको मारना शुरू किया । बाबाजी यह सुनते ही वहाँ पहुँचकर कुछ रोषभरे शब्दोंमें उसे फटकारने लगे—'मैंने तुमको कल ही रोक दिया था; किंतु तुमने मुझे शक्तिहीन समझकर नहीं माना । जानते नहीं हो, इस तालाबकी मछलियोंके रक्षक श्रीहनुमानजी हैं !' [illegible] था । [illegible] हनुमान्जीका नाम [illegible] उठा और बाबाजी [illegible] फाग । [illegible] अदृश्य शक्तिने उस [illegible] विहीन कर दिया । [illegible] और तालाबका मन गया ।

काटसे मारे हुए दारोगा [illegible] निपटवाकर चुपचाप [illegible]

साधु-महात्माको कुछ देकर आना चाहिये

(लेखक—डा० श्रीयतीशचन्द्र राय)

स्वामीजी श्रीभोलानन्दगिरिजी महाराज फटकमें बाबू देवेन्द्रनाथ मुखर्जीके घर ठहरे थे । कालेजके चार छात्र स्वामीजीके दर्शनार्थ वहाँ गये । छात्रोंने जाकर चरणोंमें प्रणाम किया । स्वामीजीने बड़े मधुर स्वरमें कहा—'बच्चो ! साधु या देवताके दर्शनार्थ जाना हो तब उन्हें देनेके लिये कुछ भेंट ले जानी चाहिये । नहीं तो, बड़ा अपराध होता है । तुमलोग यहाँ साधु-दर्शनके लिये आये हो तो मुझे कुछ दे जाना चाहिये ।'

छात्रोंने सोचा कि 'स्वामीजी कुछ रुपये चाहते हैं । वे मनमें सोचने लगे, हम गरीब छात्र रुपया-पैसा कहाँसे लायें ।' इतनेमें ही स्वामीजी हँसकर बोले—'देखो बच्चो ! रुपये-पैसेकी बात मत सोचो । मुझे तो तुम यह वचन दे जाओ कि मेरी कही हुई [illegible] इनका पालन करोगे । [illegible] दण्डस्वरूप देखूँगा [illegible] बातें ये हैं—

(१) [illegible]

(२) परचर्चा नहीं [illegible]

(३) [illegible]

(४) [illegible]

बस, [illegible] किया । स्वामीजी बहुत प्रसन्न [illegible] भी था । [illegible] मेरे हृदयमें बैठी हुई [illegible] ।

बाबा ! शेर बनकर गीदड़ क्यों बनते हो ?

(लेखक—भक्त [illegible])

प्रसिद्ध संत श्रीतपसीबाबाजी महाराज बड़े घोर तपस्वी संत थे । जो भी रूखा-सूखा मिल जाता, उसीसे पेट भर लेते और निरन्तर भजन-ध्यानमें लगे रहते । सब कुछ त्याग होनेपर भी आपने देखा कि मुझसे और सब तो छूट गया, पर दूध पीनेकी [illegible]

दूध आदि खाना भी छोड़ दिया और सारे शरीरके वस्त्र भी उतारकर फेंक दिये। वस्त्रोंकी जगह आप मूँजकी लँगोटी बाँधा करते थे और शरीरपर भस्म रमाया करते थे। भोजनमें वृक्षोंके पत्ते धूनीमें उबालकर उनका गोला बनाकर खा लिया करते थे। इस प्रकारके कड़े नियमोंका लगातार पैंतालीस वर्षों-तक पालन होता रहा। हजारों दर्शनार्थी आते रहते, पर आप न तो किसीसे कुछ लेते और न किसीसे बातें करते। हर समय तपस्यामें संलग्न रहते। पैंतालीस वर्ष पश्चात् एक दिन आपका मन दूधकी ओर चला और दर्शन करने आयी हुई एक माईसे आपने कहा—'आज रात्रिको हम दूध पीयेंगे।' वह माई धनी घरानेकी थी और बड़ी ही बुद्धिमती भी थी। उसे यह पता लग चुका था कि महाराजकी जीवनभर दूध न पीनेकी प्रतिज्ञा की हुई है।

माईने कहा कि 'अच्छा महाराज! रात्रिको दूध आ जायगा।' उसने पंद्रह-बीस घड़े भरकर दूध मँगवाया और उनमें मीठा मिलाकर बाबाकी कुटियाके बाहर लाकर रखवा दिया। जब बाबा कुटियामेंसे तपस्या करके बाहर निकले, तब माईने हाथ जोड़कर कहा—'महाराज! मैं लोभी नहीं हूँ। आपके लिये दूधके घड़ेपर घड़े भरकर लायी हूँ। चाहे जितना दूध आप पीयें। दूधकी कमी नहीं है। पर प्रभो! एक बात याद रखिये। आज आप शेरसे गीदड़ बनने क्यों जा रहे हैं? पैंतालीस वर्षतक जिस प्रतिज्ञाको आपने निभाया, अब अन्तिम समय उसे भंग करके कायरताका परिचय क्यों दे रहे हैं?' बाबाकी आँखें खुल गयीं। अरे, मन कितना धोखेबाज है, कितना चालाक है। मैं समझ गया। बाबा माईके चरणोंमें झुक गये। 'देवी! तुमने इस पापी मनके जालसे मुझे बचा लिया। नहीं तो, मैं आज मारा जाता। इस मनीरामका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। यह न जाने कब धोखा दे दे।'

भगवतीने कन्यारूपसे टटिया बाँधी

(लेखक—श्रीहरिश्चन्द्रदासजी बी०ए०)

भक्तशिरोमणि कविवर रामप्रसाद सेनने अपने जीवन-कालमें ही देवी उमाका साक्षात्कार किया था। इसमें थी उनकी प्रगाढ भक्ति एवं भगवतीके चरणोंकी शरणागति। कहा जाता है कि एक बार आपने अपनी कुटियाके लिये कुछ बाँसके डण्ठल, घास-फूस एवं डोरी लेकर टटिया (बेड़ा) बाँधनेका उपक्रम किया। समय था अगहनका। भक्तवरने सोचा कि क्यों नहीं माँ उमा (उनकी लड़कीका नाम) से ही सहायता लेकर बेड़ा बाँध लिया जाय। उन्होंने 'माँ उमा, माँ उमा' कहकर पुकारा। माँ उमा (उनकी लड़की) उस समय अपनी सखियोंके घर खेलने गयी थी। उनको इसका पता न था। वे तो दो-चार बार माँ उमाको पुकारकर अपने कार्यमें लग गये। सङ्गीत उनके हृदयसे निःसृत हो रहा था, जिसमें उनकी तपी-तपायी भक्तिका भाव-स्रोत फूट रहा था और वे थे भावमें तल्लीन। इस पारसे डोरीको उन्होंने दिया, परंतु उस ओरसे डोरी तो आनी ही चाहिये। नहीं तो, बेड़ा बँधता किस तरह! भगवती उमाने अपने बेटेके कष्ट एवं निश्छलताको देखा और माँ दौड़ पड़ी संतानकी मददके लिये। फिर तो क्या था। दोनों ओरसे डोरी आ-जा रही थी और इस तरह वह बेड़ा बँधकर सङ्गीत-लहरीके शेष होते-होते तैयार हो गया। माँकी कैसी विडम्बना? संतानकी पुकारपर क्षणभरमें दौड़ पड़ना और फिर आँखोंसे ओझल!

ठीक उसी समय आती है उनकी कन्या माँ उमा। उमाने आते ही आश्चर्यसे पूछा कि 'बाबा! क्या ही बढ़ियाँ बेड़ा बाँधा है आपने, क्योंकर आपसे अकेले ऐसा सम्भव हो

पाया। पिताने स्मित हँसी हँसकर कहा कि 'बेटी! बिना तेरी मददके यह क्योंकर सम्भव हो पाता, तूने ही तो उस ओरसे डोरी दे-देकर मेरी सहायता की और तभी तो यह सुन्दर बेड़ा बँधकर सामने है।' कन्याके आश्चर्यका कोई ठिकाना नहीं रहा, जब उसने अपनी मददकी बातें सुनीं तब बतलाया कि वह तो अपनी सहेलियोंके साथ खेल रही थी। वह तो अभी-अभी बेड़ाके बँध जानेपर आयी है। पहले तो रामप्रसादजीने सहसा विश्वास ही नहीं किया। परंतु कन्याके बार-बार कहनेपर उनको बड़ा ही आश्चर्य हुआ और तब भक्तने समझा कि भगवती उमाने ही आकर उनकी सहायता की थी और भक्तप्रवर फूट-फूटकर रोने लगे एवं सङ्गीतलहरी फिर पूर्वकी तरह प्रवाहित हो चली। यह उनके जीवनकी एक सच्ची किंतु अलौकिक घटना है, जिसका उनके एक तत्सम्बन्धी सङ्गीतसे भी पता चलता है—

मन केन मार चरण छाड़ा !
ओ मन भाव शक्ति, पाबे मुक्ति, बाँधो दिया भक्ति दड़ा
नयन थाकते ना देखले मन, [illegible]
मा भक्ते छलिते, तनया रूपेते बाँधेन [illegible] बेड़ा
जेई ध्याये एक मने, सेई पाबे [illegible]
नाई देखो कन्यारूपे, रामप्रसादेर बाँधछे बेड़ा ॥ १ ॥

अर्थ यों है—

रे मन! तुमने माँके चरणोंको क्यों [illegible]
ओ मन! शक्तिरूपिणी माँका चिन्तन करो, [illegible] होगी। भक्तिरूपी रस्सीसे उसे बाँध लो। रे मन! [illegible] रहते माँको नहीं देख पाया, [illegible] था। भक्तको छलनेके लिये माँने कन्या[illegible] बेड़ा बाँध दिया। जो एक मनसे [illegible], [illegible] माँ कालिका ताराको पायेगा। [illegible] रूपसे रामप्रसादका बेड़ा बाँधा।

अद्भुत उदारता

बंगालके सुप्रसिद्ध ब्रह्मसमाजी सत्पुरुष अघोरनाथजीके पिता श्रीयादवचन्द्र राय फारसी तथा संस्कृत भाषाके उच्च-कोटिके विद्वान् थे, ईश्वरभक्त थे और अत्यन्त दयालु थे। वे बहुत ही त्यागी तथा परिग्रहरहित व्यक्ति थे। एक रात्रि उनके घरमें चोर घुसे। चोरोंने घरका एक-एक कोना छान मारा; किंतु ले जाने योग्य कोई वस्तु उन्हें मिली नहीं। श्रीयादवचन्द्रजी [illegible] गति-विधि देख रहे थे। वे धीरेसे उठे और [illegible] तम्बाकू भरकर हुक्का लिये चोरोंके [illegible] नम्रतापूर्वक बोले—'भाइयो! [illegible] किया; किंतु लाभ कुछ नहीं हुआ। [illegible] तम्बाकू तो पीते जाइये।' बेचारे [illegible] ग्लानिके मारे श्रीयादवचन्द्रजीके [illegible]।

सेवाका अवसर ही सौभाग्य है

श्रीईश्वरचन्द्र विद्यासागर अपने मित्र श्रीगिरीशचन्द्र विद्यारत्नके साथ बंगालके कालना नामक गाँव जा रहे थे। मार्गमें उनकी दृष्टि एक लेटे हुए मजदूरपर पड़ी। उसे हैजा हो गया था। मजदूरकी भारी गठरी एक ओर लुढ़की पड़ी थी। उसके मैले कपड़ोंसे दुर्गन्ध आ रही थी। लोग उसकी ओरसे मुख फेरकर वहाँसे शीघ्रतापूर्वक चले जा रहे थे। बेचारा मजदूर उठनेमें भी असमर्थ था।

'आज हमारा सौभाग्य है।' विद्यासागर बोले।

'कैसा सौभाग्य?' विद्यारत्नने पूछा।

विद्यासागरने कहा—'किसी दीन-दुःखीकी सेवाका अवसर प्राप्त हो, इससे बढ़कर [illegible] बेचारा यहाँ [illegible] है। [illegible] होता तो क्या [illegible] दोनों इस समय इसके [illegible]'

एक दरिद्र, [illegible]
[illegible] दूर [illegible] है—[illegible]
[illegible] और उसके [illegible]
रहते। [illegible]
और [illegible]

[illegible] पहुँचे। मजदूरको रखनेकी सुव्यवस्था की, [illegible] चिकित्साके लिये बुलाया और जब मजदूर दो-एक दिनमें उठने-बैठने योग्य हो गया, तब उसे कुछ पैसे देकर वहाँसे लौटे।

नौकरके साथ उदार व्यवहार

[illegible] राय बंगालके कृष्णनगर राज्यके उच्च [illegible] नियुक्त थे। नरेश उन्हें अपने मित्रकी भाँति [illegible]। बहुत समयतक तो वे राजभवनके ही [illegible] निवास करते थे। उस समय जाड़ेकी [illegible] एक दिन वे बहुत अधिक रात बीतनेपर अपने शयन-कक्षमें पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि उनका एक [illegible] सेवक उनकी शय्यापर पैतानेकी ओर सो रहा है। श्रीरायने एक चटाई उठायी और उसे बिछाकर [illegible] भूमिपर ही सो गये।

[illegible] नरेशको सवेरे-सवेरे कोई उत्तम समाचार [illegible]। प्रसन्नताके मारे नरेश स्वयं श्रीरायको वह समाचार सुनाने उनके शयन-कक्षकी ओर चले आये। नरेशने उनका नाम लेकर पुकारा, इससे रायमहोदय हड़बड़ाकर उठ बैठे। शय्यापर सोया नौकर भी जाग गया और डरता हुआ दूर खड़ा हो गया।

राजाने समाचार सुनानेसे पहले पूछा—'राय महाशय! यह क्या बात है? आप भूमिपर सोते हैं और सेवक शय्यापर।'

श्रीरायने कहा—'मैं रातमें लौटा तो यह शय्याके पैताने सो गया था। मुझे लगा कि इसका स्वास्थ्य ठीक नहीं होगा अथवा यह बहुत अधिक थक गया होगा काम करते-करते। शय्यापर तनिक लेटते ही नींद आ गयी होगी। जगा देनेसे इसे कष्ट होता और चटाईपर सो जानेमें मुझे कोई असुविधा थी नहीं।'

भगवान्‌का विधान

[illegible] समयकी घटना है। महात्मा विजयकृष्ण [illegible] अध्यात्मका प्रचार कर रहे थे; दैवयोगसे वे [illegible] पहुँचे। एक धर्मशालामें ठहरे हुए थे। [illegible] अचानक नींदका परित्याग कर उठ बैठे। [illegible] थे।

[illegible] पाप-चिन्ताके अधीन है। कहनेके [illegible], पर मनमें पापका ही राज्य है। [illegible] नहीं मिल सकी मुझे।' उनका रोम-[illegible]। वे पश्चात्तापसे क्षुब्ध थे। वे आधी रातमें [illegible] दरवाजा खोलकर राजपथपर गये और [illegible] भगवती गङ्गाके तटपर आ पहुँचे।

[illegible] शान्त था। जल स्थिर था। निर्जन [illegible] बड़ी भयावनी थी। विजयकृष्ण [illegible] दाहिना पैर डाला ही था कि [illegible] उठे एक अपरिचित आवाजसे।

[illegible] करते हो! लौट जाओ। आत्महत्या पाप है।' [illegible] ही सावधान किया।

'मैं नहीं लौट सकता। इस शरीरको त्रिवेणीकी मध्य-धारामें प्रवाहित करके ही रहूँगा। इसने आजतक पाप-ही-पाप कमाये हैं। दुनियाको सत्य-पालनका उपदेश देकर स्वयं असत्यका आचरण किया है इसने।' महात्मा विजयकृष्ण अपने निश्चयपर दृढ़ थे।

'वत्स! शरीर-नाशसे पापका नाश नहीं होता है। यदि तुम ऐसा समझते हो तो यह तुम्हारी भूल है। तुम्हारे शरीर-नाशका समय अभी नहीं आया है। तुम्हें भगवान्‌की कृपासे अभी बड़े आवश्यक कार्य करने हैं। भगवान्‌का विधान पहलेसे निश्चित रहता है। उसमें हेर-फेर असम्भव है। तुम्हारा काम केवल इतना ही है कि विश्वेश्वर परमात्माकी लीलाके दर्शन करो।' एक महात्माने तत्काल प्रकट होकर उनको आत्महत्यासे रोका।

महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामीकी निराशाका अन्त हो गया अपरिचित महात्माके उद्‌बोधनसे और वे धर्मशालामें लौट आये।

अद्भुत उदारता

सेवाका अवसर

सबमें भगवद्दर्शन

ठीकरी-पैसा बराबर

शरीरका सदुपयोग

आत्म-सम्बन्ध

सत्रमें भगवद्दर्शन

नाग महाशयकी झोंपड़ी पुरानी हो चुकी थी। उसकी मरम्मत आवश्यक थी। मजदूर बुलाया गया। परंतु जब वह इनके घर पहुँचा तो नाग महाशयने उसे हाथ पकड़कर चटाईपर बैठाया। आप तम्बाकू भर लाये चिलममें उसको पीनेके लिये। वह छप्परपर चढ़ने लगा तो रोने लग गये—'इतनी धूपमें भगवान् मेरे लिये श्रम करेंगे!'

बहुत प्रयत्न करनेपर भी मजदूर रुका नहीं, छप्परपर चढ़ गया तो आप छत्ता लेकर उसके पीछे जा खड़े हुए। उसके मस्तकपर पसीना आते ही हाथ जोड़ने लगे—'आप थक गये हैं। अब कृपा करके नीचे चलिये। कम-से-कम तम्बाकू तो पी लीजिये।'

इसका परिणाम यह हुआ था कि [illegible] कहीं चले जाते थे, तब मजदूर इनके घर [illegible] काम करते थे।

× × ×

'आप बैठिये! बैठिये भगवन्! [illegible] है न! आपकी सेवा करनेके लिये।' [illegible] महाशय मल्लाहके हाथमें [illegible] बड़ा संकोच होता था कि वे बैठे रहें और [illegible] सत्पुरुष परिश्रम करता रहे। परन्तु नाग [illegible] यह कैसे सहा जाय कि उनकी [illegible] श्रम करें और सभी रूपोंमें भगवान् हैं [illegible] विचार-विश्वास नहीं, दृढ़ निश्चय था।

ठीकरी पैसा बराबर

परमहंस रामकृष्णदेव गङ्गा-किनारे बैठ जाते थे एक ओर रुपये-पैसोंका ढेर लगाकर और एक ओर कंकड़ोंकी ढेरी रखकर। एक मुट्ठीमें पैसे और एकमें कंकड़ लेकर वे कहते—'यह कंकड़, यह पैसा' और फेंक देते दोनों मुट्ठी गङ्गामें।

'ये कंकड़' वे पैसोंकी मुट्ठीको देखकर कहते और फिर कंकड़ोंकी मुट्ठीको देखकर कहते—[illegible] दोनों मुट्ठी फिर गङ्गाजीमें विसर्जित हो जातीं।

परमहंसदेवके इस अभ्यासने [illegible] हो गयी कि उनके शरीरसे कोई [illegible] तो वह अङ्ग सूना पड़ जाता। [illegible] चेतना लौटती।

शरीरका सदुपयोग

एक समय स्वामी विवेकानन्दको इस बातका बड़ा दुःख हुआ कि उन्होंने अभीतक ईश्वरका दर्शन नहीं किया, भगवान्की अनुभूति नहीं प्राप्त की। उस समय वे परिव्राजक जीवनमें थे। उन्होंने अपने-आपको धिक्कारा कि मैं कितना अभागा हूँ कि मनुष्य-शरीर पाकर भी ईश्वरका साक्षात्कार नहीं कर सका। उन्हें बड़ी आत्म-ग्लानि हुई।

उन्होंने वनमें प्रवेश किया। सूर्य अस्ताचलको जा चुके थे। समस्त वन अन्धकारसे परिपूर्ण था। स्वामीजी भूखसे विह्वल थे। थोड़े ही समयके बाद उन्हें [illegible] शेर दीख पड़ा। स्वामीजी प्रसन्न [illegible]

'भगवान्ने ठीक [illegible] भूखा है। मैं भी [illegible] बचाऊँ क्यों! इस [illegible] नहीं कर सका, इसलिये इसकी [illegible] नहीं है।'

[illegible]

[illegible]

आत्मसम्बन्ध

स्वामी रामतीर्थ जापानसे अमेरिका जा रहे थे। प्रशान्त महासागरका वक्ष विदीर्ण करता हुआ उनका जहाज सान फ्रांसिस्कोके एक बंदरगाहपर आ लगा। सब यात्री उतर गये। जहाजके डेकपर स्वामी रामतीर्थ टहल रहे थे। ऐसा लगता था कि वे जहाजसे उतरना ही नहीं चाहते हों। एक अमेरिकन सज्जन उनकी गति-विधिका निरीक्षण कर रहे थे।

'आपका सामान कहाँ है? आप उतरते क्यों नहीं हैं?' अमेरिकन सज्जनका प्रश्न था।

'जो कुछ मेरे शरीरपर है उसके सिवा मेरे पास दूसरा कोई सामान नहीं है।' भारतीय संन्यासीके उत्तरसे जागतिक ऐश्वर्यमें मग्न रहनेवाले अमेरिकनका आश्चर्य बढ़ गया। स्वामीजीका गेरुआ वस्त्र उनके गौर-वर्ण, तमस्वर्ग शरीरपर आन्दोलित था मानो पाताल देशकी राजसत्तापर विजय पानेके लिये सत्यका अरुण केतन फहरा रहा हो। वे मन्द-मन्द मुसकरा रहे थे, ऐसा लगता था मानो उनके हृदयकी करुणा नये विश्वका उद्धार करनेके लिये विकल हो गयी हो।

'आपके रुपये-पैसे कहाँ हैं।' सज्जनका दूसरा प्रश्न था।

'मैं अपने पास कुछ नहीं रखता। समस्त जड-चेतनमें मेरी आत्माका रमण है। मैं अपने (आत्म) सम्बन्धियोंके प्रेमामृतसे जीवित रहता हूँ। भूख लगनेपर कोई रोटीका टुकड़ा दे देता है तो प्यास लगनेपर पानी पिला देता है। समस्त विश्व मेरा है। इस विश्वमें रमण करनेवाला सत्य ही मेरा प्राण-देवता है। कभी पेड़के नीचे रात कटती है तो कभी आसमानके तारे गिनते-गिनते आँखें लग जाती हैं।' त्याग-मूर्ति रामने वेदान्त-तत्त्वका प्रतिपादन किया।

'पर यहाँ अमेरिकामें आपका परिचित कौन है?' स्वामीजीसे अमेरिकन महानुभावका यह तीसरा प्रश्न था।

'(मुसकराते हुए बोले)—आप। भाई! अमेरिकामें तो केवल मैं एक ही व्यक्तिको जानता हूँ। चाहे आप परिचित कह लें या मित्र अथवा साथीके नामसे पुकार लें और वह व्यक्ति आप हैं। महात्मा रामतीर्थने उनके कंधेपर हाथ रख दिया। वे संन्यासीके स्पर्शसे धन्य हो गये। स्वामीजी उनके साथ जहाजसे उतर पड़े। नयी दुनियाकी धरतीने उनकी चरण-धूलिका स्पर्श किया, वह धन्य हो गयी।

'स्वामी रामतीर्थ हिमालयकी कन्दराओंसे उदय होनेवाले सूर्यके समान हैं। न अग्नि उनको जला सकती है, न अस्त्र-शस्त्र उनका अस्तित्व नष्ट कर सकते हैं। आनन्दाश्रु उनके नेत्रोंसे सदा छलकते रहते हैं। उनकी उपस्थितिमात्रसे हमें नवजीवन मिलता है।' अमेरिकन सज्जनके ये उद्गार थे भारतीय आत्ममानवके प्रति।

मेहतरके लिये पगड़ी

(लेखक—श्रीहरिकृष्णदासजी गुप्त 'हरि')

दिल्लीमें अनेकों प्रसिद्ध लाला हुए; परंतु जो शोहरत लाला महेशदासको नसीब हुई, उसका शतांश भी और किसीके हिस्सेमें नहीं आया। दिल्लीके बच्चे-बच्चेकी जबानपर उनका नाम था और दिलपर उनकी छाप। वे प्रतिष्ठित घरानेके थे, धन-वैभवसे सुसम्पन्न थे; दूर-दूरतक उनकी पहुँच थी;—यह सब ठीक, परंतु उनकी ख्याति इनमेंसे एकपर भी आश्रित न थी। उसका रहस्य तो था उनकी परदुःख-कातरतामें,

प्रत्येकके लिये सदैव सर्वत्र सहज सुलभ असीम आत्मीयतामें। जन-जन उनके घरको अपना घर और उनके तन-मन-धनको अपना तन-मन-धन समझता था; उनके साथ एकान्त आत्मीयताका अनुभव करता था।

ठीक-ठीक कैसे थे लाला महेशदास!- इसका कुछ अनुमान निम्नलिखित उनकी एक जीवन-झाँकीसे हो सकेगा—

एक दिनकी बात है। सुबहके समय जब लाला महेशदासके यहाँकी मेहतरानी उनके यहाँ मैला कमाने आयी, तब वह एकदम उदास थी। उसका मुँह बिल्कुल उतरा हुआ था। आँखें मुर्झायी-मुर्झायी, सूखी-सूखी और बीरबहूटी-सी लाल थीं। ऐसा लगता था जैसे घंटों उसे लगातार रोते रहना पड़ा हो और अभी भी बादल छाये हुए हों। लाला महेशदासकी धर्मपत्नी लालाइनने उसे देखा तो तुरंत समझ गयीं कि कोई बात है। सहानुभूतिभरे स्वरमें पूछा—'क्यों, क्या बात है!-ऐसी क्यों हो रही है!'

घिरे बादल सहानुभूतिका स्पर्श पाते ही पुनः बरस पड़े, रोते-रोते मेहतरानी बोली—

'कुछ न पूछो बहूजी! हम तो मर लिये। जिसकी आबरू गयी, उसका रहा क्या!'

'कुछ बता भी तो बात क्या है!'

लालाइनके स्वरमें अपनापन और प्रखर हुई।

मेहतरानीने डूबते-उतराते ठंडी साँस भरते कहा—

'क्या बताऊँ बहूजी! मौत है मौत! आज तुम्हारे मेहतरको जात-बाहर कर देंगे। पंचायत है तीसरे पहर मैदानमें।'

'जात-बाहर कर देंगे! आखिर उसका अपराध!'

'अपराध तो है ही बहूजी! बिना अपराध सजा थोड़े ही मिलती है—पंच-परमेसरके दरबारसे!'

'फिर भी ऐसा किया क्या उसने!'

'उनका किया मेरे मुँहपर कैसे [illegible] बहूजी! आप भी औरत हैं। मर्द लाख बुरा हो, पर औरतके मुँहपर उसकी बुराई कैसे आवे! फिर भी इतना मुझे भरोसा है कि यदि अबकी बार [illegible] मिल [illegible] तो वे आगे सदा नेक चलनसे चलेंगे। और नहीं तो, बहूजी! हम दीनके रहेंगे, न दुनियाके। बाल-बच्चे [illegible] ही मरेंगे। तुम्हारा ही भरोसा है। लालाजीसे कह देखो [illegible]।'

इतना कह मेहतरानी फूट-फूटकर रोने लगी। रह-रहकर उसकी सुबकियोंसे [illegible] और लालाइनका कलेजा चीरा जाता था। लालाइनने कुछ क्षण सोचा; फिर बोलीं—

'भरोसा तो रखना चाहिये भगवान्‌का! हमारी बिसात क्या! पर तू चिन्ता न कर। भगवान् सब भली करेंगे।'

मेहतरानीके चला कर चले जानेके पश्चात् [illegible] लालाजीके पास आयीं और उन्हें [illegible] कह सुनायी। कुछ-कुछ भनक तो बैठकमें बैठे [illegible] कानोंमें पहिले ही पड़ गयी थी, अब [illegible] समझ धीरेसे दु:खभरे स्वरमें बोले—

'दिल तो मेरा भी बहुत भारी हो रहा है, पर [illegible] बेढब है। पार पड़नी दिखायी नहीं देती।'

'यह सब मैं नहीं जानती। [illegible] बीचमें पड़ना ही होगा। [illegible] तब ही चलेगा, जब यह [illegible] मरनेसे बदतर हो रही है बेचारी [illegible] यह भी न [illegible], मेहतर भी [illegible]

[illegible]

[illegible] गया।

[illegible] महेशदास [illegible] कोई उत्तर नहीं दिया। [illegible]

और उनकी गम्भीर मुखाकृतिसे स्पष्ट झलक रहा था कि वे गहरे सोचमें पड़ गये हैं।

सोचते-सोचते जाने क्या सूझा कि लालाजी खिल पड़े। शायद वही चीज हाथ लग गयी जिसकी उन्हें तलाश थी। सोचके चंगुलसे छूट अब वे खिले-खिले अपने नित्यकर्मके कामोंमें लग गये, पर कभी-कभी उनके चेहरेपर एक विराग-व्यथा-सी झलक मार जाती थी।

तीसरे पहर बग्घी जुतवाकर लालाजी उसी मैदानमें पहुँचे, जहाँ पेड़तले मेहतरोंकी पंचायत हो रही थी। पैरोंमें सलेमशाही जोड़ा, चूड़ीदार पाजामा, बारीक मलमलका कुरता, ऊपर तंजेबका अँगरखा और सिरपर झकाझक सफेद पगड़ी पहिने अपनी उत्तमोत्तम वेषभूषामें थे वे उस समय। गाड़ीसे उतरकर ज्यों ही वे मेहतरोंकी पंचायतमें पहुँचे, उन्हें देखते ही पंचोंसहित सब मेहतर उठ खड़े हुए। 'लाला महेशदास आये' 'लाला महेशदास आये' का शोर मच गया, 'लालाजी! क्या हुक्म है? लालाजी! क्या आज्ञा है?' की आवाजें चारों ओरसे आने लगीं।

लालाजीने सबसे राम-राम किया और फिर सबसे बैठनेकी प्रार्थना कर आप भी अपने घरके मेहतरकी बगलमें, जो बेचारा एक कोनेमें आँख झुकाये, सिर लटकाये बैठा था, जा बैठे। 'हैं! हैं! लालाजी' यह आप क्या करते हैं?' 'हमें काँटोंमें क्यों घसीट रहे हैं' आदि लोगोंके लाख कहनेपर भी लालाजीने किसीकी एक नहीं मानी। यह कहते हुए कि 'भाइयो! आज तो मेरी जगह यहीं इसके बराबर ही है' अपने घरके मेहतरकी बगलमें ही बैठे रहे।

आखिर समस्त पंचायतके भावोंको मूर्तरूप देता हुआ सरपंच लालाजीसे बोला—

'कहिये लालाजी! कैसे दया की? क्या हुक्म है?' लालाजीने यह सुनकर उत्तरमें अपनी पगड़ी सिरसे उतारकर पंचोंके पैरोंमें रख दी और भरे गलेसे गिड़गिड़ाते हुए कहा—

'भाइयो! आपका अपराधी (घरके मेहतरकी ओर संकेत करते हुए) यह नहीं, मैं हूँ। अब यह पगड़ी आपके चरणोंमें है। चाहे मारिये, चाहे जिलाइये। बखशिये, चाहे सजा दीजिये। बेउज्र हूँ। आपके तावे हूँ।'

लालाजीकी बातसे पंचायतमें सन्नाटा छा गया। पंच भी बड़े चक्करमें पड़े। लालाजीके मेहतरको जात-बाहर करनेका लालाजीके आनेसे पहिले ही लगभग अन्तिम निश्चय हो चुका था। पर अब बात आ पड़ी थी बीचमें कुछ और, लालाजीकी पगड़ी मौन पड़ी हुई भी एक-एक दिलमें हलचल मचा रही थी। कुछ क्षणोंके लिये पंचोंने परस्पर विचार-विनिमय किया और फिर सरपंच गम्भीर आवाजमें बोला—

'कसूर तो इसका (लालाजीके मेहतरका) ऐसा था कि किसी मदपर भी माफ नहीं किया जा सकता था। पर यह पगड़ी आड़े आयेगी, इसका हमें सपनेमें भी गुमान नहीं था। लाला महेशदासका हुकुम सिरमाथेपर। वे किरपा करके अपनी पगड़ी अपने सिरपर रक्खें, उसे यूँ पड़ी देख हम लरज रहे हैं, लज्जासे कट रहे हैं, उनके मेहतरको माफ किया जाता है।'

सरपंचके फैसला सुनाते ही लालाजीने पंचोंको धन्यवाद देते हुए अपनी पगड़ी उठाकर पहिन ली। लालाजीके घरके मेहतरकी खुशीका तो कोई ठिकाना ही न था! लालाजीके इस मान-मर्यादा-त्यागके बलपर अनायास छुटकारा पा वह कृतज्ञतासे गद्‌गद होकर लालाजीके चरणोंमें लोट गया। लालाजी सात्त्विक संकोचमें पड़कर बोले—

'मेरे पैरों नहीं भाई! पंचोंके पैरों पड़, जिन्होंने मुझे माफ किया। मेरी माने तो अब सदा आदमी

कहना नहीं होगा कि श्रीअरविन्दने अपने जीवनमें न जाने कितनी अमूल्य सामग्रीका निर्माण किया होगा। वह सब यदि प्रकाशमें आ जाती तो आज साहित्यकी कितनी अभिवृद्धि हुई होती।

मुझे अशर्फियोंके थाल नहीं, मुट्ठी भर आटा चाहिये

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

पण्डित श्रीरामजी महाराज संस्कृतके महान् धुरन्धर विद्वान् थे। संस्कृत आपकी मातृभाषा थी। आपका सारा परिवार संस्कृतमें ही बातचीत करता था। आपके यहाँ सैकड़ों पीढ़ियोंसे इसी प्रकार संस्कृतमें ही बातचीत करनेकी परम्परा चली आयी थी। आपके पूर्वजोंकी यह प्रतिज्ञा थी कि हम न तो संस्कृतको छोड़कर एक शब्द दूसरी भाषाका बोलेंगे और न सनातनधर्मको छोड़कर किसी भी मत-मतान्तरके चक्करमें फँसेंगे। मुट्ठी-मुट्ठी अन्न माँगकर पेट भरना पड़े तो भी चिन्ता नहीं, भिखारी बनकर भी देववाणी संस्कृतकी, वेद-शास्त्रोंकी और सनातन धर्मकी रक्षा करेंगे। इस प्रतिज्ञाका पालन करते हुए पं० श्रीरामजी महाराज अपनी धर्मपत्नी तथा बाल-बच्चोंको लेकर श्रीगङ्गाजीके किनारे-किनारे विचरा करते थे। पाँच-सात मील चलकर सारा परिवार गाँवसे बाहर किसी देवमन्दिरमें या वृक्षके नीचे ठहर जाता। ये गाँवमें जाकर आटा माँग लेते और रूखा-सूखा जैसा होता, अपने हाथोंसे बनाकर भोजन पा लेते। अगले दिन फिर श्रीगङ्गाकिनारे आगे बढ़ जाते। अवकाशके समय बच्चोंको संस्कृतके ग्रन्थ पढ़ाते जाते तथा स्तोत्र कण्ठ कराते।

एक बार श्रीरामजी महाराज घूमते-घामते एक राजाकी रियासतमें पहुँच गये और गाँवसे बाहर एक वृक्षके नीचे ठहर गये। दोपहरको शहरमें गये और मुट्ठी-मुट्ठी आटा घरोंसे माँग लाये। उसीसे भोजन बनने लगा। आपकी धर्मपत्नी भी पतिव्रता थीं और बच्चे भी ऋषि-पुत्र थे। अकस्मात् राजपुरोहित उधर आ निकले। उन्होंने देखा कि एक ब्राह्मणपरिवार वृक्षके नीचे ठहरा हुआ है। मस्तकपर तिलक, गलेमें यज्ञोपवीत, सिरपर लम्बी चोटी, ऋषि-मण्डली-सी प्रतीत हो रही है। पास आकर देखा तो रोटी बनायी जा रही है। छोटे बच्चे तथा ब्राह्मणी सभी संस्कृतमें बोल रहे हैं। हिंदीका एक अक्षर न तो समझते हैं न बोलते हैं। राजपुरोहितको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। राजपुरोहितजीने पं० श्रीरामजी महाराजसे संस्कृतमें बातें कीं। उनको यह जानकर और भी आश्चर्य हुआ कि आजसे नहीं, सैकड़ों वर्षोंसे इनके पूर्वज संस्कृतमें बोलते चले आ रहे हैं और संस्कृतकी, धर्मकी तथा वेद-शास्त्रोंकी रक्षाके लिये ही भिखारी बने मारे-मारे डोल रहे हैं। राजपुरोहितने आकर सारा वृत्तान्त राजा साहबको सुनाया तो राजा साहब भी सुनकर चकित हो गये। उन्होंने पुरोहितसे कहा कि 'ऐसे ऋषि-परिवारको महलोंमें बुलाया जाय और मुझे परिवारसहित उनके दर्शन-पूजन करनेका सौभाग्य प्राप्त कराया जाय।'

राजा साहबको साथ लेकर राजपुरोहित उनके पास आये और उन्होंने राजमहलमें पधारनेके लिये हाथ जोड़कर प्रार्थना की। पण्डितजीने कहा कि 'हमें राजाओंके महलोंमें जाकर क्या करना है। हम तो श्रीगङ्गा-किनारे विचरनेवाले भिक्षुक ब्राह्मण हैं।' राजा साहबके बहुत प्रार्थना करनेपर आपने अगले दिन सपरिवार राज-महलमें जाना स्वीकार कर लिया। इससे राजाको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने स्वागतकी खूब तैयारी की। अगले दिन जब यह ऋषि-परिवार आपके यहाँ पहुँचा, तब वहाँ हजारों स्त्री-पुरुषोंका जमघट हो गया। बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ श्रीरामजी महाराज, आपकी धर्मपत्नी और बच्चोंको लाया गया और सुवर्णके सिंहासनोंपर बैठाया गया। राजा साहबने स्वयं अपनी रानीसहित सोनेके

पात्रोंमें ब्राह्मणदेवता, ब्राह्मणी तथा बच्चोंके चरण धोकर पूजन किया, आरती उतारी और चाँदीके थालोंमें सोनेकी अशर्फियाँ और हजारों रुपयोंके बढ़िया-बढ़िया दुशाले लाकर सामने रख दिये। सबने यह देखा कि उस ब्राह्मण-परिवारने उन अशर्फियों और दुशालोंकी ओर ताका तक नहीं। जब स्वयं राजा साहबने भेंट स्वीकार करनेके लिये करबद्ध प्रार्थना की, तब पण्डितजीने धर्मपत्नीकी ओर देखकर पूछा कि 'क्या आजके लिये आटा है?' ब्राह्मणीने कहा—'नहीं तो।' आपने राजा साहबसे कहा कि 'बस आजके लिये आटा चाहिये। ये अशर्फियोंके थाल और दुशाले मुझे नहीं चाहिये।'

राजा साहब—महाराज! मैं क्षत्रिय हूँ, दे चुका, स्वीकार कीजिये।

पण्डितजी—मैं ले चुका, आप वापस ले जाइये।

राजा साहब—क्या दिया दान वापस लेना उचित है!

पण्डितजी—त्यागी हुई वस्तुका क्या फिर संग्रह करना उचित है!

राजा साहब-महाराज! मैं अब क्या करूँ!

पण्डितजी—मैं भी लाचार हूँ।

राजा साहब—यह अन्न ले ही लीजिये।

पण्डितजी—राजा साहब! हम ब्राह्मणोंका धन [illegible] है। इसीमें हमारी शोभा है, [illegible] है। आप क्षत्रिय हैं, हमारे [illegible] कीजिये।

राजा साहब—क्या यह उचित होगा कि दिया हुआ दान वापस ले लें। क्या इससे सनातन-धर्मको क्षति नहीं पहुँचेगी!

पण्डितजी—अच्छा, इसे हमने ले लिया, अब इसे हमारी ओरसे अपने राजपुरोहितको दे दीजिये। हमारे और आपके दोनोंके धर्मकी रक्षा हो गयी।

सबने देखा कि ब्राह्मण-परिवार [illegible] और अब सोनेकी अशर्फियोंसे भरे चाँदीके थाल, दुशाले [illegible] ठुकराकर जंगलमें चले जा रहे हैं और फिर [illegible] करनेमें संलग्न हैं!

ब्रजवासियोंके टुकड़ोंमें जो आनन्द है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

श्रीवृन्दावनधामके बाबा श्रीश्रीरामकृष्णदासजी महाराज बड़े ही उच्चकोटिके महापुरुष थे। आप गौड़ीय सम्प्रदायके महान् विद्वान्, घोर त्यागी, तपस्वी संत थे। आप प्रातःकाल चार बजे श्रीयमुनाजीका स्नान करके अपनी गुफामें बैठा करते थे और भजन-ध्यान करके संध्याके समय बाहर निकलते थे। आप स्वयं ब्रजवासियोंके घर जाकर सूखे टूक माँग लाते और श्रीयमुनाजलमें भिगोकर उन्हें खा लेते। फिर भजन-ध्यानमें लग जाते। बड़े-बड़े राजा-महाराजा करोड़पति सेठ आपके दर्शनार्थ आते, पर आप लाख प्रार्थना करनेपर भी न तो गुफासे कहीं बाहर जाते और न किसीसे एक पाई लेते तथा न किसीका कुछ खाते। निर्लोभ [illegible] ऐसी ही आपकी सारी [illegible] थी। एक दिन [illegible] कारमें राजस्थानके एक राजा साहब [illegible] ताप फलोंसे भरे कई टोकरे थे। [illegible] से उतरकर राजा साहब [illegible] साष्टाङ्ग प्रणाम करके [illegible] दिये। बाबाने पूछा—[illegible]

राजा साहब—[illegible] दिखता है।

बाबा—[illegible]

राजा साहब—[illegible]

[illegible] है!

राजा साहब—इनमें सेब, संतरे, अनार, अंगूर आदि फल हैं ।

बाबा—इन्हें क्यों लाये ?

राजा साहब—महाराज ! आपके लिये ।

बाबा—हम इनका क्या करेंगे ?

राजा साहब—महाराज ! इन्हें पाइये ।

बाबा—भाई ! हमें इन फलोंसे क्या मतलब । हम तो व्रज-चौरासीको छोड़कर इन्द्र बुलाये तो भी न तो वहाँ जायँगे और न व्रजवासियोंके घरोंसे माँगे टूक छोड़कर छप्पन प्रकारके भोजन मिलते हों तो उनकी ओर आँख उठाकर देखेंगे। हम तो अपने लालाके घरमें हैं और उसीके घरके व्रजवासियोंके टूक माँगकर खाते हैं तथा लालाका स्मरण करते हैं । हमें तुम्हारे यह फल आदि नहीं चाहिये । इन्हें ले जाकर और किसीको दे दो । भैया ! कन्हैयाके इन व्रजवासियोंके सूखे टुकड़ोंमें जो आनन्द है वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है ।

राजा साहब यह सुनकर चकित हो गये ।

आदर्श बी० ए० बहू

(लेखक—पं० श्रीरामनरेशजी त्रिपाठी)

बात न पुरानी है, न सुनी हुई कहानी है । कानसे ज्यादा आँखें जानती हैं । कहानीके सभी पात्र जीवित हैं; अतएव नाम बदलकर ही कहना होगा ।

एक रिटायर्ड जज हैं । कहा जाता है कि उन्होंने कभी रिश्वत नहीं ली थी । धार्मिक विचारोंके सद्गृहस्थ हैं । दावतोंमें, पार्टियोंमें, मित्रोंके यहाँ खान-पानमें वे चाहे जितने स्वतन्त्र रहे हों, पर घरके अंदर रसोई-घरकी रूढ़ियोंके पालनमें न असावधानी करते थे, न होने देते थे ।

गृहिणी शिक्षिता हैं; सभा-सोसाइटियोंमें, दावतोंमें पतिके साथ खुलकर भाग लेती रही हैं; पर घरके अंदर चूल्हेकी मर्यादाका वे पतिसे भी अधिक ध्यान रखती हैं । तुलसीको प्रत्येक दिन सवेरे स्नान कराके जल चढ़ाना और संध्या समय उसे धूप-दीप देना और उसके चबूतरेके पास बैठकर कुछ देर रामचरितमानसका पाठ करना—यह उनका नियमित काम है, जो माता-पिताके विरासतकी तरह नित्य है और कभी छूट नहीं सकता ।

जज साहबके कोई पुत्र नहीं; एक कन्या है। जिसका नाम लक्ष्मी है । माता-पिताकी एक ही संतान होनेके कारण उसे उनका पूर्ण स्नेह प्राप्त था। लक्ष्मीको भगवान्‌ने सुन्दर रूप दिया है ।

लक्ष्मीको खर्च-वर्चकी कमी नहीं थी । युनिवर्सिटीमें पढ़नेवाली साथिनोंमें वह सबसे अधिक कीमती और आकर्षक वेष-भूषामें रहा करती थी। वह स्वभावकी कोमल थी, सुशील थी, घमंडी नहीं थी । घरमें आती तो माँके साथ मेमनेकी तरह पीछे-पीछे फिरा करती थी । माँकी इच्छासे वह तुलसीके चबूतरेके पास बैठकर तुलसीकी पूजामें भी भाग लेती और माँसे अधिक देरतक बैठकर मानसका पाठ भी किया करती थी । भारतीय संस्कृति और युनिवर्सिटीकी रहन-सहनका यह अद्भुत मिश्रण था ।

जज साहबकी इच्छा थी कि लक्ष्मी बी० ए० पास कर ले, तब उसका विवाह करें । वे कई वर्षोंसे सुयोग्य वरकी खोजमें दौड़-धूप कर रहे थे । बी० ए० कन्याके लिये एम० ए० वर तो होना

ही चाहिये; पर कहीं एम्० ए० वर मिलता तो कुरूप मिलता; कहीं भयंकर खर्चीली जिंदगीवाला पूरा साहब मिलता; कहीं दहेज इतना माँगा जाता कि रिश्वत न लेनेवाला जज दे नहीं सकता। कन्याके पिताको जज, डिप्टी कमिश्नर, डिप्टी कलक्टर आदि शब्द कितने महँगे पड़ते हैं; यह वे ही जान सकते हैं।

लक्ष्मीने बी० ए० पास कर लिया और अच्छी श्रेणीमें पास किया। अब वह पिताके पास परायी पातीकी तरह हो गयी। अब उसे किसी नये घरमें बसा देना अनिवार्य हो गया। जज साहब वर खोजते-खोजते थक चुके थे और निराश होकर पूजा-पाठमें अधिक समय लगाने लगे थे।

मनुष्यके जीवनमे कभी-कभी विचित्र घटनाएँ घट जाती हैं। क्या-से-क्या हो जाता है; कुछ पता नहीं चलता। एक दिन शहरकी एक बड़ी सड़कपर जज साहब अपनी कारमें बैठे थे। एंजिनमें कुछ खराबी आ गयी थी, इससे वह चलता नहीं था। ड्राइवर बार-बार नीचे उतरता, एंजिनके पुरजे खोलता-कसता; तार मिलाता, पर कामयाब न होता। उसने कई साधारण श्रेणीके राह-चलतोंको कहा कि वे कारको ढकेल दें, पर किसीने नहीं सुना। सूट-बूट-वालोंको कहनेका उसे साहस ही नहीं हुआ। एक नवयुवक, जो बगलसे ही जा रहा था और जिसे बुलाने-की ड्राइवरको हिम्मत भी न होती, अपने-आप कारकी तरफ मुड़ पड़ा और उसने ड्राइवरको कहा—'मैं ढकेलता हूँ, तुम स्टेयरिंग पकड़ो।'

ड्राइवरने कहा—'गाड़ी भारी है, एकके मानकी नहीं।'

युवकने मुसकराकर कहा—देखो तो सही।

ड्राइवर अपनी सीटपर बैठ गया। युवकने अकेले ही गाड़ीको दूरतक ढकेल दिया। एंजिन चलने लगा।

जज साहबने युवकको [illegible], [illegible] [illegible]। युवकका चेहरा [illegible] [illegible] [illegible] रहा था। चेहरेकी बनावट भी सुन्दर थी। [illegible] पड़ती थी। फिर भी पोशाक बहुत [illegible]—[illegible], कुरता और चप्पल। [illegible] बहुत [illegible] थी और धोती तथा कुरतेके कपड़े [illegible] किस्मके थे। फिर भी आँखोंकी [illegible] और [illegible] गम्भीर भावोंकी झलक देखकर [illegible] बात किये बिना रह नहीं सके।

एंजिन चल रहा था, ड्राइवर [illegible] था। जज साहबने युवकसे कहा—[illegible] इसी तरफ चल रहे हैं आइये, बैठ [illegible]। [illegible] जहाँ चाहियेगा, उतर जाइयेगा।

युवक जज साहबकी कारमें [illegible] बैठ गया। जज साहबने पूछ-ताछ की तो युवकने बताया कि वह युनिवर्सिटीका छात्र है। [illegible] जिलेके एक [illegible] कुटुम्बका लड़का है। मैट्रिकसे लेकर एम० ए० [illegible] बराबर प्रथम आते रहनेसे उसे छात्रवृत्ति मिलती रही, उससे और कुछ अंग्रेजी [illegible] [illegible] अधिक पाकर उसने एम० ए० प्रथम श्रेणीमें [illegible] लिया और अब उसे विदेशमें जाकर [illegible] करने-के लिये सरकारी छात्रवृत्ति मिली है। [illegible] अंदर विदेश [illegible]।

जज साहबको [illegible] पाई' जैसा हो गया। [illegible] पर आ गये। [illegible] कहा—[illegible]

[illegible]

प्रेमपूर्वक जलपान कराया। इसके बाद युवकको जज साहब अक्सर बुलाया करते थे और वह आना-जाता रहा।

गरीब युवकके जीवनमें यह पहला ही अवसर था, जब किसी रईसने इतने आदरसे उसे बैठाया और खिलाया-पिलाया हो।

अन्तमें यह हुआ कि जज साहबने लक्ष्मीका विवाह युवकसे कर दिया।

युवकके विदेश जानेके दिन निकट चले आ रहे थे। जज साहबने सोचा कि लक्ष्मी कुछ दिन अपने पतिके साथ उसके गाँव हो आये तो अच्छा; ताकि दोनोंमें प्रेमका बन्धन और दृढ़ हो जाय और युवक विदेशमें किसी अन्य स्त्रीपर आसक्त न हो।

जज साहबका प्रस्ताव सुनकर युवकने कहा—मैं गाँव जाकर घरको ठीक-ठाक करा आऊँ, तब बहूको ले जाऊँ।

युवक गाँव आया। गाँव दूसरे जिलेमें शहरसे बहुत दूर था और पूरा देहात था। उसका घर भी एक टूटा-फूटा खँडहर ही था। उसपर एक सड़ा-गला छप्पर रखा था। उसके नीचे उसका बुड्ढा बाप दिन-भर बैठे-बैठे हुक्का पिया करता था।

युवकके चचा धनी थे और उनकी बखरी बहुत बड़ी और बेटों-पोतों और बहुओंसे भरी हुई थी। युवकने चचासे प्रार्थना की कि उसे वह अपने ही घरका बतायें और पंद्रह दिनोंके लिये उसकी बहूको अपने घरमें रहने दें। चचाने स्वीकार कर लिया।

घरके बाहरी बरामदेमें एक कोठरी थी। युवकने उसीको साफ कराके उसमें जरूरी सामान रखवा दिये; एक कुरसी और मेज भी रखवा दिये। बहू चचाके घरमें खाना खा लिया करेगी और उसी कोठरीमें रहेगी। एक लड़केको नौकर रख लिया गया।

युवक वापस जाकर बहूको ले आया। पाँच-सात दिन बहूके साथ गाँवमें रहकर युवक अपनी विदेश-यात्राकी तैयारी करनेके लिये शहरको वापस गया और बहू चचाके घरमें अकेली रहने लगी। दोनों वक्त घरके अंदर जाकर खाना खा आती और नौकरकी सहायतासे दोनों वक्त कोठरीके अंदर चाय बनाकर पी लिया करती। चायका सामान वह साथ लायी थी।

दो ही चार दिनोंमें बहूका परिचय गाँवकी प्रायः सब छोटी-बड़ी स्त्रियों और बच्चोंसे हो गया। बहूका स्वभाव मिलनसार था। माता-पिताकी धार्मिक शिक्षाओंसे और रामचरितमानसके नियमित पाठसे उसके हृदयमें कोमलता और सहिष्णुता आ गयी थी। सबसे वह हँसकर प्रेमपूर्वक मिलती, बच्चोंको प्यार करती, बिस्कुट देती और सबको आदरसे बैठाती। रेशमी साड़ीके अंदर लुभावने गुण देखकर मैली-कुचैली और फटी धोतियोंवाली ग्रामीण स्त्रियोंकी झिझक जाती रही और वे खुलकर बातें करने लगीं।

बहूको सीना-पिरोना अच्छा आता था, हारमोनियम बजाना और गाना भी आता था। कण्ठ सुरीला था, नम्रता और विनयका प्रदर्शन करना वह जानती थी, उसका तो दरबार लगने लगा। कोठरीमें दिनभर चहल-पहल रहती। गाँवके नरकमें मानो स्वर्ग उतर आया था।

गाँवकी स्त्रियोंका मुख्य विषय प्रायः परनिन्दा हुआ करता है। कुछ स्त्रियाँ तो ऐसी होती हैं कि ताने मारना, व्यङ्ग बोलना, झगड़े लगाना उनका पेशा-सा हो जाता है और वे घरोंमें चक्कर लगाया ही करती हैं। एक दिन ऐसी ही एक स्त्री लक्ष्मीके पास आयी और उसने बिना संकोचके कहा—तुम्हारा बाप अंधा था क्या, जो उसने बिना घर देखे विवाह कर दिया?

लक्ष्मीने चकित होकर पूछा—क्या यह मेरा घर नहीं है?

स्त्री उसका हाथ पकड़कर बरामदेमें ले गयी और उँगलीके इशारेसे युवकके खँडहरकी ओर दिखाकर कहा—'वह देखो, तुम्हारा घर है और वह तुम्हारे ससुरजी हैं, जो छप्परके नीचे बैठकर हुक्का पी रहे हैं। यह घर तो तुम्हारे पतिके चचाका है, जो अलग रहते हैं।'

लक्ष्मीने उस स्त्रीको विदा किया और कोठरीमें आकर उसने गृहस्थीके जरूरी सामान—बरतन, आटा, दाल, चावल, मिर्च-मसालेकी एक सूची बनायी और नौकरको बुलाकर अपना सामान बँधवाकर वह उसे उसी खँडहरमें भेजवाने लगी।

चचा सुन पाये। वे दौड़े आये। आँसू भरकर कहने लगे—बहू! यह क्या कर रही हो? मेरी बड़ी बदनामी होगी।

घरकी स्त्रियाँ भी बाहर निकल आयीं। वे भी समझाने लगीं। लक्ष्मीने सबको एक उत्तर दिया—दोनों घर अपने ही हैं। मैं इसमें भी रहूँगी और उसमें भी रहूँगी। फिर उसने चचाके हाथमें कुछ रुपये और सामानकी सूची देकर कहा—यह सामान बाजारसे अभी मँगा दीजिये।

चचा लाचार होकर बहुत उदास मनसे बाजारकी ओर गये, जो एक मील दूर था। बहू खँडहरमें आयी। आते ही उसने आँचलका छोर पकड़कर तीन बार ससुर-का पैर छुआ। फिर खँडहरमें गयी। एक कोठरी और उसके सामने छोटा-सा ओसारा, घरकी सीमा इतनी ही थी। नौकरने सामान लाकर बाहर रख दिया। बहूने उससे गोबर मँगाया; एक बाल्टी पानी मँगाया। कोठरी और ओसारेको झाड़ू लगाकर साफ किया। फिर रेशमी साड़ीकी कछौंड़ मारकर वह घर लीपने बैठ गयी।

यह खबर बात-की-बातमें गाँवभरमें और उसके आस-पासके गाँवोंमें भी पहुँच गयी। झुंड-के-झुंड स्त्री-पुरुष देखने आये। भीड़ लग गयी। कई स्त्रियाँ लीपने-के लिये आगे बढ़ीं; पर बहूने स्त्रियोंको हाथ लगाने नहीं दिया। वृद्धा स्त्रियाँ आँसू पोंछने लगीं। ऐसी बहू तो उन्होंने कभी देखी ही नहीं थी। पुरुष लोग उसे देवी-का अवतार मानकर श्रद्धासे देखने लगे।

इतनेमें बाजारसे बरतन आ गये। बहूने पानी भरकर कोठरीमें स्नान किया। फिर वह रसोई बनाने बैठ गयी। शीघ्र ही भोजन तैयार करके उसने ससुरजीसे कहा कि वे स्नान कर लें।

ससुरजी आँखोंमें आँसू भरे मोह-मुग्ध बैठे थे। किसीसे कुछ बोलते न थे। बहूकी प्रार्थना सुनकर उठे, कुएँपर जाकर नहाया और आकर भोजन किया। बरतन सब नये थे। खँडहरमें एक ही खटिया पड़ी थी। बहूने उसपर दरी बिछा दी। ससुरजी उसपर बैठ गये, चिलम चढ़ाकर हुक्का उनके हाथमें थमा दिया। फिर उसने स्वयं भोजन किया।

बहूने चचासे कहा—दो नयी खाटें और एक चौकी आज ही चाहिये। दामके लिये उसने चचाको रुपये भी दे दिये। चचा तो खाट खरीदने बाजार दौड़ गये।

लोहार और बढ़ई वहीं मौजूद थे। सभी श्रद्धा-विभोर हो रहे थे। हर-एकके मनमें यही लालसा जाग उठी थी कि वह बहूकी कोई सेवा करे। लोहारने कहा—मैं पाटीके लिये अभी बाँस काटकर लाता हूँ और पाये गढ़कर खाटें बना देता हूँ।

बढ़ईने कहा—मैं चौकी बना दूँ।

बाप भी आ गया। [illegible] प्रस्तुत करनेके लिये कुछ देर लग [illegible] खिन दी। ससुरकी खटिया [illegible] लिये बिनवकर [illegible] तैयार [illegible]।

[illegible]

लिया, पर किसीको पता नहीं लगा कि तुमने भूल की और मुझे कहाँ-से-कहाँ लाकर डाल दिया। बल्कि बड़े उल्लासके साथ यह लिख कि मुझे आपकी और माता-जीकी सम्पूर्ण शिक्षाके उपयोग करनेका मौका मिल गया है।

बहूके कसीदेपर तो मेला लगने लगा। सब उसकी बड़ाई करने लगे थे। बराबर उम्रकी बहुएँ दूसरे गाँवोंसे आतीं तो आँचलके छोरको हाथोंमें लेकर उसका पैर छूनेको झुकतीं। बहू लज्जाके मारे अपने पैर साड़ीमें छिपा लेती। उनको पास बैठाती, सबसे परिचय करती और अपने काढ़े हुए बेल-बूटे दिखाती।

गाँवके विवाहित और अविवाहित युवक भी बहूको देखने आते। बहू तो परदा करती नहीं थी, पर युवकोंकी दृष्टिमें कामुकता नहीं थी। बल्कि जलकी रेखाएँ होती थीं। ऐसा कठोर तप तो उन्होंने कभी देखा ही नहीं था।

रातमें बहूके ओसारेके सामने गाँवकी वृद्धा स्त्रियाँ जमा हो जातीं। देवकन्या-जैसी बहू बीचमें आकर बैठ जाती। 'आरी-आरी कुस-काँसि, बीचमें सोनेकी रासि।' बहू वृद्धाओंके आँचलसे चरण छूकर प्रणाम करती; मीठी-मीठी हँसी-ठठोली भी करती। वृद्धाएँ बहूके स्वभाव-पर मुग्ध होकर सोहर गाने लगतीं। लोग हँसते तो वे कहतीं—बहूके बेटा होगा, भगवान् औतार लेंगे, हम अभीसे सोहर गाती हैं। बहू बेचारी सुनकर लज्जाके मारे जमीनमें गड़-सी जाती थी।

चौथे रोज जज साहबकी भेजी हुई एक लारी आयी, जिसमें सीमेंटके बोरे, दरवाजों और खिड़कियोंके चौकठे और पल्ले, पलँग, मेज-कुर्सियाँ और जरूरी लोहा-लक्कड़ भरे थे और एक गुमास्ता और दो राजगीर साथ थे।

गुमास्ता जज साहबका एक लिफाफा भी लाया था; जिसमें एक कागज था और उसपर एक ही पंक्ति लिखी थी—

पुत्रि पबित्र किए कुल दोऊ।

नीचे पिता और माता दोनोंके हस्ताक्षर थे। लक्ष्मी उस कागजको छातीसे चिपकाकर देरतक रोती रही।

जज साहबने गुमास्तेको सब काम समझा दिया था। मकानका एक नकशा भी उसे दिया था। गुमास्तेने गाँवके पास ही एक खुली जगह पसंद की। जमींदार उस जगहको बहूके नामपर मुफ्त ही देना चाहता था, पर गुमास्तेने कहा कि जज साहबकी आज्ञा है कि कोई चीज मुफ्त न ली जाय। अतएव जमींदारने मामूली-सा दाम लेकर जज साहबके वचनकी रक्षा की।

पड़ोसके एक दूसरे गाँवके एक जमींदारने पक्का मकान बनवानेके लिये ईंटोंका पजावा लगवा रक्खा था। ईंटोंकी जरूरत सुनकर वह स्वयं आया और बहूके नामपर ईंटें मुफ्त ले लिये जानेका आग्रह करने लगा, पर गुमास्तेने स्वीकार नहीं किया। अन्तमें पजावेमें जो लागत लगी थी, उतना रुपया देकर ईंटें ले ली गयीं।

मजदूर बिना मजदूरी लिये काम करना चाहते थे, पर बहूने रोक दिया और कहा कि सबको मजदूरी लेनी होगी।

दो राजगीर और भी रख लिये गये। पास-पड़ोसके गाड़ीवाले अपनी गाड़ियाँ लेकर दौड़ पड़े। पजावेकी कुल ईंटें ढोकर आ गयीं। मजदूरोंकी कमी थी ही नहीं। एक लंबे-चौड़े अहातेके बीचमें एक छोटा-सा सीमेंटके पलस्तरका पक्का मकान, जिसमें दो कमरे नीचे और दो ऊपर तथा रसोई-घर, स्नानागार और पाखाना थे, दो-तीन हफ्तोंके बीचमें बनकर तैयार हो गया। अहातेमें फूलों और फलोंके पेड़-पौधे भी लगा दिये गये। एक पक्की कुइयाँ भी तैयार करा दी गयी।

युवकको अभीतक किसी बातका पता नहीं था।

लक्ष्मीने भी कुछ लिखना उचित नहीं समझा; क्योंकि भेद खुल जानेसे पतिको लज्जा आती। और जज साहबने भी लक्ष्मीको दूसरे पत्रमें लिख भेजा था कि वहाँका कोई समाचार वह अपने पतिको न लिखे।

गुमाश्तेका पत्र पाकर जज साहबने गृह-प्रवेशकी साइत पूछी और गुमाश्तेको लिखा कि साइतके दिन मैं, लक्ष्मीकी माँ और उसके पति भी आ जायँगे। एक हजार व्यक्तियोंको भोजन करानेकी पूरी तैयारी कर रक्खो।

लक्ष्मीने ससुरके लिये नेवारका एक सुन्दर-सा पलँग, उसपर बिछानेकी दरी, गद्दा और चादर, तकिये और मसहरी गौंवईमें मँगा लिया था। चाँदीका एक फर्शी हुक्का, चाँदीकी चिलम, चाँदीका पीकदान साथ लेते आनेके लिये उसने पिताको पत्र लिखा था। सब चीजें आ गयी थीं।

ठीक समयपर बड़ी धूम-धामसे गृह-प्रवेश हुआ। सबसे पहले युवकके पिता सुन्दर वस्त्र पहने हुए मकानके अंदर गये। बढ़िया चादर बिछी हुई नेवारकी पलँगपर बैठाये गये, पास ही लक्ष्मीने स्वयं चिलम चढ़ाकर फर्शी हुक्का रख दिया। लक्ष्मीने ससुरके लिये एक सुन्दर-सा देहाती जूता भी बनवाया था; वही पहनकर ससुरने गृहमें प्रवेश किया था, वह पलँगके नीचे बड़ी शोभा दे रहा था। पलँगके नीचे चाँदीका पीकदान भी रक्खा था। ससुरको पलँगपर बैठाकर और हुक्केकी सुनहली निगाली उसके मुँहमें देकर बहूने आँचलका छोर पकड़कर तीन बार उसके चरण छुए। ससुरके मुँहसे तो बात ही नहीं निकलती थी। उसका तो गला फूल-फूलकर रह जाता था। हाँ, उसकी आँखें दिन-भर अश्रु-धारा गिराती रहीं।

> प्रेम छिपाये ना छिपै, जा घट परगट होय।
> जो पै मुख बोलै नहीं, नयन देत हैं रोय॥

गृह-प्रवेश कराके लक्ष्मीके माता-पिता एक कमरेमें जा बैठे थे। ससुरको पलँगपर बैठाकर और [illegible] उसके पास छोड़कर वह अपने [illegible] गयी। पहले वह [illegible] जा [illegible]। [illegible] देरतक चिपटाये रहे और आँसू गिराते रहे। फिर [illegible] माताके गलेसे लिपट गयी। दोनों [illegible] वह मूर्छित-सी हो गयी। [illegible]।

माता-पिताके [illegible] व्यवस्थामें लगी। उसने [illegible] निकाला और उसे पूरा कराया। गृह-प्रवेशके दिन बड़ी भीड़ थी। आस-पासके गाँवोंकी स्त्रियाँ, [illegible], युवती, बालिका सब उमड़ी थीं, [illegible] आयी थीं। गरीब और नीची [illegible] झुंड अलग खड़ा था। उनके कपड़े [illegible] और [illegible] पुराने थे। भले घरोंकी स्त्रियोंके [illegible] बैठनेका उनको साहस नहीं होता था। वह [illegible] पास गयी और एक-एकका हाथ पकड़कर [illegible] बिछी हुई दरीपर एक तरफ उन्हें बैठा दिया [illegible] गंदे कपड़ोंका विचार किये बिना [illegible] गयी। सबका परिचय पूछा और [illegible] पान-इलायची अन्य स्त्रियोंको दिया था, [illegible] भी दिया। चारों ओरसे बहुत [illegible] होने लगी।

[illegible] प्रत्येक कौरके साथ बहूको [illegible] वे भोजन करते रहे, [illegible] रहे, ऐसी [illegible] कि [illegible]

[illegible]

दो दिन [illegible]

नौकरोंको उन्होंने वहीं छोड़कर और युवककी एक [illegible], जो बहुत गरीब और भोली थी, लक्ष्मीके मन्दिरके लिये खाना बनानेके लिये नियुक्त करके जज साहब अपनी पुत्री, उसकी माता और युवकको साथ लेकर अपने घर लौट गये। जानेके दिन आसपासके दस-बीस मीलोंसे हजारों पुरुष-स्त्री बहूको विदा करने आये थे। वह दृश्य तो अद्भुत था। आज भी लोग आँखोंमें हर्षके आँसू भरकर बहूको याद करते हैं।

वह पक्का मकान, जो सड़कसे थोड़ी दूरपर है, आज भी बहूके कीर्तिस्तम्भकी तरह खड़ा है।

युवक विदेशसे सम्मानपूर्ण डिग्री लेकर वापस आया है और कहीं किसी बड़े पदपर है। बहू उसीके साथ है।

एक बी० ए० बहूकी इस प्रकारकी कथा शायद यह सबसे पहली है और समस्त बी०ए० बहुओंके लिये गर्वकी वस्तु है। हम ऐसी कथाएँ और सुनना चाहते हैं।

यह रामचरितमानसका चमत्कार है जिसने चुपचाप लक्ष्मीके जीवनमें ऐसा प्रकाश-पुञ्ज भर दिया।

श्रद्धा और मनोबलका चमत्कार

(लेखक—कविविनोद वैद्यभूषण पं० श्रीठाकुरदत्तजी शर्मा 'वैद्य')

वे एक ग्राममें रहते थे और कुछ दवा-दारू करते थे। परंतु जिसकी चिकित्सा करते, उससे लेते कुछ नहीं थे। एक छोटी-सी दूकान और कुछ भूमि थी; उसीसे जीवन-निर्वाह होता था। कई वर्षोंसे उनकी प्रबल इच्छा काशी जानेकी थी और वे यह भी कहा करते थे कि काशीजीमें ही शरीरपात होनेसे कल्याण होगा। वे अपने मन्तव्यानुसार पूजा-पाठमें बहुत तल्लीन रहते थे।

अन्तमें, एक दिन आ ही पहुँचा जब कि काशीजी जानेकी सब सामग्री जुट गयी और अपनी धर्मपत्नी तथा पुत्रको साथ लेकर वे काशीधाम पहुँच गये। वहाँ पंचकोशीकी परिक्रमा समाप्त करके दशाश्वमेध घाट-पर [illegible] जा बैठे। गङ्गामें पाँव डालकर इस प्रकार प्रार्थना करने लगे—

'हे गङ्गा मैया! मेरी मनोऽभिलाषा तूने पूर्ण कर दी है। अब मैं वापस जाना नहीं चाहता। कल बारह बजेतक अपनी पावन गोदमें बिठलाकर मातृ-सुख प्रदान कर दे, अन्यथा मुझे ही प्रयत्न लेना होगा।'

अपने निवासस्थानपर आकर सो रहे। भोर होते ही उठ बैठे और अपनी धर्मपत्नीको भोजन बना लेनेका आदेश दिया। भोजन बन चुका तो पत्नी और पुत्रको भोजन करनेकी आज्ञा देकर कहने लगे—'मुझे तो भोजन नहीं करना है।' जब दोनों भोजन कर चुके तब उन्हें इस प्रकार समझाना आरम्भ कर दिया—

'देखना, यह शरीर तो अब काशीजीकी भेंट हो चुका है; अब प्राण भी यहीं विसर्जित होनेवाले हैं, इसलिये मेरे लिये कोई कर्तव्य शेष नहीं रहा। देखना! रोना-धोना नहीं!'

और भी ऐसी ही बातें समझाने लगे। सुनकर पत्नी और पुत्र दोनों हँसने लगे। समझे कि पण्डित-जी हँसी कर रहे हैं। फिर भी गम्भीर होकर बोल उठे - 'हम ऐसी अवाञ्छनीय बातें सुनना नहीं चाहते।' परंतु वे कहते ही रहे। ग्यारह बजेके लगभग भूमिको शुद्ध करके आसन लगाया और ध्यानावस्थित होकर बैठ गये। ठीक बारह बजे बिना किसी कष्टके और बिना कोई चिह्न प्रकट हुए ग्रीवा एक ओर झुक गयी। देखा तो उनका स्वर्गवास हो चुका था।

इस समाचारका जिन-जिनको पता लगा, सब एकत्र होकर उनकी स्तुति करने लगे और सबने मिलकर बड़ी भक्तिसे समारोहपूर्वक अन्तिम संस्कार किया।

एक ग्राम-वासी साधारण व्यक्तिकी श्रद्धा-शक्ति और मनोबलका ऐसा परिचय पाकर सचमुच बड़ा आश्चर्य होता है।

चोरके साथ चोर

ग्वारिया बाबा वृन्दावनके एक प्रसिद्ध परम भक्त थे । वे पागलकी तरह रहते थे । एक दिन वे अपनी मस्तीमें कहीं पड़े थे । इसी समय दो चोर वहाँ आये और ग्वारिया बाबासे उन्होंने पूछा—'आप कौन हैं ?'

ग्वारिया बाबा—तुम कौन हो ?

चोर—हम चोर हैं ।

ग्वारिया बाबा—मैं भी चोर हूँ ।

चोरोंने कहा—तब तो हमारे साथ तुम भी चोरी करने चलो ।

ग्वारिया बाबाने कहा—अच्छा चलो ।

इतना कहकर वे उनके साथ चोरी करने चल पड़े । चोरोंने एक घरमें सेंध लगायी और वे उसके अंदर घुस गये । वहाँ उन्होंने सामान बाँधना शुरू कर दिया । ग्वारिया बाबा चुपचाप एक ओर बैठे रहे । जब चोरोंने उनको सामान बाँधनेके लिये कहा, तब—'तुम्हीं बाँधो' कहकर चुप हो रहे । इतनेमें उन्होंने देखा कि वहाँ एक ढोलक पड़ी है । मौज ही तो थी । उसे उठाकर लगे जोरोंसे बजाने । ढोलककी आवाज सुनकर सब घरवाले जग गये । चोर-चोरका हल्ला मचा । हल्ला मचते ही चोर तो भाग गये । लोगोंने बिना समझे-बूझे ग्वारिया बाबा-पर मारकी बौछार शुरू कर दी । बाबाजीने न तो उनको मना किया और न ढोलक बजानी ही बंद की । कुछ देर बाद उनका सिर फट गया और वे लहू-लुहान होकर बेहोश हो गये । फिर कुछ होश आनेपर लोगोंने उनको पहचाना कि—'अरे, ये तो ग्वारिया बाबा हैं !' तब उन्होंने बाबासे पूछा कि 'ये यहाँ कैसे आ गये ?' ग्वारिया बाबाने कहा—'अरे, कैसे ! श्यामसुन्दरने कहा चलो चोरी करने; श्याम-सुन्दरके साथ चोरी करने आ गया । उन्होंने तो इधर सामान बाँधना शुरू कर दिया, इधर ढोलक देख-कर मेरी उसे बजानेकी इच्छा हो गयी । मैं [illegible] लगा ।' यों कहकर वे हँस दिये । [illegible] उनकी मरहम-पट्टी की और अपनी [illegible] उनसे क्षमा माँगी ।

अपनी मृत्युके छः महीने पहले उन्होंने [illegible] हाथोंमें बेड़ियाँ पहन लीं और वे सबसे कहते थे 'सखा श्यामसुन्दरने बाँध दिया है और कहता है कि अब तुझे चलना होगा ।'

जब उनकी मृत्युके पाँच दिन शेष रहे, तब उन्होंने एक दिन अपनी भक्तमण्डलीको बुलाया और पूछा कि 'मैं मर जाऊँगा तब तुम कैसे रोओगे ।' वे प्रत्येकके पास जाते और उससे रोकर दिखानेको कहते । इस प्रकार उस दिन उन्होंने अपनी भक्तमण्डलीसे खूब खेल किया ।

अपनी मृत्युके दिन उन्होंने भक्तमण्डलीमेंसे करीब सोलह-सत्तरह लोगोंसे कह दिया कि 'मैं आज तुम्हारी भिक्षा लूँगा ।' सब बना-बनाकर ले आये । उन्होंने उस सारी भिक्षामेंसे करीब तीन किलो भिक्षा [illegible] । इसके बाद खूब पानी पिया । करीब दो घंटे बाद उनको दस्त लगने शुरू हुए और वे [illegible] पड़ गये । कुछ देर बाद उनकी [illegible] पढ़ने लगी । [illegible] हँसे और बोले—[illegible] उनका शरीर [illegible] करीब तीन बजे [illegible] हुई । [illegible] मेरे [illegible] ऐसा [illegible] होते [illegible] ही जा रही है ।

महाशक्ति ही पालिका हैं

[illegible] था । सत्ययुगमें मानव कामना-हीन था । मनुष्यका अन्तःकरण कामना-कलुषित नहीं हुआ था और न रजोगुण तथा तमोगुणके संसर्ग ही उसे दूषित कर सकते थे । निसर्गसिद्ध मानव—एकाक्षर प्रणव ही पर्याप्त था उसके लिये । प्रवृत्तिका कर्म-विस्तार न आवश्यक था और न शक्य; क्योंकि मनुष्यने यज्ञके लिये भी संग्रह करना तबतक सीखा नहीं था । वह तो सहज अपरिग्रही था ।

'मनुष्य जब यजन नहीं करता, हमें यज्ञभाग नहीं देता तो हमीं वृष्टिकी व्यवस्थाका श्रम क्यों करें !' देवराजके मनमें ईर्ष्या जाग्रत् हुई—'सृष्टिके विधायकने तो नियम बनाया है कि मनुष्य यज्ञ करके हमें यज्ञभाग-द्वारा पोषित करें और हम सुवृष्टिद्वारा अन्नोत्पादन करके मनुष्योंको भोजन दें । परस्पर सहायताका यह नियम मानवने प्रारम्भमें ही भङ्ग कर दिया । मनुकी संतान जब हमें कुछ गिनती ही नहीं, तब हमारा भी उससे कोई सम्बन्ध नहीं ।'

देवराज असंतुष्ट हुए और मेघ आकाशसे लुप्त हो गये । धराके प्राण जब गगन सिञ्चित नहीं करेगा, तब अङ्कुरोंका उद्गम और वीरुधोंका पोषण होगा कहाँसे ! तृण सूख गये, लताएँ सूखी लकड़ियोंमें बदल गयीं, वृक्ष सूख गये । घोर दुष्काल पड़ा । अन्न, फल, शाक, तृण—प्राणधारियोंके लिये कोई साधन नहीं रह गया भक्ष्य ।

मनुकी निष्पाप संतान—मानवमें चिन्ता और क्लेश कहाँ आये थे उस समयतक । ध्यान और तप तो नित्य करते थे । निर्मल, सुरम्य वनोंमें मानवने जो हरित भूमि मिली, आसन लगाया । उसे न चिन्ता थी और न था क्लेश । उसने बड़े आनन्दसे कहा—

'परमात्माने तपस्याका सुयोग दिया है । धराका पुण्योदय हुआ है ।'

जहाँ-तहाँ मानवने आसन लगाकर नेत्र बंद कर लिये थे । सत्ययुगकी दीर्घायु, सत्ययुगकी सात्त्विकता और सत्ययुगका सहज सत्त्व—मानव समाधिमें मग्न हो जायगा तो देवराजका युगों व्यापी अकाल क्या कर लेगा उसका ? परंतु मानव, यह क्यों करे । उसने अधर्म किया नहीं, कोई अपराध किया नहीं, तब वह भूखा क्यों रहे ? उसे बलात् तप क्यों करना पड़े ?

इन्द्र प्रमत्त हो गया कर्तव्यपालनमें; किंतु अपने पुत्रोंके पालनमें विश्वकी संचालिका, नियन्तृका महाशक्ति जगज्जननी तो प्रमत्त नहीं होती । दिशाएँ आलोकसे पूर्ण हो गयीं । मानव अपने आसनसे आतुरतापूर्वक उठा और उसने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुकाये । गगनमें सिंहस्थिता, रक्तवर्णा, शूल, पाश, कपाल, चाप, वज्र, बाण, अङ्कुश, मुसल, शङ्ख, चक्र, गदा, सर्प, खड्ग, अभय, खट्वाङ्ग एवं दण्डहस्ता, दशभुजा महामाया आदि-शक्ति शाकम्भरी प्रकट हो गयी थीं ।

धरित्रीपर वर्षा हो रही थी—मेघोंसे जलकी वर्षा नहीं, महाशक्तिके श्रीअङ्गसे अन्न, फल, शाककी वर्षा । पृथ्वीके प्राणीकी क्षुधा कितनी ? महामाया देने लगें तो प्राणी कितना क्या लेगा ? दिन दो दिन नहीं, वर्षों यह वर्षा चलती रही । देवराज घबराये । यदि महामाया इसी प्रकार अन्न-शाकादिकी वर्षा करती रहें तो उनका इन्द्रत्व समाप्त हो चुका । पृथ्वीको उनके मेघोंकी क्या आवश्यकता ? कभी भी मानव यज्ञभाग देगा देवताओंको इसकी सम्भावना ही क्या ? यही दशा रहे तो अब देवलोक-में भुखमरी प्रारम्भ होनेमें कितने दिन लगेंगे ? देवराजने क्षमा माँगी जगद्धात्रीसे और आकाश बादलोंसे ढक गया ।

शास्त्रार्थ नहीं करूँगा

एक महात्मा थे। वे राधाष्टमीका बड़े समारोहके साथ बहुत सुन्दर उत्सव मनाते। एक दिन एक आदमी उनके पास आया और कहने लगा कि तुम बड़ा पाखण्ड फैला रहे हो, मैं तुमसे शास्त्रार्थ करूँगा।

महात्मा—अभी तो मैं पूजा कर रहा हूँ। पीछे बात करना। महात्मा पूजा करनेके बाद मस्तीमें कीर्तन करते हुए नाचने लगे। तब शास्त्रार्थ करनेके लिये आये हुए पण्डितजीको दिखलायी पड़ा कि [illegible] महात्माके पीछे-पीछे नाच रहे हैं।

कीर्तन समाप्त होनेपर [illegible] कहा। तब वह [illegible] मुझे जो समझना-देखना था [illegible] अब शास्त्रार्थ नहीं करूँगा।

सच्चे महात्माके दर्शनसे लाभ

(लेखक—श्री डी० एल० भाटिया)

एक स्त्री हमेशा अपने पतिकी निन्दा किया करती थी। यह स्त्री पूजा करने और माला फेरनेमें तो अपना काफी समय लगाती थी; परंतु पाखण्डी महात्माओंके फोटो रखकर उनपर चन्दन और फूल चढ़ाया करती थी। इस स्त्रीने रामायणकी कई आवृत्ति की पर पाखण्डियोंके फेरमें पड़ी रहनेके कारण इसको इस बातका ज्ञान नहीं हो सका कि जिस पतिकी वह निन्दा करती फिरती है वह उसके लिये क्या है। वह बीसों महात्माओंके पास गयी। सब उससे बड़े प्यारसे बोलते थे और अपने पास बैठाते थे। वह यह देखकर बड़ी प्रसन्न होती थी कि महात्मा लोग उसको कितना प्यार करते हैं। यह स्त्री अपने सगे-सम्बन्धियोंके यहाँ जाकर भी अपने पतिकी निन्दा करती थी। इस स्त्रीने अपनी बुराइयोंको छिपानेके लिये यही एक साधन निकाल रक्खा था। पर इस स्त्रीको कोई समझ न पाया।

एक दिन इसको एक अच्छे महात्मा मिल गये। यह उन महात्माके दर्शन करने गयी। प्रातःकालका समय था। इसने उनसे अपने पतिकी निन्दा की। महात्माजीने पूछा—'तुम्हारे पतिने [illegible] तुम्हारी निन्दा की है?' इसने कहा—'नहीं।' [illegible] उत्तर दिया कि 'आज मैंने तुम्हारा दर्शन किया। [illegible] मैं तीन दिनका मौन-व्रत [illegible] और यह कहकर वे चुप हो गये [illegible] लगा ली। स्त्री वहाँसे चल दी। [illegible] महात्माजीके पास गयी। [illegible] कि 'आज फिर तुम्हें [illegible] उपदेश देंगे।' [illegible] रहा गया। उसने सब [illegible] कहा—'[illegible] जिस समय महात्माजी [illegible] उसने पतिका [illegible] [illegible]

पाँच सेर भजन !

[illegible] वर्ष पहलेकी बात है । एक गाँवमें एक बूढ़ा रहता था । उसकी पत्नी भी बूढ़ी हो गयी थी । दोनोंका स्वभाव बड़ा सरल था । पढ़े-लिखे वे बिल्कुल नहीं थे । उन्हें गिनती केवल बीस या तीसतक ही आती थी । वे दोनों जब भजन करने बैठते, तब एक-एक सेर गेहूँ या चना तौलकर अपने-अपने सामने रख लेते । 'कृष्ण-कृष्ण' कहते जाते तथा एक-एक दानाको अलग करते जाते । जब सम्पूर्ण दानोंको अलग कर लेते, तब समझते कि एक सेर भजन हुआ । इसी प्रकार कभी दो सेर, कभी तीन सेर भजन करते । इस प्रकार उनके भजनकी गिनती विचित्र ही थी ।

एक बार जाड़ेकी रात थी । वे बड़े जोरसे रोने लगे—'अरे ! मेरे कन्हैयाको जाड़ा लग रहा है रे !' फिर अपनी रजाई उठायी और जाकर गाँवके बाहर फेंक आये । लोगोंने तो समझा कि बूढ़ा पागल हो गया है । पर उन्हें तो सचमुच दर्शन हुआ था और भगवान्‌ने कहा था—'दादा ! मुझे जाड़ा लग रहा है ।' अपनी जानमें उन्हें यह दीख रहा था कि 'एक बार कहकर कन्हैया गाँवके बाहर चला जा रहा है, उसे गाय चराने जाना है; वे उसके पीछे गये हैं और जाकर अपनी रजाई ओढ़ा दी है ।'

उन्हींके सम्बन्धमें दूसरी घटना एक और है—उसी गाँवमें एक बड़ा भयङ्कर भैंसा रहता था । उससे प्रायः सभी लोग डरते थे । जिधर जाता, बच्चे तो भाग ही जाते, जवानोंके प्राण भी सूख जाते । एक दिन वे बूढ़े बाबा कहींसे आ रहे थे । भैंसा उस ओर ही लपका । लोगोंने समझा कि आज बूढ़ेका प्राण गया । भाला लेकर लोग दौड़े अवश्य; पर उससे पहले ही भैंसा बूढ़ेके पास आ चुका था । इतनेमें दीखा—'न जाने कैसे, भैंसा दूसरी ओर मुड़कर भागा ।' लोग चकित रह गये । लोगोंने बूढ़ेसे पूछा । बूढ़ेने बताया—'तुमलोगोंको दीखा नहीं ! अरे कृष्ण कहो ! मेरा कन्हैया बड़ा खिलाड़ी है । वह आया, बोला—'दादा ! मैं आ गया हूँ' और यह कहकर उसने भैंसेकी पूँछ मरोड़ दी । फिर तो वह भैंसा भागा ।' लोगोंने यह तो स्पष्ट देखा था कि ठीक उसकी पूँछ ऐसी टेढ़ी हो गयी थी कि जैसे किसीने सचमुच मरोड़ दी हो, पर उसके अतिरिक्त और कुछ भी किसीको नहीं दीखा ।

दोनों ही स्त्री-पुरुष निरन्तर भजन करते थे । कभी सेर, कभी दो सेर, कभी पाँच सेरतक ।

विपत्तिका मित्र

(लेखक—श्रीदीनानाथजी सिद्धान्तालंकार)

[illegible] वर्षकी बात है । दिल्लीमें एक ताँगेपर बैठा जा रहा था । ताँगा चलानेवाला अपने कार्यमें विशेष दक्ष प्रतीत नहीं होता था । बातचीत चल पड़ी । मैंने पूछा कि 'आप कबसे यह काम करते हैं ।' उसने कहा—'अभी तीन-चार महीनेसे ।' इसी प्रसङ्गमें बातचीत बढ़ती गयी और मेरी जिज्ञासा भी । उसने अपने जीवनका जो वृत्तान्त सुनाया, वह संक्षेपतः इस प्रकार है—

मैं पेशावरके पास होती मर्दानका रहनेवाला हूँ । वहाँ मेरी आढ़तकी बड़ी दूकान थी । कपूरथलाके एक व्यापारी मेरे नगरमें माल लेने और बेचने प्रायः आते रहते थे । वे जब आते, मुझे अपने नगरमें बसनेका निमन्त्रण दे जाते । मैं भी कह देता, अच्छा कोशिश करूँगा । मेरी दूकानपर वे जितने दिन ठहरते, मैं उनकी

जाति-विरोधसे अनर्थ

एक व्याधने पक्षियोंको फँसानेके लिये अपना जाल बिछाया। उसके जालमें दो पक्षी फँसे; किंतु उन पक्षियोंने परस्पर सलाह की और जालको लेकर उड़ने लगे। व्याधको यह देखकर बड़ा दुःख हुआ। वह उन पक्षियोंके पीछे भूमिपर दौड़ने लगा।

कोई ऋषि अपने आश्रममें बैठे यह दृश्य देख रहे थे।

उन्होंने व्याधको समीप बुलाकर पूछा—'तुम व्यर्थ क्यों दौड़ रहे हो! पक्षी तो जाल लेकर आकाशमें उड़ रहे हैं।'

व्याध बोला—'भगवन्! अभी इन पक्षियोंमें मित्रता है। ये परस्पर मेल करके एक दिशामें उड़ रहे हैं। इसीसे ये मेरा जाल लिये जा रहे हैं। परंतु कुछ देरमें इनमें झगड़ा हो सकता है। मैं उसी समयकी प्रतीक्षामें इनके पीछे दौड़ रहा हूँ। परस्पर झगड़कर जब ये गिर पड़ेंगे, तब मैं इन्हें पकड़ लूँगा।'

व्याधकी बात ठीक थी। थोड़ी देर उड़ते-उड़ते जब पक्षी थकने लगे, तब उनमें इस बातको लेकर विरोध हो गया कि उन्हें कहाँ ठहरना चाहिये। विरोध होते ही उनके उड़नेकी दिशा और पंखोंकी गति समान नहीं रह गयी। इसका फल यह हुआ कि वे उस जालको सम्हाले नहीं रख सके। जालके भारसे लड़खड़ाकर स्वयं भी गिरने लगे और एक बार गिरना प्रारम्भ होते ही जालमें उलझ गये। अब उनके पंख भी फँस चुके थे। जालके साथ वे भूमिपर गिर पड़े। व्याधने उन्हें सरलता-पूर्वक पकड़ लिया।—सु० सिं०

(महाभारत, उद्योग० ६४)

सुख-दुःखका साथी

व्याधने जहरमें बुझा हुआ बाण हरिनोंपर चलाया। निशाना चूककर बाण एक बड़े वृक्षमें धँस गया। जहर सारे वृक्षमें फैल गया। पत्ते झड़ गये और वृक्ष सूखने लगा। उस पेड़के खोखलेमें बहुत दिनोंसे एक तोता रहता था। उसका पेड़में बड़ा प्रेम था। अतः पेड़ सूखनेपर भी वह उसे छोड़कर नहीं गया था। उसने बाहर निकलना छोड़ दिया और चुगा-पानी न मिलनेसे वह भी सूखकर काँटा हो गया। वह धर्मात्मा तोता अपने आश्रय वृक्षके साथ ही अपने प्राण देनेको तैयार हो गया। उसकी इस उदारता, धैर्य, सुख-दुःखमें समता और [illegible] बड़ा असर हुआ। देवराज इन्द्रका उसके प्रति आकर्षण हुआ। इन्द्र आये। तोतेने इन्द्रको पहचान लिया। तब इन्द्रने कहा—'प्यारे शुक! इस पेड़पर न पत्ते हैं, न कोई फल। अब कोई पक्षी भी इसपर नहीं रहता। इतना बड़ा जंगल पड़ा है, जिसमें हजारों सुन्दर फल-फूलोंसे लदे हरे-भरे वृक्ष हैं और उनमें पत्तोंसे ढके हुए रहनेके लायक बहुत खोखले भी हैं। यह वृक्ष तो अब मरनेवाला ही है। इसके बचनेकी कोई आशा नहीं है। यह अब फल-फूल नहीं सकता। इन बातोंपर विचार करके तुम इस ठूँठे पेड़को छोड़कर किसी हरे-भरे वृक्षपर क्यों नहीं चले जाते?'

धर्मात्मा तोतेने सहानुभूतिकी लंबी साँस छोड़ते हुए दीन वचन कहे—'देवराज! मैं इसीपर जन्मा था, इसीपर पला और इसीपर अच्छे-अच्छे गुण भी सीखे। इसने सदा बच्चेके समान मेरी देख-रेख की, मुझे

मीठे फल दिये और वैरियोंके आक्रमणसे बचाया। आज इसकी बुरी अवस्थामें मैं इसे छोड़कर अपने सुखके लिये कहाँ चला जाऊँ? जिसके साथ सुख भोगे, उसीके साथ दुःख भी भोगूँगा। मुझे इसमें बड़ा आनन्द है। आप देवताओंके राजा होकर मुझे यह बुरी सलाह क्यों दे रहे हैं? जब इसमें शक्ति थी, यह सम्पन्न था, तब तो मैंने इसका आश्रय लेकर जीवन धारण किया; आज जब यह शक्तिहीन और दीन हो गया, तब मैं इसे छोड़कर चल दूँ? यह कैसे हो सकता है।'

तोतेकी मधुर मनोहर प्रेमभरी [illegible] सुनकर [illegible] बड़ा सुख मिला। उन्हें [illegible]। [illegible]! तुम मुझसे कोई वर माँगो।' [illegible] हैं तो यही दीजिये कि [illegible] हरा-भरा हो जाय।' इन्द्रने अमृत [illegible] दिया। उसमें फिरसे नयी-नयी [illegible] लग गये। वह पूर्ववत् श्रीसम्पन्न हो [illegible] तोता भी अपने इस आदर्श [illegible] होनेपर देवलोकको प्राप्त हुआ। ([illegible])

आदर्श मित्र

हिम्मक राष्ट्रमें सुकुल नामका एक धर्मात्मा राजा राज्य करता था। नगरके पास ही एक व्याध पक्षियों-को फँसाकर उन्हें बेचकर अपनी जीविका चलाता था। वहींपर एक बड़ा लंबा-चौड़ा 'मानस' नाम-का सरोवर था। व्याध वहीं जाल फैलाया करता था। वहाँ अनेकों प्रकारके पक्षी दल-के-दल आया करते थे। उस समय हंसोंका राजा चित्रकूट पर्वतकी गुफामें रहा करता था। एक बार हंसोंने आकर उससे अपना समाचार कहा तथा उस सरोवरकी बड़ी प्रशंसा की, साथ ही वहाँ चलनेकी प्रार्थना भी की। हंसराजने कहा—'यद्यपि वहाँ चलना ठीक नहीं है तथापि तुम लोगोंका आग्रह ही है तो चलो एक बार देख आयें।' ऐसा कहकर वह भी अपने परिवारके साथ चल पड़ा। सरोवरके पास पहुँचकर हंसराज अभी ऊपर ही रहा था कि जालमें फँस गया, तथापि उसने धीरज-से काम लिया और घबराया नहीं; क्योंकि वह जानता था कि यदि घबराकर होहल्ला मचाऊँगा तो ये सभी हंस भूखे ही भाग जायँगे।

शामको जब चलनेकी बारी आयी और सबने हंससे चलनेको कहा, तब उसने [illegible] बतला दी। अब क्या था, सभी हंस [illegible]। [illegible], केवल उसका मन्त्री सुमुख [illegible]। हंसराजने [illegible] भी भाग जानेको कहा और [illegible] लाभ न होनेकी बात बतलायी। पर सुमुखने [illegible]— 'मैं आज यहाँसे भाग भी [illegible] होऊँगा नहीं। हाँ, मेरा धर्म [illegible]। [illegible] प्राण देकर भी अपने [illegible] बचाऊँगा।' ऐसा कहकर [illegible]।

दूसरे दिन प्रातःकाल [illegible] कि एक [illegible] हंस भी [illegible] लाकर कारण पूछा। उसने [illegible] व्याधने कहा—[illegible] सुमुखने कहा—[illegible] मेरे राजाको छोड़ दे।' [illegible] कि सुमुख-जैसे [illegible]

— [illegible]

एक अनुभव

(लेखक—श्रीरामचन्द्रप्रसादसिंहजी, आई० ए० एस्०)

गत वर्ष मैं पटनेमें मकान बना रहा था। बरसातके कुछ पहले एक बैगन चूना आ गया। चारों तरफ ईंट गाड़कर और ऊपर करोगेटेड टीनके चादर रखकर उस चूनेको भीतर रख दिया गया। उन टीनके चादरोंको रोकनेके लिये उन चादरोंको कुछ ईंटोंसे दबा दिया गया। थोड़े दिन बाद अर्द्ध रात्रिके समय बड़े ही जोरका अंधड़-पानी आया, इतने जोरका कि शहरकी बिजली बुझ गयी, अनेकों पेड़ और कुछ मकानोंके छप्पर गिर गये। उस घोर रात्रिमें मैंने सोचा कि मेरे चूनेके घरके टीनके चादर, जो थोड़े ईंटोंसे दबाकर रक्खे गये थे, जरूर ही उड़ जायँगे और समूचा चूना विनष्ट हो जायगा। मैं तत्क्षण बैठकर प्रभुसे रक्षार्थ प्रार्थना करने लगा। मैंने अशरण-शरणकी पुकार की। मैंने सोचा इस घोर परिस्थितिमें उनके बिना और कोई सहारा नहीं है। मैंने स्मरण किया—

'कोटि विघ्न संकट विकट, कोटि शत्रु जो साथ।
तुलसी बल नहिं करि सकैं जो सुचित रघुनाथ॥'
'गरल सुधा रिपु करहिं मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई॥
गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥'
'चाहे तो छार कौं मेरु करै, अरु मेरु कौं चाहे तो छार बनावै।
चाहे तो रंक कौं राव करै, अरु राव को द्वार ही द्वार फिरावै।'

'निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्॥
'क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति॥
'दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या,
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता॥
'निराश्रयं मां जगदीश रक्ष।'

दूसरे दिन सबेरे मुझे आश्चर्य हुआ, यह देखकर कि मेरे चूनेके घरके ऊपरके टीनके चादर अपनी जगहपर मौजूद थे। मैंने देखा कि मेरे एक मित्रके घरके ऊपरके असबेस्टसके चादर जो तारसे बँधे थे टूटकर गिर पड़े थे। प्रभुकी कृपासे मैं गद्गद हो गया।

कपोतकी अतिथि-सेवा

गोदावरीके समीप ब्रह्मगिरिपर एक बड़ा भयंकर व्याध रहता था। वह नित्य ही ब्राह्मणों, साधुओं, यतियों, गौओं और मृग-पक्षियोंका दारुण संहार किया करता था। उस महापापी व्याधके हृदयमें दयाका लेश भी न था और वह बड़ा ही क्रूर, क्रोधी तथा असत्यवादी था। उसकी स्त्री और पुत्र भी उसीके स्वभावके थे।

एक दिन अपनी पत्नीकी प्रेरणासे वह घने जंगलमें घुस गया। वहाँ उसने अनेकों पशु-पक्षियोंका वध किया। कितनोंको ही जीवित पकड़कर पिंजड़ेमें डाल दिया। इस प्रकार पूरा आखेटकर वह तीसरे पहर घरको लौटा आ रहा था, एक ही क्षणमें आकाशमें मेघोंकी घनघोर घटा घिर आयी और बिजली कौंधने लगी। हवा चली और पानीके साथ प्रचण्ड उपल (ओला) वृष्टि हुई। मूसलधार वर्षा होनेके कारण बड़ी भयंकर दशा हो गयी। व्याध राह चलते-चलते थक गया। जलकी अधिकताके कारण जल, थल और गड्ढे एक-से हो रहे

थे। अब वह पापी सोचने लगा—'कहाँ जाऊँ, कहाँ ठहरूँ, क्या करूँ?'

इस प्रकार चिन्ता करते हुए उसने थोड़ी ही दूर-पर एक उत्तम वृक्ष देखा। वह वहीं आकर बैठ गया। उसके सब वस्त्र भींग गये थे। वह जाड़ेसे ठिठुर रहा था तथा नाना प्रकारकी बातोंको सोच ही रहा था कि सूर्यास्त हो गया। अब उसने वहीं रहनेकी ठानी। उसी वृक्षपर एक कबूतर भी रहता था। उसकी स्त्री कपोती बड़ी पतिव्रता थी। उस दिन वह चारा चुगकर नहीं लौट सकी थी। अब कपोत चिन्तित हुआ। वह कहने लगा—'कपोती न जाने क्यों अबतक नहीं आयी। आज बड़ी आँधी-वर्षा थी, पता नहीं वह कुशलसे है या नहीं? उसके बिना आज यह घोंसला उजाड़-सा जान पड़ता है। वास्तवमें (गृह) घरको (गृह) घर नहीं कहते—गृहिणीको ही (गृह) घर कहा जाता है। जिस गृहमें गृहिणी नहीं वह तो जंगल है। यदि आज मेरी प्रिया न लौटी तो मैं इस जीवनको रखकर क्या करूँगा?'

इधर उसकी कपोती भी इस व्याधके ही पिंजड़ेमें पड़ी थी। जब उसने कबूतरको इस प्रकार विलाप करते सुना तो बोली—'महामते! आज मैं धन्य हूँ, जो आप मेरी ऐसी प्रशंसा कर रहे हैं। पर आज आप मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये। देखिये, यह व्याध आपका आज अतिथि बना है। यह सर्दीसे निश्चेष्ट हो रहा है, अतएव कहींसे तृण तथा अग्नि लाकर इसे स्वस्थ कीजिये।'

कबूतर यह देखकर कि उसकी स्त्री पड़ी है, होशमें आया तथा उसकी बात सुनकर उसने धर्ममें मन लगाया। वह एक स्थानसे थोड़ा तृण तथा अग्निको चोंचसे उठा लाया और उसने अग्नि प्रज्वलित कर व्याधको तपाया। अब

कपोतीने कहा, 'महात्मन्! मुझे [illegible] इस व्याधका भोजन-सत्कार अब [illegible] कीजिये, क्योंकि यह क्षुधा-[illegible] जल रहा है।'

कपोत बोला—'शुभे! मेरे [illegible] धर्म नहीं। मुझे आज्ञा दो, मैं ही इसका [illegible] करूँ।' ऐसा कहकर उसने तीन बार अग्निकी [illegible] की और वह भक्तवत्सल चतुर्भुज महाविष्णुका स्मरण [illegible] हुए अग्निमें प्रवेश कर गया। अब [illegible] जब कबूतरको ऐसा करते देखा तो [illegible]—'हाय! मैंने यह क्या कर डाला! मैं बड़ा ही [illegible], क्रूर और मूर्ख हूँ। अहा! इन महात्मा कबूतरने मुझ दुष्टके लिये प्राण दे दिया। मुझ [illegible] धिक्कार है।' ऐसा कहकर उसने [illegible] और पिंजड़ेको फेंककर उन कबूतरीको भी छोड़ दिया और महाप्रस्थानका निश्चयकर [illegible] चल दिया।'

अब कबूतरीने भी तीन बार [illegible] प्रदक्षिणा की और बोली—[illegible] करना स्त्रीके लिये बहुत बड़ा धर्म है। [illegible] विधान है और लोकमें भी इसकी बड़ी [illegible] कहकर वह भी अग्निमें कूद गयी। [illegible] जय-जयकी ध्वनि गूँज उठी। [illegible] दिव्य विमानपर चढ़कर [illegible] जाते देख हाथ जोड़कर [illegible]

कपोत-दम्पतिने कहा—[illegible] हो। तुम [illegible] स्नान करनेसे तुम [illegible] हो जायेगा [illegible] प्राप्त होगा।'

[illegible] वैसा ही किया। फिर [illegible] एक पेड़ [illegible] इस तरह कपोत, कपोती और [illegible] ही स्वर्ग गये। [illegible] जहाँ [illegible] कपोत-कपोतीके नामसे विख्यात [illegible]। [illegible] उस महान् कपोतका स्मरण दिलाता हुआ हृदयको पवित्र करता है तथा स्नान, दान, जप, तप, यज्ञ, पितृ-पूजन करनेवालोंको अक्षय फल प्रदान करता है। —जा० श०

(महाभारत, शान्तिपर्व, आपद्धर्म अध्याय १४३–१४९; ब्रह्मपुराण अ० ८०; पञ्चतन्त्र काकोलूकीय कथा ८; स्कन्दपुराण, ब्रह्मखण्ड)

खूब विचारकर कार्य करनेसे ही शोभा है

किसी वनमें खरनखर नामक एक सिंह रहता था। एक दिन उसे बड़ी भूख लगी। वह शिकारकी खोजमें दिनभर इधर-उधर दौड़ता रहा, पर दुर्भाग्यवशात् उस दिन उसे कुछ नहीं मिला। अन्तमें सूर्यास्तके समय उसे एक बड़ी भारी गुफा दिखायी दी। उसमें घुसा तो वहाँ भी कुछ न मिला। तब वह सोचने लगा, अवश्य ही यह किसी जीवकी माँद है। वह रातमें यहाँ आयेगा ही, सो यहीं छिपकर बैठता हूँ। उसके आनेपर मेरा आहारका कार्य हो जायगा।

इसी समय उस माँदमें रहनेवाला दधिपुच्छ नामका सियार वहाँ आया। उसने जब दृष्टि डाली तो उसे दीख पड़ा कि सिंहके चरण-चिह्न उस माँदकी ओर जाते हुए तो दीखते हैं, पर उसके लौटनेके पद-चिह्न नहीं हैं। वह सोचने लगा, 'अरे राम! अब तो मैं मारा गया, क्योंकि इसके भीतर सिंह है। अब मैं क्या करूँ, इस बातका सुनिश्चित पता भी कैसे लगाऊँ?'

अन्तमें कुछ देरतक सोचनेपर उसे एक उपाय सूझा। उसने बिलको पुकारना आरम्भ किया। वह कहने लगा—'हे बिल! हे बिल!' फिर थोड़ी देर रुककर बोला—'बिल! अरे, क्या तुम्हें स्मरण नहीं है, हमलोगोंमें तय हुआ है कि मैं जब यहाँ आऊँ तब तुम्हें मुझे स्वागतपूर्वक बुलाना चाहिये। पर अब यदि तुम मुझे नहीं बुलाते तो मैं दूसरे बिलमें जा रहा हूँ।' इसे सुनकर सिंह सोचने लगा—'मालूम होता है यह गुफा इस सियारको बुलाया करती थी, पर आज मेरे डरसे इसकी बोली नहीं निकल रही है। इसलिये मैं इस सियारको प्रेमपूर्वक बुला दूँ और जब यह आ जाय तब इसे चट कर जाऊँ।'

ऐसा सोचकर सिंहने उसे जोरसे पुकारा। अब क्या था उसके भीषण शब्दसे वह गुफा गूँज उठी और वनके सभी जीव डर गये। चतुर सियार भी इस श्लोकको पढ़ता भाग चला—

> अनागतं यः कुरुते स शोभते
>
> स शोच्यते यो न करोत्यनागतम्।
>
> वनेऽत्र संस्थस्य समागता जरा
>
> बिलस्य वाणी न कदापि मे श्रुता॥

अर्थात् 'जो सावधान होकर विचारपूर्वक कार्य करता है, वह तो शोभता है और जो बिना विचारे कर डालता है, वह पीछे पश्चात्ताप करता है। मैं इस वनमें ही रहते-रहते बूढ़ा हो गया, पर आजतक कहीं बिलको बोलते नहीं सुना। (अवश्य ही दालमें कुछ काला है) अर्थात् माँदमें सिंह बैठा हुआ है।'

(पञ्चतन्त्र)

मिथ्या गर्वका परिणाम

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

समुद्रतटके किसी नगरमें एक धनवान् वैश्यके पुत्रोंने एक कौआ पाल रक्खा था । वे उस कौएको बराबर अपने भोजनसे बचा अन्न देते थे । उनकी जूँठन खानेवाला वह कौआ स्वादिष्ट तथा पुष्टिकर भोजन खाकर खूब मोटा हो गया था । इससे उसका अहंकार बहुत बढ़ गया । वह अपनेसे श्रेष्ठ पक्षियोंको भी तुच्छ समझने और उनका अपमान करने लगा ।

एक दिन समुद्रतटपर कहींसे उड़ते हुए आकर कुछ हंस उतरे । वैश्यके पुत्र उन हंसोंकी प्रशंसा कर रहे थे, यह बात कौएसे सही नहीं गयी । वह उन हंसोंके पास गया और उसे उनमें जो सर्वश्रेष्ठ हंस प्रतीत हुआ, उससे बोला—'मैं तुम्हारे साथ प्रतियोगिता करके उड़ना चाहता हूँ ।'

हंसोंने उसे समझाया—'भैया ! हम तो दूर-दूर उड़नेवाले हैं । हमारा निवास मानसरोवर यहाँसे बहुत दूर है । हमारे साथ प्रतियोगिता करनेसे तुम्हें क्या लाभ होगा । तुम हंसोंके साथ कैसे उड़ सकते हो ?'

कौएने गर्वमें आकर कहा—'मैं उड़नेकी सौ गतियाँ जानता हूँ और प्रत्येकसे सौ योजनतक उड़ सकता हूँ ।' उड्डीन, अवडीन, प्रडीन, डीन आदि अनेकों गतियोंके नाम गिनाकर वह बकवादी कौआ बोला—'बतलाओ, इनमेंसे तुम किस गतिसे उड़ना चाहते हो ?'

तब श्रेष्ठ हंसने कहा—'काक ! तुम तो बड़े निपुण हो । परंतु मैं तो एक ही गति जानता हूँ, जिसे सब पक्षी जानते हैं । मैं उसी गतिसे उड़ूँगा ।'

गर्वित कौएका गर्व और बढ़ गया । वह बोला—'अच्छी बात, तुम जो गति जानते हो उसीसे उड़ो ।'

उस समय कुछ पक्षी वहाँ और आ गये थे । उनके सामने ही हंस और कौआ दोनों [illegible] समुद्रके ऊपर आकाशमें [illegible] कलाबाजियाँ दिखाता पूरी [illegible] आगे निकल गया । हंस [illegible] उड़ रहा था । यह देखकर दूसरे [illegible] करने लगे ।

थोड़ी देरमें ही कौएके पंख थकने लगे । [illegible] के लिये इधर-उधर [illegible] परंतु उसे उस अनन्त [illegible] नहीं पड़ता था । इतने समयमें हंस [illegible] आगे निकल गया था । कौएकी [illegible] अत्यन्त थक गया और ऊँची [illegible] भरे समुद्रकी लहरोंके पास [illegible]

हंसने देखा कि कौआ [illegible] रुक गया । उसने कौएके [illegible] तुम्हारी चोंच और पंख [illegible] यह तुम्हारी कौन-सी गति है ?'

हंसकी व्यंगभरी बात सुनकर [illegible] बोला—'हंस ! [illegible] है । [illegible] मूर्खताका दण्ड [illegible] बचा लो ।'

[illegible]

वृक्षपर चढ़ना ही सूझेगा और मैं तुरंत अपने बिलमें घुस जाऊँगा ।'

बिलावने कहा—'भाई ! पहलेके मेरे अपराधोंको भूल जाओ । तुम अब फुर्तीके साथ मेरा बन्धन काट दो । देखो, मैंने आपत्तिमें देखकर तुम्हें तुरंत बचा लिया । अब तुम अपना मनोमालिन्य दूर कर दो ।'

चूहेने कहा—'मित्र ! जिस मित्रसे भयकी सम्भावना हो उसका काम इस प्रकार करना चाहिये, जैसे बाजीगर सर्पके साथ उसके मुँहसे हाथ बचाकर खेलता है । जो व्यक्ति बलवान्‌के साथ सन्धि करके अपनी रक्षाका ध्यान नहीं रखता, उसका वह मेल अपथ्य भोजनके समान कैसे हितकर होगा ? मैंने बहुत-से तन्तुओंको काट डाला है, अब मुख्यतः एक ही डोरी काटनी है । जब चाण्डाल आ जायगा, तब भयके कारण तुम्हें भागनेकी ही सूझेगी, उसी समय मैं तुरंत उसे काट डालूँगा । तुम बिल्कुल न घबराओ ।'

इसी तरह बातें करते वह रात बीत गयी । लोमशका भय बराबर बढ़ता गया । प्रातःकाल परिघ नामक चाण्डाल हाथमें शस्त्र लिये आता दीखा । वह साक्षात् यमदूतके समान जान पड़ता था । अब तो बिलाव भयसे व्याकुल हो गया । अब चूहेने तुरंत जाल काट दिया । बिलाव झट पेड़पर चढ़ गया और चूहा भी बिलमें घुस गया । चाण्डाल भी जालको कटा देख निराश होकर वापस चला गया ।

अब लोमशने चूहेसे कहा—'मित्र ! तुम मुझसे कोई बात किये बिना ही बिलमें क्यों घुस गये । अब तो मैं तुम्हारा मित्र हो गया हूँ और अपने [illegible] शपथ करके कहता हूँ, अब मेरे [illegible] भी तुम्हारी इस प्रकार सेवा करेंगे, जैसे शिष्य लोग गुरुकी सेवा करते हैं । तुम मेरे शरीर, मेरे घर [illegible] सम्पत्तिके स्वामी हो । [illegible] करो और पिताकी तरह मुझे शिक्षा दो । [illegible] तुम साक्षात् शुक्राचार्य ही हो । अपने [illegible] दान देकर तुमने मुझे निःशुल्क खरीद लिया है । अब मैं सर्वथा तुम्हारे अधीन हूँ ।'

बिलावकी चिकनी-चुपड़ी बातें सुनकर [illegible] चूहा बोला—'भाई साहब ! मित्रता [illegible] है, जबतक स्वार्थमें विरोध नहीं [illegible] । [illegible] बन सकता है, जिससे कुछ स्वार्थ सिद्ध हो [illegible] मरनेसे कुछ हानि हो, तभीतक मित्रता [illegible] न मित्रता कोई स्थायी वस्तु है और न शत्रुता ही । [illegible] की अनुकूलता-प्रतिकूलतासे ही मित्र तथा शत्रु [illegible] रहते हैं । समयके फेरसे कभी मित्र ही शत्रु [illegible] शत्रु ही मित्र बन जाता है । [illegible] विशेष कारणसे ही हुई थी । अब [illegible] हो गया तो प्रीति भी न रही । अब [illegible] सिवा मुझसे तुम्हारा कोई दूसरा प्रयोजन [illegible] नहीं । मैं दुर्बल तुम बलवान्, [illegible] ठहरे । अतएव तुम मुझसे [illegible] भला, जब तुम्हारे प्रिय पुत्र और स्त्री [illegible] बैठा देखेंगे तो मुझे झट चट [illegible] इसलिये मैं तुम्हारे साथ नहीं [illegible] भैया ! तुम्हारा कल्याण हो ! [illegible] किये हुए उपकारका तुम्हें [illegible] जाऊँ तो मुझे चट न कर [illegible] ।'

[illegible]

मिथ्या गर्वका परिणाम
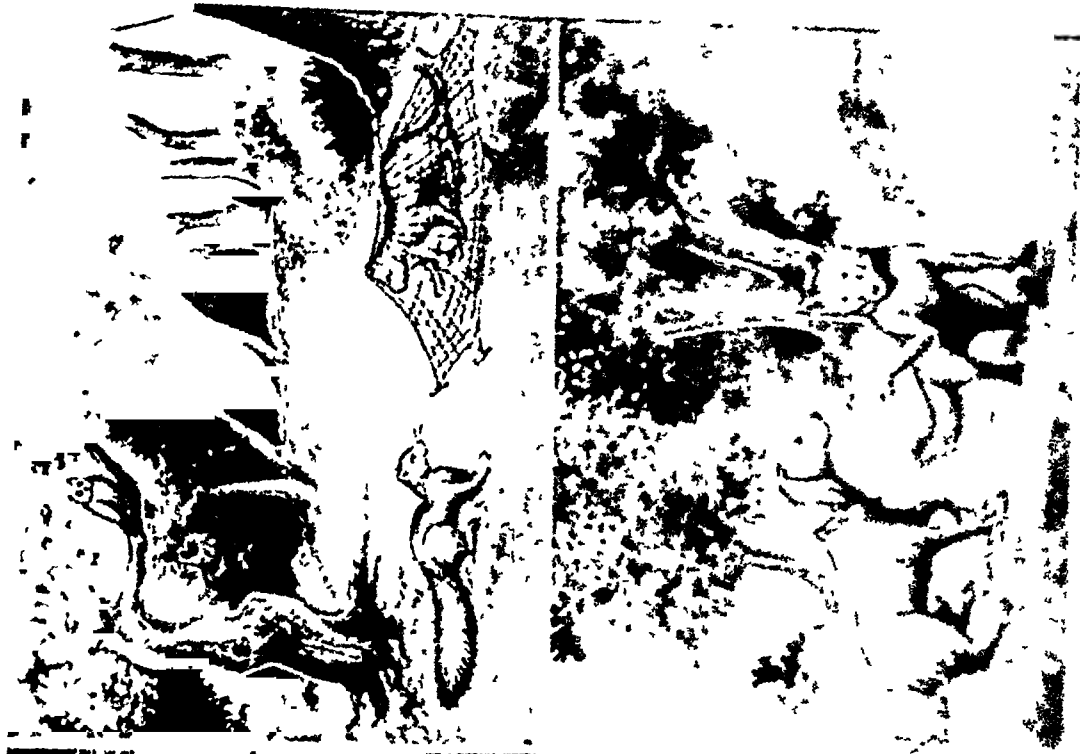
संकटमें बुद्धिमानी

सत्यनिष्ठाका प्रभाव

सबसे भयंकर शत्रु आलस्य

कर नहीं सकता, किंतु उल्लुओंका जहाँ बहुमत हो, वहाँ किसी समझदारको सत्यका प्रतिपादन करनेमें [illegible] साक्षात्कार कर चुका हो ।

स्वतन्त्रताका मूल्य

एक चाँदनी रातमें दैवयोगसे एक भेड़ियेको एक अत्यन्त मोटे-ताजे कुत्तेसे भेंट हो गयी । प्राथमिक शिष्टाचारके बाद भेड़ियेने कहा—'मित्र ! यह कैसी बात है कि तुम स्वयं तो खा-पीकर इतने मोटे-ताजे हो गये हो और इधर मैं रात-दिन भोजनके अभावमें मर रहा हूँ, बड़ी कठिनाईसे इस दुर्बल शरीरमें मेरे प्राणमात्र अब शेष रह गये हैं ।'

कुत्तेने कहा—'ठीक तो है, तुम भी हमारे-जैसे मोटे-ताजे बन सकते हो, बस, आवश्यकता इस बातकी है कि तुम भी मेरा अनुकरण करो ।'

भेड़ियेने कहा—'वह क्या ?'

'बस, केवल मेरे मालिकके घरकी रखवाली करना और रातमें चोरोंको समीप न आने देना ।' कुत्ता बोला।

'सब प्रकारसे सोलहों आने जी लगाकर करूँगा । आजकल मेरे दिन बड़े दु.खसे बीत रहे हैं । एक तो जंगलका वातावरण, दूसरे असह्य हिमपात, घोर वर्षा—जीवन-धारण कठिन हो रहा है सो सिरपर गरम छत और भर-पेट भोजन, मैं समझता हूँ, यह परिवर्तन कोई बुरा तो नहीं दीखता ।' भेड़िया बोला ।

'बिल्कुल ठीक । बस, तो अब आपको कुछ करना नहीं है । आप चुपचाप मेरे पीछे-पीछे चले आइये ।' कुत्ता बोला ।

इस प्रकार जब दोनों धीरे-धीरे चले जा रहे थे, तबतक भेड़ियेका ध्यान कुत्तेकी गर्दनपर [illegible] एक दागकी तरफ गया । इस निशान [illegible] इतना कुतूहल हुआ कि वह [illegible] न सका और पूछ बैठा कि यह [illegible] है ।

कुत्तेने कहा—'यह कुछ नहीं है ।'

भेड़ियेने कहा—'तो भी [illegible] ।'

कुत्ता बोला—'मालूम होता है तुम [illegible] बात कर रहे हो, जिसने मेरी [illegible] है ।'

'तो इसका अर्थ है कि तुम्हें [illegible] स्वतन्त्रता नहीं है ।' भेड़िया चकित होकर [illegible] ।

'प्राय. नहीं; क्योंकि मैं [illegible] हूँ, इसलिये दिनमें तो लोग मुझे बाँध रखते हैं और रातमें खुला छोड़ देते हैं । पर मैं तुम्हें [illegible] हूँ, मेरा मालिक मुझे अपने [illegible] है, वह मुझे बड़ा प्यार करता है । [illegible] तुम चले कहाँ ?'

'बस ! नमस्कार ! तुम्हारा [illegible] मुबारक हो । [illegible]

बुरी योनिसे उद्धार

[illegible] सियार और एक वानर मित्र- [illegible] थे । दोनोंको अपने पूर्व- [illegible] वानरने सियारसे [illegible] । सियार बोला, 'मित्र! तुमने [illegible] जिससे तुम्हें इतना निन्दित [illegible] पड़ता है ।' मित्रने कहा, [illegible] संस्कृत विद्वान् और समस्त [illegible] वेदज्ञ नामक ब्राह्मण था । [illegible] ब्राह्मणको धन देनेका वचन [illegible] दिया नहीं, उसीसे इस बुरी योनि [illegible] प्राप्त हुआ हूँ । प्रतिज्ञा करके यदि [illegible] नहीं दी जाती तो उसका दस जन्मोंका [illegible] हो जाता है; अब तुम बताओ, तुम [illegible] हुए ।'

[illegible] —मैं भी पूर्वजन्ममें ब्राह्मण ही था । [illegible] मित्र! पूर्वजन्ममें भी हमारी तुम्हारी [illegible] थी । यद्यपि तुम्हें यह स्मरण नहीं, तथापि [illegible] मुझे अपने पूर्वजन्मका स्मरण है । उस [illegible] ब्राह्मणका धन चुराया था, इसलिये [illegible] हूँ । ब्राह्मणका धन लेनेसे नरक तो होना ही है, नरक भोगनेके बाद वानरकी ही योनि मिलती है । ब्राह्मणका धन अपहरण करनेसे बढ़कर दूसरा कोई भयंकर पाप नहीं । विष तो केवल खानेवालेको ही मारता है, किंतु ब्राह्मणका धन तो समूचे कुलका नाश कर डालता है । बालक, दरिद्र, कृपण तथा वेद-शास्त्र आदिके ज्ञानसे शून्य ब्राह्मणोंका भी अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि क्रोधमें आनेपर वे अग्निके समान भस्म कर देते हैं ।'

सियार और वानर इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि दैवयोगसे किंवा उनके किसी पूर्व-पुण्यसे सिन्धुद्वीप नामक ऋषि स्वेच्छासे घूमते हुए वहीं पहुँच गये । उन दोनों मित्रोंने मुनिको प्रणाम किया और अपनी कथा सुनाकर उद्धारका रास्ता पूछा । ऋषिने बड़ी देरतक मन-ही-मन विचारकर कहा—'तुम दोनों श्रीरामचन्द्रजीके धनुष्कोटि तीर्थमें जाकर स्नान करो । ऐसा करनेसे पापसे छूट जाओगे ।'

तदनुसार सियार और वानर तत्काल ही धनुष्कोटिमें गये और वहाँके जलसे स्नानकर सब पापोंसे मुक्त होकर श्रेष्ठ विमानपर आरूढ़ होकर देवलोकमें चले गये ।

(स्कन्दपुराण, ब्राह्मखण्ड, सेतुमाहात्म्य अध्याय ३९)

—जा० श०

सबसे भयंकर शत्रु—आलस्य

[illegible] है । एक पूर्वजन्मका स्मरण करने- [illegible] था । वह बड़ा कठोर [illegible] था । उसकी [illegible] ब्रह्माजीने [illegible] कहा । [illegible] । उसने वर माँगा— [illegible] जिससे मैं [illegible] बैठे-बैठे ही चर सकूँ ।' ब्रह्माजी भी 'तथास्तु' कहकर चल दिये । अब क्या था, वह आलसी ऊँट कहीं चरने नहीं जाता और एक ही जगह बैठा रहकर भोजन कर लेता था ।

एक बार वह अपनी सौ योजन लंबी गर्दन फैलाये कहीं निश्चिन्त घूम रहा था । इतनेमें बड़े जोरोंकी आँधी आयी और घोर वृष्टि भी शुरू हो गयी । अब उस मूर्ख पशुने अपने सिर और गर्दनको एक कन्दरामें घुसेड़

दिया। उसी समय उस आँधी और जलवृष्टिसे आक्रान्त एक गीदड़ अपनी गीदड़ीके साथ उस गुफामें शरण लेने आया। वह मांसाहारी शृगाल सर्दी, भूख और थकानसे पीड़ित था। वहाँ उसने ऊँटकी गर्दन देखी और झट उसीको खाना आरम्भ कर दिया। जब उस आलसी, बुद्धिहीन ऊँटको [illegible] अपने सिरको [illegible] गर्दन निरपेक्ष [illegible] सका। गीदड़-गीदड़ीने [illegible] परिणामस्वरूप ऊँटकी मृत्यु हो गयी। [illegible]

([illegible])

सत्यनिष्ठाका प्रभाव

चन्द्रमाके समान उज्ज्वल, सुपुष्ट, सुन्दर सींगोंवाली नन्दा नामकी गाय एक बार हरी घास चरती हुई वनमें अपने समूहकी दूसरी गायोंसे पृथक् हो गयी। दोपहर होनेपर उसे प्यास लगी और जल पीनेके लिये वह सरोवरकी ओर चल पड़ी; किंतु सरोवर जब समीप ही था, मार्ग रोककर खड़ा एक भयंकर सिंह उसे मिला। सिंहको देखते ही नन्दाके पैर रुक गये। वह थरथर काँपने लगी। उसके नेत्रोंसे आँसू बह चले।

भूखे सिंहने उस गायके सामने खड़े होकर कहा—'अरी! तू रोती क्यों है? क्या तू समझती है कि सदा जीवित रहेगी? तू रो या हँस, अब जीवित नहीं रह सकती। मैं तुझे मारकर अपनी भूख मिटाऊँगा।'

गाय काँपते स्वरमें बोली—'वनराज! मैं अपनी मृत्युके भयसे नहीं रोती हूँ। जो जन्म लेता है, उसे मरना पड़ता ही है। परंतु मैं आपको प्रणाम करती हूँ। जैसे आपने मुझसे बातचीत करनेकी कृपा की, वैसे ही मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कर लें।'

सिंहने कहा—'अपनी बात तू शीघ्र कह डाल। मुझे बहुत भूख लगी है।'

गौ—'मुझे पहिली बार ही एक बछड़ा हुआ है। मेरा वह बछड़ा अभी घास मुखमें भी लेना नहीं जानता। अपने उस एकमात्र बछड़ेके स्नेहसे ही मैं व्याकुल हो रही हूँ। आप मुझे थोड़ा-सा समय देनेकी कृपा करें, जिससे मैं जाकर अपने बछड़ेको अन्तिम बार दूध पिला दूँ, उसका सिर चाटूँ और उसे [illegible] माताको सौंप दूँ। [illegible]

सिंह—'[illegible] यह समझ ले कि मुझे [illegible] पड़े आहारको मैं छोड़नेवाला नहीं हूँ।'

गौ—'आप मुझपर विश्वास करें! [illegible] शपथ करके कहती है कि [illegible] आपके पास लौट आऊँगी।'

सिंहने गौकी बातकी [illegible] आया कि मैं एक दिन [illegible] पाप नहीं होगा। आज [illegible] देख लूँ।' उसने गायको [illegible] जा, किंतु [illegible]

नन्दा गौ सिंहकी [illegible] आकुलतर लौटी। [illegible] आँसुओंकी धारा [illegible] चाटने लगी। [illegible] [illegible] से भरी है, [illegible] सब [illegible]

[illegible]

[illegible] ... पर ले ।'

सिंह गायकी सत्यनिष्ठासे प्रसन्न होकर बोला—'कल्याणी ! जो सत्यपर स्थिर है उसका अमङ्गल कभी नहीं हो सकता । अपने बछड़ेके साथ तुम जहाँ जाना चाहो, प्रसन्नतापूर्वक चली जाओ ।'

उसी समय वहाँ जीवोंके कर्म-नियन्ता धर्मराज प्रकट हुए । उन्होंने कहा—'नन्दा ! अपने सत्यके कारण बछड़ेके साथ तुम अब स्वर्गकी अधिकारिणी हो गयी हो और तुम्हारे संसर्गसे सिंह भी पापमुक्त हो गया है ।'—सु० सिं०

संसारके सुखोंकी अनित्यता

[illegible] एक गाय थी । [illegible] बहुत उदास हो गया था । [illegible] दूध [illegible] नहीं पिया था । [illegible] देखकर पूछा—'बेटा ! आज [illegible] उदास क्यों हो ? उमंगपूर्वक दूध क्यों [illegible]'

बछड़ा बोला—'माँ ! तुम उस भेड़की ओर तो देखो ! वह [illegible] है, मुझसे छोटा है और सुस्त [illegible] है, किंतु [illegible] पुत्र उसे कितना प्यार [illegible] है । [illegible] हरी-हरी घास [illegible] अपने हाथों खिलाता है और [illegible] है । उस भेड़को [illegible] पुत्रने घंटियाँ [illegible] प्रतिदिन [illegible] है । [illegible] कोई पूछता ही नहीं । मुझे पेटभर [illegible] । भूलकर कोई मुझे [illegible] नहीं [illegible] । मुझमें ऐसा क्या दोष है ? मैंने कौन-सा अपराध किया है ?'

गाय बोली—'बेटा ! व्यर्थ दुःख मत करो । यह संसार ऐसा है कि यहाँ बहुत सुख और बहुत सम्मान [illegible] है । संसारके सुख और सम्मानके पीछे रोग, शोक, मृत्यु तथा पतन छिपे हैं । [illegible] और दूसरेका सुख-सम्मान देखकर दुखी भी मत हो । वह तो दयाका पात्र है जैसे मरणासन्न रोगी जो कुछ चाहता है, उसे दिया जाता है; वैसे ही यह भेड़ा भी मरणासन्न है । इसे मारनेके लिये पुष्ट किया जा रहा है । हमारे सूखे तृण ही हमारे लिये शुभ हैं ।'

कुछ दिन बीत गये । एक सन्ध्याको गौ जब वनसे चरकर लौटी, तब उसने देखा कि उसका बछड़ा भयसे काँप रहा है । वह न दौड़ता है, न बोलता है । दीवारसे सटा दुबका खड़ा है । पास जानेपर भी उसने दूध पीनेका कोई प्रयत्न नहीं किया । गायने उसे चाटते हुए पूछा—'बेटा ! आज तुझे क्या हो गया है ।'

बछड़ा बोला—'माँ ! मैंने देखा है कि उस भेड़ेको पहले तो खूब सजाया गया, फूल-माला पहिनायी गयी; किंतु पीछे एक मनुष्यने उसका मस्तक काट दिया । केवल एक बार चीत्कार कर सका बेचारा ! उसने थोड़ी ही देर पैर पटके । उसके शरीरके भी हत्यारोंने टुकड़े-टुकड़े कर दिये । अब भी वहाँ आँगनमें भेड़का रक्त पड़ा है । मैं तो यह सब देखकर बहुत डर गया हूँ ।'

गायने बछड़ेको पुचकारा और वह बोली—'मैंने तो तुमसे पहिले ही कहा था कि संसारके सुख और सम्मानसे सावधान रहना चाहिये । इनके पीछे ही रोग, शोक, पतन और विनाश दबे पैर आते हैं ।'—सु० सिं०

श्रीमत्स्यावतार-कथा

(१)

संतोंका कहना है कि जब संसारके लोग विषयोंके मोहमें पड़कर भगवान्‌को भूल जाते हैं और उनकी स्वाभाविक विषमताके कारण पाप-तापसे झुलसने लगते हैं, तब उन्हें दुःखसे बचानेके लिये, अनन्त शान्ति देनेके लिये और उनका महान् अज्ञान मिटाकर अपने स्वरूपका बोध कराने एवं अपनेमें मिला लेनेके लिये स्वयं भगवान् आते हैं और अपने आचरणों, उपदेशों तथा अपने दर्शन, स्पर्श आदिसे जगत्‌के लोगोंको मुक्तहस्तसे कल्याणका दान करते हैं। यदि वे स्वयं आकर जीवोंकी रक्षा-दीक्षाकी व्यवस्था नहीं करते, जीवोंको अपनी बुद्धिके बलपर सत्य-असत्यका निर्णय करना होता और अपने निश्चयके बलपर चलकर उद्धार करना होता तो ये करोड़ों कल्पोंमें भी अपना उद्धार कर सकते या नहीं, इसमें संदेह है। परंतु भगवान् अपने इन नन्हे नन्हे शिशुओंको कभी ऐसी अवस्थामें नहीं छोड़ते, जब वे भटककर गड्ढेमें गिर जायँ। जब कभी ये अपने हाथमें कुछ जिम्मेदारीका काम लेना चाहते हैं और इसके लिये उनसे प्रार्थना करते हैं तब बहुत समझा-बुझाकर सृष्टिका रहस्य स्पष्ट करके उन्हें अपने सामने कुछ काम दे देते हैं।

महर्षि कश्यपके पौत्र एवं सूर्य भगवान्‌के पुत्र महाराज वैवस्वत मनु ऐसे ही पुरुष हो गये हैं। सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलपर उनका शासन था। वे प्रजापर पुत्रवत् स्नेह करके धर्मपूर्वक राज्य करते थे। उन्हें किसी बातकी कमी नहीं थी और संसारमें जितने प्रकारके सुख-साधन हैं, सब उनके पास विद्यमान थे। राज्य करते-करते बहुत दिन हो गये, उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि अब प्रलयका समय निकट है। इस संसारका यही नियम है। जो जन्मता है, उसे मरना ही पड़ता है। जिसकी सृष्टि हुई, उसका प्रलय अवश्य होगा। इसका उदाहरण तो संसारमें प्रायः प्रतिदिन ही देखनेको मिलता है।

संसारका अर्थ है सरकनेवाला; जो प्रतिक्षण बदल रहा है अथवा जो पल बदलनेसे पहले ही बदलता हो जाता है। सृष्टिके बड़े बड़े देवता, ऋषि-महर्षि, राजा रंक, [illegible] सबकी यही गति है। [illegible] कि जितने पदार्थ हमारे अनुभवमें आते हैं, नहीं आते हैं, सब [illegible] प्रलयकी ओर बड़े वेगसे बढ़ते जा रहे हैं। [illegible]

[illegible] पास [illegible] करें; [illegible] करें; वही [illegible] रहकर अपने स्वरूपमें [illegible] हैं। [illegible] भजनमें ही मग्न रहते हैं।

महाराज वैवस्वत मनु [illegible] थे। स्वयं उनके पिता सूर्य भगवान्‌ने [illegible] ज्ञानकी शिक्षा दी थी, [illegible] स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने किया है। [illegible] स्थित थे और दैवी [illegible] प्रलयकी घटना [illegible] गया। वे चाहते थे कि [illegible] बहुत दिनोंके लिये [illegible] जायँ। महात्माओंका [illegible] भी दूर करें। उन्होंने [illegible] प्रलयके समय भी [illegible] भगवान्‌के प्रेम तथा [illegible]।

[illegible] पुत्र इक्ष्वाकुको [illegible] लिये [illegible] अनेक [illegible] हुआ। [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

किया और शौचादि क्रियासे निवृत्त होकर विधिपूर्वक स्नान किया। कृष्णगंगाके शीतल जलमें स्नान करनेसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता मिली। सन्ध्या-वन्दन किया, सूर्यको अर्घ्य दिया और गायत्रीका जप करने लगे। जपके समय सूर्यमण्डलमें स्थित परम पुरुष परमात्माके ध्यानमें वे इस प्रकार तन्मय हो गये कि दोपहरतक उनका बाह्यज्ञान लुप्त रहा। जब होश आया, तब उन्होंने अपनी दिनचर्याका नियम बनाया। कितने समयतक जप, कितने समयतक ध्यान, कितने समयतक प्रार्थना और कितने समयतक स्वाध्याय किया जाय, इसके लिये समय निश्चित किया।

समयका नियम बड़े महत्त्वका है। जो लोग निरन्तर भगवान्‌के स्मरणमें लगे रहते हैं या जिनकी वृत्ति सर्वदा ब्रह्माकार रहती है, उनकी बात अलग है, परन्तु जो साधक हैं, जिनका समय प्रमाद या आलस्यमें भी बीत सकता है अथवा व्यर्थ कामोंमें अधिक समय लग जानेकी सम्भावना है, उन्हें तो अपना समय नियमित रखना ही चाहिये। समयसे उठना, समयसे सोना और समयसे ही स्नान ध्यान आदि करना बड़ा ही उपयोगी है। वर्तमान क्षण बड़ा ही मूल्यवान् है। जिसने भूत और भविष्यकी चिन्तामें इसको खो दिया, उसने भगवान्‌को ही खो दिया। समय भगवान् है। वर्तमान क्षणको ठीक कर लो, बस, सारी साधना पूरी हो गयी, भगवान् मिल गये। इसीसे आजतकके समस्त महात्माओंने समयके सदुपयोगपर बड़ा जोर दिया है।

वैसे तो मनुका स्वभावसे ही सारा समय भजन-पूजनमें ही बीतता। परन्तु सर्वसाधारणके लाभ और आदर्शकी दृष्टिसे उन्होंने उसे नियमित कर रक्खा था। वे बहुत कम सोते थे। कहते हैं कि जिसे किसी वस्तुकी लगन होती है, वह उसके चिन्तनमें इतना तल्लीन रहता है कि नींद उसके पास फटक ही नहीं सकती। जिन्हें साधनाके समय नींद आती है, उन्हें अपनेमें लगनकी कमीका अनुभव करना चाहिये। वे ब्राह्मवेलामें ही उठ जाते, नित्यकृत्य करके भगवान्‌के ध्यानमें लग जाते। उन्हें दूसरा कोई काम ही नहीं था।

वे मनसे तो भगवान्‌का चिन्तन करते ही, शरीरको भी घोर तपस्यामें लगाये रखते। वर्षामें बिना छायाके मैदानमें खड़े रहते, जाड़ोंमें पानीमें पड़े रहते और गर्मीके दिनोंमें पञ्चाग्नि तापते। कभी एक पैरसे खड़े रहते, कभी सिरके बल खड़े रहते और कभी बहुत दिनोंतक खड़े ही रहते। अनेकों दिनके उपवास करते, पानीतक नहीं पीते। श्वास

बंद करके बहुत समयतक निश्चेष्ट पड़े रहते, वायुतक ग्रहण नहीं करते।

ध्यान या चिन्तनमें शरीरकी आसक्ति बहुत ही बाधक है। संसारमें जो नाना प्रकारके दुःख और चिन्ताएँ हैं, यदि उनके मूलका पता लगाया जाय तो अधिकांश उनका कारण शरीरकी आसक्ति ही मिलेगी। शरीर या शरीरके सम्बन्धियोंकी चिन्तासे ही लोग व्याकुल रहते हैं। जिसने इस आसक्तिका परित्याग कर दिया, वह सबसे बड़ा तपस्वी और सुखी है। साधकोंको इस बातसे बहुत सावधान रहना चाहिये कि कहीं शरीरकी आसक्तिके कारण वे साधन-भजनसे विमुख तो नहीं हो रहे हैं!

महाराज मनुकी तपस्या निर्विघ्न चलती रही।

(२)

यह निश्चय है कि जिन्होंने अपने मनोरञ्जन अथवा जीवोंके कल्याणके लिये अपने संकल्पसे इस सृष्टिकी रचना की है, जिनकी दया दृष्टिसे जीवित होकर यह स्थित है और जिनके संकेतसे यह उन्हींमें समा जायगी; वही भगवान् इसके स्वामी हैं और वे एक-एक अणु, एक-एक परमाणु तथा एक-एक घटनाको उसके तहमें रहकर देखा करते हैं। वे भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं, परंतु साथ ही ध्यान रखते हैं कि इस अभिलाषाको पूर्ण करनेसे कहीं उनका कुछ अनिष्ट तो नहीं हो जायगा!

महाराज मनुकी तपस्या इसलिये चल रही है कि 'प्रलयके समय सृष्टिकी रक्षाका भार मुझपर हो। मैं सारी ओषधियोंको बचाऊँ।' यह इच्छा बड़ी अच्छी है। इसके मूलमें दया है, सम्पूर्ण प्राणियोंकी कल्याणकामना है, परंतु यही इच्छा यदि किसी साधारण प्राणीके हृदयमें हो और उसके पूर्ण हो जानेपर उसके मनमें घमंड हो जाय कि 'मैंने इनकी रक्षा की है, मैंने इन्हें बचाया है' तो वह भगवान्से विमुख होकर पतनकी ओर जा सकता है। यद्यपि यह बात मनुपर लागू नहीं है, फिर भी जगत्के लोगोंपर इसका प्रकट हो जाना आवश्यक है। मानो इसी भावसे भगवान्ने एक अद्भुत लीला रची।

एक दिन वैवस्वत मनु कृतमाला नदीमें स्नान करके तर्पण कर रहे थे। एकाएक उनकी अञ्जलिमें एक नन्हीं-सी मछली आ गयी। महाराजने उसे फिर नदीमें छोड़ दिया। परंतु एक ही क्षणमें वे आश्चर्यचकित हो गये, जब वह मछली मनुष्य भाषामें कहने लगी कि 'राजन्! मैं बहुत ही

निर्बल और गरीब हूँ। [illegible] है। मेरे पास बल नहीं है [illegible] [illegible] नदीमें बड़ी [illegible] और बड़े दुष्ट हैं। [illegible] और मेरी रक्षा कर सकते हैं! [illegible] गरीब और निर्बल [illegible] बात सुनकर मनुका [illegible] उन्होंने शीघ्रतासे उठाकर [illegible] लिया। [illegible] आये और [illegible]।

दूसरे दिन प्रातःकाल देखते हैं [illegible] इतनी बड़ी हो गयी है कि [illegible] मनुको देखते ही [illegible] मैं बड़े कष्टमें हूँ। मेरा शरीर [illegible] सङ्कीर्णतासे मेरा शरीर [illegible] आवश्यकता है। [illegible] हो सकें। आपने मेरी [illegible] उपकारी हैं। [illegible] रक्षा कीजिये।'

मछलीकी बात सुनकर [illegible] तालाबमें [illegible] दिन और [illegible] थोड़े ही समय बाद वह [illegible] रहनेके लिये तालाबमें भी [illegible] मैंडराने लगी और [illegible] महाराजके सामने [illegible] निवेदन किया—'राजन्! मैं [illegible] इस तालाबमें मैं दुःखी [illegible] हूँ। [illegible] और पशु-पक्षियोंके [illegible] रही हूँ। मेरा शरीर [illegible] मुझे [illegible] [illegible] कीजिये।'

मनु महाराजके [illegible] और [illegible] [illegible]

गर्जनामें वे भगवान्‌के आगमनकी आहटका अनुभव करते। कभी-कभी ऐसा भाव उठता कि सम्भव है भगवान् हमारे आस-पास ही कहीं छिपे हों और हमारी प्रत्येक गतिविधिका निरीक्षण कर रहे हों! भगवान् हमारे पास ही हैं, यह भाव आते ही उन लोगोंका मन विह्वल हो गया। उनके हृदयकी विलक्षण दशा हो गयी। आँखें आँसुओंसे भर गयीं, सारा शरीर पुलकित हो गया। अञ्जलि बाँधकर एक स्वरसे वे प्रार्थना करने लगे—

'भगवन्! हम सब न जाने कबसे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। हमारा हृदय तुम्हारे लिये तड़प रहा है। हमारी आँखें तुम्हारे दर्शनके लिये ललक रही हैं। हमारे हाथ तुम्हारा स्पर्श प्राप्त करनेके लिये और हमारा चित्त अपने सिरपर तुम्हारे करकमलोंकी छत्रछाया प्राप्त करनेके लिये न जाने कबसे मचल रहा है। तुम आते क्यों नहीं? क्या हमारे हृदयकी दशा तुमसे छिपी है? नाथ! आओ, शीघ्र आओ!! हम प्रलयसे भयभीत नहीं होते। अनन्तकालतक मृत्युका आलिङ्गन किये रह सकते हैं। हमें उसकी याद भी नहीं पड़ेगी, परंतु तुम आओ!

'क्या हमारा हृदय कलुषित है? क्या तुम यहीं नहीं हो? हम तुम्हें पहचाननेमें असमर्थ हैं? अवश्य यही बात है। पर हम तुम्हें पहचानने योग्य कब हो सकते हैं? तुम्हीं कृपा करके अपनी पहचान करा दो, तभी सम्भव है, अन्यथा हम तुम्हें नहीं पहचान सकते! परंतु तुम छिपे क्यों हो? यह आँख-मिचौनी क्यों खेल रहे हो? हम चाहे जैसे हैं, तुम्हारे तो हैं न? यह अपने लोगोंसे पर्दा कैसा? आओ, अब एक क्षणका विलम्ब भी असह्य है।'

प्रार्थना करते-करते वे लोग इतने व्याकुल हो गये कि उन्हें एक क्षण कल्पके समान मालूम पड़ने लगा। व्याकुलताकी हद हो गयी! वे केवल रो रहे थे। ठीक इसी समय मत्स्य भगवान् प्रकट हुए।

(४)

भगवान्‌की लीलाका रहस्य कठिन-से-कठिन और सरल-से-सरल है। कठिन इसलिये कि सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, पुराण उनका वर्णन करते-करते हार गये, उन्हें हृदयङ्गम न कर सके, अन्तमें 'नेति-नेति' कहकर चुप हो गये। [illegible] उतना ही दुर्बोध बना रहा, जितना कि उनके [illegible] पहले था। स्वयं भगवान्‌ने [illegible] मुखसे वर्णन करनेके लिये [illegible]

[illegible]

मनु महाराजने इस प्रकार कहा—'भगवन्! आपकी मधुर वाणी सुननेकी बड़ी अभिलाषा हो रही है। जबतक हमलोग आपकी सन्निधिमें हैं तबतक आप हमें धर्म-कर्मके रहस्य समझावें। आपके बिना आपके स्वरूप, लीला आदिका रहस्य कौन समझ सकता है?' मनुकी इस जिज्ञासाभरी प्रार्थनाको सुनकर भगवान्ने उन्हें अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों प्रकारके पुरुषार्थोंके लक्षण, स्वरूप और साधन बतलाये। उनका उपदेशोंका संग्रह मत्स्य महापुराणके नामसे प्रसिद्ध है। स्वाध्यायप्रेमियोंको उसका अध्ययन करना चाहिये। संक्षेपमें उसका सार-संग्रह इस प्रकार किया जा सकता है—

भगवान्ने कहा—अच्छा, मैं तुम्हें धर्मका सार सुनाता हूँ। सावधान होकर श्रवण करो। यहाँ मैं उस ज्ञानकी चर्चा नहीं करता, जो एक अनन्त आनन्दस्वरूप त्रिविध भेद शून्य है; क्योंकि उसमें बन्ध-मोक्ष, जीव-ईश्वर आदिके भेद हैं नहीं, वह केवल पारमार्थिक सत्य है और अनुभवगम्य तथा अनिर्वचनीय है। यहाँ तो केवल व्यावहारिक दृष्टिसे विचार करना है, जहाँ धर्म-अधर्म, बन्ध मोक्ष आदिके भेद-विभेद हैं, इस दृष्टिसे यह जो जगत् चल रहा है, यह अनादिकालसे ऐसा ही चलता आया है और अपरिमित कालतक चलता रहेगा। सृष्टिके बाद प्रलय, प्रलयके बाद सृष्टि यही इसका क्रम है, जब प्रलय हो जाता है, सारे जीव तमोगुणकी घोर निद्रामें अचेत हो जाते हैं, तब मैं प्रकृतिको क्षुब्ध करता हूँ, जीवोंको जगाता हूँ और इसलिये जगाता हूँ कि वे स्वतन्त्रता-पूर्वक अपने कल्याणका मार्ग निश्चय करें तथा आगे बढ़ें। ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवके रूपमें तथा अन्यान्य विभूतियों, सत-महात्माओं और अवतारोंके रूपमें प्रकट होकर उन्हें सन्मार्ग बतलाता हूँ। जो लोग पूर्व संस्कारके अनुसार पशु-पक्षी अथवा कीट-पतंग अथवा और किन्हीं जन्तुओंके रूपमें पैदा होते हैं, उन्हें क्रमशः आगे बढ़ाता हूँ और जो मनुष्ययोनिमें होते हैं उन्हें तमोगुणसे रजोगुण तथा रजोगुणसे सत्त्वगुणमें ले जाकर स्वर्ग अथवा मोक्षका अधिकारी बना देता हूँ।

जिन लोगोंके जीवनमें प्रमाद, आलस्य और निद्राकी अधिकता है, उन्हें अर्थ, धर्म आदि किसी भी पुरुषार्थकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि वे संसारकी सम्पत्ति, शरीर, पुत्र एवं धन आदिके लोभसे भी किसी काममें लग जायँ और रजोगुणकी प्रवृत्ति उनके जीवनमें आ जाय तो बहुत सम्भव है कि वे सत्त्वगुणतक भी पहुँच जायँ। परंतु आश्चर्य है कि कई लोग पशुओंकी भी गयी-बीती हालतमें पड़े रहते हैं और अपने अमूल्य जीवनको नष्ट करते रहते हैं। शास्त्रोंमें उनके लिये अर्थशास्त्रका विधान है। वे भौतिक उन्नतिमें लगकर अपना कल्याण कर सकते हैं।

जिनकी प्रवृत्ति रजोगुणी है, जो लोभ, प्रवृत्ति, बड़े-बड़े कारबार, अशान्ति, ईर्ष्या और स्पर्धामें पड़े हुए हैं, उन्हें वहीं नहीं पड़े रहना चाहिये। उन्हें धर्मशास्त्रके अनुसार अपनी प्रवृत्तियोंको सात्त्विक बनाना चाहिये। रजोगुण अच्छा है, परतु सत्त्वगुण उससे भी अच्छा है। धर्म-बुद्धिरहित कर्मके पचड़ोंमें पड़कर लोग स्वार्थी हो जाते हैं और अपने जीवनका लक्ष्य ही भुला देते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिये। प्रत्येक काम धैर्यके साथ करना चाहिये और करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि इससे अधिक से अधिक लोगोंकी सच्ची भलाई हो रही है या नहीं? जहाँतक हो सके, पूरी शक्ति लगाकर काम, क्रोध लोभसे बचें और अपने शरीर तथा सम्पत्तिका उपयोग विश्व भगवान्‌की सेवामें करें।

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनकी दृष्टि इस दृश्यमान जगत्‌में इतने जोरसे लग जाती है और संकुचित होने लगती है कि वे सारे ससारकी भलाईकी उपेक्षा करके केवल अपने शरीरके ही पालन-पोषण और ऐशो-आराममें भूल जाते हैं। उनके सामने परलोककी बात रक्खी जाती है। जीवन बहुत विशाल है, जीवन-मरणके चक्करमें कई बार स्वर्ग और नरकोंमें भी जाना पड़ता है। यदि उनकी ओरसे दृष्टि हटा ली जाय तो इस जीवनके कुछ दिन सम्भव है, सुखसे बीत जायँ परतु आगे चलकर पछताना ही पड़ेगा। अतः संचयशील प्राणी परलोकके लिये भी पुण्यसंचय करते हैं। पुरुषार्थों जिसे 'काम' कहा गया है उसका अर्थ स्त्री-पुरुषोंका सयोग नहीं है। उसका अर्थ है 'पारलौकिक सुखकी प्राप्ति'। जब पारलौकिक सुखकी दृष्टिसे यज्ञ, दान, तप, उपासना आदि किये जाते हैं, तब उन्हें 'काम' नामक पुरुषार्थका साधन कहा जाता है। धर्म लौकिक और पारलौकिक दोनों सुखोंका मूल है और धर्मके विना अर्थ या काम कोई भी नहीं मिलते।

चाहे लौकिक दृष्टिसे हो या पारलौकिक दृष्टिसे, धर्म होना चाहिये। धर्म स्वयं पुरुषार्थ है, इससे सब कुछ मिल सकता है। निष्काम भावसे किया जाय तो अन्तःकरणकी शुद्धि होती है और ज्ञान या भक्ति प्राप्त हो जाती है। यदि धर्म धर्मके लिये ही न हो तो लौकिक सुखकी अपेक्षा पारलौकिक सुखकी दृष्टि अधिक उत्तम है। कारण, लौकिक सुख इसी स्थूल देहपर अवलम्बित है और हाड़-चाम-मास-मल-मूत्रका पुलिन्दा

है। यह दो-चार दिनकी चीज है और इतना घृणित है कि इसके लिये ही कर्म करना अथवा इसीको सुख पहुँचाना कभी जीवनका उद्देश्य हो नहीं सकता। पारलौकिक सुखकी दृष्टि सर्वोत्तम न होते हुए भी इसकी अपेक्षा उत्तम है; क्योंकि वह सूक्ष्म शरीरसे सम्बन्ध रखती है, जो कि आत्मा या जीवसे अधिक निकट है। पारलौकिक दृष्टि जीवके स्वरूपकी जिज्ञासा पैदा करती है, अनेक लोकोंके सम्बन्धमें कुतूहल उत्पन्न करती है और उनके बनानेवाले, उनके स्वामी और फल देनेवालेपर विश्वास करानेवाली होती है।

परंतु जीवके कल्याणकी दृष्टिसे इतना ही पर्याप्त नहीं है। उसमें जो आनन्दकी एक अतृप्त लालसा है, सर्वदा जीवित रहनेकी भावना है और सबका ज्ञान प्राप्त कर लेनेकी जिज्ञासा है, वह इतनेसे ही पूर्ण नहीं होती। उसके लिये तो अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान और अनन्त सत्यकी आवश्यकता है और वह केवल मैं ही हूँ। जबतक जीव मेरे पास नहीं आता तबतक उसे सच्चा सुख, सच्ची शान्ति, सच्चा ज्ञान और सच्ची अमरता नहीं प्राप्त हो सकती; क्योंकि इनका आधार मैं ही हूँ। स्वयं परब्रह्म मेरा एक अंश है।

सबसे बढ़कर आश्चर्यकी बात तो यह है कि ये जीव मेरे अंदर ही हैं। मैं भी उनके अंदर व्याप्त हूँ, परंतु उन्हें मेरा पता नहीं है। जैसे एक प्यासा आदमी अमृतके समुद्रमें डूब-उतरा रहा हो, पर उसे पता न हो कि मैं अमृतके समुद्रमें हूँ। वह समझ रहा हो कि मैं एक घोर मरुस्थलमें इधर-उधर भटक रहा हूँ। तब जैसी परिस्थिति होती है, वैसी ही परिस्थिति इन जीवोंकी है। ये इन विषयोंके मोहमें इस प्रकार फँस गये हैं कि मेरी ओर दृष्टि ही नहीं डालते। इसीका नाम है 'भ्रान्ति'। इसीको कहते हैं भूल। जीवोंके दुःखका मूल यह भूल ही है। इस भूलको मिटानेके लिये जिस शास्त्रका वर्णन किया गया है, उसे 'मोक्षशास्त्र' कहते हैं और इस भूलका मिट जाना ही 'मोक्ष' है।

(५)

सप्तर्षि और राजर्षि मनु बड़ी एकाग्रता और प्रेमसे भगवान्की मधुर वाणी सुन रहे थे। [illegible] मनकी चञ्चलताके लिये और कोई स्थान तो था ही नहीं, उनकी वृत्तियोंके एकमात्र आश्रय थे भगवान् या भगवान्की वाणी। वास्तवमें जब कोई आधार नहीं रहता, विरोधी [illegible] नहीं रहता, तब भगवान्का विश्वास और भगवान्का चिन्तन स्वाभाविक रूप होता है।

जब भगवान् चुप हो गये, तब महर्षियोंने क्रमशः भगवान्की प्रार्थना की। भृगुने कहा—'भगवन् ! जिसने तुम्हारे चरणकमलोंके मकरन्द-रसका [illegible] किया, उसका जीवन व्यर्थ ही बीत गया। [illegible] निष्फल हुए और जीवनका पवित्र लक्ष्य उसे [illegible] हुआ। मुझपर आपने बड़ी कृपा की, मेरा [illegible] हुआ। मैं आपके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ।'

अत्रिने रुँधे कण्ठसे, गद्गद वाणीसे, सिर झुकाकर, अञ्जलि बाँधकर प्रार्थना की—'प्रभो ! बिना [illegible] तुम्हारी प्राप्ति नहीं हो सकती। जीवमें इतनी [illegible] कहाँ है कि अपने बल-पौरुषसे तुम्हें प्राप्त कर ले। [illegible] कहाँ है कि वह तुम्हारे बारेमें कुछ [illegible]। परंतु तुम इतने दयालु हो कि अपने आपको [illegible] नहीं [illegible], जीवकी जरा-सी पुकार सुनकर उसके पास दौड़ [illegible] और उसे अपने गलेसे लगाकर कृतकृत्य करते हो। [illegible] मुझे अपार कृपा की है। मैं तुम्हारा [illegible] हूँ। [illegible] चरणोंमें अपने-आपको समर्पित करता हूँ।'

अङ्गिराने कहा—'प्रभो ! यह [illegible] है। मैं आपका हूँ। [illegible] गये हैं, उसे कभी [illegible] नहीं समझता कि मैं भगवान्का हूँ, भगवान् [illegible] है। [illegible] मुझे क्या चाहिये ! आपकी [illegible]।'

पुलस्त्यने कहा—'भगवन् ! [illegible] ब्रह्मा हैं, आप ही विष्णु हैं। [illegible] जो भी रूप हो, वह आप ही हैं। [illegible] [illegible] मैं आपके चरणोंमें बार-बार [illegible] हूँ।'

पुलहने कहा—'भगवन् ! [illegible]

[illegible]

क्रतुने कहा—[illegible]

इसमें नहीं, जो आपसे सम्बद्ध न हो। इस बातको न जानकर लोग भटकते हैं, दुःख उठाते हैं। मैं आपकी इच्छाका यन्त्र हूँ। आपके इशारेपर नाचनेवाली कठपुतली हूँ। आप इसी तरह आनन्द करें। मैं आपके चरणोंमें नतमस्तक हूँ।'

शंकरजीने कहा—'भगवन्! आप जगत्के अन्तरात्मा हैं। ज्ञानस्वरूप हैं। आपने अपना आत्मीय हैं और आत्मा ही हैं। आप सब कुछ जानते हैं। आपसे क्या कहना और क्या सुनना है? कहा सुना तो दूसरोंसे जाता है। अपने-आपसे ही क्या कहें और क्या सुनें! मैं अपने आत्मस्वरूप भगवान्को अभेदभावसे प्रणाम करता हूँ।'

मनु महाराजने बड़े प्रेमसे हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! आपकी कृपासे सम्पूर्ण जीवोंकी, ओषधि वनस्पतियोंके बीजोंकी रक्षा हुई। अब शीघ्र ही इस प्रलयका अन्त कीजिये और इन जीवोंको इनकी उन्नतिकी ओर अग्रसर कीजिये। आपने मुझपर अपार कृपा की, मेरे लिये अवतार धारण किया और सम्पूर्ण उपदेश सुनाकर सारे जीवोंको कृतार्थ किया। यद्यपि इस समय इनकी वृत्तियाँ विलीन हैं, ये सुन नहीं सकते, फिर भी आपकी वाणीका प्रभाव इनपर पड़ेगा ही और जगत्में आनेपर भी कभी-न-कभी इनके हृदयमें इन उपदेशोंकी स्मृति होगी तथा ये अपना कल्याण कर सकेंगे। आपके साथ रहने और आपके उपदेश सुननेके कारण प्रलयका इतना लंबा समय क्षणभरकी भाँति व्यतीत हो गया। अब थोड़ा ही समय है। आपकी मधुर वाणी सुनते-सुनते और आपकी अनूप रूप-राशि, मोहिनी छवि देखते-देखते ही यह समय बीते और निरन्तर ही इसकी स्मृति बनी रहे ऐसी कृपा कीजिये।'

इन सबकी बातोंको सुनकर भगवान्ने कहा—'मेरे प्रति आपलोगोंका अहैतुक प्रेम सर्वथा प्रशंसनीय है। मैं तो अपना काम ही करता रहता हूँ। दुनियाभरकी झंझट अपने सिरपर ले रक्खी है। आपलोगोंके प्रेमकी जितनी परवा करनी चाहिये, नहीं कर पाता। मैं निश्चिन्त होनेपर भी इस बातके लिये चिन्तित रहता हूँ कि कहीं मेरे प्रेमियोंको कोई कष्ट न पहुँच जाय। आपलोगोंके बलपर ही मैं भगवान् बना हुआ हूँ। आपलोग मेरे हृदय हैं। मैं आपलोगोंका हृदय हूँ। आप मेरे अतिरिक्त दूसरी किसी वस्तुका चिन्तन नहीं करते परंतु मुझसे ऐसा नहीं हो पाता, इसके लिये मैं आपलोगोंका ऋणी हूँ और यह ऋण वहन करनेमें मुझे बड़ा आनन्द आता है। मैं उऋण हो ही कब सकता हूँ! इसी नाते आपलोग मेरा स्मरण किया करें, आपलोगोंके पवित्र हृदयोंमें स्थान पाकर मैं कृतकृत्य हो जाता हूँ।

'यद्यपि लोग मुझे समदर्शी कहते हैं और मैं हूँ भी वैसा ही, परंतु जो अपने धन, जन, शरीर, प्राण और सर्वस्वकी चिन्ता छोड़कर केवल मेरे ही भरोसे मेरे चिन्तनमें लगे रहते हैं, उन्हें मैं कदापि नहीं छोड़ सकता। अग्निके पास जो जाते हैं, उन्हींकी ठंडक दूर होती है। जो कल्पवृक्षकी छायामें जाते हैं, उन्हींकी अभिलाषा पूर्ण होती है। जो अपने-आपको मेरे प्रति समर्पित कर देते हैं, मैं भी अपने-आपको उनके प्रति समर्पित कर देता हूँ। जो मुझे जिस भावसे भजता है, मैं भी उसी भावसे उसे भजता हूँ।'

इतना कहते-कहते भगवान् मानो आवेशमें आ गये। यद्यपि भगवान्को कभी आवेश नहीं होता, न हो सकता है; परंतु भक्तोंके कल्याणके लिये उन्हें आवेशकी भी लीला करनी पड़ती है। उन्होंने कहा—'मैं आपसे सत्य कहता हूँ; शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं आपलोगोंके बिना जीवित नहीं रह सकता। मेरा जीवन आपलोगोंके अधीन है। मेरी सत्ता आपलोगोंके हाथमें है। आपलोग मेरे आत्मा हैं। मुझ भगवान्के भगवान् हैं। मैं आपलोगोंके पीछे पीछे इसलिये भटकता फिरता हूँ कि कहीं-कहीं आपलोगोंके चरणोंकी धूलि मिल जाय! और उसे सिरपर लगाकर मैं पवित्र हो जाऊँ। आपके ही बलपर मुझमें संसारको धारण करनेकी शक्ति है। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि एक दिन सारे संसारका उद्धार होगा। सम्पूर्ण जीवोंको मेरे पास आना होगा। मुझसे एक होना होगा।

'आना होगा, निश्चय आना होगा। मेरे पास आये बिना उनकी यात्रा समाप्त नहीं हो सकती। आखिर वे अपने घर आये बिना मार्गमें कबतक भटकते रहेंगे। मैंने इसलिये उन्हें स्वतन्त्र किया कि अपनी विद्या-बुद्धिसे अपना हित सोच-कर वे उसे पावें, परंतु उन्होंने उस विद्या-बुद्धिका दुरुपयोग किया। विषयोंके लिये गँवाया। उन्हें कदापि शान्ति नहीं मिल सकती। परंतु इतनेपर भी उन्हें मैं छोड़ नहीं सकता वे मेरे अपने हैं। कहीं अपने लोगोंको भी छोड़ा जा सकता है! रोगी दवा न लेना चाहे तो क्या उसे दवा नहीं दी जायगी? मैं इन्हें बलात् अपने पास खींचूँगा। यदि वे मुझे छोड़कर धनसे प्रेम करेंगे तो उनका धन नष्ट हो जायगा यदि मुझे भुलाकर स्त्री, पुत्र, शरीरके चिन्तनमें लग जायँ तो उन्हें अशान्ति और उद्वेगका शिकार होना पड़ेगा। यदि वे मेरी उपेक्षा करके संसारकी किसी वस्तुको चाहेंगे तो प्राप्ति और अप्राप्ति दोनों ही हालतोंमें वह जलायेगी। पानेपर सफल

का गर्व होगा, और पानेकी कामना होगी; न पानेपर अड़चन डालनेवालेके प्रति क्रोध होगा, जलेंगे, मरेंगे, नष्ट होंगे।

'मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि मेरे पास रहनेमें, मेरी उपासना करनेमें और मेरी सनिधिका अनुभव करनेमें ही जीवोंका कल्याण है। क्या नन्हा-सा बच्चा अपनी माँसे छोड़कर कभी सुखी हो सकता है? जीवो! आओ! आओ! आओ! दौड़ आओ! मैं तुम्हें अपने हृदयसे लगानेके लिये कबसे पुकार रहा हूँ। क्षण क्षण तुम्हारी बाट देख रहा हूँ। मेरे प्यारे बच्चो! आओ, मेरी गोदमें बैठ जाओ! मैं तुम्हारे सिरपर अपना हाथ फेरूँ! तुम्हें चूम लूँ! और फिर कभी एक क्षणके लिये भी न छोडूँ। किसीकी परवा मत करो। संसारके धर्म-कर्म छोड़कर मेरे पास दौड़ आओ। मैं तुम्हारा अपना हूँ, मैं तुम्हारा अपना हूँ!'

मत्स्य भगवान् और बहुत-सी बातें कहते रहे। मानो प्रकृतिस्थ होकर अब उन्होंने कहा—'अब प्रलयका समय बीतनेपर आया। हयग्रीव दैत्यने वेद चुरा लिये हैं। उनका उद्धार करनेके लिये मैं उसके पास जाता हूँ। बिना वेदके सृष्टि कैसे हो सकेगी? ब्रह्माके लिये पहले उन्हींकी आवश्यकता है।'

मत्स्य भगवान्ने प्रस्थान किया।

(६)

किसी-किसी पुराणमें यह कथा भिन्न प्रकारसे आती है। कल्पभेदसे दोनों ही कथाएँ ठीक हो सकती हैं उनमें लिखा है कि कृतमाला नदीके तटपर राजर्षि सत्यव्रत नामके एक महान् तपस्वी रहते थे। वे फल-मूलादि भी भोजनके लिये नहीं लेते थे। केवल पानी पीकर ही अपने शरीरका निर्वाह कर लेते थे। समयपर स्नान, तर्पण, सन्ध्या आदि नित्य-नियम बड़े प्रेमसे करते और भगवान्का चिन्तन करते हुए उनका नाम ले-लेकर मुग्ध हुआ करते। उनके मनमें कोई कामना नहीं थी। वे कुछ पाना नहीं चाहते थे। अपने जीवनका परम लाभ समझकर भगवच्चिन्तनमें मस्त रहते थे।

उनमें तीनों प्रकारके तप पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित थे। नित्य अपने आराध्यदेव भगवान्की विधिपूर्वक पूजा करते, अतिथियों, विद्वानोंका यथाशक्ति सत्कार करते। [illegible] वन्दना करते। त्रिकाल स्नान करते। [illegible] आदि करके अपने शरीरको पवित्र करते। उनमें [illegible] इतनी नम्रता थी कि उनके [illegible] और [illegible] पक्षियोंके साथ वे बहुत झुककर [illegible]

उनके [illegible] चर्चामें उनके [illegible] भी [illegible] पत्थर पानी पीते थे।

वे [illegible] मिलने [illegible] कभी [illegible] तौलकर [illegible] नामोंके उच्चारण [illegible] पापोंमें [illegible] बहुत कम [illegible]।

उनके [illegible] विषाद, उद्वेग उनके [illegible] मन प्रसन्न रहता। [illegible] और आनन्द [illegible] स्वार्थके विचार कभी नहीं [illegible] थे। अन्तःकरणपर उनका [illegible] जिस परिस्थितिमें उसे [illegible] आगे बढ़ [illegible]।

वे नित्य-नियमसे [illegible] जब उन्होंने [illegible] इन्होंने भी [illegible] पहुँचा दिया।

भगवान् बड़े [illegible]

[illegible]

लिया है

इस प्रकार राजर्षि सत्यव्रतके सामने भगवान् मत्स्यरूपसे प्रकट हुए। यहाँ भगवान्के लिये सभी रूप समान हैं, परंतु भक्तोंके सामने वे कभी-कभी ऐसे रूपोंमें भी प्रकट होते हैं, जिससे उन्हें सर्वत्र देखनेमें सहायता मिल सके। इसीलिये वे पशु-पक्षी, कच्छप, मत्स्य और शूकर तथा मनुष्यके रूपोंमें भी प्रकट होते हैं। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि हमारे सामने जितनी वस्तुएँ आती हैं, उनका आकार प्रकार चाहे जो हो, उनके रूपमें स्वयं भगवान् आ सकते हैं और आते हैं। यदि हम प्रमादमें हुए, आलस्यमें हुए अथवा विषयोंके चिन्तनमें लगे हुए तो वे सामनेसे आकर निकल जाते हैं, हम उन्हें पहचान नहीं पाते। जो सर्वदा उनकी प्रतीक्षा करते रहते हैं, सब वस्तुओंमें उन्हें पहचाननेकी चेष्टा किया करते हैं, उनके सामने एक-न-एक दिन भगवान् आते हैं और वे उन्हें पहचानकर निहाल हो जाते हैं।

राजर्षि सत्यव्रतने मत्स्यके रूपमें भगवान्को पहचान लिया। वास्तवमें भगवान् अपने पहचाननेके लिये ही आये हुए थे। सत्यव्रतके दण्डवत् प्रणाम और प्रार्थनाके बाद भगवान्ने कहा—'सत्यव्रत! मैं तुम्हारी तपस्यासे, साधनासे और अहैतुक प्रेमसे प्रसन्न हूँ। मैं जानता हूँ, तुम निष्काम हो। तुम्हारे हृदयमें किसी प्रकारकी कामना नहीं है। वास्तवमें ऐसे ही भक्तोंकी मुझे आवश्यकता है और उन्हें मैं ढूँढ़ा करता हूँ। तुम मेरे सृष्टि-कार्यमें हाथ बँटाओ। मेरी आज्ञाका पालन करनेमें तुम्हें आनन्द ही होगा। आजके सातवें दिन सारी पृथ्वीको समुद्र डुबा देगा। स्वर्ग और पाताल भी डूबनेसे नहीं बच सकेंगे। यह 'नैमित्तिक प्रलय' का समय है। इस समय जीवों और ओषधियोंके बीज बचानेकी आवश्यकता है। मैंने यह काम तुम्हें सौंपा। जब सारी सृष्टि जलमें डूबने लगेगी, तब एक बड़ी-सी नौका तुम्हारे पास आयेगी। सप्तर्षियोंके साथ जीव और बीजोंको लेकर उसमें बैठ जाना। उस समय प्रलयके अगाध जलमें जब नौका डाँवाडोल होने लगेगी, तब मैं मत्स्यरूपसे आऊँगा। मेरे सींगमें नाव बाँधकर तुमलोग अपनी रक्षा करना।'

राजर्षि सत्यव्रतने बड़ी प्रसन्नतासे भगवान्की आज्ञा शिरोधार्य की। भगवान् अन्तर्धान हो गये। यह जीवन क्षणभङ्गुर है। आज है, पता नहीं कल रहेगा या नहीं! कलकी तो बात ही क्या, आगेके क्षणमें भी इसके रहनेका कोई पक्का विश्वास नहीं। ऐसे जीवनमें यदि भगवान्की आज्ञाका पालन हो जाय तो इससे बढ़कर अच्छी बात और क्या होगी! हम न जाने कितनोंकी आज्ञा मानते हैं, किसीकी स्वार्थसे मानते हैं, किसीकी दबावसे मानते हैं और किसीकी विनोदसे मानते हैं; परंतु क्या भगवान्की आज्ञा इतना मूल्य भी नहीं रखती! स्वार्थ और भयकी दृष्टिसे भी भगवान्की आज्ञाका उल्लङ्घन उचित नहीं है, विचार तो यही स्वीकार करता है परंतु हमारी हालत बड़ी विचित्र है। वेद, शास्त्र, गीता आदिके रूपमें भगवान्की आज्ञा प्राप्त होनेपर भी हम उसका पालन नहीं करते।

यह मूढ़ताके सिवा और कुछ नहीं है। यदि प्रेमीको अपने प्रियतमकी आज्ञा मिल जाय तो पूछना ही क्या है! उसके लिये तो हानि-लाभका प्रश्न ही नहीं है। बस, आज्ञा-ही-आज्ञा है। यह सोचकर कि इस जीवनमें भगवान्के आज्ञापालनका सुअवसर प्राप्त हुआ, राजर्षि सत्यव्रतको बड़ी प्रसन्नता मिली। वे कृतमालाके पूर्व किनारेपर कुशासन बिछाकर बैठ गये और मत्स्य भगवान्के चरणकमलोंका चिन्तन करने लगे। आजके सातवें दिन प्रभु प्रकट होंगे और बहुत समयतक उनके संसर्ग और आलापका आनन्द मिलेगा, इस भावसे उनका हृदय द्रवित हो गया। वे भगवान्की दयालुताका स्मरण करके रोने लगे। उन्हें ये सात दिन सात कल्पसे भी बड़े जान पड़े। इन सात दिनोंमें ही जगत्की न जाने क्या हालत हो गयी, परंतु उन्हें कुछ पता न चला। भगवान्की इच्छा और उनकी सङ्कल्प-शक्तिसे सभी वस्तुएँ अपने बीजरूपसे उनके पास उपस्थित हुईं। इन बातोंका पता सत्यव्रतको तब लगा, जब समुद्रकी घोर गर्जनासे उनकी एकाग्रता भंग हुई।

उन्होंने देखा, अब समुद्र मुझे डुबाना ही चाहता है कि इतनेमें नाव आ गयी और सप्तर्षि आदिके साथ वे उसपर सवार हो गये। समुद्रकी भीषणता देखकर उन लोगोंके मनमें तनिक भी आशंका नहीं हुई। उन्होंने बड़ी शान्तिसे भगवान्का ध्यान किया। ध्यान करते ही मत्स्य भगवान् प्रकट हुए और वासुकिके द्वारा वह नाव उनके सींगमें बाँध दी गयी।

अब राजर्षि सत्यव्रतने गद्गद स्वरसे प्रार्थना की। वे बोले—'भगवन्! हम सब जीव अनादिकालसे अविद्याके कारण आत्मस्वरूपको भूलकर संसारमें भटक रहे हैं। आपकी शरण ग्रहण करनेसे ही इसका नाश हो सकता है। यदि हम अज्ञानी जीव अपने हाथों इस अज्ञान और कर्मके बन्धनको काटना चाहें तो असम्भव ही है। इसे केवल आप काट सकते हैं। जैसे अंधेरा नेता अंधा नहीं हो सकता, वैसे ही अज्ञानी जीवका गुरु कोई अज्ञानी गुरु नहीं हो सकता। गुरु तो केवल आप ही हैं और आपके ही उपदेशसे हमारी दुर्बुद्धि मिट सकती है। कामनाओंके कारण हमारी बुद्धि नष्ट हो गयी है।

अपने ज्योतिर्मय प्रकाशसे इसका मोह दूर कर दीजिये और सर्वदाके लिये हमें अपना लीजिये। भगवन्! हमने समस्त गुरुओंके परमरूप आपको ही गुरुके रूपमें वरण किया है। मैं आपके चरणोंमें शत-शत, सहस्र-सहस्र नमस्कार करता हूँ।'

सत्यव्रतकी भक्तिपूर्ण इस प्रार्थनाको सुनकर भगवान्ने सांख्ययोग आदिकी शिक्षा दी। सारा मत्स्यपुराण सुनाया और अन्तमें आत्मतत्त्वका गुह्यतम ज्ञान और अपनी भक्तिका उपदेश किया। तत्पश्चात् सत्यव्रतको सम्बोधित करके भगवान्ने कहा—'अब प्रलयका समय बीत गया। तुमलोग संसारमें जाओ। मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। मैंने तुम्हें स्वीकार किया। मैं सर्वदा तुम्हारे साथ रहूँगा। एक क्षणके लिये भी नहीं छोड़ूँगा। अब अगले कल्पमें तुम विवस्वान्के पुत्र बनोगे और तुम्हारा नाम वैवस्वत मनु होगा। एक मन्वन्तरके तुम्हीं अधिपति होओगे। मेरी कृपासे तुम्हें कभी मेरी विस्मृति नहीं होगी।'

सबने श्रद्धा-भक्तिसे भगवान्को प्रणाम किया और वे हयग्रीवके वधके लिये उपस्थित हुए।

(७)

वेदका अर्थ है अनन्त ज्ञान। यह भगवत्स्वरूप है। भगवान्का निःश्वास अर्थात् प्राण है। इसका भगवान्के साथ अटूट सम्बन्ध है। वेद रहें और भगवान् न रहें या भगवान् रहें, वेद न रहें; ऐसी स्थिति न कभी हुई है और न हो सकती है। पहले-पहल अर्थात् सृष्टिके प्रारम्भमें भगवान् ही ब्रह्माके हृदयमें वेदोंका संचार करते हैं। उन्हें ऐसा ज्ञान देते हैं, जिससे वे पूर्व कल्पके तत्त्वोंको पहचानते हैं और उनकी ठीक-ठीक व्यवस्था करते हैं। जबतक वे इस ज्ञानको सावधानीके साथ सुरक्षित रखते हैं, इसका स्मरण बनाये रखते हैं, तबतक वे सृष्टिकी व्यवस्था करते रहते हैं; क्योंकि यह ज्ञान भगवत्स्वरूप ही है। इसके आश्रयसे की जानेवाली सृष्टि भगवत्-सम्बन्धसे युक्त ही रहती है।

बल्कि वेदसे ही सृष्टि हुई है। ॐकारके द्वारा प्रकृतिमें क्षोभ, गायत्रीके द्वारा ज्ञानका संचार और ब्रह्माके चारों मुखोंसे निकले हुए मन्त्रोंद्वारा ही सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि हुई है। जबतक ब्रह्माके मुखोंसे वेद-मन्त्र निकलते रहते हैं, तबतक प्रलय नहीं होता और जब वे असावधान हो जाते हैं, तमोगुण उनकी राजसिक और सात्त्विक प्रवृत्तियोंको दबा लेता है, तब उनका वेद-ज्ञान भूल जाता है और वे निद्रित हो जाते हैं। यह निद्राकाल ही नैमित्तिक प्रलयका [illegible] है।

कहते हैं कि जब ब्रह्माका [illegible] है, संध्या हो जाती है, तब वे कुछ [illegible] हो जाते हैं। उसी समय हयग्रीव नामका दैत्य, जिसे [illegible] कर सकते हैं, उनके वेद चुरा ले जाता है। वे भी [illegible] खो जाते हैं, परन्तु भगवान् इस [illegible] कर सकते हैं। वे मत्स्यावतार धारण करके [illegible] उसे ढूँढ निकालते हैं और [illegible] ब्रह्माके हृदयमें पुनः वही ज्ञान प्रकाशित कर देते हैं।

यद्यपि ब्रह्माके वेद [illegible] लिखे हुए [illegible] मन्त्रोंके रूपमें नहीं हैं, जिन्हें कोई चुरा सके। वे [illegible] हैं। तथापि असावधानी और [illegible] यदि भी लुप्त हो सकती है, [illegible] भगवान् ही ऐसी लीला करते हैं।

वेदोंका रक्षक कौन है? [illegible] कौन है? वेद और धर्मके व्यावहारिक रूप [illegible] कौन है? इन प्रश्नोंका एकमात्र उत्तर है—भगवान्! [illegible] इनके रक्षक भगवान् ही हैं।

जब हयग्रीव वेदोंको चुराकर [illegible] गया और उसने सोचा कि मेरे [illegible] कोई नहीं [illegible], मुझे अब कोई न देख सकेगा, तब [illegible] धारण किया और वे उसके पास पहुँच गये। [illegible] छिपकर कोई कहाँ जा सकता है! वे [illegible] हैं, बल्कि घट-घटमें जितने [illegible] हैं, [illegible] आश्रयसे, उन्हींकी [illegible] होते हैं। [illegible] स्वयं ही घट-घटमें रहते हैं। [illegible] छिपा सकते हैं!

हम छिपा नहीं सकते, [illegible] है। [illegible] क्या है! क्या हम [illegible] इन आँखोंसे [illegible] अवश्य, हम [illegible] पुरुषोंको नहीं [illegible] हुए [illegible] नहीं है!

[illegible]

वह बलवान् हो गये थे; परंतु भगवान्का भरोसा नहीं रखते थे। यही कारण है कि भगवान्ने उनकी रक्षा की और हयग्रीवको भी ... ; परंतु उसे भगवान्का भय था। उसमें ही नहीं, भगवान्पर आस्था थी इसलिये भगवान्ने स्वयं उसके वध करके उसे सद्गति प्रदान की।

भगवान् वध और भगवान्के द्वारा किये गये हुए वधमें बड़ा कल्याण होता है; क्योंकि भगवान् अपने हाथों जिसका वध करते हैं, उसका उद्धार हो जाता है। हाँ, तो हयग्रीवका उद्धार करके उन्होंने वेद ब्रह्माको दे दिये और ब्रह्माने पहलेके कल्पकी भाँति सृष्टि की। इस प्रकार मत्स्यरूपसे भगवान्ने वेदोंकी रक्षा की। धर्मका, ज्ञानका उपदेश किया और अपनी महान् भक्तवत्सलता प्रकट की। इस अवतारके द्वारा भगवान्ने ऐसी सुन्दर लीला की, जिसे गा-गाकर लोग भवसागरसे तरेंगे और उनके प्रेममें मस्त रहेंगे।

प्रत्येक अवतारकी अलग-अलग उपासना-पद्धति है। उनमें उनके मन्त्र, ध्यान आदिका विस्तारसे वर्णन हुआ है। मत्स्य भगवान्के सम्बन्धमें भी मन्त्र और ध्यानका वर्णन मिलता है। वासुदेव द्वादशाक्षर मन्त्रकी भाँति इनका भी द्वादशाक्षर मन्त्र है। 'ॐ नमो भगवते मं मत्स्याय।' इस मन्त्रका जप करनेसे साधकको धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष तथा भगवत्प्रेमकी प्राप्ति होती है।

इनके ध्यानके सम्बन्धमें मेरुतन्त्रमें लिखा है—

नाभ्यधोरोहितसम आकण्ठं च नराकृतिः।
घनश्यामश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाधरः॥
शृङ्गिमत्स्यनिभो मूर्द्धा लक्ष्मीवक्षोविराजितः।
पद्मचिह्नितसर्वाङ्गः सुन्दरश्चारुलोचनः॥

(मेरुतन्त्र ३६ अ०)

भगवान् मत्स्यका विग्रह नाभिसे निचले भागमें रोहित मछलीकी भाँति है। गलेतक मनुष्यके आकार-सा है और सिर शृङ्गी मछलीकी भाँति है। वर्षाकालीन मेघके समान श्यामल वर्ण और तीन हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा धारण किये हुए हैं। आँखोंसे दयाकी वर्षा हो रही है और वक्षःस्थल-पर लक्ष्मी विराज रही हैं। मत्स्य भगवान्का यही स्वरूप है। इसके ध्यानसे साधकोंका परम कल्याण-साधन होता है। विस्तार मूल ग्रन्थमें ही देखना चाहिये।

अन्तमें हम श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान् मत्स्यको प्रणाम करें और उनके चरणोंमें भक्तिकी प्रार्थना करें।

बोलो भक्त और भगवान्की जय!

श्रीकच्छपावतार-कथा

(१)

सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंकी विषमताका नाम ही सृष्टि है। जब ये तीनों बराबर रहते हैं, तब प्रलय रहता है। सृष्टिकी दशामें ये तीनों बराबर रहें अथवा तीनोंमेंसे किसी एककी प्रधानता न रहे, ऐसा सम्भव नहीं और जब ये तीनों विषम अवस्थामें रहते हैं, तब एक दूसरेको अपने अधीन कर लेना चाहते हैं, अपनी ही प्रधानता स्थापित करना चाहते हैं। इसलिये सृष्टिकी दशामें इन तीनोंका संग्राम निरन्तर चलता रहता है। यदि रजोगुणकी प्रधानता हुई तो वह तमोगुणकी ओर ले जाता है और सत्त्वगुणकी प्रधानता हुई तो वह भगवान्की ओर ले जाता है। रजोगुणकी प्रधानतामें यदि भगवान्के आश्रयमें हो तो थोड़े ही दिनोंमें वह सत्त्वगुणका रूप धारण कर लेती है। इस सृष्टिमें और अन्तर्में सर्वदा यह युद्ध चला करता है।

इसी प्रकार अनादि कालसे देवासुर-संग्राम होता चला आता है। देवता भगवान्के बलपर लड़ते हैं, उनका अपना बल कुछ नहीं है, इसलिये उन्हें अच्छा कहा गया है और दैत्य अपने बलपर, अहंकार-अभिमानके बलपर लड़ते हैं; इसलिये उन्हें बुरा बतलाया गया है। जब देवता भी भगवान्का आश्रय छोड़कर अपने बलपर युद्ध करते हैं, तब वे हार जाते हैं और दुःख भोगते हैं; परंतु सत्त्वमूर्ति भगवान्को सत्त्वगुण अधिक प्रिय है। वे तमोगुणका साम्राज्य नहीं देखना चाहते, इसीसे सत्त्वगुणी देवताओंकी सहायता किया करते हैं और अपनी ओर न आनेवाले दानवोंकी सहायता नहीं करते।

यहाँ यदि देवताका अर्थ दैवी सम्पत्तियोंका प्रेमी कर लिया जाय और दैत्यका अर्थ आसुरी सम्पत्तियोंका प्रेमी कर लिया जाय तो भी बात ठीक बैठ जाती है; परंतु यह केवल रूपक ही नहीं है, इसके साथ एक महान् ऐतिहासिक सत्य जुड़ा हुआ है। देवता और दैत्योंका संग्राम होता है, बार-बार होता है, उनके लोक हैं, उनमें राजा-प्रजा आदिके व्यवहार यथावत् चलते हैं और आज भी चलते हैं। जैसे

स्थूल जगत्में हमलोग व्यवहार करते हैं, आध्यात्मिक जगत्में मन-बुद्धि आदिका व्यवहार होता है, वैसे ही आधिदैविक जगत्में देवता और दैत्योंका व्यवहार होता है—उन्हें हम देख सकते हैं, उनके यहाँ जा सकते हैं और उनसे सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। इसके लिये एक विशेष मार्ग है, एक विशेष प्रकारकी उपासना-पद्धति है। अस्तु।

आये दिन देवता और दैत्योंमें युद्ध छिड़ा ही रहता था। उन दिनों अर्थात् छठे चाक्षुष मन्वन्तरमें देवता और दानवोंका पारस्परिक वैमनस्य चरम सीमातक पहुँच गया था। ऐसा कोई दिन नहीं बीतता, जब छिट-फुट आक्रमण न हों। देवता जर्जरित हो गये थे। सारे स्वर्गमें त्राहि-त्राहि मची हुई थी। उन्हीं दिनों एक और घटना ऐसी घट गयी, जिसके कारण सभी देवता भयभीत हो गये।

बात यह हुई कि देवराज इन्द्र अपने ऐरावत हाथीपर सवार होकर कहीं बाहर जा रहे थे। रास्तेमें दुर्वासाजी महाराज स्वर्गकी ही ओर आते हुए मिल गये। इन्द्रने उन्हें सादर प्रणाम किया और महर्षि दुर्वासाने प्रसन्न होकर अपने हाथमें पहलेसे ही ले रक्खी हुई माला उन्हें पहना दी। वह माला बहुत सुन्दर थी। उसके दिव्य पुष्प कभी कुम्हलानेवाले नहीं थे। उसको पहननेवाले कभी दुखी नहीं होते थे, परंतु उस समय इन्द्र असावधान थे। दुर्वासाके स्वभावका ध्यान न रहनेके कारण उनसे कुछ प्रमाद बन गया। उन्होंने वह माला अपने गलेसे निकालकर हाथीको पहना दी और हाथीने अपने सूँड़से खींचकर उसे तोड़ डाला और पैरों तले डालकर मसल दिया। यह सब एक ही क्षणमें दुर्वासाके देखते-देखते हो गया। रुद्रावतार दुर्वासाके क्रोधकी सीमा न रही। उनका चेहरा तमतमा उठा। शरीर काँपने लगा और उनके मुँहसे निकल पड़ा—'इन्द्र! तुझे अपने राज्यका इतना घमंड है! तू इतना मदमत्त हो गया है! जिस मालाको जीवनभर अपने गलेमें धारण करना चाहिये, उसका इतना अपमान! जा, अपने कियेका फल भोग! तेरी यह श्री न रहेगी। तू और तेरा राज्य श्रीहीन हो जायगा।' इन्द्रने उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा की, परंतु सफल न हुए।

एक ओर दैत्योंके आक्रमण-पर-आक्रमण और दूसरी ओर दुर्वासाका यह भीषण शाप! देवतालोग घबरा गये। उनकी सभा हुई। सबने अपने-अपने [illegible] इन्द्रने [illegible] सर्वसम्मतिसे यह निश्चय हुआ कि [illegible] हमारे पितामह हैं, वृद्ध हैं, अनुभवी हैं। उनके [illegible]

स्वभावतः ही [illegible] नहीं है। [illegible] बिना हमारे [illegible] नहीं [illegible] सकता।' [illegible]

सब मिलकर [illegible] स्वर्गसे [illegible] सुमेरु पर्वतके [illegible] हुई है। [illegible] की उत्तमसे उत्तम वस्तुएँ [illegible] हैं। [illegible] सुन्दरता संसारमें और कहीं नहीं है। [illegible] नमूना है। वहाँ [illegible] वसिष्ठ, [illegible] सनकादि [illegible] सम्मतिसे सारे काम होते हैं और [illegible] देवताओंके [illegible] निरन्तर [illegible] गाया करते हैं।

देवताओंने [illegible] ब्रह्माके [illegible] प्रणाम [illegible] बैठ गये। [illegible] सुनाये और [illegible] शान्ति नहीं है, [illegible] नहीं है। [illegible] चाहिये। [illegible] भगवान्‌का [illegible] 'देवताओ! [illegible] इतना ही नहीं, [illegible] परमाणु [illegible] हैं, हैं और रहेंगे। [illegible] करनेके [illegible] नहीं है। [illegible] उन्हें [illegible]

[illegible] भगवान्के प्रकाशमय निलयनके पास पहुँचीं। ब्रह्मा, शंकर, इन्द्रादि देवता तथा सनक ऋषि-महर्षि सभी अंदर दिव्य वाणीसे भगवान्की स्तुति करने लगे। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्तिसे प्रार्थना की—'प्रभो! हम आपके शरणागत हैं। न हमें अपना बल है न और किसीका सहारा है। हम आपके हैं, आपके भरोसेपर हैं और आपकी ही शरणमें आये हुए हैं। हम अपनी आँखोंसे आपका दर्शन करनेमें भी असमर्थ हैं; क्योंकि इनमें इतनी शक्ति ही नहीं कि अपने अंदर-बाहर और इनसे भी परे रहनेवाले परम दिव्यका दर्शन कर सकें। आप अनन्त हैं, निर्विकार हैं, निराकार हैं और विज्ञानानन्दघन हैं। हम सब मायाके चक्करमें फँसे हुए हैं और हमारे हृदय, इन्द्रिय और शरीर मायाके ही कर्मोंमें लगे हुए हैं।

परंतु हम सब मायामें तो हैं न! हमारे अंदर इतनी शक्ति नहीं है कि इस मायाके पर्देको फाड़ डालें। इसके परे पहुँच जायँ। यह तो आपकी कृपासे ही हो सकता है और होता है। हम आपकी इच्छाके अनुसार चलनेमें ही अपना कल्याण समझते हैं और चलते हैं। यह देवताओंकी पराजय, दैत्योंकी वृद्धि, संसारमें दैवी शक्तियोंकी कमी और आसुरी शक्तियोंकी अभिवृद्धि आपकी इच्छासे ही हो रही होगी, परंतु हमें संतोष कहाँ! हमारा हृदय अशान्तिसे भर गया है। हम उद्विग्न हो गये हैं। अब आपके अतिरिक्त इस दुःखसे बचानेवाला और कोई नहीं दीखता। नाथ! आप आइये। दर्शन दीजिये, हमारे नेत्रोंको सफल कीजिये।

यद्यपि आप निराकार हैं तथापि आप भक्तोंके लिये साकार हो जाते हैं। आप साकार होते हुए भी निराकार हैं। निराकार होते हुए भी साकार हैं। आप कुछ न चाहते हुए भी सब कुछ चाहते हैं और सब कुछ चाहते हुए भी कुछ नहीं चाहते। यही तो आपकी भगवत्ता है। प्रभो! आपने कहा है कि 'भक्तोंकी इच्छा ही मेरी इच्छा है।' आज हम सब आपके दर्शनके इच्छुक हैं, कृपा करके हमें दर्शन दीजिये। आप अवश्य दर्शन देंगे। आप दर्शन दिये बिना रह नहीं सकते।'

प्रार्थना करते-करते सब-के-सब आत्म-विस्मृत हो गये और साष्टाङ्ग जमीनपर गिर पड़े। उनकी व्याकुलता, आतुरता तथा दर्शनकी लालसा देखकर भगवान्ने अपने आपको प्रकट किया। वे तो सर्वत्र रहते ही हैं और प्रकट भी रहते हैं। ज्यों उनके दर्शनकी सच्ची इच्छा हुई, बस, दर्शन हो गये। उनके प्रकट और अप्रकट होनेकी बात तो केवल व्यावहारिक दृष्टिसे है।

भगवान्की उस अनुपम रूपराशिको देखकर देवताओंकी आँखें चौंधिया गयीं। वे उन्हें देख न सके। कुछ क्षणोंमें सम्हलकर उन्होंने देखा कि अनन्त सौन्दर्य, माधुर्य और ऐश्वर्यकी राशि उनके सामने मूर्तिमान् होकर खड़ी है और उसकी मन्द-मन्द मुसकान सबके चित्तको चुरा रही है।

कैसी अद्भुत रूप-माधुरी है! स्वच्छ मरकत मणिके समान श्यामवर्णका शरीर है, कमलकी कोमल पँखुड़ियोंके सदृश गुलाबी आँखें हैं। तपाये हुए सोनेके समान विशुद्ध पीताम्बर धारण किये हुए हैं। मुखसे आनन्द और प्रसन्नताकी धारा बह रही है। सुन्दर-सुन्दर टेढ़ी-टेढ़ी भौंहोंसे अनुग्रहकी वर्षा हो रही है। चारु चितवनसे मानो सारे संसारको प्रेमके समुद्रमें डुबानेके लिये संकेत कर रहे हैं। गलेमें वनमाला, वक्षःस्थलपर कौस्तुभ मणि और लक्ष्मी तथा अन्यान्य सुकुमार अङ्गोंमें दिव्य आभूषण धारण किये हुए हैं और उनके अङ्ग मूर्तिमान् होकर उपासना कर रहे हैं। सभी दिव्य हैं, अलौकिक हैं, भगवत्स्वरूप हैं।

सबने सिर टेककर साष्टाङ्ग प्रणाम किया।

(२)

शिव-सनकादि भगवान्की रूप-माधुरीका अपलक दृगोंसे पान कर रहे थे। बाहर-भीतरका कुछ ज्ञान नहीं था। जितना ही पीते, उतनी ही अधिक अतृप्ति बढ़ती जाती। यही तो भगवान्के रूप-रसकी विशेषता है। वह नित्य-नूतन है। पीजिये और पीते ही जाइये। न कभी समाप्ति होगी, न कभी तृप्ति होगी। देवतालोग एकटक देख रहे थे। उन्हें बोलनेका साहस ही नहीं होता था। अन्तमें ब्रह्माने अपना मौन भङ्ग किया। उन्होंने कहा—'भगवन्! आप अन्तर्यामी हैं। आपसे कोई बात छिपी नहीं है। आपसे क्या कहें और क्या न कहें! आपकी दयालुता देखकर हमसे कुछ कहा नहीं जाता। आपके दर्शन अत्यन्त दुर्लभ हैं। बड़े-बड़े यज्ञ-यागादि साधन करनेपर भी क्षणमात्रके लिये आपकी झाँकी मिलनी कठिन है। कहाँ हम संसारमें भूले हुए और संसारमें लगे हुए विषयासक्त प्राणी और कहाँ आपका परम विरक्त ज्ञानि-जनोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ दर्शन! परंतु आपने कृपा करके हमें दर्शन दिया है, अतः आपकी यह कृपा ही हमें कुछ निवेदन करनेकी ढिठाई करनेके लिये उत्साहित करती है।

'अन्तर्यामिन् ! आप जानते ही हैं कि इस समय सृष्टिकी स्थितिका अवसर है । यदि इस समय दैवी-सम्पत्ति और देवताओंकी रक्षा और अभिवृद्धि न हुई तो सारी सृष्टि तमोगुणी हो जायगी । फिर तो सृष्टिका यह उद्देश्य कि लोग स्वतन्त्रतासे अपने कल्याणका साधन करें और भगवान्को प्राप्त करें, केवल उद्देश्यमात्र ही रह जायगा । काम, क्रोध, लोभ, मोह, प्रमाद, आलस्य आदिके कारण सभी जीव पाप-तापकी महान् ज्वालामें जलने लगेंगे । क्या आपकी यही इच्छा है ? नहीं, नाथ ! आपकी ऐसी इच्छा कदापि नहीं है । आप तो सब जीवोंको अपने पास बुलाना चाहते हैं और इसीके लिये आपने यह सृष्टिका प्रपञ्च रचा है । ये सभी देवता और हमलोग आपकी शरणमें आये हैं । आपके चरणोंमें नमस्कार करते हैं । जैसे जगत्का कल्याण हो, वैसा कीजिये ।'

भगवान्ने दयादृष्टिसे निहारते हुए प्रेमभरी वाणीसे कहा—'ब्रह्मा, शिव तथा देवताओ ! आपलोगोंकी विपत्ति मुझसे छिपी नहीं है । मैं सभी बातें जानता हूँ । आपके साथ मेरी हार्दिक सहानुभूति है । परंतु किया क्या जाय, इस सृष्टिका एक नियम है । इसकी एक व्यवस्था है । इसमें पुरुषार्थ करनेवाला विजयी होता है । मैं सदाचारियोंका सहायक हूँ । मैं सात्त्विक पुरुषोंका मित्र हूँ; परंतु सदाचार और सात्त्विकताका यह अर्थ तो नहीं है न कि मेरे भरोसे हाथ-पर-हाथ रखकर बैठा जाय ? तुम्हारे पास जितनी शक्ति है, जितना बल है, तुम जो कुछ और जितना कर सकते हो, सचाई और साहसके साथ उतना करो । जब इतनेपर भी तुम्हारा काम होता न दीखे तो मुझे पुकारो । मैं तुम्हारे साथ हूँ । मैं सचाईसे पुकारनेवाली चींटीकी भी आवाज सुनता हूँ; क्योंकि सचाईका निवासस्थान मेरे अत्यन्त निकट है ।

'सारा संसार मेरा है । देवता और दैत्य दोनों ही मेरे हैं । मैं किसीके प्रति पक्षपातका भाव नहीं रखता । जो सच्चे हृदयसे मुझे पुकारता है, मैं उसकी सहायता करता हूँ । परंतु सचाईके साथ मुझे पुकारनेवालेके हृदयमें आसुर भाव रह ही नहीं सकते । वह देवता हो जाता है । देवता और असुरोंका यही मुख्य भेद है कि देवता मुझे पुकारते हैं और असुर नहीं पुकारते । पुकारनेवालेके पास जाना और न पुकारनेवालेके पास रहकर भी प्रकट न होना, यह समदर्शिताको भंग नहीं करता । मैं समदर्शी ही नहीं, स्वयं सम हूँ ।

'अब तुमलोगोंको मुझे याद रखते हुए पुरुषार्थ करना होगा । पुरुषार्थ भी [illegible] नहीं, सबको मिलकर करना होगा । तुमलोग [illegible] । [illegible] तुम्हारा शत्रु है तो क्या । [illegible] करके नम्रताके साथ उनके पास जाओगे, तब वह बड़े सम्मानके साथ तुम्हारी मित्रता स्वीकार करेगा ।

'शत्रुको नम्र देखकर बड़े-से-बड़ा शत्रु भी नम्र हो जाता है और लाभके अवसरपर शत्रुको मित्र बनानेमें हिचकना हानिकर है । इस समय तुमलोग [illegible] स्वीकार कर लो और उन्हें ही अपना नेता [illegible] । उनसे सलाह करके समुद्र मथनेकी तैयारी करो । पृथ्वीकी समस्त ओषधि-वनस्पतियोंको समुद्रमें डालकर मन्दराचलको मथानी बनाकर वासुकि नागकी रस्सीसे मथो । समुद्रसे बड़े सुन्दर-सुन्दर रत्न निकलेंगे । लोभ नहीं करना । [illegible] रखना । बलिकी इच्छा पूर्ण होने देना । समुद्रसे अमृत निकलेगा, जिसको पान करनेके बाद तुमलोग अमर हो जाओगे । तुम्हारे सामने जब कोई अड़चन आये, मुझे याद करना । मैं तुम्हारे पास आ जाऊँगा । [illegible] । उठो, जागो और अपने कर्तव्योंमें [illegible] । [illegible] भी वस्तु नहीं, जो सच्चे त्याग और [illegible] न हो सकती । आगमें कूद पड़ो । जो अपने [illegible] जोखिम नहीं उठाता, वह किसी महत्त्वपूर्ण [illegible] नहीं कर सकता ।'

देवताओंको इस प्रकारकी आज्ञा देकर [illegible] देखते भगवान् अन्तर्धान हो गये । ब्रह्मा और [illegible] भगवान्को साष्टाङ्ग प्रणाम करके उनके दिव्य गुणोंका [illegible] चिन्तन करते हुए अपने-अपने दिव्य [illegible] और देवताओंने बिना शस्त्रके, बिना कवचके बड़े [illegible] साथ बलिके पास प्रस्थान किया ।

दैत्योंने देखा कि अब देवता [illegible] हैं । बहुतोंके मनमें यह इच्छा हुई कि [illegible] अवसर मिला है, [illegible] । [illegible]

था, इस प्रकारका उत्पात करनेसे देवतालोग स्वर्गके लिये [illegible] हो सकते हैं और यहाँ कह गया था कि ऐसा करनेसे [illegible] अपना हो जायगा। इतनेमें ही इन्द्रने [illegible] देकर [illegible] भवनमें प्रवेश किया।

असुरोंने इस प्रकार आता हुआ देखकर बलिने बड़ा आदर-सत्कार किया और कुपित होनेवाले असभ्य दैत्योंको डाँटकर देवताओंसे उनके आनेका कारण पूछा। इन्द्रने बड़े विस्तारसे समझाया कि समुद्रमें अनेकों रत्न हैं और यदि हमलोग एक साथ होकर समुद्र मथें तो वे हमें मिल सकते हैं। उन्हें पाकर संसारमें हम सबकी सर्वश्रेष्ठ वस्तु पा लेंगे। मन्दरकी मथानी, वासुकिकी रस्सी और भगवान्के सहायक होनेकी बात भी उन्होंने कही। बलि और उसके मन्त्रियोंने हृदयसे इन्द्रकी बातोंका अनुमोदन किया और दोनों दल मिलकर समुद्र-मन्थन करें, यह बात निश्चित हो गयी।

निश्चय हो गया। समुद्र-मन्थनकी बात पक्की हो गयी। अब केवल मन्दराचलके लानेकी देर रही। तुरंत सब देव-दानव मिलकर मन्दराचलके पास गये और उन्होंने बड़े वेगसे उसे उखाड़ डाला। विशाल बाहुओंवाले बलशाली दैत्य और देवताओंने उसे उखाड़कर बड़े जोरकी आवाज करते हुए उसको लेकर समुद्रकी ओर यात्रा की। परंतु वहाँसे समुद्र निकट नहीं था, बहुत दूर था। चलते-चलते उनकी शक्ति क्षीण हो गयी और विवश होकर बलि तथा इन्द्रने उसे छोड़ दिया। उस बड़े भारी पहाड़के गिरनेके कारण अनेकों दैत्य और देवताओंके शरीर चूर-चूर हो गये। कइयोंके हाथ टूट गये, कइयोंके पैर टूट गये और बहुतोंकी कमर टूट गयी। दोनों दलोंमें तहलका मच गया। उनका उत्साह ठंडा पड़ गया।

उस समय देवताओंने भगवान्की याद की। भगवान् कहीं दूर थोड़े ही थे। उन्हें तो केवल पुकारने भरकी देर थी। अबतक इन लोगोंको अपने बलका भरोसा था, घमंड था, तबतक भगवान् अपने आप क्यों आने लगे! जब घमंड चूर-चूर हो गया, तब पुकारते ही वे प्रकट हो गये। अपनी अमृतमयी दृष्टिसे मरे हुए देव-दानवोंको उन्होंने जीवित किया, जिनके अङ्ग भङ्ग हो गये थे, उनके शरीर पूर्ववत् ठीक किये। उनके अन्तःकरणमें बल और साहसका संचार कर दिया। अपने बायें हाथसे मुसकराते-मुसकराते मन्दराचलको उठाया और देखते-देखते क्षणभरमें उसे गरुड़पर रखकर समुद्रतटपर पहुँचा दिया। भगवान्ने अब गरुड़को विदा कर दिया और स्वयं वहीं रह गये।

तत्पश्चात् देवता और दानवोंने वासुकि नागसे प्रार्थना की कि 'तुम समुद्र मथनेमें हमारी सहायता करो। हम तुम्हें फलमें अपने बराबर ही हिस्सा देंगे।' वासुकिने स्वीकार कर लिया और उन्होंने वासुकि नागसे लपेटकर मन्दराचलको समुद्रमें डाल दिया। वासुकि नागके मुखकी ओर देवताओंके साथ भगवान्ने पकड़ा और पूँछकी तरफ दैत्योंको पकड़नेके लिये कहा। परंतु दैत्योंने यह बात स्वीकार नहीं की। उन्होंने कहा कि 'हम देवताओंके बड़े भाई हैं, बली हैं और किसी प्रकार कम नहीं हैं। ऐसी हालतमें हमलोग पूँछ कभी नहीं पकड़ सकते। हम तो मुँहकी ओर रहेंगे।' भगवान्ने दैत्योंकी यह बात मान ली और उन्हें मुँहकी ओर पकड़ाकर स्वयं देवताओंके साथ पूँछकी ओर चले आये। कभी-कभी आत्माभिमानके कारण बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। दैत्यलोग मुँहकी ओर क्या गये मुँहकी खा गये! आगे उन्हें इसका फल मालूम होगा।

अब दोनों दल दही मथनेकी भाँति मन्दराचलसे समुद्र मथने लगे। परंतु सबसे पहला विघ्न यह उपस्थित हुआ कि मन्दराचल स्थिररूपसे रहता ही नहीं था। वह समुद्रमें डूबने लगा। देव-दानवोंने अपनी ओरसे बहुत चेष्टा की परंतु उनकी एक न चली। निराश होकर उन्होंने भगवान्का सहारा लिया। भगवान् तो सब जानते ही थे। उन्होंने हँसकर कहा—'सब कार्योंके प्रारम्भमें गणेशकी पूजा करनी चाहिये। सो तो हमलोगोंने बिल्कुल भुला दिया। बिना उनकी पूजाके कार्य सिद्ध होता नहीं दीखता। अब उन्हींकी पूजा करनी चाहिये।'

गणेशकी विधिपूर्वक पूजा की गयी।

(३)

भगवान् बड़े लीलाप्रिय हैं। वे समुद्र मथनेके लिये स्वयं ही मन्दराचल उठा ले आये। एक ओर लगकर स्वयं मथने जा रहे हैं, विघ्न-बाधाकी कोई सम्भावना ही नहीं है। जिनके नाम-स्मरणसे, लीला-गायनसे और स्मरणमात्रसे अनेकों विघ्न-बाधाओंके पहाड़ टल जाते हैं, जिनका नाम लेनेमात्रसे समुद्रमें बड़े-बड़े पहाड़ तैरने लगते हैं, उनकी उपस्थितिमें और उनके ही द्वारा होनेवाले काममें कोई विघ्न पड़े, यह उनकी लीलाके अतिरिक्त और कुछ हो ही नहीं सकता। परंतु उनकी लीला केवल लीला ही नहीं होती। उसके द्वारा हमें मार्गपर चलनेका उपदेश भी प्राप्त होता है। विघ्नेश्वर गणेशकी पूजाका भी

यही रहस्य था । वृद्धोंद्वारा सम्मानित मर्यादाका, परम्परागत शिष्टाचारका उल्लङ्घन नहीं होना चाहिये । उनका पालन क्यों किया जाय इस दृष्टिसे नहीं; उनका पालन क्यों न किया जाय, इस दृष्टिसे विचार करना चाहिये । यदि हम अपनी बुद्धिमानीके घमंडसे, शारीरिक बलके मदसे अथवा आलस्य-प्रमादसे वैसा नहीं करते तो अपराध करते हैं; क्योंकि ये सब स्वयं अपराध हैं और यदि यह बात नहीं है तो न करनेका कोई कारण नहीं है । वे तो पहलेसे ही हमारे सामने कर्तव्यरूपसे उपस्थित हैं । उन्हें करनेमें कर्तव्य-अकर्तव्यका तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता । भगवान्‌की इस लीलाका एक यह भी भाव था ।

उधर गणेशजीकी पूजा हो रही थी, इधर भगवान्‌ने कच्छपरूप धारण किया । सबके देखते-देखते मन्दराचल ऊपर उठ आया और मथनेके योग्य हो गया । भगवान् सत्यसंकल्प हैं । उन्होंने अपना वही रूप जो नित्य शाश्वत और आधार शक्तिके रूपमें पृथ्वी और पृथ्वीको भी धारण करनेवाले शेषनागको धारण करता है, प्रकट किया । उनकी हजारों योजन लम्बी-चौड़ी एवं कठोर पीठपर मन्दराचल एक तिनकेकी भाँति प्रतीत हो रहा था । जब देवता और दानवोंने मन्थन प्रारम्भ किया, तब जिस मन्दराचलको खींचनेमें देवता और दानवोंकी सम्पूर्ण शक्ति लग रही थी, उसका घूमना कच्छप भगवान्‌को ऐसा मालूम होता, मानो कोई उनकी पीठ खुजला रहा है । मन्दराचलके निरन्तर भ्रमणसे सारा समुद्र खलबला उठा, बड़ी ऊँची-ऊँची तरंगें उठने लगीं, जीव-जन्तु घबराकर प्रलयका अनुमान करने लगे, पर्वत और समुद्रके आघातसे उठनेवाला शब्द सारे ब्रह्माण्डमें फैल गया । बड़े वेगसे समुद्र-मन्थन जारी रहा ।

भगवान् कच्छपरूपसे मन्दराचलको धारण किये हुए थे, विष्णुरूपसे देवताओंके साथ मथ रहे थे । एक तीसरा रूप भी धारण करके मन्दराचलको अपने हाथोंसे दबाये हुए थे कि कहीं उछल न जाय । जब मथते-मथते सब लोग थक गये तब भगवान्‌ने देखा कि अब तो इनका उत्साह ठंडा पड़ने लगा, इस प्रकार काम नहीं चलेगा । इन लोगोंके अंदर शक्ति-संचार करना चाहिये । बस फिर क्या था । सोचने भरकी तो देर थी, सभी सौ गुने, हजार-गुने उत्साहसे अपने काममें लग गये ।

यद्यपि सबके अंदर भगवान्‌की ही शक्ति काम कर रही थी, फिर भी उस समय दैत्योंकी बुरी हालत थी । एक ओर समुद्रका घनघोर गर्जन [illegible] दूसरी ओर [illegible] शक्ति लगाकर मन्दराचलको खींचना पड़ता [illegible] और वासुकि नागके हजारों मुखों, हजारों [illegible] और हजारों नाकोंसे उनकी जीभकी तरह [illegible] निकल रही थी और उनकी [illegible] जल-भुन रहा था । मानो भगवान्‌की [illegible] अपने बड़प्पनके घमंडका [illegible]

दूसरी ओर देवताओंमें [illegible] और नवीन उत्साह बढ़ता [illegible] । [illegible] स्वयं भगवान् मथ रहे थे । वे [illegible] सौन्दर्यामृतका पान करके निहाल हो रहे थे और [illegible] देखकर मग्न हो रहे थे । [illegible] भगवान्‌की प्रेमभरी दृष्टिसे [illegible] । [illegible] वासुकि नागके श्वासकी गर्मीसे [illegible] ओर चले आते, उनपर [illegible] बूँदें बरसाकर उन्हें सुखी कर रहे थे । [illegible] काम करते समय यदि भगवान्‌की [illegible] समीपताका अनुभव होता रहे [illegible] मनोहर श्यामसुन्दर छबिको [illegible] सफल करती रहें तो [illegible] सकते । आज देवताओंके परम [illegible] देवताओंके साथ, प्रत्येक काम करने [illegible] भगवान् रहते हैं । उनके कार्योंका [illegible] करते हैं । जो लोग इस [illegible] जीवन धन्य है और [illegible] है ।

मथते-मथते बहुत देर हो गयी, [illegible] तब भगवान्‌ने [illegible] शुरू किया । उस समय [illegible] [illegible] भी [illegible] [illegible] है । [illegible] लिये, [illegible] है ।

[illegible] लिपटकर समुद्र भी भगवान्‌का [illegible] कर रहा है।

इसी समय हालाहल विष प्रकट हुआ। अबतक समुद्रमें विष भरा हुआ था, तबतक अमृत कहाँसे निकलता? आखिर भगवान्‌ने अपने हाथों विष निकाल ही दिया। अब वह विष कहाँ जाय। सारे संसारमें कोलाहल मच गया! पशु, पक्षी, मनुष्य व्याकुल हो गये। समुद्रके जीव-जन्तु मछली, मगर आदि बेहोश होने लगे। प्रजापतियोंने अपनी प्रजापर आपत्ति देखकर [illegible] भगवान्‌की शरण ली।

इधर देवता और दानवोंकी व्याकुलताका ठिकाना नहीं था। चले थे अमृतके लिये और मिला विष! भगवान्‌पर विश्वास न रखनेवाले दानवोंके मनमें बड़ी निराशा हुई। वे [illegible] होकर गिर पड़े। उन्हें तो पहले अच्छी लगनेवाली वस्तु चाहिये। पीछेसे चाहे वह जितनी बुरी हो जाय। पहलेके दुःखसे पीछे होनेवाले सुखका उन्हें पता नहीं था। वे घबरा गये। देवतालोगोंको यह विश्वास तो था कि 'भगवान्‌की आज्ञासे ही हम यह काम कर रहे हैं और वे साथ ही रहकर हमारी सहायता भी कर रहे हैं, अन्तमें हमारा भला ही होगा।' परंतु विषकी गरमीसे वे भी व्याकुल हो गये। जब उनकी बुद्धिने जवाब दे दिया, तब उन्होंने भगवान्‌की शरण ली।

भगवान्‌ने कहा—'भाई! यह विषका मामला तो बड़ा टेढ़ा है। पहले इससे बचनेका उपाय अवश्य होना चाहिये। यहाँ तो कोई दूसरा उपाय दीखता नहीं। सब लोग मिलकर देवाधिदेव महादेवकी प्रार्थना करें तो वे अवश्य इसका निवारण कर सकते हैं। वे औढरदानी हैं, आशुतोष हैं। उनके सामने दीन होकर प्रार्थना की जाय तो चाहे जितना कठिन काम हो, वे उसे कर ही डालते हैं। अतः सब लोग मिलकर उन्हींकी प्रार्थना करें, उन्हींकी शरणमें जायँ तो काम बन सकता है।'

प्रजापति, देवता आदि सब मिलकर भगवान् शंकरकी प्रार्थना करने लगे। उन्होंने कहा—'देवाधिदेव महादेव! हम सब आपको नमस्कार करते हैं, आपकी शरण हैं। भगवन्! आपकी महिमा अनन्त है। आपकी दयालुता प्रसिद्ध है। सारे जगत्‌के आप ही स्वामी हैं। सारे संसारको मोक्ष देनेवाले ज्ञानका उपदेश करनेवाले आप ही जगद्गुरु हैं। आपके स्वरूपसे कोई [illegible] नहीं लौटा। अबतकके समस्त ऋषियोंने आपकी पूजा-अर्चा की है और आगे भी करते रहेंगे। भगवन्! आप ब्रह्म हैं, निर्गुण हैं, निराकार हैं। अपनी त्रिगुणमयी शक्तिसे जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और लयके लिये आप ही ब्रह्मा, विष्णु और रूद्रका रूप धारण करते हैं। इन रूपोंमें होनेपर भी आप आत्मामें स्थित रहते हैं। आपमें कोई विकार नहीं होता। आप स्वयं आत्मा हैं। स्वयंप्रकाश हैं। संसारमें जो कुछ दीख रहा है या संसारका जो कुछ स्वरूप है, यह आपकी मायाका परिणाम है। आपका खिलवाड़ है। वह माया भी आपसे भिन्न नहीं, आपका ही स्वरूप है। आप मायासे परे हैं। परंतु माया आपके अंदर है। मायाकी दृष्टिसे आप भिन्न हैं और आपकी दृष्टिसे माया अभिन्न है। प्रभो! ऐसी कोई वस्तु नहीं, जो आपसे अलग हो। सुख-दुःख, पाप-पुण्य, भला-बुरा, महात्मा-दुरात्मा और आत्मा-अनात्मा सब कुछ आप ही हैं। आपके लिये अपना-पराया कुछ नहीं है।

'सर्वज्ञ! क्या आपसे यह बात छिपी है कि आज हालाहल विषके कारण सारे संसारमें त्राहि-त्राहि मची हुई है। पशु-पक्षी, मनुष्य-देवता सभी महान् संकटमें पड़े हुए हैं। ऐसा जान पड़ता है कि उस भयंकर विषकी आगसे अकालमें ही त्रिलोकीका प्रलय होनेवाला है। आपके सिवा ऐसा और कोई नहीं दीखता, जो इससे जगत्‌की रक्षा करे। हम आपके चरणोंमें बार-बार नमस्कार करते हैं।' इतना कहकर प्रजापति और देवता भगवान् शंकरके चरणोंमें साष्टांग लोट गये।

भगवान् शंकर अबतक भगवान्‌के चिन्तनमें अथवा स्वरूप-समाधिमें लीन थे। जब उन्होंने सुना कि जगत्‌पर महान् संकट आया हुआ है, तब अपनी समाधि तोड़ दी। विश्वके हितके लिये समाधितक छोड़कर लग जाना उनकी दयालुताके अनुरूप ही है। वे विष पीने जा ही रहे थे कि सामने जगदम्बा भगवती पार्वतीके दर्शन हुए। उन्हें देखकर भगवान् शंकरने उनसे सलाह ले लेना उचित समझा। वे तो भगवान्‌की अर्द्धाङ्गिनी ही हैं। भगवान् शंकरकी इच्छा ही उनकी इच्छा है। अथवा यों कहें कि शंकरकी इच्छा ही भगवती पार्वतीका स्वरूप है। वे कब अस्वीकार कर सकती थीं! जगत्‌पर संकट हो, अपने बच्चोंपर आपत्ति आयी हो, पिता उसे नष्ट करनेके लिये उद्यत हो और माँ—दयामयी माँ सम्मति न दे, यह असम्भव है। परंतु कौटुम्बिक दृष्टिसे सम्मति लेना उचित है, यह बात शंकरने स्पष्ट कर दी। वे पार्वतीसे कहने लगे।

(४)

अनन्त ज्ञान हो, अपार शक्ति हो परंतु दया न हो तो हमलोगोंके लिये उसका क्या उपयोग है ? हम दयाहीन ईश्वरकी कल्पना भी नहीं कर सकते। हम संसारके पाप-ताप-ग्रस्त जीव यह तो कभी सोच ही नहीं सकते कि हम अपने बलपर दुःखोंसे छुटकारा और सुखकी प्राप्ति कर सकेंगे। हमारी मनोवृत्ति न जाने कबसे दूसरोंका आश्रय ढूँढ़ रही है, ढूँढ़ती ही रहती है। रुपयेका आश्रय, मनुष्यका आश्रय, पशु-पक्षियोंका आश्रय जहाँ देखें, वहाँ आश्रय-ही-आश्रय दीखता है। बिना आश्रयके हमारा एक क्षण भी नहीं बीतता और न तो बीत ही सकता है। निराश्रय तो केवल भगवान् हैं। परंतु इन आश्रयोंको चुननेमें हमसे बड़ी गलती होती है। ये संसारके पदार्थ, संसारके जीव स्वयं दूसरोंके आश्रित हैं, हमें आश्रय क्या दे सकेंगे ? इसीसे जब हम बुद्धिपूर्वक सोच-विचारकर संतोंकी सम्मतिसे अपना आश्रय चुनते हैं, तब भगवान्‌को ही चुनते हैं कि वे परम दयालु हैं। हमें दुःखमें छटपटाते देखकर वे द्रवित हो जायँगे। अधिकारी न होनेपर भी वे हमें परम सुख देंगे। वास्तवमें हमारी ईश्वर-भावना अनन्त ज्ञान और अनन्त शक्तिपर नहीं, बहुत कुछ दयालुतापर ही अवलम्बित है।

भगवान् शंकर परम दयालु हैं। वे दयाकी साक्षात् मूर्ति हैं। वे हमें कष्टमें नहीं देख सकते। जब त्रिलोकीको संकटमें देखा तब उनसे न रहा गया। उन्होंने भगवतीसे कहा—'देवि ! देखो, आज हमारी प्रजापर, हमारे नन्हे-नन्हे शिशुओंपर कितना संकट है ! क्षीरसागरके मन्थनसे निकले हुए कालकूटकी ज्वालासे दिशाओंमें प्रचण्ड अग्नि धधक रही है। आज वायुकी प्राणशक्ति नष्ट-सी हो गयी है, जलकी जीवनी-शक्ति लापता हो गयी है, ओषधि-वनस्पतियाँ झुलस गयी हैं और जीवोंके प्राण-पखेरू निकलना ही चाहते हैं। ऐसी अवस्थामें यदि मैं इनकी रक्षा न करूँ, इन्हें इस आपत्तिसे न बचाऊँ तो मेरी शक्तिका, मेरे ऐश्वर्यका और मेरे महादेव होनेका और क्या उपयोग हो सकता है ! उसी शक्तिमान्‌की शक्ति, शक्ति है जिसकी शक्ति दीनोंकी, दुखियोंकी रक्षामें, पालन-पोषणमें लगती है। अबतकके महात्माओंने, साधु-पुरुषोंने अपने इन क्षणभंगुर प्राणों और जीवनका यही सदुपयोग किया है। इसीमें उनकी सफलता बतलायी है कि विश्व भगवान्‌की सेवामें इसे समर्पित कर दिया जाय। बड़ा भारी ज्ञानी हो, बड़ा भारी भक्त हो और बड़ा भारी कर्मयोगी हो परंतु यदि वह दीनोंकी उपेक्षा करता है, उनकी रक्षा नहीं करता तो [illegible] नष्ट हो जाता है, उसकी [illegible] है और कर्मयोग अपूर्ण रह जाता है।

'भगवान् सर्वात्मा हैं। इन [illegible] एक-एक अणु, एक-एक जीव उनके ही [illegible] हैं, [illegible] हैं। इनकी सेवा भगवान्‌की सेवा है और [illegible] प्रसन्न होते हैं। उनकी प्रसन्नता और मेरी [illegible] वस्तु नहीं है; क्योंकि हम दोनों दो नहीं, [illegible] हैं। उनकी प्रसन्नतामें मेरी प्रसन्नता है और मेरी [illegible] प्रसन्नता है। देवि ! तुम मेरा अनुमोदन [illegible]। तुम गृहस्वामिनी हो। मुझे आज्ञा दो। मैं [illegible] सारी प्रजाका कल्याण करूँ।'

देवीने कहा—'स्वामिन् ! [illegible] है। आप अपनी ही समान इनसे [illegible] करनेकी आवश्यकता नहीं है। [illegible] है। स्वयं फिर भी आपका ही [illegible] है। [illegible] उसे पचा सकते हैं। [illegible] दुःख छुड़ाइये।'

भगवान् शंकरने अपने हाथ [illegible] उस व्यापक विषको एकत्रित कर [illegible]। भगवान् शंकरके लिये, जो कि [illegible] नेत्रकी अग्निसे सारे संसारको [illegible] हैं, [illegible] तुच्छ अंश उस विषको [illegible] ! परंतु भगवान्‌की [illegible] शंकरका कण्ठ नीला पड़ गया ! [illegible] लिये किये गये इस महान् कर्मको [illegible] उनके गलेमें रह गया। [illegible] परम सुन्दर [illegible] वह भयंकर कालकूट [illegible] स्वास्थ्य हानिकर न पहुँच [illegible] [illegible]

[illegible]

(५)

दुर्वासाके शापसे सभी देवता-दानव और त्रिलोकी श्रीहीन हो गयी थी। जब इतनी साधना और परिश्रमके बाद श्रीदेवी प्रकट हुईं, तब भला किसे प्रसन्नता न होती? चारों ओर कोलाहल मच गया—'श्रीदेवी प्रकट हुईं! श्रीदेवी प्रकट हुईं!' सभीके हृदयोंमें पहलेकी सूखी हुई आशा-लता पुनः लहलहा उठी। देव-दानव, ऋषि-मुनि सभी सतृष्ण नेत्रोंसे उन्हें देखने लगे। इन्द्रने स्वयं बड़ा सुन्दर आसन ले आकर बैठनेको दिया। नदियाँ मूर्तिमान् होकर सोनेके कलशोंमें जल ले आयीं। पृथ्वीने अभिषेकके योग्य ओषधियाँ एकत्र कर लीं। गौएँ पञ्चगव्य लायीं और ऋषियोंने विधिपूर्वक अभिषेक किया। वसन्तने अपनी ऋतु प्रकट कर दी। गन्धर्व भगवती लक्ष्मीके संगीत गाने लगे। अप्सराएँ नाचने-गाने लगीं। आकाश-मण्डलमें मृदङ्ग, वेणु, वीणा आदि बाजे बजने लगे। दिग्गजोंने कलशोंमें जल भर-भरकर अभिषेक किये और ब्राह्मणोंने वेदोंके मन्त्र पढ़े।

समुद्र मूर्तिमान् होकर पवित्र पीताम्बर पहननेके लिये ले आया। वरुणने वैजयन्तीमाला दी। उसके चारों ओर मत्त भँवरे गुंजार करते हुए मँडरा रहे थे। विश्वकर्माने अनेकों प्रकारके दिव्य आभूषण दिये। सरस्वतीने हार पहनाया। ब्रह्माने कमल दिया और नागराजोंने कुण्डल उपस्थित किये। हाथमें कमल लेकर जब लक्ष्मीदेवीने लोगोंकी ओर देखा, तब उनके मनोहर रूप, उदारता, शरीरकी छवि, गौर वर्ण और अनुपम महिमासे सभी लोग आकर्षित हो गये। भला कौन चाहता है कि हमें लक्ष्मी न मिलें! सभी सतृष्ण नेत्रोंसे उनकी ओर देख रहे थे।

परंतु लक्ष्मी सबको थोड़े ही मिलती हैं! अभी होने-वाले समुद्र-मन्थनमें जिनका प्रधान हाथ है, जो उपदेश करनेवाले, मदन्राचल लानेवाले, उसे धारण करनेवाले और दबानेवाले, देवता एवं दैत्योंमें शक्ति-सञ्चार करनेवाले तथा स्वयं मथनेवाले हैं; उन परम पुरुषार्थस्वरूप भगवान्‌को छोड़कर लक्ष्मी और किसीको कब वरण करने लगी! इतना ही नहीं, लक्ष्मी उनकी नित्य सङ्गिनी हैं, उन्हें छोड़कर और कहीं वे जा ही नहीं सकतीं। जब जन्म-जन्मान्तरोंमें या इस जन्ममें महान् पुण्य करके भगवान्‌को प्रसन्न किया जाता है, तब वे प्रसन्न होकर कुछ क्षणके लिये लक्ष्मीको कृपा कर देनेके लिये प्रेरित कर देते हैं। बिना उनकी कृपाके लक्ष्मीका [illegible] असम्भव है और वह चाहे जैसे हो, कुछ क्षणोंके लिये ही [illegible] है और बहुत कम होता है। यद्यपि भगवान्‌की कृपा [illegible] लक्षण नहीं है, तथापि [illegible] [illegible] भगवान्‌की कृपाका [illegible] है। [illegible] सम्पूर्ण लक्ष्मी न और [illegible] है। परन्तु कामनाओंका [illegible] चक्रमें आना पड़ता है।

भगवती लक्ष्मीने [illegible] वरण करना चाहती हों। [illegible] और एक एकको देखने लगा। वहाँ [illegible] ऋषि मुनि, [illegible] उपस्थित [illegible] हुई जा रही थीं। [illegible] देख [illegible] —श्रीने सबको देख लिया। [illegible] लिया। कोई-कोई [illegible] प्रशंसा करती हूँ। वे [illegible] सर्वगुणसम्पन्न नहीं [illegible] कोपकी पर्याप्त [illegible] ही हैं। किसी किसीमें [illegible] कण्ठस्थ किये हुए हैं; परन्तु वे [illegible] पजेसे मुक्त नहीं हैं। [illegible] वे भी कामसे हारे हुए हैं; और [illegible] भी किसीका स्वामी हो सकता है! [illegible] भी अच्छी देखी [illegible] है, परंतु वे [illegible] प्रति दयाका भाव नहीं रखते। [illegible] है परंतु [illegible] दूर [illegible] है।'

कुछ [illegible] जीवियोंके दर्शन हुए हैं, परन्तु [illegible] नहीं है। जहाँ [illegible] ठिकाना ही नहीं है। [illegible] ही अच्छे हैं, वहाँ भी [illegible] निकट ही [illegible] है। [illegible] गुणोंसे युक्त कोई [illegible] नहीं।'

इतनेमें [illegible]

[illegible] देखकर उनके मुँहपर मुसकराहट आ गयी। [illegible] हो गये और वे [illegible]।

[illegible] अन्तर्यामी परमात्माको [illegible], तब ब्रह्मा, शंकर आदि बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने वेदमन्त्रोंसे भगवान्की अभ्यर्थना की। देवताओंने वर्षा की और भारती सरस्वतीने भगवान्के यशः-[illegible] किया। उस समय दैत्य-दानव श्रीहीन हो गये थे।

कहते हैं कि उस समय नारदजी महाराज अपनी मण्डलीके साथ वहाँ भगवान्के पास जा पहुँचे। उन्होंने स्तुति, दर्शन आदि करनेके बाद भगवान्से पूछा कि 'यह लक्ष्मी कौन हैं! इनका आपसे क्या सम्बन्ध है! ये सबको छोड़कर आपको ही क्यों चाहती हैं!' भगवान्ने कहा—'नारद! तुम जान बूझकर पूछते हो। लक्ष्मी मेरी अपनी ही शक्ति हैं। वे मेरी अर्धांगिनी हैं, सर्वदा मेरे साथ ही रहती हैं। यह स्वयंवरकी लीला तो इसलिये की है कि लोग यह समझ जायँ कि आश्रय लेनेयोग्य और भजन करनेयोग्य एकमात्र भगवान् ही हैं। ये सौन्दर्यकी अधिष्ठात्री देवी हैं। अर्थात् संसारमें जितनी कोमलता, सुकुमारता, मधुरता, सुन्दरता आदि सद्गुण हैं, वे उन्हींके छोटे-छोटे अंश हैं। ये सबकी केन्द्र हैं और मेरी सेवा किया करती हैं। जो मोक्ष चाहते हैं, भगवत्प्रेम चाहते हैं अथवा मेरा दर्शन चाहते हैं, उन्हें तो मेरा भजन करना ही चाहिये। परंतु जो सांसारिक धन, मान, कीर्ति, ऐश्वर्य, सौन्दर्य आदि चाहते हैं, उन्हें भी मेरी ही आराधना करनी चाहिये। मैं ही सबका आधार हूँ। मैं ही सबका आनन्द हूँ।' अन्तमें भगवान् कच्छपने नारदादिको यह कहकर विदा किया कि 'समुद्रमन्थन समाप्त होनेपर जब मैं [illegible] चलूँगा और सबकी आधार-शक्ति होकर पृथ्वी तथा [illegible] धारण करूँगा, तब तुमलोग आना। मैं इन [illegible] रहस्य समझाऊँगा।' नारदादि विदा हो गये।

इधर अमृतमन्थन पुनः आरम्भ हुआ। इस बार वारुणी-देवी प्रकट हुईं। यह [illegible] रहनेवाले जलाधिपतिकी पुत्री हैं। इनमें लोगोंको मस्त कर देनेकी शक्ति है। इनके सेवनसे [illegible] अहंकारका ज्ञान भूल जाता है। इसीसे दैवी-सम्पत्तिके [illegible] देवतालोग इनकी अभिलाषा नहीं करते। दैत्य इधर कई बारसे कुछ नहीं पा रहे थे। उन्होंने बड़े चावसे वारुणीदेवीको अपनाया। वे वास्तवमें इन्हींके योग्य थे। वारुणीको पाकर लक्ष्मी न पानेकी चिन्ता मिटती हुई सी मालूम पड़ी। दैत्य प्रसन्न हो गये और फिर समुद्रका मथना चालू हुआ।

इस बार एक बड़ा ही विशाल धनुष प्रकट हुआ। उस धनुषकी उत्तमताकी सराहना तो सभीने की, परंतु उसे उठानेकी शक्ति किसीमें नहीं थी। बहुतोंने साहस करके अपनी शक्तिकी परीक्षा करनी चाही पर स्पर्श करते ही उन्हें ऐसा झटका लगा कि वे दूर हट गये। दैत्य तो उस धनुषके पासतक भी नहीं जा सकते थे। भगवान् विष्णुने जाकर स्वयं उस धनुषको उठा लिया। इस धनुषके टंकारमें इतनी शक्ति है कि पापी, दुराचारी उसे सुनते ही घबरा जाते हैं और भक्त तथा पुण्यात्मा जीव उसे सुनकर आनन्द और प्रसन्नतासे भर जाते हैं।

जैसे-जैसे वस्तुएँ निकलती जाती थीं, वैसे-ही-वैसे लोगोंकी आशा बढ़ती जाती थी। उनका अनुमान था कि अब शीघ्र ही अमृत प्रकट होनेवाला है। इतनेमें परिपूर्ण चन्द्रमा प्रकट हुए। इन सागरके पुत्र चन्द्रमाको देखकर सबकी आँखें शीतल हो गयीं। सबका मन आह्लादित हो गया। चन्द्रमा किसी एककी वस्तु होकर तो रह नहीं सकते थे। अतः उन्हें आकाशका बड़ा विस्तृत मैदान दिया गया कि वे वहाँ टहलते हुए देवता-दानव दोनोंको समानरूपसे सुखी करें। पीछे ताराओंसे उनका विवाह हुआ और दक्षके शापसे ये घटने-बढ़नेवाले हो गये। ओषधि, वनस्पति एवं ब्राह्मणोंके राजा बनाये गये और ग्रहोंमें इन्हें स्थान मिला। ये अमृत-वर्षा करके जीवोंमें तथा ओषधि-वनस्पतियोंमें जीवन-शक्ति और आह्लादका संचार किया करते तथा इनकी अमृत शक्तिके बिना मनमें विचार करनेकी शक्ति रह ही नहीं सकती। ये मनके उसी प्रकार अधिष्ठातृ देवता हैं, जैसे आँखोंके सूर्य।

उधर देवता और दैत्य पूरी शक्ति लगाकर समुद्र-मन्थन कर रहे थे। एक दिव्य शङ्ख प्रकट हुआ। उसे भगवान्ने स्वीकार किया और वे स्वयं भी इस बार बड़े मनोयोगसे समुद्र मथने लगे। भगवान्के लिये मनोयोग तो क्या कहा जाय, उनके संकल्पमात्रसे ही अमृत पैदा हो सकता था; परंतु वे बड़े कौतुकी हैं, कुछ-न-कुछ खेल खेलते ही रहते हैं।

इतने वेगसे समुद्र-मन्थन हुआ कि उसका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। जहाँ मथनेका बर्तन विशाल समुद्र, मथानी मन्दराचल, रस्सी वासुकि नाग और दूधके स्थानपर सम्पूर्ण क्षीर-सागर हो और मथनेवाले हों समस्त देव-दानव तथा स्वयं भगवान्; ऐसी स्थितिमें कैसा मक्खन निकलेगा,

इसकी क्या कल्पना की जा सकती है ! इस प्रकार दैवी शक्ति और आसुरी शक्ति दोनोंको भगवान्‌के आश्रित करके मत्स्यका समुद्र मथें तो वास्तवमें अमृतत्वकी प्राप्ति होगी ।

इस बार एक विलक्षण पुरुष प्रकट हुए । उनका शरीर बड़ा ही सुन्दर था । पीताम्बर पहने हुए थे । श्यामवर्ण, युवावस्था, वनमाला पहने हुए, दिव्य आभूषणोंको धारण किये हुए धन्वन्तरि भगवान्‌को देखकर सब-के-सब चकित हो गये । उनके काले-काले लम्बे और घुँघराले चिकने केशोंकी छबि अनोखी ही थी । चौड़ी छाती और हाथोंका अमृत-कलश बरबस लोगोंको अपनी ओर खींच रहा था । सब-के-सब अमृत-कलश देखकर आनन्दनिमग्न हो गये ।

(६)

भगवान्‌की कृपासे हमें जब कोई अभिलषित पदार्थ प्राप्त होता है, तब हम बहुधा प्रसन्नतासे फूल उठते हैं और कई बार तो उतावली भी कर बैठते हैं । ऐसे अवसरोंपर जो अपनेको काबूमें रख लेता है, अपनेको सम्हाल सकता है, अपने बल-पौरुषकी डींग नहीं हाँकता, वास्तवमें वह महापुरुष है ।

परंतु दैत्योंकी तो बात ही दूसरी है । उन्हें अपने मथनेका अभिमान होता, वे अपने बल-पौरुषकी डींग हाँकते अथवा अमृत पीनेकी उतावली करते तो हम उन्हें उतना दोषी नहीं कहते । उनके मनमें बेईमानी आ गयी, उनकी नीयत बिगड़ गयी । उन्होंने बुद्धिपूर्वक सोचा कि अब तो अमृत निकल ही गया । भगवान्‌से अपना कोई मतलब नहीं । देवताओंमें इतनी शक्ति है नहीं कि हमसे लड़कर वे जीत सकें । इसलिये अमृत छीन लिया जाय । हुआ भी ऐसा ही । दैत्यांने धन्वन्तरिके हाथोंसे अमृतका घड़ा छीन लिया । देवताओंका चेहरा कुछ फीका पड़ गया । उन्हें भगवान्‌का विश्वास था, इसीसे विचलित नहीं हुए ।

प्रायः देखा गया है कि बेईमानोंकी गुटबंदी बहुत समय-तक नहीं चलती । दैत्योंमें जो बली थे, उन्होंने निर्बलोंसे छीन लिया और फिर जो उनसे बली थे, उन्होंने उनपर दो धौंस जमायी और अमृतका घड़ा ले लिया । जब अपने काम न आते देखा, समझ लिया कि अब तो हमसे अमृतका घड़ा छिन गया, तब निर्बलोंने यह आवाज उठायी कि 'भाई ! ऐसा अन्याय नहीं होना चाहिये । देवताओंने भी हमारे साथ ही बराबर परिश्रम किया है । उन्हें भी अमृतका हिस्सा मिलना चाहिये । कई बार विवशताके कारण भी लोग न्यायका आश्रय लेते हैं । जबतक अपनी चलती है, तबतक तो अन्याय करनेमें कोर-कसर नहीं करते । जब हार जाते हैं तब न्यायकी दुहाई देने लगते हैं ।

सर्वदासे स्वार्थियोंकी यही नीति होती आयी है । [illegible] अत्याचारके बलपर दूसरोंके न्यायोचित स्वत्वोंको [illegible] हैं, उनका अपना स्वार्थ भी नहीं [illegible] । [illegible] ही कुछ लीला थी । दैत्योंमें [illegible] विरोध बढ़ गया और अमृत [illegible] । वे आपसमें झगड़ने लगे । [illegible] भगवान्‌ने एक दूसरी लीला रची ।

दैत्योंने देखा, एक परम सुन्दरी [illegible] स्त्री सामनेसे आ रही है । उसके सौन्दर्य, हाव-भाव [illegible] देखकर सब-के-सब दैत्य मोहित हो गये । [illegible] मोहिनीको एकटक देखने लगा । [illegible] गया । सब-के-सब अमृतको गौण समझने [illegible] विषय हो गया मोहिनीको प्रसन्न करके अपने [illegible] कभी-कभी बड़ी वस्तुकी लालचसे [illegible] कर देते हैं और उसके लिये [illegible] कर उसीकी प्राप्तिकी चेष्टा करने लगते हैं ।

उस स्त्रीके रूपमें कोई दूसरा नहीं [illegible] । उनकी छविमें ऐसा आकर्षण है कि [illegible] फीका पड़ जाता है । दैत्योंने कहा—'सुन्दरि [illegible] तुम्हारा स्वागत करते हैं । बड़े शुभ [illegible] हुआ है । इस समय हमलोग [illegible] मरते । अब तुम्हीं यह झगड़ा निपटा दो । यह [illegible] कलश है, इसे तुम चाहे जिसे [illegible] तुम्हारी प्रसन्नतामें ही प्रसन्न हैं ।'

बहुत-से लोग [illegible] डालते हैं । इस अनजान स्त्रीके [illegible] यह अर्थ नहीं है कि वे न्याय [illegible] शीलतापर विश्वास करते हैं । [illegible] थे मोहिनीका सौन्दर्य देखकर [illegible] होनेके कारण इतने [illegible] निर्णायक चुनकर अपनेको [illegible] चाहते हैं ।

मोहिनीने [illegible] देखते-देखते [illegible] लोग तो [illegible] यह अमृत [illegible] करे [illegible] होकर [illegible]

[illegible], कहाँ तक ये सब कर सकें !'

[illegible] इनके [illegible] और आग्रह [illegible] दे दिया । अमृतका घड़ा [illegible] अपनी मधुर चितवनसे [illegible] मुस्कराकर [illegible] और कर्म या चेष्टाएँ [illegible] एक पंक्तिमें [illegible], मैं [illegible] अमृत पिला दूँगी ।'

[illegible] थी । [illegible] पवित्रतासे [illegible] ओर तो सिर्फ आँखोंसे देखने [illegible] और देवताओंको अमृत पिलाने लगी । कई दैत्योंके [illegible], उन्होंने आपत्ति भी करनी चाही; परंतु मोहिनी-[illegible] उनकी [illegible] ताला लगा दिया । वे कुछ न [illegible] । देवताओंकी पंक्ति समाप्त होते होते सूर्य और [illegible] बीचमें एक राहु नामका दैत्य वेष बदलकर आ बैठा था । [illegible] अमृत पिलाया ही जा रहा था कि चन्द्रमा और सूर्यने [illegible] दिया और तुरंत भगवान्‌के चक्रने उसका [illegible] अलग कर दिया । परंतु कुछ अमृत उसे मिल चुका था ! अतः सिर कट जानेपर भी वह मरा नहीं । [illegible] ग्रहोंमें स्थान दिया गया । उसकी धड़ आज भी [illegible] अथवा केतुके नामसे प्रसिद्ध है । राहु अब भी [illegible] उनके पर्व अमावास्या और पूर्णिमाको आक्रमण करता है, जिसे 'ग्रहण' कहते हैं । इस [illegible] छायापुत्र भी कहा गया है ।

इस प्रकार देवताओंका अमृतपान समाप्त होते ही [illegible] । [illegible] किया । यह तो [illegible] थी । उन्होंने ही मोहिनीरूप [illegible] । सबके देखते-देखते अब वे अन्तर्धान हो गये ।

[illegible] और एक ही प्रकारसे [illegible] और दानवोंने प्रयत्न किया था । किसीने भी अपनी [illegible] कुछ कोर-कसर नहीं रक्खी थी । परंतु [illegible] ! इसका कारण क्या है ? [illegible] कुछ [illegible] है और वह इतना स्पष्ट है कि विचार [illegible] नहीं रह सकता । देवता और दानवोंमें [illegible] है कि देवता तो भगवान्‌के आश्रित हैं और [illegible] हैं । अभिमानका आश्रय लेकर, [illegible] बहुत बड़ा काम कर सकें, परंतु सच्चे सुख, सच्ची शान्ति और अमृत या अमृतत्वकी प्राप्ति नहीं कर सकते । परंतु वही काम यदि भगवान्‌का आश्रय लेकर किया जाय तो काम तो हो ही जाता है और फल मिलनेमें कोई शङ्का रहती ही नहीं, बल्कि काम करनेके समय ही भगवान्‌के सान्निध्यका अनुभव अथवा पवित्र स्मरण होते रहनेके कारण महान् आनन्दकी प्राप्ति होती है । यही कारण है कि देवता आरम्भसे अन्ततक सुखी रहे, शान्त रहे और अमृतके भागी बने तथा दैत्योंको केवल कष्ट ही हाथ लगा ।

भगवान्‌के अन्तर्धान होते ही दैत्योंके अङ्ग-अङ्गसे आगकी चिनगारियाँ छिटकने लगीं । इतना परिश्रम करनेपर भी फलके समय इस प्रकार वञ्चित रह जानेसे उनके क्रोधकी सीमा न रही । उन्हें अपनी मूर्खतापर बड़ी झुँझलाहट हुई और एकमत होकर सबने शस्त्र उठा लिये । उनके मनमें यह बात बैठ गयी कि देवताओंने अमृत पी लिया तो क्या हुआ, उनके शरीरमें बल तो उतना ही है न ! स्वर्गसे मारकर खदेड़ देंगे । ये अपने अमर होनेकी दुर्दशा भोगते रहेंगे । आत्महत्या भी नहीं कर सकेंगे । हम इन्हें चिढ़ा-चिढ़ाकर स्वर्ग भोगेंगे ! मनुष्य घोर विफलताकी अवस्थामें भी कल्पित आशा बाँधकर पहलेकी अपेक्षा भी अधिक उत्साहसे पुनः प्रयत्न करने लगता है, यह तो हम संसारमें प्रतिदिन ही देखते हैं । एक आशा टूटती है और दूसरी बाँधकर हम जीवन-संग्राममें पुनः अग्रसर होते हैं । हमारा यह प्रवृत्तिमय जीवन आशाओंका ही घनीभाव है और संसारसे निराश होते ही निवृत्तिमय जीवनका प्रारम्भ होता है । उसमें भी पारमार्थिक आशा है, परंतु वह आशा-निराशा दोनोंसे ही ऊपर उठानेवाली है ।

देवताओंने तो अमृत पी ही लिया था, भगवान्‌का आश्रय था ही, दैत्योंकी तैयारी देखकर उन्होंने भी शस्त्र उठाये । बड़ा घमासान युद्ध हुआ । अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर नमुचि, शम्बर, बाण आदिने देवताओंपर अनेकों प्रकारके शस्त्रोंका प्रहार करना प्रारम्भ किया और बलिने भी मय दानवके बनाये हुए युद्ध-सामग्रीसे सुसज्जित विमानपर सवार होकर युद्ध-भूमिके लिये प्रस्थान किया । बलिके प्रहारोंसे जब इन्द्र जर्जरित हो गये, तब उन्होंने भगवान्‌का स्मरण किया और स्मरण करते ही वे प्रकट हो गये । उनके आते ही देवताओंका बल बढ़ गया । बलिसे इन्द्र, तारकासुरसे स्वामिकार्तिक, हेतिसे वरुण, कालनाभसे यमराज, मयसे विश्वकर्मा आदि लड़ने लगे ।

बलिसे इन्द्रने कहा—'मूढ ! तू अपनेको बड़ा बलिष्ठ लगाता है । एक क्षणभर मेरे सामने और ठहर जा ! तू मायाके बलपर अबतक हमलोगोंको छकाता आया है । आज उसका मजा चख ! अभी-अभी मैं वज्रसे तेरा सिर काट लेता हूँ ।' बलिने कहा—'देवेन्द्र ! काल और कर्मकी प्रेरणाके अनुसार हम सभी संग्राम-भूमिमें उतरे हुए हैं । जय-पराजय, कीर्ति-अकीर्ति और जीना-मरना जो कुछ जैसा होनेवाला होगा, वह होकर ही रहेगा । विद्वान्‌लोग सारे जगत्‌को कालके गालमें देखते हैं । न कभी प्रसन्न होते और न कभी शोक करते हैं । तुम इस बातको नहीं जानते । मूर्ख हो । इसलिये तुम्हारी इन कड़ी बातोंसे मैं दुखी नहीं होता ।' यह कहते-कहते बलिने बाणोंसे इन्द्रका शरीर छेद डाला । वे व्याकुल हो गये ।

सम्हलकर इन्द्रने बलिपर वज्र-प्रहार किया ।

(७)

जैसे सूर्य भगवान् समानरूपसे सारे जगत्‌को प्रकाश और उष्णताका दान करते हैं । उनकी शक्तिसे, उनके प्रकाशसे लाभ उठाकर कुछ लोग संध्या-पूजा, यज्ञ-दान आदि करते हैं और कुछ लोग बुरे विषयोंका दर्शन, घातक शस्त्रोंका निर्माण आदि करते हैं, परंतु सूर्य इन दोनोंसे अलग रहता है, न वह किसीका पक्षपात करता और न किसीसे द्वेष करता है । जो लोग लाभ उठाना चाहें उठावें, न उठाना चाहें न उठावें । ठीक भगवान्‌की भी ऐसी ही बात है; वे सबपर कृपा करनेको तैयार हैं, कृपा किये हुए हैं । जो लोग उसका अनुभव करते हैं, वे लाभ उठाते हैं और जो नहीं अनुभव करते वे उससे वञ्चित रह जाते हैं ।

देवता उनकी कृपाका अनुभव करते हैं और उससे लाभ उठाते हैं । आज भी जब उन्होंने भगवान्‌का स्मरण किया, तब वे आ गये और देवताओंका बल बढ़ गया । जब उनकी जीत होने लगी, तब भगवान् अन्तर्धान हो गये, परंतु युद्ध अब भी चल ही रहा था । देवराज इन्द्रके वज्र-प्रहारसे बलिके घायल होते ही दैत्य उन्हें दूसरी ओर उठा ले गये और जम्भासुर अपनी विकराल गदा लेकर इन्द्रपर टूट पड़ा । गदाकी चोटसे व्याकुल होकर ऐरावत घुटनोंके बल बैठ गया और उस समय युद्धके योग्य न रहा । मातलिने इन्द्रके सामने उनके हजार घोड़ोंवाला रथ उपस्थित किया और इन्द्र झटपट उसपर सवार होकर मैदानमें फिर डट गये ।

इन्द्रके वज्र-प्रहारसे जम्भासुरकी मृत्यु हो गयी । यह समाचार सुनते ही नमुचि, बल और पाकासुर—ये तीनों उपस्थित हुए । [illegible] अन्तमें इन्द्रने अपने [illegible] सिर भी काट लिये; परन्तु [illegible] सका । इन्द्र बड़ी चिन्तामें पड़ [illegible] दधीचिकी हड्डियोंसे बना हुआ था [illegible] वज्र कभी विफल नहीं हुआ था । [illegible] पर्वतोंकी पाँखें काट [illegible] इतने कितने बड़े बड़े दैत्य [illegible] वही वज्र आज इस छोटे से [illegible] कि उसके चमड़ेपर भी चोट न [illegible] लेकर मैं क्या करूँगा !'

इन्द्रकी चिन्ताओंका अन्त [illegible] वाणी हुई कि 'इन्द्र ! यह [illegible] है । इसने पहले घोर तपस्या करके [illegible] मैं सूखी या गीली चीजोंसे न मरूँ । [illegible] पर पारगर नहीं हो सका । [illegible] लगाकर इसपर प्रहार करो । [illegible] वैसा ही किया । [illegible] हो गया ।

अब दैत्योंके पैर उखड़ गये । [illegible] गये, परन्तु देवताओंने उनका पीछा न छोड़ा । [illegible] ढूँढ़कर मारने लगे । तब [illegible] वीणापर भगवान्‌के मधुर [illegible] हुए देवताओंके पास आये और [illegible] कहा—'देवताओ ! तुमलोग [illegible] के आश्रित हो । [illegible] अमृत दी [illegible] । अब इन दैत्योंको [illegible] क्या लाभ है ! [illegible] विना दुःख होगा ! [illegible] लिये भी नहीं [illegible] नरकमें [illegible] हो तुम्हारे [illegible] दीखते हैं ।

[illegible] है, [illegible]

[illegible] और [illegible] अपना [illegible] ही कोमल [illegible] । [illegible] बदला लेना नहीं, [illegible] देना चाहिये । हिंसाका बदला हिंसासे नहीं, अहिंसासे देना चाहिये ।

'भगवान्‌ने देवताओंको [illegible] दी है । इस समय तुम विजयी हो । तुम्हारी अभिलाषा पूरी हुई है । इस ऊँचे पदपर बैठकर [illegible] द्वेष करनेवालोंसे प्रेम करो, घृणा करनेवालोंका [illegible] करो और अपकार करनेवालोंकी [illegible] रक्षा करो तो तुम्हारी बड़ाई है । और इसीमें तभी तुम्हारा कर्तव्य पूरा होता है ।'

नारदकी बात सुनकर देवताओंने मार-काट बंद कर दी और वे स्वर्गमें जाकर आनन्दोपभोग करने लगे । इधर बचे हुए दैत्य मरे हुए दैत्योंको उठाकर शुक्राचार्यके पास ले गये और उन्होंने अपनी मृतसंजीवनी विद्यासे उन सबको जीवित कर दिया ।

अब देवर्षि नारदको कच्छप भगवान्‌की बात याद आयी । उन्होंने कहा था कि समुद्र-मन्थन समाप्त होनेपर हमलोगोंकी फिर भेंट होगी । देवर्षि नारद अपनी मण्डलीके साथ वहाँ पहुँच गये । उन्होंने देखा कि कच्छप भगवान् सबको धारण किये हुए आधारशक्तिके रूपमें बैठे हैं । इन लोगोंने जाकर श्रद्धा-भक्तिसे प्रणाम किया, उनकी स्तुति-प्रार्थना की और अनेकों प्रकारके प्रश्न पूछे तथा कच्छप भगवान्‌ने प्रत्येक प्रश्नका विस्तारपूर्वक उत्तर दिया । वे ही प्रश्नोत्तर 'कूर्मपुराण'के नामसे प्रसिद्ध हैं । आध्यात्मिक जिज्ञासुओंको उनका अध्ययन करना चाहिये । उन सबकी चर्चा करना तो यहाँ सम्भव नहीं है, परंतु संक्षेपसे कुछ बातें लिखी जाती हैं ।

कच्छप भगवान्‌ने कहा—'ऋषियो ! बहुत विस्तार न करके संक्षेपमें ही मैं तुम्हें सार-सार बता देता हूँ । इस सृष्टिमें चौरासी लाख योनियाँ हैं । उनमें मनुष्य-योनिको छोड़कर सभी भोग-प्रधान हैं । मनुष्य-योनि कर्म-प्रधान है और इसमें आकर अपनी इच्छाके अनुसार चाहे जिस योनिमें जा सकते हैं या इन योनियोंसे मुक्त हो सकते हैं । इन योनियोंके भ्रमणमें महान् कष्ट उठाना पड़ता है । जन्म, मृत्यु और जीवनकालमें इतने दुःखोंका सामना करना पड़ता है कि उसका अनुभव करते-करते अनेकों बार मूर्छित होना पड़ता है । शरीरके क्लेश, मनके क्लेश और लोक-परलोकोंके क्लेश भोगते-भोगते जीव घबरा जाता है । वह सुखकी खोजमें भटकता फिरता है, परंतु सुखके बदले दुःख ही अधिक पाता है । दूसरे मालूम होगा कि 'यहाँ जाऊँगा, वह विषय पा लूँगा और वह समय आ जायगा तो मैं सुखी हो जाऊँगा ।' परंतु उनके अनेकर सुखके दर्शन नहीं होते बल्कि दुःखमें पड़ जाता है और तब फिर मालूम होता है कि अमुक स्थान, अमुक वस्तु और अमुक विषयसे सुख प्राप्त हो सकता है, किंतु यह कोरा भ्रम है । विषयोंसे सुख मिल ही नहीं सकता; क्योंकि उनमें सुख है ही नहीं ।

'मायाका बन्धन बड़ा भयंकर है । एक जगह निराशा होनेपर भी दूसरी जगह आशा हो जाती है । वहाँ टूटनेपर फिर तीसरी जगह । इसका ताँता टूटता ही नहीं । जैसे मारवाड़के बालूमें हरिन एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पानीके लिये भटकते रहते हैं और उनकी आशा बनी रहती है तथा उन्हें दीखता रहता है कि 'यहाँ न सही, वहाँ तो मिल ही जायगा !'

'जीवोंका यह भटकना तबतक बंद नहीं हो सकता, जबतक वे मनुष्य-योनिमें आकर विवेक-बुद्धिसे सोच-विचार-कर अपने धर्मकी शरण नहीं लेते । मनुष्योंमें भी अधिकांश तो भोगप्रधान ही होते हैं । वे अपने पिछले जीवनों अर्थात् पशु-पक्षियोंके समान ही आचरण करते हैं और निद्रा, भोजन, विषयभोग आदिमें ही लगे रहते हैं । उन्हें पुनः भोगयोनियोंमें ही लौट जाना पड़ता है । परंतु जो लोग भारतवर्षमें पैदा हुए हैं और अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार रहकर मेरे भजनमें लगे हुए हैं, वे इस चौरासीके चक्करसे छुटकारा पा जाते हैं । बड़े-बड़े देवतालोग भोगोंसे ऊबकर भारतवर्षमें जन्म ग्रहण करना चाहते हैं । वहाँका वायुमण्डल आध्यात्मिकता-प्रधान है । वहाँ बड़े-बड़े ऋषि, तपस्वी आदि वर्तमान हैं । उनके उच्चारण किये हुए मन्त्र, उपदेश आदि वहाँके कण-कणमें फैले हुए हैं । भारतवर्षमें पैदा होकर जिस मनुष्यने अपना कल्याण-साधन नहीं किया, उसने अपने हाथमें आयी हुई एक अमूल्य वस्तुको खो दिया ।

'चार वर्ण हैं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये वर्ण हैं । इनमें ब्राह्मण मेरे मुखसे पैदा हुए हैं । समाजके शिरो-भाग होनेके कारण इनके कार्य भी शीर्षस्थानीय ही हैं । ये अपनी बुद्धिसे दिन-रात सबका हित सोचते रहते हैं । वेदोंका स्वाध्याय, यज्ञ, दान इनके मुख्य कर्म हैं । ये जीविकाकी चिन्ता न करके निरन्तर इन्द्रियोंके निग्रह, मनकी एकाग्रता

और परम शान्तिके साथ मेरे स्मरणमें लगे रहें, यही इनका कर्तव्य है । यदि जीविकाकी आवश्यकता जान पड़े तो अध्यापन करना, यज्ञ कराना और दान लेना—इनके लिये उत्तम है । परंतु अध्यापनकी अपेक्षा याजन कनिष्ठ है और याजनकी अपेक्षा दान लेना कनिष्ठ है । यद्यपि औरोंका कल्याण तो इसीमें है कि वे ब्राह्मणोंको दान दें, परंतु ब्राह्मणोंके लिये यह वृत्ति अत्यन्त निन्दित है ।

'मेरी बाहुओंसे क्षत्रियोंकी उत्पत्ति हुई है । उनका मुख्य कार्य भी बाहुस्थानीय है । वे सबकी रक्षा-दीक्षामें तत्पर रहें, यही उनका मुख्य कर्तव्य है । वेदोंका अध्ययन, यज्ञ, दान, आस्तिकता, वीरता—ये सब उनके लिये उपादेय हैं । एक वीर क्षत्रियमें इन बातोंका रहना अनिवार्य है । वह सब कुछ करता हुआ भी मेरा स्मरण रखता है और किसीके कष्टकी बात सुनकर अपने कष्ट-जैसा ही उसका अनुभव करता है । इसकी वृत्तिके लिये प्रजा-पालन आदि हैं । इसे दान लेने आदिका अधिकार नहीं है ।

'वैश्य मेरी जाँघोंसे पैदा हुए हैं । इनका काम सारे शरीरका वहन करना है । सबको समयपर भोजन मिल जाय, इसकी जिम्मेवारी वैश्योंपर ही है । कोई आपत्ति आनेपर क्षत्रिय उसे दूर करते हैं । इन्हें अध्ययन, यज्ञ और दान अवश्य करने चाहिये । जीविकाके लिये कृषि, गोरक्षा और वाणिज्य इन्हें करने चाहिये । ये यदि न्याय, सत्य और भगवदर्पण-बुद्धिके साथ अपने कर्तव्यका पालन करें तो बड़ी ही सुगमतासे इनका उद्धार हो सकता है ।

'शूद्र मेरे चरणोंसे उत्पन्न हुए हैं । इनका कर्तव्य है, इन तीनों वर्णोंकी सेवा । इसीसे इनका पारमार्थिक कल्याण सधता है और लौकिक जीविकाके लिये भी यही है । जो गति ब्राह्मणादिकोंको बड़ी-बड़ी तपस्या, यज्ञ, अध्ययन आदिके द्वारा प्राप्त होती है, वही शूद्रोंको केवल सेवाके द्वारा प्राप्त होती है ।

'इन चारों वर्णोंमें नीच-ऊँचका भेद नहीं है । सभी मेरे अङ्ग हैं, सभी मेरे अपने हैं । ये सब अपने-अपने कर्मोंद्वारा मेरी ही आराधना करते हैं । समाजमें सबका ही यथोचित स्थान है । इन वर्णोंकी सृष्टि गुण और कर्मके भेदसे स्वयं मैंने ही की है । जो मेरी आज्ञाके अनुसार अपने वर्णधर्मका पालन करता है, उसपर मैं प्रसन्न होता हूँ और उसकी अभिलाषा पूर्ण करता हूँ । यदि वर्णधर्मके द्वारा चाहे तो सभी प्रकारके लौकिक तथा पारलौकिक सुख प्राप्त हो सकते हैं । यदि कुछ पाना न चाहे तो [illegible]

शुद्ध हो जाता है और उसे भगवान् [illegible] प्रेमकी प्राप्ति होती है ।

[illegible] प्रसङ्गसे [illegible] ब्राह्मण [illegible] लिये उत्सुक रहता हूँ । [illegible] कष्टमें न पड़ें, [illegible] करें । इसीलिये मैं [illegible] करता हूँ । मैं [illegible] कभी नाश नहीं हो [illegible] शरणमें आ जाओ ! तुम्हारी [illegible] सब पापतापोंसे मुक्त [illegible] हृदयसे लगा लूँगा ।'

भगवान् [illegible] इस समय [illegible] अनुसार [illegible] जाय । अन्य अवतारोंके [illegible] उपासनाके भी बहुत-से [illegible] प्रामाणिक नहीं होती, [illegible] स्वरूप लिखा जाता है । [illegible] नमो भगवते कूर्माय [illegible] मन्त्रके [illegible] भगवान् देवता हैं । [illegible] बीज है तथा [illegible] होता है । इनका ध्यान इस प्रकार [illegible]

[illegible]
पीताम्बरं कूर्मरूपं [illegible] ।
[illegible] महाभागं [illegible] ।

[illegible]

[illegible] और [illegible] है । [illegible]

लोग अपनी धर्मपत्नियोंके साथ दिव्य विमानोंपर विचरण करते हुए भगवान्‌की मधुर लीलाओंका गायन करते रहते हैं। कभी सुन्दर-सुन्दर उपवनोंमें, हरी-भरी लताओंके मण्डपोंमें और अमृतसे भरी हुई बावलियोंमें विहार करते हुए भगवान्‌के पवित्र स्मरणके आनन्दोल्लासमें समय व्यतीत करते हैं। परंतु वहाँ समय बीतने-न-बीतनेका प्रश्न ही नहीं होता; क्योंकि समय बीतनेकी समस्या वहीं है, जहाँ मृत्यु है। सारस, चकोर, हंस, शुक, मयूर आदि सुन्दर-सुन्दर पक्षी तालाबोंमें विहार करते-करते जब भौंरेको भगवान्‌की लीलाओं-का गायन करते देखते हैं, तब आँख बंद करके कान लगाकर बड़ी एकाग्रतासे उसे सुननेमें तल्लीन हो जाते हैं। मन्दार, कुन्द, कमल, चम्पा, नागकेसर, मौलसिरी आदि दिव्य पुष्पों-के गन्ध-सौन्दर्यसे भरे रहते हैं। वहाँकी भूमि मणिमय है, परंतु कठोर नहीं, कोमल है। वहाँकी भीतें स्फटिक मणिकी बनी हुई हैं। वहाँके लोगोंकी परछाईं उनमें पड़ती है तो यह पहचानना कठिन हो जाता है कि कौन-सा पुरुष है और कौन-सी परछाईं है!

भगवान्‌के प्रासादकी सात कक्षाएँ हैं। सभी एक-से-एक सुन्दर और सुसज्जित हैं। उनमें वे लोग नहीं जा सकते, जिन्होंने कभी भगवान्‌की लीला नहीं सुनी है, नहीं देखी है। जो मनुष्य-जीवनमें अपने धर्म-कर्मका पालन करते हुए बिना किसी वासनाके भगवान्‌की प्रेमाभक्ति करते हैं, वे ही उस लोकके अधिकारी होते हैं।

हाँ, तो सनक-सनन्दनादि भगवान्‌के उस लोकमें पहुँच गये। छः कक्षा पार करके वे सातवीं कक्षामें पहुँचे ही थे कि सातवीं कक्षाके द्वारपालोंने उन्हें साधारण बालक समझकर रोक दिया। भगवान्‌के लोकमें उनके खास द्वारपाल यह अज्ञानपूर्ण व्यवहार करें, इसे भगवान्‌की लीलाके अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। भगवान् कुछ ऐसी लीला रचनेवाले थे कि वे अपने इन भक्तोंको सम्मिलित किये बिना अपनी उस लीलाको अपूर्ण समझ रहे थे। उन्हें संसारमें आना था, सबके लिये अपनेको सुलभ कर देना था तो यह काम भक्तोंको निमित्त बनाकर ही करना चाहिये। भगवान्‌की इच्छा भी भक्तोंकी इच्छाके अधीन है।

इधर तो जय-विजय नामक द्वारपालोंके मनमें भेद-बुद्धि हुई, बिना आज्ञाके जानेकी चेष्टा करनेके कारण सनकादिकोंके द्वारा उन्हें अपने अपमानका अनुभव हुआ और उन दोनोंने ही डाँटकर कहा—'भगवान्‌के धाममें ऐसी [illegible] कर रहे हो! हमसे पूछकर जाना चाहिये था। [illegible] तो हम तुम्हारे-जैसे नंगे बालकोंको [illegible] नहीं देते।' उन्होंने उन्हें केवल [illegible] ही नहीं, [illegible] रोक भी दिया।

दूसरी ओर उन परमर्षियोंके [illegible], [illegible] का प्रलय हो जानेपर भी क्षोभ या विकार नहीं [illegible] तो होनेकी सम्भावना [illegible], द्वारपालोंके इस [illegible] हो गया। कहा नहीं जा सकता कि यह [illegible] लिये लीलाप्रिय भगवान्‌की ही एक [illegible] भगवान्‌को प्रकट करनेके उन [illegible] थी। परंतु इतनी बात निस्संदेह कही जा सकती है कि यह एक लीला थी और वह चाहे [illegible] भगवन्तमें भेद न होनेके कारण एक ही [illegible]।

ऋषियोंने द्वारपालोंको फटकारते हुए कहा—[illegible] तुमलोग कौन हो! भगवान्‌की [illegible] आ गये हो; फिर भी तुम्हारे [illegible] नहीं [illegible], तुम्हारी भेद-बुद्धि बनी हुई है। [illegible] सम भगवान्‌का निवास-स्थान है, [illegible] कपट-बुद्धि पैदा हो गयी! [illegible] भेद नहीं हो सकता, वैसे ही [illegible] आत्मस्वरूप भगवान्‌से भेद नहीं हो [illegible] भगवान्‌के शरीर-जैसा है। तुमने [illegible] बना रक्खी है और [illegible] अंदर छिपा रक्खा है, [illegible] है! [illegible] भगवान्‌के इस पवित्र [illegible] यहाँसे जाओ। तीन [illegible] कपट, भेद, [illegible] प्रेम है न, तो [illegible] प्रेम करो। [illegible] के अधिकारी नहीं हो।'

ऋषियोंकी यह [illegible]

[illegible] इन्हें [illegible] ही [illegible] है, [illegible] और [illegible] है, [illegible] है। परन्तु एक [illegible] है, [illegible] कृपा करें कि हमें भगवान्‌का [illegible], [illegible] भगवान्‌की [illegible] नहीं रहेगी तो [illegible] रहेंगे।'

[illegible] वाणीकी ध्वनि [illegible] रहे।

(२)

[illegible] भगवान्‌की याद आती ही है; परन्तु [illegible] है जब अपराध करने-वालेको [illegible] होता है। [illegible] पश्चात्तापके समय अभिमान [illegible] रहता है और यह अभिमानका न रहना, [illegible] भगवान्‌के प्रकट होनेका शुभ समय है। हम [illegible] करें, [illegible] अच्छा ही है; परन्तु यदि उनके [illegible] अभिमानसे फूल उठे तो [illegible] पृथक् हो जायँगे। भगवान्‌का ही [illegible] नहीं। अभिमान और [illegible] अभिमान नष्ट होते ही भगवान् प्रकट होते हैं।

अपराध होनेके कारण [illegible] दीन हो गये हैं और [illegible] भी शिथिल पड़ गये हैं। [illegible] अवसर है भगवान्‌के प्रकट होनेका। आखिर, भगवान् आ ही गये! उनके सौन्दर्यामृतका पान करके सबकी [illegible]। उन [illegible] निर्निमेष नयनोंसे देखा कि [illegible] स्वयं आ रहे हैं। उनके [illegible] फहरा रहा है, काले काले घुँघराले [illegible] हुए हैं, मकराकृत कुण्डलकी [illegible] है, मुकुटमें सूर्यके समान हजारों किरणें निकल रही हैं, [illegible] तिलक है, टेढ़ी टेढ़ी भौंहें [illegible] कर रही हैं, प्रेमभरी चितवन और तोतेके [illegible] स्वच्छ चमकते हुए [illegible] होठोंकी पतली मुसकानके [illegible] कर रही है, [illegible] कण्ठमें वैजयन्ती माला [illegible] कौस्तुभ मणिकी चमक [illegible] है। [illegible] पीताम्बरके नीचेसे [illegible] की [illegible] रहती है। [illegible] निकलकर [illegible] कर रही है। [illegible] हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा हैं और चौथे हाथसे वे मानो अभय दान कर रहे हैं। मानो सबको वे अपनी दयाके समुद्रमें अवगाहन करानेके लिये ही बड़े वेगसे चले आ रहे हैं।

भगवान्‌को इस रूपमें आते देखकर सनकादि विह्वल हो गये और आनन्दमग्न होकर अतृप्त आँखोंसे भगवान्‌को निहारने लगे। इनकी आँखें मुखमण्डलपर ही अटक गयीं; चरण-स्पर्श अथवा प्रणाम आदि करनेका ध्यान ही न रहा। भगवान् तो बड़े लीलाप्रिय हैं। वे सनकादिके पास आकर भी न आये, कुछ दूरपर खड़े खड़े मुसकराते रहे।

इधर सनकादिका शरीर भी जड़वत् हो रहा था। वे भगवान्‌का आलिङ्गन करना चाहते थे, पर न उनके पैर उठते थे न हाथ। वे आँखोंद्वारा भगवान्‌की रूपमाधुरीको पी जाना चाहते थे, पर आँखोंने कोरा जवाब दे दिया। वे भूले हुएकी भाँति, छके हुएकी भाँति जहाँ थे, वहीं खड़े रहे, अपना शरीर हिला न सके। उस समय उनकी तन्मयता दर्शनीय थी और स्वयं भगवान् भी उसे देख देखकर आनन्दित हो रहे थे। पता नहीं, कितनी देरतक वे लोग इसी अवस्थामें रहे। यदि वैकुण्ठमें कालकी गति होती, समयका माप होता तो बतलाया जा सकता कि कितनी देरतक उनकी यह विलक्षण समाधि लगी रही होगी।

जब ध्यान आया कि भगवान् सामने खड़े हैं, तब वे साष्टाङ्ग उनके चरणोंपर गिर पड़े। वे सब कुछ भूलकर भगवान्‌की चरणधूलिमें लोटने लगे। वहाँकी मणिमय भूमिपर पड़े हुए भगवान्‌के चरणोंके पद्म-पराग उनके शरीरमें लग-लगकर उनके स्वर्ण वर्ण शरीरकी आभाको और भी चमकाने लगे। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह रही थी। शरीर पुलकित था और चेतना लुप्त थी। भगवान्‌ने अपने हाथों उठाकर सत्कार किया, मानो कोई अपने गुरुजनोंका सम्मान कर रहा हो। भगवान्‌का प्रेम देखकर सबके सब मुग्ध हो गये। कुछ क्षणोंमें सम्हलकर सिर झुकाकर अञ्जलि बाँधे हुए रुँधे कण्ठसे वे भगवान्‌की स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा—'प्रभो! आपकी यह नयनाभिराम मूर्ति सबके हृदयोंमें रहती है। बड़े-बड़े योगीश्वर बहुत समयतक ध्यान समाधि लगाकर इसके दर्शनकी अभिलाषा किया करते हैं। जिनके हृदयमें छल, कपट, राग-द्वेष आदि हैं, उन्हें तो कभी इसके दर्शन होते ही नहीं। परंतु आपने कृपा करके अपनी वही अनूप रूप-राशि हमारी आँखोंके सामने कर दी है। हम अपने सौभाग्यकी कितनी प्रशंसा करें। परंतु प्रभो! यह हमारे सौभाग्यकी महिमा नहीं है, यह तो आपकी अहैतुकी कृपाका फल है।

'अबतक हम केवल कानसे सुना करते थे, हमारे पिता ब्रह्मा प्रायः आपके स्वरूप, लीला और गुणोंका वर्णन करके हमें आपकी ओर प्रवृत्त किया करते थे; परंतु हम अपने ज्ञान-के घमंडमें उनकी बातोंको इतना अधिक महत्त्व नहीं देते थे। आज उनकी बातोंका अर्थ समझमें आया। हमें अपनी भूल स्वीकार है। दीनबन्धो ! हमें सर्वदा आपकी कृपाका अनुभव होता रहे।

'जगत्‌के झमेलेमें ठोकर खाते-खाते जब संत-सद्गुरुकी कृपा होती है और अपने जीवन एवं समयके व्यर्थ बितानेका पश्चात्ताप होता है, संसारके किसी विषयका भरोसा नहीं रहता, तब कहीं जाकर आपके चरणोंका आश्रय मिलता है और आपके प्रेमका कुछ-कुछ उदय होता है। जिसे संसारमें भटकनेके समय आनन्द मालूम होता है, हृदयमें वैराग्यकी प्रखर ज्वाला नहीं जल उठती, वह आपकी भक्ति और ज्ञानका लेशमात्र भी नहीं पा सकता और जिसने आपके चरणोंकी शरण ग्रहण कर रक्खी है, उसे किसीका भय नहीं, वह तो सर्वदा निर्भय रहता है।

'प्रभो ! हमारे अपराधोंके कारण चाहे हमारे सैकड़ों जन्म हों, बार-बार नरकमें जाना पड़े और वहीं रहना पड़े, इसकी हमें तनिक भी चिन्ता नहीं है। हम केवल इतना ही चाहते हैं कि हमारा चित्त भौंरोंके समान सदा आपके चरणकमलोंमें रमा करे। वाणी तुलसीकी भाँति आपके चरणकमलोंसे लिपटी रहे और कान आपके ही दिव्य अनन्त गुणगणोंसे भरते रहें और सर्वदा अनभरे ही बने रहें।

'भगवन् ! आपके दर्शनसे हमें परम आनन्द प्राप्त हुआ है। हम आपके चरणोंमें शतशः, सहस्रशः और कोटिशः प्रणाम करते हैं।'

भगवान्‌ने कहा—'ऋषियो ! आपकी महिमा अनन्त है। आप मेरे पूजनीय देवता हैं। मुझे आपलोगोंसे ही कीर्ति प्राप्त हुई है। मेरी सत्ता आपकी ही सत्तापर अवलम्बित है। जिस लक्ष्मीके लिये बड़े-बड़े लोग तपस्या करते हैं, वह विरक्त होनेपर भी मेरी चरण-सेवा इसलिये करती है कि मुझपर ब्राह्मणों की, कृपालु महात्माओंकी बड़ी कृपा है। मैं यजमानोंके द्वारा दिये हुए यज्ञोंमें, जिनमें अग्निमें स्रुक् की आहुति [illegible] दी जाती है, उतनी प्रसन्नतासे स्वीकार नहीं करता, [illegible] प्रसन्नतासे ब्राह्मणोंको खिलाये हुए पदार्थोंको स्वीकार करता हूँ। जिन ब्राह्मणोंकी पूजा मैं करता हूँ, किसमें ऐसी [illegible] है, जो उनका तिरस्कार कर सके ! जो तिरस्कार करते हैं,

गायें देकर भी ब्राह्मणोंका [illegible] प्रसन्नताके साथ प्रेमभरी वाणीसे [illegible] है [illegible] मेरा स्वरूप [illegible] हैं, वे [illegible] हैं।

'ब्राह्मणो ! ये [illegible] परंतु इन्होंने मेरे [illegible] अपमान किया है। [illegible] हम अपराधके लिये [illegible] हूँ। [illegible] दण्ड दिया है, वह भी [illegible] है। [illegible] मेरी इच्छा है और [illegible] दोनोंने मेरे [illegible] है, उसके फलस्वरूप [illegible] और शीघ्र ही पुनः अपने स्थानपर [illegible] पर कृपा कर रहा हूँ। [illegible] मुझसे ये अलग रहें, यह मुझे [illegible] नहीं है।'

भगवान्‌की बात सुनकर ऋषियोंको [illegible] मानो उन्होंने समझा [illegible] वे गद्गद वाणीसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे। [illegible] आपकी बात हमारी समझमें नहीं [illegible] है। [illegible] नाथ होकर हमें [illegible] कृपा है। आप ब्राह्मणोंके [illegible] परम रहस्य है। आप यदि [illegible] तो और कौन [illegible] आकर हमने [illegible] आप हमें दण्ड दें और [illegible] निरपराध हैं।'

भगवान्‌ने कहा—[illegible] की आवश्यकता नहीं। [illegible] चिन्तन करेंगे और [illegible]

[illegible]

[illegible] है तो वह भगवान्‌का [illegible] है और [illegible] उनके कृपा [illegible] है। परंतु ऐसे [illegible] किसी बड़े अपराधका सहारा [illegible] तो [illegible] मिलना ही नहीं रहता।

ऐसे ही [illegible] भगवान्‌की [illegible] प्राप्त होती है। वे कुछ [illegible] ऐसे हैं, मानो दूसरोंको [illegible] देते हैं, [illegible] इच्छा [illegible] अनुसार सहयोग कर देते हैं। इसीसे उन्हें धाम [illegible] कहा जाता है और इसीमें उनकी [illegible] है। जब जय-विजय सर्वथा निराश हो गये, ब्रह्मर्षियोंका अपमान, भगवान्‌का अपमान और बहुत [illegible] भगवान्‌से विमुख [illegible] देख-सुनकर वे घबरा गये, तब भगवान्‌ने उनपर अपनी [illegible] डाली। वे एक कोनेमें दुबके खड़े थे। उन्हें साहस नहीं होता था कि वे भगवान्‌के सामने आवें और उनसे क्षमा माँगें। यद्यपि भगवान्‌का करुणामय स्वभाव उनसे छिपा न था, वे जानते थे कि भगवान् हमारे दोषोंपर दृष्टि न डालेंगे; क्योंकि यदि वे दोषोंपर दृष्टि डालने लगें तो करोड़ों कल्पोंमें भी उद्धार सम्भव नहीं, परंतु वे परम दयालु हैं, हमें क्षमा कर देंगे, हमें [illegible], तथापि [illegible] न जाने क्या बात थी कि वे भगवान्‌के सामने आनेमें हिचकते थे।

जब उन्होंने देखा कि भगवान् स्वयं ही प्रेमभरी दृष्टिसे हमारी ओर देख रहे हैं, तब वे दौड़कर उनके चरणोंपर गिर पड़े, उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली, [illegible] हिचकी बँध गयी, वे कुछ बोल न सके। भगवान्‌ने अपने हाथोंसे उन्हें उठाते हुए कहा—'जय विजय! तुम लोग इतना घबराते क्यों हो? क्या तुम्हें मेरी लीलाका रहस्य मालूम नहीं? मेरी इच्छाके बिना जगत्‌में कोई काम हो ही नहीं सकता, [illegible] भी नहीं हो सकता। तब भला इस वैकुण्ठमें मेरी इच्छाके विरुद्ध कोई बात कैसे हो सकती है? [illegible] यह है कि मैं [illegible] अवतार ग्रहण करके कुछ लीला करना चाहता हूँ। उस लीलामें तुमलोगोंको प्रधान पात्र बनाना आवश्यक है। तुमलोगोंकी जो सम्मिलित लीला होगी, उसे [illegible] स्मरण करके [illegible] लोग दुःखसागरसे [illegible]। केवल लोगोंके उद्धारके लिये ही यह [illegible] है। और कोई ऐसा काम हो नहीं सकता, जिसके लिये तुम्हें [illegible]।

[illegible] लीलामें तुमलोगोंको बड़ा कठोर काम करना होगा। परंतु तुम्हारा [illegible] देखकर ही यह काम तुम लोगोंको सौंपा गया है। तुम्हें मुझसे वैरभाव रखना होगा। और मैं तुमलोगोंको अपने हाथोंसे मारूँगा। उस समय तुमलोगोंको याद नहीं रहेगा कि ये हमारे स्वामी हैं, हमारे प्रेमी हैं। लक्ष्मीने भी तुम्हें शाप दे दिया है, इन ब्राह्मणोंका भी शाप हो चुका है, अब इसका सदुपयोग करना चाहिये। मेरे प्यारे पार्षदो! मैं तुम्हें छोड़ नहीं सकता। मेरी शरणमें आकर किसीका पतन नहीं हो सकता। यदि तुम्हें तीन बार संसारमें जन्म लेना पड़ेगा तो मैं तुम्हारे लिये चार बार आऊँगा। तुम मेरे हो। मैं तुम्हारा हूँ। मेरे लिये इतना कष्ट उठानेमें तुम्हें आपत्ति नहीं होनी चाहिये।'

भगवान् तो उन्हें समझाकर अपने धाममें चले गये, परंतु विजयको संतोष नहीं हुआ। वह दुखी होकर अपने भाई जयसे कहने लगा—'भैया! मैं बड़ा दुखी हूँ। मैं यह सोचकर दुखी नहीं हूँ कि मुझे असुरयोनिमें जाना पड़ेगा। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ। यदि अपने किये हुएका दण्ड भोगनेके लिये मुझे नरकमें जाना पड़े और उसमें करोड़ों वर्षोंतक रहना पड़े तो भी मुझको दुःख नहीं होगा। मैं भगवान्‌का स्मरण करते-करते बात-की-बातमें उन वर्षोंको बिता दूँगा। परंतु अपने स्वामीसे, भगवान्‌से पृथक् होकर मैं उनका प्रेमसे स्मरण भी नहीं कर सकूँगा, इतना ही नहीं, उनसे वैरभाव रखूँगा, यह सोचकर मैं चिन्ताके मारे मरा जा रहा हूँ। भैया! मुझे बचाओ!' इतना कहकर वह जोर-जोरसे रोने लगा।

विजयको समझाते हुए जयने बड़ी गम्भीरतासे कहा—'मेरे प्राणप्रिय भाई! तुम इतना घबराते क्यों हो? तुम तो भगवान्‌से प्रेम रखते हो, तुम तो उनके सच्चे सेवक हो, मुझे तो इसमें जरा भी संदेह नहीं है। भाई! प्रेमधर्म, सेवाधर्मका पालन करना बड़ा ही कठिन है। इसमें अपनी मनोवृत्तियोंकी परवा छोड़ देनी पड़ती है, अपने सुख-दुःखकी उपेक्षा कर देनी पड़ती है। जिससे अपने प्रियतमको प्रसन्नता हो, अपने स्वामी सुखी हों, वही करना पड़ता है। भगवान् जहाँ भेजें, जिस रूपमें भेजें और जैसे रक्खें, हमें उसी प्रकार जाना होगा, रहना होगा। हम उनके हैं, उनकी कठपुतली हैं, वे जो नाच नचायेंगे, हम प्रसन्नतासे नाचेंगे, उनकी प्रसन्नता ही हमारी प्रसन्नता है।

'क्या तुम उनसे इसलिये प्रेम करते हो, इस भावसे सेवा करते हो कि वे हमारी इच्छाके अनुसार काम करें? हमें जिसमें सुख प्रतीत हो वही करें? हमारी इच्छाके अनुसार न होनेपर हम दुखी हों। दुःखका मूल मन है। मनमें जब कोई कामना होती है कि हम इस प्रकार रहें, इस प्रकार रक्खे

जायँ और, वैसा नहीं होता तब हमारी कामनापर ठेस लगती है, तभी हम दुखी होते हैं। बिना कामनाके कोई दुखी हो ही नहीं सकता। भगवान् जो कुछ करते हैं, हमारे भलेके लिये करते हैं और उनकी इच्छापर आनन्दमग्न होकर नाचते रहना ही हमारा धर्म है। उठो, चलो, विषाद छोड़ो। भगवान्‌की इस आज्ञाका अविलम्ब पालन किया जाय।'

जयकी बात सुनकर विजयको बड़ा संतोष हुआ। दोनोंने श्रद्धाभक्ति-पूर्वक भगवान्‌को प्रणाम किया। इतनेमें ही उनके वैकुण्ठसे गिरनेका समय आ पहुँचा। उनके गिरनेके समय हाहाकार मच गया। ब्रह्मा उस समय अपनी सभामें बैठे हुए थे। उन्होंने जब देखा कि भगवान्‌के प्रिय पार्षद वैकुण्ठसे गिरकर असुरयोनिमें जा रहे हैं और अभी इसी समय इन्हें भगवान्‌की स्मृति नहीं है, तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उनके मनमें ऐसे भाव आने लगे कि जो अबतक कभी नहीं हुआ था, वह इस समय कैसे हो रहा है! अबतक केवल मेरे लोकतक ही पुनर्जन्मकी गति थी, आज वैकुण्ठसे भी पुनर्जन्म होनेकी बात देखी गयी। क्या भगवान्‌के लोकमें भी कालकी पहुँच हो गयी! परंतु ऐसा कैसे हो सकता है! काल तो भगवान्‌के लोकका स्पर्श भी नहीं कर सकता, परंतु ये गिर तो रहे हैं! अवश्य इसमें कुछ-न-कुछ भगवान्‌की लीला होगी।! भगवान् भी कैसी-कैसी लीलाएँ करते हैं!

भगवान्‌की लीलाका स्मरण करते-करते ब्रह्मा तन्मय हो गये। थोड़ी देरके बाद जब उनकी तन्मयता भंग हुई, तब उन्हें स्मरण हो आया कि यह तो कोई नयी बात नहीं है। प्रत्येक वाराह-कल्पमें ऐसा ही होता आया है। अब भगवान् जगत्‌का कल्याण करनेके लिये प्रकट होनेवाले हैं। अहा! भगवान् कितने दयालु हैं। जगत्‌के प्रपञ्चोंमें फँसे हुए जीवोंका उद्धार करनेके लिये वे स्वयं जगत्‌में आते हैं। अनेकों प्रकारकी लीलाएँ करते हैं, बहुतोंको तार देते हैं और ऐसी लीला कर जाते हैं कि उसका स्मरण-चिन्तन करके लोग भव-सागरसे पार उतरते रहें। धन्य हैं भगवान् और धन्य है उनकी लीला!

ब्रह्मा पुनः समाधिस्थ हो गये। वे भगवान्‌के चिन्तनमें इतने तल्लीन हो गये कि उनकी समाधि [illegible] जय-विजय ऊपरके लोकोंसे बहुत ही नीचे [illegible] ब्रह्माने सोचा अब इन्हें कहीं स्थान देना चाहिये। इन्हें गर्भमें धारण करनेकी शक्ति [illegible] किसमें है! हाँ, दिति इन्हें अपने गर्भमें धारण कर सकती है। [illegible]

ब्रह्माने उन्हें दितिके गर्भमें [illegible]

(४)

प्रकृति शान्त थी। [illegible] किरणें समुद्रके [illegible] बहुत कम उठती थीं। [illegible] सन्ध्या समय होनेके [illegible] शान्ति विराज रही थी। [illegible] अपने नीड़ोंपर बैठकर भगवान्‌के [illegible] गा रहे थे। यह वही समय है, [illegible] जंगलसे गौओंको चराकर लौटते थे और [illegible] धूसरित मुख-मण्डलको देखनेके लिये [illegible] उत्सुक रहते थे। दिनभर [illegible] अपने घर आते हैं। यह [illegible] हृदयमें एक मधुर [illegible] होनेके कारण इस समय मन [illegible] आप परमात्माकी ओर [illegible] शान्त थी और महर्षि कश्यप [illegible] सन्ध्या कर रहे थे।

प्रातःकालकी सन्ध्या सूर्योदयसे पूर्व ही [illegible] और सायंकालकी सन्ध्या सूर्यास्तसे पूर्व ही [illegible] यह द्विजातियोंका नित्य कर्तव्य है। [illegible] लगाता है। [illegible] नहीं की जा सकती। महर्षि कश्यप [illegible] और आज भी [illegible] ध्यान करते हुए उन्होंने [illegible] अघमर्षण आदि करके [illegible] दिति वहाँ आ पहुँची।

दितिको [illegible] बड़ा आश्चर्य हुआ। [illegible] हो गयी। [illegible]

[illegible]

शङ्करकी प्रार्थनाको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भगवान् रुद्र तुम्हारे बालकोंका अनिष्ट नहीं करेंगे। परंतु असमयमें ही गर्भाधान करनेके कारण मेरी आज्ञा न पालन करने तथा अपनी सौतके पुत्र देवताओंके प्रति द्रोह-भाव रखनेके कारण तुम्हारे गर्भसे होनेवाले पुत्र देव-द्रोही एवं अमङ्गलरूप होंगे। गर्भाधानके समयकी तुम्हारी ईर्ष्या उनके हृदयमें ऐसे भाव भर देगी कि वे तीनों लोकोंको कम्पित कर देंगे। उस समय मेरे मनमें भगवान् शङ्करका ध्यान था, अतः तुम्हारे दोनों पुत्र शङ्करके भक्त होंगे। जब उनके द्वारा निरपराध दीन प्राणियोंकी हिंसा होगी, स्त्रियाँ दुःख पायेंगी, उनपर महात्मालोग क्रोधित हो जायँगे तब स्वयं भगवान् अवतार लेकर उनका वध करेंगे। तुम्हारे मनमें पश्चात्ताप हुआ है, तुम्हें अपने कृत्यपर खेद हुआ है, इसलिये तुम्हारा पौत्र हिरण्यकशिपुका एक लड़का बड़ा ही भक्त होगा। उसकी भक्तिसे तुम्हारे वंशका उद्धार हो जायगा।'

मेरे पुत्रोंका वध स्वयं भगवान् करेंगे, यह सुनकर दितिको बड़ी प्रसन्नता हुई; क्योंकि उसका विश्वास था कि वधके नाते ही सही, हमारे पुत्रोंका भगवान्से सम्बन्ध तो होगा! चाहे जिस भावसे, जिस नातेसे उनसे सम्बन्ध हो जाय, केवल सम्बन्ध होना चाहिये। बस, कल्याण-ही-कल्याण है। दिति बड़ी सावधानीके साथ अपने गर्भकी रक्षा करने लगी।

जब दितिके गर्भमें पहलेके भगवान्के द्वारपाल दितु अब असुर आ गये, तब तीनों लोकोंकी दशा ही बदल गयी। सूर्यका तेज कम हो गया, अग्नि निर्धूम होकर प्रसन्नतासे हविष्य नहीं ग्रहण करती, दिशाओंमें कुहरा छाया रहता है, वायुका स्पर्श बड़ा ही तीखा मालूम होता है, कहीं प्रसन्नता नहीं, कहीं मङ्गल नहीं, सब-के-सब देवता घबरा गये। वे आपसमें सलाह करके ब्रह्माके पास गये। उन्होंने ब्रह्मासे सम्मिलित प्रार्थना की कि 'पितामह! आज संसारमें यह क्या अनर्थ हो रहा है? चारों ओर भय छाया हुआ है। सबके हृदयोंमें एक उद्वेग छाया हुआ है। सर्वत्र अशान्ति है। इसका कारण क्या है? दितिका गर्भ बहुत दिनोंसे बढ़ रहा है। यह क्या है? क्या इसीके कारण जगत्की यह दशा है? भगवन्! हमें कोई उपाय बतलाइये, इस संकटसे उबारिये। हम सब आपकी शरणमें हैं। आपके चरणोंमें बारम्बार नमस्कार करते हैं।'

[illegible]

[illegible] किया । [illegible] हिरण्यको [illegible] था, किंतु [illegible] हिरण्यकशिपु [illegible] । और [illegible] किंतु [illegible] था, [illegible] । हिरण्यकशिपुने घोर तपस्या करके ब्रह्मासे वर प्राप्त किया और त्रिलोकीपर शासन किया । [illegible] देखती चाहिये । [illegible] हिरण्याक्ष [illegible] था । यह हिरण्यकशिपुका [illegible] था तथा यह भी इसका बड़ा [illegible] था ।

हिरण्याक्ष इसको गदा लेकर युद्धके लिये प्रतिद्वन्द्वीको ढूँढने-के लिये स्वर्गमें गया । उसके प्रचण्ड वेग, महान् गदा, उन्माद, दर्प और क्रोधसे भरी दौड़को देखकर सभी देवता भयभीत हो गये । जब उसने देखा कि इन्द्र आदि सभी देवता मेरे भयसे भाग गये, तब वह उन्हें नपुंसक समझने लगा । इसके बाद अपने जैसेकी [illegible] मिलनेपर [illegible] वह समुद्रमें कूद पड़ा और भयानक गर्जना करते हुए अपार एवं अगाध समुद्रमें मस्त होकर विहार करने लगा । उसके समुद्रमें प्रवेश करते ही शस्त्र न चलानेपर भी उसके प्रभावसे भयभीत होकर वरुणके सैनिक भाग गये । वह वर्षोंतक समुद्रमें क्रीड़ा करता रहा । वह अपनी गदासे समुद्रकी लहरोंको पीट-पीटकर इतना उत्पात करता था कि उसकी चोटोंसे [illegible] लोकमें रहनेवाले घबरा उठते थे ।

अब वह वरुणकी राजधानीमें गया । वहाँ वरुणसे [illegible] प्रार्थना की कि आप लोकपाल हैं, आपके [illegible] हैं, आपकी कीर्ति सारे संसारमें फैली हुई है, आपने बड़े-बड़े वीरोंका घमंड चूर कर दिया है, समस्त दैत्य-दानवोंको जीतकर आपने राजसूय यज्ञ किया है, मैं आपके चरणोंमें प्रणाम करके एक भीख माँगता हूँ । आशा है, आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे । मैं आपसे युद्धकी भीख माँगता हूँ कि आप मुझसे युद्ध करें ।'

वरुणने देखा कि इस समय इसका बल बढ़ा हुआ है । इससे लड़ना अपनेको संकटमें डालना है । अतः क्रोधको भीतर ही दबाकर उन्होंने बड़ी नम्रतासे कहा— 'भैया ! हम तो अब बूढ़े हो गये हैं । अब युद्ध करनेकी ओर हमारी रुचि नहीं है और संसारमें भगवान् विष्णुके अतिरिक्त दूसरा युद्ध करनेवाला कोई दिखता भी नहीं । तुम्हारे-जैसे वीर पुरुषोंसे उन्हींसे युद्ध करना चाहिये । जाओ, तुम उन्हींके पास जाओ । तुम्हारा घमंड चूर होगा और तुम [illegible] ही कुत्ते तुम्हारे शरीरको नोचकर खा जायँगे ।'

हिरण्याक्ष तो अपने जोड़का योद्धा ढूँढ ही रहा था, वह भगवान् विष्णुको ढूँढनेके लिये चल पड़ा ।

(५)

सृष्टिके आदिकालकी बात है । ब्रह्मा भगवत्प्रेरणासे सृष्टि कर रहे थे; परंतु उनकी इच्छाके अनुरूप सृष्टि नहीं हो रही थी । उनकी अभिलाषा थी कि सृष्टि सुन्दर-से-सुन्दर हो, बढ़े और प्रवृत्ति धर्मका पालन करे । परंतु उनकी यह अभिलाषा दरिद्रोंके मनोरथकी भाँति पूरी नहीं होती थी । कुछ अज्ञानी हुए, कुछ भोगी हुए, कुछ क्रोधी हुए और कुछ निवृत्तिपरायण हो गये । उनके शोककी सीमा न रही । वास्तवमें जब कुछ करनेकी इच्छा की जाती है और वह पूरी नहीं होती, तब शोक होता ही है । ब्रह्मा भी शोकमग्न हो गये ।

परंतु भगवान्‌की लीलाको कौन जानता है । इस शोकके अवसरपर ही उनमें रजोगुण और तमोगुणका वाञ्छनीय मिश्रण हो गया और एक सुन्दर दम्पति उनके सामने प्रकट हो गये । यही दम्पति मनु और शतरूपा थे । इन्हें देखकर ब्रह्माको बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि बस, अब मेरी अभिलाषा पूर्ण हो गयी । मैं जैसी चाहता था, वैसी सृष्टि हो गयी । मनु और शतरूपाने हाथ जोड़कर पूछा— 'भगवन् ! हमें क्या आज्ञा है ? हम आपकी आज्ञाकारी संतान हैं । जो आज्ञा हो, वही करें ।' ब्रह्माने बड़ी प्रसन्नतासे समझाया—

'हम सब परम पिता परमात्माके यन्त्र हैं । हमारा एक-मात्र धर्म है उनकी आज्ञाका पालन करना । वे हमारे स्वामी हैं, हमारे सखा हैं और हमारे आत्मा हैं । वे कर्ता-अकर्ता, भोक्ता-अभोक्ता सब कुछ हैं और सबसे परे हैं । यह सृष्टिका समय है । हमें यह आज्ञा है कि तमोगुणमें सोते हुए जीवोंको उठाकर ऐसी स्थितिमें लायें कि वे अपने पुरुषार्थद्वारा इस दुःखमय संसारसे मुक्त हो जायँ । भगवान्‌के पास पहुँच जायँ । यह काम तुमसे होगा ।'

परंतु इसके लिये तपकी आवश्यकता है । तुम दोनों तपस्या करके शक्ति प्राप्त करो । आदिशक्तिकी आराधना करो और उनसे निर्विघ्न सृष्टि-सम्पादनकी योग्यता लाभ करो । मनुने ब्रह्माकी बात शिरोधार्य की और दोनों तपस्याके लिये चल पड़े ।

इस सृष्टिके अंदर और बाहर एक शक्ति है । ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसमें कोई-न-कोई शक्ति न हो । शक्तिहीनका

अस्तित्व ही नहीं है। सत्ता स्वयं एक शक्ति है। हम जो उपासना करते हैं, हमारी उपासनाका जहाँतक सम्बन्ध है, वहाँतक शक्ति-ही-शक्ति है। स्वयं ईश्वर शक्तिरूप है। ऐश्वर्य-शक्तिके बिना ईश्वरका ईश्वरत्व ही सिद्ध नहीं होता। इसलिये शक्तिकी आराधना ही आराधना है और हम सभी शक्तिकी आराधना करते हैं।

मनु और शतरूपा दोनों ही प्रेमसे शक्तिकी आराधना करने लगे। उन्होंने मन-ही-मन भगवती आदिशक्तिकी प्रार्थना की कि 'देवि! जगत्के समस्त कारणोंकी कारणभूता महाशक्ति! हम तुम्हें शतशः प्रणाम करते हैं। वेदोंके रूपमें तुम्हीं प्रकट हो। सम्पूर्ण मङ्गलोंकी तुम्हीं मूल हो। ब्रह्मा, विष्णु, महेश सभी तुम्हारे शिशु हैं। तुम्हारे ही बलपर जगत् टिका हुआ है। पालन, पोषण, सर्जन, विसर्जन सब तुम्हारी ही शक्तिसे होता है। तुम्हारी शक्तिके बिना कोई कार्य हो ही नहीं सकता।

'हमें अपने पिताकी आज्ञा प्राप्त हुई है और उसमें भगवत्प्रेरणा भी है कि हमलोग सृष्टि करें। परंतु हममें क्या शक्ति है कि उनकी आज्ञाका पालन कर सकें। हम तुम्हारी कृपाके भिखारी हैं। तुम्हारे ही शिशु हैं। तुम्हारे दरवाजेपर पड़े हैं। माँ! प्यारी माँ! आकर हमें गोदमें उठा लो। हमें दुलारो, पुचकारो। हमपर वात्सल्य स्नेह प्रकट करो।'

मनु और शतरूपा एक ही साथ एक ही प्रकारकी प्रार्थना कर रहे थे। पति-पत्नीका हृदय एक ही भावमें विभोर था। वह एक ही हो गया था। उनकी सच्ची प्रार्थना और दर्शनकी परम लालसा देखकर दयामयी माँ प्रकट हुई। उन्हें देखते ही उनके चरणोंपर गिरकर दोनोंने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। माँकी करुणासे उनका हृदय विह्वल हो गया। शरीर पुलकित और आँखोंमें आँसू। दोनों ही अञ्जलि बाँधे खड़े थे।

माँने पुचकारते हुए कहा—'बेटा! तुम तो मेरे अपने हो। तुम इसीलिये प्रकट हुए हो कि परमार्थ-साधन करनेयोग्य मानवी सृष्टि हो। मेरी प्रसन्नताके लिये तपस्या करनेकी क्या आवश्यकता है। मैं अपने बच्चोंको कष्ट उठाते नहीं देखना चाहती। जब मैं देखती हूँ कि मेरा कोई शिशु सचमुच मेरे लिये रो रहा है, तब दौड़कर उसे छातीसे लगा लेती हूँ। मेरा हृदय उसके ... लिये ... बाहर निकल आता है। मैं एक क्षणके लिये भी उसे नहीं छोड़ना चाहती।

'जो मुझे ... [illegible] ... यदि उस ... [illegible] ... तो वह वस्तु भी दे देती हूँ और ... [illegible] ... बच्चेका ... देखकर ... [illegible] ... होनेकी सम्भावना ... [illegible] ... लेती हूँ और उसे ... [illegible] ... उसे अपनी गोदमें ले लेती हूँ।

'प्यारे मनु और शतरूपा! मुझे ... [illegible] ... है। मैं दूसरा कोई काम ... [illegible] ... नन्हे-नन्हे शिशुओंको देख... [illegible] ... कल्पना भी ... [illegible] ... अनुमान नहीं ... [illegible] ... नहीं सकती।

'तुम ... [illegible] ... बड़ी प्रसन्नताकी बात है। ... [illegible] ... स्वयं भगवान् विष्णु ... [illegible] ... कार्यमें सहयोग देंगे और ... [illegible] ... रूपमें अवतार ग्रहण करेंगे। ... [illegible] ... अपना काम ... [illegible]

माँ अन्तर्धान हो गयी और मनु ... [illegible] ... पास आये।

मनु और शतरूपाकी ... [illegible] ... [illegible] ... प्रणाम करते ही ... [illegible] ... आनन्दातिरेकसे ... [illegible] ... वरदानकी बात सुनकर ... [illegible] ... माँकी ... [illegible] ... मालूम होने लगा कि ... [illegible]

... [illegible] ...

... [illegible] ...

[illegible] भगवान् ही दूत- [illegible]

([illegible])

[illegible] पूर्ण कर दें तो [illegible]

[illegible] मन्दिरोंमें [illegible] अवतरित हुए [illegible] भक्त [illegible]

प्रभो! [illegible] असुरोंके हाथ [illegible] यह हरण कर ली गयी है। आपकी अपनी होनेके पश्चात् यह असुरोंके हाथमें गयी, यह आश्चर्यकी बात अवश्य है। परंतु आपकी लीला आप ही जानते हैं। और कोई क्या जाने! भगवन्! अब उसका उद्धार कीजिये। हमलोग आपकी प्रेरणासे सृष्टिके कार्यमें लगे हैं, बिना पृथ्वीके हम सृष्टि कहाँ करें! पृथ्वी भी घबरायी हुई है, वह आपके दर्शन और स्पर्शके लिये बहुत ही उत्सुक है। उसे आश्वासन दीजिये, अपनाइये।'

महर्षियोंकी प्रार्थना सुनकर भगवान् बड़े जोरसे हँसे और गरजते हुए समुद्रमें कूद पड़े। उनके कूदनेसे समुद्रका जल उछल-उछलकर जनलोक, महर्लोकसे बातें करने लगा। मानो 'भगवान् मेरे जलमें क्रीडा कर रहे हैं। आज मेरी इतने दिनोंकी तपस्या सफल हुई। मैं भगवान्‌का दिव्य स्पर्श प्राप्त कर रहा हूँ।' अपनी गम्भीर ध्वनिके द्वारा इस बातकी डंकेकी चोट घोषणा करता हुआ समुद्र तीनों लोकोंको अपने आनन्दका संदेश सुना रहा था।

भगवान् मन्थरगतिसे रसातलकी ओर जा रहे थे। जो भगवान् अपने भक्तोंकी पुकार सुनकर गरुडको भी छोड़कर पाँव-पयादे दौड़ते हैं, वही भगवान् आज मन्थरगतिसे क्यों चल रहे हैं! अवश्य सर्वदा क्षीरसागरमें उनके रहनेके कारण नीर-सागरको बड़ी स्पर्धा रही होगी कि क्षीर-सागर कितना भाग्यवान् है! काश, एक दिन भगवान् मेरे अंदर भी आ जाते! वह बड़ा उत्सुक था। इतने दिनोंसे गम्भीर एवं शान्तचित्तसे जिसकी उपासना करता था, वही भगवान् उसके पास आये हैं और धीरे-धीरे उसे स्पर्श-सुखका अनुभव कराते हुए रसातलकी ओर जा रहे हैं।

भगवान् धीरे-धीरे बढ़ते हुए रसातलमें पहुँच गये। भगवान्‌को देखकर पृथ्वी प्रसन्नताके मारे खिल उठी। उसने भगवान्‌का चरणामृत लिया। सुन्दर आसनपर बैठाकर भगवान्‌की पूजा की। उसे ऐसा मालूम हुआ कि आज मेरे सौभाग्यका सूर्य चमक उठा। अबतक भगवान् लक्ष्मीके पास रहते थे, आज मेरे घर आ गये। मेरा असुरोंके हाथमें पड़ना अच्छा ही हुआ, क्योंकि इसीलिये भगवान् मेरे घर आये हैं। पृथ्वी देवी षोडशोपचार पूजा करनेके पश्चात् आरती लेकर भगवान्‌के सामने नाचने लगी। उस समय उसके प्रेम और आनन्दका क्या कहना! स्वयं प्रेम और आनन्दस्वरूप भगवान् उसके सामने विराजमान थे।

पूजा समाप्त होनेपर पृथ्वीको जब बाह्यज्ञान हुआ, तब वह अञ्जलि बाँधकर भक्ति-गद्गद चित्तसे प्रार्थना करने

लगी । उसने कहा—'कमलनयन ! शङ्ख-चक्र-गदा-धारी ! श्यामसुन्दर ! तुम्हीं हमारा उद्धार करनेवाले हो । तुम्हीं हमारे स्वामी हो, तुम्हीं हमारे पतिदेव हो । प्रभो ! तुम्हीं क्षर-अक्षरसे परे पुरुषोत्तम हो । तुम्हीं पञ्चभूतोंका उद्धार करते हो । केवल उद्धार करनेवाले ही नहीं, तुम्हीं सबके जन्मदाता भी हो । ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तुम्हारे ही स्वरूप हैं । बड़े-बड़े योगीश्वर तुम्हारा ही ध्यान करते हैं । बड़े-बड़े उपासक तुम्हारी ही उपासना करते हैं । तुम्हीं यज्ञोंका यज्ञपुरुष हो । भगवन् ! तुम्हारे वास्तविक स्वरूपको कोई नहीं जानता । दैवी प्रकृतिके लोग तुम्हारे अवतारोंकी ही उपासना करते हैं । तुम्हारी आराधनाके बिना आत्म-साक्षात्कार, ब्रह्मकी अनुभूति अथवा मुक्ति नहीं हो सकती । जो कुछ मनसे सोचा जा सकता है, नेत्र-वाणी आदि इन्द्रियोंके द्वारा जो कुछ देखा जा सकता है और बुद्धिके द्वारा जितने पदार्थोंका बोध किया जा सकता है, वह सब तुम्हीं हो । जो कुछ मैंने कहा है वह तुम हो । जो कुछ नहीं कहा है, वह भी तुम्हीं हो । आत्मा-अनात्मा सब तुम्हारे ही रूप हैं । भगवन् ! अब मुझे एक क्षणके लिये भी मत छोड़िये । मुझे अपने साथ ले चलिये ।'

प्रार्थना करते-करते पृथ्वी उनके चरणोंपर गिर पड़ी और प्रेमगद्गद होकर रोने लगी । भगवान् वराहने बड़े प्रेमसे उसे अपने बायें दाँतपर उठा लिया । उस समय बाष्कलि आदि दैत्योंने बाधा डालनी चाही, पर भगवान्के गदाप्रहारसे भयभीत होकर उनमेंसे कई भग गये और शेष दैत्योंने भगवान्के हाथों मृत्यु प्राप्त करके दुर्लभ गति प्राप्त की । जब भगवान् अपने दाँतोंपर पृथ्वीको लेकर वेगसे चलने लगे, तब समुद्रका पानी उछल-उछलकर फिर महर्लोक-तक जाने लगा । उनके श्वासके वेगसे जो जलधाराएँ उठती थीं, उनसे जनलोकके निवासी तो सराबोर हो गये । उस समय सनक-सनन्दनादि वहाँ उपस्थित थे । उन्होंने बड़े प्रेमसे भगवान्की स्तुति की । महावराह भगवान् जब अपने वेदमय शरीरको बड़ी स्फूर्तिके साथ कँपाते हुए चलने लगे, तब उनके रोमकूपोंमें स्थित ऋषिगण बड़े प्रेमसे उनकी स्तुति करने लगे । उन्होंने यज्ञरूप वराह भगवान्का दर्शन करते हुए कहा—'भगवन् ! आप सबके कारण हैं । सबके मूल स्वरूप हैं और आप ही यज्ञपुरुष हैं । आपके चरणोंमें चारों वेद हैं । [illegible] हैं, यज्ञकी अग्नि आपकी जीभ है, रात-दिन आपके नेत्र हैं । आपका मुख [illegible] है, [illegible] है, आपके [illegible] हैं । [illegible] दाढ़ोंपर रक्खी हुई पृथ्वी [illegible] है, [illegible] गजेन्द्रके बड़े दाँतपर [illegible] हो । आप ही एक [illegible] हैं । [illegible] और कोई नहीं है । [illegible] को देखनेवाले [illegible] हैं । [illegible] सब कुछ आनन्द ही है, सब कुछ [illegible] ही है [illegible] कुछ आपका [illegible] ही है । भगवन् ! [illegible] करके जीवोंका महान् कल्याण कर रहे हैं । [illegible] जय हो ! आपकी जय हो ! [illegible] कोटि प्रणाम करते हैं ।'

एक ओर तो [illegible] स्तुति कर रहे थे, दूसरी ओर [illegible] थे । उन्हें जब मालूम हुआ [illegible] करके लौट रहे हैं, तब वे [illegible] तो पहलेसे ही भगवान्को ढूँढ रहा था । [illegible] बतलाया कि भगवान् पृथ्वीको [illegible] हैं, तब वह उसी ओर चल पड़ा ।

नारद भगवान्के [illegible] ऐसा उदाहरण कहीं [illegible] मिल गये हों और उसे भगवान् [illegible] काम है । [illegible] [illegible]

ब्रह्माके निष्कपट और प्रेमभरे वचन सुनकर भगवानने कनखियोंसे स्वीकार किया। भगवान्‌ने बड़े जोरसे एक गदा चलायी; परंतु लगनेके पहले ही हिरण्याक्षने उनकी गदापर अपनी गदासे ऐसा आक्रमण किया कि भगवान्‌की गदा उनके हाथोंसे छूटकर गिर पड़ी। तीनों लोकोंमें हाहाकार मच गया। जिनके संकल्पमात्रसे सारी सृष्टिका संहार हो सकता है, उन्हीं भगवान्‌के हाथोंसे छूटकर गदा गिर जाय, यह बड़ी अद्भुत बात है। परंतु कभी-कभी भगवान् अपने भक्तोंका बल दिखानेके लिये ऐसी परिस्थिति भी पैदा कर दिया करते हैं। हिरण्याक्ष उनका भक्त था न! हिरण्याक्षका बल भगवान्‌का ही बल है।

यद्यपि इस समय हिरण्याक्षको अवसर मिल गया था। चाहता तो भगवान्‌पर दुबारा आक्रमण कर देता; परंतु युद्धके धर्मकी दृष्टिसे और भगवान्‌को क्रोधित करनेकी इच्छासे उसने ऐसा नहीं किया। भगवान्‌ने मन-ही-मन उसकी प्रशंसा की और चक्रका स्मरण किया। उनके हाथमें चक्र चक्कर लगा रहा था और आकाशमें देवतालोग उसको देख-देखकर प्रसन्न होते हुए भगवान्‌से प्रार्थना कर रहे थे कि शीघ्र-से-शीघ्र इसका अन्त कर दें। हाथमें चक्र घुमाते देखकर अपने दाँत पीसकर हिरण्याक्ष दौड़ा और 'अब मर गये' यह कहता हुआ उसने भगवान्‌पर आक्रमण किया। भगवान्‌ने बायें पैरसे ऐसी ठोकर लगायी कि उसकी गदा गिर पड़ी। भगवान् अपने हाथोंसे उसकी गदा उठाकर देने लगे; परंतु उसने लिया नहीं।

अब उसने त्रिशूल उठाया; परंतु आक्रमण करनेके पहले ही भगवान्‌ने अपने चक्रसे उसको खण्ड-खण्ड कर दिया। इसके बाद हिरण्याक्ष अन्तर्धान होकर माया-युद्ध करने लगा। सारे संसारमें तहलका मच गया। प्रजाको ऐसा मालूम हुआ कि अभी प्रलय हो जायगा। जोरसे आँधी चलने लगी। धूलसे दिशाएँ भर गयीं, पत्थरोंकी वर्षा होने लगी, आकाशमें भयंकर गर्जना होने लगी और खून, पीब, हड्डियोंकी वर्षा होने लगी। बड़े-बड़े पहाड़ उड़ते हुए शस्त्रोंकी वर्षा करते हुए दीखने लगे। डाकिनी शाकिनी आदि बाल खोलकर नंगे सिर हाथोंमें खप्पर लिये घूमने लगीं। सभी भयभीत हो गये।

भगवान्‌ने सुदर्शन चक्रका प्रयोग किया। क्षणभरमें ही सारी माया नष्ट हो गयी। तब [illegible] बलपूर्वक लिपट जाना चाहता था कि [illegible] कानमें एक [illegible] मुँहसे खून गिरने लगा [illegible] पड़ा। उस समय [illegible] [illegible] करने लगा था।

हिरण्याक्षकी मृत्यु होनेसे [illegible] मङ्गल छा गया। ऋषि, मुनि, देवता [illegible] पूजा करने लगे। [illegible] नाचने लगीं, सबने भगवान्‌की [illegible] पूर्वक स्तवन किया।

विभिन्न पुराणोंमें हिरण्याक्षकी कथा [illegible] आती है। [illegible] सम्भव घट सकती है। [illegible] किसी समय पर्वतोंके [illegible] उनके पाँव [illegible] पातालमें चले गये। [illegible] थी। पर्वतोंने असुरोंसे [illegible] भी तुमपर [illegible] शासनमें रहते हो। [illegible] है।' पर्वतोंकी बात सुनकर [illegible] उन्होंने हिरण्याक्षको [illegible] आक्रमण कर दिया। [illegible] छोड़कर भग गये। [illegible] प्रतीकार करनेके लिये [illegible] समय चक्रधारी भगवान् [illegible] हिरण्याक्षके [illegible] करके देवताओंको [illegible]।

किसी किसी पुराणमें [illegible]

बुद्धिसे उसे सोच ही सकती हो। जहाँतक सोचनेका सम्बन्ध है, संसार ही है। मैं विषय नहीं हूँ कि मुझे देखा जा सके। सारे विषयोंको सोच डालो। उनका निषेध कर दो तो निषेध करनेवालेके मूलमें मेरा पता चल सकता है। यह भी एक संकेतमात्र है। वास्तवमें मेरा पता मैं ही हूँ।

'जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति; स्थूल, सूक्ष्म, कारण; विश्व, तैजस, प्राज्ञ; विराट्, सूत्रात्मा, हिरण्यगर्भ; अकार, उकार, मकार आदि-आदि जितने भी प्रकृति और प्रकृतिके कार्य हैं, उनके परे बहुत परे मैं अनन्त ज्ञान और अनन्त आनन्दके रूपमें स्थित हूँ। यह भी तुम्हें समझानेके लिये कह रहा हूँ, मेरा यह वास्तविक वर्णन नहीं है। इस रूपमें तुम और मैं भिन्न-भिन्न नहीं, केवल मैं ही मैं हूँ। यह जगत् भी मुझसे भिन्न नहीं और इसके संचालक भी मुझसे भिन्न नहीं।

'यह जो विराट्रूप तुमने देखा है, मेरा स्थूल रूप है। मैं विश्वके रूपमें प्रकट हूँ। आकाश मेरे शरीरका अवकाश है। वायु मेरी प्राणवायु है, चन्द्रमा-सूर्य मेरी आँखें हैं, अग्नि मेरी जाठराग्नि है, जल मेरे शरीरके रस हैं, नदियाँ नसें हैं,वृक्ष रोम हैं, पर्वत हड्डियाँ हैं और ये प्राणी मेरे शरीरके कीटाणु हैं। स्थावर, जंगम सम्पूर्ण पदार्थ मेरे शरीरके अंदर हैं। जैसे जीवका एक छोटा-सा शरीर होता है, वैसे ही यह विश्व-ब्रह्माण्ड मेरा शरीर है। जैसे जीवके शरीरमें मन, बुद्धि आदि होते हैं, वैसे ही मेरे शरीरमें ब्रह्मा, विष्णु आदि हैं। मैं सबका संचालक हूँ। वे मेरे एकरूप हैं।

'मैं इस जगत्से परे हूँ, इसका यह अर्थ है कि जो लोग इस स्थूल जगत्में ही लगे हैं, जो मुझे नहीं जानते, मुझे भूले हुए हैं, उन्हें इस जगत्से परे रहनेवाले मुझतक पहुँचनेकी अभिलाषा हो। वे स्थूलमें ही न बँधे रहें। सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म और उससे भी परे पहुँच सकें। मैं विषयोंसे और जगत्से परे हूँ, किंतु विषय और जगत् मुझसे परे नहीं हैं। मैं उनके भीतर ही नहीं हूँ, बाहर भी हूँ; परंतु वे मेरे बाहर नहीं हैं।

मैं उनसे पृथक् हूँ, [illegible] इसीसे द्वैत है, परन्तु मेरी दृष्टिसे द्वैत नहीं है [illegible] अनिर्वचनीय हूँ। [illegible]

भगवान्‌ने [illegible] प्रश्न करनी [illegible] वे प्रश्नोत्तर ही [illegible]

जब बहुत [illegible] [illegible] जिनके अवयवोंमें [illegible] भगवान् दर्शनके रूपमें [illegible]

विभिन्न [illegible] [illegible] है। इनका बहुत [illegible] चर्चा भी [illegible] देखना है। [illegible]

[illegible]

भगवान् [illegible] धारण किये हुए हैं, [illegible] पृथ्वी देखते हुए हैं, [illegible] हैं और वे अवतार [illegible] भगवान् [illegible] रूप धारण है, [illegible]

श्रीनृसिंहावतार-कथा

(१)

जहाँ भगवान्‌की सन्निधि है, सभी वस्तुएँ भगवान्‌की हैं और हम स्वयं भगवान्‌के हैं, वहाँ सुख-ही-सुख है। वहाँ दुःखकी पहुँच हो ही नहीं सकती। परंतु जहाँ [illegible] यह मैं हूँ, यह मेरा है—इस प्रकारकी मोह [illegible] है, वहाँ दुःख-ही-दुःख है। दुःखका कारण [illegible] है। स्थूल जगत्से सम्बन्ध होनेसे [illegible]

[illegible]

[illegible] हैं।

[illegible] मैं हूँ, यह मेरा [illegible] दुर्दान्त [illegible] और [illegible] अधर्मियोंका [illegible] है।

[illegible] है, [illegible] भगवान्‌के [illegible] था। उन्होंने [illegible] दिया, उसकी [illegible] हिरण्यकशिपु और समस्त परिवार [illegible] भरा हुआ था। कोई [illegible] किसीको किसी भी [illegible] लिये मिलके [illegible] थी। एक [illegible] दुःख-शोकमें व्याकुल हो गया [illegible] करनेमें बड़े भारी [illegible] अवज्ञा रहती थी।

हिरण्यकशिपुके हृदयमें द्वेष और क्रोधकी आग धधक [illegible] दिया। उसने कहा—'मेरे [illegible] भाँति नहीं [illegible] पश्चात् वीर [illegible] ऐसा ही किया जायगा।' [illegible] कहा—'वीर दैत्यो! शत्रुओंने [illegible] नीचा दिखाया है, [illegible] अभी [illegible] शत्रु [illegible] डाला [illegible] परंतु यह [illegible] कठिन है; किंतु उसको [illegible] हिरण्यकशिपु [illegible] और उनको नष्ट कर दो। [illegible] आदि हों, [illegible] नष्ट-भ्रष्ट कर दो; [illegible] और मेरे उस [illegible] नष्ट हो [illegible]।'

[illegible] हिरण्यकशिपुकी [illegible] ढूँढ़-ढूँढ़ [illegible] देवताओंने स्वर्ग [illegible] हो गया, [illegible] अबतक मनमें समझा-बुझाकर इस बातपर अनुमति ले कर लिया था कि वह अपने शत्रुओं और उनके अनुयायियोंकी दुर्दशा देखनेके लिये जीवित रहे। परंतु अभी दिति और भानुमती दोनोंका ही शोक मिटा नहीं था। वे दोनो विषादमें ही अपना समय व्यतीत करती थीं।

हिरण्यकशिपुने उन्हें समझाया और खूब समझाया। असुरभावके लोग ऐसे ही अवसरोंपर वेदान्तका उपयोग किया करते हैं। उनका अपना जीवन तो घोर भौतिकतासे भरा हुआ होता है, परंतु दूसरोंके लिये वे अपनी विद्या-बुद्धिका बहुत अधिक उपयोग करते हैं। हिरण्यकशिपुने कहा—'माँ और बहू! मेरे वीर भाईके लिये इतना शोक करनेकी आवश्यकता नहीं है। बड़े-बड़े वीर जैसी अवस्थामें मरनेकी कामना किया करते हैं, वैसी ही मृत्यु उन्हें प्राप्त हुई है। यह शरीर अनित्य है, किसीका कोई साथी नहीं है। जैसे चौराहेके पौसरेपर चारों ओरसे लोग आकर इकट्ठे हो जाते हैं, घड़ी दो-घड़ी बात-चीत कर ली, फिर अपना रास्ता ले लेते हैं, वैसे ही अपने कर्मोंके अनुसार लोग कुछ दिनों-तक पिता-पुत्र-पति आदिके रूपमें रह लेते हैं और समय आनेपर चले जाते हैं। जैसे पानीकी चञ्चलतासे उसमें पड़ी हुई वृक्षकी छाया भी चञ्चल मालूम होती है, जैसे आँखोंकी चञ्चलतासे सारी दुनिया चञ्चल दीखती है; वैसे ही शरीरकी चञ्चलतासे आत्मा भी चञ्चल-सी जान पड़ती है। मनके सुख-दुःख व्यर्थ ही आत्मापर डाल दिये जाते हैं और इसीसे लोगों-को शोक मोहके पंजेमें आना पड़ता है। वास्तवमें आत्मा शुद्ध है, जन्म मरणसे रहित है।'

हिरण्यकशिपुने समझानेके सिलसिलेमें एक दृष्टान्त देते हुए कहा—'माँ! थोड़े दिनोंकी बात है, उशीनर देशमें सुयज्ञ नामका एक बड़ा यशस्वी राजा था, युद्धमें शत्रुओंके हाथों उसकी मौत हो गयी, उसके भाई-बन्धु उसे घेरकर खड़े हो गये, कलका राजा आज जमीनमें पड़ा हुआ है, उसका शरीर खूनसे लथपथ है, बाल बिखरे हुए हैं, आँखें उलट गयी हैं, दाँतोंसे ओठ दबा हुआ है, हाथ कट गये हैं, उसकी स्त्रियाँ, उसकी माताएँ छाती पीट-पीटकर 'हा नाथ!' 'हा बेटा!' कहती हुई रो रही हैं। उनके विलाप और विषादकी सीमा नहीं है। वे कह रही थीं—'अहा! तुम बड़े निठुर हो। हमारे प्राणप्रियस्वामीको इस हालतमें पहुँचा दिया। हमारा बेटा आज जमीनपर पड़ा हुआ है। राजन्! तुम तो हमसे बड़ा प्रेम करते थे, आज एकाएक छोड़कर कहाँ चले गये? आओ,

हमसे बोलो, अपने हाथोंसे हमारे आँसू पोंछो ।'

"सूर्यास्त हो गया, परंतु वे सब मुरदेके शवके पास छाती पीट-पीटकर रोते ही रहे । अब यमराजसे नहीं देखा गया, वे एक पाँच वर्षके बालकका वेष धारण करके उनके पास आये । उन्होंने कहा—'अरे ! तुमलोगोंकी अवस्था तो बहुत बड़ी है, परंतु तुम्हारी बुद्धि मुझ बालक-जितनी भी नहीं है । रोज-रोज देखते हो, सभी तो मर रहे हैं, अमर कौन है ! फिर इतना रोने-धोनेकी क्या जरूरत है ! देखो, मैं नन्हा-सा बालक हूँ, मेरे माँ-बापने इस घोर जंगलमें मुझे छोड़ दिया है । शेर, भेड़िया आदि मेरी ओर देखतक नहीं सकते, क्योंकि जो गर्भमें रक्षा करता है, वह इस समय भी रक्षा करनेके लिये मौजूद है । भाई ! तुमलोग क्यों इतना रोते हो ! हम सब तो किसीके खिलौने हैं । जब मौज होती है, बना देता है और चाहे जब बिगाड़कर सब बराबर कर देता है । अपने कर्मके अनुसार सभी चक्कर काट रहे हैं, इन्हें कोई रोक नहीं सकता । जो होनेवाला है, वह होकर ही रहेगा । देखो, अभी कलकी बात है, मैंने अपनी आँखों देखा था, चिड़ियोंकी एक जोड़ी बड़े सुन्दर पेड़पर घोंसला बनाकर रहती थी । उनमें आपसमें बड़ा प्रेम था । पत्नीके साथ चरते-चुगते थे । एक बहेलिया आया । उसने अपना जाल फैला दिया । उस समय पति था नहीं, पत्नी लालचमें पड़कर जालमें फँस गयी । जब पति आया और अपनी पत्नीको जालमें पड़ी देखा तो शोकाकुल होकर रोने लगा । तबतक बहेलियेने उसे भी अपने काबूमें कर लिया ।'

"उस बालकने अपनी ओर उन रोनेवालोंको आकर्षित करते हुए कहा—'हम सब कालके जालमें फँसे ही हुए हैं । न जाने कब हमें चबा जायगा । अपनी अपनी चिन्ता करें । हम मरनेके पहिले सावधान हो जायँ । चलो, क्रिया-कर्म करो । अब शोक करनेका समय नहीं है ।"

हिरण्यकशिपुने अपनी माँ दिति और बहू भानुमतीको सम्बोधित करते हुए कहा—'उस बालककी बात सुनकर सब लोगोंने शोक छोड़ दिया और वे क्रिया-कर्ममें लग गये । इस जगत्की यही गति है । जो हो गया, सो हो गया । अब शोक करनेसे मेरा भाई लौट नहीं सकता ।'

हिरण्यकशिपुकी बात सुनकर उन्हें कुछ ढाढ़स हुआ । वे घरके काम-काजमें धुल-धुल [illegible] देने लगीं । कहते हैं कि भानुमतीने किसी देवताका कटा हुआ सिर देखे बिना भोजन नहीं करती थी और क्रूर दैत्य हिरण्यकशिपु इसका

प्रबन्ध कर रखा था । [illegible] दैत्य उनकी [illegible] भी [illegible] भी न था; परन्तु हिरण्यकशिपुके [illegible] भय मनमें हो बना रहता था । [illegible] तो मुझसे भी [illegible] आक्रमण कर दे । [illegible]

एक दिन हिरण्यकशिपु [illegible] तब पता उसने [illegible] हुई कि तपस्या करनी चाहिये । [illegible] प्राप्त की जाय कि [illegible] और हम अमर हो जायँ । [illegible] तपस्या करनेके लिये [illegible] गर्भिणी थी ।

किसी किसी पुराणमें [illegible] हिरण्यकशिपु तपस्या करने [illegible] ऋषि पर्वत देवता [illegible] 'नमो नारायणाय' [illegible] मनन करनेके पश्चात् [illegible] उठाकर उन्हें मारने दौड़ा । [illegible] विघ्न पड़ गया । हिरण्यकशिपु [illegible] पत्नीसे घर [illegible] मन्त्रका उच्चारण [illegible] मन्त्रके प्रभावसे प्रह्लाद [illegible]

पत्नीकी प्रेरणासे हिरण्यकशिपु [illegible]

(३)

देखा देखा [illegible] है कि [illegible] बड़े [illegible] देवताओं [illegible] देखी है । [illegible] [illegible] है कि [illegible] दूर [illegible] है । [illegible] हैं । [illegible]

हिरण्यकशिपु [illegible]

[illegible]

... भी उसके घरमें चोरी करके बदला लेना चाहिये ! यह ... अनुचित है । माना कि उन्होंने तुम्हारे ... की, परंतु तुम्हें तो ऐसा नहीं करना चाहिये। तुम ..., ... क्यों हो रहे हो !'

नारदकी फटकार सुनकर देवताओंका होश कुछ ठिकाने आया । वे देवर्षिके प्रभावसे अनभिज्ञ नहीं थे और वास्तवमें देवर्षिके दर्शन, वार्तालाप और सान्निध्यसे ही देवताओंके मनमें परिवर्तन हो गया था । सत्सङ्गका प्रभाव ऐसा ही होता है । जब देवताओंने आँखें नीची कर लीं, उनसे कुछ बोला न गया, नये अपराधीकी यह दशा होती ही है; तब नारदने पुनः कहा—'अच्छा, जो हो गया, अच्छा ही हुआ । भगवान्‌की ऐसी ही इच्छा थी । इसके लिये अब विशेष करनेकी जरूरत नहीं है । इस कयाधूको तुमलोग छोड़ दो । तुम्हें पता नहीं, इसके गर्भमें परम भागवत भगवद्भक्त प्रह्लाद हैं । यदि कयाधूको किसी प्रकारका कष्ट हुआ तो अनर्थ हो जायगा । भगवान् सब कुछ सह लेते हैं, परंतु अपने भक्तका अपमान नहीं सह सकते । इससे तुम्हें कोई भय नहीं है । तुम्हारा कल्याण होगा ।'

नारदकी बात सुनकर देवताओंने प्रसन्नताके साथ कयाधूको छोड़ दिया । वे भगवान्‌का परम अनुग्रह मानते हुए स्वर्गमें चले गये । उन्होंने सोचा कि आज भगवान्‌ने कितनी कृपा की है कि नारदको भेजकर हमारे अंदर बढ़ते हुए आसुर भावको दबा दिया है । यदि वे ऐसा न करते तो आज एक भक्तका अपमान हो जाता और हम फिर भगवान्‌के सामने जाने लायक नहीं रहते ! आज हमारी मनोवृत्तियाँ कैसी हो गयी थीं ! दैत्योंकी शत्रुताका चिन्तन करते-करते हमलोग भी दैत्यभावसे पूर्ण हो गये थे। भगवान्‌ने कृपा करके हमें बचा लिया । वे भगवान्‌की कृपाका स्मरण करके तन्मय हो गये । आखिर देवता ही थे न !

इधर देवर्षि नारदने कयाधूको ले जाकर एक सुन्दर आश्रममें ठहरा दिया । वह वहाँके पवित्र वायुमण्डलमें रहकर अपना समय प्रसन्नतापूर्वक बिताने लगी । जंगलके हरे-भरे वृक्ष, उनके सुन्दर-सुन्दर पुष्पोंको देखनेमें उसका मन खूब लगता था । नदीके किनारे बैठकर उसकी हर हर ध्वनि सुननेमें और तरंगोंको गिननेमें वह तन्मय हो जाती थी । पवित्र वायु, पवित्र जल, पवित्र आश्रम और पवित्र व्यक्तियोंके संसर्गसे उसके मनमें भी पवित्रताका संचार हो गया । वह सत्सङ्गके अवसरपर मुनियोंकी बात बड़े ध्यानसे सुनती

थी । देवर्षि नारद प्रायः आ-आकर उसे उपदेश दे जाया करते थे ।

एक दिन देवर्षि नारदने कहा—'बेटी ! तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध है । तुम्हारे हृदयमें भगवद्भक्ति है । भगवान्‌की लीला सुननेमें तुम्हारा मन लगता है, यह बड़े सौभाग्यकी बात है । तुम अपने गर्भस्थ बालककी चिन्ता मत करो । वह भगवान्‌का अपना पार्षद है । उसे कोई कष्ट नहीं हो सकता । जब तुम चाहोगी तभी उसका जन्म होगा । भगवान्‌की कृपासे तुम्हें इच्छाप्रसवकी शक्ति होगी ।

'बेटी ! संसारमें चिन्ता करनेकी तो कोई बात ही नहीं । हम सब परम पिता परमात्मासे सम्बद्ध हैं । उनके अंश हैं और इतना ही नहीं, वास्तवमें हम उनके स्वरूप हैं । जन्म-मरण, संयोग वियोग आदि शरीरके ही होते हैं, जिनसे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है । सारे दुःख शोक इस शरीरसे सम्बन्ध मान लेनेके कारण ही हैं । अपने वास्तविक स्वरूपका विचार करके इन झूठे सम्बन्धोंको छोड़ देना चाहिये । ये सम्बन्ध ही झूठे हों, केवल इतनी ही बात नहीं है, बल्कि जिन पदार्थोंसे सम्बन्ध है, वे भी झूठे हैं । ज्ञानदृष्टिसे इस बातको जानकर इनके हानि-लाभ, सत्यता-असत्यता आदिका विचार न करके परमात्माके ही चिन्तनमें मग्न रहना चाहिये ।

'यों तो भगवान्‌को प्राप्त करनेके बहुत से उपाय हैं और सब अच्छे हैं परंतु यह उपाय स्वयं भगवान्‌ने बताया है । कि 'जिन साधनोंसे मुझ आत्म-स्वरूप भगवान्‌में प्रेम हो, वही सर्वोत्तम उपाय है ।' गुरुजनोंकी सेवा, दुःखी प्राणियोंपर दया, जो कुछ अपने पास हो उसका भगवान्‌के चरणोंमें समर्पण, सत्सङ्गति, भगवद्विग्रहकी पूजा, उनकी कथामें श्रद्धा, उनके गुण-कर्मोंका कीर्तन, उनके चरणकमलोंका ध्यान और उनकी स्मृति दिलानेवाले तीर्थ स्थान, मन्दिर आदिके दर्शनसे उनके चरणोंमें अनन्य प्रेम प्राप्त होता है ।'

नारदने कयाधूको सम्बोधन करते हुए फिर कहा—'बेटी ! इस जीवनका एकमात्र लक्ष्य भगवत्प्रेम [illegible] है । जब उनकी मधुर लीला, दिव्य नाम और [illegible] स्वरूपके वर्णनको सुनकर इतना आनन्द [illegible] है कि [illegible] सुधि नहीं रहती, रोमाञ्च हो [illegible] बहने लगते हैं और [illegible] रोने, गाने, चिल्लाने [illegible] किसी भूतसे ही पकड़ [illegible] है, कभी खिलखिला है, कभी [illegible]

[illegible]

'बेटी ! [illegible] उठाना पड़ता ! [illegible] पड़ता । वे हमसे [illegible] उनसे [illegible] होगी । [illegible] दोनों ही [illegible] और महीनों [illegible] भजन [illegible] भजन करो, [illegible] परन्तु है ।'

नारदजी [illegible] हो गया और [illegible] तदनुसार आचरण करने लगी ।

[illegible]

हिरण्यकशिपुने कहा—'अच्छा, यदि आप अमर नहीं कर सकते तो मुझे यही वर दीजिये कि आपकी बनायी हुई सृष्टिका कोई व्यक्ति मुझे मार न सके। बाहर या भीतर, दिन या रातमें मेरी मौत न हो। आकाश या भूमिमें, मनुष्य, पशु, देवता, दैत्य, सर्प, प्राणी, अप्राणी अथवा किसी शस्त्रसे मेरी मृत्यु न हो। युद्धमें मेरे सामने कोई ठहर न सके। सम्पूर्ण सृष्टिपर मेरा एकाधिपत्य हो और मेरा महत्त्व किसीसे कम न हो।'

ब्रह्मा उसकी तपस्यासे प्रसन्न थे और यह बात भी थी कि उसे वर देनेके सिवा और कोई चारा भी न था। उसकी तपस्यासे तीनों लोक जल रहे थे, वर न देते तो उनकी क्या दशा होती, इसका कुछ कुछ अनुमान किया जा सकता है। अन्ततः भगवान्‌के विधानकी मङ्गलमयतापर विश्वास रखते हुए ब्रह्माने कहा—'दितिनन्दन! यद्यपि तुम्हारे माँगे हुए वर दुर्लभ हैं, तथापि तुम्हारी घोर तपस्यासे प्रसन्न होकर मैं उन्हें दिये देता हूँ। तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण हो।'

हिरण्यकशिपुने विधिपूर्वक ब्रह्माकी पूजा की और स्तुति की। ब्रह्मा अपने मानस पुत्रोंके साथ ब्रह्मलोकको गये। हिरण्यकशिपुने अपनी राजधानी हिरण्यपुरीकी यात्रा की। उसे देवताओंने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। केवल कुछ खँडहर बचे हुए थे। उसके आनेपर समस्त दैत्य-दानव, उसके मन्त्री, पुत्र आदि सब इकट्ठे हुए। राजधानीका पुनः निर्माण हुआ। शस्त्रास्त्र एकत्रित हुए। देवताओंके अत्याचार देख-सुनकर हिरण्यकशिपु जल भुन गया। उसकी आँखें लाल-लाल हो गयीं, चेहरा तमतमा उठा। उनसे बदला लेनेके भावसे उसने स्वर्गपर चढ़ाई कर दी। देवताओंको स्वर्गसे मार भगाया, लोकपाल दिक्पालोंको अपने वशमें कर लिया, त्रिलोकी उसके वशमें हो गयी। ऐसा कोई नहीं था, जो उसके सामने युद्धमें ठहर सके। उसने अपनी राजधानी स्वर्गमें बनायी। वह इन्द्रके महलमें रहता, नन्दनवनका उपभोग करता और देवताओंसे अपनी सेवा कराता। गन्धर्व, विद्याधर उसकी स्तुति करते, अप्सराएँ नाचकर उसे रिझातीं, विश्वावसु, तुम्बरु आदि उसे गाना सुनाते और संसारमें जो यज्ञ होते, उनका भाग वह स्वयं लेता। पृथ्वी बिना जोते-बोये अन्न पैदा कर देती, समुद्र रत्न दे देते, छहों ऋतुएँ एक ही साथ उसकी सेवा करती रहतीं। सभी लताएँ, वृक्ष आदि सदा ही फलते फूलते। कहनेका तात्पर्य यह कि चर-अचर सम्पूर्ण जगत्‌पर उसका एकाधिपत्य था।

उसके [illegible] पड़ता, [illegible] पड़ता और [illegible] देवताओंपर पड़कर पड़ती। [illegible] मनुष्य, [illegible] सब [illegible] थे। [illegible] था। [illegible]

उसे [illegible] कि [illegible] दंड कर दिया गया, [illegible] लगे। [illegible] लटकाये जाने लगे। [illegible] नाम [illegible] यदि कोई देवता [illegible] लिया जाता। [illegible] संसारमें हाहाकार मच गया!

देवताओंने विष्णु भगवान्‌की [illegible] मिला कि [illegible] हुआ है। [illegible] यह [illegible] कर सकेगा। [illegible] उसकी पुकारपर मैं प्रकट [illegible] तुमलोग घबराओ मत। [illegible]

अस्तु, देवर्षि नारद [illegible] पहुँचा गये थे।

(४)

[illegible]

सोचते हैं कि अभी तो सारा जीवन पड़ा हुआ है, कुछ खेल-खा लें, तब भजन करेंगे।' प्रह्लादने कहा—'ऐसा सोचना ठीक नहीं। पता नहीं, मृत्यु कब आ जाय। फिर ऐसी बुद्धि रहे, न रहे; समय किसीके अधीन थोड़े ही है। बचपनमें ही भजन करना चाहिये।'

जब-जब गुरुजी वहाँसे टल जाते, तब-तब सब विद्यार्थी इकट्ठे होकर भगवद्भक्तिकी चर्चा करते। धीरे-धीरे प्रह्लादके अनुयायियोंकी संख्या बढ़ने लगी। गुप्तरूपसे सभी भजन करने लगे। एक-दो लड़कोंने जाकर गुरुजीसे सारा हाल कह सुनाया। उन्हें क्रोध तो बहुत आया; परंतु प्रत्यक्षरूपसे उन्होंने प्रह्लादकी भर्त्सना नहीं की। उन्हें एकान्तमें बुलाकर कहा—'प्रह्लाद! क्या तुम सचमुच यह अनर्थ कर रहे हो? तुम्हें गुरुजनोंकी आज्ञा माननी चाहिये, पिताको प्रसन्न रखना चाहिये, कुल-धर्मकी रीति-रिवाजको निभाना चाहिये, यह सब क्या कर रहे हो! क्या हमने जो तुम्हारी शिकायत सुनी है, वह झूठ तो नहीं है?'

प्रह्लादने कहा—'गुरुदेव! आपने जो कुछ कहा, सब मेरे हितके लिये कहा और वह सब ठीक है। आपने जो कुछ सुना है, वह झूठ नहीं है। जिसने आपसे कहा है, वह मेरा बड़ा हितैषी है; क्योंकि आपकी पाठशालामें, आपके विचारके विरुद्ध कोई बात कहकर मैं अपराध ही कर रहा था और उसने आपसे कहकर मुझे निरपराध कर दिया। कुलधर्म भी ठीक है, पिताकी आज्ञा भी ठीक है और गुरुजनोंके उपदेश भी हमारे भलेके लिये ही हैं, परंतु गुरुदेव! मेरा मन मेरे हाथमें नहीं है। मैं दूसरी कोई बात सोचना चाहता हूँ तो मेरे सामने एक साँवरा-सलोना सुन्दर-सा बालक आकर बाँसुरी बजाने लगता है, नाच-नाचकर प्रेमभरी चितवनसे मेरी ओर देखता है, इशारेसे मुझे अपने पास बुलाता है, मैं उसकी मन्द मुसकान देखकर सब कुछ भूल जाता हूँ—विह्वलित हो जाता हूँ। गुरुदेव! दूसरी बात मुझे सुहाती ही नहीं।'

कहते-कहते प्रह्लाद बेसुध हो गये। उनका शरीर पुलकित हो गया, शरीरसे आनन्दकी ज्योति निकलने लगी। दोनों पुरोहित अवाक् हो गये। उन्होंने सोचा कि अब डाँट डपटसे काम नहीं चल सकता। इसे किसी ऐसे पचड़ेमें लगाया जाय कि इसका ध्यान हो उधर न जाय। प्रह्लादके होशमें आनेपर राजनीतिक अध्ययन प्रारम्भ हुआ। [illegible] राजनीति विस्तारके साथ पढ़ायी गयी, [illegible]

[illegible] रोग [illegible] व्यवहार [illegible] चाहिये, [illegible] गयी। प्रह्लादने बड़े [illegible] और वे गुरुपुत्रोंकी [illegible]

इस बार जब प्रह्लादको गुरुपुत्र [illegible] तब वे बहुत प्रसन्न थे। उनकी [illegible] को भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने [illegible] पास बैठाया और उनके [illegible] बेटा! तुम इस बार [illegible] मुझे उसका सार सुनाओ।' प्रह्लादने कहा—[illegible] जनोंने बड़े प्रेमसे मुझे [illegible] विद्यार्थीकी भाँति [illegible] किया, परंतु मुझे उनकी [illegible] व्यवहार करना चाहिये, [illegible] चाहिये, ये बातें तभी ठीक [illegible] हो। ये भेद अस्वाभाविक हैं। [illegible] हैं। जब सब रूपोंमें हमारे प्यारे भगवान् [illegible] तब शत्रु मित्रका भेद कैसा! [illegible] कैसे! इसलिये पिताजी! [illegible] नीतियोंका सार यह है कि [illegible] चाहिये।'

हिरण्यकशिपु क्रोध-[illegible] हो गया [illegible] कि 'अब तो अनर्थ हो गया। [illegible] लड़केका रहना ही [illegible] परंतु अपने लड़के हो, सम्भव है [illegible] तुम्हें देखते [illegible]

उसने प्रह्लादको [illegible]

(६)

[illegible]

रसोइयोंको विष देनेकी आज्ञा दी। प्रह्लादको बड़ा भयंकर हालाहल विष दिया गया। भगवान्‌के नामका उच्चारण करके प्रह्लादने विषके साथ सारा अन्न खा लिया और बिना किसी विघ्न-बाधाके वह सब पच भी गया। हिरण्यकशिपुने आज्ञा दी—'पुरोहितो! अब इसकी मृत्युमें विलम्ब नहीं होना चाहिये। इसको मारनेके लिये कृत्या उत्पन्न करो।' दैत्यराजकी यह आज्ञा पाकर दोनों पुरोहित प्रह्लादके पास गये। उन्होंने प्रह्लादकी प्रशंसा करते हुए कहा—'आयुष्मन्! तुम ब्रह्माके वंशमें दैत्यराज हिरण्यकशिपुके पुत्र हो। तुम्हें विष्णुकी क्या आवश्यकता है। जैसे तुम्हारे पिता त्रिलोकीके राजा हैं, वैसे तुम भी होनेवाले हो। छोड़ दो यह बखेड़ा। शत्रुकी स्तुति नहीं करनी चाहिये।' प्रह्लादने बड़ी नम्रताके साथ कहा—'भगवन्! आपकी बात अधिकांश सत्य है। मेरा वंश उत्तम है, मेरे पिता त्रिलोकीके अधिपति हैं, मैं उनका उत्तराधिकारी हूँ, यह सब ठीक है। उनकी बात मुझे माननी भी चाहिये, परंतु मुझे भगवान्‌की क्या आवश्यकता है, आपकी यह बात मेरी समझमें नहीं आती।

'चाहे किसी भी दृष्टिसे देखें, भगवान्‌के बिना यह जीवन असार है। उनके बिना इसका उद्देश्य ही पूरा नहीं होता। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थोंके मूल भगवान्‌के चरणोंकी आराधना है।' कहनेके लिये तो प्रह्लाद बहुत कुछ कह गये; परंतु अन्तमें गुरुजनोंके सामने इतना अधिक बोलनेके लिये क्षमा माँगकर वे चुप हो गये।

पुरोहितोंने कहा—'बालक! तुम बहुत बढ़-बढ़कर बात करते हो, हमने तुम्हें आगमें जलनेसे बचाया और अनेक आपत्तियोंसे तुम्हारी रक्षा की। हम समझते थे कि तुम हमारी बात मानोगे। परंतु तुम एक भी नहीं सुनते। अब तुम्हारी मृत्युके लिये हम कृत्या उत्पन्न करते हैं।' प्रह्लादने कहा—'भगवन्! कौन किसे मारता है! कौन किसे जिलाता है! सब अपने-अपने कर्मोंका फल भोग रहे हैं। न कोई किसीको मार सकता है और न जिला सकता है।' पुरोहितोंको अब क्रोध आ गया। उन्होंने अपने मन्त्रबलसे कृत्या उत्पन्न की। वह भयंकर राक्षसी अपने पैरोंसे पृथ्वीको रौंदती हुई, आगकी लपटके समान चमकती हुई, त्रिशूल लेकर प्रह्लाद पर टूट पड़ी। [illegible] परंतु प्रह्लादकी छातीपर लगते ही वह त्रिशूल [illegible] होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। [illegible]

[illegible] करते हैं, [illegible] नहीं [illegible] है! [illegible] है कि [illegible] उसे न मार सके तो प्रयोग करनेवालेको ही [illegible] है। [illegible] दोनों मर गये।

उन्हें [illegible] देखकर [illegible] आदि! [illegible]!' कहते हुए प्रह्लाद दौड़ पड़े। प्रह्लादने कहा—'भगवन्! आप [illegible] है, [illegible] है, [illegible] मन्त्रकी [illegible] इन ब्राह्मणोंकी [illegible] भगवान्‌को, आपको [illegible] भी भगवदाराधना करता हूँ, उन्हें [illegible] उसी प्रकार इनको भी देखता हूँ तो, ये पुरोहित [illegible] ज्वालासे बच जायँ। [illegible] आक्रमण किया, [illegible] कुचलवाया, उनके प्रति भी यदि हमारे हृदयमें [illegible] एक समान प्रेम रहा हो, यदि [illegible] पाप-बुद्धि न हुई हो तो ये मेरे पुरोहित [illegible]।'

यों कहकर प्रह्लादके [illegible] दोनों पुरोहित [illegible] होकर उठ खड़े हुए और [illegible] प्रह्लादको [illegible] देने लगे। 'बेटा! तू दीर्घायु हो, [illegible] मङ्गल-ही-मङ्गल हो।'

तत्पश्चात् हिरण्यकशिपुके पास [illegible] पुरोहितोंने [illegible] बात कह सुनायी।

(७)

[illegible]

[illegible]

[illegible] है, वह [illegible] कि प्रह्लाद [illegible] कोई [illegible] है। प्रह्लादने [illegible] कारण क्या है ? [illegible] है! अगर यह तुम्हारी [illegible] है।'

प्रह्लादने [illegible] यहाँ [illegible] है [illegible] यह है कि जिनके हृदयमें भगवान् विराजमान रहते हैं, उनके लिये यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। [illegible] वैसे ही [illegible] भी [illegible] कोई कारण ही नहीं है। [illegible] दूसरोंको कष्ट [illegible] है, वह [illegible] भोगना पड़ता है। मैं न किसीका अनिष्ट करता, न चाहता और [illegible] हूँ। [illegible] सम्पूर्ण प्राणियोंके अंदर और बाहर [illegible] भगवान् हैं। मैं भी उनसे पृथक् नहीं हूँ। [illegible] आनन्दमय [illegible] है, तब मुझे शारीरिक, [illegible] ही कैसे कर सकते हैं? [illegible] हूँ। आपके [illegible] हृदयसे प्रार्थना करता हूँ कि [illegible] और पाप दुर्लभ है कि [illegible] हुए जितना उनके ही [illegible] रहे हैं।'

[illegible] हिरण्यकशिपु [illegible] हो [illegible] आज्ञा दी कि 'दैत्यो! अभी अभी इस [illegible] इस दुष्टको [illegible] पटक दो। [illegible] इसकी हड्डी चूर चूर हो जाय, [illegible] देखूँ।' उस आज्ञाके [illegible] प्रह्लाद पटक दिया गया। [illegible] प्रह्लादको [illegible] कि [illegible] है, [illegible] भगवान् है, [illegible] भगवान् है, [illegible] भगवान् है, [illegible] पृथक् किसी

[illegible] अनुसार करनेवाला मैं ही कहाँ हूँ!' प्रह्लाद उस समय भगवद्भावमें स्थित थे। लोगोंकी दृष्टिसे प्रह्लादका शरीर आसमानसे गिरा, परंतु उन्हें जरा भी चोट नहीं आयी। चोट आती कैसे! भगवान्ने दौड़कर ऊपर-ही-ऊपर उन्हें गोदमें उठा लिया था। उनका प्यारा भक्त पहाड़पर कैसे गिर सकता था!

हिरण्यकशिपु घबरा गया! उसने शम्बरासुरको आज्ञा दी कि 'अपनी मायासे इसे नष्ट कर डालो।' शम्बरासुरने पूरी शक्तिसे अपनी मायाका प्रयोग किया। प्रह्लाद भगवत्स्मरणमें मग्न थे। उसने ऐसी हवा पैदा की, जिससे प्रह्लादका शरीर सूख जाय। ऐसी ठंडक पैदा की, जिससे प्रह्लाद ठिठुरकर मर जायँ। ऐसी गरमी पैदा की, जिससे वह जलकर राख हो जायँ। बारी-बारीसे उसने सबका प्रयोग किया, परंतु उसकी एक न चली। भगवान्‌का चक्र सुदर्शन उसकी मायाका नाश कर रहा था। स्वयं मायापति भगवान् प्रह्लादके हृदयमें बैठे हुए हँस-हँसकर उनसे बातें कर रहे थे। तब भला शम्बरासुरकी माया कैसे चलती! उसकी हजारों चालें नष्ट हो गयीं। वह अपना सा मुँह लेकर चला गया।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न उपायोंसे प्रह्लादको मारनेकी चेष्टा की गयी, परंतु किसीमें सफलता नहीं मिली। अन्तमें हिरण्यकशिपुने आज्ञा दी कि 'दैत्यो! इस दुष्ट बालकको नागपाशमें बाँधकर समुद्रमें डाल दो और उसपर हजार-हजार पहाड़ चुन दो। यदि यह जीता भी रहेगा तो कोई आपत्तिकी बात न होगी।' दैत्योंने वैसा ही किया। क्षार समुद्रके भयंकर तरंगोंके बीचमें प्रह्लाद डाल दिये गये और उनपर अनेकों पर्वत चुन दिये गये। वे नागपाशमें बँधे हुए हाथ-पैर न हिला सकनेपर भी भगवान्‌के चिन्तनमें लगे हुए थे। भगवच्चिन्तनके लिये हाथ-पैरकी आवश्यकता भी क्या है! प्रह्लादको बड़ी प्रसन्नता हुई। जगत्‌के जंजालसे छूटकर निरन्तर भगवच्चिन्तनका अवसर तो मिलेगा।

परंतु समुद्र प्रह्लादको अपने अंदर नहीं रख सका। वह अपना किनारा छोड़कर मार्ग, धरतीको अपने अंदर डुबा लेनेकी चेष्टा करने लगा। उसके क्षोभसे हिरण्यकशिपुका आसन डगमगा उठा। उसने आज्ञा की कि 'दैत्यो! पर्वतोंको काट-काटकर सेतु बाँध बनाओ कि समुद्र जहाँ-का-तहाँ रह जाय। अस्त्र, मंत्र, शस्त्र, विष और माया आदिसे तो उस दुरात्माकी मृत्यु होती नहीं, उसको हजारों वर्षोंतक

समुद्रमें ही रखना पड़ेगा । दूसरा कोई उपाय नहीं है ।' दैत्योंने आज्ञापालन किया ।

समय होनेपर प्रह्लाद भगवान्‌की स्तुति करने लगे—'कमलनयन ! पुरुषोत्तम ! तुम्हारे चरणोंमें कोटि-कोटि नमस्कार है । तुम संसारके हितके लिये बार-बार अवतार लेते हो । तुम्हीं ब्रह्मा हो, तुम्हीं विष्णु हो, तुम्हीं शिव हो । देव, दैत्य, यक्ष, राक्षस, चींटी, मनुष्य, पशु, पञ्चभूत और पञ्चतन्मात्रा आदि-आदि सब कुछ तुम्हीं हो । तुम्हारे अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं । तुममें ही यह संसार ओतप्रोत है । तुम्हीं सबके आधार हो, तुम्हीं सब हो । जब तुम्हीं सब हो, तब मैं भी तुम्हारा स्वरूप ही हूँ । मुझसे ही सब है, मैं ही सब हूँ और मुझमें ही सब है । मैं अविनाशी हूँ । मैं ब्रह्म हूँ, मैं ही मैं हूँ । मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।'

इस प्रकार अभेद-भावनासे भगवान्‌का चिन्तन करते-करते प्रह्लादकी समाधि लग गयी और वे सब कुछ भूल गये । अपने आपमें स्थित हो गये । ऐसी स्थितिमें नागपाश स्वयं टूट गया, पहाड़ हट गये और समुद्रने उन्हें ऊपर उठा दिया । उनकी आँखें खुलीं और भगवान् उनके सामने प्रकट हुए । उन्होंने श्रद्धा-भक्तिसे प्रणाम किया, स्तुति की और उनकी अनन्त कृपाका अनुभव करते हुए उनकी ओर एकटक देखते रहे । भगवान्‌ने कहा—'प्रह्लाद ! मैं तुम्हारी अनन्य भक्तिसे प्रसन्न हूँ । जो चाहो, माँग लो ।' प्रह्लादने कहा—'भगवन् ! भले ही मुझे हजारों योनियोंमें जाना पड़े परंतु तुम्हारे चरणोंकी भक्ति न छूटे, यह अविचल बनी रहे । प्रभो ! संसारासक्त मूर्खलोग विषयोंसे जितना प्रेम करते हैं, उतना ही प्रेम, वैसा ही अनन्य प्रेम आपके चरणोंमें बना रहे ।' भगवान्‌ने कहा—'प्रह्लाद ! तुम्हारे हृदयमें तो हमारी भक्ति है ही और रहेगी भी । कोई दूसरा वर माँगो ।'

प्रह्लादने कहा—'नाथ ! एक वर और माँगना है । तुमसे प्रेम करनेके कारण पिताजी मुझपर रुष्ट रहते हैं । उन्होंने अपनी ओरसे मुझे कष्ट पहुँचानेकी चेष्टा भी की है । यदि उनके इस कृत्यसे उन्हें पाप हुआ हो तो वह नष्ट हो जाय । मेरे पिता मुक्त हो जायँ ।' भगवान्‌ने कहा—'यह सब ठीक है, तुम्हारे पिताका कल्याण होगा । तुम और माँगो ।' प्रह्लादने कहा—'भगवन् ! जिसे तुम्हारी भक्ति प्राप्त हो गयी, उसे और क्या चाहिये ! उसे धर्म, अर्थ, काम से प्रयोजन नहीं, मोक्ष उसकी मुट्ठीमें है और यह भक्ति मुझे प्राप्त हो गयी है और मुझे कुछ नहीं [illegible] । प्रह्लादकी यह निःस्पृहता देखकर [illegible] वरदान दिया और अन्तर्धान हो गये । प्रह्लाद वहाँ [illegible] साथ अपने पिताके पास लौट आये ।

इस बार प्रह्लादने [illegible] हिरण्यकशिपु उनका [illegible] और प्रह्लादकी माता कयाधूका भी [illegible] बहुत हो गया, रहने दो, [illegible] जैसे रहे, वैसे रहने दो ! कयाधू [illegible] प्राप्त हुआ था, भूल गया था । [illegible] उसका हृदय बहुत कुछ [illegible] ही हृदय था न ! वह [illegible] थी । उसने प्रह्लादको भी कई बार [illegible] होकर रहनेकी सलाह दी, परंतु प्रह्लाद [illegible] थे, वे भजनके विपरीत [illegible] आखिर हारकर कयाधूने हिरण्यकशिपुसे [illegible] दो, उपेक्षा कर दो, [illegible] कशिपुने भी मान लिया । [illegible] भी थी । और [illegible] करने लगा ।

उधर प्रह्लादका [illegible] बढ़ गयी थी । [illegible] थे । [illegible] सहपाठी [illegible] बातोंपर बड़ी [illegible] [illegible] का ध्यान [illegible] धीरे-धीरे [illegible] प्रह्लादके [illegible] दे, परंतु [illegible] हिरण्यकशिपुके [illegible]

[illegible]

खड्ग लेकर उसने प्रहार किया। भगवान्ने धीरेसे उसे पकड़कर उठा लिया और चौखटपर बैठकर उसे अपनी जाँघोंपर सुलाकर अपने नखोंसे उसका कलेजा चीर डाला। सारा शरीर खूनसे लथपथ हो गया। उन्होंने अँतड़ियाँ निकालकर माला पहन लीं। क्षणभरमें उस भयंकर असुरको मारकर सिंहासनपर जा विराजे।

बात-की-बातमें सारा समाचार तीनों लोकोंमें फैल गया। देवतालोग पुष्पोंकी वर्षा करने लगे, गन्धर्व गाने लगे, अप्सराएँ नाचने लगीं। ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी आदि वहाँ उपस्थित हुए। भगवान्के तेजसे त्रिलोकी जल रही थी। उनके बालोंसे बादल गिर रहे थे, श्वाससे समुद्र क्षुब्ध हो रहा था, घरघराहटसे डरकर दिग्गज चिल्ला रहे थे। सारे संसारमें हाहाकार मचा हुआ था। ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, पितर, ऋषि, सिद्ध, विद्याधर आदिने आ-आकर पृथक् पृथक् स्तुति की; परंतु किसीकी हिम्मत न पड़ी कि उनके पास जाय। आज भगवान्का भयानक रूप देखकर सब-के-सब भयभीत हो रहे थे।

सबने सलाह करके लक्ष्मीको भेजा कि वे उग्र भगवान्को शान्त कर सकती हैं परंतु भगवान्के इस रूपको देखकर वे भी भयभीत हो गयीं। भगवान्के पास जानेकी उनकी हिम्मत नहीं हुई।

देवाधिदेव महादेवने कहा—'नृसिंह भगवान् प्रह्लादके लिये प्रकट हुए हैं। आज बिना उनके वे प्रसन्न होते नहीं दीखते।' सबके मनमें यह बात बैठ गयी। ब्रह्माने कहा—'प्रह्लाद! जाओ। तुम्हारे स्वामी तुम्हारे पिताके कारण क्रुद्ध हुए हैं। वे तुमसे ही शान्त होंगे।' प्रह्लाद तो न जाने कबसे लालायित थे। उनके प्रभु चाहे जिस भयंकर वेषमें आवें, वे उन्हें पहचानते हैं। वे प्रेमगद्गद होकर उनके पास चले गये और अञ्जलि बाँधकर चरणोंमें लोट गये।

अपने चरणोंमें लोट-पोट हुए प्रह्लादको देखकर नृसिंह भगवान्ने झपटकर उठा लिया और उनके सिरपर हाथ फेरकर प्रेमभरी दृष्टिसे देखने लगे। उन्होंने कहा—'बेटा प्रह्लाद! मुझसे बड़ा अपराध हुआ। मैंने तुम्हारे पास आनेमें बड़ा विलम्ब कर दिया। कहाँ तो तुम्हारा यह सुकुमार शरीर और कहाँ इस दुष्टकी दारुण यातनाएँ! कहाँ यह नन्हा-सा सुकोमल शरीर और कहाँ साँपोंसे डँसवाना, आगमें जलाना। मुझसे बड़ा अपराध हुआ। बेटा! तुम मुझे क्षमा कर दो। इस बातको भूल जाओ।'

[illegible]

कामनाएँ कम नहीं—अबतकसे ऐसा ही होता आया है।

भगवान्‌की कृपासे देवताओंका काम हुआ। स्वर्गके सिंहासनपर इन्द्रका राज्याभिषेक हुआ। वहाँ भोगोंकी तो कोई कमी थी ही नहीं। परंतु कामनाओंका अभाव कब होता है! यह तो भगवान्‌की बड़ी कृपाका फल है। देवसभामें आपसमें यह निश्चय हुआ कि हमलोगोंके पास भोगकी प्रचुर सामग्री रहनेपर भी मृत्युके भयसे उसका पूर्णतः भोग नहीं हो पाता। यह डर लगा ही रहता है कि न जाने कब मृत्यु हमें इनसे अलग कर देगी। कोई ऐसा उपाय किया जाय जिससे हमलोग अमर हो जायँ।

देवता तो थे ही। इनका यही लक्षण है कि ये भगवान्‌की शरण नहीं छोड़ते। सबने एक स्वरसे भगवान्‌से प्रार्थना की और भक्तवाञ्छाकल्पतरु भगवान्‌ने इनकी अभिलाषा पूर्ण की। केवल अमृतमन्थनके लिये भगवान्‌ने अपनेको अनेक रूपोंमें प्रकट किया।

मन्दराचलको लाना, उसे कच्छप बनकर पीठपर धारण करना, बाहर देवताओंके साथ मथना, धन्वन्तरिके रूपमें अमृत लाना, मोहिनीके रूपमें पिलाना और अन्तमें बलि आदि दैत्योंको युद्धमें पराजित कर देना, सब काम स्वयं भगवान्‌ने ही तो किया था। परंतु अब देवताओंकी अभिलाषा पूर्ण हो गयी थी। उनके पास भोगोंकी कमी थी ही नहीं, मृत्युका भय छूट ही गया था। अब भगवान्‌को भला कौन याद करे! होना तो यह चाहिये कि कामनाओंकी पूर्ति और भय निवृत्ति हो जानेपर भगवान्‌का अधिकाधिक स्मरण हो। परंतु इससे उलटा ही होता देखा गया है।

अपनी विजयके गर्वमें देवतालोग भगवान्‌को भूल गये, विषयपरायण हो गये। उनमें देवत्वके स्थानपर असुरत्व घुस आया। परंतु यह भी निश्चित है कि भगवान्‌के बिना चाहे दैवी सम्पत्ति हो या लौकिक सम्पत्ति, टिक नहीं सकती। हुआ भी ऐसा ही।

उधर हारे हुए दैत्य बड़ी सावधानीके साथ पूरे प्रयत्नसे अपना बल बढ़ाने लगे। अपने कुलगुरु शुक्राचार्यकी सम्मतिसे बड़े भारी यज्ञका आयोजन हुआ। विधिपूर्वक अनुष्ठान होने लगे। वहाँ असुरभावके स्थानपर देवभावकी स्फूर्ति होने लगी। हारनेवाला जीत गया और जीतनेवाला हार गया। स्वयं अग्निदेवने प्रकट होकर रथ, घोड़े आदि एवं आशीर्वाद दिया। बलिका अभिषेक हुआ। बड़ोंकी वन्दना करके उन्होंने विजययात्रा की।

देवतालोग अपनी अमरताके घमंडमें चूर थे। विषयोंकी मदिरा पीकर पागल थे। लक्ष्मी उनसे अप्रसन्न थीं; क्योंकि वहाँ न उनके पतिकी पूजा थी, न उनकी ही। बात-की-बातमें दैत्योंने उन्हें स्वर्गसे खदेड़ दिया। जिनके पास भगवान्‌का बल नहीं है, भला वे किस बलपर—कितनी देरतक किसी आपत्ति, विपत्ति या द्वन्द्वका सामना कर सकते हैं। मर सकते नहीं थे, विषयभोग छिन गये, साधारण जीवोंकी अपेक्षा भी अधिक दुर्दशा भोगनी पड़ी। किसीने वन-बीहड़की शरण ली और किसीने नदीतटपर अड्डा जमाया। स्वर्गपर बलिका अधिकार हो गया। वे ही अब इन्द्र हुए।

देवेन्द्रके दुःखका पारावार नहीं था। कलका इन्द्र आज भिखारी है। कलका त्रिलोकाधिपति एकच्छत्र शासक आज दुत्कारा जा रहा है। अमृत पीनेवालेको पानी नहीं मिलता। खानेको अन्न नहीं, पहननेको वस्त्र नहीं। इस अवस्थाके दुःखका अनुमानमात्र किया जा सकता है। कोई क्षत्रिय राजा होता तो लड़कर सामने युद्धमें प्राण त्याग देता; परंतु इसमें तो इनकी वही अमरता, जिसके बलपर ये फूले नहीं समाते थे, बाधक हो रही थी। इसीको कहते हैं—समयका फेर।

जब वे सर्वथा निराश हो गये, तब अपनी माँकी याद आयी। वे सोचने लगे—अब माताकी शरणमें जानेसे ही कल्याण हो सकता है। जिसके हृदयके खूनसे इस जीवनकी रचना एवं रक्षा हुई है, जिसने अपने गर्भमें महीनों इसका वहन किया है; जब चलना नहीं आता था, तब चलना सिखाया, बोलना नहीं आता था बोलना सिखाया, पढ़ना नहीं आता था पढ़ना सिखाया, जिसकी शिक्षा-दीक्षा एवं कृपासे इतने उच्च पदपर आसीन हुए और वास्तवमें जिसका यह शरीर और जीवन है, उसी माँके पास चलना चाहिये।

उनकी माताका नाम अदिति था। ये दक्ष प्रजापतिकी पुत्री तथा महर्षि कश्यपकी धर्मपत्नी थीं। ये महर्षि कश्यपकी विभिन्न पत्नियोंमें एक थीं और इन्हें ही देवजननी होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कश्यप महर्षि तो अलग एक एकान्त कुटीरमें भगवच्चिन्तनमें लगे रहते थे। अब पितामहकी आज्ञाका पालन कर चुके थे, विभिन्न पत्नियोंसे असंख्य संतानोंकी सृष्टि कर चुके थे। उनका एकमात्र काम था—भगवच्चिन्तन। दूसरी स्त्रियाँ अपने प्रतापशाली पुत्रोंके साथ

सर्वत्र होनेपर भी आज अदिति कुछ उदास है । इसके मनमें कोई चिन्ता अवश्य आ गयी है । सोचने लगे— क्या यह किसी अतिथि-अभ्यागतका सत्कार नहीं कर सकी है अथवा किसी याचकको कुछ देनेकी प्रतिज्ञा करके नहीं दे सकी है, परंतु यह तो इसके लिये असम्भव है । किसीका तिरस्कार तो इससे हो ही नहीं सकता । तब इसकी चिन्ताका क्या कारण है ? महर्षि कश्यप स्वयं चिन्तित हो गये ।

थोड़ी ही देरमें मानो उनके हृदयमें किसीने कहा— माता केवल पुत्रके कष्टसे ही चिन्तित होती है । उन्होंने योगबलसे जान लिया कि इन्द्रादि देवता किस प्रकार स्वर्गसे वञ्चित हो गये हैं । क्रमशः अदितिके पास इन्द्रका आना और अदितिके आश्वासनकी बात भी जान ली । अदितिके हृदयमें भगवान्‌का अगाध विश्वास देखकर महर्षि कश्यप पुलकित हो गये । उन्होंने सोचा—अदिति तो कुछ कहेगी नहीं, अब इसकी चिन्ता निवृत्तिका कुछ उपाय होना चाहिये ।

कहीं-कहीं और विशेष करके महात्माओंके पास कुछ कहनेकी अपेक्षा न कहनेका प्रभाव अधिक पड़ता है । परंतु इसमें बड़े धैर्यकी आवश्यकता होती है । इस परीक्षामें अदिति पास हो गयीं । इसी समय इन्द्रने आकर प्रणाम किया । उन्हें चरणोंमेंसे उठाकर कश्यपने हृदयसे लगाया और अनेकों प्रकारसे समझाया ।

उन्होंने बताया कि इस सृष्टिका उद्देश्य तभी पूरा होता है जब भगवान्‌का भजन किया जाय । यदि तुम स्वर्गके स्वामी होकर भगवान्‌को ही भूल गये; अभिमान, काम, क्रोध और विषयोंके सेवक बन गये तो यह आवश्यक था कि तुम्हें उस स्थानसे च्युत करके चेतावनी दी जाय । अब सम्हल जाओ और पूर्णरूपसे भगवान्‌की शरण ग्रहण करो । उनकी सेवामें ही अपनी सारी शक्ति लगा दो ।

इसके बाद सभी देवता और इन्द्र इकट्ठे हुए और सब आग्रह करके कश्यप तथा अदितिको ब्रह्मलोक—ब्रह्माकी सभामें ले गये । वहाँ उस समय देवाधिदेव महादेव, सम्पूर्ण अधिष्ठातृ देवता एवं मुख्य-मुख्य महर्षि उपस्थित थे एवं भगवान्‌की लीला तथा संसारकी रक्षा-दीक्षाकी चर्चा चल रही थी ।

इन लोगोंका यथायोग्य सत्कार हुआ । सब यथास्थान बैठ गये । जगत्‌की वर्तमान अवस्थापर विचार होने लगा । देवताओंने अपनी विपद्-गाथा कह सुनायी । बलिके राज्यके कारण दैत्योंकी मनमानी बढ़ गयी है । स्वभावसे ही आसुरी सम्पत्तियुक्त होनेके कारण वे महान् उपद्रव कर रहे हैं, इत्यादि बातें होनेके पश्चात् सर्वसम्मतिसे क्षीरसागरके तटपर जानेका निश्चय हुआ ।

ब्रह्मा, शङ्कर, कश्यप, अदिति, इन्द्र एवं सम्पूर्ण महर्षि, देवता आदि क्षीरसागरके तटपर जाकर एक स्वरसे भगवान्‌की स्तुति करने लगे । पुरुषसूक्तकी मधुर एवं गम्भीर ध्वनिसे सारा वायुमण्डल मुखरित हो उठा । सबके मन, वाणी, प्राण, शरीर, बुद्धि एवं आत्मा भगवान्‌की प्रार्थनामें लग गये ।

प्रार्थना कभी विफल नहीं जाती, किंतु उसे पूर्ण शक्तिसे होना चाहिये । अपने तमोगुण, रजोगुणकी समस्त वृत्तियोंकी प्रवृत्ति सत्त्वाभिमुख करके भगवान्‌की प्रार्थनामें लग जाना चाहिये । जितनी गम्भीरतासे प्रार्थनाके भाव या शब्द निकलेंगे उतनी ही जल्दी प्रार्थनाकी पहुँच होती है ।

आज तमोगुण और रजोगुणके अधिष्ठातृ देवता शङ्कर एवं ब्रह्मा सत्त्वगुणके उज्ज्वल प्रतीक क्षीरसागरके तटपर एकत्रित हुए हैं । उनके साथ समस्त देवता, महर्षि आदि जिन्हें विश्वके इन्द्रिय, मन, बुद्धि एवं आत्मा कह सकते हैं, सब-के-सब एक स्वरसे भगवान्‌को पुकार रहे हैं । सर्वत्र होनेपर भी भगवान् क्षीरसागरमें अर्थात् सत्त्वके साम्राज्यमें ही निवास करते हैं एवं प्रकट होते हैं ।

ज्यों ही एकाग्रता हुई और सबकी सम्पूर्ण शक्ति प्रार्थनामें लगी कि भगवान् प्रकट हो गये । वर्षाकालीन मेघके समान श्यामल शरीर, पीताम्बर धारण किये हुए, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मधारी भगवान्‌को गरुड़पर आते हुए देखकर सब-के-सब आनन्दसे भर गये । तन-बदनकी सुध भूल गयी । नेत्रोंमें आँसुओंकी धारा, शरीरमें रोमाञ्च और वाणीमें बोलनेकी शक्ति नहीं, यही सबकी दशा थी । सब निश्चेष्ट थे ।

भगवान्‌ने अपनी कृपामयी दृष्टिसे सबमें शक्तिसंचार किया । लोग उठकर खड़े हुए । सिर झुके थे, अञ्जलियाँ बँधी थीं । ब्रह्माने सबका प्रतिनिधित्व किया—'प्रभो ! आप तो सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं और परम दयालु हैं । क्या इस समय आपकी यही इच्छा है कि आसुरी सम्पत्तिकी वृद्धि हो । इन्द्रके राजत्वकालमें बलिका राज्य हो । असुरोंके उपद्रवसे त्रिलोकी त्रस्त है, भगवन् ! दया करो ! दया करो !!'

भगवान्‌ने मुसकराते हुए कहा—'आपलोग घबरायें नहीं । मैंने सब व्यवस्था कर रक्खी है । मैं शीघ्र ही कश्यपके द्वारा

अदितिके गर्भसे अवतार ग्रहण करूँगा। सन्तोष करो, शान्त हो, सुखी हो।'

भगवान्‌की अभय-वाणी सुनते ही सभी प्रसन्नतासे खिल उठे। कश्यप अदितिके आनन्दकी तो सीमा ही नहीं थी। भगवान्‌के अन्तर्धान होनेपर सभी अपने-अपने लोकोंमें चले गये। कश्यप-अदिति भी अपने आश्रमपर आये।

अदितिकी प्रसन्नताका वर्णन नहीं किया जा सकता। उसे चिन्ता थी तो केवल यही कि जिन प्रभुके रोम-रोममें समस्त विश्व ब्रह्माण्ड रहते हैं, उनको मैं अपने गर्भमें कैसे वहन कर सकूँगी। फिर सोचती मानो भगवान् कह रहे हैं 'अरी पगली! तू मुझे मेरे गर्भमें रहनेकी चिन्ता क्यों कर रही है, मैं तुम्हें भी धारण करूँगा और सारे जगत्‌को भी।' कभी-कभी उसके मनमें यह बात आती कि—मैं तो स्वार्थकी पुतली हूँ। मैंने अपने पुत्रोंके लिये भगवान्‌से प्रार्थना की। फिर मनमें आता कि इसीमें तो जगत्‌का हित भी है न। उनकी इच्छा भी ऐसी ही है। यह बात सोचते ही वह गद्गद हो जाती कि भगवान् हमारे पुत्र होंगे। वह भगवान्‌की दया और करुणाकी बात सोचकर आनन्दके समुद्रमें डूब जाती।

महर्षि कश्यपसे आज्ञा लेकर उसने अनेकों व्रत अनुष्ठान आदि किये। वह सोचती कि मेरे कलुषित हृदयमें भगवान् कैसे रहेंगे? महर्षि कश्यप कहते—'तू तो बावली हो गयी है, भगवान् जहाँ आते हैं वहाँ सब स्वयं शुद्ध हो जाता है। बस, तू उनका नाम रट।' अदितिका समय आत्म-शुद्धिके नियमोंमें और भगवान्‌की मधुर प्रतीक्षामें ही बीतता। आखिर एक दिन भगवान् उसके गर्भमें आ ही गये।

(२)

किसी-किसी पुराणमें ऐसी कथा आती है कि स्वर्गपर दैत्योंके आधिपत्य और देवताओंकी पराजयका समाचार सुनकर अदितिके मातृ-हृदयको बड़ा कष्ट पहुँचा। वह उदास रहने लगी। आश्रमके कामकाज भी ठिकानेसे न होते। एक दिन जब महर्षि कश्यप उसके आश्रमपर आये, तब वहाँकी दशा देखकर आश्चर्यमें पड़ गये। अदितिने विधिपूर्वक उनकी पूजा की। इस उदासीका कारण पूछनेपर अदितिने सारी बात कह सुनायी और इस आपत्तिसे निस्तारका उपाय पूछा।

महर्षि कश्यपने पहले तो समझानेकी चेष्टा की। उन्होंने कहा—'प्रिये! हमलोग आत्मज्ञानी हैं; हम [illegible]

[illegible]

भोग लगाकर भक्तोंको प्रसाद बाँटकर स्वयं बड़े प्रेमसे प्रसाद ग्रहण किया। एक सौ आठ मन्त्रोंका जप करके श्रद्धा भक्तिसे स्तुति करने लगी।

'प्रभो! आप ही सारे जगत्के रक्षक हैं, आप ही सबके आधार हैं। शरणवत्सल भगवन्! दया करो। दया करो।'

स्तुति करते-करते गद्गद होकर साष्टाङ्ग जमीनपर लोट गयी। प्रदक्षिणा की, पुष्पाञ्जलि दी और विसर्जन करके दो ब्राह्मणोंको भोजन कराया। उनके खीर आदि खा लेनेके पश्चात् आज्ञा लेकर स्वयं भोजन किया। फिर रातमें भूमि-शयन आदिका व्रत ग्रहण किया।

फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदासे लेकर द्वादशी पर्यन्त पयोव्रत होता है। इसमें दूधकी ही मुख्यता रहती है। दूधमें भगवान्का स्नान, दूधसे बनी वस्तुओंका नैवेद्य, उसीसे ब्राह्मण-भोजन और उसीका प्रसाद पाना होता है। प्रतिदिन विधिपूर्वक भगवान्की पूजा, हवन, ब्राह्मणभोजन, त्रिकाल स्नान, तर्पण आदि किया जाता है। अदितिने बड़े मनोयोगसे बारह दिनतक सब नियमोंका पालन किया। वह कुसङ्गसे दूर रहकर सम्पूर्ण प्राणियोंसे प्रेम करती और सम्पूर्ण विषयभोगों एवं आरामकी सामग्रियोंसे विरक्त रहकर भगवान्के चिन्तन, श्रवण एवं भजनमें लगी रहती।

त्रयोदशीके दिन तो महान् उत्सव हुआ। अपनी शक्तिके अनुसार भगवान्की पूजा हुई। बड़ा भारी हवन हुआ। ऋत्विजों एवं गुरुओंको बहुत बड़ी दक्षिणा दी। ब्राह्मणोंसे लेकर चाण्डालोंतकको यथायोग्य भोजन कराया। भजन, कीर्तन, नृत्य, गान हुए। भगवान्के स्वरूप, जन्म-कर्मकी चर्चाएँ हुईं। इन दिनों निरन्तर सावधान रहकर बड़ी एकाग्रतासे भगवान् वासुदेवका चिन्तन करती हुई ही अदितिने अपना सारा समय पूरा किया। इस प्रकार तेरहवें दिन यह 'पयोव्रत' पूरा हुआ।

पूर्णाहुतिके दिन अदितिकी श्रद्धा-भक्ति एवं नियम-निष्ठासे प्रसन्न होकर शङ्ख, चक्र, गदा धारण किये हुए, पीताम्बरधारी, कमलनयन मेघके समान श्यामल, मुसकराते हुए भगवान् अदितिके सामने एकाएक प्रकट हो गये। करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशमान तथा करोड़ों चन्द्रमाके सदृश शीतल भगवान्के ज्योतिर्मय रूपको देखकर अदिति आदरके साथ उठकर खड़ी हो गयी और फिर श्रद्धासे सिर झुकाकर उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग गिर गयी। बेसुध हो गयी।

थोड़ी देर बाद जब चेतना आयी, तब अञ्जलि बाँधकर उठ खड़ी हुई। उस समय अदितिकी विलक्षण दशा थी। आँखें आँसुओंसे भरी थीं। सारा शरीर पुलकित था। आनन्दसे गद्गद होकर वह काँप रही थी। स्तुति करना चाहती थी, परंतु कर नहीं सकती थी, गला रुँधा हुआ था। उसकी आँखें एकटक भगवान्के मुख-कमलपर लगी थीं, उसके रस-पानमें वह मस्त थी। ओठ फुरफुरा रहे थे, परंतु स्पष्ट बोला नहीं जाता था।

धीरे-धीरे बोलनेकी शक्ति आयी। वह हाथ जोड़कर प्रेम-गद्गद वाणीसे कहने लगी—

'भक्तवत्सल! दयालो! आपका स्वरूप अनिर्वचनीय है, आपकी महिमा अनन्त है और आपकी लीला दयामयी है। आपने मुझपर कृपा करके दर्शन दिया है। आपकी प्रसन्नतासे, आपकी कृपासे मोक्ष भी मिल जाता है फिर सांसारिक सम्पत्तियोंकी तो बात ही क्या है? भगवन्! प्रसन्न हों, प्रसन्न हों।'

अदितिकी प्रेमभरी प्रार्थना सुनकर मुसकराते हुए भगवान्ने कहा—

'देवि! तुम्हारी अभिलाषा मैं जानता हूँ। तुम चाहती हो कि तुम्हारे पुत्र ही स्वर्गके राजा हों, दैत्योंको पराजित कर दें और सुखी रहें; परंतु यह समय दैत्योंके अनुकूल है। वे ब्राह्मणोंके गुरुओंके भक्त हैं। सदाचारके मार्गपर चलते हैं। देवताओंमें इतनी शक्ति नहीं कि दैत्योंको इस समय पराजित कर दें। परंतु जब तुमने इसीलिये मेरी आराधना की है, तब मुझे यह काम करना ही पड़ेगा। मैं भक्तोंके अधीन हूँ। जब वे कोई हठ करते हैं, तब मुझे पूरा करना ही पड़ता है। मैं उनसे हारा हुआ हूँ। देवि! तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करनेके लिये मैं तुम्हारे गर्भसे जन्म लूँगा। इन्द्रका छोटा भाई बनूँगा। उसे स्वर्गका राज दूँगा, सुखी करूँगा। देवि! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ।'

इतना कहकर भगवान्के अन्तर्धान हो जानेपर अदितिको बड़ी प्रसन्नता हुई। भगवान् हमारे पुत्र होंगे—यह सोचकर वह आनन्दमग्न हो गयी। बड़े प्रेमसे, बड़े उत्साहसे अपने पतिदेवकी सेवामें लग गयी। यह सब उसे अपने पतिदेव महर्षि कश्यपकी कृपाका फल ही मालूम पड़ता था। कभी-

* श्रीमद्भागवतके अष्टम स्कन्धके सोलहवें अध्यायमें इस व्रतका पूरा वर्णन है। यहाँ तो दिग्दर्शन भर करा दिया है।

[illegible]की प्राप्ति होती है। यह सारा उद्वेग, यह सम्पूर्ण अशान्ति केवल उनका भजन न करनेसे है।'

प्रह्लाद यह कहते-कहते भगवान्‌की स्मृतिमें डूबते-से जा रहे थे। वे मानो दूसरे लोकमें चले गये। वाणी बंद हो गयी। शरीर निस्पन्द हो गया। वे दूसरे रूपमें भगवान्‌को ढूँढ़ने लगे। वैकुण्ठ, ब्रह्मलोक, स्वर्ग एवं मर्त्यलोकमें भगवान्‌को ढूँढ डाला, परंतु कहीं भगवान्‌के दर्शन नहीं हुए। फिर अलग अलग सब वस्तुओंको देखना शुरू किया। अन्ततः देखा तो अदितिके गर्भमें भगवान् मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं। नमस्कार किया। आशीर्वादके लिये वामन भगवान्‌के दाहिने हाथको उठा देखकर प्रह्लादको इतना आनन्द हुआ कि उन्हें और सब बातें भूल गयीं। बड़ी देरतक एकटक देखते रहे। फिर भगवान्‌ने स्वयं ही उन्हें इस शरीरमें भेज दिया।

यहाँ बलि बैठे-बैठे प्रह्लादके अन्तिम वाक्यपर विचार कर रहे थे कि 'यह सारा उद्वेग, यह सम्पूर्ण अशान्ति भगवान्‌का भजन न करनेसे है।' उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा। वे अपने आप ही उत्तेजित हो उठे। उनका चेहरा लाल हो गया, आँखें चढ़ गयीं। वे सोचने लगे कि भगवान् कौन है? अपना भजन न करनेसे वह हमें दुःख क्यों देता है? क्या वह हमसे अधिक बलवान् है, सुनते हैं वह देवताओंका हिमायती है। क्या इसीसे हमें अशान्त करता है? अस्तु, दादाजी इस बार कोई पतेकी बात कहेंगे। इतनेमें ही प्रह्लादकी आँखें खुलीं।

क्षणभर बाद प्रह्लादने कहा—'बेटा! अब भगवान्‌के भजन बिना कल्याण नहीं। वे देवताओंकी प्रार्थनासे अदितिके गर्भमें आ चुके हैं। वे देवताओंका कल्याण करेंगे। तुम-लोग भी उनका भजन करो, वे तुम्हारा भला करेंगे।'

बलि पहलेसे ही उत्तेजित थे। प्रह्लादकी बातोंसे उनकी उत्तेजना बढ़ गयी। उनका अभिमान बोल उठा—'मैं समझ गया। यह सब उन्हींकी करतूत है। वे हमारे पुराने शत्रु हैं। अमृत मथनेके समय बराबर परिश्रम करनेपर भी हमें ठग लिया। युद्धमें देवताओंकी सहायता की। इस बार जब हमारी शक्ति बढ़ी तब सामने नहीं आये। अब छुक-छिपकर अदितिके पेटमें बैठे हैं। देवताओंकी सहायता करनेके लिये अदितिके गर्भमें आये हैं। इस बार देखा जायगा। मेरे एक-एक वीर शम्बर, मय, बल आदि उन्हें मार सकते हैं। उनमें रक्खा ही क्या है?'

आवेशमें आकर बलि बहुत बोल गये। पीछेसे गुरुजनोंके सामने इतना बोल जानेका पश्चात्ताप भी हुआ। परंतु अब तो तीर निकल चुका था। अब कर ही क्या सकते थे। भगवान्‌पर आक्षेप प्रह्लादसे नहीं सुना गया। वे काँप उठे। उनके रोम-रोमसे चिनगारियाँ निकलने लगीं। कहीं-कहीं ममता भी क्रोधकी जननी हो जाती है। सम्भव है दूसरा कोई ऐसी बात कहता तो प्रह्लादको क्षोभ न होता; परंतु अपना ही पौत्र इस प्रकार कहे यह उन्हें असह्य था। वे बोल उठे—

'बलि! तू मेरे कुलका कलंक है। मेरा पौत्र, विरोचनका पुत्र होकर तू ऐसी बात कहता है! तुझे गर्भमें ही मर जाना चाहिये था। तू इस सेनाके बलपर, इस शरीरके बलपर इतना घमंड कर रहा है, इतना इतरा रहा है। तुझे धनका उन्माद हो गया है। इसीसे तू त्रिलोकीको संकल्पमात्रसे धारण करने-वाले भगवान्‌का निरादर करता है। जा, अब तेरा धन न रहेगा, तेरी सेना काम न आयेगी और तू पद-भ्रष्ट हो जायगा, तब तेरी हेकड़ी छूटेगी, तू भगवान्‌की महिमा जानेगा।'

बलि तो सन्न रह गये। काटो तो खून नहीं। वे चाहे जितने अभिमानी रहे हों, परंतु उनके हृदयमें प्रह्लादकी भक्ति थी, गुरुजनोंका आदर था। वे आवेशमें जो कुछ कह गये थे, उसके लिये स्वयं उन्हें दुःख था। जब प्रह्लादकी बात सुनी, तब तो वे सर्वथा निराश हो गये। उनका विश्वास था कि चाहे जो हो जाय दादाजीकी बात मिथ्या नहीं हो सकती। वे तुरंत उनके चरणोंपर गिर पड़े। उनकी आँखोंसे आँसूकी धारा बहने लगी।

क्षणभर बाद ही प्रह्लाद शान्त हो गये, बलिको उठाकर छातीसे लगाया। समझाया—'बेटा! मैं तुम्हारी बात सुनकर आवेशमें आ गया। तभी तो ऐसी बात मुँहसे निकल गयी। नहीं तो, इस भगवान्‌की लीलामें क्रोधके लिये स्थान कहाँ है! ऐसी ही उनकी इच्छा थी। अब चलकर उनका भजन-स्मरण करो। वे किसीका पक्षपात नहीं करते। सबको समानरूपसे देखते हैं। यदि वे इन्द्रको स्वर्गका राज्य देंगे तो तुम्हें उससे भी अच्छा पद दे सकते हैं। उनके विधानपर विश्वास रक्खो। वे जो कुछ करते हैं अच्छेके लिये ही करते हैं। जिस सम्पत्ति, पद, सेना, बल आदिको अपना समझकर तुम अभिमानवश भगवान्‌को भूलकर अशान्त होते जा रहे थे—यदि भगवान् उन्हें छीनकर तुम्हें अपना लें, अपनी सारी वस्तुएँ तुम्हें दे दें, वे स्वयं तुम्हारे हो जायँ तो इससे बढ़कर क्या बात होगी?

'अब जाओ, अपने धनका सदुपयोग करो। सबका

सम्मान करो । सबकी इच्छा पूर्ण होने दो । वे न जाने किस रूपमें आ जायँ । सबके रूपमें उन्हें देखो । आनन्दसे यज्ञ प्रारम्भ कर दो । तुम्हारा कल्याण होगा । भगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे ।'

बलि जाकर यज्ञ-कार्यमें लग गये ।

(५)

प्रकृति माता अनादि कालसे एक ही काम करती आयी हैं और अपने जीवनभर वही करती रहती हैं । उनके लिये दूसरा कोई काम ही नहीं है । वह काम है—परम पुरुष परमात्माको रिझाना । उनकी आज्ञाके अनुसार चलती हैं, उनके इशारेसे नाचती हैं, गाती हैं, सो जाती हैं और जागती हैं । यह इसीलिये बनी हैं और हैं कि भगवान् अपने एकाकीपनमें—सूनेपनमें इनके साथ रमण करें, खेलें, मनोरञ्जन करें । हाँ, तो प्रकृति माता सर्वदा अपने इस काममें सावधान रहती हैं, एक क्षण भी प्रमाद नहीं करतीं । यह सामान्य बात है ।

परंतु जिस दिन भगवान् निराकारसे साकार, अव्यक्तसे व्यक्त और निर्गुणसे लीलाधारी होते हैं उस दिन तो इनकी प्रसन्नताका ठिकाना ही नहीं रहता, इनका आनन्द फूट पड़ता है । आज भाद्रपद शुक्ल द्वादशी है । प्रकृति माताने दूसरे ही रूपमें अपनेको सजा रक्खा है । दिशाएँ प्रसन्न हैं, ऋतु अनुकूल है, शीतल सुगन्ध वायुके मन्द मन्द झकोरे लोगोंके हृदय गुदगुदा जाते हैं । आकाश निर्मल है, नदियाँ शान्तिसे भगवन्नामका संगीत गा रही हैं, अन्तरिक्ष उन्हींके शब्दोंमें अपना शब्द मिलाकर अनाहत नादको प्रकट कर रहा है, अग्नि धूमरहित होकर आहुति ग्रहण कर रही है, सारी पृथ्वीमें मङ्गल-ही-मङ्गल है, ब्राह्मण वेदोंके गानमें मस्त हैं, गौओंके स्तनोंसे स्वयं दूध निकल रहा है, पशु, पक्षी, अणु, परमाणु सब कुछ शान्त, प्रसन्न, आनन्दित हैं ।

और तो क्या, आज स्वयं ब्रह्मा, शिव एवं समस्त देवमण्डल अदितिके सूतिकागारमें उपस्थित होकर गर्भमें स्थित अनन्त, अजन्मा, निर्विकार, ज्ञानस्वरूप प्रभुकी स्तुति कर रहा है—

'प्रभो, अनन्त, अच्युत ! तुम्हीं सारे विश्व ब्रह्माण्डोंके अधिपति हो, अभय हो । तुम्हारे ही संकल्पसे सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय होते हैं । [illegible] सम्पत्तिकी स्थापना करके तुम्हीं [illegible] हो और स्वयं अपनी ओर खींचते हो । [illegible]

[illegible] का निवारण कर [illegible] प्रदान करते हो कि वे [illegible] और निहाल हो [illegible] तुम्हारा स्मरण करें और [illegible] प्रभो ! हम तुम्हारे चरणोंमें [illegible]'

देवतालोग [illegible] भगवान्के [illegible] विजया द्वादशीका [illegible] बीचोबीच आकाशमें उतरकर [illegible] कर रहे थे । [illegible] चारों ओर दिव्य शीतल [illegible] सामने पीताम्बरधारी, चतुर्भुज, शङ्ख [illegible] हुए, मन्द-मन्द मुसकराते हुए [illegible] गये । उनकी [illegible] लाल ओठोंपर [illegible] घनश्याम [illegible] प्रकाशके दिव्य [illegible]

अभी [illegible] भेरी, मृदङ्ग, वीणा [illegible] लगे, [illegible] करने लगे और देवता [illegible] आरम्भ कर दिया—

[illegible] सामने खड़े हैं । [illegible] अनुभव करके [illegible]

[illegible] तुम्हारे [illegible] लिये [illegible] अनन्त [illegible] है, [illegible] हो नहीं [illegible] कर [illegible] और [illegible]

रहते। समय-समयपर उनके बल-पौरुषका स्मरण किया करते हैं।

और तो क्या कहूँ दानवेन्द्र! हिरण्यकशिपु जब अपने भाईका बदला लेनेके लिये विष्णुको ढूँढ़ने गया, तब मानो उन्हें कहीं छिपनेकी जगह न मिली तो उसीके हृदयमें घुसकर छिप गये। तुम्हारे दादा प्रह्लादकी महिमासे तो आज त्रिलोकी ही भरी हुई है जो कि अब भी सारे संसारके उद्धारके लिये निरन्तर चिन्तित रहते हैं और तुम्हारे पिता-जैसा उदार, दाता और ब्राह्मणभक्त तो संसारमें विरला ही हुआ होगा; क्योंकि जब देवता छलसे ब्राह्मणवेश बनाकर उनके पास आयु माँगने आये, तब उसने जानकर अपनी सम्पूर्ण आयु दान कर दी। तुमने अपनी उदारतासे पूर्वजोंकी कीर्ति रख ली। आज सारे संसारमें तुम्हारी कीर्ति छायी हुई है। मैं तुमसे अधिक कुछ नहीं चाहता। केवल मेरे पगोंसे तीन पग भूमि मुझे दे दो। मुझे इससे अधिककी आवश्यकता नहीं है। अधिक परिग्रहसे पापभागी होना पड़ता है।'

वामनकी बात सुनकर बलि हँस पड़े। उन्होंने कहा—'ब्राह्मणकुमार! यद्यपि तुम्हारी बातें तो वृद्धोंकी-सी हैं परंतु अभी बालक ही हो न! इसीसे मुझसे केवल तीन पग भूमि माँग रहे हो। तुम्हें जितना चाहिये अधिक-से-अधिक ले लो। मैं द्वीप-के-द्वीप दे सकता हूँ। मुझसे माँगकर फिर किसीसे माँगना नहीं पड़ता।'

वामनने कुछ गम्भीरतासे कहा—'दैत्येन्द्र! संसारके विषयोंके भोगसे अबतक न किसीको तृप्ति हुई है, न होगी। जैसे अग्निमें जितना घी डाला जाय, उतनी ही वह बढ़ती है, वैसे ही कामनाओंको जितना बढ़ाया जाय, उतनी ही अधिक उनकी वृद्धि होती है। यदि मैं तीन पग भूमिसे संतुष्ट न रहूँ तो एक द्वीप मिलनेपर भी संतोषकी आशा नहीं है। सुख संतोषमें है, परिग्रहमें नहीं। अनेकों राजा सातों द्वीपोंके स्वामी हुए हैं, क्या वे सर्वदा सुखी रहे हैं, क्या उनकी तृष्णा नष्ट हो गयी है! संसारके दुःखोंका कारण असंतोष है। जो संतुष्ट हैं, उन्हें कभी दुःख नहीं है। विशेष करके हम ब्राह्मणोंके लिये संतोष ही सर्वोत्तम वस्तु है। इसलिये मैं प्रयोजनसे अधिक नहीं चाहता। आप मुझे केवल तीन पग पृथ्वीका दान करें।'

ब्राह्मणके ज्ञान, संतोष, तेज एवं शान्ति आदि सद्गुणोंको देखकर बलि आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने कहा—'ब्राह्मण-कुमार! तुम्हारी जितनी इच्छा हो, उतना ही लो। मैं तुम्हारी प्रसन्नतामें ही प्रसन्न हूँ।'

बलिने संकल्प करनेके लिये जलपात्र उठाया।

(७)

जब मनुष्यको अपनी विद्या-बुद्धिका अभिमान हो जाता है तब कभी-कभी वह ऐसा सोचने लगता है कि 'मैं भगवान्‌से अलग रहकर भी सुखी हो सकता हूँ।' उसके अन्तःकरणके किसी कोनेमें ऐसा भाव भी आ जाता है कि 'एक बार अवसर पड़नेपर भगवान्‌को भी छका सकता हूँ और अपनी चतुरतासे भगवान्‌की इच्छाके विपरीत भी काम बना सकता हूँ।' यह कोरा अज्ञान है, परंतु बड़े-बड़े कहे जानेवाले लोगोंमें भी यह पाया जाता है। यहाँतक देखा गया है कि बाहरसे भगवान्‌की दुहाई देनेवालोंके चित्तमें भी यह भाव स्थित रहता है और कई बार तो उन्हें स्वयं इस बातका पता भी नहीं होता।

शुक्राचार्यकी विद्या, बुद्धि, नीति, सब एक-से-एक बढ़कर थे। उनकी मृतसंजीविनी विद्या देवगुरु बृहस्पतिको भी नहीं मालूम थी। उनकी सम्मतिके बलपर बलिने त्रिलोकीका राज्य प्राप्त किया था और उनकी नीति शुक्रनीतिके रूपमें आज भी महान् आदर पा रही है। परंतु वे भी जगत्‌की सम्पत्तिको बड़ा महत्त्व देते थे। विषयोंमें उन्हें सुख दीखता था, भगवान्‌के आनन्दका अनुभव नहीं था।। केवल विद्यासे ही उस आनन्दका अनुभव नहीं होता।

दैत्येन्द्र बलि अनजानमें एक तेजस्वी ब्रह्मचारी समझकर वामनकी अभिलाषा पूरी करनेके लिये संकल्प करने जा रहे हैं और शुक्र जान-बूझकर कि 'ये भगवान् हैं, कहीं मेरे यजमानकी सारी सम्पत्ति छिन न जाय' इस भयसे बलिको मना करने जा रहे हैं। उन्हें भगवान्‌की अपेक्षा बलिकी सम्पत्तियोंका अधिक मूल्य दीखता है। अब यहाँ क्या निर्णय किया जाय कि शुक्रका ज्ञान अच्छा है या बलिका अज्ञान?

शुक्राचार्यने कहा—'दैत्येन्द्र! यह कोई साधारण ब्रह्मचारी नहीं हैं। ये कश्यप-अदितिसे अवतार ग्रहण करके देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये स्वयं विष्णु ही आये हुए हैं। इन्हें तीन पग भूमि देनेकी बात करके तुमने अच्छा नहीं किया। ये दो पगमें ही सम्पूर्ण पृथ्वी और

स्वर्ग नाप लेंगे तथा अपने बड़े शरीरसे नाग आकाश ले लेंगे, तुम तीसरा पग कहाँसे पूरा करोगे। ये तुम्हारा राज्य छीनकर इन्द्रको देनेके लिये आये हैं, यदि सब तुम इन्हें दे दोगे तो तुम्हारे शत्रु सुखी हो जायँगे और तुम्हारे बन्धु-बान्धव तथा स्वयं तुम राहके भिखारी बन जाओगे। दानकी भी एक नीति है। दान ऐसा होना चाहिये, जिससे सर्वदा दान देनेकी परम्परा चलती रहे। आज दान देकर कल भूखों मरना ठीक नहीं। तुम्हें झूठी प्रतिज्ञाका दोष न लगेगा। अस्वीकार कर दो।'

शुक्राचार्यकी बात सुनकर बलिके हृदयमें अद्भुत दशा हो गयी। अभीतक वे साधारण ब्राह्मण समझ रहे थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि ये तो वही भगवान् हैं जिनकी प्रतीक्षा करते-करते मेरे एक-एक दिन युग-युगकी भाँति बीतते हैं, तब उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। वे खिल उठे, वे सोचने लगे कि जिनके संकल्पमात्रसे सारी सृष्टिका प्रलय हो सकता है, वे ही प्रभु आज मेरे द्वारपर भिखारीके रूपमें आये हैं। उनका हृदय गद्गद हो गया। वे बड़ा जोर लगाकर अपनी आँखोंके आँसू रोके हुए थे। उनका चित्त भगवान्‌की भक्तवत्सलता, दयालुता आदिमें तन्मय होता जाता था। 'जिनका सब कुछ है, वे याचक हैं और जिनका कुछ नहीं वह दाता बना हुआ है'—यह अहङ्कारके कारण बनी हुई परिस्थिति और उसका दुष्परिणाम है। परन्तु भगवन् कितने दयालु हैं। वे भिखारी बनकर भी हमें कल्याण-मार्गपर चलाते हैं।

उन्होंने शुक्राचार्यसे कहा—'भगवन्! आप अपनी समझसे मेरे कल्याणकी ही बात कह रहे हैं। आप मेरे हितैषी हैं। परंतु जो बात मैं कह चुका हूँ, उसे छोड़ना ठीक नहीं जँचता। मैं नरकसे, मृत्युसे और किसी भी सांसारिक कष्टसे नहीं डरता, परंतु झूठसे बहुत डरता हूँ। किसी साधारण मनुष्यसे भी कोई प्रतिज्ञा करके मैं उसे नहीं तोड़ सकता तो साक्षात् भगवान्‌से ऐसा व्यवहार कैसे कर सकता हूँ। जिन्हें पत्र, पुष्प आदि देनेसे जीवका कल्याण [illegible] है, उन्हें त्रिलोकीका दान करके मैं दुखी हो जाऊँगा, यह बात [illegible] नहीं आती। यह इन्द्रको देना चाहते हैं—दे दें। मैं तो उनकी वस्तु उन्हें देना चाहता हूँ।'

शुक्राचार्यको ऐसा जान पड़ा कि [illegible] उल्लङ्घन कर रहे हैं, मेरा अपमान कर रहे हैं। [illegible] कामनामें ठेस लगते ही [illegible]

अंग [illegible] है। [illegible] हाँ, तुम्हारी [illegible]

[illegible] नहीं हुई। [illegible] थे। [illegible] सामने [illegible] और [illegible]

[illegible] हाथोंमें प्रवेश किया और [illegible] भगवान्‌ने एक [illegible] एक और [illegible] करनेका [illegible]

बलिके [illegible] प्राणी आश्चर्यचकित हो रहे। [illegible] और इतनी [illegible] वस्तुएँ [illegible] हैं। बलिके [illegible] गाने लगे, [illegible] हुए स्तुति करने लगे।

इधर वामन भगवान्‌ने [illegible] नन्हा-सा [illegible] प्रकट कर दिया। [illegible] सारी समय है। [illegible] हो जाती है [illegible]

[illegible]

महर्लोक, जनलोक एवं तपोलोकमें होता हुआ ब्रह्मलोकमें पहुँचा । उन लोकोंके रहनेवाले सिद्धोंने विधिपूर्वक पूजा की।

ब्रह्माने देखा कि उनका लोक भगवान्‌के चरणमण्डलकी दिव्य चमकसे चमक उठा । वे सम्भ्रमके साथ उठ खड़े हुए और बड़े प्रेमसे अपने कमण्डलुके जलसे उन्होंने भगवान्‌के चरण-कमल पखारे। उस समय वहाँके निवासी मरीचि आदि प्रजापति, सनकादि सिद्ध तथा समस्त वेद-उपवेदोंने भगवान्‌की पूजा की तथा गद्गद कण्ठसे प्रार्थना की। ब्रह्माके कमण्डलुका जल ही कालान्तरमें गङ्गाके रूपमें अवतीर्ण हुआ, जिसकी परम पावन तीन धाराओंसे त्रिलोकी पवित्र होती है ।

एक ओर ब्रह्मा आदि गन्ध, धूप, दीप आदिसे षोडशोपचार पूजा कर रहे थे । आरति, नृत्य, गीत, नाम-कीर्तन, शङ्ख नगारादि बाजे तथा स्तुतियोंसे भगवान्‌की आराधना करके अपने जीवनको सफल कर रहे थे । दूसरी ओर ऋक्षराज जाम्बवान् मनकी भाँति तीव्र गतिसे दौड़कर भगवान्‌की प्रदक्षिणा कर रहे थे और भेरी बजा बजाकर चारों ओर देवताओंकी विजय, भगवान्‌की कृपा और परमानन्दकी घोषणा कर रहे थे ।

दैत्योंने देखा कि हमारे स्वामी तो इस समय यज्ञकी दीक्षा लिये हुए हैं, शस्त्र उठा नहीं सकते और ये उन्हें धोखा देकर सारा राज्य ले लेना चाहते हैं । वे अपने अपने शस्त्र उठाकर टूट पड़े । भगवान्‌के पार्षद नन्द, सुनन्द आदिने हँसते हँसते उन्हें मार भगाया । यह सब देखकर बलिने उन्हें समझाया कि 'भैया ! जब भगवान् अनुकूल रहते हैं, तभी विजय प्राप्त होती है । इस समय वे देवताओंके अनुकूल हैं । तुम्हारी एक न चलेगी । यद्यपि वे सदा सबपर अनुकूल ही रहते हैं, परन्तु उनकी लीलाका रहस्य सहसा समझमें नहीं आता । यह तुम्हारी विजयका समय नहीं है, भगवान्‌की लीला देखो और प्रसन्न रहो ।'

बलिकी बात दैत्योंकी समझमें नहीं आयी । परंतु वे अपना अवसर न देखकर पातालमें चले गये ।

अभी तीसरा पग देना बाकी ही था ।

(८)

भगवान् सर्वज्ञ हैं, सर्वशक्तिमान् हैं और परम दयालु हैं । वे सब कुछ जानते हैं, सब कुछ कर सकते हैं और किसी-को दुःखी देख नहीं सकते । इन तीन बातोंपर जिनका विश्वास होता है, वे भयंकरसे भयंकर परिस्थितिमें भी भयभीत नहीं होते, दुःखी नहीं होते । सर्वज्ञ भगवान् किसी-की परीक्षा नहीं लेते, उनकी परीक्षामें कोई फेल नहीं होता—सब पास ही होते हैं, परंतु विश्वासकी कमी और अपनी दुर्बलता ही उन्हें दुःखी बना देती है । ऐसी परिस्थिति-में भी अपने भक्तोंको सुखी दिखलाकर भगवान् जगत्‌के सामने उनकी महिमा प्रकट करते हैं और एक महान् आदर्श उपस्थित कर देते हैं ।

भगवान्‌ने तीसरे पगके लिये बलिको डाँटा । भगवान्‌की इच्छा समझकर गरुडने उन्हें वारुण-पाशसे बाँध दिया । भगवान्‌की लीलाका रहस्य न समझनेवालोंमें हाहाकार मच गया । एक क्षणके लिये सभी स्तब्ध हो गये । भगवान्‌ने कहा—'दैत्यराज ! तुमने बड़ी डींग मारी थी कि मैं यह दूँगा, वह दूँगा । अब तीन पग जमीन नहीं दे सकते । एक पगमें सारी पृथ्वी, दूसरेमें स्वर्ग और शरीरसे आकाश तथा बाहुओंसे दिशाएँ ले लीं । अब तीसरे पगके लिये स्थान बताओ । यदि प्रतिज्ञा करके नहीं दे सकोगे तो तुम्हें नरकमें जाना पड़ेगा । प्रतिज्ञा करके न देनेवालेकी यही गति होती है ।'

भगवान्‌की यह कड़वी बात सुनकर भी बलिको किंचित् क्षोभ नहीं हुआ । उन्होंने बड़ी प्रसन्नता एवं गम्भीरतासे कहा—'भगवन् ! आप परम दयालु हैं । मैं धनके मदमें अंधा होकर अपनेको उसका स्वामी मानता था और दानके समय मैं बड़ा उदार दाता हूँ, ऐसा अभिमान करता था, परंतु आपने मेरा घमंड तोड़ दिया । न मेरा कुछ है, न मैं दाता-कर्ता हूँ । सब आपकी लीला है, आप ही करते-कराते हैं । यही समझकर हमारे दादा प्रह्लादने आपके चरणों-की शरण ली थी । भगवन् ! यह तीसरा पग पूरा न करके आपने मुझपर बड़ी दया की है । आप इसके बदले मुझे ही ले लीजिये । प्रभो ! अब आप अपना चरण मेरे सिरपर रक्खें और मेरे अन्तःकरण—मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा आत्माको अपना बना लें । यह सब तो आपके हैं ही, केवल अज्ञानके कारण मैं भूला हुआ था । भगवन् ! अब ऐसी कृपा करें कि यह भूल कभी न हो ।'

अभी बलि बोल ही रहे थे कि भगवान्‌की स्मृतिमें विभोर विह्वल होकर मधुर स्वरसे भगवन्नामका उच्चारण करते हुए भक्तराज प्रह्लाद वहाँ उपस्थित हुए । बलि उन्हें देखकर चुप हो गये । उनका सिर झुक गया और

'अब इस यज्ञकी पूर्णाहुति कर दो, जिससे विधिभंग न हो, यजमानका कल्याण हो।' शुक्राचार्यने कहा—'भगवन्! जिस यज्ञमें आप स्वयं उपस्थित हैं, वहाँ विधिभंग कैसा? मन्त्र, तन्त्र, काल, देश एवं वस्तुसे जब यज्ञकी पूर्णता नहीं होती, किसी प्रकारकी त्रुटि रह जाती है, तब आपके नामोंका संकीर्तन करके उसे पूर्ण किया जाता है। इस यज्ञमें तो आप स्वयं उपस्थित हैं। यहाँ त्रुटि कैसी? परंतु आपकी आज्ञाका पालन करना ही जीवोंका एकान्त कर्तव्य है। आपकी आज्ञा सर्वथा शिरोधार्य है,—कहकर शुक्राचार्यने यज्ञकी पूर्णाहुति की।

अब प्रह्लादने भगवान्‌के चरणोंका स्पर्श करते हुए कहा—'भगवन्! ऐसी कृपा आपने अबतक किसीपर नहीं की है। ब्रह्मा, शिव, लक्ष्मी और योगेश्वरोंपर भी ऐसी कृपा नहीं हुई है कि आप उनके द्वारपाल हों। प्रभो! आपमें विषमता नहीं है। सबको एक ही दृष्टिसे देखते हैं। यदि आपमें नीच ऊँचका भेद होता तो आप हम असुरोंके द्वारपाल कैसे होते? प्रभो! हममें कोई योग्यता नहीं है, हमारा कुछ अधिकार नहीं है। यह सब आपकी कृपा है। मैं आपके चरणोंमें अनन्त प्रणाम करता हूँ।'

प्रणाम करते हुए प्रह्लादसे भगवान्‌ने कहा—'प्रह्लाद! अब तुम भी सुतल लोकमें जाओ! बलिके साथ मेरा स्मरण करते हुए प्रसन्नतासे रहो। तुम वहाँ नित्य मेरा दर्शन पाते रहोगे। तुम्हारे और बलिके सत्सङ्गसे वहाँके दैत्योंका आसुर भाव छूट जायगा। उनमें देवभाव आ जायगा। संसारके जिस यज्ञमें विधिभंग हो जायगा, उसका फल सुतलमें रहनेवालोंको प्राप्त होगा।'

भगवान्‌की आज्ञासे प्रह्लाद चले गये। अबतक भगवान् अपने पहले वामन रूपमें हो गये थे।

इधर इन्द्रने बड़ी तैयारी की। देवता, ऋषि, मुनि और योगेश्वरोंके साथ भगवान्‌को विमानपर चढ़ाकर स्वर्ग ले गये। वहाँ भगवान्‌ने इन्द्रको स्वर्गके सिंहासनपर बैठाकर सबके सामने विधिपूर्वक राज्याभिषेक किया और इन्द्रका राज्य उन्हें सौंप दिया।

ब्रह्माकी अनुमतिसे सबने मिलकर उपेन्द्रपदपर वामन भगवान्‌का अभिषेक किया और अपनी प्रसन्नता तथा संतोषके लिये वेद, धर्म, मङ्गल, व्रत एवं मोक्ष आदिका स्वामी उन्हें बनाया। कश्यप, अदिति, सनत्कुमार, नारदादिने स्वयं अपने हाथों तिलक किया। सर्वत्र आनन्द, मङ्गल, प्रेम, ज्ञानका साम्राज्य हो गया। भगवान् एक रूपसे इन्द्रके पास रहने लगे और एक रूपसे बलिके पास। आज भी वे दोनोंके पास रहते हैं।

हाँ, तो भगवान्‌की लीला बड़ी रसमयी है। वे अजन्मा होनेपर भी इसीलिये जन्म लेते हैं, अकर्मा होनेपर भी इसीलिये कर्म करते हैं। अव्यक्त होनेपर भी इसीलिये व्यक्त होते हैं। वे स्वय रसरूप होनेपर भी अपनी लीलासे विशेष रसका आस्वादन करते हैं। भगवान्‌के जिस दिव्य जन्म एवं दिव्य लीलाका रसास्वादन करनेके लिये ज्ञानीलोग स्वरूप-सुखका त्याग कर देते हैं और सर्वदा उसीमें मस्त रहते हैं, उसके सम्बन्धमें यदि हम बार-बार कहें कि भगवान्‌की लीला बड़ी रसमयी है तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है।

अन्य अवतारोंकी भाँति भगवान् वामनकी उपासनाके भी बहुत-से मन्त्र हैं। उनमेंसे यहाँ केवल एक मन्त्र दिया जाता है—'ॐ नमो विष्णवे सुरपतये महाबलाय स्वाहा।' इस मन्त्रके ऋषि इन्द्र हैं, विराट् छन्द है और देवता स्वयं वामन भगवान् हैं। इसका ध्यान इस प्रकार कहा गया है—

> ज्वलन्मयूखकनकच्छत्राधःपुण्डरीकगम्।
> पूर्णचन्द्रनिभं ध्यायेच्छ्रीभूम्याश्लिष्टपार्श्वकम्॥

चमकते हुए स्वर्णमय छत्रके नीचे पूर्ण चन्द्रमाके समान प्रकाशमान भगवान् वामन बड़े ही सुन्दर कमलपर विराजमान हैं, लक्ष्मी और पृथ्वी बगलमें खड़ी होकर उनकी सेवा कर रही हैं। जो साधक इस प्रकार भगवान् वामनका ध्यान करके विधिपूर्वक मन्त्रका जप करता है, उसकी सब अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं।

बोलो श्रीवामन भगवान्‌की जय!

कार्यमें भगवत्-प्रेरणा ही रहे, भगवान्‌के मङ्गलमय करकमलोंका दर्शन करें—इस स्थितिके लिये हम भगवान्‌से विनीत प्रार्थना करते हैं और आप सब कल्याणके पाठक पाठिकाओंकी कृपा तथा आत्मीयतासे पूर्ण सद्भावना चाहते हैं ।

इस अङ्कके सम्पादनमें हमें जिन महानुभावोंसे सहायता मिली है, उनके हम हृदयसे कृतज्ञ हैं । बहुतसे सज्जनोंने संतोंकी जीवनियाँ, अपने पूज्य गुरु भगवान्‌के चित्र-चरित्र तथा संतोंकी वाणियाँ भेजी हैं, पर वे इस अङ्कमें काम नहीं आ सकीं, इसके लिये हम उनसे क्षमा चाहते हैं । कुछ ऐसी घटनाएँ आयीं, जो पहले छप चुकी थीं, वे भी नहीं छप सकीं और स्थानाभावसे भी बहुत-सी घटनाएँ नहीं जा सकी हैं, यद्यपि महत्त्वपूर्ण घटनाओंको देनेका ही यथासाध्य प्रयत्न किया गया है । इसके लिये भी हम नम्रताके साथ क्षमा चाहते हैं ।

किसी सत्कथामें लेखक महानुभावका नाम भूलसे छूट गया हो, अनुवाद या संक्षिप्त करने आदिमें कोई भूल हो गयी हो तो उसके लिये भी हम क्षमाप्रार्थी हैं ।

इस अङ्कमें एक हजार सत्कथा देनेका विचार था, परंतु स्थानाभावसे ८६० कथाएँ ही जा सकी हैं । शेष कथाएँ क्रमशः साधारण अङ्कोंमें दी जा सकती हैं ।

भगवान्‌के चौबीस अवतारोंकी विस्तृत कथा इस अङ्कमें देनेकी बात सोची गयी थी, परंतु स्थानाभावसे केवल पाँच ही अवतारोंकी कथा दी जा रही है । इनके लेखक सम्मान्य स्वामीजी श्रीअखण्डानन्दजी महाराजके हम कृतज्ञ हैं ।

इस अङ्कके सम्पादनमें बहुत त्रुटियाँ रही हैं । कुछ तो ऐसी हैं जो हमारी दृष्टिमें हैं । बहुत सी ऐसी होंगी, जिनकी ओर हमारा ध्यान गया ही नहीं है । हमारा यह भूलोंसे भरा तुच्छ प्रयास है । हमारे देशके सुयोग्य अधिकारी विद्वान् तथा प्रकाशक इस ओर ध्यान देकर उत्तमोत्तम साहित्य प्रकाशित करेंगे, ऐसी आशा है । हम अपनी त्रुटियोंके लिये क्षमाप्रार्थना करते हैं ।

इस अङ्कमें प्रकाशित घटनाएँ जिन जिन विविध भाषाओंके ग्रन्थोंसे संग्रह की गयी हैं, उन सबके लेखकों तथा प्रकाशकोंका हम हृदयसे आभार मानते हैं तथा उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं । सबके नाम देनेके लिये स्थानकी कमी थी, इसलिये अलग-अलग नाम न देकर हम एक ही साथ उन सबके प्रति अपनी श्रद्धा समर्पित करते हुए उनसे क्षमा प्रार्थना करते हैं । यह विशेषाङ्क हमारे उन श्रद्धास्पद लेखकोंके सत्-प्रयासका ही परिणाम है, अतः सारा श्रेय उन्हींको है । हमने तो केवल उनकी चीजोंको इसमें एक जगह सजानेका प्रयास किया है । इस प्रयासमें प्रमादवश हमसे अनेक प्रकारकी भूलें हुई होंगी । उनके लिये वे सब महानुभाव कृपापूर्वक हमे क्षमा करेंगे ।

इस अङ्कके प्रकाशित घटनाओंके संकलनमें हमारे साथी पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा, श्रीसुदर्शनसिंहजी, श्रीरामलालजी तथा श्रीशिवनाथजी दुबेने बड़ा परिश्रम किया है । हमारे अन्यान्य साथियोंने भी यथासाध्य बहुत सहयोग दिया है । इन सबके सम्मिलित प्रयत्नका ही फल यह विशेषाङ्क है । कोई घटना दुबारा छप गयी हो और प्रमादवश अन्यान्य भूलें रह गयी हों, उनकी जिम्मेदारी हमारी है और हम उन भूलोंके लिये करबद्ध क्षमा-प्रार्थी हैं ।

क्षमा-प्रार्थी,

हनुमानप्रसाद पोद्दार } सम्पादक
चिम्मनलाल गोस्वामी }

सत्कथा

सत्कथा शुचि संत भक्तोंसे मिलाती ।
सत्कथा हरिनामका अमृत पिलाती ॥
सत्कथा हरिचरित गायनमें लगाती ।
सत्कथा सब पाप तापोंको भगाती ॥
सत्कथा माता पिता गुरुको मनाती ।
सत्कथा उनकी सदा सेवा कराती ॥
सत्कथा वैराग्य रस रुचिको बढ़ाती ।
सत्कथा हरि विरहकी ज्वाला जगाती ॥

सत्कथा प्रभु-मिलनके साधन बनाती ।
सत्कथा प्रभु-प्रेममें पागल बनाती ॥
सत्कथा चर अचरमें प्रभुको दिखाती ।
सत्कथा सब जगत्‌का सेवक बनाती ॥
सत्कथा माया अविद्याको हटाती ।
सत्कथा ममता अहंताको मिटाती ॥
सत्कथा निजरूपका अनुभव कराती ।
सत्कथा भगवान्‌के दर्शन कराती ॥